CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

A STUDY
OF
ANCIENT INDIAN INSCRIPTIONS

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन

(INTRODUCTION & ORIGINAL TEXT)

वासुदेव उपाध्याय

1156

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: पटना :: वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

A STUDY
OF
ANCIENT INDIAN INSCRIPTIONS

(INTRODUCTION & ORIGINAL TEXT)

B. UPADHYAYA, M.A., PH.D.
Reader
ANCIENT INDIAN HISTORY & ARCHAEOLOGY,
PATNA UNIVERSITY, PATNA.

MOTILAL BANARSIDASS
DELHI :: PATNA :: VARANASI

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Publishers :
Sundar Lal Jain
Motilal Banarsidass,
Bungalow Road,
Jawahar Nagar, Delhi-6

Printer :
Shanti Lal Jain
Shri Jainendra Press,
Bungalow Road, Jawahar Nagar,
Delhi-6.

©
1961

Price :

Indian :	**Rs. 20-00**
Foreign :	**40 Shillings**

1156

Books available at :

1. **Motilal Banarsidass, Bungalow Road, Jawaharnagar, Delhi-6**
2. **Motilal Banarsidass, Nepali Khapra, Varanasi.**
3. **Motilal Banarsidass. Bankipur, Patna.**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन

लेखक
वासुदेव उपाध्याय, एम. ए., पी-एच.डी.
(मंगला प्रसाद पारितोषिक विजेता)
रीडर प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व
पटना विश्वविद्यालय

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेखक की अन्य रचनाएँ

१. गुप्तसाम्राज्य का इतिहास (२ भाग)
२. पूर्वमध्यकालीन भारत
३. भारतीय सिक्के
४. विजय नगर साम्राज्य का इतिहास
५. भारतीय गौरव
६. भारत के प्राचीन ग्राम
७. Socio-Religious condition of Northern India. (700-1200 A.D.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मी शंकर

की

स्मृति में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दो शब्द

पिछले कई वर्षों से यह अनुभव कर रहा था कि प्राचीन भारतीय अभिलेखों का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन होना चाहिए जिससे उनमें निहित ज्ञान राशि का परिज्ञान इतिहास के विद्यार्थियों को हो सके। अभी तक साङ्गोपांग ढंग से अभिलेखों का मूल्याङ्कन नहीं किया गया था। जिस लेख या प्रशस्ति का सम्पादन हो सका है उसके सीमित क्षेत्र पर ही प्रकाश पड़ा है। सांस्कृतिक विषयों पर पूर्ण रूप से लिखना भी परिस्थिति के अनुसार सम्भव न था। अतएव समस्त विषयों को ध्यान में रख कर लेखक ने अभिलेखों का अध्ययन आरम्भ किया और प्रत्येक अंग पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

भारतीय इतिहास में अभिलेखों का कितना महत्वपूर्ण स्थान है तथा कैसे अमूल्य साधन हैं, यह विद्वानों से छिपा नहीं है। उनके अध्ययन से कई सांस्कृतिक विषयों पर नवीन प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत ग्रंथ की योजना दो भागों में की गई है। प्रथम में भूमिका तथा मूल लेख और दूसरे में टिप्पणी तथा हिन्दी अनुवाद। प्रथम भाग के पहले खण्ड में अभिलेखों का विस्तृत अध्ययन है। यों तो प्रत्येक विषय पर एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार हो सकता है किन्तु प्रत्येक अध्याय में एक विषय पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। इससे पाठकगण लेखों के महत्व, ज्ञानराशि तथा मूल्य का अनुमान कर सकेंगे।

भूमिका में सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का संक्षिप्त वर्णन है और उस प्रसंग में कुछ ऐसी बातें भी सामने आई हैं जिनका विवरण अभिलेखों के अध्ययन से ही उपस्थित किया जा सका है। आर्थिक विषयों का जिस रूप में विवेचन किया गया है वह अन्य ऐतिहासिक साधनों से सम्भव न था। तिथि तथा सम्वत् सम्बन्धी विचार इस ग्रंथ की एक विशेषता है। अभिलेखों पर आधारित भारतीय भाषा एवं साहित्य पर तथा बृहत्तर भारत में उसके प्रसार पर भी प्रकाश डाला गया है।

दूसरे खण्ड में मौर्य युग से बारहवीं सदी तक के अभिलेख संग्रहीत हैं। प्रायः समस्त राजवंशों के प्रधान एवं प्रतिनिधि लेख चुने गए हैं। ऐतिहासिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृष्टि से ही उनका संकलन किया गया है ताकि इतिहास के विद्यार्थियों को सुविधा हो। मूल लेख की प्रति (प्रेस कापी) विद्यार्थियों ने तैयार की अतएव अशुद्धियों की अधिक सम्भावना है। खेद है कि विषम परिस्थितियों के कारण अशुद्धियां रह गई हैं, विज्ञ पाठक सुधार कर पढ़ें।

भारतीय पुरातत्व विभाग, बिहार रिसर्च सोसाइटी तथा जायसवाल अनुसंधान संस्था की कृपा से अभिलेखों का संग्रह तथा ब्लाक तैयार हो सके हैं।

हरिशयनी एकादशी, —वासुदेव उपाध्याय
पटना विश्वविद्यालय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सांकेतिक शब्दों की तालिका

आ० स० इ० ए० रि०	=आर्केलाजिकल सर्वे आफ इंडिया एनुवल रिपोर्ट
आ० स० रि०	=आर्केलाजिकल सव रिपोर्ट
आ० स० मे०	=आर्केलाजिकल सर्वे मेमायर
इ० ए० भा०	=इंडियन एन्टीक्वेरी भाग
ई० पू०	=ईसवी पूर्व
ई० स०	=ईसवी सन्
इ० हि० क्वा०	=इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
उ० प्र०	=उत्तर प्रदेश
ए० इ० भा०	=एपिग्राफिया इंडिका भाग
ओ० का० प्रो०	=ओरियन्टल कांग्रेस प्रोसीडिंग
का० इ० इ० भा०	=कारपस इन्सक्रिपशनम् इंडिकेरम भाग
का० श्रौ० सू०	=कात्यायन श्रौत सूत्र
गा० ओ० सि०	=गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज
गु० स०	=गुप्त सम्वत्
ज० इ० हि०	=जरनल आफ इंडियन हिस्ट्री
ज० ए० सो० ब०	=जरनल आफ एसियाटिक सोसाइटी, बंगाल
ज० ग्र० इ० सो०	=जरनल आफ ग्रेटर इंडिया सोसाइटी
ज० यू० पी० हि० सो०	=जरनल आफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
ज० रा० ए० सो०	=जरनल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी
ज० वि० ओ० आर० एस०	=जरनल विहार ओरिसा रिसर्च सोसाइटी
तरं०	=राज तरंगिणी
प्र० शि०	=प्रधान शिलालेख
मा० स०	=मालव सम्वत्
मू०	=मूल लेख
वि० स०	=विक्रम सम्वत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श० का०	=शक काल
शा० प०	=शांति पर्व
सं०	=सम्वत्
स्त० ले०	=स्तम्भ लेख
सा० इ० इ०	=साउथ इंडियन इपिग्राफी
सा० इ० ए० रि०	=साउथ इडियन एनुवल रिपोर्ट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय-सूची

भूमिका

पृष्ठ

अध्याय १

इतिहास की भौगोलिक पृष्ठ-भूमि १–१७

भूगोल तथा इतिहास का संबंध १, अभिलेखों में वर्णित नगर २, अभिलेखों में सीमा वर्णन ७, विभिन्न मार्ग १२, आक्रमण मार्ग १४, बन्दरगाह १५, सार्थवाह १६, सीमान्त की निगरानी १७।

अध्याय २

प्रशस्ति का विवेचन १८–३७

काव्य का इतिहास १९, शासन-पत्र १९, प्राचीन लेख का महत्त्व २०, लेखों का वर्गीकरण २१, अभिलेखों का महत्त्व २१, लेख तथा संस्कृति २२, पुराण तथा लेख २३, धार्मिक सहिष्णुता २४, आर्थिक, सामाजिक तथा शासन-व्यवस्था २५, अन्तर्राष्ट्रीयस्वरूप २८, भारतीयकरण की चर्चा २९, बुद्ध के अवशेष की वार्ता ३१, भारतीय लेख तथा बृहत्तर भारत ३३, अभिलेखों से तिथि का ज्ञान ३४, लेखों में अत्युक्ति ३५, वैज्ञानिक तथा तुलनात्मक अध्ययन ३६, लेखों की अपूर्णता तथा दोष ३७ ।

अध्याय ३

अभिलेख लिखने के आधार ३८–५२

शिला खण्ड ३८, स्तम्भ ४०, प्रतिमायें ४१, स्तूप ४२, अवशेषपात्र ४२, गुफा ४४, ताम्रपट्टिका ४५, सिक्के ४७, मुहरें ४९, वेदिका ५१, आयागपट्ट ५२, ईंट तथा मृतिका-पात्र ५२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ४

प्रशस्ति-अंकन के सुअवसर एवं स्थान ५३–६२

धार्मिक अवसर ५४, दान का अवसर ५५, विजय यात्रा ५७, सामाजिक अवसर ५७, व्यापारिक अवसर ५८, साधारण समय ५९, प्रशस्ति खुदवाने का स्थान ५९, जयस्कन्धावार ६१, प्रधान नगर ६१।

अध्याय ५

अभिलेखों से इतिहास-ज्ञान ६३–८८

वंशवृक्ष ६५, युद्ध गाथा ६८, राज्यसीमा ७०, राजाओं की समकालीनता ७२, शासन-व्यवस्था ७३, राजतंत्र व प्रजातंत्र प्रणाली ७५, अभिलेखों में उल्लिखित पदाधिकारी ७७, अभिलेखों में कर सम्बन्धी चर्चा ८५।

अध्याय ६

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में वर्णित समाज ८९–१२०

वर्णाश्रम संस्था ८९, ब्राह्मण ९१, ब्राह्मणों का वर्गीकरण ९२, ब्राह्मणों का जीविका साधन ९४, ब्राह्मणों का देशान्तर गमन ९५, क्षत्रिय ९६, वैश्य जाति ९७, कायस्थ ९८, शूद्र तथा चाण्डाल ९९, आश्रम संस्था १०१, सन्यासी एवं मठाधीश १०३, बलिदान करने के उपाय १०४, सामाजिक संस्कार १०५, बहुपत्नी व्रत और सतीप्रथा १०६, गणिका १०७, वस्त्राभूषण तथा शृंगार के साधन १०८, भोजन तथा पेय १०९, भोजन का मूल्य ११०, समाज में भिक्षा मांगने की प्रथा ११२, अन्धविश्वास ११४, मनोरंजन के साधन ११६, सामाजिक उतसव ११७, समाज में व्यक्ति का चरित्र ११९।

अध्याय ७

भारतीय प्रशस्तियों में धार्मिक चर्चा १२१–१५८

बौद्ध धर्म १२१, जैन तथा आजीविक मत १२४, भागवत धर्म १२६, वैष्णव धर्म १२७, शैवमत १२८, पाशुपत तथा कापालिक १३२, सूर्य-पूजा १३४, शक्ति-पूजा १३६, गणेश १३७, धार्मिक सहिष्णुता १३७, वैदिक यज्ञ १३९, धार्मिक कार्य १४०, मंदिर निर्माण १४१, संस्कार १४३, देव पूजन १४४, सत्र की स्थापना १४५, गोष्ठी या प्रबंध-समिति १४६,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दान का उद्देश्य तथा प्रकार १४७, देश काल पात्र १४८, धर्म श्लोक १५१, अग्रहार का बंधक तथा कर-शासन १५२, षोड़श महादान १५३, दान विधि १५४, धार्मिक उत्सव, व्रत तथा तीर्थ १५५।

अध्याय ८

प्रशस्तियों से साहित्य का ज्ञान १५९–१८८

अभिलेख में कविगण १६०, शिक्षा-केन्द्र १६४, नालंदा महाविहार १६५, अध्ययन के विभिन्न विषय १६७, हस्तकला की शिक्षा १७३, अभिलेखों की विभिन्न भाषाएं १७६, पालि १७६, पालि का स्थान १७८, प्राकृत १७९, संस्कृत १८२, भारतीय अंकों का विकास १८३, प्राचीन अंक १८३, अंक व्यक्त करने की प्राचीन भारतीय शैली १८५, दशमलव प्रणाली १८७।

अध्याय ९

अभिलेखों में आर्थिक-विवरण १८९–२०६

सिंचाई का प्रबन्ध १९०, क्षेत्र का माप १९२, हल १९३, पादावर्त तथा हस्त १९३, निवर्तन १९४, कुल्यवाप-द्रोणवाप तथा पाटक १९४, व्यापार की चर्चा १९५, श्रेणी १९७, श्रेणी का बैंक कार्य १९९, व्यवसायिक कर तथा मुद्राएँ २००, कर सम्बन्धी विवरण २०२, व्यवसायिक कर २०४, अस्थाई कर २०५, सिक्कों के विभिन्न नाम २०७।

अध्याय १०

तिथियाँ और सम्वत् २०८–२३५

मास तथा वार २१२, सम्वत् २१४, विक्रमी सम्वत् २१५, संस्थापक २१८, आरम्भ काल २१८, शक सम्वत् २१९, गुप्तसम्वत् २२१, गुप्त सम्वत् का नामोल्लेख २२२, अलबेरुनी का कथन २२३, जैनग्रंथों के आधार पर गु० स० तथा श० का० का अन्तर २२५, विक्रम तथा शक काल का सम्बन्ध २२६, शक तथा गुप्त काल का सम्बन्ध २२६, फ्लीट का मत २२७, मत का खण्डन २२७, लेखों का प्रमाण २२८, वलभी व गुप्त संवत् की एकता २२९, खैरा का ताम्रपत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२३०, चैत्रादि वर्ष का प्रचार २३१, अंतिम परिणाम २३२, गुप्त सम्वत् के संस्थापक २३३, वलभी सम्वत् २३३, हर्ष सम्वत् २३४।

अध्याय ११

भारत में लेखनकला की प्राचीनता २३६–२६२

लिपि, लेखन-कला तथा उसका इतिहास २४१, भारतीय लिपि का जन्म तथा इतिहास २४४, खरोष्ठी २४५, ब्राह्मी २४७, ब्राह्मी से भारतीय लिपियों का विकास २५०, गुप्तलिपि २५१, कुटिल लिपि २५२, देवनागरी लिपि २५२, कैथी आदि २५३, दक्षिण भारत की शैली २५३, कलिंग लिपि २५५, लेखक तथा लिखने की विधि २५५, सूत्रधार २५७, शासन का निर्माणकर्त्ता २५८, निबंध कर्म २५९, लिखने की शैली २५९, प्राचीन भारतीय लिपि का स्पष्टीकरण २६१।

अध्याय १२

भारतीय अभिलेख तथा बृहत्तर भारत २६३–२७४

सुमात्रा के लेख २६४, जावा के अभिलेख २६५, भारतीय अभिलेखों में शैलेन्द्र वंश की चर्चा २६६, बर्मा तथा मलाया के संस्कृत लेख २६८, बोर्नियो तथा बालि के लेख २६८, हिन्द-चीन के संस्कृत लेख २६९, नेपाल, तिब्बत तथा मध्य एशिया २७२।

रिशिष्ठ

(अ) **पुरातत्व सम्बन्धी चर्चा** २७५–२७९

(ब) **भारत में पुरातत्व का ज्ञान** २८०–२८३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूल-लेख

पृष्ठ

अशोक के धर्म लेख १—२३

प्रधान शिलालेख १–११, कलिङ्ग लेख ११, लघु शिला लेख १३, अशोक के स्तम्भ लेख १५, गौड़ स्तम्भ लेख २०, स्मारक स्तम्भ लेख २२, गुहा लेख २२, बैराट शिला लेख २३।

शुङ्ग कालीन तथा आंध्र-वंशी लेख २४–२८

वेसनगर का गरुड़ स्तम्भ लेख २४, घोसुडी शिला-लेख २४, धनदेव का अयोध्या शिला-लेख २५, मौखरि वंशी बडवा यूप लेख २५, मिलिन्द कालीन लेख २५, खारवेल का हाथी गुम्फा लेख २६, खारवेली महिषी का मंचपुरी लेख २८।

सातवाहन वंशी लेख २९–३७

नासिक-गुहा लेख २९, नानाघाट गुहा चित्र लेख २९, नागनिका का नानाघाट गुहा लेख २९, गौतमि पुत्र शातकर्णी का नासिक गुहा लेख ३१, गौतमि पुत्र शातकर्णी का नासिक गुहा लेख ३१, पुलमावि का कार्ले गुहा लेख ३२, पुलमावि का नासिक गुहा लेख (१९ वर्ष) ३२, पुलमावि का नासिक गुहा लेख (२२ वर्ष) ३३, पुलमावि का कार्ले गुहा लेख ३४, यज्ञ श्री शातकर्णी का नासिक गुहा-लेख ३४, इच्छाकु वंशी वीर पुरुषदत्त का लेख ३५, वीर पुरुषदन्त का नागार्जुनी कोंडा लेख ३६।

कुषाण तथा क्षत्रप लेख ३८–४६

कनिष्क का सारनाथ प्रतिमा लेख ३८, स्यूविहार ताम्रपत्र ३८, कनिष्क का जेड़ा लेख ३९, कुर्रम ताम्रपत्र ३९, कनिष्क का श्रावस्ती लेख ३९, कनिष्क का आरा लेख ३९, हुविष्क का जैन तथा बौद्ध प्रतिमा लेख ४०, सोडास क्षत्रप का मथुरा लेख ४०, पटिक का तक्षशिला ताम्रपत्र ४०, कलवान ताम्रपत्र ४१,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहपान कालीन नासिक गुहा लेख ४१, नहपान कालीन नासिक गुहा लेख ४२, नहपान का नासिक गुहा लेख ४२, नहपान कालीन कार्ले गुहा लेख ४३, नहपान कालीन जुनार गुहा लेख ४३, चष्टन-रु दामन का अंडी लेख ४३, रुद्रदामन का गिरनार शिला लेख ४४ ।

गुप्तवंशी लेख ४७–८६

समुद्रगुप्त का प्रयागस्तम्भ लेख ४७, समुद्रगुप्त का एरण लेख ४९, समुद्रगुप्त का नालंदा लेख ५०, द्वितीय चन्द्रगुप्त का मथुरा स्तम्भ लेख ५१, द्वितीय चन्द्रगुप्त का उदयगिरि गुहा-लेख ५१, द्वितीय चन्द्रगुप्त का साँची लेख ५२, द्वितीय चन्द्रगुप्त का मेहरौली स्तम्भ-लेख ५३, प्रथम कुमारगुप्त का भिलसद स्तम्भ-लेख ५३, प्रथम कुमारगुप्त का धनैदह ताम्रपत्र लेख ५४, प्रथम कुमार गुप्त की करमदण्डा शिवलिङ्ग प्रशस्ति ५५, प्रथमकुमार गुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख ५५, प्रथम-कुमार गुप्त का दामोदरपुर का ताम्रपत्र लेख ५६, प्रथम कुमार गुप्त का मनकुंवार प्रतिमा लेख ५७, प्रथम कुमारगुप्त का मंदसोर प्रशास्ति ५७, स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख ६३, स्कन्दगुप्त का कहौम लेख ६८, स्कन्द गुप्त का इंदौर ताम्रपत्र लेख ६९, स्कन्दगुप्त का भितरी स्तम्भ लेख ७०, स्कन्दगुप्त का विहार स्तम्भ लेख ७२, द्वितीय कुमारगुप्त का सारनाथ प्रतिमा-लेख ७४, द्वितीय कुमारगुप्त का भितरी मुद्रा लेख ७४, बुधगुप्त का सारनाथ प्रतिमा-लेख ७५, बुधगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख ७५, बुधगुप्त का एरण स्तम्भ लेख ७६, बुधगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख ७७, वैन्यगुप्त का गुणैधर ताम्रपत्र-लेख ७८, भानुगुप्त का एरण स्तम्भ लेख ८०, दामोदरपुर ताम्रपत्र-लेख ८०, आदित्यसेन का अपसद शिला लेख ८२, विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख ८५, जीवितगुप्त द्वितीय का देववरनार्क स्तम्भलेख ८५ ।

प्त सम्राटों के समकालीन अधीनस्थ राजाओं के लेख ८७–९४

चन्द्रवर्मन का सुसानिया लेख ८७, वैग्राम ताम्रपत्र-लेख ८७, पहाड़पुर का ताम्रपत्र लेख ८९, पारीदपुर का ताम्रपत्र लेख ९०, धर्मादित्य का दूसरा लेख ९२, संक्षोभ का खोह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ताम्रपत्र लेख ९३।

उत्तरगुप्त की प्रशस्तियां ९५–११९

नरवर्मन की मन्दसोर प्रशस्ति ९५, विश्ववर्मन का गंगधार लेख ९६, यशोधर्मन का मन्दसोर शिलालेख १००, यशोवर्मन का नालन्दा लेख १०४, यशोवर्मन की मन्दसोर प्रशस्ति १०६, हूण राजा तोरमाण का एरण लेख १०७, तोरमाण का कुरा प्रशस्ति १०७, हूण नरेश मिहिरकुल का ग्वालियर शिला-लेख १०८, मौखरि राजा ईशानवर्मन का हरहा शिला-लेख ११०, वर्धन सम्राट् हर्ष का बांसखेड़ा ताम्रपत्र-लेख ११२, शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र ११४, पुलकेशी द्वितीय का अयहोल लेख ११५।

दक्षिण-पश्चिम भारत की प्रशस्तियां १२०–१४०

प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र १२०, प्रवरसेन द्वितीय कालीन रिथपुर लेख १२१, प्रवरसेन द्वितीय का चमक प्रशस्ति १२२, हरिषेण का अजन्ता गुहा लेख १२५, पल्लव नरेश शिवस्कन्ध वर्मन का ताम्रपत्र १२९, शिवस्कन्धवर्मन का हीरहड़गल्लि ताम्रपत्र लेख १३०, कदम्ब राजा मयूर शर्मन का चन्द्रवल्ली लेख १३२, पश्चिमी शान्तिवर्मन का तालगुंड स्तम्भ लेख १३२, गंग लेख १३५, वलभी नरेश द्रोणसिंह की मोहोत प्रशस्ति १३६, धरसेन का बलभी ताम्रपत्र १३७, वाकाटक नरेश (विदर्भ शासक) द्वितीय विन्ध्यशक्ति का वसिम ताम्रपत्र १३९।

पूर्व-मध्यकालीन अभिलेख १४१–२२१

गुजर प्रतिहार राजा वाउक की जोधपुर प्रशस्ति १४१, गुर्जर प्रतिहार भोज की ग्वालियर प्रशस्ति १४३, राष्ट्रकूट शासक ध्रुव धारावर्ष का भोर-संग्रहालय लेख १४६, प्रथम अमोघवर्ष का संजान ताम्रपत्र-लेख १५१, पाल नरेश धर्मपाल-देव का खालीमपुर-लेख १५७, देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र लेख १६०, नारायणपालदेव का भागलपुर दानपत्र १६५, सेनवंशी नरेश विजयसेन की देवपारा प्रशस्ति १७०, गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र का कमौली लेख १७४, कन्नौज राजा विजयचन्द्र का कमौली लेख १७६, परमार राजा भोजदेव का वंसवर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेख १७९, जयसिंह की उदयपुर प्रशस्ति १८१, चंदेलवंशी राजा धंग का खजुराहो लेख १८३, चेदि राजा कर्णदेव का बनारस ताम्रपत्र लेख १८९, यशः कर्णदेव का जबलपुर ताम्रपत्र लेख १९४, चाहमान नरेश विग्रहराज का अभिलेख १९७, चाहमान वंशी राजा विग्रहराज का दिल्ली स्तम्भ लेख २०३, कवि गंगधर का गोविन्दपुर-अभिलेख २०४, मालव नरेश का नागपुर अभिलेख २०९, चोलवंशी अभिलेख उत्तर मेरु २१६।

सिक्कों पर उत्कीर्ण-लेख २२२–२२४

भारतीय-यूनानी तथा शक सिक्कों के मुद्रालेख २२२, कुषाण मुद्रा लेख २२३, गुप्त वंशी मुद्रालेख २२३, पूर्व मध्य युग के मुद्रा लेख २२४।

मुहरों पर उत्कीर्ण-लेख २२५–२२६

बसाढ़ की मुहरें २२५, वैशाली की मुहरें २२५, नालंदा की मुहरें २२५, शशाङ्क का रोहतास मुद्रा लेख २२६।

बृहत्तर भारत के अभिलेख २२७–३५

चम्पा नरेश इन्द्र वर्मा प्रथम का भद्रेश्वर का अभिलेख २२७, जावा के राजा शैलेन्द्र का कलसन् अभिलेख २२९, कम्बोज के राजा भववर्म्मन का अभिलेख २३०, भूल वर्मा का कुटी भूप अभिलेख (बोर्नियो) २३२, महादेव का चाँगुनरायण का स्तम्भ लेख (नेपाल) २३३, मध्य एशिया का अभिलेख (खोटान) २३५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चित्र-सूची

	पृष्ठ संख्या
प्राचीन भारत का मानचित्र	१
अशोक का दिल्ली स्तम्भ लेख	१६
वेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख	२४
चन्द्र का लौह स्तम्भ	४०
बुद्ध प्रतिमा के आधार शिला पर लेख	४२
प्रयाग स्तम्भ लेख (१९ पंक्ति से)	४८
चन्द्र का मेहरौली स्तम्भ लेख	५३
करमदण्डा शिवलिङ्ग प्रशस्ति	५५
विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख	८५
यशोधर्मन का मंदसोर लेख	१००
शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र लेख	११४
प्रतिहार भोज की ग्वालियर प्रशस्ति	१४३
मुद्रा एवं मुहर लेख	२२२-२२५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम-खण्ड

भूमिका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

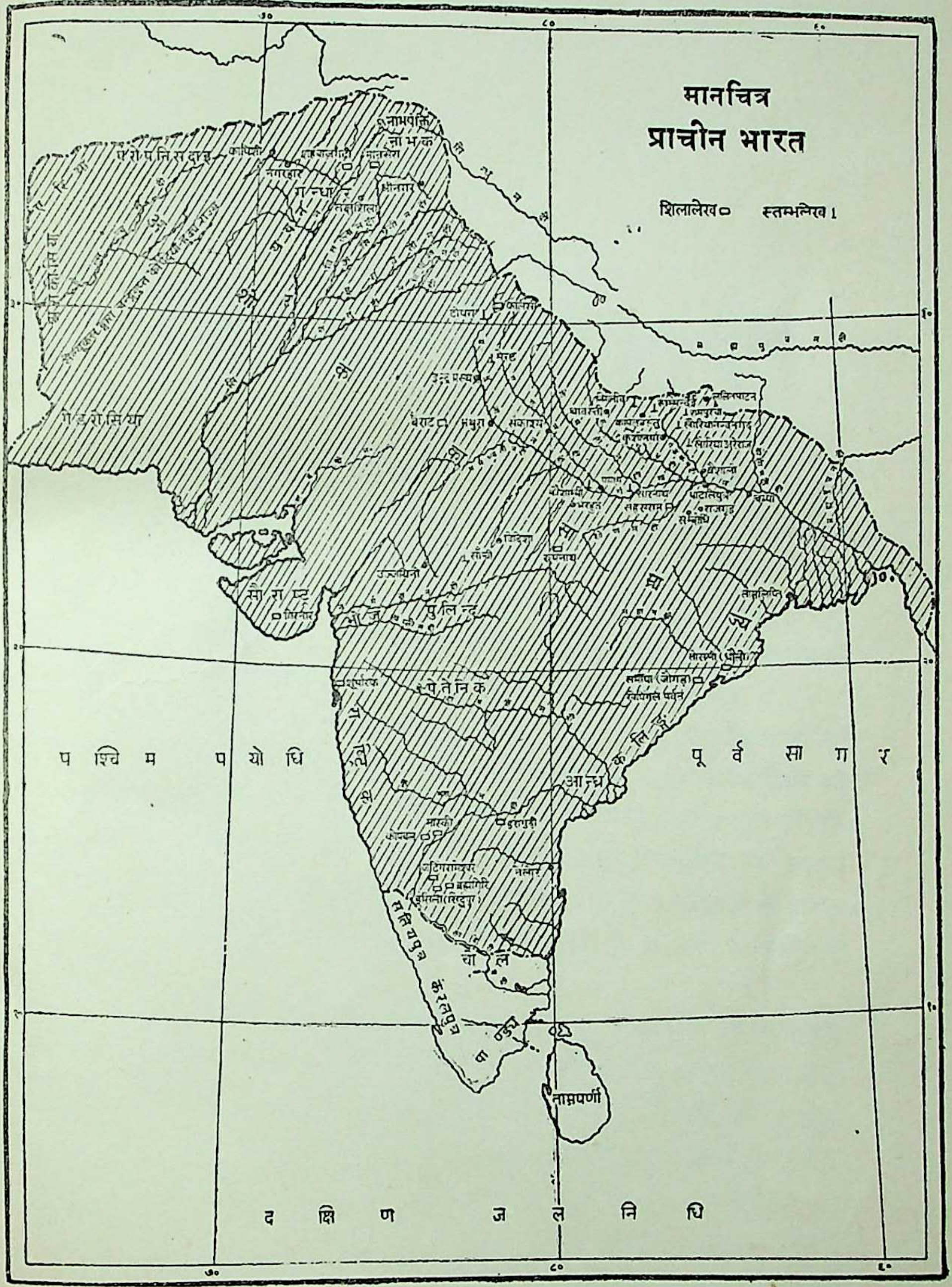

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय १

इतिहास की भौगोलिक पृष्ठ-भूमि

किसी देश की प्राचीन कथा का नाम ही इतिहास है। वर्तमान घटनाओं से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। ऐतिहासिक बातें काल तथा स्थान से सीमित हैं। आरम्भ में तो इतिहास तथा भूगोल के घनिष्ट सम्बन्ध को पृथक नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक जीवन में जातियों अथवा समूह को प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल ही काल यापन करना पड़ा था और उन्होंने प्रकृति की सहायता लेकर ही किसी स्थान पर निवास किया या भ्रमण किया।

भारतीय इतिहास का भूगोल से इतना पारस्परिक सम्बन्ध रहा कि दोनों का अध्ययन ही यहां के प्रागैतिहासिक जीवन की कथा है। उत्तर तथा दक्षिण की सांस्कृतिक विभिन्नता का कारण भौगोलिक कठिनाइयाँ ही थी। केरल तथा उत्तरी-प्रदेशों की सांस्कृतिक भिन्नता भौगोलिक स्थिति के द्वारा ही समझी जा सकती है। यह सभी बातें इतिहास के विद्यार्थियों से छिपी नहीं हैं। इतिहास के प्रधान साधनों में अभिलेख भी माने गए हैं और उसके अध्ययन से भूगोल का परिज्ञान हो जाता है।

भूगोल तथा इतिहास का सम्बन्ध

प्राचीन भारत का भूगोल जानने के लिए पुराने अभिलेखों से अत्यधिक सहायता मिलती है। विभिन्न वंशों के लेखों में वर्णित मार्ग, नगर, यातायात, तथा विजय की चर्चा से भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। साहित्य तथा यात्रा सम्बन्धी ग्रंथों से प्राचीन भारतीय भूगोल का जो परिज्ञान होता है, अभिलेखों की सहायता से उनका समीकरण तथा वास्तविक स्थिति निश्चित हो जाती है। लेखों के प्राप्ति स्थान से अमुक साम्राज्य की सीमा ज्ञात होती है तथा भारतीय नरेशों की विजय-यात्रा का मार्ग प्राचीन समय के यातायात तथा व्यापारिक रास्ते से परिचय कराता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किसी शासक ने तीर्थयात्रा या दान के प्रसंग में जिन स्थानो का भ्रमण किया हो, उनका विस्तृत विवरण लेख में मिलना उचित ही है। दान की चर्चा करते समय नदियों तथा उनके किनारे स्थित नगरों का वर्णन भी अभिलेखों में अधिकतर मिलता है। राजनीतिक तथा धार्मिक कार्यवश दूतों का उल्लेख करते समय विभिन्न प्रदेश के नाम प्रशस्तिकारों ने दिया है। यद्यपि अभिलेखों में स्पष्ट वर्णन उपलब्ध नहीं है तो भी अन्य सम्बन्धित प्रमाणों पर भौगोलिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि अशोक के स्तम्भ लेखों को देखा जाय तो प्रकट होता है कि ये चुनार प्रस्तर के बने हैं। तीस फीट तक लम्बे हैं तथा बीस टन करीब तौल में होते हैं। यह एक कठिन प्रश्न है कि ऐसे विशाल स्तम्भ किस प्रकार सुदूर प्रदेशों में पहुँचाए गए, जहां उन पर लेख खोदे गए थे। साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि नदियों के सहारे बेड़े पर रख कर स्तम्भ को यत्र तत्र पहुँचाया गया होगा। चुनार गंगा नदी के किनारे है तथा गंगा नदी के अन्य कई सहायक नदियां भी इसके लिए उपयुक्त थीं। गंगा से यमुना नदी द्वारा स्तम्भ ले जाकर कौशाम्बी में स्थापित किया गया। सांची का स्तम्भ, गंगा से यमुना तथा उसकी सहायक नदी चम्बल और चम्बल की सहायक वेस नदी में बेडे के सहारे मालवा प्रदेश पहुँच सका। वेसनगर का हेलियो-डोरस का स्तम्भ भी उसी ढंग से वहां पहुँचाया गया होगा। लुम्बिनी का स्तम्भ गंगा, घाघरा तथा राप्ती नदियों से होकर रूम्मनदेई में स्थित हुआ। चम्पारन के स्तम्भ गंगा तथा गंडक नदी की सहायता से उत्तरी बिहार ले जाकर खड़े किये गये। दिल्ली-टोपरा तथा दिल्ली-मेरठ के स्तम्भ तो यमुना की घाटी में स्थापित किए गए थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वक्र गति से भी भौगोलिक परिस्थितियों का परिज्ञान किया जा सकता है।

अभिलेखों में वर्णित नगर

राजधानी अथवा शासक का जिस स्थान से सीधा सम्बन्ध था उनका उल्लेख भी लेखों में स्वभावतः पाया जाता है। कलिंग विजय केपश्चात् अशोक की मनोवृत्ति का परिवर्तन हो गया, इसलिए उसने कलिंगदेश के अतिरिक्त अन्ल लेखों द्वारा विभिन्न प्रांतों में धर्माज्ञा प्रसारित की "सवे मुनि से पजा ममा। अथा पजाये इच्छामि इकं किति सवेन हित सुखेन ..... इच्छामि इकं। अतएव तोसली, उज्जयिनी तथा तक्षशिला कुमार को संदेशा भेजा गया। तोसली को वर्तमान धौली (भुवनेश्वर के समीप, उड़ीसा) से समीकरण किया जाता है। वह देखने से युद्ध क्षेत्र के समान प्रकट होता है। धौली में अशोक का पृथक शिलालेख चट्टान पर खुदा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है । उज्जयिनी तथा तक्षशिला के कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । कुछ व्यक्ति बुद्ध का जन्म स्थान कपिलवस्तु समझ लेते हैं क्योंकि वह स्थान शाक्य वंश की राजधानी रहा । लेकिन अशोक के रूम्मनदेई (नेपाल तराई) स्तम्भ लेख में स्पष्ट लिखा है—

हिद बुधे जाते सक्य मुनीति

× × ×

हिद भगवं जाते ति लुम्बिनि गामे ।

अतएव इसके आधार पर सभी संदेह मिट जाता है । मौर्य सम्राट् अशोक के आठव शिलालेख में निम्न वाक्य मिलता है—संबोधि तेनेसा धर्म-यात्रा । सम्भवतः अशोक ने बुद्धधर्म में प्रवेश कर धर्मयात्रा आरम्भ की और पहले जन्मस्थान लुम्बिनी पहुँचा तत्पश्चात् ज्ञान प्राप्ति के स्थान बोध गया भी गया । "संबोधि धर्ममाता" से बोध गया के तीर्थयात्रा का अर्थ समझना चाहिए । अन्य स्थानों के सम्बन्ध में कोई सीधा प्रमाण नहीं मिलता । परन्तु सारनाथ का स्तम्भ लेख तथा धर्म-राजिका स्तम्भ का निर्माण अशोक के सारनाथ तीर्थ यात्रा को प्रमाणित करते हैं । सारनाथ स्तम्भ लेख में संघ भेद के प्रसंग में पाटलिपुत्र नगर का नाम भी उल्लिखित है ।

मौर्यों के उत्तराधिकारी पुष्यमित्र को अयोध्या लेख में 'कोसलाधिप' कहा गया है । यानी वह उत्तर–कोशल का शासक था जिसकी राजधानी अयोध्या थी । दक्षिण कोशल को महाकोशल कहते थे जिसकी राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर, मध्यप्रदेश) थी । दक्षिण भारत के शासक सात वाहन नरेशों के जो लेख प्रकाशित हुए है उनमें गोवधनस (= नासिक) जयस्कन्धावार के रूप में उल्लिखित है । गोतमी पुत्र शातकर्णी के विजय प्रसंग में प्रदेश तथा नदियों के नाम आते हैं (आगे देखिए) शातकर्णी के समकालीन खारवेल के हाथी गुहा-लेख में कलिंगनगर का नाम आया है (जिस स्थान की मरम्मत खारवेल ने पांचवे वर्ष में की थी) इस कलिंग नगर के समीकरण में मत भेद है । अभी भुवनेश्वर के समीप शिशुपालगढ़ की खुदाई हुई है । विद्वानों का मत है कि यही स्थान कलिंग नगर माना जा सकता है । वेस नगर के स्तम्भ लेख में हेलियोडोरस तक्षशिला का यवन दूत (तख्ख सिलाकेन योन दूतेन) कहा गया है । इससे पता चलता है कि तक्षशिला प्राचीन समय में प्रमुख स्थान समझा जाता था । अशोक के समय से ही शासन का प्रधान केन्द्र था । यूनानी राजा अंतिलिकित वहां शासन करता था जिसका दूत हेलियोडोरस था ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहली सदी में कुषाण नरेश ने उसी के समीप पेशावर को अपनी राजधानी बनाया। कनिष्क का राज्य काशी तक विस्तृत था। यही कारण था कि उसके सारनाथ बुद्ध प्रतिभा लेख में बनारस का प्राचीन नाम बाराणसी का उल्लेख आता है [वोधिसत्वो छत्रयष्टि प्रतिष्ठापितो बाराणसिये] हुविष्क के बुद्ध प्रतिभा लेख में मथुरा के लिए "मधुर वणके" शब्द का प्रयोग मिलता है। पटिक के ताम्रमंत्र में "तरवसिलयेनगरे" का उल्लेख आता है। शक क्षत्रप नहपान के नासिक लेख में प्रभास (काठियावाड़) भरुकच्छ (भरौंच) दशपुर (मालवा) गोवर्धन (नासिक) तथा शोर्पारग (सोपारा) का नाम उल्लिखित है क्योंकि इन स्थानों पर ऋषभदत्त ने आराम गृह का निर्माण किया था। अभिषेक के निमित्त वह पुष्कर तीर्थ गया, जिसका "पोक्षानि" की संज्ञा से नासिक गुहालेख में उल्लेख है। कार्लेलेख में भी इसी स्थान पर दान देने का वर्णन किया गया है [पभासे पूततिथे ब्रह्मणाण अठ भाया पदेन]। अनुवासं पितु सत सहसं भोजप यति] रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में तो अनेक प्रांतों के नाम मिलते हैं। आकरावन्ती (मालवा) सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) कच्छ आनर्त (उत्तरी काठियावाड़) आदि का विवरण आता है।

अशोक तथा गुप्त सम्राटों के अभिलेखों से दक्षिण भारत के राज्य तथा नगरों के नाम ज्ञात हो जाते हैं। अशोक के द्वितीय शिलालेख में "चोड़ा पाड़ा सतिय पुतो केतल पुतो तंवपंणी" का उल्लेख मिलता है जिससे सुदूर दक्षिण के प्रांत तथा लंका की स्थिति का परिज्ञान होता है। तेरहवें शिलालेख में कलिंग (उड़ीसा) प्रांत के विजय का वर्णन है। उसी लेख में आंध्र प्रदेश का भी नाम आता है।

गुप्त-काल में सम्राट के दिग्विजय के प्रसंग में अनेक प्रदेशों के नाम दिए गए हैं। समुद्र गुप्त तथा द्वितीय चन्द्रगुप्त ने कई शासकों को परास्त किया समुद्र गुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में कौसल (दक्षिण कोसल) पीठापुर, कांची आदि स्थानों के नाम दक्षिण भारत के दिग्विजय के प्रसंग में आए हैं। समतट डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्त्तपुर का उल्लेख भी सीमा पर स्थित प्रदेशों के रूप में मिलता है। अशोक के तंबपंणी (लंका) को प्रयाग प्रशस्ति में सैहल (लंका) के नाम से उल्लेख है। दक्षिण भारत के प्रदेश की राजधानी का उल्लेख नहीं पाया जाता। द्वितीय चन्द्रगुप्त के विजित स्थानों में काक्रनाड़ का नाम मिलता है जो सांची का प्राचीन नाम था। उदयगिर के लेख में वीरसेन ने अपना परिचय देते समय अपने को चन्द्रगुप्त का मंत्री तथा पाटलिपुत्र का निवासी बतलाया है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कौत्सश्शाव इति ख्यातो वीरसेन कुलाख्यया
शब्दार्थ न्याय लोकज्ञ कवि पाटलिपुत्रकः ।

कुमार गुप्त प्रथम के मन्दसोर लेख में दो प्रधान व्यापारिक नगर का नाम दिया गया है। व्यापारिक संघ (श्रेणी) ने लाट (दक्षिण काठियावाड़) से आकर दशपुर (मालवा) को अपना केन्द्र बनाया और कार्य निपुणता तथा दक्षता के कारण लोगों में विश्वास पैदा कर लिया था। वर्णन सुनिये—

लाट विषयान्नगावृत शैलाज्जगति प्रथित शिल्पाः
× × ×
जातादरा दशपुरं प्रथमं मनोभि
रन्वागतास्ससुतः बन्धु-जनास्समेत्यः ।

इस स्थान की प्रधानता के कारण ही बन्धु वर्मा को शासन का कार्य सोंपा गया था—

तस्मिन्नेव क्षितिपति व्रिषे बंधुवर्मण्युदारे
सम्यक्र स्फीतं दशपुरमिंद पालयत्यन्नतांसे ।।

कुमार गुप्त के पुत्र स्कन्द गुप्त के शासन काल में भी व्यापारिक श्रेणिया कार्य करती रहीं। इन्दोर के ताम्र पत्र में 'इन्द्रपुर निवासी श्रेणी' का वर्णन है जिसने सूर्य मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। (इन्द्रपुर-निवासीन्यास्तैलिक-श्रेण्या) इस स्थान को वर्तमान इन्दौर ही माना गया है जहां ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। इस ताम्रपत्र में उस धार्मिक कार्य के सम्बन्ध में इन्द्रपुर निवासी श्रेणी का उल्लेख आवश्यक था। गुप्त नरेशो के दामोदरपुर ताम्रमत्रों में पुण्ड्रवर्धन (भुक्ति) तथा कोटिवर्ष (विषय) का नाम आया है। दोनों स्थान उत्तर बंगाल के राजशाही जिले में स्थित थे।

गुप्त राजाओं के समकालीन नरेशों के लेखों में कई नगरों के नाम मिले हैं। सुसानियां शिलालेख में चन्द्रवर्मन पुष्कर (अजमेर, राजपुताना) का राजा कहा गया है। वेग्राम के ताम्रमंत्र में शासक को पंचनगरी (वर्तमान पंछिवी, बोगरा) का स्वामी बतलाया गया है। हर्षवर्धन के बांस खेरा ताम्रपत्र में अहिछत्र भुक्ति का नाम आया है जिसका समीकरण वर्तमान रामनगर (बरेली, उत्तर प्रदेश) से किया जाता है। खुदाई में वहां से सिक्के, प्रतिमाएं तथा मुहरें मिली हैं। मध्य युग में तीर्थों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हो गया था। जहां मौर्ययुग में कौशाम्वी की (कोसंविय) प्रसिद्ध थी आठवीं सदी से प्रयाग का महत्व हो गया। अपसद लेख में तीसरे कुमार गुप्त के सम्बन्ध में प्रयाग आकर अग्नि में जल कर बलिदान का विवरण दिया गया है (शौर्य सत्यव्रतधरो यः प्रयाग गतो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धने) इसी तरह का वर्णन गांगेयदेव चेदि के लिए कलचुरी प्रशस्ति में पाया जाता है। उस स्थान पर विवरण आता है कि चेदि राजा सौ पटरानियों के साथ प्रयाग आकर गंगा में डूब कर स्वर्ग प्राप्त किया था।

प्राप्ते प्रयाग वट मूल निवेश वन्धौ,
सार्धं शतेन गृहणीभिरमुत्र मुक्तिम्
(एः इ. भा० २ पृ. ४)

चन्देल राजा चन्द्र वर्मन के सम्बंध में कहा गया है कि वह काशी, कुशिक (कन्नौज) उत्तर कोशल (अयोध्या) तथा इन्द्रप्रस्थ का रक्षक था। इस स्थान पर उपरियुक्त चारों स्थानों का नामोल्लेख है। दान के प्रसंगवश गहड़वाल दानपत्रों में काशी में स्नान कर दान देने का उल्लेख मिलता है [श्रीमद् वाराणस्याँ गंगायास्नात्वा—ए. इ. २६ पृ. ७२, भा. ८ पृ. १५४) इस से प्रकट होता है कि मध्य युग में प्रयाग, वाराणसी तथा अयोध्या तीर्थों में लोग यात्रा करते थे। पाल प्रशास्तियों में विशिष्ट स्थानों के नाम प्रचुर मात्रा में मिलता है। पाल नरेश धर्मपाल के खालीमपुर, देवपाल के नालंदा तथा नारायण पाल के भागलपुर ताम्रमत्रों में कई नाम आते हैं। धर्मपाल ने महोदय (कन्नौज) को जीतकर चक्रमालित को सिंहासन पर बैठाया था। अपने शासन के अंत में केदार तथा गंगानागर की तीर्थ यात्रा की थी। देवपाल ने नालंदा में निर्मित बिहार को पांच ग्राम दान में दिया था तथा नारायण पाल ने मुंगेर से (मुदगिरि जयस्कन्धावारात्) आज्ञापत्र प्रसारित किया था। इस तरह प्रसंग वश पालराज्य सीमा में स्थित नगरों के नाम उल्लिखित किया गया था।

अयहोल लेख में चालुक्य राजा पुलकेशी प्रथम अपने राजधानी (वातापीपुरी) का स्वामी कहा गया है।

तस्या भवत्तनूजः पोलकेशीयः श्रितेन्दु कान्तिरपि
श्री वल्लभोप्ययासीद्वातापिपुरी वधूवरताम्।

उसी लेख में पुलकेशी द्वितीय के विजय यात्रा के सिलसिले में पल्लव राजधानी कांचीपुर के विजय का वर्णन किया गया हैं।

आक्रान्तात्मवलोन्नतिं बलरजः सञ्छन्न काञ्चीपुर
प्राकारान्तरित प्रतापमकरोद्यः पल्लवाना पतिम्।

पश्चिम भारत के मैत्रिक नरेश द्रोण सिंह के लेख के प्रारम्भ में बलभी राजधानी का उल्लेख है (बलभीतः परमभट्टारक पादानुध्योतो महाराज द्रोणसिंह) जिसके आधार मैत्रक राजा बलभी नरेश कहे जाते हैं। यह गुजरात में शिक्षा का मुख्य केन्द्र भी था। मध्ययुग के चन्देल राजाओं के लेख में कान्यकुब्जाधिपति या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालिञ्जराधिपति शब्द प्रयुक्त मिलते हैं। उसका साधारण अर्थ यही था कि कान्यकुब्ज तथा कालिंजर नगरों पर उनका अधिकार था। दिल्ली के स्तम्भ लेख में विग्रहराज (सं० १२२०) के विन्ध्या से हिमालय तक तीर्थयात्रा की बात लिखी है। (आविन्ध्या दाहिमाद्रेर्व्विरचित विजयस्तीर्थयात्रा) इस आधार पर कहा जा सकता है कि तीर्थ नगरों का ज्ञान लोगों को था। उसे शाकम्भरी का राजा कहा गया है। यानी तोमर नरेश दिल्ली से अजमेर तक शासन करते रहे।

यह कहा गया है कि कुछ लेखों में शासकों के विजय का वर्णन मिलता है जिनके आधार पर प्राचीन भारत के विभिन्न प्रदेश तथा मार्ग की समुचित जानकारी हो जाती है। लेखों में वर्णित विजय-यात्रा से यह अनुमान लगाना सही न होगा कि सारे विजित प्रदेश राज्य में सम्मिलित कर लिए गए हों। अशोक के १३वें शिलालेख में कलिङ्ग विजय का वर्णन मिलता है और उसी के साथ सीमा पर स्थिति विभिन्न भारतीय यूनानी राज्यों के नाम उल्लिखित हैं उस सूची में चोड पाण्या, सतियपुतो केतलपुतो, तंमपंणी (द्वितीय प्रधान शिलालेख) योन कम्वोज-गधरन रठिकपितिनिक (पांचवा शिलालेख) तथा अंतियोको, तुरमय अंतिकिनि, मक, अलिक सुन्दरो यूनानी नरेशों के नाम (तेरहवें शिलालेख) चोडापेडा के अतिरिक्त मिलते हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये राजा मौर्य साम्राज्य की सीमा पर स्थित थे जिनके लिए "इह च सर्वेषु च अंतेषु" प्र ोग किया गया है। दूसरे लेख में दक्षिण के चोल पाँडया, केरल तथा सिंहल सीमा पर स्थित बतलाए गए हैं तथा पाँचवे शिलालेख में वर्णित राजा उत्तर पश्चिम भाग में स्थित थे। यूनानी राजा अंकियोक पश्चिमी एशिया में शासन करता था। मग उत्तरी अफ्रीका में, तुरमय मिश्र में, अंतिकिनि तथा अलिक सुन्दर एसिया माइनर के समीप शासन करते थे। इससे स्पष्ट होजाता है कि अशोक का राज्य सुदूर दक्षिण से (कुछ भाग छोड़कर) सारे भारतवर्ष में तथा अफगानिस्तान के भू भाग पर फैला था। यद्यपि इसके लिए लेखों में प्रबल प्रमाण नहीं मिलता कि कितना भाग उसके पितामह ने विजित किया था किन्तु अशोक कलिंग के अतिरिक्त कुछ भी जीत न सका। उसकी पैत्तिक राज्य की सीमा पर्याप्त थी जिसका अनुमान सीमा पर स्थित शासकों की सूची से होता है।

अभिलेखों में सीमा वर्णन

दक्षिण भारत के शासकों को अभिलेख यह बतलाते हैं कि सातवाहन तथा क्षत्रप नरेशों में कई सदियों तक युद्ध होता रहा। एक के बाद दूसरे वंश की प्रधानता प्रकट होती है। सांची के दक्षिणी तोरण पर जो लेख खुदा है वह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शातकर्णी के शासन काल का है। नानाघाट के सातवाहन लेख में नायनिका ने अपने पति शातकर्णी द्वारा वैदिक यज्ञ सम्पादन करने का वर्णन किया है। अतएव यह ज्ञात होता है कि शातकर्णी (ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी) के शासन में सातवाहन राज्य मालवा से महाराष्ट्र यानी (पूना के समीप) तक विस्तृत था कई सदियों तक सातवाहनवंश का कोई लेख मिला नहीं है। द्वितीय शताब्दी में क्षत्रप राजा नहपान का प्रमुत्व होगया जो नासिक व जूनार लेखों से प्रकट होता है। नासिक लेख में गोवर्धन (नासिक-महाराष्ट्र) प्रभास (काठियावाड़) भरुकच्छ (भरौच) दशपुर (मालवा) तथा पोक्षरानि (पुष्कर-अजमेर) के नाम मिलते हैं जिन पर नहपान का अधिकार था। पूना के समीप कार्ले तथा जूनार गुहा लेख भी उसका अधिकार सिद्ध करते हैं। इसलिए यह विदित होता है कि सातवाहन को हरा कर क्षत्रप नरेश ने अपना राज्य अजमेर मालवा (राजपुताना) से लेकर महाराष्ट्र तक विस्तृत किया था। यह घटना प्रायः सन् १२४ के समीप की है। कुछ ही दिनों के पश्चात् सातवाहन के प्रतापी नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी ने नहपान को परास्त किया। उसके उत्तराधिकारी पुलमावी के नासिक लेख (१९ वें वर्ष) में उस शातकर्णी का यश वर्णित है। उसके द्वारा विजित प्रदेशों का नाम भी उल्लिखित हैं। "खखरात-वस निरवसेस-करस" (खहरात नहपान के वंश का नाश करने वाला) की बात शातकर्णी के सम्बन्ध में कही गई है। इसके अतिरिक्त असिक असक मुलक सुरठ कुकुर अपरान्त, अनूप विदर्भ आकरावंति का स्वामी कहा गया है। यानी इस सातवाहन नरेश ने नहपान के प्रदेशों को (राजपुताना, सौराष्ठ, वरार, मालवा आदि) जीतकर सातवाहन राज्य में मिला लिया था। उसका उत्तराधिकारी वासिष्ठी पुत्र पुलमावी करीब बीस वर्षों तक (१३० ई०-१५० ई०) राज्य कर चुका था कि वह फिर क्षत्रपों द्वारा परास्त किया गया। क्षत्रप वंश का शक्तिशाली नरेश रुद्रदामन ने उसे दो बार हराया (दक्षिणापथ पतेस्सातकर्णी द्विरपि नीर्व्याजमवजीत्यावजीत्य संबंध विदूरतया) जूनागढ़ के लेख (१५० ई०) में पुनः उन्हीं प्रदेशों के नाम उल्लिखित हैं जो सातवाहन के राज्य में सम्मिलित थे। नाम-सूची निम्नप्रकार है—पूर्वापराकरावन्ति, अनूप, आनर्त, सुराष्ट्र श्वभ्र, भरुकच्छ, सिन्धु, सोवीर कुकुर अपरान्त आदि। दोनों सूची के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि क्षत्रप वंश की प्रतिष्ठा रुद्रदामन ने अतिरिक्त पुनः स्थापित की तथा सातवाहनों को पददलित किया। नासिक गुहा-लेख तथा जूनागढ़ लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रमाण नहीं जिस आधार पर पारस्परिक-युद्ध गाथा कही जा सके। केवल लेख ही एक मात्र सहारा है। इसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चात् सातवाहन वंश के अन्य लेखों में इस प्रकार का सीधा उल्लेख नहीं मिलता जिससे दोनों वंश के युद्ध की वार्ता प्रमाणित हो सके। यज्ञश्री शातकर्णी के कई लेख नासिक, कार्ले और कनहेरी गुहा में उत्कीर्ण हैं जिसका अर्थ यह समझा जाता है कि ई० सं० १७५-२०० तक सातवाहन राजा यज्ञश्री का अधिकार महाराष्ट्र (नासिक), कार्ले (पूना) तथा कनहेरी (बम्बई) के भूभाग पर अवश्य था। राजपुताना, मालवा तथा सौराष्ट्र पर वह अधिकार न कर सका। इस तरह वह उस पुराने युद्ध का बदला लेकर क्षत्रप को दक्षिण के पठार में परास्त किया। क्षत्रप सिक्कों के अनुकरण पर चांदी के सिक्के भी प्रचलित किए जो क्षत्रप के पराजय का द्योतक है। संक्षेप में यह कहना नितान्त आवश्यक है कि क्षत्रप तथा सातवाहन लेखों के आधार पर ही ईसवी सन् की पहली तथा दूसरी सदी तक दोनों वंशों की प्रतिस्पर्द्धा, विजय व पतन तथा राज्य विस्तार की जानकारी की जाती है। दक्षिण पश्चिम भारत में शक्ति तथा प्रभत्व की उन्नति और पराजय का परिज्ञान अभिलेख ही कराते हैं। अन्यथा सातवाहन-क्षत्रप का इतिहास प्रकाश में न आता।

ईसवी सन् के आरम्भ से पश्चिमोत्तर प्रांत में शासन प्रारम्भ कर कनिष्क ने काशी तक के प्रदेश को जीत लिया। उसका कुर्रम का ताम्रपत्र पेशावर से, मानिक्याला लेख रावलपिंडी से, स्यूविहार ताम्रपत्र बहावलपुर रियासत से, सहेत महेत बुद्ध प्रतिमा लेख बहराइच जिला (उत्तर प्रदेश) से तथा सारनाथ प्रतिमा लेख (जिसमें वाराणसी का उल्लेख है) काशी से मिले हैं जिसके आधार पर कनिष्क की राज्यसीमा पेशावर से वाराणसी तक विस्तृत निश्चित हो जाती है। लेख के प्राप्तिस्थान भी भौगोलिक सीमा पर प्रकाश डालते हैं।

कलिङ्ग के राजा खारबेल का हाथी गुहालेख से शासक के विजय का पता चलता है। उस लेख में क्रमवद्ध प्रत्येक वर्ष का लेखा उपस्थित किया गया है। खारबेल अपने को कलिङ्ग का राजा (कलिंग-राज-वसे-पुरिस युगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति) कहता है जिसने दूसरे वर्ष में सातकर्णी (सातवाहन राजा) को हराया। आठवें वर्ष राजगिरि (पटना जिला) पर आक्रमण किया। बारहवें वर्ष में उत्तरापथ के मगध नरेश को परास्त किया। उसमें वर्णन है कि अंग मगध के वैभव को लूट लिया। अंग तथा मगध (विहार प्रदेश) का नाम प्रसिद्ध है। अंग भागलपुर के समीप भूभाग तथा मगध पटना तथा गया जिला के लिए प्रयुक्त किया गया है। उसने दक्षिण के पांडय नरेश को भी विजित किया। इस लेख में कृष्णा नदी (कन्हवेण) तथा गोरधगिरि (बराबर की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहाड़ियां गया, विहार) के नाम आते हैं। इस प्रकार हाथी गुम्फा अभिलेख द्वारा, नदी, पहाड़, नगरों तथा विभिन्न प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति के विषय में हमारी जानकारी होती है। अपने को वह बार बार कलिङ्ग का राजा कहता है। इससे पता चलता है कि राज्य का नाम कलिङ्ग (कलिंग राजावसे) तथा राजधानी भी कलिंग कही (कलिंग नगर) जाती थी। खारबेल की रानी के कुछ लेख उसी स्थान पर मिले हैं जिसमें उसने अपने पति को कलिंग चक्रवर्ती खारबेल-नाम से उल्लेख किया है। उसी मंचपुरी गुहा के दूसरे अभिलेख में खारबेल कलिंगाधिपति कहा गया है। इसलिए यह कहना सर्वथा उचित होगा कि कलिंग राज्य भुवनेश्वर के समीप (उड़ीसा प्रांत) विस्तृत था जिसे आज उड़ीसा का नाम दिया गया है।

इसके समकालीन मगध का राजा पुष्य मित्र था जिसके उत्तराधिकारी धनदेव को अयोध्या की प्रशस्ति में कोसल का राजा कहा गया है। वही प्रदेश गहड़वाल लेख में उत्तर कोसल के नाम से उल्लिखित है (ए. इ. भा. २६ पृ० ६२)। अतएव इस आधार पर अयोध्या का भाग उत्तर कोसल माना गया है और दक्षिण कोसल को प्रयागस्तम्भ लेख में महा कोसल कहा गया है। लेखों के प्रमाण पर इस ंग की विभिन्न बातें प्रकट होती हैं।

गुप्त वंश के अभिलेख भी साम्राज्य की भौगोलिक सीमा स्थिर करने में सहायता करते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त तथा दक्षिणापथ उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के लिए क्रमशः प्रयुक्त किये गये हैं। उस लेख के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत में उसका राज्य मथुरा तक विस्तृत था। दक्षिण के शासकों की राजधानी भी राजा के व्यक्तिगत नामों के साथ उल्लिखित है। पहला नाम कोसल का है जो दक्षिणापथ की ओर अग्रसर होने पर समुद्रगुप्त द्वारा सर्व प्रथम पराजित किया गया। अतः इसकी स्थिति मध्य प्रदेश में मानते हैं। वह अनेक शासकों को परास्त करता कांची (जिला चिंगलेपुट, मद्रास) तक पहुँच गया। उस लेख में दक्षिण भारत के नगरों के नाम मिलते हैं। कामरूप (आसाम) तथा नेपाल भी देशों में उल्लिखित है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त लेख में उत्तर तथा दक्षिण भारत के नगरों और प्रदेशों के नाम मिलते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मेहरौली लौहस्तम्भ लेख में पंजाब के जीतने की चर्चा की गई है—

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लीका।

साहित्य ग्रन्थों में भी पंजाब का भाग सप्तसिन्धु के नाम से विख्यात है। महा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारत के आधार पर वाह्लीक (वाहलीक) को पूर्वी पंजाब मानते हैं। इस प्रकार सिन्धु घाटी के सात नदियों (झेलम, चनाव, रावी, व्यास, सतलज व काबुल) को सप्त मुखानि सिन्ध कहा गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् गुप्त राज्य की सीमा बढ़ न सकी। मेहरौली लौहस्तम्भ, सांची वेदिका तथा उदयगिरि गुहा पर खुदे लेख विक्रमादित्य की कीर्ति आज भी गा रहे हैं। उसके पौत्र स्कन्दगुप्त के अभिलेखों में कई प्रदेश तथा क्षेत्र के नाम आते हैं। स्कन्दगुप्त को हूणों का सामना करना पड़ा अतएव वह राज्य के-शासन को सुदृढ़ करने में लग गया। **जूनागढ़** (काठियावाड़) के शिला लेख में **सुराष्ट्र** के रक्षण की बात कही गई है (सम्यक् सुराष्ट्रावनि-पालनाय)। उसके इन्दौर (बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) ताम्रपत्र में गंगा यमुना के मध्य भाग (प्रयाग से हरिद्वार तक) को अन्तर्वेद के नाम से पुकारते थे। तत्पश्चात् बुधगुप्त के लेखों के आधार पर भी राज्य सीमा का परिज्ञान होता है। बुधगुप्त के शासन-काल में कालिन्दी (यमुना) तथा नर्वदा नदियों के मध्य भाग पर सुरश्मिचन्द्र शासन करता था (एरण का शिलालेख)। इस शासक के लेख ही मध्य प्रान्त से लेकर उत्तरी बंगाल तक राज्य सीमा का विस्तार बतलाते हैं [एरण (मध्यप्रदेश), सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तथा दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) का लेख]। एरण के स्थान से हूण राजा तोरमाण का लेख यह व्यक्त करता है कि बुधगुप्त के पश्चात् मध्य भारत पर हूण अधिकार स्थापित हो गया था। उस लेख में महाराजाधिराज श्री तोरमाणे प्रशासति" उत्कीर्ण है और इसी हूण नरेश के कुरा (साल्ट रैंज, पंजाब) लेख में राजाधिराज महाराज तोरमाण लिखा है। यह दोनों लेख पंजाब से मध्यभारत तक तोरमाण के राज्य-विस्तार की कथा सुनाते हैं।

मध्ययुग के पालवंशी अभिलेखों से भौगोलिक बातों की अधिक जानकारी होती है। धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र में उत्तर प्रदेश के पांचाल तथा कान्यकुब्ज मत्स्य, अवन्ति (मालवा) तथा गान्धार पश्चिमोत्तर प्रदेश के नाम मिलते हैं। नारायण पाल के भागलपुर दानपत्र में कान्यकुब्ज के लिए महोदय शब्द का प्रयोग मिलता जिस पर पाल नरेश ने अधिकार कर लिया। नालंदा ताम्रपत्र में वर्णन आता है कि देवपाल ने श्री नगर भुक्ति में ग्राम दान किया था। (जिसे वर्तमान पटना कमिश्नरी से समता कर सकते हैं।) सेन वंश के लेखों से यह पता चलता है कि सामन्तसेन करनाट (दक्षिण भारत) के क्षत्रिय कुल का वंशज था। वल्लालसेन का मधाई नगर ताम्रपत्र यही बतलाता है। देवपारा प्रशस्ति में कामरूप तथा कलिंग प्रदेश के नाम (श्लोक २०, २१) उल्लिखित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है जिनके शासक को विजयसेन ने परास्त किया था। इस प्रकार पाल तथा सेन लेख तत्कालीन भौगोलिक स्थान व प्रदेशों का परिज्ञान कराते हैं।

दक्षिण भारत के लेखों में भी उत्तर भारत की भौगोलिक बातों का वर्णन मिलता है क्योंकि दक्षिण से शासकों ने उत्त ी भारत पर आक्रमण किया था। राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव के भोर संग्रहालय के ताम्रपत्र से तथा संजन ताम्रपत्र से उसकी जानकारी होती है। ध्रुव के द्वाव में आने की सूचना निम्न पंक्ति से मिलती है--

गंगा यमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौड़स्य नश्यत्,
लक्ष्मी लीलार विन्दानि स्वेत छत्राणि योहरत्।

इसी कार गुर्जर प्रतिहार के ग्वालियर प्रशस्ति में युद्ध के प्रसंग में विभिन्न प्रदेश के नाम मिलते हैं। नागभट्ट के लिए एक पंक्ति मिलती है जिसमें आंध्र, सिन्ध, विदर्भ तथा कलिंग के नाम हैं

यत्रान्ध्रसैन्धव विदर्भ कलिंग भूपैः।
कौमार धामानि पतंग समेर पाति।।

वत्सराज के आक्रमण के वर्णन में आनर्त (बम्बई) मालवा, तुरुष्क (मुसलमान) वत्स तथा मत्स्य (भरतपुर अलवर आदि) आदि प्रदेशों के नाम आते हैं। चालुक्य लेख (अयहोल जैन मंदिर प्रशस्ति) में तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का विशद् वर्णन है। मंगलेश नामक राजा ने भारत से बाहर लंक द्वीप (रत्नागिरि के सामने) पर अधिकार कर लिया था। पुलकेशी द्वितीय से संबंधित वर्णन लम्बा है। महाराष्ट्र कोसल (दक्षिण कोसल) तथा कलिंग शासकों को परास्त कर (यदनीकेन सकोसलाः कलिंगाः) दक्षिण-पूरब में कांची तथा कावेरी के किनारे तक आक्रमण किया था। इस तरह अयहोल के लेख से दक्षिण भारत के विभिन्न प्रांतों की स्थिति तथा नामकरण का पता लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अभिलेखों के आधार पर भौगोलिक ज्ञान अधिक साकार हो जाता है। वह साहित्यिक वर्णन को सबल बनाता है, पुष्ट करता है तथा एकीकरण निश्चित कर देता है।

भारतीय साहित्य में प्राचीन मार्ग सम्वन्धी विवरण भरे पड़े हैं, परन्तु उस तरह का वर्णन अभिलेखों में नहीं मिलता। लेखों में वर्णित राजाओं के यात्रा विवरण से प्राचीन भारत के विभिन्न मार्गों का चित्र सामने

विभिन्न मार्ग

आ जाता है। साधारण रूप से उन रास्तों की भौगालिक स्थिति भी ज्ञात हो जाती है। इसके अतिरिक्त लेखों में हाट तथा शुल्क (चुंगी) का वर्णन मिलता है। विभिन्न हाट में नाना प्रकार के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यातायात के उपकरण थे। माल ले जाने के विभिन्न साधनों के कारण चुंगी का दर एक सा नहीं था। इससे भी सुन्दर वर्णन व्यापारिक संस्थाओं (श्रेणी) के चौधरी श्रेणी तथा व्यवसायिक वर्ग के अगुआ सार्थवाह का उल्लेख कई अभिलेखों में मिलता है। तात्पर्य यह है कि यातायात तथा व्यापार सम्बन्धी लेखों से तत्कालीन भूगोल का परिज्ञान होता है। इस प्रकार अभिलेख प्राचीन भारत के भौगोलिक विवरण उपस्थित करते हैं।

विभिन्न लेखों में उत्तरी भारत के लिए उत्तरापथ या आर्यावर्त का नाम मिलता है। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में आर्यावर्त शब्द सर्व प्रथम प्रयुक्त हुआ है। ईसवी पूर्व से मध्यकाल तक उत्तरापथ का अधिक प्रयोग लेखों में किया गया है। दक्षिण भारत को दक्षिणापथ की संज्ञा सर्वत्र मिलती है। नानाघाट लेख में शातकर्णी तथा रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में पुलभावि दक्षिणापथ-पति कहे गये हैं। प्रयाग स्तम्भ लेख में वर्णित महेन्द्र (कोसल का राजा) से लेकर धनञ्जय तक सभी दक्षिणापथ के शासक थे। (प्रभृति दक्षिणापथ राज-ग्रहण आदि)। इस प्रकार दो नामों से उत्तर तथा दक्षिण भारत के विशाल भूभाग को व्यक्त किया गया है।

अभिलेखों में अधिकतर युद्ध गाथा तथा शासन के प्रसंग में विभिन्न श्रेणी के लोगों का वर्णन मिलता है। यों तो बौद्ध साहित्य और जैन अंगों से भौगोलिक विषयों का ज्ञान हो जाता है। बुद्ध के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए प्रशस्त मार्ग का अनुमान किया जा सकता है। ऊरुवेला से श्रावस्ती का मार्ग सारनाथ तथा साकेत होकर जाता था जिस मार्ग से होकर अनाथ पीडिंक राजगृह आया और भगवान बुद्ध को निमंत्रित किया था। स्यात् बुद्ध उसी मार्ग से होकर श्रावस्ती गए जिस मार्ग में स्थान-स्थान पर आराम भी वर्तमान थे। विहार प्रान्त का सहसराम नामक स्थान पर हजार आराम (विहार) की कल्पना की जाती है जिससे सहस्र आराम यानी सहसराम नाम पड़ा। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने लिखा है कि मार्ग पर प्रस्तर गाड़ कर उसकी दूरी व्यक्त की जाती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि अशोक से पूर्व भारत में अच्छे मार्ग थे। अशोक स्वयं उज्जयिनी तथा तक्षशिला का राज्यपाल था जिन स्थानों पर पहुंचने के लिए सुगम मार्ग होंगे। अशोक के द्वितीय शिलालेख में वर्णन आता है कि उसने मार्गों पर कुंए खुदवाए तथा वृक्ष लगवाए (पंथेसू कूपाच खानापिता व्रछाच रोपापिता) सांची के लेख से यह पता लगता है कि भिक्षु कासमगोत ने बलख तक बौद्धधर्म का प्रचार किया था (मार्शल सांची पृ० २९१) इन विभिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐतिहासिक साधनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पाटलिपुत्र से तक्षशिला तक राजमार्ग था, जिसकी शाखा सारनाथ से कोशाम्वी तथा उज्जयिनी होकर भरौंच (बन्दरगाह) तक चली जाती थी। सोपारा का भी नाम ऋषभदत्त के नासिक लेख में मिलता है। उसी प्रसंग में यह कहना अत्यावश्यक है कि जो मार्ग नदी को पार कर जाते थे वहां पर घाट (ferry) बने थे और उस स्थान पर कर लगाया जाता था जैसा कर आज भी नदी घाट पर लिया जाता है। नासिक लेख में दूवा पारदा दमण तावी करवेणा दाहनुका आदि नदियों के नाम आए हैं जिनके घाट कर को ऋषभदत्त ने माफ कर दिया था (नावा पुण्यतरकरेण) तथा यात्रियों के ठहरने के लिए आरामगृह बनवाया था (एतासां च नदीनां उभतो तीरं सभा प्रपाकरेण)

आक्रमण मार्ग

यदि अभिलेखों में शासकों के आक्रमण-वृतांत का अध्ययन किया जाय तो यह पता चलता है कि सेना किसी न किसी सुगम मार्ग से दूसरे राज्य-सीमा तक पहुंचती थी। अशोक के तेरहवें शिलालेख में विवरण दिया गया है कि कलिंग में ढाई लाख व्यक्ति बन्दी बनाए गए और एक लाख युद्ध में मारे गए। इस कलिंग युद्ध में अशोक की कई लाख सेना भी युद्ध स्थल पर गयी होगी। अतः इतने बड़े विशाल सेना के जाने का मार्ग अवश्य प्रशस्त होगा (कलिंग विजित दिअढ़ मत्रे प्रण शत-सहस्रे ततो अपबुढे शत सहस्र-मत्रे तत्रहते वहु तवत के व मुटे) उड़ीसा के स्वतंत्र होने पर खारवेल ने मगध पर बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया। पश्चिम दिशा में सातवाहन नरेश शातकर्णी (वर्तमान आंध्रप्रदेश का राजा) को परास्त किया। सम्भवतः अशोक के मार्ग पर ही उसकी सेना आगे बढ़ी होगी। उस लेख में यूनानी राजा दिमित के भारत में प्रवेश करने का वर्णन है। गार्गी संहिता के आधार पर यवन आक्रमण की पुष्टि होती है। दिमित ने मौर्य कालीन राजमार्ग को ही आक्रमण का रास्ता चुना होगा जिस पर सुगमता से उसकी सेना पाटलिपुत्र तक पहुंची होगी। गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त का दिग्विजय प्रयागस्तम्भ लेख में वर्णित है। समुद्र गुप्त ने अपने दक्षिण के विजय-यात्रा में एक नवीन मार्ग का अवलम्बन किया जो आजकल प्रयाग से जबलपुर (मध्यप्रदेश) की ओर जाता है। इस विचार पर पहुंचने का कारण यह है कि दक्षिणापथ के पराजित राजाओं में कोसल का प्रथम नाम है जो वर्तमान महाकोसल (जबलपुर का भाग) माना गया है। इसे पार कर गोड़वाना जंगल (महाकान्तार) होते समुद्रगुप्त कलिंग देश में पहुंचा। दक्षिण-पूर्वी भाग के शासकों को परास्त करता (पैष्ठपुर, महेन्द्रगिरि आदि) वह कांची तक गया तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दक्षिण में अपनी विजय-दुन्दु भी बजाकर पाटलिपुत्र वापस चला आया। उसके पश्चात् चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिम भारत पर विजय किया। उसके उदयगिरी तथा सांची लेख इसे प्रमाणित करते हैं।

कृत्स्न पृथ्वी जयारर्थेन राज्ञैवेह सहागतः।

शक नरेश को परास्त कर उज्जयिनी को उसने दूसरी राजधानी बनाई थी। द्वितीय चन्द्र गुप्त के रजत मुद्राएं यह बतलाती हैं कि सर्व प्रथम चांदी के सिक्के पश्चिम भारत के विजय पश्चात् चलाए गए। गुप्त-युग के पश्चात् ईशान वर्मन तथा हर्ष वर्द्धन ने भी विजय-यात्रा की थी। पाल नरेश धर्मपाल गौड़ (उत्तरी बंगाल) से सेना लेकर कान्य कुब्ज (उत्तर प्रदेश) तक आया जिसे कन्नौज में गुर्जर प्रतिहार राजा वत्सराज तथा राष्ट्रकूट ध्रुव से सामना करना पड़ा था। ग्वालियर की प्रशस्ति तथा संजय ताम्रपत्र में तीनों शासकों के युद्ध की चर्चा मिलती है। यह तभी सम्भव था जब सुगमता पूर्वक सेनाएं गंगा यमुना द्वाब में पहुंची हों। बांसवाड़ा ताम्रपत्र में भी राजा भोज के कोकड़ विजय (कोकण विजय पर्वणि) का उल्लेख है। दक्षिण के चालुक्य पुलकेशी द्वितीय की विजय गाथा अयहोल प्रशस्ति में विस्तार पूर्वक वर्णित है। अतएव अभिलेखों के अध्ययन से विभिन्न भौगोलिक मार्ग का परिज्ञान हो जाता है। पूर्व के मार्गों के सहारे ही वर्तमान काल में रेलवे का मार्ग निश्चित किया जा सका है। पेशावर से बंगाल, दिल्ली से मथुरा, सांची होते बम्बई, पटना से प्रयाग, जबलपुर होकर बम्बई तथा कलकत्ता-मद्रास की रेल यात्रा पुराने मार्ग की याद दिलाती है।

जैसा कहा गया है कि पाटिलपुत्र से राजमार्ग कौशाम्बी मालवा होते भरौच जाता था। अशोक के शिलालेख सोपारा से प्राप्त हुए हैं जिससे प्रकट होता है कि बन्दरगाहों पर भी शासकों का ध्यान था। प्रयाग जबलपुर होकर मथुरा सांची होकर मार्ग (वर्तमान समय में रेलवे) मिल जाते हैं। बम्वई के समीप कल्याण से एक शाखा पूना की ओर जाती थी। कन्हेरी तथा जूनार के गुहा लेखों से कल्याण के व्यापारिक महत्व का पता चलता है [ल्यूडर्स लिस्ट नं. ९८६, ९८८, १००१ इत्यादि] नासिक गुहा लेख से भरुकच्छ तथा सोमारा (भरुकच्छे, शोर्पारगे) पर नहपान के अधिकार का वर्णन है। क्षत्रप वंशी शासक रुद्रदामन ने भी समुद्र के किनारे अपना अधिकार कायम रक्खा। आनर्त (उत्तरी काठियावाड़ सौराष्ट्र (दक्षिणी काठियाबाड़) कच्छ अपरान्त (उत्तरी कोंकण सोमरा के समीप) भरु (भरौच) आदि स्थानों का उल्लेख जूनागढ़ लेख में आता है। इस

बन्दरगाह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार शक क्षत्रप नरेश महत्वपूर्ण मार्ग तथा बन्दरगाह पर अधिकार की आवश्यंकता समझते थे। यशोवर्मन के नालंदा शिलालेख में मार्गपति नायक पदाधिकारी का उल्लेख है जो स्यात सड़कों की देख रेख (यानी समुचित प्रबंध) करता था जिससे सेनाएं भी बराबर उन मार्गों पर इधर उधर जा सके। वह व्यापार के मार्ग पर निगरानी भी रखता था।

व्यापार के प्रबंध का भार पुराने समय में श्रेणी नामक संस्था पर थी जो साझेदारी में व्यापार करती रही। लेखों में श्रेणी का वर्णन कई स्थानों पर किया गया है और विशेष कर दान के प्रकरण में। राजा

सार्थवाह

दान की सामग्री या धन श्रेणी के बैंक में जमा कर देता था। गुप्त युग के दामोदर पुर ताम्र पत्रों में सार्थवाह शब्द का प्रयोग मिलता है जो व्यापार करने वाले पान्थों का अगुआ माना गया है। अमर कोश (३७८) में "पान्थान वहति सार्थवाह;" उल्लिखित है। सार्थ को यात्रा करने वाले पान्थों का समूह कहते हैं। उस दल का नेता सार्थवाह होता था। कुमार गुप्त प्रथम के अभिलेख में कोटिवर्ष (उत्तरी बंगाल) के सार्थवाह बन्धुमित्र का नाम मिलता है तथा बुधगुप्त के दामोदर पुर ताम्रपत्र में सार्थवाह वसुमित्र का नामोल्लेख है। जातक कथाओं में तो बोधिसत्व के सार्थवाह के रूप में कार्य करने की वार्ता कई स्थलों में वर्णित है। तात्पर्य यह है कि व्यापार करने वाले समूह विभिन्न मार्गों से आया जाया करते थे। चाहमान लेखों में इन्हें वाण जारक (वनजारा) कहा गया है) समस्त वणजारेषु—वृषभ भरित जतु पाइलाल गमने ए. इ. ११पृ. ४३) व्यापारियों का समूह वैलगाड़ी (वृषभाना शेकेषु) पर समान लाद कर बाहर जाया करते थे। घोड़े या बैल पर भी सामान लादकर बाजार में व्यापारी आया करते थे जिन पर शुल्क (चुंगी) लगाया जाता था। दसवीं सदी के राजपूत लेखों में 'मण्डपिका' चुंगी घर के लिए प्रयुक्त है। यानी सुदूर से व्यापारी सामग्री बेचने बाजार में आया करते थे। बैलगाड़ी भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन यान थी जिसका प्रयोग आज से पांच हजार वर्ष पूर्व भारत में होता रहा। [मिट्टी की वैलगाड़ी खिलौने के लिए बनाई जाती थी] जिसे लेखों में गाड़ या शकष शब्द मिलते हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदी के सातवाहन लेख में सकट शब्द का प्रयोग मिलता है। चाहमान लेख में गाड़ शब्द आता है (किराडडआ गाड) इन साधनों के द्वारा विभिन्न मार्गों पर आवागमन हुआ करता था। इन सब विवरण की जानकारी के पश्चात यह कहना उचित है कि अभिलेखों से भोगोलिक विषयों का परिज्ञान होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अशोक के प्रथम स्तम्भ लेख में अन्त महामात्र का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः यह कर्मचारी बाहर से आने वाले लोगों पर निगरानी रखता तथा मुद्रापक (पासपोर्ट) का प्रबंध करता था। कौटिल्य ने इस तरह की प्रणाली का वर्णन किया है। मेगस्थनीज द्वारा वर्णित पाटिलपुत्र के छ उपसमितियों में दूसरी विदेशियों की देख रेख करती थी। समुद्र गुप्त ने सीमा राज्यों से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया था। वे सभी गुप्त सम्राट् का लोहा मानते थे। प्रयाग स्तम्भ लेख में उनसे कर वसूल करने का विवरण मिलता है (समतट डवाक कामरूप नेपाल कर्तृ पुरादि प्रत्यन्त नृपतिभिः—सर्व कर दान आज्ञाकरण प्रणाम) सारांश यह है कि सीमा पर विदेश से आने वाले लोगों पर निगरानी थी। इससे प्रकट होता है कि मौर्य शासन काल से भारत में सुगम मार्ग स्थित थे। साहित्य के प्रकरण को यदि अभिलेखों से पुष्ट किया जाय तो प्राचीन भारत का भोगोलिक विवरण सुन्दर रीति से लिखा जा सकता है।

सीमान्त की निगरानी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय २

प्रशस्ति का विवेचन

भारत के प्राचीन साहित्य में ऐसे ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव सा है जिन में आधुनिक ढंग तथा वैज्ञानिक विश्लेषण की रीति से इतिहास का वर्णन मिलता हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि इतिहास के पठन पाठन से लोग उदासीन थे और ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने की ओर अभिरुचि न थी। इतिहास के महत्व को समझकर ही इसे पंचम वेद कहा गया है (इतिहासः पुराणंच पञ्चमो वेद उच्यते छा० उ० ७।१।२) जनता तथा राजा के दैनिक जीवन में इतिहास की कहानियां सुनने का समय निश्चित था जो इतिहास-प्रेम की बात को प्रमाणित करता है। पुराने साहित्यकार मुख्य विषय के प्रतिपादन में सँलग्न रहते थे और जो घटनाए आवश्यक होती थी उन्हें ग्रंथ में लिख दिया करते थे। इस बात की उन्हें चिन्ता न थी कि घटनाओं को इतिहास का स्वरूप देना है। ग्रंथ लिखते समय तिथि क्रमानुसार विषय का प्रतिपादन मुख्य न था तथा इस ओर भी कम ध्यान रहता था कि उन्हें ऐतिहासिक महत्व देना है। भविष्य में जनता उसे समझकर पढ़ेगी ऐसी धारणा भी विद्वानों में न थी। यही कारण है आधुनिक ढंग पर न लिखने के कारण उन ग्रन्थों को इतिहास की संज्ञा वही दी गई है। बहुत समय तक पुराणों को धार्मिक तथा कल्पित वृतान्तों का भण्डार समझा जाता रहा परन्तु भारतीय विद्वानों ने उनके अध्ययन से वास्तविक इतिहास का पता लगाया है। पुराणों में वर्णन के आधार पर शासकों का नाम तथा वंश का विवरण उपस्थित किया गया है। उन वंशावली में वैज्ञानिक रूप से कालक्रम का विचार नहीं दिखलाई पड़ता अतएव उन पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता। कभी तो उल्लिखित घटनाओं से भ्रमात्मक चित्र सामने आ जाता है। मध्यकालीन अभिलेखों में पुराण को अन्य शास्त्रों के साथ ही उल्लिखित किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काव्य लिखते समय लेखकों ने ग्रंथों में संरक्षक का नाम प्रसंगवश किया है या किसी ऐतिहासिक पुरुष को लेकर नाटक अथवा कथानक की रचना की गई है। वैसे ग्रंथों से तत्कालीन सामाजिक इतिहास का ज्ञान

काव्य का इतिहास

हो जाता है। हर्ष चरित, विक्रमांकदेव चरित, गौड़वहो तथा रामपालचरित का नाम उल्लेखनीय है जिन ग्रंथ रत्नों ने इतिहास लिखेने में सहायता पहुँचाई है। जैन हरिवंश दीघनिकाय, तथा जातक उस श्रेणी तक पहुँचते हैं। यहां तक कि पाणिनि के सूत्रों से ऐतिहासिक गुत्थियां सुलझाई गई हैं।

प्राचीन ग्रंथों में पुष्पिका लिखने की परिपाटी थी जिससे ऐतिहासिक सत्य सम्मुख आ जाता है। हस्तलिखित ग्रंथों की पुष्पिकाएं विश्वासनीय समझी जाती हैं जो इतिहास जानने में सहायता पहुँचाती हैं। सामदेव रचित 'यश: तिलक' की पुष्पिका में उल्लेख मिलता है कि वह ग्रंथ शक ८८१ चैत्रमास में चालुक्य राजकुमार के समय में समाप्त किया गया था जो कृष्ण राज देव का सामंत था। यह क्रम कई सदियों तक प्रचलित रहा और तेरहवीं सदी में सायण ने ऋग भाष्य की जो पुष्पिका (निम्न प्रकार से) लिखी थी वह सच्चा ऐतिहासिक विवरण उपस्थित करती है—"इति श्रीमद् राजाधिराज परमेश्वर वैदिक मार्ग प्रर्वतक बुक्क साम्राज्य धुरंधरेण सायणाचार्येन विरचिते माधवीये वेदार्थ प्रकाशे ऋकसंहिता भाष्ये।" इसके अध्ययन से विजयनगर साम्राज्य के शासक तथा प्रसिद्ध विद्वान सायण के नाम की उपलब्धि होती है। पुष्पिका की इस पंक्ति में कितना इतिहास छिपा है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इस प्रकार के उल्लेख में एक ही त्रुटि हो कि पुष्पिका से शासक की वंशावली या अन्य ऐतिहासिक वार्ता का पता नहीं चलता। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि साहित्यकारों ने भारतीय इतिहास का ढांचा हमारे सामने अवश्य रक्खा जिसमें अन्य साधनों से सुन्दरता लाने का प्रयत्न किया गया है।

साहित्य के अतिरिक्त प्राचीन इतिहास जानने के लिए शासकों द्वारा सुरक्षित आज्ञापत्र भी सहायक सिद्ध हुए हैं। अशोक के धर्मलेख इसी श्रेणी के हैं। धौली के लेख में—देवानं पियस वचनेन तोसलियं महामात नगल

शासन-पत्र

वियोहालका वतविय—एक प्रकार का शासन-पत्र ही था। केन्द्रीय शासन से जो आज्ञापत्र निकलते थे उनका लेख प्रातीय या स्थानीय कार्यालयों में रक्खा जाता था। कहां तक उस कार्य का सम्पादन हुआ, उसकी सूचना केन्द्र को अवश्य भेजी जाती होगी। इतना ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं प्रांतीय शासक बार्षिक विवरण भी केन्द्र को अवश्य भेजता होगा। भारत से बाहर मध्य एसिया में ऐसे आज्ञापत्र लकड़ी की तख्ती, बरतन अथवा चमड़े पर लिखे प्राप्त हुए हैं। इन शासन पत्रों से शासन-सम्बन्धी ऐतिहासिक वृत्तान्त का परिज्ञान हो जाता है।

अधिकतर ऐसे आज्ञापत्र प्रस्तर तथा ताम्रपत्र पर खुदे मिले हैं। पुरातत्व सम्बन्धी खोज में अक्षरों का ज्ञान हो जाने पर उन पत्रों के पढ़ने का अवसर मिला। अंत में प्रशस्तियां या अभिलेख की सहायता से वर्ण-माला का ज्ञान हुआ और तत्पश्चात् प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें तथा आज्ञा-पत्र पढ़े गए। इसके बिना उनका अध्ययन असम्भव था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य जहां दुर्बोध है वहां पुरातत्व विषयों की सहायता लेकर इतिहास तैयार किया जा सकता है। इतिहासकार लिखित सामग्रियों पर निर्भर करता है परन्तु पुरातत्व हजारों वर्ष पुराने खण्डहरों को खोदकर इतिहास उपस्थित करता है। कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में उल्लिखित बातों को मूर्तिमान या स्पष्टीकरण में अशोक के लेख कितने सहायक सिद्ध हुए हैं, यह किसी विद्वान् से छिपा नहीं है। कालिदास विरचित रघुवंश में विजययात्रा की पुष्टि हरिषेण लिखित समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख से होती है। इसी तरह हर्ष के लेखों से (मधुवन तथा बाँसखेड़ा) वाण के कथन की पुष्टि होती है। अभिलेख में हर्ष के हस्ताक्षर के परीक्षण से राजाज्ञा की प्रमाणिकता की बातें जानी जाती हैं। संक्षेप में यह कहना उचित है कि ऐतिहासिक साधनों में प्रशस्ति का स्थान सर्वोपरि है। पुरातत्व सामग्रियों में मुद्रा-लेख तथा प्रतिमा-लेख से भी इतिहास का सुन्दर चित्र सामने आ जाता है। यही कारण है अभिलेखों से किसी सामग्री की समता नहीं की जा सकती। इन्हीं अमूल्य अभिलेखों के अध्ययन के फलस्वरूप प्राचीन भारत का इतिहास वैज्ञानिक ढंग पर लिखा गया है। भारतीय संस्कृति की प्रमाणिक रूपरेखा इन्हीं प्रशस्तियों तथा लेखों की सहायता से सामने आई है। इनके महान् कार्य का मल्य आंका नहीं जा सकता अन्यथा भारतीय इतिहास का ज्ञान अधूरा रह जाता है। ऐतिहासिक अनुसंधान में अभिलेखों ने अधिक सहायता की है। छोटे-छोटे लेखों में अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मिली है। उदाहरणार्थ––मास्की लेख के आधार पर ही मौर्य सम्राट् का व्यक्तिगत नाम 'अशोक' प्रकाश में आया अन्यथा उसे प्रियदर्शी की संज्ञा दी गई थी जो अन्य सभी लेखों में पाया जाता है। अशोक के रूम्मनदेई स्तम्भ लेख से बुद्ध का जन्म स्थान तथा मौर्य सम्राट् द्वारा तीर्थ-यात्रा के पश्चात् भूमिकर को घटाने का वर्णन पाया जाता है। अन्त में यह

प्राचीन लेख का महत्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहना सर्वथा उचित होगा कि भारत के प्राचीन अभिलेख इतिहास की निधि हैं जिन्होंने भारतीय गौरव की अभिवृद्धि की है।

अभिलेखों को कई श्रेणियों में विभाजित करते हैं। अधिकतर लेख राजाज्ञा से खोदे जाते थे तथा उनका एक ध्येय होता था। शासन सम्बन्धी लेखों में राजनीति की चर्चा मिलती है। दान देने के उपलक्ष में उत्कीर्ण लेख दान सम्बन्धी अनेक बातों पर प्रकाश डालते हैं। प्रतिमा पर खुदे लेख राजा की धार्मिक भावना का परिज्ञान कराते हैं। राजा के विजय यात्रा का वर्णन से राज्य विस्तार का ज्ञान हो जाता है। कई लेखों में शासक की दिग्विजय का विवरण पाया जाता है। यदि लेखों का अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि प्रशस्तिकार अपने संरक्षक या आश्रयदाता की प्रशंसा में कुछ अतिशयोक्ति के साथ लेख उत्कीर्ण कराता था। इसलिए लेखों के अध्ययन करते समय सम्यक रूप से विचार करना जरूरी है।

लेखों का वर्गीकरण अभिलेखों को निम्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

(१) धार्मिक लेख––ऐसे अभिलेखों में बहुधा धार्मिक चर्चा की गई है। प्रसंगवश अन्य बातों का उल्लेख मिल जाता है। उसका उद्देश धार्मिक कार्य का प्रसार माना जा सकता है जैसे अशोक के धर्म लेख।

(२) प्रशंसामय अभिलेख––शासक की प्रशंसा ही इसका उद्देश्य होता है। घटनाओं का उल्लेख इस तरह किया जाता है कि उससे शासक के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। यशोधर्मन का मंदसोर लेख समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ-लेख, हरहा तथा अयहोल की प्रशस्तियां इसके उदाहरण हैं।

(३) स्मारक-लेख––अशोक का लुम्बिनी लेख। शासक ने किसी घटना के स्मारक में अभिलेख खुदवाया हो।

1156

(४) आज्ञा-पत्र––दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) तथा नालंदा के ताम्रपत्र।

(५) दान-पत्र––बरावर का गुहा लेख।

७वीं सदी से ९वीं सदी ताम्रपत्र दान-पत्र के रूप में उत्कीर्ण हैं।

ईसा पूर्व तीसरी सदी से बारहवीं सदी तक भारत में लेख नाना रूप में उत्कीर्ण होते रहे। अशोक के लेख भारत के प्रत्येक कोने से मिले हैं। मौर्य साम्राज्य के विस्तीर्ण होने पर भी उन लेखों में कोई भेद नहीं पाया जाता। उनका एक ही उद्देश्य था – धर्मानुशासन। अतएव अशोक के धर्म लेखों में एक रूपकता दिखलाई पड़ती है।

अभिलेखों का महत्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राचीन समय के सहस्त्रों लेख प्रकाश में आए हैं तथा आज भी खुदाई से नए अभिलेखों का पता चलता है। कितने प्राचीन स्थानों की खुदाई अभी आरम्भ भी न हो सकी जहां से अनेक सार गभित लेखों का परिज्ञान हो सकता है। अभिलेख सभी साधनों में अधिक विश्वसनीय माने गए हैं तौ भी एक ही घटना का विवरण विभिन्न लेखों में एक सा नहीं पाया जाता। विद्वत् समाज उन पर नाना ढंग से विचार करते हैं तथा राजाओं के एकीकरण में मतभेद रखते हैं।

मौर्य युग में प्रायः समस्त भारत की एक भाषा प्राकृत थी तथा लिपि (ब्राह्मी)। इसलिए लेखों में इन बातों में समता है। मौर्य वंश के पश्चात् भारत में साम्राज्य स्थिर न रह सका इसलिए लेख भी समान रूप में नहीं मिलते। विभिन्न राज्यों की पृथक समस्या थी। अतएव उनके लेख उसी क्षेत्र की बातों की चर्चा करते हैं। शुंग वंश के लेख, आंध्र वंश का लेख तथा कलिंग के लेख में विभिन्नता है। यद्यपि सभी एक ही युग (मौर्य काल के बाद) में लिखे गए थे। परन्तु परिस्थिति के अनुसार उनमें भिन्नता आती गई। सातवीं सदी के बाद भारत में छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गए। प्रतिहार पाल तथा राष्ट्रकूट वंशों में युद्ध तथा प्रतिस्पर्द्धा की भावना काम करने लगी। विचारकों में राष्ट्रीयता की कमी हो गई। इसलिए लेख सीमित क्षेत्र तथा प्रान्तीय भाषा में उत्कीर्ण होने लगे। क्रमशः हमें लेखों में पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है। पूर्व मध्यकाल में (७००-१२०० ई० तक) लेखों की संख्या अनगिनत होने पर भी व्यापकता में कमी आ गई। वे प्रान्तीय विचार के समर्थक हो गए अतएव उनमें अत्युक्ति का मिलना स्वाभाविक है। इतनी भिन्नता होते हुए भी उन लेखों का विचार पूर्ण अध्ययन हमें इतिहास लिखने में सहायता करता है तथा उसके सहारे राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण होता है। साहित्य से उन प्रशस्तियों की वार्त्ता भले ही पुष्ट हो जाय परन्तु उससे लेखों का महत्व कम नहीं हो सका। उनका वास्तविक मूल्यांकन बड़ा कठिन है और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी निमित्त लेखों का ज्ञान परमावश्यक है।

लेख तथा संस्कृति

लेखों का गम्भीर अध्ययन अनेक सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश डालता है। किसी शासक की शक्ति तथा इतिहास में उसका स्थान अभिलेखों से समझा जा सकता है। यदि लेख न होते तो अशोक के जीवन की झांकी हमें नहीं मिल पाती और संसार का महान सम्राट् वह कदापि माना नहीं जाता। उसके धर्मविजय तथा सहिष्णुता की प्रशंसा न होती और आज का भारत अशोक स्तम्भ के सिरे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को अपना राष्ट्र चिन्ह नहीं स्वीकार करता। कलिंग राजा खारवेल तथा महाक्षत्रप रुद्रदामन का जीवन वृतांत लेख के बिना अलम्य रहता। हाथी गुम्फा तथा जूनागढ़ के लेख ही उनके जीवन पर प्रकाश डालते हैं वरन् नाम के सिवाय सभी अनभिज्ञ रहते।

भारतीय इतिहास में ऐसे स्थल हैं जिनका विवरण मुद्रा-लेखों पर निर्भर है। भारतीय-यूनानी शासकों के विषय में तथा पश्चिमी भारत के क्षत्रप शासक की वंशावली का परिज्ञान मुद्रा-लेख के सहारे होता है। क्षत्रप सिक्कों पर महाक्षत्रप (शासक) के साथ सहायक व्यक्ति (क्षत्रप) का नाम ही उत्कीर्ण नहीं है बल्कि सामाजिक सम्बन्ध भी उल्लिखित है। जैसे पिता पुत्र, भ्राता भगिनी आदि।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त का दिग्विजय प्रयाग स्तम्भ पर खुदा है। कालिदास ने रघु का दिग्विजय लिखा तो मेहरौली के लेख से चन्द्रगुप्त के विजय की पुष्टि की जाती है। उसका उदयगिरि तथा सांची का लेख पश्चिम भारत पर विजय के जीते जागते प्रमाण हैं। उन लेखों के बिना गुप्त सम्राटों का जीवन अन्धकारमय रहता। वाण ने हर्ष का चरित लिखा तो हर्ष वर्णन के मधुवन तथा वांसखेड़ा के लेख राजा के जीवन की घटनाओं को प्रकाश में लाते हैं। ह्वेनसांग का विवरण अयहोल के लेख से पुष्ट किया जाता है कि हर्ष वर्धन को द्वितीय पुलकेशी ने परास्त किया था। हरहा का लेख मोखरिवंश का अद्वितीय इतिहास वर्णित करता है। लेखों का अध्ययन यह बतलाता है कि कन्नौज के लिए धर्मपाल ध्रुव तथा वत्सराज में युद्ध हुआ था। तीनों शासक क्रमशः बंगाल, दक्षिण तथा राजपुताना की ओर से आकर महोदय (कान्यकुब्ज) पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लड़ गए कान्यकुब्ज पूर्वमध्य युग का प्रधान नगर था। वह प्राचीन पाटलिपुत्र के सदृश विख्यात था।

पुराणों में वर्णित राजवंशों का उल्लेख प्राचीन अभिलेखों में पाया जाता है जिससे पुराणों की प्रमाणिकता में विश्वास हो जाता है। पुराणों में मौर्य के पश्चात् शुंग लोगों के शासन का वर्णन आता है। पुष्यमित्र शुंग ने मौर्य वंश का अंत किया था। अयोध्या की प्रशस्ति में पुष्यमित्र को सेनापति (सेनापतेः पुष्यमित्रस्य) कहा गया है। इसी प्रकार मौर्य वंश के बाद दक्षिण भारत में सातवाहन वंश ने शासन किया। पुराणों में आंध्र या आंध्रभृत्य कहा गया है जो मुद्रा लेख में (साड वाहनस) तथा नासिक गुहा लेख में शातवाहन कुल के नाम से उल्लिखित है। इस प्रकार पुराण के वर्णन को लेखों के विवरण से पुष्ट करते हैं। भारत में

पुराण तथा लेख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यूनानी राजाओं में मिलिन्द का नाम साहित्य से (प्राकृत ग्रंथ मिविन्दपञ्हो) पता चलता है। उसके द्वारा प्रचलित सिक्कों पर खरोष्टी में महरजस त्रतरस मिनद्रस—लिखा मिला है। उसी राजा का एक लेख पश्चिमोत्तर (सरहदी सूबे) प्राँत के पश्चिम वजौर रियासत में मिला है जिनमें उसका नाम—मिनेद्रस महरजस करिअस दिवस आदि अंकित है। वह लेख खरोष्टी तथा प्राकृतभाषा में है। इस तरह लेख के द्वारा उत्तर पश्चिम में उसका शासन प्रमाणित हो जाता है।

हाल में ऐसे कुछ लेख तथा मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं जिससे पता चलता है कि मघ, नल, मेकल वंशी राजाओं ने तीसरी-चौथी शताब्दियों में राज्य किया था। पुराणों में भी इन शासकों के नाम मिलते हैं। इनके लेख रीवा के समीप बन्दोगढ़ तथा प्रयाग के समीप कौशाम्बी से मिले हैं। इस प्रकार पुराणों के कथन की पुष्टि लेखों से हो जाती है। साहित्य (विशेषतया वैदिक साहित्य) में जिन यज्ञों का वर्णन किया है उनके नाम नानाघाटलेख तथा नन्दसा यज्ञस्तम्भ की प्रशस्ति में उल्लिखित हैं। अतएव साहित्य की घटनाओं अथवा विवरण को विश्वसनीय बनाने में अभिलेखों ने पर्याप्त सहायता पहुँचाई है।

भारतीय नरेशों की एक महान् विशेषता रही है कि वे किसी धर्म के कट्टर अनुयायी न थे। अभिलेखों से ही अधिकतर इस बात का परिज्ञान होता है।

धार्मिक सहिष्णुता

उन राजाओं के जीवन की यह विशेषता होते हुए भी साहित्यकारों का ध्यान उस ओर क्यों नहीं गया, यह कहना कठिन है। परन्तु विभिन्न शासकों के अभिलेखों के अध्ययन से यह विदित हो जाता है कि अमुक राजा सहिष्णु था। अशोक ने बारहवें प्रधान शिलालेख में स्पष्ट रूप से आज्ञा जारी की थी कि कोई अपने धर्म की प्रशंसा तथा दूसरे धर्म की निन्दा न करे। इस कार्य से अपना धर्म वृद्धि के बदले क्षीण हो जाता है—

"पुजेतिविय व चु पर—पषंड तेन तेन अकरेन। एवं करतं अत प्रषंड वढेति पर-प्रषंडंस पि च उपकरोति। तद अञ्ञथ करमिनो अत प्रषंड क्षणति पर प्रषडस च अपकरोति। यो हि कचि अत प्रषंड पुजेति पर प्रषंड गरहति सव्रे अतप्रषड भतिय व किति अत षंड दिपयमि ति सो च पुन तथ करतं सो च पुन तथ करतं सो च पुन तथ करतं बढ़तरं उपहंति अत प्रषंड। सो सयमो वो सधु।"

पिछले युग में भी ऐसी बातों का उदाहरण मिलता है। दक्षिण भारत के सातवाहन नरेशों के लेखों में एक ओर वैदिक यज्ञ का वर्णन है (नाना घाट का लेख) और अपने को एक ब्राह्मण कहते हैं वही शासक बौद्ध संघ को गुहा दान करने में गर्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अनुभव करता है। नासिक लेखों में भदावनीय संघ तथा कार्ले गुहा लेख में महासंघिक भिक्षु शाखा को दान देने का विवरण पाया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि सातवाहन के उत्तराधिकारी कृष्णा घाटी के शासक इच्छाकु नरेश वैदिक यज्ञ के कर्त्ता थे परन्तु उन्होंने बौद्ध धर्मावलम्बी कन्याओं से विवाह किया था। उन्हें किसी धर्म से विरोध नहीं था। गुप्त नरेशों की भी यही दशा थी। परम वैष्णव होकर भी शैव तथा जैन मतानुयायी पदाधिकारियों को नियुक्त किया तथा प्रोत्साहन दिया था। मध्ययुग के शासक पाल नरेश परमसौगत (बौद्ध) होकर भी ब्राह्मण देवताओं के लिए दान दिया करते थे। धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र में नर नारायण (विष्णु) के मन्दिर को दान देन का विवरण है। भागलपुर के पत्र में शिवमदिर को अग्रहार देने का वर्णन है। नारायण पाल ने सौकड़ो शिवमंदिर का निर्माण किया था तथा पाशुपत के आचार्य को मंदिर का पदाधिकारी बनाया था। इस प्रकार बौद्ध धर्मानुयायी द्वारा हिन्दू देवों के पूजा निमित्त दान का विवरण सहिष्णुता का परिज्ञान कराता है।

आर्थिक सामाजिक तथा शासन-व्यवस्था

प्राचीन भारत के अभिलेखों का अध्ययन भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालता है। शासक का ध्यान प्रजा के सुख-वैभव की ओर सदा लगा रहता था। अशोक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अमुक कार्य करना श्रेयस्कर है उसके बतलाए मार्ग पर चलने से प्रजा को इस लोक में सुख मिलेगा तथा बाद में स्वर्ग की प्राप्ति होगी—साधु इयं कटविये तथा कलंत हिद लोकिक्ये च कं आलधे होति पलत च। अनत पुना पशवति तेना धंमदानेन (११वां शिलालेख) मौर्य सम्राट् ने प्रजा के सुख के लिए नहरें खुदवाई थी। महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में नहर तथा नालियों का विवरण पाया जाता है। प्रथम कुमार गुप्त के विलसद स्तम्भ-लेख में प्रासाद के साथ धर्मसत्र (अन्नसत्र) का वर्णन मिलता है। बंगाल के बोगरा जिला के एक लेख में राज्य के अन्न-भण्डार से अकाल-पीडित प्रजा को अन्न विभक्त करने का वर्णन आया है। जनता के कष्ट निवारण के लिए ही अन्न को विभक्त किया गया तथा राजा द्वारा ऋण दिए गए। नालंदा के एक ताम्र-पत्र में ऐसा ही वर्णन आता है कि महाविहार में निवास करने वाले रोगी भिक्षुओं के लिए भोजन, आसन, औषधि, वस्त्र आदि का प्रबंध किया गया था। देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र अपने ढंग का अकेला दानपत्र है जिसमें राजा के उदार-हृदय की चर्चा चरितार्थ की जा सकती है। पाल शासक ने जावा के राजा बालपुत्रदेव कीप्रार्थना पर पांच गांव दान में दिया था, जिस कार्य से उसके विश्वप्रेम की झलक मिलती है। प्रजा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सुख की कामना कर ही पिछले गुप्तवंशी नरेश आदित्यसेन की पत्नी कोणदेवी ने तालाब का निर्माण कराया था। दक्षिण भारत के घंटसाला (कृष्ण जिला) के लेख में महानाविक शिवक का वर्णन मिलता है जिससे प्रकट होता है कि व्यापार के लिए भारतीय जहाज लेकर समुद्र पार यात्रा करते थे। इस तरह समाज के आर्थिक जीवन पर प्रशस्तियों द्वारा प्रकाश पड़ता है।

प्राचीन शासन प्रणाली के सम्बन्ध में भारतीय अभिलेखों में पर्याप्त ढंग से चर्चा की गई है। अशोक के समय से ही पदाधिकारियों की पदवी तथा कार्य के सम्बन्ध में उल्लेख पाया जाता है। इससे यह प्रकट होता है कि प्राचीन राजनीति ग्रंथों में वर्णित कर्मचारियों की नियुक्ति शासक द्वारा की जाती थी कार्य प्रणाली को व्यवहारिक रूप में दर्शाया गया है। भारतीय लेखों की चर्चा अन्यत्र मिलेगी जिनका विस्तृत विवरण यहां अनुपयुक्त है। इस विषय में अधिकतर लेख एक समान समझे जा सकते हैं। दक्षिण भारत के दो विशिष्ट लेख हैं जिनका स्थान प्रमुख समझा जाता है। एक लेख तंजौर के समीप नालूर से तथा दूसरा मद्रास के समीपवर्ती उत्तर मेरूर नामक स्थान से मिला था। इनके अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि मध्ययुग के आरम्भ में ग्राम शासन किस ढंग से होता था। सभा ग्राम के सारे कार्य की देखरेख करती थी। धार्मिक, आर्थिक तथा स्थानीय विषय को सभा पूर्ण रीति से सम्पन्न करती थी। उत्तर मेरूर का लेख अपने ढंग का अकेला अभिलेख है जो सभा की विभिन्न उपसमितियों, सदस्यों का चुनाव तथा कार्यशैली पर प्रकाश डालता है। नालूर का लेख ९ वीं सदी से १३ वीं सदी तक प्रचलित चोळ शासन का विवरण उपस्थित करता है। विशेषकर वर्णन आता है कि राज-राज प्रथम के समय में व्यापारी द्वारा मंदिर को भूमिदान दी गई थी, उसकी प्रबंध-समिति की बैठक नालूर के राजराजन सभामण्डय में हुआ करती थी (सा. इ. इ. भा. २ लेख नं० ३२२ सन् १९१०) उसमें यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति ग्राम या मंदिर सम्बन्धी कार्य का विरोध करेगा वह ग्राम द्रोहिन समझा जायगा और उसे समाज के अधिकार से वंचित किया जायगा। अधिकतर लेख मंदिर की दीवार पर खुदे हैं, इस कारण उनमें धार्मिक चर्चा, दान आदि की प्रधानता है। इस तरह ९वीं सदी के नालूर लेख में ग्राम से सम्वन्धित विषयों की चर्चा मिलती है।

उत्तर मेरूर लेख का अध्ययन प्रजातंत्र ढंग की शासन पद्धति पर प्रकाश डालता है। समिति का रूप, उस समिति का चुनाव, चुनाव-टिकट तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उम्मीदवार सम्बन्धी विषद विवेचन उन प्रशस्तियों में किया गया है। उससे पता चलता है कि उस भू भाग के निवासी राजनैतिक अधिकार तथा चुनाव संस्था की ओर विशेष ध्यान देते थे। न्याय तथा तार्किक विचारों का आश्रय लेकर अपना कार्यक्रम स्थिर करते थे। उत्तर मेरूर के लेखों में पल्लव शासन (नवीं सदी) से लेकर १३वीं सदी तक चोल साम्राज्य की अवनति काल तक ग्राम शासन प्रणाली का विवेचन किया गया है। विभिन्न वंशों का शासन होने पर भी तथा राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन होने पर भी ग्राम सभा के कार्य में कोई भेद नहीं आ सका। हर एक युग में सभा ने समान कार्य किया था। दसवीं सदी में चोल राजा राजराजा प्रथम के समय सभा तथा उप-समितियां निर्विघ्न रूप से काम करती रहीं। उत्तर मेरूर के अभिलेखों से स्पष्ट प्रकट होता है कि ग्राम सभा के नियमों में विभेद न था तथा सदैव नियमित समझा जाता था। केन्द्रीय सरकार तथा सभा के कार्य का विवेचन करते समय ग्राम के नियमों को आदर मिलता था। यदि सभासद किसी सार्वजनिक कार्य के लिए ऋण लेता तो भविष्य में चुने जाने वाले सदस्य या उपसमिति को मान्य होता था। उसके संलग्न कार्य को पूरा करना, ऋण को वापस करना तथा सूद देना आदि सभी बातें नई उपसमिति को मानना आवश्यक था। लेख में वर्णित सभा की शक्ति का अनुमान एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। जब सभा ग्राम के सड़कों की मरम्मत करती या तालाब खुदवाती तो अपने कोष से जमीन खरीद कर उस कार्य को पूरा करती। पेय जल के प्रबंध के लिए किसी प्रदत्त धन की आय से १५ फी सदी भाग व्यय किया जाता। और तालाब उपसमिति उसकी निगरानी रखती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि नालूर तथा उत्तर मेरूर के लेखों में अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है विशेषकर ग्राम-शासन का ऐसा सुन्दर सजीव तथा विस्तृत विवरण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

अभिलेखों में संयुक्त शासन का भी वर्णन आता है। इस प्रसंग में लेखों के आधार पर नारी शासकों का वर्णन अप्रासंगिक न होगा। कश्मीर सिक्कों में एक मुद्रा लेख (दि क्षेम गुप्त) के आधार पर यह कहा जाता है कि रानी दिद्दा क्षेमगुप्त के साथ शासन करती थी और बाद में स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगी। इस लिए पिछले मुद्रा लेख में 'दिद्दा देव्या' लिखा गया। पर काश्मीर की प्रशस्ति में उसे राजन' कहा गया है (पुरुष वाचक शब्द राज्य करने के कारण प्रयुक्त हैं)। दक्षिण आंध्र प्रदेश में काकतीय रानी रुद्रम्बा को 'रुद्रदेवे महाराज' लेखों में कहा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है। राजपुताना में प्रचलित मध्ययुग के सिक्के पर 'सोमल देवी' का मुद्रालेख उत्कीर्ण है जो राजपूत रानी के शासन का द्योतक है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की राजनीतिक बातें अभिलेखों के अध्ययन से विदित होती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप

यद्यपि प्राचीन अभिलेखों में अन्तर्राष्ट्रीय ढंग की चर्चा बहुत कम मिलती है परन्तु कुछ लेख इस सम्बन्ध में विशिष्ट सूचना देते हैं। अशोक के तेरहवें प्रधान शिलालेख में कई विदेशी नरेशों के नाम उल्लिखित हैं जहां मौर्य सम्राट् ने अपने दूत भेजे थे--

"सो च पुने लधो देवनं प्रियस इह च सवेषु अंतेषु अषषु पि योजन शतेषु यथ अंतियोको नभ योन रज पटं च तेन अंतियोकेन चतुरे ४ रजनि तुरमये नम अंतिकिनि नम मक नम अलिक सुहरो नम निच चोड-पंड अब तवंपणिय-- योन क बोथेषु सवत्र देवनं प्रियस मनुशस्ति अनुवरंति। यथ पि देवनं प्रियस दुत न व्रचंति आदि।" अशोक का मन्तव्य था कि उसका दूत आसानी से विदेशों में भ्रमण करे तथा वहां उन्हें कार्य करने (धर्म प्रचार) में सुविधा मिले। अशोक स्वयं भी विदेशी दूतों को मौर्य साम्राज्य में वैसी ही सुविधा देने के पक्ष में था। ईसा पूर्व प्रथम सदी में तक्षशिला के राजा अंतिलिकित का एक दूत हेलियोडोरस विदिसा में भागभद्र के राजदरबार में आया था। इसकी सूचना बेसनगर के गरुड़ स्तम्भ लेख से मिलती है उसमें निम्न प्रकार का उल्लेख आता है--हेलिओ दोरेण भागवतेन दियस पुत्रेण तख्ख सिलाकेन योन-दूतेन आगतेन। मध्ययुग के एक ताम्रपत्र से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर विशेष प्रकाश पड़ता है। देवपाल देव के नालंदा ताम्रपत्र में वर्णन आता है कि जावा के राजा बालपुत्र देव ने दूत के द्वारा पालनरेश के पास प्रार्थना भेजी थी कि नालंदा में नवनिर्मित विहार को अग्रहार दान दिया जाय। देवपाल ने उसे स्वीकार कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। वर्णन पठनीय है--

सुवर्णद्वीपाधिप महाराज श्री बालपुत्र देवेन दूतक मुखेन वयम्विज्ञापिता यथा मया श्री नालंदायाम्विहार: कारित:-----

शासनीकृत्य प्रतिपादित:।

भारतवर्ष में तीसरी सदी से ही राजदूतों की नियुक्ति की चर्चा लेखों में मिलती है। वृहत्तर भारत के (हिन्द चीन) संस्कृति लेखों में भारतीय दूत का सुन्दर वर्णन मिलता है।

भारतीय अभिलेखों के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि विदेशी आक्रमण कारियों ने भारत में आकर अपने शासन सम्बन्धी बातों को विभिन्न आधार पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतीय करण की चर्चा उत्कीर्ण कराया। उनमें से कुछ इस ओर संकेत करते हैं कि अमुक शासक ने भारतीय धर्म ग्रहण कर भारतीय नाम भी अंगीकार किया। यों तो सभी ने भारतीय संस्कृति को अपनाया था परन्तु ऐसा उल्लेख यूनानी तथा शक लेखों में पाया जाता है। वेसनगर गरुड़ स्तम्भ पर जो लेख उत्कीर्ण हैं उसमें यूनानी राजदूत हेलियोडोरस को भागवत कहा गया है यानी उसने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया था। उसी समय के यानी ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी में बजौर से एक शरीर-अवशेष संचित संदूक मिला है जिस पर यूनानी राजा मिनेन्डर (मिलिन्द) के समय का लेख खुदा है। अतएव इस लेख के आधार पर अनुमान किया गया कि मिनेन्डर बौद्ध था। इसकी पुष्टि एक प्राकृत ग्रंथ "मिलिन्द-पन्हो" से की जाती है जिसमें नागसेन और मिलिन्द के मध्य बौद्ध दर्शन पर प्रश्नोत्तर संग्रहीत है।

ईसवी सन् के आरम्भ में उत्तर पश्चिम भारत में कुषाण नरेशों ने शासन किया। कुषाणों के प्रथम राजा वीम कदफिस ने शैवमत को स्वीकार किया जिसका प्रमाण उसके मुद्रा-लेख में मिलता है। सोने की मुद्रा पर एक ओर राजा का नाम यूनानी अक्षरों में तथा दूसरी ओर खरोष्ठी में एक लम्बा लेख खुदा है—महरजस रजदि रजस सर्व लोग इश्वरस महीश्वरस विमि कफिशस। महीश्वर (महेश का पुजारी) की पदवी उसके धार्मिक विश्वास को व्यक्त करती है। उसके उत्तराधिकारी कनिष्क के विषय में सर्व विदित है कि वह बौद्ध था और उसने बुद्ध धर्म की चौथी संगीति बुलाई थी। साहित्य को छोड़ कर लेखों के अध्ययन से यही प्रमाणित होता है कि कनिष्क बौद्ध था। सारनाथ के बौद्ध प्रतिमा के आधार शिला पर कनिष्क के तीसरे वर्ष में एक लेख खोदा गया था जिसमें उस कुषाण नरेश के राज्यपाल खरपल्लाना द्वारा मूर्ति स्थापना का वर्णन मिलता है—महारजस्य कणिष्कस्य सं० ३ हे० ३ दि० २०+२——वोधिसत्वो छत्रयष्टि प्रतिष्ठापितो बाराणसिये। कनिष्क के २१ वें वर्ष में पेशावर के समीप बुद्ध के अवशेष की स्थापना का विवरण लेख में आया है—भगवतस शक्यमुनिस शरिर प्रदिठवेदि (कुर्रम अवशेष-संदूक वाला लेख) कनिष्क के उत्तराधिकारी नरेश ने भारतीय ढंग का अपना नाम वासुदेव रक्खा। हुविष्क के पश्चात् इस प्रकार का नामकरण भारणीय संस्कृति का प्रभाव ही कहा जा सकता है। मथुरा के अनेक प्रतिमा लेखों में वासुदेव शब्द का प्रयोग उस राजा के लिए किया गया है। ईसवी सन् की दूसरी सदी में शक नरेशों ने भी शनैः-शनैः भारतीयता को अंगीकार किया। नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने तीर्थ-स्थानों पर दान देकर भारतीय संस्कृति में निष्ठा को प्रकट किया था। नासिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के गुहा लेख में प्रभास तीर्थ में ब्राह्मण कन्याओं के विवाह निमित्त धन दान दिया। रामतीर्थ में हजारों रुपया ब्राह्मणों में वितरण किया तथा राज्य के अनेक नदियों पर निःशुल्क यात्रा (घाट उतरने) करने की आज्ञा दी। दशपुर, नासिक आदि स्थानों में आराम के लिए गृह (धर्मशाला) तथा जल व सदावर्त का प्रबन्ध किया। इस तरह धर्मशास्त्रों में वर्णित रीति से ऋषभदत्त ने यज्ञ किये। नासिक गुहा लेख का वर्णन पद्म पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु पुराण तथा महाभारत में प्रति पादित धार्मिक चर्चा से मिलता है। ब्राह्मण कन्या का दान पद्म पुराण में निम्न प्रकार से मिलता है—

सालङ्कारा द्विजश्रेष्ठ कन्यां यच्छति यो नरः
स गच्छेद्ब्रह्म सदनं पुनर्ज्जन्म न विद्यते।

नासिक लेख में "पुण्य तीर्थे ब्राह्मणेभ्यः अष्टभार्यां प्रदेन" का उल्लेख है। उसी तरह लेख में वर्णित "नावा पुण्य-तर-करेण" पुराणों के शुल्क तर या तर-शुल्क (अशुल्कतर) के समान है। महाभारत (३, ८५, ४२) में रामतीर्थ के स्नान का महत्व बतलाया गया है जिसकी तुलना "गोवर्धने सुवर्ण मुखे शोर्पारगे च रामतीर्थे चरकषर्षेभ्यः——" की पंक्ति से की जा सकती है। ऋषभदत्त ने उल्लेख किया है कि पुष्कर जाकर उसने अभिषेक किया तथा दान दिया था (ततोस्मि गतो पोक्षरानि। तत्र च मया अभिसेको कृतो भीति च गोसहस्रानि दत्तानि ग्रामो च) तात्पर्य यह है कि अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ का महत्व ऋषभदत्त मानता रहा। विष्णु संहिता (८५। २) में भी इस तीर्थ का महत्व वर्णित है—

पुष्करे स्नान मात्रतः सर्व पापेभ्यः पूतो भवति।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विदेशी शक नरेश भारतीय संस्कृति को अपनाने लगे थे। अन्त में पश्चिम भारत के कारदमक वंशी नरेशों के सम्बन्ध में दो शब्द कहना उचित प्रतीत होता है। रुद्रदामन के सम्बन्ध में जूनागढ़ के शिला लेख में ऐसी बातें कही गई है जो उसके भारतीयता की अभिरुचि का द्योतक है। यह आश्चर्य ही है कि शक नरेशों के मुद्रा-लेख प्राकृत में मिलते हैं किन्तु रुद्रदायन की प्रशस्ति संस्कृत में है। इस शक राजा ने अपने पुत्र का नाम द्रसिंह रक्खा जो शक नामकरण न होकर भारतीय था। इनके लेखों में भारतीय मास-गणना का आरम्भ दिखलाई पड़ता है। रुद्रसिंह के गुण्डा लेख में "वैशाख शुद्धे पंचम तिथौ रोहिणि नक्षत्र मुहूर्त" का उल्लेख है तो जूनागढ़ के दूसरे लेख में "चैत्र शुक्लस्य दिवसे पंचमे" या रुद्रसेन के गरहा प्रशस्ति में "भाद्रपद बहुल ५" आदि मास व तिथि का वर्णन भारतीय करण का प्रबल प्रमाण है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतीय इतिहास में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण तथा शरीर के अवशेष सम्बन्धी विवाद की कथा सर्व विदित है। कुशीनगर (कसिया) में शव के दाह संस्कार करने के पश्चात राख या शेष हड्डियों को आठ भागों में विभक्त कर दिया गया। वैशाली के लिच्छवी, कपिल-वस्तु के शाक्य, अलकप्प के बुलि, रामग्राम के कोलिय, वैथद्वीय ब्राह्मण, कुसीनारा के मल्ल, दोण के ब्राह्मण तथा पिप्पलीवन के मोरिय नरेशों को वराबर बराबर भाग मिला (महापरिनिव्वान-सूत्त अध्याय १) सांची के दक्षिण तथा पश्चिम तोरणों के पट्टियों पर भी अवशेष सम्बन्धी युद्ध चित्र खुदा है। अन्त में शांति हो जाने पर आठ भाग किया गया जो उस भाग को एक पात्र में रख कर हाथी के सिरे पर दिखलाया गया है। तात्पर्य यह है कि आठों शासकों ने बुद्ध के अवशेष पर स्तूप निर्मित किया। हेनसाँग के कथानुसार अशोक ने उन अवशेष से कुछ भाग निकाल कर चौरासी हजार स्तूप बनवाये। अशोक निर्मित स्तूपों के भग्नावशेष मिले हैं परन्तु किसी स्थान पर उत्कीर्ण लेख प्राप्त नहीं हुआ जिसमें बुद्ध के शरीर अवशेष की चर्चा की गई हो। हाल ही में वैशाली की खुदाई से एक स्तूप का पता लगा है जिसमें भगवान के अवशेष हो सकते है। पुरातत्व की खुदाई तथा स्मारक भवनों से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि बुद्ध के अवशेष वहाँ होंगे। बुद्ध के अवशेष (राख) एक कीमती प्रस्तर सोने, या चांदी के संदूक में रख दिया जाता था। वह कीमती पात्र एक प्रस्तर के संदूक में रक्खा जाता था जिसके किसी भी भाग पर लेख उत्कीर्ण किया जा सकता है। ऐसे ही संदूकें कई स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कभी ढकन या नीचे अथवा संदूक के ऊपरी भाग पर लेख मिले हैं। लेखों से अवशेष की स्थापना की वार्ता (इसी संदूक के अभिलेख में) उल्लिखित है। सम्भवतः वह संदूक स्तूप की खुदवाई से निकला हो तभी उस में किसी धातु पत्र पर लेख सुरक्षित मिला है। अन्य प्रकार के लेख आधार (ताम्रपत्र) पर भी उत्कीर्ण लेख प्रकाश में आए हैं उन सब में **शरीर** या **धातुएँ** शब्द से भगवान के अवशेष को व्यक्त किया गया है।

बुद्ध के अवशेष की वार्ता

भारतीय अभिलेख इस दिशा में अमूल्य सहायता पहुँचाते हैं। उनके वर्णन से पता चलता है कि अमुक राजा ने भगवान के शरीर अवशेष की स्थापना की। यह प्रमाण पूर्वक कहना कठिन है कि उन राजाओं को वास्तव में अवशेष कहां से प्राप्त हुए थे।

सर्वप्रथम लेख वस्ती जिले (उत्तर प्रदेश) के पिपरावा नामक स्थान से मिला था वह लेख ईसा पूर्व चौथी सदी का है—

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इदं शरीर-निधानं बुद्धस्य भगवतः शाक्यानां।

पश्चिमोत्तर प्रांत के समीप बजोर रियासत के शिनकोट स्थान से अवशेष संदूक (casket) के ऊपरी तथा भीतली भाग पर खुदा लेख प्राप्त हुआ है जो यूनानी राजा मिलिन्द के समय का है (ईसा पूर्व दूसरी सदी) उस संदूक के ढकन के अन्दर निम्न लेख खुदा है-प्रण समेद शरीर भगवतो शकमुनिस। पात्र के भीतर भी इसी प्रकार का लेख है—

भग्रवतु सकिमुणिस सम संबुधस शरीर।

इस लेख में बुद्ध के अवशेष को प्राण सहित कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पूजा करने पर आश्चर्य जनक फल मिलता है। बौद्ध लोगों का यह विश्वास था कि अवशेष के पूजा से चमत्कार प्रकट होता है। ईसा पूर्व पहली सदी में स्वात नदी की घाटी में स्थित किसी गांव से अवशेष का संदूक (casket) मिला जिसके निचले भाग पर लेख खुदा है—

इमे शरीर शक मुणिस भग्रवतो बहु जण हितिए।

वहां के एक यूनानी शासक ने भगवान का अवशेष जनसाधारण के हित के लिए स्थापित किया। पहली सदी के क्षत्रप शासक रंजुबल के मथुरा सिंह-स्तम्भ पर इसी प्रकार का लेख है वहां स्तम्भ में अवशेष स्थापित करने की चर्चा है।

श्रे निसिमें (स्तूप) शरिर प्रत्रिठवित्रो भक्रवत्रो शक मुनिस बुधस।

तक्षशिला के शासक पटिक के ताम्रपत्र में भी अवशेष स्थापना का वर्णन है—

पति को अप्रतिठवित भगवत शक मुनिस शरिरं प्रतिथवेति।

इस सम्बन्ध में कहना कठिन है कि उस शासक को अवशेष कहां से मिला। परन्तु इसमें तर्क से काम नहीं लिया जा सकता केवल विश्वास करना है। उसी स्थान के समीप कलवान से प्राप्त ताम्रपत्र में भी निम्न प्रकार का वर्णन मिलता है—

ढ्ड शिलए शरिर प्रइस्तवेति गह थूवमि।

भगवान के अवशेष को राजा अयस ने भ्राता भगिनि दुहिता के साथ गृह स्तूप में स्थापित किया। पहली सदी में यह अवशेष कहां से आया, यह अनिर्वचनीय है। तक्षशिला का एक लेख एक चांदी के पत्र पर खुदा मिला है जो सम्भवतः अवशेष पात्र से निकाला गया होगा। उसमें अयस नामक राजा ने धर्म राजिका स्तूप में भगवान का अवशेष स्थापित किया। तक्षशिला में धर्म राजिका स्तूप को अशोक ने बनवाया था। स्यात् उसकी मरम्मत पहली सदी में पह्लव राजा अय ने की और इसीलिए निम्न प्रकार का उल्लेख किया—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"इश दिवसे प्रदिस्तवित भगवतो धातुओं उरस कोण इंतव्हिण पुत्रण वहलिएण रणो अचए णागरे वास्तवेण। तेण इमे प्रदिस्तवित भगवतो धातुओं धमर इए तक्षशिलए।"

अन्य धातु पत्रों की तरह पेशावर के समीप कुर्रम से ताम्बे का अवशेष-पात्र मिला है जिसके ऊपरी भाग पर अवशेष स्थापना की बात उल्लिखित है—

थूवंमि (स्तूप में) भगवतस् शक्य मुनिस शरिर प्रदिठवेदि (प्रतिष्ठापित किया)।

इस स्तूप का निर्माण अवशेष पर किया गया परन्तु यह ज्ञात नहीं हो सका कि बुद्ध के शरीर के अवशेष कहां से मिले थे। अफगानिस्तान के खवट नामक स्थान पर स्तूप का भग्नावशेष है जिसमें कांसा का पात्र मिला था। इस काँस्य पात्र के नीचे लेख खुदा है।

"वग्रमारेग्रविहरम्नि थुस्तिमि भगवद शक्य मुणे शरिर परिठवेति"

वग्रमरेग नामक विहार के समीप स्तूप भगवान बुद्ध के अवशेष स्थापित किया गया। यह घटना हुविष्क के शासन काल की है। यानी ईसवी सन् की दूसरी सदी तक लेखों में अवशेष स्थापना की चर्चा मिलती है। ईसा पूर्व चौथी सदी से लेकर दूसरी सदी तक के लेखों में बुद्ध के अवशेष स्थापित करने की वार्ता लेखों के सहारे ज्ञात होती है। उसके ऐतिहासिकता पर विवेचन नहीं किया जा सकता। यहाँ इस बात पर बल देना है कि लेखों के अतिरिक्त बुद्ध के शरीर-अवशेष सम्बन्धी विवरण जानना सम्भव नहीं था।

भारतीय लेख तथा वृहत्तर भारत

भारतीय संस्कृतिका वृहत्तर भारत में विस्तार की चर्चा लेखों द्वारा ही मिलती है। यों तो अन्तर्राष्ट्रीय ढंग पर भारत तथा पूर्वी द्वीप समूह के सम्बन्ध का परिज्ञान पाल तथा चोल लेखों से होता है परन्तु चौथी सदी के चम्पा के शिलालेख (नं २, ३) में पुरुष मेध का वर्णन मिलता है। महाराज भद्रवर्मन कहता है कि मैं तुम्हें अग्नि को समर्पित करता हूं। निम्न पंक्ति का उल्लेख इसे प्रमाणित करता है:—नमो देवाय भद्रेश्वर स्वामिपाद प्रसादात अग्नयेत्वा जुष्टं करिष्यामि धर्म महाराज श्री भद्रैश्वर वर्मणो यावच्चन्द्रादित्यौ तावत पुत्र पौत्रं मोक्ष्यति। पृथिवि प्रसादात कार्य सिद्धास्तु। शिवोदासो वद्धयते (चो दिन लेख, मजूमदार चम्पा लेख नं २, ३)

इन्हीं पंक्तियों में शिव नामक दास को यूय से बांध कर पुरुषमेध का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि पुरुष-मेध का अनुकरण चम्पा में भारत से किया गया जहाँ वैदिक (शत० ब्रा०१३

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६, २, १ गोप० ब्रा० ५, ८ आपस्तम्ब (२०, २४, १) तथा कात्यायन २, १ ३] पौराणिक (वायु पुराण १०४, ८४) और बौद्ध साहित्य (सूत्रनिपात्त १, २) में इसका विवरण पाया जाता है। भारत के ब्राह्मणों ने उस उपनिवेश में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया था, यह लेखों के आधार पर सत्य सिद्ध होता है। मध्य एसिया के लेखों से भी इसी प्रकार सांस्कृतिक प्रसार के विवरण उपलब्ध हैं जो भारतीय संस्कृति के प्रसार का परिज्ञान कराते हैं (खरोष्टी लेख भा० १, २, ३—सरकार सेलेक्ट इन्स०पृ २३४)

अभिलेखों से तिथि का ज्ञान

भारतीय अभिलेखों की सहायता से प्राचीन तिथि और काल गणना का ज्ञान हमें हो जाता है। ईसा पूर्व शताब्दी में विक्रम काल गणना का आरम्भ माना गया है जिसकी जानकारी लेखों से ही की जाती है। ईसवी सन् के आरम्भ से शक सम्वत (सं ७८) का प्रारम्भ हुआ जिस का सम्बन्ध कुषाण नरेशों के अभिलेखों से स्थापित किया गया है। कनिष्क से लेकर बासुदेव तक के लेख एक क्रम से ३ से ८०) तिथि युक्त है। नहपान का जूनार लेख ४६ में और रुद्र दामन का जूनागढ़ की प्रशस्ति ७२ वर्ष में उत्कीर्ण की गई थी। इन सब का सम्बन्ध उसी शक सम्वत से निश्चित किया गया है। गुप्त वंश के अभिलेखों का अध्ययन से यही पता लगता है कि उनके लेख गुप्त सम्वत से सम्बन्धित हैं। चन्द्र गुप्त द्वितीय मथुरा लेख की तिथि ८२ और कुमार गुप्त प्रथम का करम दण्डा लेख में ११७ तिथि मिलता है। मनुकुवार प्रतिभा लेख में १२९ खुदा है तो उसके पुत्र स्कन्द गुप्त के जूनागढ़ प्रशस्ति में १३६, १३७, १३८ तिथियों का विवरण पाया जाता है। इस पर विचार करने से यह नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ८२ वर्ष, कुमार गुप्त प्रथम १२९ वर्ष तथा स्कन्द गुप्त ने १३८ वर्ष शासन किया। किसी न किसी काल गणना से उनका सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ेगा। कुमार गुप्त प्रथम के मंदसोर लेख ४९३ तथा ५२९ तथा उसी स्थान के यशोधर्मन के लेख में ५८९ अंक उल्लिखित हैं। इन पर विचार कर दोनों तिथि का सम्बन्ध विक्रम सम्वतसे स्थिर किया गया है (आगे विस्तृत विवेचन देखिए)। इसी तरह मौखरि नरेश ईशान वर्मा के हर-हा लेख की तिथि ६११ (श्लोक २१) मिलती है। उत्तर गुप्त युग के अभिलेखों में पहाडपुर का ताम्रपत्र १५९ तथा एरण का लेख १९१ तिथि युक्त हैं। कुछ लेख हर्ष सम्बत् से सम्बन्धित किए जाते हैं। इस प्रकार अभिलेखों के अध्ययन द्वारा शासकों की शासन-तिथि निश्चित हो जाती है।

भारतीय अभिलेखों में कभी एक छोटी सी घटना का गम्भीर रूप में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चित्रण मिलता है। इसका कारण यह था कि प्रशस्तिकार अपने संरक्षक शासक की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर उस के चरित को अतिरंजित करता था। इस प्रकार की अत्युक्ति पूर्ण प्रशस्ति मध्य युग में अधिक पाई जाती है। गुप्त लेख में एक स्थान पर ऐसी घटना का उल्लेख है जो इतिहास की कसौटी पर नहीं उतरती।

लेखों में अत्युक्ति

मेहरौली के लेख में एक पंक्ति में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजय वर्णित है—

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधि वींर्य्यानिलैर्द्दक्षिणः।

चन्द्रगुप्त द्वितीय को दक्षिण का विजयी कहा गया है परन्तु अन्य प्रमाणों से यह सत्य ज्ञात नहीं होता। इसे अलंकारिक विवरण मानना पड़ेगा। छठी सदी के मध्य में वासुल नामक प्रशस्ति लेखक ने मालवा के शासक यशोधर्मन की विजय यात्रा का वर्णन अतिरंजित शब्दों में किया है। मंदसोर के लेख में विवरण मिलता है कि यशोधर्मन ने लौहित्य (आसाम) से पश्चिमी समुद्र (रत्नाकर) तथा हिमालय से महेन्द्र पर्वत तक भू भाग पर अधिकार कर लिया था। तत्कालीन इतिहास का अनुशीलन यह बतलाता है कि पश्चिम भाग में चालुक्य वंश का राज्य था। मगध में पिछले गुप्त नरेश शासन कर रहे थे। प्रशस्ति में इन शासकों के पराजय का विरण उपस्थित नहीं किया गया है। श्लोक पठनीय है—

आ लौहित्योपकण्ठात्तलवन गहनोपत्यकाद्य महेन्द्रा—
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिन शिखरिण पश्चिमादा पयोधेः।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण हृत मदैः पादयोरानमद्भि—
श्चूड़ारत्नाङ्शु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमिभागा क्रियन्ते॥

इतना ही नहीं यशोधर्मन के दूसरे अभिलेख में राजस्थानीय (राज्यपाल) अभयदत्त के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वह विन्ध्या से अरब सागर तक शासन करता था। यह वास्तविक में सच्ची घटना नहीं कही जा सकती। (मंदसोर शिलालेख मा० स० ५८९, का० इ० इ० ३ पृ० १५२ श्लोक १९) मध्ययुग के अभिलेखों में छोटे शासक के लिए भी परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की पदवी उल्लिखित की गई है। सम्भवतः लेख लिखने वाले को इस पदवी का वास्तविक अर्थ अज्ञात था अथवा अपने संरक्षक राजा के महान् विजेता या शक्तिशाली नरेश दिखलाने का प्रयत्न था। हर्ष से पूर्व महाराजाधिराज की पदवी चक्रवर्ती नरेश के लिए ही प्रयुक्त होती थी। समुद्रगुप्त ऐसे विजेता को केवल महाराजाधिराज कहा गया है जबकि पिछले गुप्त-नरेश (मगध के शासक) जीवित गुप्त को देववर्नाक लेख में महान् उपाधि—परम भट्टारक महाराजाधिराज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परमेश्वर से विभूषित किया गया है (श्री विष्णु गुप्त देवः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्री इज्जादेव्यामुत्पन्नः परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जीवित गुप्त) इस तरह के अनेक दृष्टांत हैं जो सिद्ध करते हैं कि प्रशस्तिकार ने अलंकारिक भाषा में नायक के चरित का अतिरञ्जन किया है।

यह सत्य है कि प्रशस्तियों के सहारे अनेक शासकों के चरित का परिज्ञान हो जाता है परन्तु अभिलेखों के अध्ययन में सतर्कता का व्यवहार उपयोगी है। जिस

वैज्ञानिक तथा तुलनात्मक अध्ययन

ऐतिहासिक तथ्य को जानने के लिए विद्वान् विभिन्न मत उपस्थित करते हैं तथा अन्य सिद्धान्त का खण्डन करते हैं, उनमें किसी सिद्धान्त की पुष्टि के लिए वैज्ञानिक तथा तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। अशोक के धर्म सम्बन्धी प्रश्न को लेकर साहित्यिक विवाद खड़ा हुआ। वह किस मत का मानने वाला था, यही एक विवादास्पद प्रश्न है। सम्पूर्ण धर्म लेखों का वैज्ञानिक विवेचन अशोक को बौद्ध मत का अनुयायी सिद्ध करता है। मौर्य साम्राज्य के उपरान्त भागवतधर्म का प्रचार भी हुआ। जिस वैदिक यज्ञ अथवा समाज की निन्दा अशोक ने की, उसकी पुनः स्थापना हो गई। इस परिणाम पर पहुँचने के लिए सातवाहन लेख, शुंग प्रशस्ति, वेखनगर गरुड़-स्तम्भ लेख तथा घोसुण्डी शिलालेख (नागरी, चित्तौरगढ़ राजपुताना) के लेखों का अनुशीलन आवश्यक हो जाता है। शासकों की शक्ति का अनुमान भी उस वंश के लेखों से ही हो सकता है। लेखों के प्राप्ति स्थान से अमुक राजा के राज्य-विस्तार का पता लगता है परन्तु विभिन्न उल्लेखों का तुलनात्मक अध्ययन जरूरी है। नालंदा तथा गया (विहार प्रदेश) से समुद्र गुप्त के दो ताम्रपत्र मिले हैं जो समुद्रगुप्त के पांचवें तथा नवें वर्ष के कहे गए हैं। इस नालंदा ताम्रपत्र में अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन है जो प्रयाग की प्रशस्ति में उल्लिखित नहीं है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि शासन के ५वें वर्ष में समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया होगा जो असम्भव है। समुद्रगुप्त सर्वप्रथम आर्यवर्त के शासकों को पराजित कर दक्षिण का दिग्विजय किया था। उसके वाद ही अश्वमेध करना समुचित प्रतीत होता है। इस परिस्थिति में ५वें वर्ष में अश्वमेध की कल्पना नहीं की जा सकती। अतएव वैज्ञानिक तथा तुलनात्मक अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि ये दोनों ताम्रपत्र कल्पित हैं। किसी ने व्यक्तिगत लाभ के लिए जाली दानपत्र तैयार कर घोषित कर दिया होगा।

एक साधारण लेख से वैज्ञानिक रीति को अधिक स्पष्ट किया जा सकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। समुद्रगुप्त प्रयाग की प्रशस्ति तथा अन्य सभी गुप्त लेखों में 'लिच्छवी-दौहित्र' कहा गया है। वह लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी का पुत्र था, इसलिए "लिच्छवी-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्या मुत्पन्न" उल्लिखित है। इसकी पुष्टि चन्दगुप्त प्रथम के मुद्रा लेख से की जाती है। राजा द्वारा प्रचलित स्वर्ण सिक्के के अधोभाग पर "कुमार देवी श्री तथा चन्द्रगुप्त" का नाम खुदा है तथा पृष्ठ भाग पर 'लिच्छवयः उत्कीर्ण है। इससे तथ्य का पता लग जाता है कि चन्द्रगुप्त का विवाह लिच्छवी वंशजा कुमारदेवी से हुआ था। समुद्रगुप्त को इसी कारण लिच्छवी दौहित्र कहा गया है। इस प्रकार के अन्य दृष्टांत भी दिये जा सकते हैं। गुप्त वंश की एक मुहर पर प्रथम कुमार गुप्त के पश्चात् पुरुगुप्त का नाम मिलता है और दूसरे अभिलेखों में स्कन्दगुप्त प्रथम कुमार गुप्त का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कहा गया है। इस प्रश्न को लेकर ऐतिहासिक विवाद खड़ा हो गया जिसका समाधान अभी तक न हो सका कि कुमार गुप्त प्रथम का वास्तविक उत्तराधिकारी कौन था? ये थोड़ से उदाहरण ही पर्याप्त हैं जो वैज्ञानिक रीति तथा तुलनात्मक अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालते हैं।

लेखों की अपूर्णता तथा दोष

प्राचीन भारतीय लेखों में शासकों की विशेष चर्चा की गई है। उनके धार्मिक कृत्य पर भी विशेष ध्यान दिया गया है परन्तु प्रजा के प्रति उनके कर्त्तव्य का विवरण नहीं के बराबर है। राजनीतिक वार्त्ताओं को किसी प्रकार सन्तोष जनक नहीं समझा जा सकता। राज्य में नियमों का कौन निर्माता था या किस रूप में प्रजा शासक को उपनियम तैयार करने में सहायता करती थी आदि बातें प्रकाश में नहीं आई हैं। अभिलेखों में दान का वर्णन सर्वदा स्मृतियों पर अवलम्बित है, पर आश्चर्य यह है कि दान ग्राही तथा दान कर्त्ता के संक्षिप्त चर्चा के अतिरिक्त वर्णों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं मिलता। धर्म शास्त्रकारों ने वर्णों के कार्यों, अधिकार तथा स्थिति का सुन्दर वर्णन दिया है किन्तु प्रशस्तिकार इस विषय में मौन हैं। ब्राह्मण किसी अपराध में मृत्युदण्ड से मुक्त समझा जाता रहा परन्तु लेखों में इस सिद्धान्त का उल्लेख नहीं है। वैश्य तथा शूद्र के श्रम, पारिश्रमिक, वस्तुओं के मूल्य, उत्पादन सीमा, उनकी आवश्यकता, सापेक्षिक उपभोग आदि विषयों का ज्ञान अभिलेखों से उपलब्ध नहीं है। शासक आर्थिक उन्नति में किस रूप से सहायता करता था या किस मार्ग से प्रोत्साहन देता यह भी अज्ञात हैं। साहित्यक आधार पर जितना परिज्ञान है उसे अभिलेखों से प्रमाणित नहीं कर पाते हैं। कुछ अंशों में भारतीय प्रशस्तियां अपूर्ण हैं तथा इन दोषों का कारण भी अज्ञात है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ३

अभिलेख लिखने के आधार

प्राचीन भारतीय इतिहास लिखने में प्रशस्तियों के महत्व की चर्चा की गई है। प्राचीन समय में राजाश्रय पाकर कविगण को प्रशंसा के शब्द लिखते समय अथवा किसी घटना का उल्लेख आवश्यक हुआ तो लिखने के आधार वस्तु (जिन पर लेख लिखा जाय) को ढूंढना पड़ा। जिस समय की बात कही जा रही है उस समय कागज क्या ताडपत्र या भोजपत्र का भी प्रयोग लोग नहीं जानते थे। लेखन कला का जन्म भारत में हो गया था। विद्या कण्ठगता थी, इसलिए वेदों के लिखने की भी आवश्यकता न थी। ईसा पूर्व सदियों में सर्व प्रथम प्रस्तर का आधार बनाकर लिखना प्रारम्भ किया गया। तत्पश्चात् धातुओं का प्रयोग होने लगा। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तुएं भी काम में लाई जाती थीं जिन पर सामयिक वृतान्त खुदवाया गया। उन्हीं का विवरण अगली पंक्तियों में उपस्थित किया जायगा। यहां इतना कहना आवश्यक है कि प्रस्तर को स्थायी समझ कर लेख उत्कीर्ण किए गये। साधारणतः जितने प्रकार की आधार वस्तुएं काम में लाई जाती थीं, उन पर खुदे वृतान्त को 'लेख' कहते हैं। राजाज्ञा द्वारा प्रस्तर या धातु पर उत्कीर्ण लेख 'प्रशस्ति' शब्द से प्रसिद्ध है। प्रस्तर कई रूप में आधार निमित्त प्रयुक्त हुआ।

शिलाखण्ड

ईसा पूर्व सदियों में मौर्य सम्राट् अशोक ने अपने धर्म-लेख को समस्त जनता की जानकारी के लिए स्थान-स्थान पर खुदवाया था। उसके चौदह लेख राज्यसीमा के शिलाओं पर खुदे थे जिनको प्रधान शिला लेख के नाम से पुकारते हैं। उसके लेख उत्तर पश्चिम मनसेरा (पेशावर जिला) तथा काठियावाड़ के गिरनार से लेकर पूरव में धौली (उड़ीसा) तक और उत्तर में कालसी (देहरादून, उत्तर प्रदेश) से दक्षिण येरगुडी (करनूल, मद्रास) में पाये गये हैं। उत्तर मौर्य काल में पुष्य-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मित्र शुंग का एक लेख अयोध्या से प्राप्त हुआ है जिसमें उसके जीवन की मुख्य घटनाओं का उल्लेख मिलता है। वह लेख दरवाजे के ऊपरी चौखट पर खोदा गया था। ईसवी सन् की पहली तथा दूसरी सदियों में शक व कुषाण नरेशों ने भी प्रशस्तियां खुदवाई थीं। हुविष्क तथा सोड़ास का मथुरा शिला लेख तथा कनिष्क का मानिक्याला उल्लेखनीय है। सबसे प्रधान लेख महाक्षत्रप रुद्रदामन का है जो १५० ई० में गिरनार में खोदा गया था। वह लेख अशोक के गिरनार वाले लेख के शिलाखण्ड पर ही उत्कीर्ण है। यही लेख संस्कृत साहित्य का सबसे पहला गद्य खण्ड है जो साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालता है। रुद्रदामन के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का सारा वृतान्त उपस्थित करता है।

गुप्त वंश के शासन आरम्भ होने पर अनेक प्रशस्तियां लिखी जाने लगीं। सर्व प्रथम समुद्रगुप्त ने प्रशस्ति खुदवाने का श्री गणेश किया। उसके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त ने भी शिला खण्ड पर लेख खुदवाया जिसमें उस वंश का इतिहास भरा पड़ा है। उसके उत्तराधिकारियों में प्रथम कुमार गुप्त का मंदसोर का लेख तथा स्कन्द गुप्त का जूनागढ़ का लेख प्रसिद्ध है। छठी सदी के राजा यशोवर्मन की प्रशस्ति इसी श्रेणी में रक्खी जाती है। मौखरि राजा ईशान वर्मा की प्रशस्ति (हरहा का लेख) अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें मौखरि इतिहास के अतिरिक्त मालव सम्वत् का उल्लेख पाया जाता है। पिछले गुप्त नरेशों के लेखों में अपसद (गया, बिहार) का लेख मुख्य माना जाता है।

पूर्व मध्य काल (७००–१२०० ई०) में भारत में कोई एक छत्र सम्राट् न था। छोटे-छोटे राजा सीमित क्षेत्र में शासन करते रहे। ऐसी दशा में राजाज्ञा को सीमा या प्रान्तों के शिला खण्डों पर उत्कीर्ण कराने का प्रश्न ही न रहा। सम्भवतः उन्हें उचित स्थान न मिल सका। उस समय सामाजिक परिवर्तन के कारण राजा तथा प्रजा के सम्मुख लेख खुदवाने का नवीन उद्देश आया। राजाज्ञा के प्रसार के लिए लेख नहीं खुदवाये गये किन्तु दान तथा धार्मिक वृतान्त लिखने की परिपाटी चल निकली। यही कारण है कि शिला खण्डों पर प्रशस्ति न खुदवा कर अन्य आधार स्तम्भ अथवा ताम्रपत्र का प्रयोग होने लगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तर पर प्रशस्ति खुदवाने की विशेषता पूर्व मध्य युग में नहीं पाई जाती।

शिलाखण्ड के पश्चात् प्रस्तर का दूसरा रूप स्तम्भ हैं जिस पर लेख लिखवाने की प्रथा ईसा पूर्व सदियों से भारत में चल पड़ी। स्तम्भों के वर्तमान स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तम्भ

से बहुधा लोगों में भ्रम हो जाता है कि स्तम्भ जहां पर खड़े हैं वहीं पर आरम्भ से स्थित हैं। परन्तु सभी के लिए यह कथन उचित नहीं है। मुसलमान बादशाहों ने उन्हें स्थानान्तरित भी किया है। जैसे प्रयाग के किले में खड़ा स्तम्भ (जिस पर अशोक तथा समुद्रगुप्त का लेख खुदे हैं।) कौशाम्बी से तथा दिल्ली में फिरोजशाह कोटला पर स्थित अशोक स्तम्भ अम्बाला या मेरठ से लाया गया था। किन्तु आज भी ऐसे स्तम्भ हैं जो मूल स्थान पर खड़े हैं। जैसे सारनाथ तथा लौरिया के स्तम्भ। अशोक के चौदह प्रधान शिलालेखों के बाद सात स्तम्भ लेखों की गणना होती है जिनमें रूपनाथ, लौरिया, दिल्ली स्तम्भों का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सांची, सारनाथ तथा कौशाम्बी के स्तम्भ लेख द्वितीय श्रेणी में रक्खे जाते हैं। स्तम्भों पर लेख खुदवाने का कारण यह था कि जहां शिला खण्ड उपलब्ध नहीं हैं उस स्थान पर राजाज्ञा की घोषणा स्तम्भ लेख द्वारा की जाती थी। रूपनाथ (मध्य प्रदेश) सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तथा लौरिया (चम्पारन बिहार) आदि स्थानों में किसी प्रकार का प्रस्तर खण्ड अथवा पर्वत श्रेणी न होने के कारण अशोक ने स्तम्भों पर धर्म लेख खुदवाये थे। ये सभी लेख उसके राज्य सीमा में स्थित हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदी में यूनानी राजदूत हेलियोदारस ने भी अपनी धार्मिक भावना को व्यक्त करने के लिये भिलसा (प्राचीन विदिसा) में स्तम्भ पर लेख खुदवाया था। वह आज भी मूलस्थान को सुशोभित कर रहा है और खम्वा बाबा के नाम से प्रसिद्ध है।

गुप्त राजाओं ने भी प्रशस्ति खुदवा कर विजय का वर्णन किया था। सर्व प्रथम कवि हरिषेण ने समुद्रगुप्त के दिग्विजय का विवरण प्रयागस्तम्भ पर उत्कीर्ण किया जिसमें सम्राट् के सम्पूर्ण विजय का वर्णन है। यह लेख अशोक के कौशाम्बी स्तम्भ पर निचले भाग में खुदा है। उसके वंशज प्रथम कुमार गुप्त तथा स्कन्द गुप्त ने स्तम्भ पर लेख खुदवा कर गुप्त वंश की कीर्ति को प्रसारित किया था। स्कन्द का भितरी वाला लेख शासक के विजय व हूणों के पराजय का विस्तृत विवरण उपस्थित करता है। उसके पश्चात् बुधगुप्त तथा भानु गुप्त के स्तम्भ लेख महत्वपूर्ण माने जाते हैं। प्रस्तर के अतिरिक्त द्वितीय चन्द्रगुप्त ने लोहे का स्तम्भ तैयार कराया तथा लेख अंकित कराया था। वह संसार का एक अद्वितीय धातु स्तम्भ है जो दिल्ली के समीप मेहरौली में कई सौ वर्षों से खड़ा है। छठी सदी का यशोधर्मन का मंदसोर स्तम्भ लेख शासक के यश तथा विजय की कथा सुनाता है। इस तरह भारत के प्राचीन शासक गण अपनी कीर्ति लता के विस्तार के लिए स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण कराते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस भावना का बड़ा ही सुन्दर वर्णन समुद्रगुप्त के स्तम्भ लेख में पाया जाता है —कीर्तिमिति स्त्रिदशपति भवन गमनावास ललितसुख विचरणामाक्षाण इव भुवो वाहुरयमुच्छ्रित: स्तम्भः। भाव यह है कि सारी पृथ्वी के विजय से जो कीर्ति मिलती है उसे स्वर्ग तक पहुंचाने के लिए ऊंचा स्तम्भ पृथ्वी के बाहु के समान है।

मध्यकाल में भी यत्र तत्र स्तम्भ खड़ा करने का वर्णन मिलता है। परन्तु उन पर लेख खुदवाने का विशेष महत्व नहीं समझा जाता था।

भारतवर्ष में ईसवी सन् के आरम्भ से महायान शाखा में भक्ति का समावेश हुआ जिसके कारण प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा। यों तो साहित्यिक आधार पर मूर्तियों के निर्माण का प्राचीनतम प्रमाण मिलते हैं परन्तु उतने पुराने उदाहरण नहीं मिले हैं। भागवतधर्म ने जब बौद्धमत को प्रभावित किया, तो पूजा के निमित्त बुद्ध की मूर्ति तैयार की गई। प्रस्तर के इस तीसरे रूप (प्रतिमा) पर भी लेख अंकित किये जाने लगे। जो व्यक्ति उसका दान करता था या जिस शासक के समय में मूर्ति बनी, उस विषय का विवरण प्रतिमा-लेख में पाया जाता है। अधिकतर प्रतिमाओं के आधार-शिला पर लेख उत्कीर्ण किये जाते थे। कभी उनके पृष्ठ भाग पर भी लेख मिलते हैं। इस प्रसंग में मौर्यकाल पूर्व पटना तथा पारखम यक्ष प्रतिमाओं का नाम लिया जा सकता है। मध्ययुग की कुछ सूर्य मूर्ति के पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण लेख पाये गये हैं। पूर्व मध्ययुग (७००-१२०० ई०) की बौद्ध प्रतिमाओं के सिरे भाग पर विशिष्ट लेख (निम्न पद) उत्कीर्ण किया जाता था—

प्रतिमायें

यो धर्म्मा हेतु प्रभवा, हेतुं तेषां तथागतोह्यवदत्
अवदच्य यो निरोधो एवं वादी महाश्चमणः

ईसवी सन् की पहली सदी में बोधगया में विशाल बुद्ध मूर्ति तथा मथुरा के अनेक प्रतिमाओं के आधार शिला पर लेख खुदे मिले हैं। मथुरा से इस प्रकार का बौद्ध तथा जैन प्रतिमा लेख पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुए हैं। उनमें अधिकतर कुषाणवंशी लेख हैं और शक सम्वत् में तिथि भी उल्लिखित है। सारनाथ से एक विशाल बोधिसत्व प्रतिमा मिली है जिस पर कनिष्क के महाक्षत्रप (राज्यपाल) खरपल्लाना द्वार लेख खुदवाया गया था। हुविष्क के समय में बौद्ध तथा जैन प्रतिमाएँ अधिकतर लेख के आधार थीं। उनसे कुषाण इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। मथुरा के क्षत्रप शासकों ने भी मूर्तियों पर लेख खुदवाये थे। यह क्रम बढ़ता ही गया। गुप्त शासकों ने भी कुछ मूर्तियों पर लेख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खुदवाया था जिनमें मनकुमार की बौद्ध प्रतिमा प्रसिद्ध है । करमदण्डा के शिवलिङ्ग पर भी गुप्त लेख मिला है।

पिछले गुप्त नरेशों में द्वितीय कुमार गुप्त बुद्ध गुप्त तथा आदित्यसेन ने क्रमशः बुद्ध प्रतिमा तथा सूर्य मूर्ति के आधार प्रस्तर पर लेख अंकित कराया था । मध्य प्रदेश के एरण नामक स्थान पर वराह भगवान् की विशालकाय मूर्ति है जिस पर हूण राजा तोरमाण के समय की प्रशस्ति है । इस तरह जैन प्रतिमाओं और आयागपट्ट पर लेख पाये जाते हैं। कसिया के महावीर निर्वाण मूर्ति पर भी लेख खुदा है । यद्यपि कुछ लेखों का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है किन्तु इससे पता चलता है कि मूर्तियों के आधार-शिला पर कुछ लेख उत्कीर्ण किये जाते थे । धातु प्रतिमाओं पर उस अनुपात में कम लेख अंकित किये जाते थे (धातु मूर्तियाँ लेख रहित नहीं होती थीं) । उन प्रतिमाओं का भारतीय कला के इतिहास में विशेष स्थान है और उन पर लिखित लेखों से इतिहास की जानकारी में भी सहायता मिलती है ।

प्राचीन समय में बुद्ध के शरीर अवशेष पर अशोक ने अनगिनत स्तूप बनवाया था जिसका उल्लेख चीनी यात्रियों ने किया है । किसी पात्र में फूल (अवशेष) रख दिये जाते और उस पर अण्डाकार या अर्द्ध-वृत्ताकार ढांचा तैयार किया जाता था जो स्तूप के नाम से प्रसिद्ध है । उस स्तूप के बाहर चारों तरफ घेरा (वेष्टनी) तैयार किया जाता जिसमें द्वार (तोरण) भी बने रहते थे। उसी वेष्टनी के स्तम्भ या सूची पर लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। तोरण भी लेखों के आधार थे । भारहुत अमरावती तथा सांची की वेष्टनी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

स्तूप

स्तूप के भी भीतर फूल (अवशेष) सोने या कीमती पत्थर के पात्र में रक्खा जाता तथा उस फूल-पात्र को प्रस्तर के बाक्स में रखते थे। कभी उस पत्थर या पात्र के ढकन पर भी लेख मिलता है। ऐसे पात्रों पर उपलब्ध लेखों में पीपरावा [बस्ती उत्तर प्रदेश] का पात्र-लेख सबसे पुराना है जिस पर अशोक से पूर्व लिपि में लेख अंकित हैं । सांची के द्वितीय स्तूप के ऊपरी भाग से एक पात्र मिला था जिसमें अवशेष रक्खा था । पात्र पर स अक्षर अंकित था जिससे विद्वान् यह अनुमान लगाते हैं कि यह सारीपुत्र के नाम का संक्षिप्तकरण है। अन्य पात्र लेख से बुद्ध के प्रधान शिष्य मोगल्लाना का भी नाम मिला है । इससे प्रकट होता है कि वह स्तूप इन दोनों शिष्यों के स्मारक स्वरूप (अवशेष के साथ) तैयार किया गया था। उत्तर

अवशेष-पात्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चिमी प्रांत के वजौर रियासत से मिलिन्द के समय का एक पात्र लेख प्राप्त हुआ है जिसके अन्दर और ढकन के दोनों तरफ खरोष्ठी में लेख खुदा है। (ए० इ० २४ पृ० ७) अफगानिस्तान के वीमरान स्तूप से भी एक लेख उपलब्ध हुआ है जो कनिष्क के शासन-काल का है। मथुरा से भी अवशेष पात्र मिले हैं जिन पर लेख उत्कीर्ण है। इस तरह स्तूप से सम्बन्धित **पात्र** भी हमें बहुत सी बातों का ज्ञान कराते हैं।

स्तूप की वैष्टनी तथा तोरण पर भी लेख खुदे मिले हैं। सांची के दक्षिण तोरण पर सातवाहन राजा शातकर्णी का नाम है। इस स्थान की वेष्टनी पर विभिन्न व्यक्तियों तथा व्यापारियों के नाम खुदे हैं जिन्होंने उसे दान में दिया था तथा प्रत्येक में 'दानम्' शब्द इसे प्रमाणित करता है। सांची के अतिरिक्त भारहुत की वेष्टनी पर कई जातक का नाम तथा उसका चित्रण मिला है। उस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि वेष्टनी पर बौद्ध कथानकों तथा ऐतिहासिक घटनाओं का जितना प्रदर्शन किया गया है, उन सबका ज्ञान भारहुत वेष्टनी पर अंकित लेखों से हो जाता है। सातों मानुषी बुद्ध के नाम वही से मिलता है। उदाहरण के लिए "भगवतो विपसिनो बोधि" अथवा "भगवतो शकमुनिनो बोधो" प्रस्तर पर प्रदर्शन करते समय उस जातक के उल्लेख से लोगों की विशिष्ट जानकारी हो जाती है। बुद्ध का जन्म, ज्ञान, महाकपि जातक, यक्ष, यक्षिणी के नाम आदि उसी स्थान के अंकित पंक्ति सेस्पष्ट हो जाता है। पूरब के तोरण पर खुदा यह "शुगानां राज्ये रओ गागीपुतस कारितं तोरणम्" लेख घोषित करता है कि भारहुत की वेष्टनी शुंग काल (इसवी पूर्व द्वितीय सदी) में तैयार की गई थी। वहीं से श्रावस्ती के जेतवन और अनाथ पींडक सेठ का नाम ज्ञात हो सका है। अमरावती तथा मथुरा में इस तरह के अनेक स्तूपों के भग्नावशेष निकले हैं। मथुरा के सिंह सिरे के लेख से पता चलता है कि कुषाण के पश्चात् उत्तर पश्चिम भारत की दूसरी शक्ति ने मथुरा पर अस्थायी रूप से अधिकार कर लिया था। उसके प्रांतपति रंजुवल और सोडास शासन कर रहे थे। इस प्रकार पात्र तथा वेष्टनी या तोरण पर उल्लिखित लेखों के सविस्तृत अध्ययन से बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगता है।

मद्रास प्रान्त के गंटूर जिले में नागार्जुनी पर्वत के समीप स्तूप के अवशेष मिले हैं जिन पर वीरपुरुषदत्त (तीसरी सदी) के कई लेख खुदे हैं जिनमें वीरपुरुषदत्त द्वारा अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, वाजपेय तथा अश्वमेध करने का विवरण पाया जाता है यद्यपि वह लेख 'नमो भगवते बुधस' से प्रारम्भ होता है। यह लेख शासक के सहिष्णुता को प्रमाणित करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के अभ्युदय के साथ भिक्षुगण भी घर बार छोड़कर विहार में निवास करने लगे। उस कार्य के लिये ऐसा स्थान चुना गया जो नगर के समीप हो। भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा मांग कर संध्या समय विहार में लौट जाते। इसलिये भिक्षुओं के रहने के लिये नगर से ५ से ८ मील की दूरी पर पर्वतों में गुफायें तैयार होने लगीं। गुहा या गुफा की संख्या सह्यादि (पश्चिमी घाट) में अधिक है। पश्चिमी भारत में प्रायः बौद्ध गुफायें हैं। नासिक, इलोरा, अजंता, भाजा, कार्ले, कनहेरी आदि गुहा ऐसे स्थान हैं जहाँ भिक्षु निवास करते थे। सबसे प्राचीन बराबर पर्वत (गया, बिहार) में भी कुछ गुफायें हैं। उड़ीसा में (यानी पूर्वी भारत) में जैन गुफाये हैं। जैसे मंचपुरी रानी गुम्फा आदि। भारत के पर्वतों में गुहा खोदने की प्रथा प्राचीन है। ऐतिहासिक काल क्रमानुसार सब से प्राचीन बराबर की गुफाओं का वर्णन आता है जो मौर्य काल में तैयार की गई थीं। उनमें अशोक के १२वें तथा १९वें वर्ष का लेख खुदा है। उस सुन्दर गुहा को आजीविक साधुओं को दान में दिया गया था——लाजिना पियदसिना दुवाडस वसाभिसितेना इयं निग्रोह कुभा दिना आजीविकेहि।

गुफा

गुहा खोदने का क्रम चलता रहा। उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप हाथी-गुम्फा में राजा खारवेल की एक लम्बी प्रशस्ति मिली है जिसमें कलिंग राजा के जीवनघटनाओं का पता चलता है। ईसवी सन् की दूसरी सदी में नासिक, जूनार, कार्ले की गुफाओं में क्षत्रप नहपान के जामाता उषवदत्त के कई महत्त्वपूर्ण लेख उत्कीर्ण मिले हैं। उसमें खोदने वाले व्यक्ति का नाम नहीं मिलता किन्तु लेख में दान का वर्णन मिलता है और उत्कीर्ण तिथि के आधार पर नहपान का काल स्थिर किया जाता है। नासिक गुहा लेखों से शक-सातवाहन संघर्ष के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का परिज्ञान हो जाता है। शक लोग किस तरह भारतीय संस्कृति को अपना रहे थे, यह उसके अध्ययन से प्रकट हो जाता है। उन गुफाओं का लेख अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं।

गुप्तकाल में गुहा-निर्माण की कला उन्नत अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी। द्वितीय चन्द्रगुप्त की उदयगिरि गुहा अत्यन्त प्रसिद्ध है। वहीं उसका बयासिवें (८२) वर्ष का लेख भी खुदा है। उस काल में अजंता में कई गुहायें तैयार की गईं। प्रधानतः उनमें सुन्दर सामाजिक चित्र तथा बुद्ध के जन्म की कहानियाँ भी (जातक) चित्रित हैं। छठी सदी के वाकाटक राजा हरिषेण का लेख भी वहीं खुदा हुआ है। ग्वालियर के समीप बाग की गुफायें मुख्यतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चित्रकला से सम्बन्धित हैं। नासिक तथा कनहेरी के लेख ऐतिहासिक हैं। इलौरा की प्रसिद्ध गुफा (कैलाशनाथ मन्दिर) को राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम ने तैयार किया था जो भारत की अद्वितीय गुहा है। गुहा लेख तो ऐतिहासिक घटनाओं को बतलाते ही हैं किन्तु धार्मिक जगत् की भी अनेक बातें ज्ञात हो जाती हैं। पश्चिमी सह्याद्रि की बौद्ध गुफाओं तथा पूरब में उदयगिरि (उड़ीसा) की जैन गुफाओं के सदृश ब्राह्मण धर्मावलम्बियों ने भी इसका अनुकरण किया। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की उदयगिरि (भिलसा के समीप) की वैष्णव गुफा, इलौरा तथा ऐलेफेन्टा की शैव गुहाएँ और दक्षिण में महाबलिपुरम् गुफाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। तात्पर्य यह है कि गुफा में ऐतिहासिक लेख खोदने के बाद बौद्ध कलाकारों ने चित्र के कारण उनकी सुन्दरता बढ़ा दी। यहाँ तक कि अजंता तथा बाग की संसार प्रसिद्ध गुफाएँ उत्कृष्ट चित्रों के कारण अद्वितीय हैं।

ताम्रपट्टिका

ताम्रपट्टिका पर लेख अंकित करने का विशेष कारण था। पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) में सामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन होने लगा। बौद्ध धर्म में वज्रयान के कारण नाना भांति के प्रस्तर तथा धातु प्रतिमायें पूजानिमित्त तैयार होने लगी। वहां धर्म प्रचार के लिये लेख खुदवाना महत्वपूर्ण कार्य न रहा पर मूर्तियों के आधार शिला पर दानकर्त्ता का नाम आवश्यक समझा गया। हिन्दूमत में पांचरात्र के अनुसार चर्या और क्रिया प्रधान धार्मिक कार्य थे। इस कारण इन दोनों कार्यों के लिये दान का विशेष महत्व था। मंदिर निर्माण या पूजा व्यय के लिए धन की आवश्यकता थी। अतएव दान देकर ताम्रपट्टिका पर भूमि का पूर्ण विवरण भी लिखना जरूरी हो गया। दानपत्र (ताम्रपत्र) लिख कर दानग्राही को दे दिया जाता जिसे वह सुरक्षित रखता था। उस दशा में दान लिखने का कार्य ताम्रपट्टिका के अतिरिक्त शिला पर सम्भव नहीं था। दान लेने वाला सरलता से ताम्रपत्र का वर्षों तक संग्रह रखता जिसके कारण उनके वंशज उस भूमि या धन का उपयोग करते रहते। प्राचीन भारत के अनेक ताम्रपत्र खोज से मिले हैं जिनके अध्ययन से ज्ञान-राशि मिली है।

यद्यपि प्रस्तर के बाद धातु की वस्तुओं का प्रयोग लेख लिखने के लिये हुआ था किन्तु यह परिपाटी अत्यन्त प्राचीन नहीं है। ईसवी सन् के बाद से ही ताम्रपट्टिका का प्रयोग होने लगा। सहगौरा का ताम्रपत्र (मौर्यकालीन) इसका अपवाद है। शक तथा पह्लवयुग से पट्टिका का प्रयोग तक्षशिला के लेख (२१ ई०) कलवान (७७ ई०) तथा स्यूविहार लेख के लिये (८९ ई०)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाये जाते हैं।

ताम्रपत्रों के अध्ययन से कई विषयों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें राजनीति के साथ कई प्रकार के सामाजिक अथवा धार्मिक उल्लेख पाये जाते हैं। गुप्त शासन काल से इसका अधिक प्रचार हुआ। अधिकतर ताम्रपत्रों पर दान का विवरण लिखकर दानग्राही को दे दिया जाता था। कभी-कभी राजा विजय के स्मारक में दान पत्र लिखकर ब्राह्मण को दे दिया करते। प्राचीन ताम्रपत्रों का उद्देश राजनीतिक न था। प्रसंग वश उसमें शासन सम्बन्धी बातों का समावेश मिलता है। ताम्रपत्रों में वर्णित दान का उल्लेख यह बतलाता है कि अमुक स्थान दान कर्ता के राज्य सीमा में था।

प्रथम कुमार गुप्त के दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) ताम्रपत्र में जमीन बिक्री का वृतान्त पाया जाता है। स्कन्द गुप्त का इन्दौर वाला ताम्रपत्र गुप्त काल का महत्वपूर्ण 'शासन' समझा जाता है। उसके बाद शासन करने वाले हस्तिन तथा संक्षोभ के अनेक ताम्रपत्र मध्यभारत के खोह नामक स्थान से पाये गये हैं। उनमें सब प्रकार के कर (टैक्स) से मुक्त भूमि के दान का वर्णन मिलता है। छठी सदी में गुप्त राजाओं ने उत्तरी बंगाल में कई ताम्रपत्र लिखवाये जिनका बहुत ही ऐतिहासिक महत्व है। दामोदरपुर के ताम्रपत्र ग्राम तथा विषय (जिला) सम्बन्धी शासन पर प्रकाश डालते हैं। ग्राम सभा को भूमि विक्रय का अधिकार था। सभासदों का चुनाव प्रत्येक पांचवें वर्ष होता था। इस तरह की बातों की जानकारी दामोदरपुर व फरीदपुर के ताम्रपत्रों के अध्ययन से हो जाती है। हर्ष वर्धन के समय में बांसखेरा तथा मधुवन नामक ताम्रपत्र उत्कीर्ण किये गये थे। इनसे उस राजा के जीवन घटनाओं का परिज्ञान हो जाता है। सबसे विशेष बात यह है कि उन ताम्रपत्रों में तिथियों का उल्लेख भी मिलता है। गुप्त काल में गुप्त सम्वत् तथा हर्ष के ताम्रपत्रों में हर्ष सम्वत् का प्रयोग हैं। संक्षोभ के ताम्रपत्र में 'गुप्त नृप राज्यभुक्तौ' का उल्लेख यह बतलाता है कि बुंदेलखंड के शासक गुप्तों के अधीन थे। बंगाल के राजा देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र-लेख अन्तर्राष्ट्रीय ढंग का लेख माना जाता है। उसमें सुमात्रा के राजा बालपुत्रदेव द्वारा पालवंशी देवपाल से नालंदा में निर्मित विहार के लिए भूमिदान की प्रार्थना की गई है। मध्ययुग में धार्मिक भावना की प्रगति के कारण छोटे-छोटे राजा भी ताम्रपट्टिकाओं पर दान का उल्लेख खुदवाते रहे। राजपूत नरेश तथा दक्षिण के राजाओं ने अधिकाधिक लेख ताम्रपत्रों पर ही खुदवाये थे। मध्ययुग में जितने शासन (ताम्रपत्र) मिले हैं उनमें गहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र के ताम्रपत्र संख्या में अधिक हैं। इन पट्टियों पर खुदे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख दान का विषय, दान कर्त्ता, दान ग्राही, भूमिकर आदि विषयों पर प्रकाश-डालते हैं। इसी प्रकार अन्य ताम्रपत्रों से अनेक राजाओं के विषय में जानकारी की जाती है। यदि सम्पूर्ण दानपत्र को विषय वार विभाजन किया जाय तो निम्नप्रकार की बातें ज्ञात होती हैं--

(१) शासक का वंश परिचय जिसके समय में ताम्रपत्र लिखा गया। उस राजा का संक्षिप्त वृतान्त, विजय आदि।

(२) दान लेने वाले व्यक्ति का वंश, वैदिक शाखा तथा गौत्र का वर्णन।

(३) अग्रहार भूमि, उसका माप तथा सीमा।

(४) विभिन्न कर की सूची। दान भूमि से राजकीय कर संग्रह दानग्राही करता था।

(५) राज कर्मचारियों की लम्बी सूची मिलती है जिन्हें अग्रहार भूमि की सूचना दी जाती थी।

(६) दान का अवसर (विजय, तीर्थ, ग्रहण तथा धार्मिक कार्य)

(७) मंगलमय तथा श्राप युक्त पद। दान कर्त्ता के उत्तराधिकारी श्राप के भय से उस दान भूमि को वापस नहीं लें, इसलिए अनेक धर्म श्लोक अंत में उद्धृत किए जाते थे।

भारतीय इतिहास में सिक्कों पर लेख खुदवाने का कार्य यूनानी शासकों ने उत्तर पश्चिम भारत में प्रारम्भ किया। भारतीय यूनानी इतिहास की जानकारी तथा शासकों का नाम मुद्रा-लेख से ही होता है।

सिक्के

उन पर खुदे लेख से दियोदोतस, यूथिडिमस दिमित, अपलदतस या मिलिन्द आदि के नाम जाने जाते हैं। जो इतिहास साहित्यक आधार पर ज्ञात है उसकी पुष्टि मुद्रालेख से हो जाती है। प्राचीन भारत के संघ सिक्कों पर प्रजातंत्रका नाम—मालवा, आर्जूनायन या यौधेय आदि खुदे मिले हैं।

मालवानां जयः। यौधेयगणस्य जयः आदि

उससे लेखन-शैली तथा तिथियों का ज्ञान होता है। यूनानी सिक्कों के अनुकरण पर पह्लव तथा कुषाण राजाओं ने मुद्रा पर लेख अंकित कराया। कुषाण नरेशों ने पूर्व प्रचलित चाँदी सिक्कों को हटाकर स्वर्ण-मुद्रा तैयार किया जिससे पता चलता है कि उनका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय नीति पर आधारित था। साइबेरिया से सोना मंगाकर कुषाण राजाओं ने उत्तर प्रदेश से मध्य एसिया पर्यन्त भू भाग पर स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन किया। वीभ कदफिस सर्व प्रथम नरेश था जिसकी स्वर्ण मुद्राएं, आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। मुद्रा-लेख 'मह-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रजस रजदिरजस सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस विम कदफिसस त्रदर" यह बतलाता है कि वह शिव, का पुजारी था। यह धार्मिक परम्परा कुषाण राजा वासुदेव तक चलती रही। पह्लव लेख बतलाते हैं कि राजा मोग ने ईरानी पदवी धारण किया था (रजतिरजस महतस) उस पदवी को कुषाण राजाओं ने भी प्रचलित किया था। कुषाण राजा कनिष्क के मुद्रा लेख से पता चलता है कि बौद्ध शासक ने हिन्दू देवता (शिव) यूनानी देवता (अरदोक्षा आदि) ईरानी देवता (सूर्य आदि) तथा बौद्ध देवता (बुद्ध) को सहिष्णुता के कारण ही सिक्कों पर स्थान दिया था।

उसी के अधीन गवर्नर पश्चिमी भारत में महाक्षत्रप पदवी धारण कर राज्य करते रहे। वास्तविकता तो यह है कि पश्चिमी भारत के शक जाति का पूरा इतिहास मुद्रा लेखों से ज्ञात हो जाता है। उनके लेखों में पिता पुत्र या शासक तथा उसके उत्तराधिकारी के नाम अंकित रहते हैं—

(१) राञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्न पुत्रस
राञो महाक्षत्रप रुद्रसिंहस
(२) रजो क्षहरतस नहपनस

पश्चिमी भारत तथा उत्तरी भारत में चौथी सदी से गुप्त सम्राटों ने राज्य आरम्भ किया और पिछले कुषाण नरेशों के सिक्कों के अनुकरण पर अपनी मुद्रा नीति स्थिर की। उनके स्वर्ण मुद्राओं पर राजा के नाम के साथ संस्कृत भाषा में छंदोबद्ध लेख खुदा है। सम्भवतः उस समय संस्कृत राजभाषा थी। संस्कृत साहित्य के उपगीति व पृथ्वी आदि छंदों में लेख अंकित कराए गए। राजा के लिए चाँदी के सिक्कों पर 'परम भागवत्' की उपाधि मिलती है जिससे उनके वैष्णव मतानुयायी होने का प्रमाण मिलता है। कई घटनाएं उन मुद्रा-लेखों से प्रकट होती है—उदाहरणार्थ

(१) समरशतवितत विजयो जितरिपु रजितो दिवं जयति
(२) राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः
(३) अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितै दिवं जयति

मुद्रा लेखों से समुद्र गुप्त के युद्ध में विजयी होने तथा अश्वमेध यज्ञ करने का परिज्ञान होता है। चन्द्र गुप्त द्वितीय के मुद्रा पर 'परमभागवतो महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः' अंकित है। कुमार गुप्त प्रथम के मुद्रा लेख—(अ) कुमार गुप्तो युधि सिंह विक्रमः तथा (ब) भर्त्ता खङ्गत्राता कुमार गुप्तो जयत्यनिशम् राजा के हाथों सिंह तथा गैंड़ा के मारने की घटना वर्णित करते हैं।

गुप्त वंश के पश्चात् मध्ययुग में विदेशी जाति हूण भी भारत में आकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतीय संस्कृति के उपासक हो गए, जिसकी जानकारी उनके मुद्रा लेख से होती है। हूण राजा मिहिर के सिक्कों 'जयतुवृषः' उत्कीर्ण है जो उसे शैवमतावलम्बी घोषित करता है। कहने का सारांश यह है कि मुद्रा लेख वास्तविक इतिहास के अध्ययन में सहायता करते हैं।

इस प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि सिकों पर खुदे लेख की लिपि भारतीय लिपि के विकास को बतलाती है। यूनानी राजा दिमित, पंतलेव, अगुथकल, अपलदतास या मिलिन्द ने उत्तर पश्चिम भारत में प्रचलित खरोष्ठी का प्रयौग किया था। पश्चिमी भारत में क्षत्रय शक नरेशों ने ब्राह्मी का प्रयांग किया। प्रजातंत्र शासकों के सिक्कों पर ब्राह्मी अंकित है। गुप्त राजाओं ने गुप्त लिपि को प्रयुक्त किया। मध्ययुग के सिक्कों पर नागरी लिपि में शासकों का नाम-श्रीमत् गोविन्द चन्द्र देव, गांगेदेव, परिमर्दिदेव, पृथ्वीराजदेव आदि लेख अंकित है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुद्रा पर खुदे लेख भारतीय लिपि के विकास का भी परिज्ञान कराते हैं।

प्रशस्ति लिखने के आभार की सूची में मुद्रा या मुहरें की गणना विशेष रूप से की जाती है। इन मुहरों को विषय के विचार से कई भागों में विभक्त किया जा सकता है।

मुहरें

धार्मिक मुहरें जिनका सम्बन्ध मंदिर या विहार से था। दूसरे विभाग में राजकीय मुहरों को रखा जा सकतां है जिन पर शासक का नाम खुदा रहता था और साधारणतया वे ताम्रपट्टिओं से जुड़े रहते थे। तीसरे विभाग में कर्मचारियों की मुहरें हैं जिन्हें कार्यालय से पत्रव्यवहार में प्रयोग किया जाता था। कुछ निज़ी मुहरें भी कुदाई से मिली हैं जिसमें व्यक्तिगत लेख खुदा है। यदि प्रयुक्त सामग्री की दृष्टि से देखा जाय तो पता चलता है कि मुहरों मिट्टी, ताम्बा कांस्य, प्रस्तर तथा हाथी दाँत की बनाई जाती थीं। इस तरह की मुहरें भीटां (प्रयाग के समीप उत्तर प्रदेश) से प्राप्त हुई हैं। धातु की मुहरों पर लेख उत्कीर्ण कर किसी देवता को आकृति भी ऊपरी भाग में तैयार की जाती थी। देवता की प्रविना रे विभिन्न मतों का परिज्ञान हो जाता है। भीटा की मुहरों पर शिव लिङ्ग त्रिशूल तथा वृषभ की आकृति मिलती है तथा नोचे गुप्त लिपि में लेख अंकित है। नालंदा से जो ताम्बे या मिट्टी की धार्मिक मुहरें प्राप्त हुई हैं उन पर बुद्ध की प्रतिमा है। राज वंशों से सम्बन्धित कुछ लेखों के आरम्भ में जो मुहरें जुड़ी हैं या निर्मित हैं उनसे भी धर्म का ज्ञान होता है। गुप्त वंश के भितरी मुद्रा हर गरुड़ की आकृति है तथा नीचे कुमार गुप्त प्रथम से द्वितीय कुमार गुप्त तक वंश वृक्ष का उल्लेख है। इससे उसे वैष्णव मत से सम्बन्धित मुद्रा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मानते हैं। पालवंशी नरेश धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र के ऊपरी भाग में बुद्ध का प्रतीक (धर्मचक्र तथा दो हिरन) तथा राजा का नाम श्री धर्मपाल देवस्य खुदा है। देवपाल के नालंदा ताम्रपत्र में भी ऐसी ही मुद्रा संलग्न है जो राजा को बौद्ध घोषित करती हैं। इसी प्रकार सेन लेख में शिव की प्रतिमा (सदाशिव) शैव मत से सम्बन्ध प्रकट करता है।

पूर्व मध्य युग से मुहरों का सुन्दर इतिहास क्रमबद्ध रूप में है। प्रत्येक ताम्रपत्र से एक धातु मुद्रा (अंगूठी की तरह) जुड़ी रहती थी। वही उस आज्ञापत्र को प्रमाणित करती थी। यह मुद्राएं राजकीय विभाग में रक्खी जाती हैं। उन पर कुल देवता या ध्वज का चिन्ह अंकित मिलता है। जिन्हें शासक सिक्के या ध्वज पर स्थान देते रहे। भितरी मुद्रा, सर्व वर्मन मौखरि का असीरगढ़ की मुद्रा तथा हर्षवर्धन की सोनपत वाली मुहर राजकीय श्रेणी में रक्खी जा सकती है। इस प्रसंग में भीटा से प्राप्त कुछ मुहरों का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। यहां से सातवाहन नरेश गोतमी पुत्र सातकर्णी की मुहर मिली है जिससे उस वंश का सम्बन्ध प्रकट होता है (आ०स० रि० १९११-१२ पृ० ५१) पांचवीं सदी से मिट्टी की मुहरें वैसाली (वसाढ़) तथा नालंदा में अधिक संख्या में मिली हैं। मिट्टी की मुहर धातु के सांचे से तैयार की जाती जिन पर आकृति तथा लेख दोनों उभड़ आता था। वास्तविकता तो यह है कि सांचा ही लेख का असली आधार था जिसमें उलटे रीति से आकृति या लेख उत्कीर्ण किए जाते थे। मृत पिंड पर दबाव डालने से सांचे की सारी कलात्मक नमूना उमड़ आता। उस कच्ची मिट्टी को आग में पका देते ताकि पक्के मिट्टी की मुहर स्थायी रह सके। नालंदा की ऐसी मुहरें धार्मिक हैं। बुद्ध की प्रतिमा तथा "योधम्मा हेतु प्रभवा" आदि मंत्र खुदा है। कुछ मुहरें संघ के आचार्य से सम्बन्धित मिली हैं (आ० स० मे० नं० ५९) भीटा से प्राप्त मुहरों का विशेष महत्व है। उनमें कुछ पदाधिकारियों के कार्यालय से तथा कुछ निगम (व्यापारिकसंघ) से सम्बन्धित है। महासेनापति, महादण्डनायक अथवा कुमारामात्याधिकरणस्य लेख खुदे हैं। कुछ पर निगम शब्द का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार वैशाली (मुज्जफरपुर, बिहार) की मुहरें तत्कालीन शासन पद्धति पर प्रकाश डालती हैं इन पर गुप्त लिपि में कर्मचारियों के कार्यालय तथा श्रेणी (गण) से सम्बन्धित लेख खुदे हैं।

लेख निम्न प्रकार के हैं—

(१) तीरभुक्तयुपरिकाधिकरणस्य
(तीरहुत के राज्यपाल का कार्यालय)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(२) कुमारामात्याधिकरणस्य
(कुमारामात्य के कार्यालय का)
(३) श्रेष्ठि निगमस्य
(श्रेष्ठी के संघ का)
(४) श्रेष्ठी श्री दासस्य
(श्री दास सेठी की मुहर)

इतना ही नहीं वैशाली के राजकुमार गोविन्द गुप्त तथा रानी ध्रुव देवी (चन्द्र गुप्त द्वितीय की पत्नी) के नाम भी मुहरों में खुदे मिले हैं।

भीटा से व्यक्तिगत मुहरें भी प्राप्त हुई हैं जिन पर 'आदित्यस्य', कौसिक-देवस्य, वसुदेवस्य, पुसमितस या विष्णुचन्द्र नामक व्यक्तियों के नाम अंकित हैं। इसी प्रकार स्थान से सम्बन्धित 'चित्रग्राम' या 'विछीग्राम' लेख अमुक ग्राम की मुहर कहे जा सकते हैं (आ स. रि. १९११-१२ ष्ट० ५६८) कुछ दिन हुए काशी के समीप राजघाट की खुदाई में बहुत सी मुहरें मिली हैं जिनको लिपि के आधार गुप्त कालीन माना गया है। अधिकतर मुहरों पर धार्मिक लेख खुदे हैं। उनके अध्ययन से पता चलता है कि काशी में शैवमत का कितना अधिक प्रचार था।

इस प्रसंग में प्रागऐतिहासिक युग के नगर मोहेनजोदड़ो व हरप्पा से प्राप्त मुहरों के सम्वन्ध में कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। आधुनिक समय में अहम-दाबाद के पास लोथल में जो खुदाई हो रही है वहां भी वैसी ही मुहरें निकली हैं। वह मुहरें सज्जी की बनती थीं और उन पर धातु की नुकीली कील से (Burin) चित्रमय लिपि में कुछ खोदा गया है। उन पर गैंडा, हाथी, शेर, बैल, भैंस आदि की आकृतियां हैं। जो कुछ खुदा है वह अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। सम्भवतः ये मुहरें तावीज की तरह पहनी जाती थीं। उस लिपि का ज्ञान हो जाने पर यह कहा जा सकेगा कि ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष में उस भाग के लोग कौनसी भाषा जानते थे।

प्राचीन समय में स्तूप के चारों तरफ वेदिका तैयार की जाती थी ताकि जनता उस पवित्र स्तूप को संसार से पृथक समझे। सांची, बोधगया, भारहुत तथा अमरावती की वेदिकाओं का नाम इस प्रसंग में लिया

वेदिका

जा सकता है। यद्यपि सांची की वेदिका सादी है और अन्य सभी खुदी हैं तथापि उन पर अधिक लेख अंकित हैं। जिस व्यक्ति ने वेदिका के किसी हिस्से को दान किया था, वहां उसका नाम खुदा है। सांची के मुख्य वेदिका पर गुप्त सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त का लेख अंकित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसी तरह भारहुत में शुंग कालीन लेख मिलता है (शुंगानां राज्ये)। जातक कथाओं तथा बुद्ध (मानुषी) और नृत्य के दृश्य में अप्सराओं के नाम अंकित हैं। बोधगया की वेदिका पर ईसा पूर्व तिथि में लेख नहीं मिलता परन्तु बाद में उन पर लेख खुदवा दिया गया जिनसे बोधगया के इतिहास पर प्रभाव पड़ता है। अमरावती के लेख से पता चलता है कि सातवाहन नरेशों के समय में इसका निर्माण हुआ था। सांची के दक्षिण तोरण पर भी शातकर्णी का नाम मिलता है। इस तरह वेदिकाओं पर उत्कीर्ण लेख इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

यह जैन धर्म से सम्बन्धित एक चार कोना प्रस्तर है जिस पर तीर्थंकर महावीर की मूर्ति तथा अष्ट मांगलिक वस्तुओं की आकृति खुदी रहती है।

आयागपट्ट

मथुरा के कंकाली टीला से एक आयागपट्ट मिला है जिस पर अमोहिनी का लेख मिलता है। [अमोहिनिये सहा पुत्रेण पालघोषेण पोठघोषेण धनघोषेण आर्यवती (जैन आयागपट्ट) प्रतिथापिता] तीर्थंकर की मूर्ति विशेष महत्वपूर्ण है और उसके पूजा के निमित्त आयागपट्ट का दान किया जाता था। यों तो इस तरह के प्रस्तर पर शुंग राजा पुष्पमित्र का लेख अयोध्या से मिला है परन्तु आयागपट्ट जैन धर्म में पूजा निमित्त तैयार किया जाता था।

पुराने समय में मन्दिर तथा प्रतिमा के नीचे कुछ ईंटों पर लेख या अक्षर खोदे जाते थे जिनको कनिंघम ने पता लगाया था। मथुरा संग्रहालय में ईसा-पूर्व पहली सदी के ईंट सुरक्षित हैं जिन पर अक्षर खुदे हैं।

ईंट तथा मृतिका-पात्र

ईंट के अतिरिक्त मिट्टी के पात्रों पर पर भी लेख मिलते हैं। कुम्हरार की खुदाई से पात्र के एक हिस्से पर गुप्त लिपि में "अरोग्य विहारे भिक्षुसंघस्य" लिखा मिला है। इस तरह के ईंट या पात्र पर लेख यदा कदा मिलते हैं। भारत में इस तरह लिखने की परिपाटी कम होगी।

लिखने के आधार सम्बन्धी प्रश्न को समाप्त करते यह संकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है कि ईसवी सन् के कई सदियों बाद भोजपत्र, ताड़पत्र, वस्त्र चमड़ा तथा कागज पर पुस्तकें लिखी गईं। ईरानी भाषा में चमड़ा को पुस्तक कहते हैं इसलिए ग्रन्थ को पुस्तक का नाम दिया गया। उड़ीसा में ताड़पत्र पर नुकीली कील से अक्षर खोदे जाते थे और बाद में उस पर स्याही का लेप लगाया जाता। यही कारण है कि लेपन के कार्य से 'लिपि' शब्द की उत्पत्ति हुई। इस प्रश्न का विस्तृत विवरण यहाँ अप्रासंगिक होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ४

प्रशस्ति-अंकन के सुअवसर एवं स्थान

प्राचीन भारत के समस्त अभिलेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा (शासक) तथा व्यक्ति विशेष द्वारा लेख विभिन्न अवसरों पर उत्कीर्ण किए गए थे। पिछले धर्मशास्त्र ग्रन्थों में ऐसा ही उल्लेख पाया जाता है। स्मृतिचन्द्रिका के व्यवहार भाग में "लौकिकं राजकीयं च लेख्यं विद्याद् द्विलक्षणम् (लेख राजा तथा प्रजा का)" दो प्रकार के लेख का वर्णन मिलता है। शासक अपनी राज-आज्ञा को प्रजा तक पहुंचाने के लिए लेख खुदवाते थे। उस समय राजाज्ञा को चिरस्थायी करने का अन्य साधन न था अतः लेख अंकित करना आवश्यक हो गया। अशोक ने अपनी धार्मिक आज्ञाओं को प्रस्तर तथा स्तम्भों पर खुदवाया था। उसके चौदह शिलालेख उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खुदवाए गए थे। उन में धार्मिक कार्य अथवा पदाधिकारी की नियुक्ति तथा उपदेश की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया है। अशोक ने मठ में मतभेद देखकर गौड़ स्तम्भ लेख तैयार कराया था ताकि भिक्षु डर कर शान्त हो जायं और विहारों की पवित्रता बनी रहे। अशोक के लेखों को आज्ञापत्र की श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

(कार्यमादिश्यते येन तदाज्ञापत्रमुच्यते-स्मृतिचन्द्रिका)

इन धार्मिक-पत्रों के खुदवाने का कोई निश्चित अवसर न था पर अशोक ने अहिंसा में प्रजा की आस्था लाने के लिए लेखों को उत्कीर्ण कराया (से अज यदा धम्मलिपि लिखिता)। समाज में सदाचार लाना उसका मुख्य ध्येय था। लेकिन अशोक के बाद ऐसे लेख कम मिलते हैं। भिलसा के गरुण स्तम्भ की प्रशस्ति में उसी प्रकार से सदाचार की बातें (तीन मार्ग) उल्लिखित मिलती है (त्याग, आत्म संयम तथा राग रहित)।

त्रिनि अमृत पदानि इअ सु-अनुठितानि।
नेयंति स्वर्गं दम चाग अप्रमाद।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालान्तर में धर्मलिपि का स्वरूप परिवर्तित हो गया और धार्मिक अवसर (यात्रा तथा दान आदि) पर लेख उत्कीर्ण होने लगे।

अशोक ने स्वयं लुम्बिनी स्तम्भ पर लिखा है कि भगवान बुद्ध का यह जन्म-स्थान था इस कारण यह स्तम्भ-लेख अंकित किया गया (हिद बुधे जाते सक्य मुनिति सिला-विगड़ भीचा कालापित सिला थमे च उस

धार्मिक अवसर

पापिते) इसका भाव यह है कि बौद्ध तीर्थ की यात्रा कर अशोक ने लेख खुदवाया था। नासिक लेख में महाक्षत्रप नहपान के जामाता उषवदत्त ने पुष्कर तीर्थ (अजमेर, राजपुताना) में जाकर दान किया और लेख खुदवाया । मध्ययुग में गहड़वाल नरेश गोविंद चन्द्रदेव के अनेक ताम्रपत्र काशी के पास कमौली ग्राम से मिले हैं जिनमें ताम्रपट्टिका पर तीर्थ यात्रा से सम्बन्धित लेख खोदने का विवरण पाया जाता है।

ईसवी पूर्व सदियों में सातवाहन नरेश शातकर्णी ने अनेक वैदिक यज्ञ किया था जिसका विवरण उसकी पत्नी नागनिका ने नानाघाट के स्थान पर उत्कीर्ण कराया। ऐसी ही घटना गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्कों पर लिखित है। मुद्रालेख में "राजाधिराज पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्या हृत वाजिमेधः" उत्कीर्ण है। इससे समुद्र गुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ की घटना को चिरस्थायी बना दिया गया। सातकर्णी के समकालीन भारतीय स्तूपों से सम्बन्धित वेदिका अथवा तोरण पर ऐसे लेख मिले हैं जिनसे पता चलता है कि विभिन्न लोगों ने उसे तैयार किया था। सांची की वेदिका तथा तोरण पर अनेक लेख उत्कीर्ण हैं। भारहुत वेदिका पर भी ऐसे लेखों की कमी नहीं है। दक्षिण भारत के अमरावती वेदिका पर भी लेख उत्कीर्ण हैं। ईसवी सन् के आरम्भ से मूर्तियों की आधार शिला पर लेख खुदवाने की परिपाटी चल पड़ी। कुषाण युग के बुद्ध प्रतिमा पर ऐसे अनेक लेख मिले हैं। सारनाथ की प्रसिद्ध बोधिसत्व की प्रतिमा के अधो भाग पर कशिष्क के तीसरे वर्ष का लेख खुदा है। मध्ययुग में प्रतिमा के आधार शिला तथा प्रतिमा के सिरो भाग की ओर लेख उत्कीर्ण कराने का अधिक प्रचलन था। प्रायः बौद्ध प्रतिमाओं के ऊपरी सिरे की ओर एक सा मंत्र उत्कीर्ण मिलता है।

यो धम्मा हेतु प्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्
तेषां च यो निरोधो एवं वादी महाश्रमणः।

छठी सदी से बारहवीं सदी तक पूर्वी भारत के प्रस्तर तथा धातु मूर्तियों पर यह लेख मिला है। आधार शिला पर उत्कीर्ण लेखों में तिथियां भी मिलती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं। जिससे बंगाल के पालवंशी राजाओं के नाम तथा तिथि ज्ञात हो जाती है। पालयुग के हिन्दू प्रतिमाओं के ऊपरी भाग पर भी लेख खोदने की परिपाटी चल पड़ी थी। कहीं प्रतिमाओं के दान का भी विवरण है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है और दान का विवरण साहित्य के अतिरिक्त लेखों में अधिक पाया जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में यह उल्लेख मिलता है कि दान देकर राजा को स्थायी रूप से लेख लिखवा देना

दान का अवसर चाहिए।[१]

दत्वा भूमि निबंधं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत्।
पट्टे वा ताम्र पट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिन्हितम्।

प्राचीन युग के शासक इस बात को ध्यान में रखकर प्रस्तर या ताम्रपट्टिका पर लेख खुदवाते रहे। मौर्यकालीन गया जिला (बिहार) में स्थित बराबर पर्वत का गुहा लेख दान का सबसे प्राचीन उदाहरण है। ईसा पूर्व सदियों में सांची वेदिका पर उस अंश के दान कर्त्ता का नाम खुदा है। नासिक लेख में उषददत्त द्वारा दान का उल्लेख मिलता है कि तीन हजार कार्षापण श्रेणियों के बैंक में सूद पर जमा किया गया था। उस आय को भिक्षुओं के भोजन तथा चीवर के निमित्त व्यय किया जाता था। उषवदत्त ने प्रभास नामक तीर्थ में आठ ब्राह्मण कन्या के विवाह निमित्त दान दिया तथा दमण ताप्ती आदि नदियों के घाट को निःशुल्क घोषित किया। राम तीर्थ के ब्राह्मण साधुओं के लिए गुप्त दान में दिया था। गुप्त युग से अग्रहार देने की परिपाटी चल पड़ी। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ (इष्ट) तथा दान (पूर्त) का वर्णन मिलता है। पुराने समय में गुहा, चैत्य, मण्डप, वापी आदि दान में दिये गये थे परन्तु कालान्तर में (प्रायः गुप्त युग के पश्चात्) ब्राह्मणों के अतिरिक्त संस्थाओं को भूमिदान की प्रथा चल पड़ी थी। भूमिदान को शासन कहते थे और अधिकतर ताम्रपत्र पर खुदे हैं। पहाड़पुर, दामोदरपुर, खोह तथा प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र गुप्त युग के शासन माने जा सकते हैं। पूर्व मध्य काल में भी ऐसे लेखों की कमी न थी। वांसखेरा ताम्रपत्र, बलभी दान पत्र, वाकाटक नरेशों के ताम्रपत्र, बादामी के चालुक्य राजाओं के शासन, राष्ट्रकट, प्रतिहार, चेदि तथा गहड़वाल नरेशों के अनेक ताम्रपत्र इसी श्रेणी में रक्खे जाते हैं। प्रत्येक ताम्रपत्र में मंगलाचरण के पश्चात् राजा की वंशावली, भमि का नाम, सीमा कर आदि का नाम, दान ग्राही की विद्वता एवं गुणों की प्रशंसा तथा शासन के पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। ब्राह्मणों को अग्रहार देने के अतिरिक्त संस्थाओं को जो भूमि दान में दी जाती थी उसका भी विवरण

---

१. विस्तृत विवरण अगले पृष्ठों में देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ताम्रपत्र पर अंकित होता था ।

बंगाल के पाल नरेश देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र विशेषरूप से उल्लेखनीय है। पाल नरेश ने जावाद्वीप के शासक बालपुत्र देव द्वारा निर्मित नालंदा के बिहार को पांच गांव दान में दिया था। इस कारण यह ताम्रपत्र वैदेशिक सम्बन्ध पर भी प्रकाश डालता है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालंदा महाविहार को दो सौ ग्राम दान में दिए गए थे। पाल राजाओं ने विक्रमशीला विश्वविद्यालय को भी आर्थिक सहायता दी तथा दान देकर शासक ने पवित्र भावनाओं का परिचय दिया था।

मंदिरों का निर्माण तथा पुनरुद्धार का भी विवरण लेखों में भरा पड़ा है। कुमार गुप्त प्रथम के मंदसोर वाले लेख में श्रेणी द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण का विवरण निम्न प्रकार है :—

श्रेणी भूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्त-रश्मेः

निर्माण के सदृश मंदिरों के पुनरुद्धार का कार्य उतना ही पवित्र तथा धार्मिक समझा जाता था। लेखों में 'खण्ड स्फुट संस्कार' शब्दों में उसकी अभिव्यक्ति की गई है। दामोदरपुर के ताम्रपत्र में 'श्वेत वाराह स्वामिनी देवकुल खन्ड स्फुट प्रति संस्कार करणाय' वाक्य से वराह स्वामी के मन्दिर के उद्धार की बात उल्लिखित है। राजपुताना के लेखों के इस तरह का अधिक विवरण पाया जाता है। परमार लेख में विधवा रानी द्वारा मंदिर के जीर्णोद्धार कर पुन्य अर्जन का वर्णन मिलता है। लेखों में निम्न प्रकार के वाक्य मिलते हैं:—

खण्ड स्फुट देवगृह जगती समरचनार्थम्

(ए० इ० १२ पृ० ११५)

खण्ड स्फुट विचरित पतित संस्करार्थम्

(का० इ० इ० ४ पृ० १५०)

खण्ड स्फुटित समरचनादिपु धर्मोपियोग्यं कर्त्तव्यम्

(ए० इ० १९ पृ० ६२)

इस उदाहरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि दसवीं सदी के बाद मंदिरों का संस्कार अत्यन्त पुण्य का कार्य समझा जाने लगा। सम्भवतः मुसलमानों द्वारा मंदिरों के नष्ट किए जाने पर धनीमानी लोगों का ध्यान निर्माण से हटकर संस्कार की ओर आकृष्ट हुआ। जोधपुर के एक लेख (ए० इ० भा० २०) तथा आसाम के लेख (इ० हि० का भा २२ पृष्ठ १२) में इसी प्रकार का अक्षरशः उल्लेख मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राचीन भारत में विजय यात्रा के समाप्त हो जाने पर शासक लेख उत्कीर्ण कराते ताकि उनके विजय का विवरग अन्य लोग तथा उत्तराधिकारियों को ज्ञात हो जाय। इस प्रसंग में प्रयाग का स्तम्भ लेख, उदयगिरि लेख, अयहोल की प्रशस्ति, जोधपुर का अभिलेख तथा भोर संग्रहालय का ताम्रपत्र क्रमशः समुद्र गुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त चालुक्य राजा द्वितीय पुलकेशी, प्रतिहार नरेश भोज तथा राष्ट्रकूट ध्रूवराज के विजय का वृत्तांत उपस्थित करता है। उनमें राजाओं के दिग्विजय व युद्ध में विजय का विवरण दिया गया है। इन लेखों का मुख्य ध्येय राजा की विजय कीर्ति को चिरस्थायी करना था अतएव प्रशस्तिकार ने अपने आश्रयदाता या शासक के विजय का सुन्दर वर्णन किया है। गुप्त सम्राट द्वितीय चन्द्र गुप्त का मेहरौली लौहस्तम्भ पर चन्द्र नाम से शासक के विजय का वर्णन अंकित है। यशोधर्मन का मंदसोर का लेख उसके युद्ध कौशल का वर्णन करता है। उसीमें उसके हाथों हूण नरेश के पराजय का विवरण मिलता है।

विजय यात्रा

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधि र्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिण।

(मेहरौली लेख)

आ लौहित्योपकण्ठात्तलवन गहनो पत्यकादा महेन्द्रा
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिन शिखरिण पश्चिमादा पयोधः
चूड़ा-पुष्पोपहारैर्म्मिहिर कुल नृपेणार्च्चितं पाद युग्मं

(मंदसोर की प्रशस्ति)

ऐसे स्थानों पर राजा की कीर्ति को चिरस्थायी करने की भावना काम करती थी अतः उनमें कुछ अत्युक्ति भी मिलती है।

मध्य युग के परमार लेख में तो "कोकण विजय पव्वर्णि" वाक्य का स्पष्ट उल्लेख है। गाहड़वाल प्रशस्ति जयचन्द्र के अभिषेक के अवसर पर अंकित की गई थी। इस प्रकार शासक के विजय यात्रा के अन्त में भी प्रशस्ति अंकित करान की परिपाटी चल पड़ी।

प्राचीन समय में सामाजिक अवसरों पर लेख उत्कीर्ण कराने की परिपाटी अधिक नहीं थी परन्तु मध्ययुग की प्रशस्तियों में इसका वर्णन पाया जाता है। गाहड़वाल राजा जयचन्द्र ने राजकुमार के जन्म तथा चूडा-कर्म के अवसर दान दिया था। दानपत्र में "राजपुत्र श्री हरिश्चन्द्र नाम करणे" का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त मध्ययुग में अनेक त्यौहारों पर भी दान देने का विवरण

सामाजिक अवसर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाया जाता है। संक्रान्ति, अक्षय तृतीया, राम नवमी, कृष्णजन्माष्टमी, महा सप्तमी, एकादशी तथा अधिक मास में भी दान दिया जाता था। माता-पिता के "पार्वणि श्राद्ध" के अवसर पर गाहड़वाल तथा कलचुरी नरेशों द्वारा दान का उल्लेख निम्न शब्दों में मिलता है।

"आश्विन मासि कृष्णपक्षे १५ पितुः
साम्वत्सरिक पार्वणि श्राद्धे"
या
"गांगेय देवस्य सम्वत्सरे श्राद्धे"
या
"आत्मीय मातुः राज्ञी श्री साम्वत्सरिके"

पिछले गुप्त नरेश भानु गुप्त के एरण के लेख में गोपराज की स्त्री के सती होने का वर्णन है जिससे पता चलता है कि सती होने के अवसर पर यह लेख उत्कीर्ण कराया गया था।

कृत्वा च युद्धं समुहन् प्रकाशं
स्वर्गगतो दिव्य नरेन्द्र कल्पः
भक्तानुरक्ता प्रिया च कान्ता
भार्यावलग्नानुगताग्निराशिम्।

प्राचीन युग में मिट्टी की मुहरों पर श्रेणियों द्वारा अंकित अनेक लेख मिले हैं। वैशाली में ऐसे लेखों की अधिकता है जिन्हें श्रेणी मुख्य द्वारा व्यवसाय के प्रसंग में तैयार किया गया था। व्यापार की वृद्धि के लिए ही सिक्के तैयार किए जाते थे जिन पर कई ढंग के मुद्रा-लेख खोदे जाते थे। इस प्रकार व्यापार को लेकर भी मुद्राओं पर लेख खुदवाया जाता था। जिन मुहरों को श्रेणियां तैयार करती उसमें अपना नाम अंकित कराती। श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिकं निगमस्य (वैशाली की मुहर) तथा कुलिक निगमस्य (वसाढ़ मुहर) लिखा मिला है। सिक्कों पर आर्थिक नीति को अपनाने से राजाओं का नाम खोदा गया। यूनानी राजाओं, शक नरेश तथा बाद में गुप्त सम्राटों के सिक्कों पर पदवी युक्त शासक का नाम पाया जाता है। (देखिए मुद्रालेख) यद्यपि लेखों के अध्ययन से अधिकतर किसी विशेष अवसर का पता नहीं चलता परन्तु राज्य के आर्थिक दशा सुधारने के लिए या व्यापार में सरलता के लिए कई प्रकार के सिक्के तैयार किये गये। गुप्त युग के पश्चात् संगठित व्यापार न होने के कारण ही सिक्कों का प्रचलन कम हो गया।

व्यापारिक अवसर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुछ गौण अवसरों पर भी राजा लेख खुदवाया करते थे। महा क्षत्रप रुद्रदामन ने सुदर्शन झील की मरम्मत करने के समय जूनागढ़ वाला लेख उत्कीर्ण कराया था। आदित्यसेन के अपसद लेख का समय भी वैसा ही था। उस समय रानी कोणदेवी ने तालाब खुदवाया था।

साधारण समय

राज्ञा खानितमद्भुतं सुपयसा पेपीय मानं जनै
स्तस्यैव प्रिय भार्यया नरपतेः श्री कोणदेव्या सरः।

प्राचीन समय से ही भारतवर्ष में नगर ऐसे स्थान पर स्थापित हुए जिनका किसी न किसी प्रकार का स्थानीय अथवा भौगोलिक महत्व था। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण स्थान पर नगर बसाए गए तथा तीर्थ स्थानों पर अच्छे प्रकार के नगरों का निर्माण किया गया। राजधानी साम्राज्य का केन्द्र होने के कारण सर्वदा प्रसिद्ध नगरी थी। यों तो जनता के आवागमन के निमित्त सुरक्षित मार्ग बने थे परन्तु व्यापारिक केन्द्रों ने भी शासक का ध्यान आर्कषित किया और कालान्तर में वे स्थान सांस्कृतिक केन्द्र हो गए। प्रशस्ति खुदवाने के विभिन्न स्थानों की परीक्षा यह बतलाती है कि राजधानी, महत्वपूर्ण नगर, तीर्थ स्थान एवं जयस्कन्धावार की ओर शासकों का ध्यान गया और उन स्थानों पर अभिलेख खोदे गए।

प्रशस्ति खुदवाने का स्थान

भारतीय पुरातत्व के इतिहास में सर्व प्रथम अशोक के लेखों का स्थान आता है। उसने बौद्धधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् ही साम्राज्य के विशिष्ट तथा बौद्धधर्म से सम्बन्धित स्थानों पर लेख अंकित कराया। कुछ लेख प्रान्त की राजधानी तथा विशिष्ट स्थानों पर मिले हैं। धौली (भुवनेश्वर के समीप) का लेख यह बतलाता है कि उड़ीसा को जीत कर उसने राजाज्ञा निकाली। इसी के सदृश तक्षशिला भी प्रान्त का प्रधान नगर था। सीमा प्रान्त पर मानसेरा व शहबाजगढ़ी के लेख इसी बात की पुष्टी करते हैं। दक्षिण में मैसूर प्रान्त के ब्रह्मगिरि में उसके लेख मिले हैं। उसे धम्मघोष के प्रसार निमित्त तथा प्रजा की जानकारी के लिए अनेक स्थानों पर धर्मलेख उत्कीर्ण कराना पड़ा था। बिहार के चम्पारन जिले में लौरिया तथा रमपुरवा के स्तम्भ लेख, कालसी, (उत्तर प्रदेश) गिरनार (काठियावाड़) तथा येरुगुडी (करनूल जिला, मद्रास) के लेख सीमा पर स्थित हैं। यद्यपि लेख सर्वत्र खोदे जा सकते थे पर स्थान का चुनाव भी एक मुख्य विषय था। भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण स्थानों पर अशोक ने लेख अंकित कराया। सारनाथ (प्रथम प्रवचन का स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धर्म चक्र परिवर्तन) कोशाम्बी (बुद्ध का निवास-स्थान तथा राज मार्ग पर स्थित प्रधान नगर) तथा सांची (बुद्ध के स्तूप के समीप) में लेख युक्त स्तम्भ खड़े हैं। अशोक का स्तम्भ रुम्मनदेई में भी खड़ा है जो स्थान सिद्धार्थ का जन्म-स्थान माना जाता है। इसी के महत्व को समझकर ही उसने तीर्थयात्रा की तथा निम्नलिखित बातें स्तम्भ पर खुदवाई।

हिद बुधे जाते सक्य मुनीति
हिद भगवं जाते ति लुंमिनि गामे उवलिके कटे।

इस प्रकार अशोक के लेख कई बातों पर प्रकाश डालते हैं। लेख धर्म प्रचार के सबसे अधिक साधन माने गये हैं तथा इसी कारण प्रधान स्थान सीमा तथा धार्मिक केन्द्र पर धर्म लेख अंकित किए गए।

अशोक के बाद भी प्राचीन शासकों ने अपनी सीमा के भीतर प्रशस्तियां खुदवायीं। पह्लव राजाओं ने तक्षशिला में, नहपान का लेख जूनार तथा नासिक में और रुद्रदामन का लेख जूनागढ़ में मिलते हैं। ये सभी स्थान उन राजाओं के राज्य सीमा में स्थित थे। कनिष्क के समय जो मूर्ति पर लेख खुदा था वह सारनाथ में शासन करने वाले महाक्षत्रप खरपल्लाना से सम्बन्धित है। गुप्त नरेशों ने इस ढंग को निवाहा परन्तु सारनाथ से प्राप्त लेख तो धार्मिक स्थान से ही सम्बन्धित कहा जा सकता है। समुद्रगुप्त ने कौशाम्बी के महत्व को समझ कर ही अपने विजय यात्रा का वर्णन अशोक के स्तम्भ पर लिखवाया था। उत्तरी भारत से दक्षिण जाते समय इसी मार्ग से होकर व्यापारी जाया करते थे। उदयगिरि के स्थान पर जो लेख मिले हैं वह चन्द्रगुप्त द्वारा उज्जयिनी जाते समय अंकित किया गया होगा क्योंकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की दूसरी राजधानी उज्जयिनी थी। प्राचीन समय में मालवा का अत्यन्त महत्व था। विदिसा तथा उज्जयिनी प्रान्त की राजधानी के रूप में स्थित रहीं। मंदसोर (मालवा) की प्रशस्तियां (यशोवर्मन तथा कुमार गुप्त प्रथम) इस बात को पुष्ट करती है कि राजमार्ग में स्थित होने के कारण वहां श्रेणी कार्य करती रही जिसके कारण वह मुख्य नगर हो गया। वैशाली एक प्रधान नगर व संघ का केन्द्र था इसलिए विभिन्न कार्यालयों की मुहरें वहाँ मिली हैं। काशी (राजघाट) की मुहरें धार्मिक भाव को लेकर अंकित थी जिसमें शैवमत सम्बन्धी बातों का पता चलता है। तीर्थ होने के कारण मध्य देश के गाहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र देव ने काशी के समीप कमौली में अधिक दान दिया था जिसका उल्लेख कमौली से प्राप्त ताम्रपत्रों में मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तीर्थ को छोड़ कर जयस्कन्धावार (सेना कैम्प) में भी लेख अंकित करने की आज्ञा दी जाती थी। वह सदा विजय के उपलक्ष में किया जाता था। वलभी तथा बासखेड़ा का ताम्रपत्र, खालीमपुर और मुंगरे का ताम्रपत्र आदि उल्लेखनीय है। सातवाहन राजा के नासिक लेख में तो निम्नलिखितपंक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है—

जयस्कन्धावार

सेनाये वेजयंतिये विजय खधावारा (विजय स्कान्धावार) गोवधनस बेना कटक स्वामि गोतमि पुतो सिरि सदकणि आनपयति।

विजय स्कन्धावारात् भद्रपत्तन वासकात् (वलभी लेख)

महानौहस्त्यश्व जयस्कन्धावारात् श्री वर्धमान कोट्या (बासखेड़ा ताम्रपत्र)

श्री मुद्गिरि समावासि श्रीमद् जयस्कन्धावारात् (पाल लेख)

इस प्रकार सेना के कैम्प से लेख खुदवाने या घोषित करने की प्रथा की जानकारी हो जाती है।

पुराने समय में जिस स्थान का कोई सांस्कृतिक महत्व था वहां भी प्रतिमा स्थापना के समय मूर्ति के आधार शिला पर लेख अंकित कराते थे। मथुरा तथा सारनाथ से ऐसे अनेक मूर्ति-लेख प्रकाश में आए हैं। सारनाथ में गोविन्द चन्द्र की रानी कुमार देवी तथा महीपाल (बंगाल के पाल नरेश) के लेख खुदाई से निकले हैं। इसी तरह नालंदा भी शिक्षा का एक प्रधान केन्द्र था। यशोधर्मन के मंत्री मालाद के लेख तथा देवपाल का ताम्रपत्र प्रशस्ति नालंदा महाविहार के विषय में प्रकाश डालते हैं। उस युग में संस्था को दान देने का महत्व था। नालंदा महाविहार के विद्यार्थियों के लिए जावा के राजा बालपुत्र देव ने विहार निर्मित किया जिस के रक्षण, भिक्षुओं के भोजन, आवास, चिकित्सा आदि प्रबंध के लिए कई सौ गाँव दान में दिए गए थे। वह एक अन्र्राष्ट्रीय केन्द्र हो गया था जहां विदेशों के विद्यार्थीगण पढ़ने के लिए आए थे। नालंदा का वर्णन सुनिए——

प्रधान नगर

नालंदा गुण वृन्द लुब्ध मनसा
भक्त्या च शौद्धौदने
बुद्धाशैल सरिस तरंग तरला
लक्ष्मी इमाम शोभनाम्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यस्ते नौन्नत सौधधाम धवल-
संघार्थ मित्र श्रिया
नाना सद गुण भिक्षु संघ वसति
तस्या विहारः कृतः ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राज्य सीमा, राजधानी, जयस्कन्धावार, तीर्थ तथा सांस्कृतिक केन्द्रों में लेख उत्कीर्ण करना आवश्यक था। राजधानी में लेख अधिक संख्या में उत्कीर्ण हुआ करते थे।

आधुनिक काल में कई लेख मूल स्थान पर स्थित नहीं हैं इसलिए कदापि भ्रम हो सकता है। अशोक के स्तम्भ अम्बाला तथा मेरठ से दिल्ली में फिरोज तुगलक द्वारा लाए गए। कोशाम्बी का स्तम्भ भी आज प्रयाग के किले में है। ताम्र पत्र तो निश्चित स्थान पर अधिकतर मिलते ही नहीं परन्तु वर्णन से या चलित परन्परा से उस स्थान का समीकरण किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ५

अभिलेखों से इतिहास-ज्ञान

इस बात की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि प्राचीन भारतीय इतिहास की मूल्यवान सामग्रियों में उत्कीर्ण लेख, सर्वोपरि माने गए हैं। ऐतिहासिक लेखों के मूल्यांकन में सतर्क रहना पड़ता है और यह आवश्यक नहीं कि सारी बातें सत्य मान ली जायं। सातवीं सदी के पश्चात् प्रशंसात्मक लेख मिलते हैं जिनमें कुछ बातें राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखी गई थीं। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि स्कन्द गुप्त के बाद गुप्त साम्राज्य की श्री समाप्त हो गई। मगध के पिछले गुप्त नरेश सामान्य ढंग से शासन करते थे परन्तु देव वरनार्क लेख में जीवित गुप्त के लिए महान् पदवी—परम माहेश्वर परम भट्टारक महाजाधिराज परमेश्वर—लिखी है जो समुद्रगुप्त के लिए भी नहीं प्रयुक्त की गई थी। अतएव अतिशयोक्ति को हटाकर लेख पर विचार किया जाता है। लेख के विश्वसनीय होने की बात सर्वप्रथम देखी जाती है। जो उल्लेख मिलता है उसकी पुष्टि अन्य साधनों से होने पर उसकी मर्यादा निश्चित की जाती है। किसी लेख के विषय में उसकी उपयोगिता पर ध्यान देना चाहिए। यह जानना आवश्यक है कि लेख द्वारा इतिहास-निर्माण में कितनी सहायता मिली है, तभी प्रशस्ति को ऐतिहासिक मान सकते हैं। तात्पर्य यह है कि अभिलेखों को उपरिलिखित चारों बातों से तौलकर ही इतिहास लेखन आरम्भ किया जा सकता है। कभी-कभी एक ही बात की पुष्टि अनेक लेख करते हैं, अतएव सभी का महत्व एक-सा नहीं माना जा सकता। इतिहास लिखने में जितनी सहायता लेखों ने की है उतना अन्य पुरातत्व सामग्रियों के अध्ययन से नहीं मिलता।

प्राचीन अभिलेख अशोक, कनिष्क खारवेल, गोतमीपुत्र शातकर्णी, रुद्रदामन, समुद्रगुप्त, द्वितीय पुलकेशी, धर्मपाल तथा ध्रुव आदि शासकों के सम्बन्ध में अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बातें बतलाते हैं। उनके प्रताप तथा कीर्ति की गाथा सुनाते हैं अन्यथा उन राजाओं का यश तथा शक्ति का परिज्ञान सम्भव न था। अशोक के धर्मलेख ही मौर्य साम्राज्य की विशेषता बतलाते हैं। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शासन-पद्धति का विश् वर्णन किया है परन्तु राज्य विस्तार का उल्लेख तक नहीं है। अशोक के लेखों से ही उसके पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य की शक्ति का अनुमान होता है। यों तो उसके लेख प्रायः सम्पूर्ण भारत पर विस्तृत साम्राज्य की जानकारी कराते हैं परन्तु तेरहवें लेख से अशोक द्वारा कलिंग मात्र विजय की बात कही गयी है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि कलिंग को छोड़कर हिमालय से मद्रास तक का प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्य ने जीता था। अशोक के धर्म लेख का अध्ययन अधिक समय तक विद्वानों को भ्रम में डाले था कि उसका नाम प्रियदर्शी था परन्तु मास्की (आंध्र प्रदेश) के लेख से उसके नाम—अकोस का पता चला। उड़ीसा के राजा खारवेल के सम्बन्ध में पूरी जानकारी हाथी गुहा लेख से होती है। वही लेख सारा इतिहास बतलाता है और खारवेल का जीवन वृत्तांत उसी से प्रकाश में आया है। उसकी अनुपस्थिति में खारवेल के सम्बन्ध में सभी बातें लुप्त हो जायेंगी। कनिष्क के लेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उसका राज्य पेशावर से वाराणसी तक विस्तृत था। कुर्रम (का० इ० इ० २ पृ० १५५) तथा सारनाथ का प्रतिमा लेख (ए० इ० ८ पृ० १७३) उपरिलिखित बातों की पुष्टि करते हैं। दक्षिण में मौर्यों के उत्तराधिकारी सातवाहन नरेश ईसा पूर्व दूसरी सदी से चौथी शताब्दी (ईसवी सन्) तक शासन करते रहे। उस वंश के सबसे प्रतापी राजा गोतमी पुत्र शातकर्णी की कीर्ति तथा विजय नासिक गुहा के दीवार पर खुदी है। उसी वर्णन से नहपान की पराजय की बात ज्ञात होती है। महाक्षत्रप रुद्रदामन की ख्याति उसके जूनागढ़ लेख से प्रकट होती है जिसमें दक्षिणा-पथपति (सातवाहन) के दो बार परास्त करने की बात उल्लिखित है। दक्षिगापथ पतेस्सातकर्णेद्विरपि नीव्यर्जिमवजी त्यावजीत्य सम्बन्धा विदूरतया—ए० इ० ८ पृ० ४२) इन राजाओं के यद्ध वर्णन की तरह गुप्त सम्राट् समु गुप्त की दिग्विजय यात्रा प्रयागस्तम्भ लेख में वर्णित है। इससे पता चलता है कि समुद्र ने पाटलिपुत्र से उड़ीसा होकर कांची तक विजय पताका फहराई थी। उसने धर्मविजयी राजा की तरह दक्षिग के शासकों को परास्त कर मुक्त कर दिया। उत्तर भारत में उसकी दूसरी नीति थी और इस भाग के कई प्रदेशों को विजित कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

जैसा कहा गया है कि लेखों में कभी अत्युक्तिमय उल्लेख होता है उस प्रसंग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में छठी सदी के राजा यशोधर्मन का नाम लिया जा सकता है। मंदसोर (मालवा) के लेख में वर्णन आता है कि उसने लौहित्य (आसाम) तक विजय किया। परन्तु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थित में मालवा से आसाम तक का विजय सम्भव नहीं था। अतएव मंदसोर का लेख (इ० ए० १८ पृ० २१९) विश्वसनीय नहीं है। मध्य युग में कन्नौज पर अधिकार करने के लिए प्रतिहार, राष्ट्रकूट तथा पाल नरेशों में परस्पर युद्ध हो रहा था। इस युद्ध की कथा भोर-संग्रहालय-लेख (ए० इ० २२ पृ० १७६), खालीमपुर प्रशस्ति (ए० इ० भा० ४) तथा ग्वालियर प्रशस्ति (आ० स० रि० १९०३-४ पृ० २८०) में वर्णित है। उसमें ध्रुव, धर्मपाल तथा वत्सराज के विजय पराजय की बातें लिखी हैं। तीनों वंशों के लेख यह बतलाते हैं कि शासकों में वंशानुगत युद्ध की भावना काम कर रही थी और इन्द्र ने भी उत्तरी भारत पर आक्रमण किया था। देवपाल प्रतिहार नरेश से ईर्ष्या करता रहा तथा दोनों में युद्ध भी हुआ था। इसी प्रकार अयहोल की प्रशस्ति में द्वितीय पुलकेशी की जीवन-कथा विस्तृत रूप से कही गई है। उस लेख (ए० इ० ६ पृ० ३) से ही पता चलता है कि चालुक्य नरेश ने कन्नौज के राजा हर्षवर्धन को परास्त किया था [भयविगलित हर्ष येन चाकारि हर्ष] इस प्रकार अभिलेखों का मूल्य तथा इतिहास के साधन होने की बातें आंकी जा सकती।

वंशवृक्ष

प्रशस्तियों के अध्ययन से राजवंशों के वंश परम्परा का पता चलता है। जिस शासक के राज्यकाल में कोई अभिलेख उत्कीर्ण होता उसके पूरे वंशवृक्ष का उल्लेख किया जाता था। ईसवी पूर्व सदियों में ऐसी परिपाटी नहीं मिलती। ई० स० १५० में जूनागढ़ के लेख में रुद्रदामन की तीन पीढ़ियों का नाम है—स्वामी चष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञः क्षत्रयस्य सुगृहित नाम्नः स्वामि जयदान्नः पुत्रस्य राज्ञो महा-क्षत्रयस्य-–रुद्रदान्नो। (ए० इ० ८ पृ० ४२)। पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपों के मुद्रा-लेख में पिता-पुत्र दोनों का नाम निम्न प्रकार से मिलता है—

राज्ञो महाक्षत्रपस्य दामजद श्री पुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य सत्यदाम्न। इसी रूप से मुद्रालेख द्वारा क्षत्रपों का वंश-वृक्ष तैयार किया जाता है। गुप्त लेखों में वंश वृक्ष की परम्परा चरमसीमा को पहुँच गयी थी। जिस शासक का लेख उत्कीर्ण किया जाता उसके पूर्व पुरुषों की नामावली अवश्य लिखी जाती थी। स्कन्द गुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख में पूरी वंशावली निम्न प्रकार से दी गयी है—

महाराज श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिरज श्री समुद्रगुप्तस्य पुत्र तत्परिग्रहितो महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्नः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्य......

प्रथित विपुल धामा नामतः स्कन्दगुप्तः

इसी तरह बिहार शिलालेख में अंतिम पंक्ति के स्थान पर "कुमारगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातः परम भागवतो महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्त !" लिखा मिलता है। इससे गुप्त वंश के राजाओं के साथ रानियों के भी नाम मिलते हैं। यदि कुमारगुप्त द्वितीय की भीतरी राजमुद्रा के लेख पर विचार किया जाय तो गुप्तों के दूसरे वंश परम्परा का ज्ञान हो जाता है। कुमार गुप्त प्रथम तक सभी नामों में समता है परन्तु उसके बाद स्कन्दगुप्त का नाम न आकर पुरु गुप्त का नाम आता है। लेख इस प्रकार है—"श्री कुमारगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो महादेव्या अनन्तदेव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्तः तस्य पुत्रः पादानुध्यातो महादेव्यां श्री चन्द्रदेव्यां उत्पन्नः महाराजाधिराज श्री नरसिंहगुप्तः तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परमभागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः।" इस ढंग से लेखों के आधार पर गुप्त वंशावली का पता लग सका है। सभी लेखों में वंशवृक्ष का उल्लेख नहीं होता था परन्तु यह बतलाना कठिन है कि किस अवसर पर कर्मचारी (प्रशस्तिकार) वंश वृक्ष का उल्लेख करता था अथवा केवल उस लेख से सम्बन्धित राजा का केवल नाम दिया करता था। ऐसी घटना मिहिर कुल के लेखों से भी पायी जाती है। उसके ग्वालियर वाले शिलालेख (५३५ ई०) में तोरमाण का भी नाम आता है—

श्री तोरमाण इति यः प्रथितो प्रभूत गुण।

× × ×

तस्योदित कुल कीर्ते पुत्रोऽतुलविक्रमः पति पृथ्व्याः
मिहिरकुलेतिख्यातो·····।

गुप्त कालीन वाकाटक राजा विंध्यशक्ति के ताम्रपत्र में उसके पितामह प्रवरसेन तथा पिता सर्व्वसेन का नाम मिलता है।

"प्रवरसेन पौत्रस्य श्री सर्व्वसेन पुत्रस्य धर्म्म
महाराजस्य वाकाटकानां श्री विंध्यशक्ति—।"

प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र में तो वाकाटक वँशवृक्ष के स्थान पर गुप्त वंशावली का उल्लेख है जिसका अर्थ यह है कि प्रभावती गुप्ता गुप्त वंश की राजकुमारी थी और रानी हो जाने पर भी इनकी सहायता से शासन करती रही। प्रस्तर या धातु पत्र पर खुदे लेखों से जो वंशावली मिलती है उस तरह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की राजमुद्रा से उस वंश के राजा तथा रानी का क्रमबद्ध नाम मिलता है । उसका अनुवाद निम्न प्रकार है--"परम वैष्णव देव-राज रानी भूमिकादेवी उसके पुत्र परममाहेश्वर वत्सराज रानी सुन्दरीदेवी उसके पुत्र परमभागवती भक्त भागभट्ट रानी इष्टादेवी उसके परमादित्य भक्त रामभद्र रानी अप्पादेवी उसके पुत्र परमभागवत भोज रानी चन्द्रभट्टारिका देवी उसके पुत्र परमभागवत महेन्द्रपाल रानी देहनागादेवी" के नाम मिलते हैं । इस दिशा में ज्ञानवर्द्धक राजमुद्राओं में नालंदा तथा बसाढ़ की मुद्राओं का उल्लेख किया जा सकता है। उनसे कई संस्थाओं तथा पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। इसी रूप में मौखरि नरेश ईशान वर्मा के हरहा प्रशस्ति का नाम लिया जा सकता है। उसमें पूरे वंश का उल्लेख करते समय सर्ववर्मन मौखरि का नाम आता है जिसके सम्बंध में अन्य साधनों से कुछ ज्ञात नहीं है। हर्ष वर्धन के बांसखेड़ा ताम्रपत्र में नरवर्धन से हर्षवर्धन तक शासकों तथा रानियों के नाम मिलते हैं। इस रूप में दक्षिण के राजा गुर्जर प्रतिहार के जोधपुर प्रशस्ति में, अयहोल की प्रशस्ति में, चालुक्य वंश तथा राष्ट्रकूट वंशी भोर संग्राहलय ताम्रपत्र में समस्त राजाओं के नाम उल्लिखित हैं । बंगाल के पाल वंश के राजाओं के विषय में खालीमपुर ताम्रपत्र विशेष उल्लेखनीय है। इस तरह प्राचीन लेखों के अध्ययन से अनेक भारतीय शासकों के वंश वृक्ष का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

उत्कीर्ण लेखों के अतिरिक्त मुद्रा लेखों भी भारतीय इतिहास निर्माण में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ सम्भूति का नाम सर्वप्रथम सिक्के पर ही खुदा मिला है । इतिहास में ऐसे काल विभाग हैं जिनका ज्ञान मुद्रा-लेख से किया जाता है । जटिल प्रश्न भी सुलझ जाते हैं । अज्ञात युग पर प्रकाश पड़ता है। भारतीय यूनानी तथा शक राजाओं के सिक्कों का अध्ययन ही उनके इतिहास को प्रकाशित करता है। उनके लेख शासकों के नाम तथा क्रम का निश्चिय करते हैं। उसी से राजाओं की संख्या बतलाई जाती है। पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप सिक्कों पर शासक का नाम तथा तिथि का उल्लेख मिलता है। लेख तथा तिथि के आधार पर राजाओं की वंशावली तथा शासन का क्रम प्राय: निश्चित हो गया है। उदाहरण के लिए राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिहस पुत्रस महाक्षत्रपस संगदामन [तिथि १४४ (१४४+७८) = २२२ ई०]

गण सिक्के भी शासक का नाम बतलाते हैं। कुणिन्द के सिक्कों पर 'राज्ञो कणीदस अमोघ भूतिस महरजस' खुदा मिला है । कुषाण सिक्कों पर कदफिस कनिष्क तथा बासुदेव आदि के नाम मिलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशस्तियों के अतिरिक्त सिक्कों से राजाओं के नाम मिल जाते हैं। जहां तक नाम का सम्बन्ध है गुप्त सिक्के भी इससे (नाम) रहित नहीं है। अंत में यह कहना आवश्यक हो जाता है कि प्रशस्तियों के सदृश मुद्रा लेखों से वंशावली का ज्ञान नहीं हो सकता। केवल क्षत्रप सिक्के दो पीढ़ियों के नाम उपस्थित करते हैं। अन्यथा व्यक्तिगत नाम तथा तिथि की जानकारी सिक्कों पर खुदे मुद्रा-लेख से होती है।

कौशाम्बी से प्राप्त सिक्कों के आधार पर नए मग वंश का पता चलता है। इस प्रकार मुद्रा लेख से भी तिहास के ज्ञान वर्द्धन में सहायता मिलती है।

प्रायः उत्कीर्ण लेखों में किसी न किसी वंश के शासक के विजय यात्रा, युद्धगाथा तथा सन्धि की बातें लिखी रहती हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख से ही यह ज्ञात हो सका कि वह कलिङ्ग पर युद्ध करने के पश्चात अहिंसा का पालक हो गया। भेरी घोष को धम्म घोष में परिवर्तित कर दिया और उसने बुद्धमत के प्रसार-निमित्त देशान्तर में धर्मदूत भेजा था। अयोध्या का लेख यह स्पष्ट कर देता है कि पुष्य मित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किया था [द्विश्वमेध याजिनः सेनापतेः पुष्य मित्रस्य] पूरव में उदयगिरि के हाथी गुम्फा लेख में खारवेल का का विजय वर्णित है। नासिक से प्राप्त लेखों में सातवाहन राजा गोतमीपुत्र शात कर्णि तथा क्षत्रप नहपान के युद्ध का वर्णन पाया जाता है। इस वर्णन से प्रकट होता है कि नहपान को गो० शातकर्णी ने परास्त किया था। उसकी पुष्टि जोगल थम्वी सिक्कों से होती है। नहपान के दसहजार चांदी के सिक्कों को गोतमीपुत्र शातकर्णी ने पुनः मुद्रित किया था। काठियावाड़ का जूनागढ़ का लेख यह बतलाता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन ने १५० ई० में अपने वंश की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया तथा वह पुलमावी को परास्त कर मालवा, महाराष्ट्र, काठियावाड़ सिन्ध आदि प्रांतों पर राज्य करने लगा। अंतिम समय सातवाहन नरेश गोतमी पुत्र यज्ञ श्री शातकर्णी ने परास्त कर शक क्षत्रप नरेशों को फिर नीचा दिखाया। नासिक, कार्ले, कनहेरी तथा जूनार आदि स्थानों पर उसके लेख मिले हैं। इस विजय के स्वरूप यज्ञ श्री ने चांदी के सिक्के निकाले। उन्हीं क्षत्रपों को चौथी सदी में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने परास्त कर गुप्त साम्राज्य को पश्चिमी भारत में विस्तृत किया था। उसने मालवा में दो लेख खुदवाया। उदयगिरि (भिलसा के समीप) गुप्त लेख उस विजय को प्रमाणित करता है (कृस्न पृथवी जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः) मेहरौली का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तम्भ लेख भी उसके विजय का द्योतक है। उसके पिता समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन हरिषेण ने प्रयाग के स्तम्भ-लेख में किया है जिससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त मध्य प्रदेश होकर उड़ीसा पारकर कांची तक गया था। दक्षिण के राजाओं को परास्त कर उसने मुक्त भी कर दिया जो गुप्त सम्राट् को कर देने लिए उद्यत हो गए। हरिषेण ने उत्तरी भारत के नागवंशी राजाओं के पराजय का सुन्दर वर्णन किया है।

स्कन्द गुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हूणों ने कुमार गुप्त के वृद्धावस्था में गुप्त राज्य पर आक्रमण किया था। जिन को बड़ी कठिनाई से स्कन्द ने परास्त किया। वर्णन निम्न प्रकार से आता है—

(का० इ० इ० ३ पृ० ५३)

(१) हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कपिता
(२) विचलित कुल लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यतेन
(३) पितरि दिवमपेते विप्लुतां वंश-लक्ष्मी
भुजबल विजतारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः।

छठी सदी के राजा यशोधर्मन के मंदसोर लेख बतलाता है कि स्कन्द गुप्त के बाद हूणों का आधिपत्य मध्य भारत में हो गया था। तोरमाण का एरण लेख (का० इ० इ० ३पृ० १५९) तथा मिहिरगुल की ग्वालियर प्रशस्ति (वही पृ० १६२) इसके प्रमाण हैं कि हूण नरेश ग्वालियर के भूभाग में शासन कर रहे थे। यशोधर्मन ने पुनः उन्हें परास्त किया जो उसकी प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है।

ये भुक्ता गुप्त नार्थैर्न्न सकल वसुधा क्रान्ति दृष्ट प्रतापै
न्राज्ञा हूणांधिपानां क्षितिपति मुकुटाद्धयासिनी यान्प्रविष्ठा

इस तरह उल्लेखों से युद्ध की कहानी ज्ञात हो जाती हैं।

मध्य युग के आरम्भ से ही उत्तर तथा दक्षिण के शासकों की युद्धगाथा उनकी प्रशस्तियों में मिलती है। हरहा लेख में ईशान वर्मा मौखरि की विजय कथा मिलती है तो कमौली के ताम्रपत्रों में गोविन्द चन्द्रदेव की चर्चा है। अयहोल के लेख में द्वितीय पुलकेशी द्वारा अनेक राजाओं के अतिरिक्त कन्नौज नरेश हर्षवर्धन के पराजय का वर्णन मिलता है। भोर संग्राहलय ताम्रपत्र में राष्ट्रकूट नरेश दंत्तिदुर्ग, कृष्ण तथा ध्रुव आदि के युद्धों का विवरण पाया जाता है।

श्री कांची पति गंगवेगीकुयता ये मालवेशादयः
प्राज्याना नयतिस्म तान् क्षितिभृतो यः प्रातिराज्यानपि

पाल राजा धर्मपाल के साथ युद्ध की सूचना निम्न पंक्ति से मिलती है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गंगा यमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यतः
लक्ष्मी लीला विन्दानि स्वेत छत्राणि यो हृरत् ।

पूर्वी भारत में बंगाल का शासक धर्मपाल भी एक विजयी नरेश था। उसके विजय का वर्णन खालीमपुर ताम्रपत्र पर उल्लिखित है। कन्नौज के राजा इन्द्रायुध को परास्त कर चक्रायुध को गद्दी पर बैठाया जिस कार्य को अनेक शासकों ने स्वीकार किया। बारहवें पद्य में लिखा है—

भोजैरमस्यैः समद्रैः कुरु यदुयवन अवत्ति गान्धार किरैर भूपति,
व्यालौल मौलि प्रणति परिणतैः साधू संगीर्यमानः
हृस्यति पंचाल वृद्धो धृतकनकमय स्वाभिषेकोदकुम्भो
दत्तः श्री कान्यकुब्ज सललित चलित भ्रूलता लक्ष्मयेन ।

इस प्रकार अनेक उदाहरणों द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि लेखों के अध्ययन से विभिन्न शासकों के युद्ध व विजय का वृतांत प्राप्त होता है।

प्राचीन समय में लेख विशिष्ट स्थान पर उत्कीर्ण कराये जाते थे तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए शासकों ने विभिन्न स्थानों पर खुदवाया। सीमा पर खुदवाने का विशेष महत्व था। विजय अथवा आज्ञा सम्बन्धी घोषणा प्रजा के लिए उतना ही आवश्यक थी जितनी प्रत्यन्त नृपति के लिए।

राज्य सीमा

मौर्य सम्राट् अशोक के धर्म लेखों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भारत वर्ष का अधिक भाग मौर्य शासन में रहा। पश्चिमी भाग में अफगानिस्तान से उड़ीसा तक तथा हिमालय की तराई से (नेपाल की तराई का स्तम्भ लेख रुम्मन-देई तथा कालसी के लेख) मद्रास प्रान्त के येरुगुडी (करनूल जिला) तक अशोक के शिलालेख पाये जाते हैं। इससे यह कहा जाता है कि उतने भूमाग पर उसका राज्य विस्तृत था। अशोक के द्वितीय तथा तेरहवें शिलालेख में प्रत्यन्त (सीमा) नृपतिओं के नाम मिलते हैं जिससे पूर्व कथित बातों को बल मिलता है। (चोल, पांडय, केरल आदि राज्यों) को छोड़कर समस्त भारत पर उसका शासन था। मौर्य युग के पश्चात् सातवाहन वंश का राज्य-विस्तार अभिलेखों तथा सिक्कों की प्राप्ति. से ज्ञात हो जाता है। शातकर्णी राजा का नाम सांची के दक्षिण तोरण पर खुदा है। उसका नाम नानाघाट के लेख (पूना के समीप) में उल्लिखित है तथा उसी को हाथी गुम्फा लेख में पश्चिम दिशा का शासक कहा गया है। इससे यह प्रकट होता है कि मालवा से महा-राष्ट्र तक उसका राज्य फैला था। उसके कई सदियों बाद सातवाहन राजा यज्ञ श्री शातकर्णी के लेख नासिक, कार्ले, कनहेरी आदि स्थानों से मिले हैं तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसकी मुद्राओं की उपलब्धि आंध्रदेश, बम्बई, महाराष्ट्र प्रदेशों से हुई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन नरेश उन प्रदेशों पर अवश्य शासन करता था। क्षत्रप राजा नहपान का लेख भी उन्हीं स्थानों से (नासिक, कार्ले तथा जूनार) प्राप्त हुए हैं जिसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि नहपान अजमेर से पूना तक राज्य करता था और उसको परास्त कर ही सातवाहन नरेश गोतमी पुत्र शातकर्णी तथा उसके वंशज शासन करने लगे। क्षत्रप तथा सातवाहन अभिलेखों के अध्ययन से दोनों वंशों के परम्परागत शत्रुता तथा पराजय व विजय का परिज्ञान हो जाता है।

ईसवी सन् के बाद कुषाण वंश का शासन पेशावर से काशी तक विस्तृत था। पूर्वी सीमा के प्रमाण में सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा का लेख उपस्थित किया जा सकता है। उस मूर्ति लेख में यह वर्णन मिलता है कि कनिष्क के तीसरे राज्य वर्ष में महाक्षत्रप खरपल्लाना (जो कनिष्क का गवर्नर था) के समय यह प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। अतएव यह निर्विवाद है कि सारनाथ तक कनिष्क का राज्य फैला था। गुप्त वंश के अभिलेख में भी राजाओं के दिग्वजय तथा राज्य विस्तार की वार्ता वर्णित है। प्रयाग स्तम्भ लेख में हरिषेण ने समुद्रगुप्त द्वारा विजित नरेशों का नामोल्लेख किया है, उसमें "दक्षिणापथ राज ग्रहण मोक्ष" वाक्य मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि समुद्र गुप्त ने 'धर्म विजयी' नीति को ध्यान में रखकर समस्त राजाओं को मुक्त कर दिया था। उत्तरी भारत के नागवंशी (मथुरा के समीप) राजाओं को परास्त कर उत्तर प्रदेश तक राज्य विस्तृत किया। उसके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त के उदयगिरि (भिलसा के पास) तथा सांची के लेख बतलाते हैं कि सम्राट् ने मालवा पर अधिकार कर लिया था। उसके सेनापति ने वर्णन किया है—

कृत्स्न पृथवी जयार्त्थेन राज्ञै सह सहागत।

पाटलिपुत्र से वीरसेन इस प्रदेश को जीतने के लिए राजा के साथ वहां (मालवा) गया था। इसके अतिरिक्त द्वितीय चन्द्रगुप्त के चांदी के सिक्के यह बतलाते हैं कि सौराष्ट्र तथा काठियावाड़ के शासक क्षत्रपों के जीतने के पश्चात् ही उसने सर्व प्रथम रजत मुद्राओं का प्रचलन किया (जो क्षत्रप सिक्कों के अनुकरण पर निकाले गए।) जूनागढ़ का शिलालेख यह प्रमाणित करता है कि सौराष्ट्र स्कन्द गुप्त के अधिकार में था और उसके शासन पश्चात् पृथक हो गया। कालान्तर में गुप्त वंश की अवनति आरम्भ हो गई। अवनति काल में भी बुद्ध गुप्त का राज्य-विस्तार की जानकारी उसके एरण (मध्य प्रदेश) सारनाथ प्रतिमा लेख (उत्तर प्रदेश) नालंदा की मुद्रा (विहार) तथा दामोदर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुर के ताम्रपत्र (उत्तरी बंगाल) से होती है तथा प्रकट होता है कि बंगाल से उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश तक बुद्ध गुप्त शासन करता था। गुप्त युग के पश्चात् भारत में कई छोटे-छोटे राज्य हो गए तथा साम्राज्य की भावना का अन्त हो गया। लेखों के प्राप्ति स्थान से उस वंश का प्रभाव अवश्य ज्ञात हो जाता है। उदाहरणार्थ मौखरि वंश का लेख हरहा (बाराबंकी जिला) तथा नागार्जुनी गुहा (गया जिला) से मिले हैं जो सिद्ध करते हैं कि गया से अवध तक मौखरि वंश का प्रभाव फैला था। पालवंशी राजा धर्मपाल के अभिलेख तथा अन्य कई लेखों से यह प्रमाणित होता है कि धर्मपाल ने गुर्जर प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट अधिकार हटाकर कन्नौज पर शासन स्थापित किया। उत्तरी बिहार तथा मगध में (मुंगेर, भागलपुर व नालंदा आदि) पालवंशी लेख बिहार प्रान्त को पाल राजाओं के अधीन घोषित करते हैं। यह स्थिति बीसवीं सदी तक बनी रही जब कि १९१२ ई० में बंगाल से बिहार का प्रदेश पृथक किया गया।

राजाओं की समकालीनता

लेखों में संरक्षक के वर्णन के अतिरिक्त समकालीन शासकों के नाम भी प्रसंग वश मिलते हैं अथवा राजा के साथ युद्ध में सहायक या प्रतिद्वन्दी का नाम देना प्रशस्तिकार के लिए आवश्यक हो जाता था। इसी कारण अशोक के द्वितीय प्रधान शिलालेख में चोडा, पाण्डाय, सतियपुतो, केतल पुतो आदि छोटे राजाओं के नाम आते हैं जो सुदूर दक्षिण में शासन करते थे। उसी प्रसंग में यवन राजा अन्तियोक का भी नाम आता है। तेरहवें प्रधान लेख में भी उन राजाओं तथा कुछ अन्य शासकों (अन्तिकोन, मग आदि कई यूनानी राजाओं) के नाम मिलते हैं जिन्हें अशोक ने धर्म से प्रभावित किया था। ईसवी पूर्व पहली सदी में कुषाण राजा कुजुल कदफिस के सिक्के पर हरमेयस का नाम भी मिलता है जिससे प्रकट होता है कि यूनानी राजा हरमेयस कुजुल कुषाण का समकालीन शासक था। गिरनार के लेख में रुद्रदामन के द्वारा सात वाहन राजा के परास्त करने का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन सातवाहन नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी या पुलमावी का समकालीन था। इसी प्रकार हरिषेण ने प्रयाग की स्तम्भ प्रशस्ति में उन राजाओं के नाम दिए हैं जो भारत में राज्य करते थे और जिनको समुद्रगुप्त ने हराया था। इनके अतिरिक्त प्रत्यन्त नृपति (सीमा पर राज्य करने वाले शासक) के भी नाम आये हैं। अतः उस सूची में ऐसे राजाओं के नाम हैं जो समुद्र गुप्त के समकालीन माने जा सकते हैं। कुमार गुप्त तथा स्कन्दगुप्त के लेखों में हूण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आक्रमण का वृतान्त मिलता है। सम्भवतः तोरमाण स्कन्दगुप्त का समकालीन शासक था। पिछले गप्त वंश के अपसद लेख में हर्ष वर्धन के साथ माधवगुप्त का सम्बन्ध बतलाया गया है। अतएव दोनों को समकालीन मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। अयहोल लेख हर्ष तथा पुलकेशी द्वितीय के युद्ध द्वारा समकालीनता बतलाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखों के आधार पर राजाओं की समकालीनता स्थिर करने में बड़ी सहायता मिलती है और उस प्रमाण के सहारे अनेक राजाओं की तिथि निश्चित की जाती है।

शासन-व्यवस्था

भारतीय लेखों के अध्ययन से प्राचीन भारत के शासन-पद्धत्ति का ज्ञान सुलभ हो जाता है। प्रशस्ति उत्कीर्ण करते समय अथवा राजाज्ञा प्रसारित करते समय कुछ पदाधिकारियों का उल्लेख आवश्यक ढंग से किया जाता था। जिन कर्मचारियों से सम्बन्धित आज्ञा अथवा प्रजा के हित के लिए जैसी आज्ञा घोषित होती, दोनों अवस्थाओं में पदाधिकारियों को पदेन सम्बोधित करना पड़ता था। दान के अवसर विभिन्न परिस्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। जिन अग्रहार का विवरण दान-पत्र में लिखा जाता था, उससे सम्बन्धित समस्त कर्मचारियों का उल्लेख नितान्त आवश्यक था। जिस भूमि से राजकर ग्रहण किया जाता, दान देने पर उसका अधिकार दानग्राही को मिल जाता था। अतएव राज कर्मचारियों को यह बतलाना आवश्यक था कि अमुक क्षेत्र से कर (टैक्स) की वसूली नहीं की जाय। यही कारण है कि ताम्रपट्टियों पर विभिन्न पदाधिकारियों के नाम उल्लिखित किये जाते थे।

मौर्य कालीन शासन-व्यवस्था का परिज्ञान अशोक के लेखों से होता है। यद्यपि कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र में शासन-पद्धति का विस्तृत विवरण दिया है तथापि अशोक के पाँचवें शिलालेख में धर्ममहामात्र नामक नए कर्मचारी की नियुक्ति का वर्णन है। तीसरे शिलालेख में राजुक प्रादेशिक तथा युक्त नामक पदाधिकारियों को प्रजाहित के लिए राज्य में भ्रमण करने की आज्ञा दी गई थी। चौथे स्तम्भ लेख में अशोक ने स्वयं राजक तथा परिषद् के विभिन्न कार्यों का विवेचन किया है। उन्हें प्रजा हित के चिन्तन पर विशेष बल दिया है। वह सब बातों की जानकारी चाहता था। उसके लेखों से पता चलता है कि पाटलिपुत्र, कौशाम्बी तक्षशिला उज्जैयिनी तोसल्ली, सुवर्णगिरि नामक प्रांतों में साम्राज्य विभक्त था। वहाँ राजकुमार भी प्रांतपति के रूप में शासन करते रहे। कौसंबिय महामात्र (कौशाम्वी स्तम्भ लेख) तोसलियं महामात्र (धोली का पृथक् शिला-लेख), उजेनिते पि चु कुमाले, तखशिलाते (वही) समापायं महामता (जौगढ़

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख) पाटलिपुत्र (सारनाथ स्तम्भ लेख) तथा सुवर्ण गिरिते अयपुतस महामातानं (सिद्धपुर शिलालेख) आदि उद्धरण उपरियुक्त कथन को प्रमाणित करते हैं। सम्भवतः कई सदियों तक यही प्रणाली कार्यान्वित होती रही।

ईसवी सन् के पश्चात् कुषाण नरेशों के राज्यपाल, सारनाथ मथुरा तथा काठियावाड़ में शासन करते थे। तत्पश्चात् गुप्त लेखों में गुप्त शासन प्रणाली का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। प्रयाग के स्तम्भ लेख से पता चलता है कि हरिषेण, महादण्ड नायक, सन्धिविग्रहिक तथा कुमारामात्य के पद को सुशोभित कर चुका था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में सनकानिक महाराज सामंत तथा वीरसेर सेनापति था [उदयगिरि का लेख] गुप्त लेख यह बतलाते हैं कि साम्राज्य कई प्रांतों में बंटा हुआ था। तिराभुक्ति (तिरहुत, विहार) काठिया-बाड, मंदसोर, कौशाम्बी, पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) तथा श्रीनगर भुक्ति (पाटलिपुत्र) के नाम मिलते हैं। पहला नाम वैशाली की मुहर (तीराभुक्तया उपरिकर अधिकरणस्य) में उल्लिखित है। गुप्त लेखों से इन प्रातों (भुक्ति) पर शासन करने वाले राज्यपाल के नाम भी प्राप्त होते हैं तथा राष्ट्रीय, भोगिक, भोगपति तथा गोप्ता शब्दों का प्रयोग उस पद के लिए किया गया है (विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—लेखक का ग्रंथ-गुप्त साम्राज्य का इतिहास भाग २) कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त के लेख इस विषय में अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। प्रांतों को जिला (विषय) में विभक्त किया गया था जिसके सम्बन्ध में विशेष उल्लेख वैशाली की मुहरों तथा दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) के ताम्रपत्रों में मिलता है। इसका अध्ययन यह बतलाता है कि मंत्रीगण पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते थे। नगर के कार्यालय को अधिकरण कहते थे। वैशाली के मुहरों में कुमारामात्य पदवी भी मिलती है। कुमार गुप्त के करम दण्डा शिवलिङ्ग लेख से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुप्तकाल में मंत्रीपद वंशानुगत था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मंत्री शिखरस्वामी के पश्चात् उसका पुत्र पृथिवीषेण गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त प्रथम के मंत्री पद पर आसीन था।

काठियावाड में पर्णदत्त तथा नगर शासक के लिए स्कन्दगुप्त ने चक्रपालित की नियुक्ति की थी। जिसका वर्णन जूनागढ़ के लेख में निम्न प्रकार से मिलता है—

> आ ज्ञातमेकः खलु पर्णदत्तो भारस्यतस्यो द्वहने समर्थः।
> पूर्व्वेतरस्यां दिशि पर्णदन्तं नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत।

चक्रपालित के लिए लिखा है—

> यः सन्निभुक्तो नगरस्य रक्षां विशिष्य पूर्वान् प्रचकार सम्यक्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदि मध्ययुग के आरम्भ से ही ताम्रपत्रों का अध्ययन किया जाय तो प्रकट होता है कि राजा सरकारी कर्मचारियों को दान की सूचना देते समय सबको सम्बोधित करता रहा और इसीलिए बांसखेड़ा खालीमपुर, नालंदा, मुंगेर आदि ताम्रपत्रों में अनेक पदाधिकारियों का उल्लेख किया गया है। निम्नलिखित सूची से तत्कालीन स्थिति का पता लग सकता है—

राजा राजानक राजपुत्र, राजामात्य, सेनापति, विषयपति, भोगपति. षष्टाधिकृत, दण्डशक्ति दण्डपाशिक, चौराद्धरणिक, दौहसाधसाधनिक, दूत, खोल गमागमिक अभित्वरमाण, हस्तश्वगोमहिष्यजाविकाध्यक्ष, नौकाध्यक, बलाध्यक्ष, तारिक, शौल्किक, गुल्मिक, आयुक्तक, चाट, भट, ज्येष्ठ कायस्थ, महामहत्तर दशग्रामिक, विषय व्यवहारिन (खालीमपुर ताम्रपत्र), महाप्रभातर, महासामन्त महाक्षपटलिक, रणाधिकृत आदि पदाधिकारियों के नाम। विषय के अन्तर्गत अनेक ग्राम थे जिसका मुखिया महत्तर कहलाता और ग्राम की ईकाई स्वतंत्र थी।

राजतंत्र व प्रजातंत्र प्रणाली

प्रशस्तियों तथा मुद्रा-लेख का अध्ययन यह बतलाता है कि प्राचीन युग में दो प्रकार के शासन-राजतंत्र तथा प्रजातंत्र—वर्तमान थे। प्रजातंत्र के लिए गण या संघ शब्द का प्रयोग मिलता है। यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य ने साम्राज्य भावना को प्रोत्साहित किया परन्तु संघ शासन को नष्ट न कर सका। उत्तरी विहार में वृज्जि संघ इतिहास में प्रसिद्ध प्रजातंत्र था। अशोक के शासनकाल में वही भावना काम करती रही। उसने राजतंत्र को ही बल दिया और उसके प्रभाव से राजतंत्र की प्रतिष्ठा भी स्थिर हो गई। साम्राज्य के दबाव से संघ शासक सिर न उठा सके। अभिलेखों के अनुशीलन से पता चलता है कि राजतंत्र के साथ संघशासन भी प्रचलित रहा। ईसा पूर्व सदियों में भारत में प्रचलित सिक्कों का मुद्रा-लेख इस बात को प्रमाणित करते हैं। यौधेय, कुषिन्द, आर्जुनायन, तथा मालव संघ शासकों के सिक्कों पर साफ तौर से लेख खुदा है—जैसे यौधेय गणस्य जयः, मालवांनां गणस्य जयः आर्जुनायनानां जयः आदि लेख ऊपर लिखे कथन की पुष्टि करते हैं। मालव गण का उल्लेख तथा यौधेय गण का वर्णन शक नरेश नहपान के नासिक तथा रुद्रदामन के जूनागढ़ लेखों में क्रमशः पाया जाता है। [ए० इ० भा० ८ वीर शब्द जातोत्सेका विधेयानां यौधेयानां] समुद्र गुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख से पता चलता है कि गुप्त नरेश ने "मालवार्जुनायन यौधेय माद्रकाभीर" संघों को परास्त किया। इसके बाद संघ शासन का अस्तित्व मिट गया। तात्पर्य यह है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी से चौथी शताब्दी यानी सात सौ वर्षों तक दो प्रकार के शासन (राजतंत्र तथा प्रजातंत्र) का उल्लेख अभिलेखों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में पाया जाता है। इसके बाद प्रजातंत्र राजतंत्र में विलीन हो गया। मध्ययुग से संघ शासकों (सभापति) की कोई पदवी लेखों में नहीं पाई जाती परन्तु साम्राज्य स्थापना के पश्चात् राजाओं की महान् पदवियों का वर्णन मिलता है।

अशोक के लेखों में उन महान पदवियों के नाम नहीं आते हैं जिनका उल्लेख पीछे के लेखों में सर्वत्र पाया जाता है। शक पह्लव राजाओं के सिक्कों पर यूनानी पदवी 'वैसिलियस वैसिलयन' का भारतीय अनुवाद 'महरजस रजरजस महतस' अंकित मिलता है। उन्हीं के लिए प्रयाग स्तम्भ लेख में शाहानुशाई पदवी लिखी गयी है। पश्चिमी भारत के शक शासकों के सिक्कों पर महाक्षत्रप की उपाधि मिलती है जो राजा के समान स्वतंत्र पदवी थी। गुप्त काल से राजा की पदवियों का ढंग ही बदल गया। सर्वप्रथम गुप्त राजा महाराज की पदवी से विभूषित था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर महान सम्राट होने की घोषणा की। लेखों में परमेश्वर चक्रवर्ती या सम्राट भी उसी तरह प्रयुक्त किया जाता था। उसके उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने सम्राट् की पदवी के साथ परमभागवत की धार्मिक उपाधि ग्रहण की। इंदौर के ताम्रपत्र में सर्वप्रथम गुप्त सम्राट के लिए परमभट्टारक महाराजधिराज की उपाधि मिलती है और उस समय से यह प्रचलित होकर पूर्व मध्यकाल की प्रशस्तियों में प्रयुक्त है। हर्षवर्धन तथा मौखरि लेखों में राजा के लिए महाराजाधिराज की पदवी ही मिली है लेकिन पिछले गुप्त तथा अन्य समकालीन राजाओं के लिए उससे भी महान पदवी "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" का उल्लेख कर और उनकी रानियों के लिए भी परम-भट्टारिका लिखकर महान राजा होने का व्यर्थ दावा किया गया है। पूर्व मध्यकाल में सारा देश छोटे छोटे राज्यों में बटा था, अत: उन छोटे शासकों के लिये बड़ी उपाधि अर्थ हीन सिद्ध होती है। केवल पदवी धारण करने से महान सम्राट नहीं बन सकते। इसी कारण लेखों में उल्लिखित पदवियां निरर्थक हैं उदाहरणार्थ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर जीवित गुप्त ऐसे छोटे राजा के लिए प्रयुक्त है। बल्लभी दानपत्र में साधारण शासक की पदवी परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर चक्रवर्ती उल्लिखित है (ए० इ० पृ० (७)। गुप्त राजाओं के वास्तविक सम्राट होने पर भी इस महान उपाधि के धारण करने का अवसर न मिल सका जिसको छोटे छोटे राजाओं ने ग्रहण किया था।

लेखों से पता चलता है कि सारा राज्य कई प्रांतों में बटा रहता था जिसको "भक्ति" कहते थे। "भुक्ति" को छोटे जिलों में बाटते थे जिनको प्रशस्तियों में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'विषय' कहा गया है। शासन के सुप्रबंध के लिए इसको भी छोटे भागों में बांटा गया था। जो "ग्राम" के नाम से पुकारे जाते हैं। केन्द्र में राजा स्वयं शासन करता था और उसके सलाह के लिए मंत्रिपरिषद नियुक्त था। जिसे अशोक के प्रधान शिलालेखों में परिषद कहा गया है।

अशोक ने कलिंग लेख में कहा है "मेरी प्रजा मेरे बच्चों के समान हैं और मैं चाहता हूं कि सब को इस लोक तथा परलोक में सुख तथा शांति मिले।" यह प्राचीन राजाओं का आदर्श था जिसके कारण राजा तया प्रजा में सुख शांति बनी रहती थी।

धौली के पृथक शिलालेख में अशोक ने कहा था--

"सवे मुनिसे पजा ममा। अधा पजाये इच्छामि हकं
कित सवेन हित सुखेन हिदलोकिके पाललोकिके"

उसके पश्चात भी राजा सदा प्रजा चिन्तन में लगे रहते थे। जूनागढ़ के लेख में महाक्षत्रप रुद्रदामन ने उल्लेख किया है कि मंत्रियों के विरोध करने पर भी प्रजा के सुख तथा भलाई के लिए निजी धन से उसने बांध बंधवाया था। (अपीड-यित्वा करविष्टि प्रगय क्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात्कोशा महता त्रिगुण दृढ़तर विस्तारायामं सेतुं विधाय सर्वतटे सुदर्शन तरं कारितमिति (ए० इ० ८पृ० ४२) उसी स्थान के गुप्त लेख से पता चलता है कि स्कन्द गुप्त भी पश्चिमी प्रांत के योग्य शासक के लिए चिन्ता करता रहा है। (सर्वेषु देशेषु विषाय गोप्तृन संचिन्तया मास बहु प्रकारम्) इस प्रकार राजाओं के गुण के सम्वन्ध में हमारी जानकारी बढ़ती है।

इतना ही नहीं, पाल नरेश धर्मपाल के खालीमपुर लेख से विदित होता है कि उसके पिता गोपाल ने 'मात्स्यन्याय' को समाप्तकर बंगाल में शांति की स्थापना की। इसीलिए जनता ने उन्हें चुनकर पालवंश का शासक बनाया (ए० इ० ४)।

मात्स्यन्यायमुपोहितुं प्रकृतिभिः लक्ष्माः कर ग्राहितः
श्री गोपाल इति क्षितिश शिरशा चूड़ामणि तत्सुत।

इन सब विवरणों से राजा के प्रजाहित चिन्तन तथा आदर्श राजशासन की बातों का परिज्ञान होता है।

इस की पुनरावृति की आवश्यकता नहीं है कि पूर्व मध्ययुग से ताम्रपत्रों में पदाधिकारियों के अधिक नाम मिलते हैं। इस का एक मात्र कारण यह था दान करते समय अग्रहार पर राजकीय अधिकार दानग्राही को सौंप दिया जाता था और दान भूमि से प्रत्येक प्रकार का कर दानग्राही ग्रहण करता। इसलिए यह आवश्यक

अभिलेखों में उल्लिखित पदाधिकारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था कि सभी अधिकारियों को दान भूमि के सम्बन्ध में सूचना मिल जाय और कालान्तर में उस क्षेत्र से कर ग्रहण करने का प्रबंध न किया जाय। इसी प्रसंग में दान कर्त्ता शासक की पदवियां उल्लिखित हैं तथा पदाधिकारियों की चर्चा आज्ञा प्रदान करते समय की गई है। गुप्त लेख वैशाली की मुहरें तथा पालयुग की प्रशस्तियों में भी अधिक नाम मिलते हैं। कन्नौज के राजा चन्द्रदेव के अभिलेख में वही नाम मिलते हैं (ए० इ० भा० १४ पृ० १९४) अक्षर क्रम से निम्न लिखित उपाधि नाम दिए जा रहे हैं––

अन्तः पुरिक––महल का प्रबंधक (पहले इसके लिए प्रतिहार शब्द का प्रयोग किया जाता था) अशोक के लेख में "स्त्रीध्यक्ष महामात्र" का भी यही कार्य था।

अन्तपाल––सीमा अधिकारी वह साम्राज्य की सीमा की निगरानी करता था।

अन्त महामात्र—सीमा सम्बन्धी राजनीति-विचारक।

अग्रहारिक––दान तथा अग्रहारभूमि का पदाधिकारी उसे 'दानाध्यक्ष' भी कहा गया है। अशोक के लेख में धर्ममहामात्र के नाम से उल्लेख मिलता है।

आयुधगाराध्यक्ष—शस्त्रशाला का अध्यक्ष।

अक्षपटलिक—लेख-प्रमाण का सुरक्षित करने वाला। मध्ययुग के लेखों में इसी को "महाक्षपटलिक" कहा गया है।

आकराध्यक्ष—खान का निरीक्षक।

अश्वाध्यक्ष––घुड़सवारों का उच्च अधिकारी। पूर्व मध्ययुग के अभिलेखों में 'भटाश्वपति' का नाम मिलता है जो पैदल तथा अश्वारोही टुकड़ी का अधीक्षक होता था।

आटविक—जंगली जातियों का मुख्य।

आमात्य—सचिव कुमारामात्य से तात्पर्य राजकुमार के सचिव से है जो राज्यपाल की सहायता करता था।

उपरिक–– } प्रांत का पति [वर्तमान राज्यपाल, गुप्त मुद्राओं के उपरिक महाराज]

उपारिक–– } जमीन नापने वाला

करणिक अथवा कारणिक––हिसाब देखने वाला (वर्तमान मुनिव)।

कार्यान्तिक––कारखाने का उच्च अधिकारी।

कुप्याध्यक्ष––जंगल की पैदावार का निरीक्षक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करितुरगपत्तनाकर स्थान विषय गोकुल प्रमुखाधिकार पुरुषान्--जिला का एक अधिकारी जो शहर के हाथी, घोड़े, गाय तथा कान का देखरेख करता था (ए० इ० १४ पृ० १९४)

कुमारामात्य--प्रांतपति का मंत्री। प्रांतपति के पद पर कुमार नियुक्त किया जाता था अतएव मंत्री को कुमारामात्य कहा गया। गुप्त युग से ही लेखों तथा मुद्राओं में यह शब्द आता है। अतएव राजकुमार का मंत्री इसे मानना चाहिए। कुछ विद्वान् कुमार के सदृश इसका अधिकार समझते हैं।

कोटपाल--दुर्ग का अधिकारी--मध्ययुग के लेखों में यह शब्द अधिकतर पाया जाता है। (इसका रूप मुसलिम युग में कोतवाल हो गया)

खोल--खालीमपुर ताम्रपत्र में प्रयुक्त। वास्तविक तात्पर्य अज्ञात है।

गमागमिक--राजकीय आज्ञा को शीघ्र ले जाना तथा वापिस लेने वाला अधिकारी (खालीमपुर लेख)।

ग्रामपति--ग्राम का मुखिया (इसे महत्तर भी कहते थे) दोनों शब्द लेखों में एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

ग्रामिक--ग्राम के मुख्य पदाधिकारी--यह महत्तर से सर्वथा भिन्न कर्मचारी था। पाल लेखों में 'दश ग्रामिक' शब्द मिलता है। सम्भवतः वह राजकीय पदाधिकारी दस ग्रामों का प्रबंधक था। ग्रामपति से वह भिन्न व्यक्ति है।

ग्रामकूट--मध्य युग के लेखों में अधिक प्रयुक्त है। यह ग्राम का कोई उच्च अधिकारी होगा।

गोऽध्यक्ष--गाय का निरीक्षण राजकीय कार्य समझा जाता था। पशुधन की ओर भी शासक का ध्यान था। पाल लेखों से दूसरा शब्द "गोकुल प्रमुखाधिकारी" मिलता है। जिसका तात्पर्य वही है। गो का निरीक्षक।

गोप--ग्राम का लेखा रखने वाला। यह ग्रामपति की सहायता किया करता था।

गोप्ता--प्रांतपति (सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्) स्कन्द का जूनागढ़ लेख।

गोल्मिक या गुल्मिक--जंगल का अधिकारी।

चाट--पुलिस का सिपाही।

चौराद्धरणिक--चोर को पकड़ने वाला तथा उसकी परीक्षा करने वाला।

ज्येष्ठ कायस्थ--ताम्रपत्रों का लेखक कायस्थ कहलाता था गांवों का प्रमाण-पत्र रखने वाला। प्रथम कायस्थ शब्द भी दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मिलता है।

तलवाटक—मध्ययुग के लेख में ग्राम के आय-व्यय का लेखक।

तारपति—नदियों के घाट का संस्कार करने वाला।

तारिक—घाट का निरीक्षक या कर ग्रहण करने वाला। नासिक लेख में नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि उसने नदियों के घाट पर टैक्स को माफ कर दिया था (नाना पुण्यतर-करेण एतासां च नदीनां)

दण्डनायक—न्याय के विभाग का अधिकारी पिछले लेखों में 'महादण्ड नायक' शब्द आता है। गुप्त युग के भीटा लेख में "दण्डनायक श्री शंकर-दत्तस्य" का उल्लेख है।

दण्डपाशिक या दण्डवाशिक—साधारण न्यायाधीश जो पुलिश कार्यों के सम्बन्ध में कार्य करता था।

दण्ड शक्ति या दाण्डिक—न्याय तथा दण्ड सम्बन्धी पदाधिकारी।

दशग्रामिक—ग्रामों के कार्यों का निरीक्षक।

दशापराधिक—दश अपराधों के दण्ड (जुर्माना) को ग्रहण करने वाला।

द्रांगिक—शहर का मुख्य अधिकारी।

दूतक या दूत—राजदूत—पाल वंशी नालंदा ताम्रपत्र में या हर्षवर्धन के ताम्र-पत्रों में दूतक का प्रयोग। वर्धन लेखों में वह महासामंत तथा महाराज पदवी से विभूषित है।

दूत प्रेषणिक—पाल प्रशस्तियों में दूतावास का प्रधान।

दौहसाधसाधनिक—शाब्दिक अर्थ से यह प्रकट होता है कि कठिन कार्यों का करने वाला। वसाक ने इसे ग्राम का अधीक्षक माना है। (ए० इ० १३ पृ० ४३) वास्तविक अर्थ अज्ञात है। बंगाल के लेखों में अधिक प्रयुक्त है। "दौहसाधिक, महादूहसाधनिक या महादौह साधनिक" शब्द भी लेखों में आते हैं। पारजिटर साधनिक से जिलाधीश के बदले कार्य करने वाला कर्मचारी मानते थे। (इ० ए० १९१० पृ० २११) फरीदपुर ताम्रपत्र में जहाजरानी से सम्बन्धित शब्द हैं। सेन इसे पागल व्यक्तियों का निरीक्षक समझते हैं। (हिस्टारिकल इन्सक्रूपृशनस आफ बंगाल) अंतिम निर्णय करना कठिन है। लेखक के मत में यह नाम ग्राम के रक्षक को दिया जाता था। दुसाध जाति के लोग अधिकतर गांवों में चौकीदार होते हैं। सम्भवतः इस पदवी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के बिगड़ने से गांव का रक्षक दुसाध कहलाया और बाद में एक जाति बन गई।

धर्ममहापात्र––अशोक के पांचवें शिलालेख में इस पदाधिकारी का नाम आया है। वह राजकीय दान तथा धार्मिक कृत्यों का प्रबंधक था।

ध्रुवाधिकरण––भूमिकर का ग्रहण कर्ता।

नगराध्यक्ष––शहर का निरीक्षक।

नगर श्रेष्ठिन––व्यवसायी संघ का अध्यक्ष।

नौकाध्यक्ष—जहाजरानी का प्रधान अधिकारी।

नैमित्तिक––पूर्वमध्य युग में राजदरबार का ज्योतिषी। वह यात्रा या भविष्य सम्बन्धी बातें कहा करता था (भविष्यवाणी)।

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर––शासक की पदवी।

प्रतिहार––राजकीय महल का प्रबंधक। पिछल लेखों में "महाप्रतिहार" से इसी का तात्पर्य समझना चाहिए।

प्रमातार––भूमि का मापक––(सर्वे करने वाला)

प्रमातृ––न्यायाधीश।

प्रांतपाल––प्रदेश का राज्यपाल।

पुरोहित––पूर्वमध्य युग के लेखों में यह राजा के धार्मिक कृत्यों का करने वाला। यों तो वैदिक काल में पुरोहित का नाम आता है परन्तु पांचवीं सदी तक के लेखों में कम प्रयुक्त हैं।

पुस्तपाल––प्रमाण पत्रों का संग्रह कर्त्ता। यह "अक्षपटलिक" का सहायक था।

बालाधिकृत––सेना का स्वामी। "महाबलाधिकृत" सेना का सर्वोच्च अधिकारी। इसकी समता 'सेनापति' तथा 'महा सेनापति' से क्रमशः किया जाता है।

बलध्यक्ष––सेना का छोटा अधिकारी (एक टुकड़ी का स्वामी)।

विनियुक्तक––विशेष कार्य के निमित्त नियुक्त अधिकारी। तदायुक्तक भी इसी से समता रखता है। सम्भवतः वह जिला के प्रबंध में सहायक था। आयुक्तक से राज्य के साधारण कार्य का निरीक्षक समझना चाहिए।

विषयपति––जिलाधीश

विषय पुरुषान्––जिला के साधारण कर्मचारी

विषय व्यवहारिन––जिला का न्यायाधीश

भट––सेना का सिपाही (सैनिक)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोगपति––गुप्त तथा पाल लेखों में प्रांतपति के लिए प्रयुक्त।

भाण्डागारिक––सेना को सामग्री पहुंचाने वाला कर्मचारी इसे रण 'भाण्डागारिक' भी कहते थे।

भिषग––वैद्य–पाल लेखों में प्रयुक्त

मंत्री––आमात्य, केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित

महत्तर––गांव का मुखिया

महादण्डनायक
या
महादौह साधनिक
या
महा मंत्री
महादण्डनायक
महा महत्तर
महाक्षपटलिक
महा भाण्डागारिक
महा प्रमातार
महा प्रतिहार

} इन पदाधिकारियों का उल्लेख 'महा' शब्द को छोड़ कर ऊपर किया गया है। मध्ययुग के लेखों में पदवियों को उच्च दिखलाने के लिए महा शब्द जोड़ दिया गया है परन्तु कार्य में समता है।

महासेनापति––सेनापति के सदृश पद

महासामंत––सामंत (अधीनस्थ राजा या शासक) के समान ही पद।

महामात्र––प्रधान मंत्री

युक्त––साधारण अर्थ में सहयोगी–अशोक के लेख में धर्ममहामात्र के अधीनस्थ कर्मचारी कहा गया है। खालीमपुर ताम्रपत्र में युक्तक शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त है।

राज, राजानक, राणक या राज राजन्यक } पालवंशी लेखों (खालीमपुर ताम्रपत्र) में यह पदवियां अधीनस्थ सामंत के लिए प्रयुक्त हैं। उसी वंश के मुंगेर दान पत्र में राणक शब्द उल्लिखित है। 'राज' भागलपुर ताम्रपत्र तथा 'राज राजन्यक' बानगढ़ की प्रशस्ति में मिलता है। इन सभी शब्दों का प्रयोग (छोटे शासक) के लिए है। देवपारा के अभिलेख में व्यापारिक संघ के मुख्य की पदवी के रूप में उल्लिखित है। सम्भवतः आर्थिक क्षेत्र में सभी सामंतों ने संघ तैयार कर लिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजपुत्र—राजा का पुत्र यानी राजकुमार। प्राचीन समय में राजकुमार प्रान्त का स्वामी प्रान्तपति हुआ करता था। अशोक भी सम्राट् होने से पूर्व उज्जैन तथा तक्षशिला का राज्यपाल था। पूर्व मध्ययुग के लेखों में केन्द्रीय सरकार के पदाधिकारियों की सूची में राजपुत्र का उल्लेख मिलता है। सम्भवत: वह शासक की सहायता किया करता था।

राजामात्य––राजा का मंत्री (केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्धित)

राजस्थानीय––वैदेशिक विभाग का मंत्री।

राजुक––प्रान्त का राज्यपाल। अशोक के शिलालेख में यह नाम मिलता है पर वास्तविक तात्पर्य विवादास्पद है।

रानी––राजा की पत्नी। किस पत्नी को रानी कहा जाता था यह कहना कठिन है। पट्टमहिषी के अतिरिक्त अन्य स्त्री को रानी से सम्बोधित किया जाता होगा। पूर्व मध्ययुग के पदाधिकारियों की सूची में रानी का उल्लेख मिलता है।

लक्षणाध्यक्ष––सिक्कों का अध्यक्ष

विनय स्थिति स्थापक––मध्ययुग के लेखों में यह पदवी धार्मिक कृत्य के प्रबंधक मंत्री के लिए प्रयुक्त मिलता है। अशोक के लेख में इसे 'धर्म महा-मात्र कहा गया है।

सन्निधातृ––महल का देख रेख करने वाला कर्मचारी। पिछले अभिलेखों में इसके स्थान पर प्रतिहार शब्द का प्रयोग मिलता है।

सामंत—राजा के अधीनस्थ शासक। पूर्व मध्ययुग में इसे "महासामंत" कहा गया है।

सार्थवाह—व्यापारिक संघ का अगुआ जो विदेश से व्यापार करता था।

सेनापति––सेना का प्रधान। "महा सेनापति" शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त मिलता है।

सन्धि विग्रहिक या महा सन्धि विग्रहिक––युद्ध तथा संधि का निर्णय करने वाला पदाधिकारी। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में वर्णन आता है कि हरिषेण संधि विग्रहिक के पश्चात् कुमारामात्य या महादण्डनायक के पदों पर कार्य करता रहा।

शौल्किक—चुंगी के विभाग का अध्यक्ष। लेखों में चुंगीघर को मण्डपिका कहा गया है। उस कर (हाटक) को ग्रहण कर सरकारी कोष में भेजना उसका मुख्य कार्य था। कौटिल्य ने इसे शुल्काध्यक्ष कहा है।

षष्टाधिकृत—इस शब्द का अर्थ है छठें भाग का स्वामी। यानी वह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्मचारी राजकीय कर (छठें भाग) को वसूल करता था। यों तो साहित्य में इस बात का अत्यधिक प्रमाण है कि राजा पैदावार के छठें भाग को ग्रहण करता था, परन्तु लेखों में ऐसे पदाधिकारी का नाम केवल पालयुग में मिलता है। अशोक के लुम्बिनी लेख में 'अठभगिए च' (आठवें भाग) का उल्लेख आता है अशोक ने 'कर' को घटा कर आठवां भाग कर दिया। तात्पर्य यह है कि सबसे अधिक राजकीय कर (छठां भाग) था। खालीमपुर के ताम्रपत्र में यह पदवी मिलती है।

हस्तश्व गोमहिष्यजाविकाध्यक्ष––खालीमपुर ताम्रपत्र में पाल युग के एक पदाधिकारी का नाम है वह पशुधन की देख-रेख करता था। हाथी, घोड़ा, गो, भैंस, बकरी आदि का अध्यक्ष।

क्षत्रप––पश्चिम भारत (सौराष्ट्र, गुजरात मालवा) के शक राजा "क्षत्रप पदवी से विभूषित किए गये थे। यह ईरानी पदवी क्षत्रपावन का विकृत रूप है। उसका संस्कृत रूप क्षत्रप है। प्राकृत में खतप मिलता है। क्षत्रप, महाक्षत्रप (स्वतंत्र शासक) के आधीन सहायक के रूप में काम करता था। मुद्रा लेखों में यह पदवियां सर्वत्र पाई गई हैं। कार्ले, तथा नासिक के गुहा लेख में नहपान क्षत्रप ही कहा गया है, परन्तु वह स्वतंत्र रूप से शासन करता था। [वैशाख मासे राञो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस] (नासिक गुहा) तथा खहरातस खतपस नहपानस (कार्ले गुहा) मिलता है। जूनार गुहा लेख में "महाखतपस सामिनहपानस" उत्कीर्ण है। (ए० इ० भा० ८ पृ० ८२) अतएव यह कहा नहीं जा सकता कि क्षत्रप परतंत्र शासक शक नरेश की पदवी थी। महाक्षत्रप या क्षत्रप उपाधियों के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करना कठिन है। दोनों पदवियां स्वतंत्र शासक के लिए उपयुक्त हैं। पर क्षत्रप मुद्रा लेखों से पता चलता है कि महाक्षत्रप, क्षत्रप से बड़ी उपाधि थी। किन्तु कनिष्क का अधीनस्थ राज्यपाल खरपल्लाना सारनाथ प्रतिमा लेख में 'महाक्षत्रप' कहा गया है।

क्षेत्रप––पाल प्रशस्तियों में क्षेत्र का मापक इस पदवी से पुकारा जाता था।

क्षेत्रपाल––सम्भवतः क्षेत्रप के सदृश भूमि सम्बन्धी कार्य कर्त्ता। निरीक्षक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेखों में कर सम्बन्धी चर्चा

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से भागधुक (राजकीय कर को संग्रह करने वाला) तथा समाहर्ता (उपहार ग्रहण करने वाला) के नाम (रत्निन की सूची में) मिलते हैं। कृषक तथा पशुपालक से कर ग्रहण किया जाता था। वैदिक साहित्य में गाय तथा घोड़ों को कर स्वरूप में देने का विवरण है। अर्थशास्त्र तथा यूनानी लेखकों के वर्णन से पता लगता है कि पैदावार का पच्चीस फी सदी किसानों से '**कर**' वसूल किया जाता था जिसे अशोक ने रुम्मनदेई क्षेत्र के निवासियों के लिए कम कर दिया था। स्मृतिकारों ने एक प्रकार के कर का उल्लेख नहीं किया है। वह आठ से तेतीस प्रति शत कहा गया है (मनु ८, १३० ; गौतम १०, २४–२७ ; अर्थशास्त्र ५, २)। सम्भवतः भूमि के उर्वरा होने के अनुसार ही कर में असमानता थी [धान्यानामष्टमो भागः षष्ठोद्वादश एव वा-मनु ७ १३०) प्राचीन समय में ब्राह्मण तथा मंदिर आदि संस्थाओं को दान देते समय भूमि का स्वामित्व भी राजा के पास न रह पाता था। ग्राम में अन्य व्यक्तियों की भूमि उन्हीं के पास रह जाती थी पर सारे ग्राम का कर दान ग्राही को देना पड़ता था [यूयं समुचित भाग भोग कर हिरण्यादि प्रत्यायोपनयनं करिष्यथ आज्ञा श्रवणविधेयाश्च भविष्यथ—का० इ० इ० भा० ३ पृ० ११८, १२६, १३३ ; ए० इ० २ पृ ३०४ ; भा० १९ पृ० १५]

अभिलेखों का वर्गीकरण करते समय यह कहा जा चुका है कि अधिकतर लेख दान से सम्बन्ध रखते हैं और ईसवी सन् की छठी शताब्दी से ताम्रपत्रों में ऐसा विवरण पाया जाता है। इससे पूर्व सदियों में दान का वर्णन नहीं के बराबर है। जहाँ दान का उल्लेख है उस स्थान पर दानग्राही को कर से मुक्त करने का विवरण दिया गया है। अभिलेखों में विभिन्न कर के नाम यथास्थान मिलते हैं परन्तु उसकी मात्रा का अनुमान छठी सदी पूर्व सदियों में नहीं लगाया जा सकता। केवल **कर** शब्द से ही संतोष करना पड़ता है।

अशोक के रुम्मनदेई स्तम्भ लेख में वर्णन आता है कि सम्राट अशोक ने लुम्बिनी की यात्रा की तथा उसी की याद में राजकीय कर घटा कर आठवां भाग (अठ-भागियेच) कर दिया। अर्थ शास्त्रियों ने पैदावार का छठा भाग भूमि कर के रूप में लेने का वर्णन किया है। मौर्य काल में भी यही अनुपात रहा होगा केवल रुम्मनदेई नेपाल तराई भूभाग में अशोक ने इसे कम कर दिया और उस भूभाग की जनता आठवां भाग ही कर दिया करेगी। ईसवी सन् की दूसरी सदी के लेख में (जूनागढ़ शिला लेख) महाक्षत्रप रुद्रदामन ने स्पष्टतया उल्लेख किया है कि वह कर (भूमि-कर) तथा विष्टि (वेगार) से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रजा का पीडन नहीं करता था (अपीडयित्वा कर-विष्टि-प्रणयक्रियाभि:—ए० इ० भा० ८ पृ० ४२)। अर्थात् सुदर्शन झील में बांध को सुदृढ़ करने के लिए उसने अस्थायी कर नहीं लगाया और अपने कोश से ही उसका निर्माण किया था। सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णी के नासिक लेख में सवक्षेत्र को कर मुक्त करने की बात कही गई है (एतस चस खेतस परिहार वितराम अथवा सवजात परिहारिक च) वासिष्ठी पुत्र पुलमावी के कार्ले प्रशस्ति में "सकरोत् कर: सदेय मेय:"—का उल्लेख किया गया है यानी उस भाग का राजकीय कर भी दान के साथ दिया गया था (ए० इ० भा० ७ पृ० ६१)। उस नरेश ने अपने पिता को धर्मानुसार कर ग्रहण करने वाला शासक कहा है (धर्मोपजित-कर-विनियोग-करस; नासिक लेख ए० इ० भा० ८ पृ० ६०)। गुप्त युग के लेखों में भी केवल 'कर' शब्द का उल्लेख पाया जाता है। प्रयाग स्तम्भ लेख में वर्णन है कि सम्राट् समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के सामंतों को पराजित किया और दक्षिण के विजित शासक 'कर' देने के पश्चात् मुक्त कर दिए गए। (सर्व कर दानाज्ञाकरण प्रणामागमन परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य—प्रयागस्तम्भ लेख)।

गुप्तों के समकालीन दक्षिण के वाकाटक नरेशों ने प्रशस्तियों में किसी विशेष कर का नाम नहीं दिया है। परन्तु प्रवरसेन द्वितीय का इंदोर ताम्रपत्र तथा प्रभावती गुप्ता के वाकाटक लेखों में विभिन्न कार्यों द्वारा ग्रहित कर से मुक्त करने की चर्चा मिलती है। उस दान को अकरादायि (कर से रहित) अचरासन (उस भूमि में चरागाह नहीं रह सकता) अपशुमेध्य (उस भूमि में पशु यज्ञ नहीं हो सकता), अपुष्पक्षीर संदोहः (उस भूमि से पुष्प या दूध के रूप में ग्रहित कर नहीं लिया जायगा) अलवण क्लिणव क्रेणि खनक (उस भूमि से नमक खान से नहीं निकाला जायगा या वहां शराब नहीं बनाया जा सकता) तथा अचटभट प्रावेश्य: (जिस भूमि में सैनिक या सिपाही प्रवेश नहीं कर सकता) कह कर वर्णित किया गया है। जो भूमि दान में दी गई है उसमें खान से निकली सभी अमूल्य वस्तु (सोपनिधि) दानग्राही को मिलती थी और गड़े धन का मालिक (सनिधि) भी वहीं व्यक्ति समझा जाता था। (ए० इ० १५ पृ० ४१ तथा भा० २४ पृ० ५२ इ० हि० क्वा० भा० १६ पृ० १८२)

गुप्त युग के पश्चात् छठी सदी के वैग्राम, दामोदरपुर तथा फरीदपुर (बंगाल) के ताम्रपत्रों में स्पष्टतया उल्लेख मिलता है कि छठा भाग ही राजकीय कर था जिसे दानग्राही मुक्त कर दिया गया था। जिन शब्दों से यह तात्पर्य निकाला जाता है—(धर्म परतावाप्ति धर्मफलषड्भाग या धर्म्मषड्भाग-लाभ:) उसे पार-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिटर या वसाक ने राजकीय कर (छठें भाग) का अर्थ व्यक्त किया है। धर्मषड् भाग से राजा के छठे भाग का तात्पर्य है और राजा कर की तरह धर्म (पुण्य) के छठें भाग को भी ग्रहण करता है। पाल वंशी खालीमपुर ताम्रपत्र में इस कर को वसूल करने वाला पदाधिकारी "षष्ठाधिकृत" कहा गया है (सेन—बंगाल के अभिलेख सं० १)। यानी दसवीं सदी तक पैदावार का छठां भाग ही राजकीय कर समझा जाता था।

ताम्रपत्रों में दान की भूमि को सभी कर से मुक्त करने का वर्णन मिलता है। हर्षवर्धन के समय से विभिन्न करों (स्थायी या अस्थायी) के नाम मिलते हैं। भूमि-कर नकद या सामान के रूप में दिया जाता था। कुछ अस्थायी कर थे और कुछ चुंगी या बेगार के स्वरूप में ग्रहण किये जाते थे।

भागकर—इससे राजकीय कर छठे भाग का बोध होता है। कई लेखों में उद्रंग कह कर भी इसका अभिप्राय व्यक्त किया गया है। जातक में इस भाग लेने वाले को द्रोणमापक कहा गया है।

भोगकर—यह कर 'भाग' से भिन्न था। सम्भवतः स्थायी रूप में कर को भाग कहते थे और समयानुकूल भूमि जोतने पर कृषक को कर देना पड़ता था जिसे भोग कह सकते हैं। उपरि शब्द भी इसी तरह के कर का बोधक है।

सधान्य हिरण्य—इससे तात्पर्य यह था कि भूमि कर का कुछ अंश धान्य रूप में तथा कुछ नकद दिया जाता था। लेखों में हिरण्य राजकीय कर के लिए ही प्रयुक्त है (जहाँ नकद कर दिया जाता था)। गुर्जर प्रतिहार लेख में वर्णन आता है कि ग्राम के आय से ५०० द्रम मंदिर में दिए गए थे। (इ० ए० भा० १६ पृ० १७४) उड़ीसा के लेख (ए० इ० १२ पृ० २०) तथा दक्षिण की प्रशस्ति में भी नकद सिक्का कर में देने का विवरण है (सा० इ० इ० सं० ४, ५) खेत की पैदावार से राजा को कुछ सम्बन्ध न था। सभी लेखों में 'हिरण्य' का अधिक प्रयोग मिलता है।

हाटक—पालवंशी दानपत्रों में इस शब्द से चुंगी का तात्पर्य समझा जाता है। हाट (बाजार) से जो कर लिया जाय वह हाटक कहलाता।

अचाटभट प्रावेश्य—इन शब्दों के प्रयोग से एक प्रकार के अस्थायी कर का बोध होता है जो ग्राम में सैनिक तथा पुलिस सिपाही (चाट भट) के प्रवेश करने पर ग्रामवासियों को देना पड़ता था। इसमें उनके भोजन सम्बन्धी व्यय सम्मिलित है। यह यदा कदा देना पड़ता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशापराध—वलभी लेखों में इसका प्रयोग मिलता है। यह अस्थायी दण्ड था जो अपराधी से वसूल किया जाता था।

भूतवात प्रत्याय—बलभी तथा दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट लेखों में इस अस्थायी कर का उल्लेख मिलता है। भूतवात से सुरक्षित (आयात) तथा निर्यात वस्तुओं पर लगाए गए कर का बोध होता है। कुछ विद्वान् इसे भूतप्रेत को हटाने के लिए लगाए टैक्स (कर) से तात्पर्य समझते हैं। स्यात् ग्राम में भूत चाण्डाल तथा प्रेत की स्थिति से लोगों को भय बना रहता था जिसे हटाने के लिए पूजा-पाठ या तंत्रमंत्र किया जाता होगा। उसी कार्य के व्यय को भूतवात कहते थे।

विष्टि-वेगार—जिस कार्य की मजदूरी न देना पड़े। जो गरीब व्यक्ति अस्थायी कर नहीं दे सकता वह बेगार देता था। इस प्रकार स्थायी तथा अस्थयी कर के नाम विभिन्न लेखों में आता है। सभी कर एक लेख में भी उल्लिखित हैं (ए० इ० १ पृ० ८८)

दानपत्रों में 'निविधर्म' या 'भूमिछिद्रन्याय' शब्दों का प्रयोग स्थायी ढंग के दान के लिए किया गया है। जो व्यक्ति बंजर भूमि को खोदकर उपजाऊ बना लेता, वह उसका स्थायी मालिक हो जाता था। भूमिछिद्र न्याय उसी अर्थ में प्रयुक्त है, यानी स्थायी स्वामित्व। उस दान को वापस लेने में पाप लगता था। समस्त कर दानग्राही ही वसूल कर सकता था। उस भूमि से राजा को (दान कर्त्ता को) सभी प्रकार की आय से हाथ धोना पड़ता था। राजा अपना स्वामित्व दानकर्त्ता को अर्पित कर देता। सम्भवतः कलिंग में इस तरह की दान-प्रणाली का अभाव पाया जाता है। एक लेख में 'कर-शासन' शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका तात्पर्य यह है कि दानग्राही को उस भूमि का कर राजकोश में जमा करना पड़ेगा। (ए० इ० २९ पृ० १६७)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ६

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में वर्णित समाज

भारतीय समाज की सर्व प्रमुख संस्था को "वर्णाश्रम' कहते हैं जिसके आधार पर हिन्दू समाज अवलम्बित है। भारत के उन्नयन तथा गौरवमय जीवन का वहुत कुछ श्रेय इसी संस्था को हैं। इसके उत्पत्ति तथा विकास के प्रसंग में दो मत व्यक्त किए गए हैं-जीवविद्या तथा दार्शनिक। किसी भी पक्ष के विषय में विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वैदिक कालीन वर्ण कालान्तर में जाति का बोधक हो गया। स्मृतियों में चार वर्णों के नास मिलतेहैं--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जिसमें प्रथम तीन को 'द्विज' कहा गया है। भारतीय अभिलेखों का उद्देश्य वर्णाश्रमधर्म का वर्णन उपस्थित करना नहीं था केवल शासन या दान के प्रसंग वश वर्ण के नाम उल्लिखित मिलते हैं। मौर्य सम्राट अशोक ने लेखों में यह विचार व्यक्त किया था कि समाज में ब्राह्मणों का दर्शन करना तथा दान देना श्रेयस्कर है [वाम्हण समणानं साधुदानं। व्रम्हण समणानं संपटिपति, वाम्हण-समणानं दसणे च दाने। शिलालेख ३, ४, ८] दक्षिण भारत में मौर्य राजाओं के उत्तराधिकारी सातवाहन नरेश गर्व के साथ अपने को ब्राह्मण कहते थे तथा नासिक लेख में क्षत्रियों (शत्रु) के मान मर्दन का विवरण भी उपस्थित किया गया है। गौतमी पुत्र शातकर्णि अपने पुत्र पुलमावी के लेख में "एक वम्हण" कहा गया है तथा "खतिय-दपमान मदनस" का उल्लेख भी है (नासिक गुहा लेख) उसके समकालीन क्षत्रप राजा नहपान के लेखों में दान के प्रसंग में ब्राह्मण का नाम मिलता है। (देवान ब्राह्मणानां च कर्षापण सहस्राणि सतरि-दिन। देवताभ्यः ब्राह्मणेभ्य षोडश ग्राम देन- नासिक का लेख) इस प्रकार समाज में तथा दानग्राही के नाते लेखों में ब्राह्मणों

वर्णाश्रम संस्था

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का उल्लेख है। क्षत्रिय नाम भी युद्ध तथा अग्रहार देने के प्रसंग में उल्लिखित मिलता है। दूसरी सदी के महाक्षत्रप रुद्रदामन का जूनागढ़ लेख यह बतलाता है कि इसने क्षत्रियों में वीर यौधेयगण को पराजित किला था। इसी तरह गुप्त युग के एक लेख में तीनों वर्णों का उल्लेख आता है। इंदौर (बुलंदशहर उत्तर प्रदेश) नामक स्थान से एक दान पात्र ब्राह्मण को भेंट किया गया जिसके दाता क्षत्रिय वंशी अचलवर्म एवं भ्रुकुण्ठ सिंह थे। ये दोनों व्यक्ति वैश्य वृत्ति से जीवन यापन करते थे। अतएव उस इंदौर लेख में दान के प्रसंग में ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों के नाम मिलते हैं--

चातुर्विद्य सामान्य ब्राह्मग .... राणायणीयो वर्षगण-सगोत्र इन्द्रापुरक वाणिग्भ्यां क्षत्रियाचल वर्म भ्रुकुण्ठसिहभ्याम्। (स्कन्द गुप्त का इंदौरलेख)

गुप्तयुग के पश्चात सम्भवतः वर्णाश्रम संस्था में कमजोरियां आने लगी थी इसीलिए पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) के लेखों में शासक का कर्त्तव्य समझा गया है कि समाज को समुचित रूप से स्थिर रखने के लिए वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें। गुप्तों के सामन्त संक्षोभ के सम्बन्ध में खोह ताम्रपत्र में "वर्णाश्रम धर्म स्थापना निरतेन परम भागवतेन .... संक्षोभेन" उल्लेख मिलता है (का० इ० इ० ३ पृ० ११४) हर्ष वर्धन के पिता प्रभाकर वर्धन के समक्ष यह समस्या थी अतएव वह इसकी रक्षा में दत्त चित्त से लगा रहा। अतः बांसखेड़ा के ताम्रपत्र में उसे "वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत" कहा गया है (ए० इ० ४पृ० २१०) मौखारि नरेश अवन्ति वर्मन के लिए भी इन शब्दों का प्रयोग मिलता है (ए० इ० २७ पृ० ६४) काम रूप के राजा भास्कर वर्मन के लेख में वर्णन आता है कि वर्णाश्रम संस्था (जो पूर्व काल में अव्यवस्थित थी) को उसने सुव्यवस्थित किया--

आवकीर्ग वर्णाश्रमधर्म्म प्रविभागाय निर्म्मितो

(निधान पुर ताम्रपत्र ए० इ० १२ पृ० ७५)

११वीं सदी के राजा इन्द्रपाल ने वर्णाश्रम की मर्यादा स्थिर करने का प्रयत्न किया था--

सम्यग् विभक्त चतुराश्रम वर्णधर्मा

(गोहाटी ताम्रपत्र--ज० ए० सो०व० १८९७ पृ० १२५)

स्यात् पूर्व मध्यकाल में यह एक महत्व पूर्ण प्रश्न था और समाज को सुस्थिर (विघटन न होने देना) रखना शासक का परम कर्त्तव्य था। यही कारण था कि बंगाल के बौद्धधर्मानुयायी पाल राजा भी वर्णाश्रम के व्यवस्था में प्रयत्नशील थे। वानागढ़ लेख में (ए० इ० १४ पृ० ३२५) उन्हें 'मर्यादा परिपालनैक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निरतः' कहा गया है--

वर्णानान् प्रतिष्ठापयता स्वधर्मे

(इ० ए० २१ पृ० २५५)

पालवंशी आमागाद्दी लेख में तृतीय विग्रहपाल चारों वर्णों का संरक्षक कहा गया है--चातुर्वर्ण्य समाश्रमः (वही पृ०९९) । इसी के सदृश उड़ीसा का राजा क्षेमनकर "वर्णाश्रम परमोपासक" पदवी से विभूषित है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि समाज को विघटन से बचाने के लिए शासकों ने वर्णाश्रम धर्म (पालन करने के निमित्त) का समादर करने की आज्ञा प्रकाशित की। गुप्त युग से पूर्व विदेशी आक्रमणकारी भारतीय समाज में विलीन हो गए। ७ वीं सदी से ईस्लाम का आगमन भारत में हुआ और भारतीय समाज के सामने जटिल समस्या उपस्थित थी। वर्णाश्रम का पालन स्यात् उसके समाधान का एक मार्ग समझा गया और राजाओं ने उसके लिए आज्ञाएं जारी की (वे स्वयं भी सतर्क थे। चहमान राजा के सिवालिक स्तम्भ लेख में म्लेच्छों से पृथक रहने की बात कही गई है। (ए० इ० १९ पृ० २१५) मेधातिथि ने भी (मनु २, २३) ऊपर लिखित विचार का समर्थन किया है। उसने टीका में लिखा है कि क्षत्रिय राजा को चातुवर्ण्य की स्थापना में संलग्न रहना चाहिए—

(यदि कश्चित्क्षत्रियादि जातोयो राजा साध्वाचरणो मेल्छान् पराजयेत चातुर्वण्यं वासयेत्) ।

जैसा कहा गया है कि मध्य युग के प्रशस्तिकार चातुर्वण्य का उल्लेख करते हैं परन्तु अभिलेखों में एक पंचम वर्ण-चाण्डाल-का भी नाम मिलता है। दान पत्रों में ग्राम सम्बन्धी वार्ता में "ब्राह्मण चण्डाल पर्यन्त" शब्दों का उल्लेख है यानी चार वर्ण तथा चाण्डाल वहीं निवास करते थे। स्मृतियों में भी उस पंचम अत्यन्ज का वर्णन मिलता है जो अनुलोभ तथा प्रति लोम विवाह से उत्पन्न हुए थे। उस युग में कार्य तथा स्थान के कारण भी जातियों में विभेद हो गया जिसके नाम लेख में मिलते हैं। यों तो अलबेरूनी ने सोलह, इब्न खुर्दजवा सात तथा कल्हण ने चौसठ जातियों का वर्णन किया है जो यह बतलाता है कि पूर्वमध्य युग में (७००-१२०० ई०) पांच वर्णों से सम्बन्धित अनेक जातियां प्रसिद्ध हो गई थीं।

ब्राह्मण अपनी विद्वता शुद्ध आचरण तथा व्यवहार कुशलता के लिए चारों वर्णों में श्रेष्ठ माने गए हैं। तीनों वर्ण इनके बतलाए मार्ग पर चलते थे।

ब्राह्मण त्रयो वर्णाः ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मान् प्रब्रुयात् (वशिष्ठ १।१०।४१)। गुप्त युग से पूर्व के ब्राह्मणों की स्थिति के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। गुप्तकाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में ब्राह्मणों का आदर तथा सम्मान था। छठी सदी के बाद भी ब्राह्मण विद्या में अग्रणी थे, इसीलिए पूर्व मध्यकाल की प्रशस्तियों में उनके कुल के साथ विद्या की भी चर्चा की गई हैं। दान सम्बन्धी वर्णन तथा समाज में उनके स्थान में कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता है। उस युग में ब्राह्मणों में इतनी उप-जातियां तथा जीविका के साधन हो गए थे कि समाज में पुराने ढंग की श्रेष्ठता स्थायी न रह सका। क्षत्रिय समाज के अगुआ हो गए और उनके आदेशानुसार ब्राह्मण कार्य करने लगे। यद्यपि साहित्य में पंचगौड़ का विवरण मिलता है परन्तु अभिलेखों में कान्यकुब्ज, मैथिल तथा सरयूपारी के नाम उल्लिखित हैं। ब्राह्मणों के उपनाम स्थान के आधार पर (Territorial Basis) स्थिर किया गया था। कन्नौज के कान्यकुब्ज, बंगाल के गौड़ (गौड़ स्थान का भी नाम था) मिथिला के मैथिल, सरस्वती घाटी के निवासी सारस्वत तथा उड़ीसा (उत्कल) के ब्राह्मण पांचवें स्थान पर थे। लेखों में जहां ब्राह्मग के वहिर्गमन का वर्णन है वहां कान्यकुब्ज का नाम सर्व प्रथम आता है। आसाम में मैथिलों के (ए० इ० ८ पृ० ९२) तथा गौड़, ब्राह्मण (ए० इ० २६ पृ० २६३) के आगमन का विवरण लेखों में मिलता है। गहड़वाल नरेशों के गोरखपुर के लेख में सरयुपारी ब्राह्मण का उल्लेख है (गोविन्दचन्द्रदेव का पाली ताम्रपत्र-ए० ई० ५ पृ० ११४) पंचगौड़ के अतिरिक्त शाकद्वीपी (जिनका नाम मग भी था) ब्राह्मण का वर्णन गोविन्दपुर के लेख (ए० इ० २ पृ० ३३३) में स्पष्ट रूप से पाया जाता है। शकद्वीप से आने के कारण वे शाकद्वीपी कहलाए तथा इनका संबंध ईरान के मग-मजिया–मजियन से बतलाया जाता है। ये सूर्य के पुजारी थे जाते हैं तथा तान्त्रिक भी समझे जाते हैं (मग से अंग्रजी का शब्द मैजिक बना है)——शाकद्वीपस्स दुग्धाम्बु निधि बलयितो यत्र विप्रे मगाख्या वही। इस प्रकार उत्तरी भारत में ब्राह्मण छः विभागों में विभक्त थे और पृथक-पृथक नाम से विख्यात थे।

ब्राह्मणों का वर्गीकरण

भारत में छठी सदी के पश्चात् गोत्र तथा वैदिक शाखा के आधार पर ब्राह्मणों का वर्गीकरण किया गया था। ये दोनों बातें प्रायः प्रत्येक दान पत्र में मिलती हैं। १२ वीं सदी के चन्द्रावती ताम्रपत्र में जो क्रम है (यानी गोत्र तथा शाखा का नाम) उसी को लेकर उप-जातियां बनती गईं। उस लेख में पांच सौ ब्राह्मणों के नाम आते हैं और "नाना गोत्रेभ्यश्चतुश्चरणचतुः श्रुति पाठकेभ्यः पंच शत संख्येभ्य ब्राह्मणेभ्यो" (ए० इ० १४ पृ० २०२) वाक्य द्वारा उन्हें पृथक बतलाया गया है। चन्देल राजा परमर्दि के सेमरा लेख में पैंतीस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोत्र के नाम मिलते हैं (ए० इ० ४ पृ० ११५-६) अत्रि वाभ्रव्य, वन्धुल–वशिष्ठ वत्स विष्णुवृद्ध आदि के परीक्षण से पता लगता है कि काश्यप तथा भारद्वाज गोत्र अधिक लोक प्रिय थे। चन्द्रावती तथा कलहा दानपत्रों में अधिक गोत्र उल्लिखित हैं (ए० इ० १४ पृ० ८७) कात्यायन, काश्यप—सावर्ण तथा शान्डिल्य। कन्व, गालव, पीपलाद, दर्भ आत्रेय (ए० इ० १४ पृ० २०२) वर्तमान समय में भी यही गोत्र समाज में प्रचलित हैं। इसी प्रकार शाखा के सम्बन्ध में भी उल्लेख मिलता है। पूर्व मध्यकाल में (७००-१२०० ई०) जो ब्राह्मण जिस वैदिक शाखा का अध्ययन करता था उसी से वह प्रसिद्ध था और अन्य ब्राह्मण से पृथक हो जाता था। दानग्राही के साथ वैदिक शाखा का उल्लेख परमावश्यक हो गया। कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर, उ० प्र०) में छांदोग्य, वाजसनेय तथा माध्यन्दिन शाखाध्यायी ब्राह्मणों को दान देने का वर्णन मिलता है (ए. इ. ७ पृ. ८७) दूसरे लेख में आश्वलायन, शांखायन (ऋग्वेद) कौथुम राणायनीय (सामवेद) तथा कठ (कृष्ण यजुर्वेद) शाखाओं के नाम मिलते हैं कि दानग्राही इन वैदिक शाखाओं का पण्डित था (ए. इ. ९ पृ. ११६) मालवा की एक प्रशस्ति में तीन ब्राह्मणों को दान दिया गया जिनका निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया (ए. इ. ९ पृ. ११५) था।

(१) माध्यन्दिन (शु० यजुर्वेद)	शाखा का	ब्राह्मण
(२) आश्वलायन (ऋग्वेद)	,,	,,
(३) कौथुम (सामवेद)	,,	,,

कन्नौज शासक भोज के दौलतपुर दानपत्र में ऋग्वेद के आश्वलायन शाखा तथा गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र देव के लेख में वाजसनेय (यजुर्वेद) तथ शांखायन (ऋग्वेद) शाखाओं के नाम मिलते हैं (ए. इ. ३ पृ. २१२ तथा वही ८ पृ. १५४–६) पाल नरेश देवपाल के समय में आश्वलायन तथा कौथुमी शाखाओं के पंण्डित ब्राह्मणों को दान दिया गया था (ए. इ. २१ पृ. २५५, ए. इ. १५ पृ. २९५) सेनवंशी शासक वल्लालसेन के समस्त प्रशस्तियों में तथा लक्ष्मणसेन की दो प्रशस्तियों में वैदिक शाखा के आधार पर ब्राह्मण पृथक-पृथक वर्णित हैं – (नईहटी, गोविन्दपुर, तरपन्डीही, मधैनगर और दीनाजपुर लेख) निघानपुर के ताम्रपत्र में एक सौ उनईस ब्राह्मणों को शाखाओं के आधार पर वर्ग में विभाजित किया गया है। ११९ में ५६ वाजसेनेय शाखा, ११ छांदोग्य शाखा, ३८ वह्वृच शाखा और शेष तैतरीय शाखा के ब्राह्मण कहे गए हैं (ए. इ. १९ पृ. ११८) अतएव संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि गोत्र तथा वैदिक शाखा के आधार पर उचित रीति से ब्राह्मणों का वर्गीकरण किया गया था। कालान्तर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में इससे उपजातियां बनती गई।

यों तो धर्मग्रंथों में ब्राह्मणों के लिए षट्कर्म (यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान प्रतिग्रह) का वर्णन मिलता है तथा पूर्व मध्यकालीन लेख में (ए. इ. १ पृ. १४६–षट्कर्मभिरतारता–ब्राह्मणा:; ए. इ. ९ पृ. १२८–षट्कर्माभिरताय ब्राह्मणाय आदि) भी उन्हीं छः कर्मों का उल्लेख है परन्तु ब्राह्मणों को इन कार्यों के अतिरिक्त अन्य साधन भी ढूंढ़ने पड़े। विशेषकर मंदिरों में पुरोहित का काम करने लगे जिसका अत्यधिक विवरण गहड़वाल, प्रतिहार, परमार, कलचुरि, पाल तथा सेनवंश की प्रशस्तियों में मिलता है। पूजा के अतिरिक्त पुरोहित मंदिर के प्रबन्ध की देख-रेख करता था। मंदिरों में वह कथावाचक (चहमान लेख–ए. इ. ११ पृ. ४५) का भी कार्य करता था। राजघराने में ज्योतिषी के कार्य निमित्त ब्राह्मणों को ही बुलाया जाता था। इस तरह कार्यों को सम्पन्न कर ब्राह्मण मंत्री तथा सेनापति के ऊंचे पद को भी सुशोभित करता था। (ए. इ. १ पृ. २२२, भा. १५ पृ. २०५, भा. ४ पृ. १५८––'ब्राह्मण सेनापति मदनपाल शर्मन' का उल्लेख पाया जाता है। सेना में मृत्यु हो जाने पर ब्राह्मण के परिवार को राजा "मृत्युक वृत्ति" दिया करता था (ए. इ. १६ पृ. २७२)। इस तरह क्षत्रिय वर्ग का कार्य सम्पन्न कर वह जीविकोपार्जन करने लगा।

ब्राह्मणों का जीविका साधन

पाल प्रशतियों में नारायणपाल के ब्राह्मण मंत्री गुरुव-मिश्र तथा गर्ग मिश्र के नाम मिलते हैं जिन्होंने विद्या तथा कार्य कुशलता के कारण मंत्री पद को सुशोभित किया था (ए. इ. २ पृ. १६०) इसी तरह दर्भपाणि तथा केदार मिश्र के नाम आते हैं जो क्रमशः देवपाल तथा सुरपाल के मंत्री थे। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के प्रधान मंत्री भट्ट लक्ष्मीधर का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है जिसने क्रिया-कल्प-तरू नामक निबन्ध की रचना की थी (ग. ओ. सी. न. १०० पृ. १०) इसकी समता विजयनगर के राजा बुक्क के मंत्री सायण तथा माधव से की जा सकती है। पूर्व मध्यकालीन लेखों में वर्णन है कि ब्राह्मण कृषि कर्म भी करने लगे थे। स्यात् वह आपतधर्म था परन्तु दानपत्रों में "भुञ्जमामनस्य कर्षतातः कर्षयतो" ऐसा उल्लेख मिलता है (ए. इ. २० पृ. १३१, इ. ए. १६ पृ. २०८) कर्षत शब्द से हल जोतने का तात्पर्य है। राजपुतना के एक लेख में ऐसा वर्णनं आया है कि राजा ने ब्राह्मणों से कृषि-कम त्यागने की प्रार्थना की और वेदाध्ययन में समय व्यतीत करने का आदेश दिया––

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यो विप्रान मितान् हलि कलयतः कार्श्येन वृतेरलं वेद सांगम पाठयत् कलि-गल ग्रस्ते धात्रीतले (ए. इ. २१ पृ. २७८–८२) इसका कारण यह हो सकता है कि स्मृतिकार पराशर ने आपतधर्म में कृषि के लिए आदेश दिया है–षट्कर्म भिरतो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् । स्यात् इस युग में ब्राह्मणों को षट्कर्म के अतिरिक्त अन्य साधन का अवलम्बन करना आवश्यक हो गया था ।

ब्राह्मणों का देशान्तर गमन

ईसवी सन् की सातवीं सदी के पश्चात् उत्तर पश्चिम से ईस्लाम के आक्रमण के कारण मध्यदेश (गंगा यमुना घाटी) में ब्राह्मणों का निवास कष्ट कर हो गया और बहुत से अन्य स्थानों को चले गए । ब्राह्मणों का देशान्तर गमन मध्ययुग की विशेष घटना है जिसका वर्णन केवल प्रशस्तियों में ही पाया जाता है । मध्यदेश के ब्राह्मणों को सर्वत्र समादर मिला और राजाओं ने दान देकर उन्हें बसने के लिए आग्रह किया । बंगाल के पाल राजाओं ने आगुन्तक ब्राह्मणों को दान दिया जिसका उल्लेख बदलस्तम्भ तथा आमागछी वाले लेख में है (ए. इ. २ पृ. १८०, इ. ए. १४ पृ. १६६, २१ पृ. ९७) लक्ष्मणसेन के सात लेखों में देशान्तर गमन करने वाले ब्राह्मणों को दान देने का विवरण है (वैरकपुर नईहटी, गोविन्दपुर, तरपंडीही, अनुलिया, मधैनगर, सुन्दरवन आदि) अधिकतर बंगाल के लेखों में "मध्यदेश विनिर्गत" (मध्यदेश से देशान्तर गमन) वाक्य का उल्लेख है । विग्रहपाल के लेख में तो कोलञ्च (कन्नौज) से बंगाल में जाने वाले (देशान्तर गामी) ब्राह्मणों का वर्णन है (ए. इ. २९ पृ ५६) तथा महीपाल के लेख में हस्तिपाद (मध्यदेश) ग्राम का नामोल्लेख है । वहां से ब्राह्मण बंगाल गए । परमार राजा वाक्पति द्वितीय के प्रशस्ति में छःबीस ब्राह्मण के नाम मिलते हैं जो विभिन्न स्थानों से आकर मालवा में बस गए थे । उन स्थानों में मध्यदेश (सम्भवतः कन्नौज) तथा मझबली (देवरिया उत्तर प्रदेश) के नाम प्रमुख हैं । कान्यकुब्ज तथा सरयूपार से ब्राह्मणों ने मालवा में शरण ली, वहां बस गए और दानग्राही के रूप में प्रतिष्ठित रहे । १० वीं सदी में बंगाल के अतिरिक्त मालवा में ब्राह्मणों का गमन जीविका के लिए हुआ । कन्नौज तो छठी सदी के पश्चात् उत्तरी भारत में प्राचीन पाटलिपुत्र का स्थान ग्रहण कर चुका था जिसके विजय निमित्त शासकगण युद्ध करते रहे। वहां के निवासी ब्राह्मणों को भी उस स्थान का गर्व था और जहां भी देशान्तर गमन किया, वहां के लेख में "मध्यदेश विनिर्गत ब्राह्मण" के नाम से विख्यात रहे। विद्वानों का विश्वास है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने ही बंगाल में 'कुलीन प्रथा' का आरम्भ किया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्त युग से पूर्व अभिलेखों में विभिन्न जातियों के नाम प्रायः नहीं मिलते। स्कन्द गुप्त के इन्दौर वाले लेख में दो क्षत्रिय व्यक्तियों के नाम-अचलवर्म तथा भ्रुकुण्ठसिंह दान के प्रसंग में मिलते हैं। सातवीं सदी से

क्षत्रिय

शासन सम्बन्धी अभिलेखों में क्षत्रिय का नाम आता है जो राजनीतिक परिस्थिति के कारण समाज में अग्रणी हो गए थे और ब्राह्मणों को भी उनके आदेशानुसार कार्य करना पड़ता था। अलबेरूनी के कथानुसार क्षत्रियों को भी ब्राह्मण के सदृश मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। पूर्व मध्य युग में क्षत्रियों के लिए 'राजपूत' शब्द का प्रयोग मिलता है और उनके निवास भूमि को राजपुताना कहा गया। बँगाल के लेखों में वर्णन मिलता है कि शासक राजपुत्र (राजपूत) वंश में उत्पन्न हुए थे (ए. इ. १४ पृ. १५९, इ. ए. भा. १५ पृ. ३०८) ऐसा वर्णन प्रायः उत्तरी भारत के सभी राजवंशों के लेख में पाया जाता है। प्रशस्तियों में वर्णित पदाधिकारियों की सूची में युवराज राजपुत्र कहा गया है यानी वह क्षत्रिय जाति का वंशज था (सोढ़देव का कलहा ताम्रपत्र–ए. इ. ७ पृ. ८५) राजपूत की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा और कुछ विद्वान यह विचार रखते थे कि राजपूत प्राचीन क्षत्रिय के वंशज नहीं हैं। राजपूतों को अग्निकुल का बतलाया जाता है। राजपूत नरेशों के अभिलेखों का अध्ययन सिद्ध करता है कि वे सभी प्राचीन क्षत्रिय वर्ण के वंशज हैं।

इस युग में राजपूत दो उपविभाग में विभक्त हो गए। (१) शासक (२) साधारण क्षत्रिय वर्ग। शासकों की श्रेणी में कुछ विदेशी भी घुस गए थे। जिनका वैवाहिक सम्बन्ध राजघराने में होने लगा था। कलपुरी लेख (ए० इ० २ पृ० ४) में वर्णन आता है कि हूण राजकुमारी अवल्लदेवी का विवाह चेदि राजा कर्ण से हो गया। इन्हीं कारणों से समाज में विदेशी हूण का आदर होने लगा। मेवार के (९५३ ई०) एक लेख में मंदिर प्रबन्ध समिति का हूण सरदार भी सदस्य था और ऊँचे वर्ग में समादार पाता था (इ० ए० ५८ पृ० १६१) साधारण श्रेणी के राजपूत सैनिक का कार्य करते थे। चंदेल शासक की ओर से युद्ध में मारे जाने पर सैनिक के परिवार को वृत्ति (मृत्युक-वृत्ति) दिया जाता था—तुरुष्क युद्धमृत––पाये पुत्राय सामन्त नाम्ने प्रसादेन **मृत्युक वृत्तौ** शासनं कृत्वा प्रदत्त इति (ए० इ० १६ पृ० २७५) दक्षिण भारत में इस वृत्ति को नेत्तर-गोडगे (खून का दान) कहा गया है। चन्देल तथा गहड़वाल लेखों में इस प्रकार की अनेक वृत्ति का विवरण पाया जाता है। (इ० ए० १८ पृ० १३५) चन्देल नरेश परमर्दि ने सैनिकों को बहादुरी के लिए 'वीरमुख्य' की उपाधि दी थी और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तगमा (राजपट्ट) भी दिया गया (ए० इ० ४ पृ० १३१; भा० २ पृ० ३४४: भा० १ पृ० ३३३)।

राजकीय अभिलेखों के अध्ययन से प्रकट होता है कि उस समय (७००-१२०० ई. तक) राजकुमार को कुशल शासक बनने के लिए समुचित ढंग से शिक्षा दी जाती थी जिसका आभास राजाओं के शास्त्रीय गुणों से होता है। मालवा के एक चहमान लेख में निम्न प्रकार का वर्णन आता है—

वक्तृत्वो च कवित्व तर्क कलन प्रज्ञात शास्त्रागम:
श्री मद्वाकपति राजदेव इति यः सद्भिः सदा कीर्त्यते।

(ए. इ. १ पृ. २३५)

प्रतिहार लेख में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है:—

व्याकरणं तर्को ज्योतिशास्त्रं कलाचितं
सर्व भाषा कवित्वं च विज्ञानं सुविलक्षणम्।

(ए. इ. १८ पृ. ९६)

इस प्रकार के उल्लेख कई स्थानों में मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि समाज में क्षत्रिय वर्ग को शिक्षा तथा शासन के कारण आद रथा। वही शासक तथा समाज के रक्षक थे।

वैश्य जाति

स्मृतिकारों के कथनानुसार वैश्य का द्विज में तीसरा स्थान था जिनका कार्य कृषि तथा पशु पालन बतलाया गया है (वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम्-अत्रि) गुप्त युग के पश्चात भारतीय लेखों में दान के प्रसंग में कृषि, कर, पशु, व्यापारिक चुंगी आदि का वर्णन किया गया है। अग्रहार भूमि में बाजार आदि की चुंगी दानग्राही को ही मिलती थी। वणिक शब्द का प्रयोग वैश्य वर्ग के लिए प्रायः सर्वत्र लेखों में किया गया है। कुम्भकार, ताम्बूलिक स्वर्णकार (हैमकार) माली आदि के नाम मिलते हैं। सुनार लेख खोदता था। माली पुष्प माला देवगृह में अर्पित करता था। तमोली या तेली (तैलिक श्रेणी) कर देते अथवा पूजा की सामग्री (पान या दीप के लिए तेल) दिया करते थे। सियादोनी लेख में इन सभी प्रकार के वणिक लोगों के नाम मिलते हैं (ए० इ० १ पृ० १७५ भा० १९ पृ० ५७ भा० १८ पृ० ९७; भा० १ पृ १६०) व्यापार के अनसार वणिक श्रेणियों में विभाजित थे। स्थानीय व्यापारी (वणिक) घोड़े या बैल के पीठ पर सामान बाजार में ले जाता। विदेश जाने वाले वणिक को 'सार्थवाह, कहा गया है वही कारवां ले चला करते थे। उभयमाग्रीव समायात सार्थ उष्ट्र १० वृष २० उभयादपि उर्द्ध सार्थ प्रति (ए० इ० ११ पृ० ६०) किराना के व्यापारी का भी उल्लेख मिलता है (ए० इ० ११ पृ० ४३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेखों में तेल के कारखाना (मिल) चलाने वाले वणिक वर्ग का उल्लेख है। उनका उद्योग बड़े पैमाने पर चलता था। दान के प्रसंग में वर्णन आता है कि रथयात्रा के समय कारखाने से पूजा निमित्त द्रव्य दिया जाता और प्रत्येक मिल (घाणक) से दीपार्थ तेल अर्पित किया जाता था (ए० इ० १ पृ० १७७; भा० ११ पृ० ४२)

वैश्य वर्ग को व्यापार तथा व्यवसाय सम्बन्धी कर देना पड़ता था। एक सिक्का, दो सिक्का या अधिक द्रव्य विभिन्न सामग्री तथा उनकी तौल पर वसूल किया जाता जिसका वर्णन परमार चामुण्ड राय के लेख (ए० इ० २१ पृ०४८) तथा चहमान अभिलेख (ए० इ० भा० ११ पृ० ४३) में मिलता है। इस प्रकार वणिक जाति व्यापार से जीविकोपार्जन करती थी। लेखों में आवागमन के साधनों में बैलगाड़ी, ऊँट, घोड़ा तथा नाव के नाम उल्लिखित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन भारतीय अभिलेखों के परिशीलन से वणिक, व्यापार-सामग्री टैक्स, आवागमन के साधन आदि सम्बन्धित विषयों पर प्रकाश पड़ता है। सबसे विचित्र बात यह है कि वणिक वर्ग का समूह (जिसे श्रेणी कहते थे) बैंक का भी कार्य करता था (नासिक के लेख) समाज में दान देने के कारण वणिक वर्ग का आदर था। वे मंदिर प्रबंध समिति या जिला शासन समिति के सदस्य चुन लिए जाते थे जो उनके आदर का द्योतक है। उनके समूह (श्रेणी) पर जनता का इतना अधिक विश्वास था कि सब लोग अपना धन उनके बैंक में जमा करते रहे अथवा दान का धन उनके पास जमा रहता जिसकी सूद से पूजा का कार्य सम्पन्न किया जाता था।

पूर्वमध्यकालीन अभिलेखों के अध्ययन से भारतीय समाज में 'कायस्थ' नामक जाति की स्थिति का परिज्ञान होता है जिसका नाम चारों वर्णों में नहीं मिलता (चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रिय विट्शूद्राः) धर्मशास्त्र

कायस्थ

तथा पूर्व के लेखों में कायस्थ एक लेखक के रूप में वर्णित है (कायस्थगणका लेखकाश्च-मिताक्षरा याज्ञ० १।३३५)। प्रायः प्रशस्ति के अन्त में 'कायस्थेन लिखितं' वाक्य का प्रयोग मिलता है। गुप्तकालीन दामोदर पुर ताम्रपत्रों में प्रथम कायस्थ अथवा ज्येष्ठ कायस्थ का नाम आता है (ए० इ० १५) जिसे श्री राखाल दास बैनर्जी लेखक समझते हैं (दि एज आफ इम्पीरियल गुप्त पृ० ८०)। तात्पर्य यह है कि गुप्त पूर्व लेखों से किसी जाति विशेष का बोध नहीं होता पर लेखकों के समूह को कायस्थ वर्ग मानते रहे जो आगे चलकर जाति के रूप में परिणित हो गया। राजपूत लेखों में भी कायस्थ लेखक के लिए प्रयुक्त मिलता है। गहड़वाल प्रशस्ति में निम्न उल्लेख है--श्रीमद् गोविन्द चन्द्रस्य भूपतेराज्ञयालिखित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ताम्रमेतत सुरादित्यः कायस्थः सर्वशास्त्रवित (सहेतमहेत लेख–ए० इ० ११ पृ० २५) परन्तु मध्यकालीन (चन्देल, चेदि चहमान) प्रशस्तियों में "कायस्थ वंश या कायस्थ जातीय" (ए० इ० ११ पृ० ५३) का भी उल्लेख आया है। बंगाल से गौड़ कायस्थ का अधिक वर्णन मिलता है जो प्रशस्ति लिखने में दक्ष थे और सुन्दर अक्षर लिखने के कारण मध्यप्रदेश तथा राजपूताना में निमन्त्रित किए जाते थे। (लिखिता रुचिराक्षरा गौडेन-ए० इ० १ पृ० १२९ व १४७)। चन्देल प्रशस्ति (खजुराहोलेख) (ए० इ० भा १ पृ० १४७) चेदि लेख (ए० इ० १ पृ० ३६) तथा चहमान अभिलेखों में (ए० इ० ११ पृ० ३२; इ० ए० ५९ पृ० १६२) गौड़ कायस्थ के नाम आते हैं [लिखितं श्री गौडान्वय कायस्थ] चन्देल राजा परमर्दि के लेख का रोचक वर्णन सुनिए—

विरचित शुभकर्मान्नाम कायस्थवंशः
सकल गुण गुणानां वेश्म पृथ्वीधराख्यः
अलिखदवनि पालस्याज्ञया धर्मलेखी
स्फुट ललित निवेशैरक्षरैस्ताम्रपट्टम् (ए० इ० १४पृ० १४)

खजुराहों की प्रशस्ति से प्रकट होता हैं कि कायस्थ 'करण' या करणिक नाम से भी पुकारे जाते थे।

संस्कृतभाषाविदुषां जयगुण पुत्रेण
कौतुका लिखिताः रुचिराक्षरा
प्रशस्तिः करणिक जद्दैन गौडेन (ए० इ० १ पृ० १२९)

सातवीं सदी से समाज में कायस्थ समूह को एक जाति के रूप में स्थित पाते हैं। प्रशस्तियों में कायस्थ जातीय, गौड़ कायस्थ वंश या गौडान्वय कायस्थ आदि उल्लेखों से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। कायस्थ जाति की शाखाएं स्थान विशेष से प्रसिद्ध हुई। मथुरा के कायस्थ माथुर कहलाए (मथुरा पुरी विनिर्गत कायस्थ या माथुरान्वय कायस्थ (ए० इ० १९ पृ० ५०, भा० ११ पृ० ५७) गौडकायस्थ के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। तीसरा उपविभाग श्रीवास्तव का है जो सम्भवतः श्रावस्ती (गौड़ जिला उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। यों तो उसका भाव लक्ष्मी (श्री) का निवास हो सकता है पर इससे स्थान का तात्पर्य नहीं निकलता और शाखाएं स्थान के नाम से ही विख्यात थीं [ए० इ० ४ पृ० १०४ व १५३ भा० १९ पृ० २१०)

शूद्र तथा चाण्डाल

वर्ण व्यवस्था में शूद्र को अंतिम स्थान दिया गया है। शूद्र का धर्म द्विजाति मात्र की सेवा थी। (शूद्र धर्मों द्विजाते शुश्रुषामिता) महाभारत (शा० प० २९४, ४) के वर्णन में शूद्र की उन्नत परिस्थिति का आभास मिलता है और सेवावृत्ति न मिलने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर वैश्य की तरह व्यापार से जीविकोपार्जन की आज्ञा उन्हें दी गई है।

वाणिज्यं पशुपाल्यं च तथा शिल्योपजीवनम्
शूद्रस्यापि विधीयन्ते यथा वृत्तिर्न जायते।

धर्म शास्त्र तथा स्मृतियों में जिस विस्तार के साथ शूद्र जाति के विषय में चर्चा की गई है, वह ढंग अभिलेखों में नहीं मिलता। अशोक के लेखों में शूद्र (दास) के साथ समुचित व्यवहार (दस भटकसि सम्य परिपति–९वां लेख) करने का आदेश दिया गया है। कालान्तर में किसी स्थान पर शूद्र का उल्लेख आता है परन्तु किसी विशेष बातों का वर्णन नहीं है। दान-पत्रों में पदाधिकारियों के साथ "ब्राह्मण चाण्डाल पर्य्यन्तान" वाक्य का अधिकतर उल्लेख है जिससे प्रकट होता है कि शूद्र चाण्डाल से पृथक जाति थी। चारों वर्णों के लोग एक साथ नहीं रहते थे। उस समय शूद्र अस्पृश्य नहीं माने जाते रहे और वर्तमान काल की तरह उनको हीन नहीं समझा जाता था।

पूर्वमध्यकाल (७००-१२०० ई०) की प्रशस्तियों में चाण्डाल का बहुधा उल्लेख आता है। पालवंशी पत्र में निम्न वर्णन आता है—

(१) प्रतिवासिनो ब्राह्मणोत्तरान् चाण्डाल पर्यन्तान् (भागल पुर लेख इ० ए० १५ पृ० ३०९)
(२) भेद चाण्डाल पर्यन्ता (महीपाल का बानगढ़ लेख–ए० इ० १४ पृ० ३२७)
(३) महत्तर कुटुम्बी प्ररोग मेदान्धक चाण्डाल पर्यन्तान् समाज्ञापयति (मूंगेर लेख इ० ए० २१ पृ० २५६)

स्मृति ग्रन्थों के आधार पर चाण्डाल, प्रतिलोम विवाह की संतान कहा जाता है और अस्पृश्य समझा गया था [ब्राह्मण्यां शूद्र जनितः चाण्डालो धर्म वर्जितः) मुसलमान लेखक अलबेरूनी ने कार्य के अनुसार कई प्रकार के अन्त्यज (अस्पृश्य) का नाम दिया है। चान्डाल सबसे नीच समझा गया और अंगिरह(४, ५)के कथनानुसार शूद्र को भी चान्डाल पात्र में जल पीने पर प्रायश्चित करना पड़ता था।

चाण्डाल (अन्त्यज) के अतिरिक्त कई लेखों में जंगली जाति का भी वर्णन मिलता है जिससे शासक भी भय खाता था। कलपुरि लेख में 'धीरु' नामक जाति (ए०इ० १९ पृ० २१०) महाग्राह कही गई है। वल्लाल सेन के लेख में भिल्ल, शवर पुलिंद के नाम आते हैं (ए० इ० भा० १ पृ० ३३४)। ये जातियां जंगल में निवास करती थीं और राजाज्ञा के विरोध करने पर कुचल दी जाती थीं ताकि समाज में शांति बनी रहे। ७वीं सदी के पश्चात भारतीय लेखों में मुसलमानों के लिए म्लेच्छ शब्द का प्रयोग मिलता है। चहमान लेखों में इस शब्द का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिक उल्लेख है। गहड़वाल वंश के अभिलेख हम्मीर शब्द का प्रयोग करते हैं जो मुसलमान राजकुमार के लिए प्रयुक्त था।

जब उत्तरी भारत में ईस्लाम आक्रमण तेजी पर था उस समय (१०-१२ वीं सदी) के लेख हिन्दू नरेश के साथ उनके युद्ध का विवरण उपस्थित करते हैं। उसी प्रसंग में म्लेच्छ या हम्मीर शब्दों का प्रयोग मिलता है। [ग्वालियर प्रशस्ति ए० इ० भा० १८ पृ० १०७; इ० ए० १८ पृ० १६ ए० इ० भा० ४ पृ० ११०; इ० ए० ४१ पृ० १९] सिक्कों के मुद्रालेख भी इसकी पुष्टि करते हैं। कई सिक्कों पर 'श्री हम्म वीर' खुदा है। अमीर शब्द हम्मीर का अपभ्रँश है जो अफगान सुल्तान के लिए प्रयुक्त होता है। तीसरा शब्द-तुरुष्क भी लेखों में उल्लिखित है जो मुसलमान जाति के लिए प्रयुक्त किया गया था। गहड़वाल लेख इस शब्द से भरे पड़े हैं (ए० इ० ९ पृ० ३२९; इ ० इ० क्ला० २३ पृ० ४-६ ए० इ० ८ पृ० २९५; भा० १३ पृ० २९७) इस तरह अभिलेखों के सहारे चारों वर्णों के अतिरिक्त अन्त्यज, जंगली जाति तथा मुसलमानों के उत्तरी प्रदेशों में निवास करने की बातें ज्ञात हो जाती हैं।

प्राचीन आश्रम संस्था में मनुष्य का जीवन चार भागों में विभक्त था—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। अत्यन्त प्राचीन समय में इन चार आश्रमों का क्रम लोगों को ज्ञात न था। यति तथा साधु समाज में वर्तमान थे परन्तु वे सन्यासी नहीं कहे जा सकते। तपस्या की भावना सम्भवतः लोगों में अज्ञात थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में भस्म लगाए साधु का वर्णन मिलता है। उपनिषद (वृहदारण्यक) में मोक्ष प्राप्ति के लिए गृह त्यागने की चर्चा की गई है। छांदोग्य में ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा संन्यासी की बातें मिलती हैं। सूत्रग्रंथों में हमें सर्वप्रथम चार आश्रमों के नाम मिलते हैं तथा मनुस्मृति में (अध्याय ६) क्रम पाया जाता है।

आश्रम संस्था

अशोक ने लेखों में—"ब्राह्मण श्रमणानां दसणं" ब्राह्मण तथा साधु के दर्शन करने की बातें कही हैं। बुद्धधर्म में वर्णाश्रम संस्था को नगण्य समझकर छोटा बालक भी सीधे भिक्षु हो जाता था। इस प्रथा को रोकने के लिए भारतीय समाज ने प्रयत्न किया और प्रत्येक आश्रम के पालन करने के महत्व को बतलाया। गुप्त-युग तक समाज में द्वंद था कि कौनसा आदर्श माना जाय परन्तु गुप्तकाल के पश्चात् आश्रम ने समाज में घर बना लिया जिससे लेखों में अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा मिलती है। कर्णदेव चेदि के गोरहा ताम्रपत्र में चारों आश्रम का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया गया है—

नीतेषु प्रमदा वियोद विधिना, प्रागु ब्रह्मचारि व्रतं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साद्धं बन्धुतया गृहस्थ पदवीं कारागृहस्थापनात्
बानप्रस्थ पदं वनाश्रम वशात् भैक्षाच्चतिक्षो स्थितिः

(ए. इ. ११ पृ. १४४)

कन्नौज के राजा भोजदेव (आठवीं सदी) के लेख में आश्वलायन शाखा के विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) का नाम मिलता है (ए. इ. ५ पृ. २१२)। उसी तरह रतलाम ताम्रपत्र में वाजसनेय शाखा के ब्रह्मचारी को ग्राम दान में देने का उल्लेख है (आ. सा. रि. १९०२-३ पृ. २३७) चहमान लेख में आजन्म ब्रह्मचारी का वर्णन सुनिए:——

आजन्म ब्रह्मचारी दिगमल वसनः संयतात्मा तपस्वी

(ए. इ. २ पृ. १२३)

देवपाल की प्रशस्ति में सामवेद के अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी हरिश्वर नाम से उल्लिखित है (हरिश्वर ब्रह्मचारी सामवेदिन—ए. इ. १५ पृ. २९८)।

ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था – इस प्रकार का वर्णन लेखों में आया है (गृहाश्रामा वाप्ति परो गृहिण्यः ज. ए. सो. बं. १८९७ पृ. २९२ ; गृहाश्रम पेस्सुः ए. इ. २ पृ. १६२)। गहड़वाल वंश के लेखों में होम तथा तर्पण का अधिक वर्णन आता है जिसे गृहस्थ सम्पन्न किया करते थे (ए. इ. ४ पृ. १५८ भा. १९ पृ. २९१) दूसरे शब्दों में यह भी लिखा है कि परिपक्व अवस्था में राजा घर छोड़ कर जंगल चले जाते थे। यानी गृहस्थाश्रम के पश्चात् बानप्रस्थ में प्रवेश करते थे। ताकि तपस्या कर मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

गुर्जर प्रतिहार नरेश **तात** संसार को चंचल तथा नाशवान समझकर छोटे भ्राता भोज को राज्य सौंप कर जंगल चला गया और धार्मिक जीवन व्यतीत किया (ए. इ. १८ पृ. ९६—मण्डव्यस्य आश्रमे पुण्ये नदी निर्झर शोभिते) उसी प्रशस्ति में भिल्लादित्य नामक नरेश का उल्लेख मिलता है जिसने पुत्र को गद्दी देकर गंगा के किनारे तपस्या आरम्भ की——

भिल्लादित्य तपोमति। येना राज्यं कृतंयेन
पुनः पुत्राय दत्तवान्। गंगाद्वारे ततोगत्वा
वर्षाण्यष्टादशस्थितः। अन्ते च अनशनं कृत्वा
स्वर्गलोक समागतः (ए. इ. १८ पृ. ९८)

पाल नरेश विग्रहपाल ने भी ऐसा ही किया था और पुत्र नारायणपाल को सिंहासन का भार देकर स्वयं तपस्वी बन गया (भागलपुर ताम्रपत्र इ. ए. १५) सेन-शासक सामन्तसेन (१०५०-१०५७ ई०) ने वृद्ध होकर बानप्रस्थ आश्रम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को अपनाया था तथा गंगा के किनारे जंगल में रहने लगा (ए. इ. १ पृ. ३०८) जयपालदेव की प्रशस्ति में व्यक्ति के आयु का भी उल्लेख मिलता है कि पचास वर्ष के पश्चात् राजा तपस्या करने जंगल में चला गया। इस प्रकार आश्रमों के अवधि का परिज्ञान होता है कि ब्रह्मचर्य २५ वर्ष, गृहस्थ २५ वर्ष (जिसके पश्चात् बानप्रस्थ) बानप्रस्थ में भी २५ वर्ष व्यतीत करना पड़ता था। अतएव प्रशस्तियों के आधार पर स्मृति ग्रन्थों में वर्णित आश्रमों की चर्चा पुष्ट हो जाती है।

सन्यासी एवं मठाधीश

अभिलेखों का अध्ययन यह बतलाता है कि साधु बौद्ध भिक्षुओं की तरह जीवन व्यतीत करते थे। यों तो सन्यासी के लिए "कोपिनमात्र वसन तथा मितभिक्षा भोजी" की बातें लिखी हैं तथा उनके योग तप की भी चर्चा मिलती है—

योगं तपः कर्म रतो नित्य कर्म सन्यासि (ए० इ० १८ पृ० २१०)

आठवीं सदी के पश्चात् उत्तरी भारत में बौद्ध विहारों के सदृश सन्यासी के लिए मठ पर्वतों को खोदकर बनने लगे। इलौरा तथा एलेफेन्टा की गुफाएं उन्हीं विहारों के अनुकरण पर तैयार की गई थीं। हिन्दू सन्यासी परिव्राजक भी कहे जाते थे तथा अधिकतर शिव के पुजारी होते थे। शिव को आदर्श योगी मानते हैं इसलिए उनसे प्रेरणा मिलती थी। दानपत्रों में शिव मन्दिर तथा मठ के लिए दान का वर्णन मिलता है जहां सन्यासी रहा करते थे। कलचुरी रत्नदेव (१२ वीं सदी) ने इस प्रकार का मठ तैयार कराया था (ए० इ० ११ पृ० २६५, २१ पृ० १४८) अभिलेखों में मठ तैयार कर साधु को समर्पित करने का भी विवरण पाया जाता है (ए० इ० १ पृ० २५९; राजपुताना संग्रहालय लेख १९२२-२३ पृ० २) उत्तरी भारत के लेखों में अनेक स्थलों पर मठ निर्माण तथा परिव्राजक को दान देने का वर्णन मिलता है। कालान्तर में साधु मठाधीश बन गए, यही कारण है कि मध्यकालीन लेखों में परिव्राजक नृपति का उल्लेख किया गया है। (ए० इ० २१ पृ० १२६)। मठाधीश के पास अधिक सम्पत्ति हो जाती थी पर दान की सम्पत्ति बेचने का अधिकार न रहता था। कलचुरी लेख में शैवसाधु की सम्पत्ति को बन्धक रखने का पता चलता है (आ० स० इ० ए० रि० १९३५-३६ पृ० ९१) ७ वीं सदी के पश्चात् व्यक्ति से अधिक सामाजिक संस्थाओं (जैसे मन्दिर, मठ, विद्यालय) को दान देने का विवरण लेखों में मिलता है। वह दान कार्य विशेष के लिए दिया जाता था। कालान्तर में मठ का मुख्य साधु, अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए मठाधीश हो गया और सारी सम्पत्ति का स्वामी बन बैठा। इसी रूप से सन्यासी मठाधीश होकर शासक की तरह कार्य सम्पन्न करने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेखों के गहन अध्ययन से एक विचित्र घटना का परिज्ञान होता है जिसका उल्लेख केवल पूर्वमध्ययुग के लेखों में ही पाया गया है। यों तो जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति ही माना गया है परन्तु इसकी उपलब्धि के निमित्त मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ७००-१२०० ई० के लेखों में स्वर्ग प्राप्ति के लिए अनेक उपायों का वर्णन मिलता है। पुराणों में अग्नि में जलना, विष पी लेना, जल में डूब जाना तथा अनशन करना आदि उपायों से आत्म-हत्या करने का आदेश दिया गया है (इस धार्मिक हत्या से पाप नहीं होता था) उन बलिदान के मार्गों का इस युग में अक्षरशः पालन किया गया। मध्यप्रदेश के खैरा ताम्रपत्र में उल्लेख आता है कि कलचुरि नरेश गांगेयदेव अपनी सौ पत्नियों के साथ अग्नि में जल मरा। उल्लेख निम्न प्रकार है—

बलिदान करने के उपाय

प्राप्ते प्रयाग वट्‌मल निवेश वन्धौ
सार्द्ध शतेन गृहिणीभिरमुच मुक्तिम् (ए० इ० २ पृ०४)

ऐसा उदाहरण कुमारगुप्त तृतीय के सम्बन्ध में मिलता है—अम्भसीव करीषाग्नौमग्नः स पुष्प पूजितः (का० इ० इ० ३ पृ० ४२) मध्ययुग के चन्देल राजा धंग ने भी प्रयाग में अग्नि में जलकर बलिदान किया था (ए० इ० १ पृ० १४०)। अभिलेखों में अनशन करने का मार्ग भी उल्लिखित है। प्रतिहार राजा भिलादित्य ने अनशन से शरीर त्यागा था (अन्ते च अनशनं कृत्वा स्वर्ग लोक समागतः ए० इ० १८ पृ० ९६-८) चेदिवंश के लेख में ऐसा ही विवरण पाया जाता है (ए० इ० २२ पृ० १६५) आसाम के एक लेख में निम्न पंक्ति मिलती है—

अनशन विधिना वीरस्तेजसि माहेश्वरे लीनः
(नौगंग ताम्रपत्र - ज० ए० सो० बं० १८९७ पृ० २९०)

हिन्दुओं के अतिरिक्त जैन साधु भी अनशन से बलिदान किया करते थे (ए० इ० २० पृ० ९८)। इस तरह धार्मिक ढंग से आत्म बलिदान करने की क्रिया उत्तरी भारत में प्रचलित थी। काश्मीर में तो अनशन के प्रबन्ध के लिए एक पदाधिकारी नियुक्त था जो 'प्रायोपवेश' कहलाता था। इस ढंग से तपस्या कर वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता था।

राजपुताने के लेख में एक नए उपाय का संकेत मिलता है जिसे 'कायव्रत' कहते हैं। इस कार्य से यानी उपवास कर ब्राह्मण राजा को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए बाध्य करता था। चाहमान लेख में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक भाव को छोड़कर सांसारिक लाभ (अर्थ) के लिए किया गया है। अतएव 'कामव्रत'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को बलिदान के आदर्श श्रेणी में नहीं रख सकते ।

अस्माकं मध्यान् कोपि ब्राह्मणो निगमते पेटं पृष्टिं
दर्शयति गृह्यमाणस्तु 'कायव्रतं' कृत्वा मृयते
(ए० इ० ११ पृ० ४०)

दक्षिण भारत में इस युग में राजा के चिता पर दरबारी का भी बलिदान किया जाता था। उसे 'मामखाम' कहते थे। जितने उच्च पदाधिकारी राजा के साथ भोजन (पका चावल) करते थे उन सभी को राजा के चिता पर जलना पड़ता था (दक्षिण भारत के शिलालेख १९२९-३० न० २६७, १९३४-३५ न० १२२-५) इसलिए संक्षेप में यह कहा जाता है कि धार्मिक भावना से बलिदान (आत्म-हत्या) करने का प्रचलन सर्वत्र था।

प्राचीन भारतीय अभिलेखों के स्वरूप को जानते हुए उनके अध्ययन से संस्कार सम्बन्धी चर्चा की आशा नहीं की जा सकती किन्तु दान के प्रकरण में कुछ संस्कार के नाम मिलते हैं। मनुष्य जीवन में षोडश संस्कार सम्पन्न **सामाजिक संस्कार** किए जाते हैं। गुप्त पूर्व लेखों में तो कोई प्रसंग ही नहीं आता जब संस्कार के सम्बन्ध में दो चार बातें कही जायं। सातवीं सदी के पश्चात जातकर्म, नामकर्म, विवाह तथा श्राद्ध का उल्लेख मिलता है। गहड़वाल राजा जयचन्द्र ने अपने पुत्र हरिश्चन्द्र के जन्म (जात कर्म) तथा नामकरण के अवसर पर दान दिया था (ए० इ० ४ पृ० १२६ इ० ए० १८ पृ० १२९) जो कभौली ताम्रपत्रों में उल्लिखित हैं। विवाह तथा श्राद्ध के विषय में सीधा वर्णन नहीं मिलता। कलचुरी प्रशस्तियों में कर्णदेव द्वारा गांगेयदेव के श्राद्ध करने का विवरण पाया जाता है--

(१) समग्र श्रद्धया श्राद्धं विधाय (ए० इ० २ पृ० ३१०)

(२) सम्वत्सरिकपार्वणि श्राद्धे (ए० इ० ४ पृ १०५)

विवाह के विषय में अभिलेखों की चर्चा नहीं के बराबर है। उत्तरी भारत के लेखों में विवाहिता स्त्री के लिए तीन नामों का उल्लेख आताहै—भार्या, गृहिणी तथा पत्नी।

(अ) द्वे भार्ये (ए० इ० २९ पृ० ५४)

(ब) सार्धशतेन गृहिणी (ए० इ० १२ पृ० २०५)

(स) वि : पत्नी श्री हरिश्चन्द्राख्य: पत्नी भद्रा च क्षत्रिया
(ए० इ० १८ पृ० ९५)

इसके अतिरिक्त तिपेरा लेख में पाराशत्र पुत्र का नाम आता है जिससे पता चलता है ब्राह्म विवाह के अतिरिक्त अनुलोम प्रथा भी प्रचलित थी [ए० इ० १५ पृ० ३०५) अनुलोम प्रथा (ब्राह्मण वर अन्य वर्ण की कन्या) का प्रचलन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के कारण ही ब्राह्मण हरिश्चन्द्र ने क्षत्रिय कन्या से विवाह किया था (तेन श्री हरिश्चन्द्रेण परिणीता द्विज आत्मजा; द्वितिया क्षत्रिया ए० इ० १८ पृ० ९५) चेदिराजा यश: कर्ण ने हूणराजकुमारी से विवाह किया (ए० इ० २ पृ० ४)। जिस तरह के अनेक अन्तर्जातीय विवाह के उदाहरण लेखों में भरे पड़े हैं। मुसलमान लेखकों–इन्व खुरदवा तथा अलवेरूनी ने भी अन्तर्जातीय विवाह की चर्चा की है।

अभिलेखों के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि साधारण जनता में एक साथ अनेक विवाह करने का प्रचलन न था। केवल राजघराने में बहु पत्नी व्रत का उल्लेख पाया जाता है। प्रतिहार वंश के जोधपुर प्रशस्ति में आदि पुरुष हरिश्चन्द्र की दो पत्नियां थीं। (ए० इ० १८ पृ० ९५) उसी के वँशज महेन्द्र पाल ने एक साथ दो स्त्रियों से विवाह किया था। (ए० इ० १४ पृ० १७६) परमार प्रशस्ति में जयदेव उदयदित्य के सम्बन्ध में उल्लेख है कि राजा ने सोलंकी तथा बघेल वंशी राजकुमारियों से शादी की थी (ए० इ० २२ पृ० ५६ द्वे भार्यों) चन्देल लेख में मदन वर्मन तथा देवगण के लिए ऐसा ही विवरण पाया जाता है (ए० इ० १ पृ० २००; भा० १ पृ० ४८) पामल्ल देवी तथा मौला देवी चहमान राजा राज्यपाल की पत्नी कही गई हैं। रामा तथा पद्मा गंगाधर की भार्या थीं (ए० इ० ११ पृ० ६१ भा० २१ पृ० १६०) गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र देव ने पांच राजकुमारियों से विवाह किया था जबकि उसके पिता मदन पाल की दो धर्मपत्नियां थीं (ए० इ० ९ पृ० ३२४) सबसे विचित्र बात तो यह है कि चेदि राजा गांगेय देव की सौ रानियां थीं जो उसके साथ अग्नि में जलकर स्वर्ग लोक सिधारीं (ए० इ० २ पृ० ४ भा० १२ पृ० २११ सार्ध शतेन गृहिणी) संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजाओं की एक साथ कई रानियां महल में रहती थी जो बहु-पत्नी व्रत का द्योतक है।

बहु पत्नी व्रत

प्राचीन प्रशस्तियों में विधवा के आत्म-बलिदान का उतना विवरण नहीं मिलता जितना स्मृतिकारों ने वर्णन किया है। गुप्त युग से पूर्व इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है परन्तु गुप्त कालीन स्मृतियों में विधवा के जीवन के दो मार्ग बतलाया गया है। ब्रह्मचारिणी अथवा सती। विष्णु (३५।१४) तथा वृहस्पति (२५।११) न इन दो मार्गों का वर्णन किया है। किन्तु सती प्रथा का अभाव न था और छठी सदी के एरण (मध्य प्रदेश) लेख में भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की पत्नी के सती होने का उल्लेख मिलता है।

सती प्रथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भक्ता नुरक्ता च प्रिया च कान्ता भार्याविलग्नानुगताग्निराशिम् ।

बाण ने लिखा है कि राज्यश्री स्वेच्छा से सती होने को तैयार थी। इस प्रकार पूर्व मध्य युग में सती प्रथा का प्रचलन प्रकट होता है। मध्ययुग के मुसलमान लेखक सुलेमान तथा अलबेरूनी ने रानियों के सती होने की बातें लिखी हैं। कलचुरी नरेश गांगेयदेव की सौ स्त्रियां आग में जल मरी थीं परन्तु इसे सहमरण का नाम दिया जा सकता है। राजतरंगिणी में कल्हण ने रानियों के सती होने का उल्लेख किया है (तरं० ७, ७२४, ८५९) जोधपुर के एक लेख में राजपूत रानियों के सती होने की चर्चा की गई है (ए० इ० २० पृ० ५८) इस प्रकार मध्य प्रदेश तथा राजपूताने में सती होने या सहमरण का उदाहरण मिलता है। राजपुताने के इतिहास में हजारों स्त्रियों के अग्नि में जलने की बातें उल्लिखित हैं लेकिन उसे जौहर का नाम दिया गया है। सती के वास्तविक अर्थ से वह भिन्न है।

भारत में संगीत का प्रेम सदा से एक-सा रहा तथा ऊँचे श्रेणी के लोग संगीत तथा गणिका से सम्बन्धित रहते थे। प्राचीन लेखों में भी संगीत का किसी न किसी रूप से उल्लेख पाया जाता है। अशोक ने अपने धर्म-

गणिका

शासन में उस 'समाज' की निन्दा की है जहां संगीतमय और वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत किया जाता हो। विद्वानों के समाज (एक चा समाजा साधुमता) को श्रष्ठ बतलाया है। मौर्य युग के पश्चात् कलात्मक उदाहरणों से इस बात का परिज्ञान होता है कि समाज की जनता संगीत में चि रखती थी (जिसे राजा के भय से लोगों ने दबा रक्खा था) और इसीलिए भारहुत के स्तम्भ पर संगीत का प्रदर्शन पाया जाता है। वहां अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं तथा अनेक वाद्य बज रहे हैं। दक्षिण भारत अमरावती की कला में भी ऐसा ही प्रदर्शन है। बोधिसत्व के सम्मुख तुषितस्वर्ग में अप्सराएं नृत्य कर रही हैं और उन्हें संसार में अवतरित होने का आग्रह किया जा रहा है। वही बोधिसत्व हाथी के रूप में मायादेवी के गर्भ में आए। लेखों में गणिका द्वारा शासक की प्रशंसा करने का भाव उल्लिखित है। सामन्तसेन के यश को गाती हुई अप्सराओं का विवरण देवपारा प्रशस्ति में मिलता है—(ए० इ० १ पृ० ३१० पद्य ५)

उद्गीयन्ते यदीयासवल दुद्धि जलो
लोल शीतेषु सेतो
कच्छान्तेषु अप्सरोभिर्द्दशरथ तनय
स्पर्द्धया युद्ध गाथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेखों का अध्ययन यह बतलाता है कि गणिका समाज में फैली थीं और आसाम में तो उनके साथ ग्राम-दान का वर्णन पाया जाता है (तेजपुर ताम्रपत्र ज० रा० सो० वं० ९ पृ० ९६६) बाध की गुफाओं में सुन्दर वस्त्र पहने नर्तकी का समूह चित्रित है। पूर्व मध्ययुग में भगवान को प्रसन्न करने के लिए मन्दिरों में गणिका रक्खी जाती थीं, इसी कारण नट-मण्डप नामक मन्दिर का प्राकार तैयार किया गया। देवपारा लेख में इस तरह की मन्दिर-गणिकाओं का वर्णन है (ए० इ० १ पृ० ३१०) खजुराहो तथा भुवनेश्वर मन्दिरों की दीवालों पर गणिकाओं के चित्र खुदे हैं जो नाना प्रकार के वाद्यों का प्रयोग कर रही हैं। १२ वीं सदी के चहमान लेख में वेश्याओं पर लगाए गए कर (टैक्स-दशबन्ध) का उल्लेख है जिसे शासक ने कारणवश माफ कर दिया (आ० स० रि० ए० रि० १९०८-९ पृ० ११९) खेद है कि इस तरह के शुल्क का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता, परन्तु कला तथा लेखों का अध्ययन यह प्रकट करता है कि सांसारिक तथा देवकार्यों में गणिका की सहायता ली जाती थी। प्राचीन भारतीय समाज में उन्हें तिरस्कृत करने की भावना न थी।

वस्त्राभूषण तथा श्रृंगार के साधन

प्रत्येक समाज में वस्त्र तथा आभूषण सर्वप्रिय वस्तु तथा आवश्यक सामग्री समझी गई है। लेखों में इसका विस्तृत विवरण नहीं मिलता, केवल गौणरूप से कुछ उल्लेख पाया जाता है। अशोक के धर्मशासन में (सारनाथ, कौशाम्बी तथा सांची स्तम्भ) वर्णन मिलता है कि संघ में भेद पैदा करने वाले भिक्षु या भिक्षणी को सफेद वस्त्र पहना-कर वहिष्कृत कर दिया जायगा। गृहस्थ लोग सफेद वस्त्र तथा भिक्षु रंगीन (पीला) वस्त्र धारण करते थे। अतः भिक्षु के लिए सफेद वस्त्र निन्दनीय समझा जाता था। अशोक ने उनकी निन्दा की ओर संकेत किया था। उसके पश्चात् दान के प्रसंग में भिक्षुओं को चीवर (अधो-वस्त्र तथा संवारी) देने का वर्णन नासिक लेख में पाया जाता है। (भविसंति चिवरिक कुशाणमूले च ए० इ० ८ पृ० ८२) नालंदा ताम्रपत्र में भी दान के विभिन्न कार्यों में चीवर दान का उल्लेख मिलता है (ए० इ० १७)। सम्भवतः प्रशस्तियों में वस्त्राभूषण के उल्लेख का अवसर न रहा, इसलिए उनमें संतोषप्रद उल्लेख नहीं मिलता। प्रतिमाओं के परीक्षण से अधिक बातों का पता चलता है।

श्रृंगार के प्रसाधनों में बाल सँवारने सिंदूर लगाने तथा अंजन देने का वर्णन पाया जाता है। बालों के नाना प्रकार की ग्रंथियों की जानकारी खुदे चित्रों से हो जाती है। महेन्द्रपाल की पहेवा प्रशस्ति में शत्रुओं के स्त्रियों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सीधे बालों (घुंघराले या ग्रंथियुक्त नहीं) का वर्णन है जो पति के मरने पर विधवा हो गई थी (ए० इ० १ पृ० २४६)।

करतलस्थगिताधर पल्लवा प्रतनुकान्ति कपोल तलोदरम्
सिषिचुरसु जलैर्यदरिस्त्रियस्सरलित प्रचुरालक जालका:।

सिन्दूर ललनाओं के सौभाग्य का चिन्ह था (युद्ध में) पति की मृत्यु के कारण विधवाएँ उसे प्रयुक्त नहीं करती। चन्देल नरेश के खजुराहो लेख में वैसा ही वर्णन आता है कि वह सौभाग्य चिन्ह नष्ट हो गया था और कुकुंभ का भी प्रयोग समाप्त कर दिया गया था (ए०इ० १ पृ० १२९)

सिन्दूर भूषणविवर्जित मास्य पद्मं उत्सृष्ट हार वलयं कुचमण्डलञ्च।

आंखों में अञ्जन लगाने का वर्णन अभिलेखों में कम मिलता है। उस सम्बन्ध में धनिक के नगर लेख की निम्न पंक्ति सुनिए:—

भ्रूभङ्गया रहितैरनन्यगतिभि: सन्त्यक्त कालाञ्जनै:
(भारत कौमुदी भा० १ पृ० २७४)

ऐसा ही वर्णन अन्य स्थानों पर आता है (ए० इ० २६ पृ० २५४) इस तरह चित्रों के अतिरिक्त अभिलेखों में भी यदा कदा उल्लेख मिलता है जो समाज में शृंगारिक प्रसाधन के प्रयोग का द्योतक है।

छठी सदी से पूर्व के लेखों में भोजन के प्रसंग में विभिन्न वस्तुओं का नाम नहीं मिला, केवल दान के धन से भोजन वस्त्र के व्यय का उल्लेख पाया जाता है। नासिक लेख में ब्राह्मणों के लिए भोजन निमित्त ग्राम-

भोजन तथा पेय

दान का उद्देश्य बतलाया गया है—षोडश ग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण शतसाहस्री भोजापयित्वा (ए० इ० ८ पृ० ७८)। गुप्त लेख में भी इसी तरह का वर्णन आता है कि पचीस दीनार भिक्षु के भोजन निमित्त दिया गया—तात्वत्पंचभिक्षवो भुंजतां रत्नगृहे (का० इ० इ० ३ पृ० ३१) छठवीं शताब्दी के अभिलेखों में सत्र (=छत्र) शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका भाव भोजन वितरण के स्थान से है। वहां पर बिना मूल्य के भोजन विभक्त किया जाता था। यह अवस्था प्राचीन कालीन समाज में सर्वत्र वर्तमान थी और गृहहीन भूखे एवं साधुओं को भोजन दिया जाता था। आठवीं सदी के नालंदा ताम्रपत्र में "सम्यग् वहुघृत दधिभि: व्यंजनै: युक्तमन्नम्" (ए० इ० २० पृ० ४४) का उल्लेख है। यानी घी, दूध दही आदि तथा अन्य व्यंजन के साथ भोजन विभक्त किया जाता। गेंहूं तथा चावल के प्रयोग का विवरण मिलता है। भगवान के लिए नैवेद्य भी अन्न से तैयार किया जाता था। राजपुताने के एक लेख में आटा चावल को घी में पकाने का विवरण आता है। नैवेद्य के लिए दो सेर आटे के लिए आठ कलस (एक माप) घी की आवश्यकता पड़ती थी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ए० इ० २० पृ० ५७) गन्ना की खेती का वर्णन चीनी के प्रयोग की बातें बतलाता है (इ० ए० १६ पृ० २०९) तेल घी का प्रयोग तो अत्यधिक मात्रा में होता था क्योंकि भोजन के अतिरिक्त, मन्दिर में दीपक जलाने के काम आता था। यह भोजन सम्भवतः ऊँचे श्रेणी के लोगों के लिए था। स्मृतियों में भोजन सम्बन्धी चर्चा विशेष रूप से मिलती है और स्मृतिकारों ने वैज्ञानिक ढंग से भोजन सामग्रियों पर विचार किया है। दानपत्रों में 'समत्स्याकार' (मछली के सागर सहित) शब्द से यही तात्पर्य समझा जा सकता है कि समाज में कुछ व्यक्ति मछली तथा मांस का भी प्रयोग करते थे। गहड़वाल लेखों में 'सजल समत्स्यः' शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है (ए० इ० भा० ४, ८, १६ पृ० १५४, ७३)। इसके अतिरिक्त व्यापार के सिलसिले में किराना शब्द का (किराउउआ) उल्लेख यह प्रकट करता है कि भोजन में मसाले का भी प्रयोग अवश्य होता था (ए० इ० ११ पृ० ४३)।

भोजन का मूल्य

भोजन सामग्री के मूल्य सम्बन्धी वार्त्ता का सीधा उल्लेख अभिलेखों के अध्ययन से नहीं मिलता तो भी कुछ उद्धरण ऐसे हैं जिनसे तत्सम्बन्धी अर्थ निकाला जा सकता है। ईसवी पूर्व के लेखों में ऐसा कोई संदर्भ नहीं है परन्तु दूसरी सदी के नहपान कालीन नासिक लेख में पर्याप्त वर्णन है। वह पंक्तियां निम्न रूप से अंकित हैं—कहापणा सहस्राणि त्रीषि ३००० संघस चातुदिसस ये इमस्मिं लोणे वसातान भवसन्ति चिवरिक कुशाणमूले च। एते च कहापणा प्रयुक्ता गोवधनं वाथवासु श्रेणिसु। कोलिक निकाये २००० वृधि पडिक शत। अपर कोलिक ये १००० वधि पाउन पडिक शत। ऐते च कहापणा अपडिदातवा वधि भोजा (ए० इ० ८ पृ० ८२) एतो चिवरिक सहस्राणि वे २००० ये पडिक शते। एतो मम लेणे वसवुथान भिखुनं वीसाय एकीकस चिवरिक वारसक। ये सहस्र प्रयुक्तं पायुन पडिक शते अतो कुशन मूले।

तीन हजार कार्षापण भिक्षुओं के वस्त्र तथा भोजन के निमित्त तंतुवाय संघ के पास जमा किया। उसमें दो हजार एक पण प्रति सौ सूद के दर से तथा एक हजार तीन चौथाई पण प्रति सौ के दर से। दो हजार के सूद से बीस भिक्षुओं का वस्त्र व्यय तथा एक हजार की सूद से भोजन व्यय चलेगा। मूल धन व्यय नहीं होगा। केवल सूद का प्रयोग ही होगा। इसका तात्पर्य यह है कि बीस भिक्षुओं के लिए बीस पण (सिक्का) वस्त्र में तथा साढ़े सात रुपया भोजन में प्रति वर्ष (?) व्यय किया जाता था। इस तरह प्रति भिक्षु छः आने प्रतिमास भोजन व्यय पड़ता होगा। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि भोजन सामग्री अत्यन्त सस्ते दाम पर बिकती थी।

चौथी शताब्दी के गुप्त लेख में भी अन्य प्रकार का वर्णन आता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के गढ़वा लेख में ब्राह्मण के भोजन निमित्त दस दीनार (स्वर्ण-मुद्रा) देने का उल्लेख मिलता है। इसमें सूद के दर का उल्लेख नहीं है। दूसरे लेख में बारह दीनार को सूद पर देने का वर्णन है जिसकी आय से एक भिक्षु को भोजन व्यय दिया जाता था। यानी चारसौ बीस (१ दीनार = ३५ रजत मुद्रा) रुपया का सूद भोजन के लिए पर्याप्त था। यदि सूद का दर एक कार्षा-पण प्रति सौ मान लिया जाय तो वर्ष में एक व्यक्ति के भोजन के लिए चार रुपया तीन आने की आय होगी। यानी छः आने प्रति मास के हिसाब से भोजन व्यय प्रति व्यक्ति होता है। चातुर्दिशायर्भ संघायाक्षनी विदत्ता दीनारा द्वादश। एतेषां दीनाराणां या वृद्धि रूपजायते तथा दिवसे दिवसे संघ मध्य प्रविष्ट भिक्षो-रेको भोजयितव्या (का० इ० इ० ३ न० ६३) सारांश यह है कि गुप्त युग तक भोजन व्यय नाममात्र का था। सामग्रियां अत्यन्त सस्ती थीं। ईसवी सन् की पहली सदी से पांचवीं सदी तक भोजन सामग्री का मूल्य प्रायः समान था।

जहां तक पेय का प्रश्न है लेखों में तीन प्रकार की नशीली चीजों के नाम मिलते हैं।

(१) सुरापान या मधुपान
(२) सोमरस
(३) रसवती या ताड़ी

प्रथम पेय—शराब का प्रयोग ब्राह्मण से भिन्न जातियां करती रहीं। जोधपुर की प्रशस्ति से पता चलता है कि ८ वीं सदी में राजपुताने के क्षत्रिय सुरापान से प्रेम रखते थे। गुर्जर प्रतिहार राजा हरिश्चन्द्र की दो रानियां थीं। ब्राह्मण कन्या तथा राजपूत कन्या से उसने विवाह किया था। लेख में वर्णन है कि राजपूत कन्या की सन्तान सुरापान में अभ्यस्त थी।

राज्ञी भद्रा च यांत्सूते ते भूता मधुपायिनः
(ए० इ० १८ पृ० ९५)

उसी वंश के ग्वालियर प्रशस्ति से स्त्रियों के शराब पीने की चर्चा मिलती है (ए० इ० १८ पृ० १०८ पद्य ६) अलबेरूनी ने भी ऐसा ही लिखा है कि क्षत्रिय वर्ग के लोग शराब पीते थे। पूर्व मध्ययुग (७००–१२०० ई०) में क्षत्रिय वर्ग के लिए सम्भवतः शराब लोक प्रिय हो गया था। मध्यभारत के अनेक दानपत्रों में आम्र तथा मधूक (महुआ) वृक्ष के साथ ग्रामदान का विवरण पाया जाता है (ए० इ० भा० ४ पृ० ११९, भा० ८ पृ० १५४, भा० २१ पृ० ९५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस मधूक पुष्प से एक तरह का रस (शराब) तैयार किया जाता है पर यह कहना कठिन है कि दानग्राही ब्राह्मण प्रयोग करते थे या नहीं। अग्रहार दान लेने के कारण ग्राम में मधूक से तैयार रस को ब्राह्मणों द्वारा विक्रय करने की भी बात सोची जा सकती है। लेखों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उस रस (सोमरस ?) का प्रयोग जनता करती हो।

तीसरा पेय ताड़ी है जिसे कलचुरी लेख में रसवती कहा गया है (ए० इ० २१ पृ० ९५) वर्तमान समय में भी ताड़ी निम्न श्रेणी के लोगों का पेय है। औशनस ने पुल्कसा नामक जाति का उल्लेख किया है जो शराब का काम करता था। आजकल की पासी जाति से इसकी समता की जा सकती है। शराब-व्यापारी वणिक वर्ग के कलवार उपशाखा का नाम (कल्लपाल) लेखों में मिलता है। प्रशस्ति में वर्णन है कि इस वर्ग को भी मद्यभाण्ड की संख्या पर 'कर' चुकाना पड़ता था। निम्नलिखित वर्णन सुनिए—

समस्त कल्लपालानां मध्ये यस्य यस्य सत्कमद्यभाण्डं निः पद्यते विक्रयं याति सच स चन्द्रार्क यावत् विग्रहपाल सत्कद्रमार्द्धिका दातव्या (ए० इ० १ पृ० १७४) आधा सिक्का—आठ आना (विग्रहपालीय द्रम) एक मद्यभाण्ड पर टैक्स के रूप में देना पड़ता था। परमार प्रशस्ति (१०७८ ई०) में भी 'कर' देने की बात लिखी है (ए० इ० १४ पृ० २९८) इस प्रकार शराब तथा रसवती पर 'कर' के प्रसंग में पेय के नामों की जानकारी होती है।

प्राचीन स्मृतियों में वर्णन है कि साधु तथा ब्रह्मचारी भिक्षा मांग कर अपना जीवन निर्वाह करते थे। बौद्ध संघ में भिक्षु तथा भिक्षुणी ग्रामों में भिक्षा मांग कर विहारों में लौट जाते। समाज में गृहस्थ भी इनको भोजन देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वर्णाश्रम धर्म तथा संघकी स्थिति से भिक्षा मांगने का कार्य बढ़ता ही गया। ब्राह्मण साधु तथा भिक्षुओं की संख्या भी बढ़ती गई।

समाज में भिक्षा मांगने की प्रथा

यद्यपि प्रशस्तियों में भिक्षा मांगने के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं गया है तथापि उनके अध्ययन से इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। मौर्ययुग से ग्रामों से कुछ मील दूर विहार बनवाए गए थे। जिसका मुख्य उद्देश्य यही था कि भिक्षु भिक्षा मांग कर सरलता से गुफा में लौट जाए। पूर्वी तथा पश्चिमी भारत की सह्याद्रि गुहाए उसके साक्षात उदाहरण हैं। गुप्त युग तक अजंता की गुफाएं, सारनाथ, श्रावस्ती तथा नालंदा के विहार तथा मध्ययुग की इलौरा से उपरियुक्त कथन की पुष्टि करती हैं।

७००-१२०० ई० के अभिलेखों में पर्याप्त रूप से दान का वर्णन मिलता है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशस्तियों के विवरण से पता चलता है कि ग्रामदान या धनदान विद्वान ब्राह्मणों को दिया जाता था जो प्राय: अध्यापन का काम करते थे। शिक्षा संस्थाओं, मंदिर या विद्यालयों को भी दान दिया जाता था।

समाज ने व्यक्ति से अधिक संस्थाओं को महत्व दिया। शिक्षालयों में भूमि या धन दान देकर ब्रह्मचारी या भिक्षु को भिक्षा कार्य से मुक्त कर दिया जाता था। संस्थाओं में ही भोजन वस्त्र का प्रबन्ध रहता और इस प्रकार भिक्षा-वृत्ति को अन्त करने का प्रयास था। भूमिदान से भिक्षावृत्ति समाप्त प्राय: हो गई और उसकी बुराई जाती रही।

शिक्षा संस्थाओं के दान का वर्णन मध्य देश तथा बंगाल के लेखों में अधिक मिलता है। जयसिंह के मान्धाता ताम्रपत्र में अमरेश्वर पाठशाला को अग्रहार देने की चर्चा की गई है:—

सर्वादाय समेतश्च श्री अमरेश्वर पट्टशाला
ब्राह्मणेभ्यो भोजनादि निमित्तम्
(ए० इ० ३ पृ० ४९)

नालंदा ताम्रपत्रों में शासक द्वारा भिक्षु संघ को ग्रामदान का वर्णन मिलता है जिसकी आय से स्वादिष्ट भोजन, आसन, औषधि आदि का प्रबन्ध किया गया था — घृत दधिभि: व्यजनै भिक्षुभ्य: चतुर्भ्यो नित्यतोमं सत्रे विभक्त विमलंभिक्षुसंघाय दत्तम् (ए० इ० भा० १७ पृ० ३१०, भा० २० पृ० ४४) इस उद्धरण में सत्र शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त है। उसका अर्थ भोजन बाँटने का स्थान (भिक्षा गृह) या छत्र (सदावर्त) माना गया है। मध्यकालीन लेखों में सत्र शब्द भरा पड़ा है। गुप्त युग में इसे धर्म-सत्र कहते थे (कुमार-गुप्त प्रथम का भिलसद लेख (ए० इ० १४ पृ० ६३६) इस स्थान पर साधु, भिक्षु या अनाथ व्यक्तियों को नि:शुल्क भोजन दिया जाता था। अधिकतर सत्र (भिक्षा गृह) मंदिर से सम्बन्धित रहते थे और मंदिर प्रबंध समिति उसकी देखभाल करती थी। प्रतिहार लेख (ए० इ० १४ पृ० १७७) में सत्र के संचा-लन के निमित्त ग्रामदान का उल्लेख है। चहमान लेख में इसे अन्नसत्र कहा गया है (ए० इ० १३ पृ० २९०) कलचुरी मंत्री गंगधर के दान पत्र में इस भिक्षा गृह को सर्वसत्री (ए० इ० २१ पृ० १६५) का नाम दिया गया था जहां स्वादिष्ट भोजन वितरित किया जाता था (मिष्ठान पान सम्पन्ना सर्व सत्री व्याधादसौ)। ११ वीं सदी के आसाम शासक जयपाल देव तथा वल्लभ देव ने शिवमंदिर से सम्बद्ध एक भिक्षागृह तैयार कराया था जिसे भक्तशाला कहते थे। लेख में भक्तशाला क्षुधार्थाना महादेवस्य संन्निधौ वाक्य उल्लिखित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। (ए० इ० ५ पृ० १८१) यह परम्परा आज भी प्रचलित है तथा वाराणसी में छत्र अनेक मंदिरों में स्थित है। छत्र सत्र शब्द का विकृत रूप ही मालूम पड़ता है। लेखों के विशद् विवेचन से पता चलता है कि समाज में भिक्षावृति को रोकने की कामना थी परन्तु भिक्षा देने का भाव विद्यमान था। भिक्षा मांगने की प्रथा का अन्त आवश्यक था। शासक तथा धनीमानी व्यक्तियों ने इस बुराई को हटाने का सफल प्रयत्न किया और सत्र की स्थापना से व्यवितगत भिक्षा वृति प्रायः समाप्त हो गयी।

अन्धविश्वास

सातवीं सदी से पूर्व के लेखों में अन्धविश्वास की चर्चा नहीं मिलती, जिसके सहारे प्राचीन समय में भूत-प्रेत या तंत्र-मंत्र के सम्बन्ध की जानकारी हो सके। अशोक के लेखों में स्वर्ग प्राप्ति के उपाय तथा परलोक में सुख मिलने की बात कही गई है। शासक भी ऐसा ही कार्य करता था कि जनता सुख, यश, पुण्य तथा निर्वाण (स्वर्ग प्राप्ति) पा सके।

तथा कलतं हिदलोकिक्वे च कं आलधे होति पलत
च अनत पुना पशवति तेना धंम दानेन।

(शिलालेख नं० ११)

हिद च से अथे परत्र च अनत पुणं प्रसवति तेन ध्रम मंगलेन

(शिलालेख नं० ९)

यों तो अन्धविश्वास किसी न किसी रूप में समाज में प्रचलित रहा और वैदिक तथा संस्कृत साहित्य में सम्मोहन, वशीकरण तथा मारण आदि का वर्णन पाया जाता है परन्तु प्रशस्तियों में यह विवरण नहीं के बराबर है। गुप्त लेखों में उल्लिखित 'आवाताय' की समता 'भूतवात प्रत्याय' से की जाती है। यह एक प्रकार का कर (टैक्स) था जो भूत व वात के हटाने के लिए लगाया जाता था। पूर्व मध्य काल तंत्र-मंत्र का युग था और बौद्धों के वज्रदान अथवा मंत्रयान ने अन्धविश्वासों पर आस्था स्थिर की। तंत्र-मंत्र समाज में घर कर गये। धरणी तथा मंत्रों का प्रयोग प्रशस्तियों के प्रारम्भ में होने लगा। बीजमंत्र तथा भूत-प्रेत में अत्यधिक विश्वास उत्पन्न हो गया। ह्वेनसांग ने ज्योतिषी, तांत्रिक, भविष्य कथन करने वाले बौद्ध तथा जैन व्यक्तियों का विवरण दिया है। यदि समस्त अभिलेखों का विवेचन किया जाय तो पता चलता है कि—

(१) स्वर्ग व नरक

(२) राहु द्वारा सूर्य तथा चन्द्र को ग्रसना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(३) भूत-प्रेत

(४) ज्योतिष तथा भविष्य वक्ता

सम्बन्धित कार्यों में जन साधारण का पूर्ण विश्वास हो गया था। दान के उद्देश्य (स्वर्ग की प्राप्ति) में निम्नलिखित वाक्य मिलते हैं:

(अ) संसारार्णव तरणांर्थ स्वर्ग मार्ग अर्गलोद्घाटन हेतोः (ए० इ० ३ पृ० २६६)

(ब) स्वर्ग द्वार कपाट अर्गलोदघाटताय (वही भा० ५ पृ० ११४)

(स) प्राणास्तृणाग्र जलविन्दु समानराणाम् धर्मस्सखा परमरहो परलोक याने (वही भा० ११ पृ० ८)

(द) स्वर्ग लोक समागतः (ए० इ० भा० १८ पृ० ९६)

(य) पष्टिवर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्। (ए० इ० ४ पृ० १३३)

सूर्य चन्द्र को राहु ग्रस लेता है (जिसे ग्रहण कहते हैं) इस अन्धविश्वास पर आधारित कुसमय पर दान का उल्लेख प्रशस्तियों में किया गया है (राहु ग्रस्ते दिवाकर—ए० इ० ४ व ११ पृ० १५८, २१९) चन्देल तथा गहड़वाल प्रशस्तियों में भूत-प्रेत की चर्चा अधिक मिलती है। निम्न पंक्ति दानपत्रों में पाई जाती है—गंगायां विधिवत् स्नात्वा मंत्र देव मनुज मुनि भूत पितृ गणां तर्पयित्वा (ए० इ० भा० ४) सम्भवतः पौराणिक विचारधारा के कारण जनसाधारण में बलि देने की प्रथा चली। गोविन्दचन्द्र के मंत्री लक्ष्मीधर ने राज धर्मकाण्ड में—"पिशाचेभ्यो वलिंदघात्संध्याकाले च नित्यशः" का वर्णन किया है (गा० ओ० सि० १०० पृ० १७६)

इसके अतिरिक्त प्रशस्तियों में एक नैमित्तिक (=ज्योतिषी) का नाम पदाधिकारियों की सूची में मिलता है। गहड़वाल नरेश गोविंद चन्द्रदेव के दरबार में भविष्यवाणी करने वाला पुरुष था जो अशगुन का अर्थ बतलाया करता था। (ए० इ० ४ पृ० ९७, भा० ७ पृ० ९९, भा० १८ पृ० २२२) रामपाल के लेख से पता चलता है कि एक व्यक्ति ने बालकपन में चिह्न देखकर भविष्यवाणी की थी कि वह बालक राजा होगा (ए० इ० १२ पृ० १३७) बंगाल के लेखों में घर से भूत हटाने के लिए पुरोहित जैसे व्यक्ति की नियुक्ति का उल्लेख है (वेलवा ताम्रपत्र, सुन्दरवन ताम्रपत्र)। इस तरह के अन्धविश्वास के कारण ही मध्ययुग में सहस्रों पूजा निमित्त स्तूप (Votive Stupa) बनाए गए थे।

वज्रयान में शक्ति के सम्बन्ध में चाण्डाली, योगिनी तथा सहज सुन्दरी की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कल्पना पाई जाती है। नालंदा के लेख में तारा को एसी ही शक्तिशालिनी देवी कहा गया है जो आठों प्रकार के भय को दूर करती है (ए० इ० २१ पृ० ९७) वज्रयान देव समूह की कल्पना तंत्र-मंत्र के आधार पर हुई जो पहले के दोनों यान में नहीं था। संक्षेप में यह व्यक्त करना उचित है कि ७००–१२०० ई० का काल अन्धविश्वास का प्रधान युग था जिसका प्रभाव आज तक हिन्दू समाज में दिखाई पड़ता है।

यद्यपि लेखों में मनोरंजन तथा खेल सम्बन्धी चर्चा की बहुलता नहीं है परन्तु जो कुछ उल्लेख मिलता है उससे लोगों के मनोविनोद के साधनों का परि-ज्ञान हो जाता है। अशोक आठवें धर्म लेख में विहार यात्रा (मृगया) की बात कही गई है जिसे मौर्य सम्राट् ने बन्द कर दिया—

मनोरंजन के साधन

अतिकातं अंतरं राजानो विहार-यातां ञयासु। एत मगव्या अञ्ञानि च एता रिसानि अभीरमकानि अहुंसू सो देवानं पियो पियदसि राजा दसवसभिषितो संतो अयाय सम्बोधि तेनेसा धमं याता-आठवां लेख-गिरनार पाठ। इससे प्रकट होता है कि मृगया शासकों के मनो-रंजन का प्रधान साधन था। ईसवी सन् के चौथी सदी से गुप्त लेखों में कई प्रकार के मनोरंजन के साधन का उल्लेख आता है। प्रयाग के स्तम्भ लेख में समुद्रगुप्त के शरीर पर अनेक घाव के चिह्न थे। धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों पर "समरशत वितत विजयी जित रिपुरजितो दिवं जयति" लिखा है। इससे स्पष्ट है कि धनुष बाण, परशु के व्रण वीरता के प्रतीक थे। गुप्त नरेश चीता, शेर, गैंडा आदि जानवरों का आखेट करते दिखलाए गए हैं तथा मुद्रा लेख भी अंकित है। व्याघ्रपराक्रमः (समुद्रगुप्त) भुविसिंह विक्रमः (द्वितीय चन्द्रगुप्त) महेन्द्रसिंह (कुमार गुप्त प्रथम) या सिंह महेन्द्र तथा भर्ता खड्ग त्राता (कुमार गुप्त प्रथम) आदि पदवियां गुप्त नरेशों के लिए खुदी है। उनसे आखेट का आभास मिलता है। पर्याप्त प्रमाण न मिलने पर भी इसे प्रधान मनोरंजन समझा जा सकता है।

समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में राजा के संगीत प्रेम का वर्णन आता है और वह नारद से भी वीणा-वादन में दक्ष कहा गया है—

गान्धर्व ललितै व्रीडित त्रिदशपति गुरु तुम्वरू नारदादेः।

इसका समर्थन वीणा प्रकार के सिक्के से होता है जिस पर राजा का नाम—महाराजा श्री समुद्रगुप्त खुदा है। उसके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठा नाटक देखते हुए प्रदर्शित किया गया है तथा मुद्रालेख 'रूपाकृति' अंकित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समाज में संगीत लोगों के मनोविनोद का प्रधान साधन था। चहमान लेखों में वाद्य नृत्य तथा गान के समारोह का वर्णन आता है और उस समय रथयात्रा या देवयात्रा के जुलूस में संगीत मुख्य साधन था। इस युग के चित्रों में भी विभिन्न प्रकार के वाद्य (मृदंग, जलतरंग, तवला, झाल, नगाड़े बांसुरी) के साथ नृत्य का प्रदर्शन पाया जाता है। पूर्व मध्ययुग के लेखों में जुआ तथा शतरंज के नाम आते हैं। परमार राजा चामुण्डराय ने जुआघर पर 'कर' बैठाया था (ए० इ० १४ पृ० ३०८)। शतरंग शब्द चतुरंग (सेना) का बिगड़ा रूप है जिसमें पैदल, हाथी, रथ तथा घोड़े की स्थिति आवश्यक समझी जाती है (चतुरंग-चमू प्रचार-ए० इ० २ पृ० ३) यह भारतीय खेल था जिसे अरब वालों ने सीखा तथा पुनः वहाँ से भारत में अनुकरण किया गया।

ऊँचे परिवार की स्त्रियों के लिए सुग्गा पक्षी मनोविनोद का साधन था। पाल नरेश धर्मपाल की खालीमपुर प्रशस्ति में भी ललनाएं सुग्गे को सम्बोधित करती वर्णित की गई हैं।

(१) सौधे सोच्छसितं स्थितं सकरुणं लीलाशुको व्याहृतो (ए० इ० १ पृ० २०९)

(२) लीला वेश्मनि पंजरोदर शुकैर्उद्गीतमात्मस्तवम् (ए० इ० ४ पृ० २४८)

उस युग के दानपत्रों में मछली युक्त ग्रामदान का उल्लेख मिलता है जिसका तात्पर्य यह था कि उस भू भाग में जो तालाब स्थित थे, उन से मछली निकालने का अधिकार दानग्राही को था। अतएव यह स्पष्ट है कि मछली मारने से भी लोगों में एक आनन्द का अनुभव होता होगा। इन सभी बातों से राजा तथा प्रजा के मनोविनोद के साधनों का परिज्ञान हो जाता है।

मनोविनोद के लिए सामाजिक उत्सव भी सुअवसर प्रदान करते हैं। अशोक के लेख में समाज शब्द विशेष अर्थ में व्यवहृत किया गया है। साधारण समाज (उत्सव, मनोविनोद पूर्ण) की निन्दा की गई है तथा विद्वानों के समाज को ही उत्तम माना गया है। [न च समाजो कर्त्तव्यो बहुकं हि

सामाजिक उत्सव दोसं समाजम्हि पसति देवानं प्रियो प्रियदसि राजा। अस्ति पितु एकचा समाजा साधुमता।

(पहला शिलालेख)

अशोक के विचार से पिछले शासक सहमत न थे अतः उत्सव प्रारम्भ कर दिया। उसका उल्लेख खारवेल की हाथी गुम्फा प्रशस्ति में पाया जाता है तथा भारहुब की वेदिका (प्रसेनजीत स्तम्भ) पर प्रदर्शित है। खारवेल ने राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तिलक के तीसरे वर्ष में जनता के मनोविनोद के लिए उत्सव किया--

ततिय वसे गंधव वेद बुधो दप नत गीत वादित संदसनाहि उसव-समाज कारापनाहि च क्रीडापयति (ए० इ० २० पृ० ७२: जे० वि० ओ० रि० सो० १३ पृ० ३२)। उसी प्रकार वेदिका पर नृत्य करती अप्सराओं की आकृति खुदी है। चौथी सदी से गुप्त नरेश संगीत तथा नाटक के प्रेमी थे। कालिदास के नाटकों की रचनाएं उसी काल में हुई जिससे संगीत तथा नाटक के प्रदर्शन से सामाजिक समारोह का अनुमान भी लगाया जा सकता है। छठी सदी से धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों के वर्णन अभिलेखों में मिलते हैं। दीपोत्सव तथा वसन्तोत्सव का उल्लेख है (ए० इ० ११ पृ० ५५ भा० ८ पृ० १०१) उस विवरण से पता चलता है कि शासक धार्मिक उत्सव (जैसे रथ यात्रा देवयात्रा) के लिए व्यापारियों पर कर भी लगाता था। (ए० इ० १४ पृ० २९८) सामाजिक उत्सव के विशाल भवन निर्माण का वर्णन समरसिंह देव के लेख में मिलता है (ए० इ० ११ पृ० ५५)

अभिलेखों में पशु मेला का भी विवरण उपलब्ध है। पूर्वी पंजाब के एक लेख में पशु मेला में घोड़ों की बहुलता का उल्लेख है (ए० इ० १ पृ० १८६) प्रतिहार राजा भोज की प्रशस्ति में उत्सव के सिलसिले में 'घोटक यात्रा' का नाम उल्लिखित है। जिसमें दूर-दूर से व्यापारी घोड़ा खरीदने आया करते थे—घोटक यात्रायां समायाता.... घोड़ा विक्रय-दा १-प्रदतं (ए० इ० १ पृ० १८४) उसीं वंश के दूसरे लेख में घोड़ा क्रय-विक्रय करने वाले व्यक्तियों के द्वारा 'कर' देने का वर्णन है (वही पृ० २९, ३३) इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि पंजाब तथा राजपुताने में पशु मेला का आयोजन किया जाता था। इस तरह के कार्य समाज को प्रगतिशील बनाते हैं। उत्सव तथा मेले में एकत्रित होकर जनता विचार विनमय करती तथा आवश्यक कार्यों की भी पूर्ति करती रही।

सामाजिक कार्यों के लिए तथा आवागमन निमित्त जनता रथ, घोड़े, हाथी, ऊँट तथा बैलगाड़ी का अधिकतर प्रयोग करती थी। लेखों में बैलगाड़ी का ही अधिक उल्लेख मिलता है। क्योंकि साधारण व्यक्ति उसी का प्रयोग करता था। (ए० इ० ११ पृ० ३५; ३९) सातवाहन लेख में शकट तथा घोड़े दान का वर्णन है (नानाघाट का लेख) प्रतिहार, गहड़वाल तथा पालवंशी लेखों में हाथी-घोड़ा की निगरानी के लिए एक पदाधिकारी का नाम मिलता है। (ए० इ० १९ पृ० १७; भा० ७ पृ० ९९; भा० ४ : भा० १८ पृ० ३२५ : भा० १२ पृ० ८)। इस प्रकार के स्थल-यान के अतिरिक्त नावों का भी प्रयोग आवा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गमन निमित्त होता था जिसका विवरण कई लेखों में आता है।

समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त तत्कालीन मनुष्यों के चरित्र का अध्ययन करना आवश्यक है। भारतवासियों का चरित्र

समाज में व्यक्ति का चरित्र

सदा से उज्ज्वल तथा पवित्र रहा है जिसका विस्तृत वर्णन विदेशियों (मेगस्थनीज, फहियान, ह्वेनसांग, इत्सिंग) ने किया है। सत्य-भाषण तथा वीरता के लिए सर्व प्रसिद्ध रहे हैं। गुप्त काल में कोई भी व्यक्ति अधार्मिक, व्यसनी, आर्त, दरिद्र तथा पीड़ित न था ऐसा वर्णन जूनागढ़ के लेख में पाया जाता है-आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्डयो न वा यो भृश पीडितः स्यात् (का० इ० इ० ३ पृ० ५८) इस तरह के वर्णन अधिक नहीं मिलते तो भी यत्र-तत्र उल्लेख आते हैं। भारतवासियों का आदर्श सांसारिक वैभव न था परन्तु उसे वह तृण व बुलबुले के सदृश समझते थे (नालंदा ताम्रपत्र ए० इ० १८) ब्राह्मण दानग्राही होने पर भी आदर्श के लिए धन का त्याग कर देता था। (ए० इ० १३ पृ० २९२) राजाओं के बहुपत्नी व्रत का विवरण लेखों में आता है किन्तु वह अपनी रानियों से प्रेम करता तथा अन्य स्त्रियों से पृथक रहता था। ऐसा वर्णन शासक के आदर्श चरित का द्योतक है—

संत्यक्त पर कलत्रो धर्म्मैकरतोप्पि सर्वदावश्यं
निज वनिता परितुष्टोप्यभिलषित सुदज्जन प्रमदः (ए० इ० १ पृ० १५६)

पाल नरेश धर्मपाल तथा वाकपाल राम-लक्ष्मण के सदृश आदर्श जीवन व्यतीत करते थे।

रामस्येव गृहीत सत्यतपसस्तस्यानु पो गुणैः
सौमित्रेरुदपादि तुल्य महिमा वाकपाल नामानुजः
(ए० इ० १५ पृ० २९३)

सर्वसाधारण जनता भी पवित्र जीवन व्यतीत करती थी तथा दान व्रत तीर्थ और यज्ञ में विश्वास रखती थी। पूर्व मध्ययुग के सहस्रों दानपत्र जनता के धार्मिक भावना के द्योतक हैं। व्रत पालन करना तत्कालीन समाज में एक आवश्यक कार्य हो गया था। देवोस्थान एकादसी, हरिशयिनी वामन या गोविन्द द्वादसी (ए० इ० १३ पृ० २११ या ४ कमौली ताम्रपत्र) रामनवमी (ए० इ० १४ पृ० १८८) तथा सावित्री पर्व (ए० इ० ११ पृ० ३९) आदि के नाम मध्यकालीन अभिलेखों में प्रचुरता से उल्लिखित हैं। देवयात्रा तथा पर्व्वयात्रा का नाम भी चहमान लेखों में आता है (ए० इ० ११ पृ० २८)। तीर्थ स्थानों में जाकर शासक या जनता दान दिया करती थी ताकि वे पुण्य के भागी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हों। गहड़वाल राजा के कमौली ताम्रपत्रों में वाराणसी तीर्थ का नाम अनेक बार (ए० इ० भा० ४ पृ० १२२) तथा कलचुरी प्रशस्तियों में प्रयाग का नाम (वेणी=प्रयाग) ए० इ० पृ० १२२ ८ भा० ८ पृ० १५४) अधिकतर आए हैं। चेदिवंशी लेखों में प्रयाग के साथ गया का नाम भी मिलता है (ए० इ० २५ पृ० ३१७)। पाल अभिलेखों में केदार तथा गंगासागर तीर्थों का उल्लेख है। (खालीमपुर लेख ए० इ० ४ पृ० २४३)। अयोध्या तीर्थ स्वर्ग का द्वार कहा गया है--

सरयू घर्घराघमर्षण स्वर्ग द्वार नाम्नि तीर्थ
(गहड़वाल लेख- ए० इ० १४ पृ० १९३ इ० १५ पृ० ६)

इन समस्त उल्लेखों से प्रकट होता है कि समाज में धर्म की भावना काम कर रही थी। व्रत के प्रति अनुराग तथा तीर्थयात्रा में लोगों की आस्था उनके पवित्र जीवन को प्रमाणित करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ७

भारतीय प्रशस्तियों में धार्मिक चर्चा

भारत की प्रशस्तियां इतनी बड़ी निधि हैं कि उनसे सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त किए जा सकते हैं। यह सर्व विदित है कि प्राचीन समय में शासक के जीवन तथा वंश का इतिहास अभिलेखों में भली भांति वर्णित है। उनका वर्गीकरण यह बतलाता है कि अधिकतर लेख धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखे जाते थे। इस दिशा में सर्व प्रथम अशोक के लेखों की गणना उचित है। अशोक के शिलालेख तथा स्तम्भ लेखों के गम्भीर अध्ययन से सदाचार तथा धर्म सम्बन्धी बातों का परिज्ञान हो जाता है। मौर्य सम्राट् ने तो धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए लेख खुदवाया था। उसके धार्मिक भावना के सम्बन्ध में विभिन्न मत उपस्थित किए जाते हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अशोक बौद्ध नहीं था, उसने जो कुछ कहा है वह वास्तव में सभी धर्मों में समान है। सदाचार की बातें सर्वत्र कही गई हैं। उपासक लोगों के लिए ही लेख में सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। उदाहरण के लिए ग्यारहवें शिलालेख में उसने अंकित कराया था --देवानं पिये पियदशी लाजा एव आह नथि हेदिषे दानं अदिष धम दान। तत ऐषे दाष भटकषि षम्या पटियति माता पितिषु षुषुषा। मित षंथुत नातिक्यानं समना वंभ नाना दाने पानानं अनातंभे—इयं साधु शे तथा कलंत हिद लोकिक्ये चकं आलधे होति पलत च अनत पुना पशवति तेना धंम दानेना। तात्पर्य यह है कि अशोक ने आदेश दिया कि सभी लोगों से उचित व्यवहार किया जाय। गुलाम से समुचित व्यवहार करे। माता-पिता की सेवा करे। साधु ब्राह्मण का दर्शन कर दान दे। प्राणियों की हिंसा न करे। ऐसा करने से इस संसार में सुख मिलेगा और अन्यत्र पुण्य होगा। ऐसा विचार अशोक ने कई लेखों में दुहराया है जिससे बुद्ध धर्म की ओर विशेष झुकाव का अनुमान नहीं किया जा सकता। ऐसी बातें तो प्रायः सभी मतों में प्रतिपादित की

बौद्ध धर्म

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाती हैं। डा० भन्डारकर ने लेखों के अन्य प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि अशोक बौद्ध-धर्मानुयायी था। कलिङ्ग युद्ध (तेरहवां शिलालेख) के पश्चात् उसका विचार परिवर्तित हो गया और उसने धर्म द्वारा संसार-विजय का संकल्प किया। अहिंसा के सिद्धान्त पर अटल रह कर उसने बौद्धधर्म के प्रसार तथा प्रचार के लिए अनेक उपाय किए। स्वयं महाबोधि तथा रुम्मनदेई की धर्मयात्रा की। उपासकों को बौद्ध साहित्य कें पाठ करने का (भाब्रू का लेख) अनुरोध किया तथा अनेक दूतों को धर्म प्रचार के लिए विभिन्न देशों में भेजा। पुत्र तथा पुत्री सिंहल द्वीप गए। स्तूप पूजा का आरम्भ अशोक ने ही किया और इसलिए कई हजार स्तूपों का निर्माण किया था। उसके धर्म-महामात्र अहिंसा का पाठ सुनाया करते। अशोक का सारनाथ का स्तम्भ लेख घोषित करता है कि वह संघ में एकता का पक्षपाती था और विभेद डालने वाले भिक्षु को संघ से निकाल देना चाहता था। मौर्य सम्राट् ने स्वयं बिहार में प्रविश कर (रूपनाथ का लेख–सातिलेके चु छवछर य सुनि हक संघ उपेते) प्रजा के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया। इस प्रकार अशोक के धर्मलेख यह बतलाते हैं कि उसने बौद्धमत को राजधर्म बनाया।

यद्यपि मौर्य युग के पश्चात् बौद्धमत को राजाश्रय मिल न सका तथापि जनता में बौद्धधर्म के अनुयायी तथा उपासकों की संख्या कम न थी। भारत में स्तूप पूजा का प्रसार हो गया था, इसलिए शुंग काल में स्तूप के चारों तरफ वेदिका व तोरण तैयार किए गए और उन पर लेख भी खोदा गया। भारहुत वेदिका के लेख में यह वर्णन आता है कि ––

सुगनं रजे रजो गागीयुतस विसदेवस
वाछि युतेन धनभूतिन कारित तोरनां

शुंग काल में धनभूति ने तोरण बनवाया था। इसी तरह सांची के दक्षिणी तोरण पर सातवाहन नरेश शातकर्णी (ई. पू. दूसरी सदी) के समय का एक लेख मिलता है। सांची वेदिका के हिस्सों पर दान कर्त्ता के नाम खुदे हैं। इससे प्रकट होता है कि शुंग काल में भी बौद्धमत (हीनयान मत) का प्रसार था।

ईसवी सन् के आरम्भ से कुषाण राजा कनिष्क ने बौद्धमत को प्रोत्साहित किया और चौथी संगीति बुलाई थी। मथुरा के बौद्ध प्रतिमाओं के आधार-शिला पर कनिष्क के शासन काल में लेख उत्कीर्ण कराए गए थे। कनिष्क के काशी तक राज्य विस्तार का परिज्ञान एक बुद्ध प्रतिमा के लेख से ही होता है। सारनाथ में एक विशाल बुद्ध मूर्ति मिली है जिसके लेख में महाक्षत्रप खरपल्लाना का नाम मिलता है जो कनिष्क का प्रांतपति था। इसकी तिथि 'महार-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जस्य कणिष्कस्य सं. ३' लिखा है। कनिष्क के एक सिक्का पर बुद्ध की मूर्ति तथा वोडो मुद्रालेख उसके धार्मिक भावना पर प्रकाश डालते हैं। ईसवी सन् की दूसरी सदी में नहपान के जामाता उषवदत्त ने बौद्ध संघ को गुप्त दान किया था (नासिक का लेख)। सातवाहन नरेश पुलभावी के समय में (ई. स. १५८) भदावनीय शाखा (भिक्षु संघ) को गुप्त दान का वर्णन मिलता है (ददाति निकायस भदावनीयान भिखु संघस–नासिक लेख) इसी प्रकार महासंघिक शाखा के दान देने का वर्णन कार्ले गुहा लेख में है।

गुप्तकाल में बौद्धमत के प्रसार का आभास सारनाथ की बौद्ध प्रतिमाओं से मिल सकता है। सारनाथ शैली में अनगिनत बुद्ध की मूर्तियां बनने लगीं। प्रथम कुमारगुप्त का एक लेख मनकुवांर (इलाहाबाद उ० प्र०) की बुद्ध प्रतिमा के आधार शिला पर खुदा है। वह लेख 'नमो बुधान' की प्रार्थना से आरम्भ होता है। उसमें निम्न प्रकार का वर्णन है—इमं प्रतिमा प्रतिष्ठापिता भिक्षु बुद्धमित्रेण। कुमार गुप्त के राज्य में (१२९+३१९)=४४८ ई० के समीप यह प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई थी। द्वितीय कुमार गुप्त तथा बुद्धगुप्त के लेख भी उसी ढंग से उत्कीर्ण हैं। जिनकी तिथि क्रमशः गु. स. १५४ तथा १५७ मिलती है।

गुप्तकाल के पश्चात् सातवीं सदी से बुद्धधर्म के तीसरे यान–वज्रयान का प्रसार उत्तरी भारत में सर्वत्र पाया जाता है। विभिन्न राजाओं ने सहिष्णुता के कारण तथा पालवंशी नरेशों ने राजधर्म के नाते उसे आश्रय दिया जिसका प्रमाण उत्कीर्ण लेखों से मिलता है। उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बंगाल में वज्रयान के अनुयायी अधिक थे। उन प्रदेशों के लेखों में 'ओ नमों बुद्धाय' की प्रार्थना तथा "भगवन्त बुद्धं भट्टारकम्" के पक्ष में दान का वर्णन किया गया है। सारनाथ से उस प्रकार के अनेक लेख मिले हैं। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी ने बौद्ध मतानुयायी होने के कारण एक विहार को दान दिया जो प्रस्तर लेख सारनाथ से मिला है। बंगाल के राजा महीपाल के लेख में बुद्ध प्रतिमा दान का वर्णन है। बिहार प्रान्त के मगध के भूभाग से या बंगाल से जितनी बौद्ध प्रतिमाएं मिली हैं उनके सिरे भाग पर निम्न लेख खुदा रहता है—

यो धम्मा हेतु प्रभवा, हेतुं तेषां तथागतो ह्यनदत्
तेषां च यो निरोधो एवं वादी महाश्रमणः।

मगध (या पाल) शैली की सभी प्रतिमाओं पर यह पंक्तियां उत्कीर्ण पायी जाती हैं।

पटना के समीप कुर्कीहार नामक स्थान से कांस्य-प्रतिमाओं का ढेर मिला है जिन पर देवपाल के समय के लेख खुदे हैं। इतना ही नहीं पाल नरेशों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशस्तियां (खालीमपुर, नालन्दा, मुंगेर, भागलपुर, बोधगया, बानगढ़ आदि) बुद्ध की प्रार्थना से प्रारम्भ (नमो बुद्धाय) होती हैं जो राजाओं के धार्मिक भावना के द्योतक हैं। यों तो खालीमपुर ताम्रपत्र तथा भागलपुर ताम्रपत्रों में क्रमश: विष्णु और शिव मन्दिर के दान का विवरण मिलता है लेकिन उन लेखों में दान का वर्णन राजाओं के धार्मिक सहिष्णु होने की वार्त्ता उपस्थित करती है। यह तो निर्विवाद है कि धर्मपाल, देवपाल, नारायणपाल सूरपाल आदि पाल नरेश बौद्ध मतानुयायी थे। परमसौगत की पदवी तथा बुद्ध प्रार्थना इसके सबल प्रमाण हैं।

जैन तथा आजीविक मत

ईसा पूर्व छठी सदी से ही महावीर ने जैन मत का प्रचार किया था जिसकी अभ्युन्नति कालान्तर में होती रही। अशोक लेखों में 'निग्रंथ' शब्द का प्रयोग जैन धर्म के लिए किया गया है। उड़ीसा में जैनमत का प्रचार उदयगिरि (भुवनेश्वर के पास) के गुहालेखों से ज्ञात होता है। हाथी गुम्फा लेख राजा खारवेल के जैनमत में विश्वास का वर्णन करता है। उसकी रानी द्वारा उत्कीर्ण मंचपुरी गुहा लेख में "अरहंत पसादाय कलिंगानं समनानं लेनं कारितं" का वर्णन यह बतलाता है कि उदयगिरि के भाग में जैन साधु निवास करते थे जिन के लिए अग्रमहिषी ने गुहा दान किया था। ईसवी सन् के आरम्भ से मथुरा के समीप इस मत का अधिक प्रसार हुआ था। यही कारण है कि कंकाली टीले की खुदाई से अनेक तीर्थंकर प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। उन पर दान कर्त्ता का नाम भी उल्लिखित है। वहां के आयाग पट्ट पर भी अभिलेख उत्कीर्ण है जिसमें वर्णन है कि अमोहिनी ने पूजा निमित्त इसे दान में दिया था—

अमोहिनिये सहा पुत्रेहि पालघोषेन पोठघोषेन
धनघोषेन आर्यवती (आयागपट्ट) प्रतिथापिता

वह लेख 'नमो अरहतो वर्धमानस' जैनमत से उसका सम्बन्ध घोषित करता है [सोडास के समय लेख)। दूसरी सदी के जूनागढ़ शिलालेख में उस व्यक्ति का वर्णन है जो जरामरण से मुक्त होकर केवल ज्ञान (जैनमत में पूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर चुका है। अतएव काठियावाड़ में जैनमत के प्रचार का अनुमान किया जा सकता है (जयदामन के पौत्र का जूनागढ़ लेख)।

ईसवी सन् के आरम्भ से जैन प्रतिमा के आधार-शिला पर (बौद्ध प्रतिमा की तरह) लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। लखनऊ के संग्रहालय में ऐसी अनेक तीर्थंकर की मूर्तियाँ सुरक्षित हैं जिन के प्रस्तर पर कनिष्क के ७९ या ८४ वें वर्ष का लेख उत्कीर्ण हैं। गुप्तयुग में भी इस तरह की प्रतिमाओं का अभाव न था जिनके आधार शिला पर लेख उत्कीर्ण हो। ध्यानमुद्रा में बैठी महावीर की ऐसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूर्ति मथुरा से प्राप्त हुई है। गु० स० ११३ (ई० स० ४२३) के मथुरा वाले लेख में हरिस्वामिनी द्वारा जैन प्रतिमा के दान का वर्णन मिलता है। स्कन्द गुप्त के शासन काल में मद्र नामक व्यक्ति द्वारा आदिकर्तृन की प्रतिमा के साथ एक स्तम्भ का वर्णन कहौम (गोरखपुर उत्तर प्रदेश) के लेख में है—

श्रेयोऽर्थ भूतभूत्यै पथि नियमवतामर्हतामदिकर्तृन्।

पहाड़पुर के लेख (गु० स० १५९) में जैन विहार में तीर्थंकर की पूजा निमित्त भूमि दान का विवरण है, जिसकी आय गंधधूपदीपनैवेद्य के लिए व्यय की जाती थी।

विहारे भगवतां अर्हतां गंध धूप सुमन दीपाद्यर्थंभ्।

(पहाड़पुर का ताम्रपत्रे)

पूर्व मध्ययुग में राजपुताना के विस्तृत क्षेत्र में भी जैन मत का पर्याप्त प्रचार था जिसका परिज्ञान अनेक प्रशस्तियों के अध्ययन से हो जाता है। चहमान लेख में राजा को जैनधर्म परायण कहा गया है तथा तीर्थंकर शांति नाथ की पूजा निमित्त आठ द्रम (सिक्के) के दान का वर्णन है। तैलप नामक राजा के पितामह द्वारा जैन मंदिर के निर्माण का भी वर्णन मिलता है—

पितामहेन + तस्येदं शमीयाट्यां जिनालये
कारितं शांतिनाथस्य बिम्बं जन मनोहरम्।

बिझोली शिलालेख (ए० इ० २६ पृ० ८९) का आरम्भ 'ओ नमो वीतरागाय' से किया गया है जिसके पश्चात् पार्श्वनाथ की प्रार्थना मिलती है। जलोर के लेख में पार्श्वनाथ के 'ध्वज उत्सव' के लिए दान का वर्णन है—

श्री पार्श्वनाथ देवे तोरणादीनां प्रतिष्ठाकार्यो कृते।
ध्वजारोपण प्रतिष्ठायां कृतायां (ए० इ० ११ पृ० ५५)

मारवाड़ के शासक राजदेव के अभिलेख में महावीर-मंदिर तथा विहार के निवासी जैन साधु के लिए दान देने का विवरण मिलता है।

(श्री महावीर चैत्ये साधु तपोधन निष्ठार्थे)

लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजपुताना में महावीर, पार्श्वनाथ तथा शाँतिनाथ की पूजा प्रचलित थी। परमार लेख में ऋषभनाथ के पूजा का उल्लेख मिलता है—और मंदिर को अतीव सुन्दर तथा पृथ्वी का भूषण बतलाया गया है।

श्री वृषभनाथ नाम्नः प्रतिष्ठितं भूषणेन विम्बमिदं)
(तेनाकारि मनोहरं जिन गृहं भूमे रिदंभूषणम्)

चन्देल राज्य के प्रधान खजुराहो नगर में लेख तथा प्रतिमाओं के अध्ययन से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जैनमत के प्रचार का ज्ञान होता है। प्रतिमाओं के आधार शिला पर खुदा लेख यह प्रमाणित करता है कि राजाओं के अतिरिक्त साधारण जनता भी जैनमत में विश्वास रखती थी। (ए० इ० २० पृ० ४६-८)

जहां तक आजीविक मत का प्रश्न है, मखली पुत्र गोसाल (बुद्ध के समकालीन) ने अपने मत का प्रचार अवश्य किया और उसके अनुयायी संसार त्याग भी कर चुके थे। अशोक तथा दशरथ के बराबर तथा नागार्जुनी पहाड़ों के गुहा लेखों से आजीविका संघ की स्थिति मालूम पड़ती है। उस संघ को गुहाएं दान में दी गई थीं। (इमं निगोह कुभा दिना आजीविकेहि—बराबर गुहा लेख)। सम्भवत: ईसवी सन् के आरम्भ से आजीविक मत का उल्लेख प्रशस्तियों में नहीं मिलता। वराहमिहिर तथा वाण ने आजीविक का उल्लेख किया है। कालान्तर में इन्होंने सम्भवतः ब्राह्मण मत (वासुदेव पूजा) को स्वीकार कर लिया; अतएव आजीविक मत का अस्तित्व न रह सका।

प्राचीन भारत में अशोक से पूर्व किसी शासक के लेख प्राप्त नहीं हुए हैं अतएव अभिलेखों का अध्ययन मौर्य काल से ही प्रारम्भ होता है। बुद्ध के समय में भी ब्राह्मण धर्म का प्रचार था जिसका वर्णन अशोक के धर्म लेखों में 'ब्रह्मण' शब्द से व्यक्त किया गया है।

मौर्य युग के पश्चात् भारतीय लेख यह बतलाते हैं कि अशोक के सिद्धान्त को जनता ने स्वागत नहीं किया। उसके मरते ही ब्राह्मण धर्म का जागरण हो गया और उत्तर तथा दक्षिण भारत में यज्ञादि होने लगे जिसे

भागवत धर्म

अशोक ने अपने धर्म लेखों में निन्दित बतलाया था (इधन किचि जीवं आरभित्पा प्रज्हितव्वं) मौर्य शासन के पश्चात् शुंग राजा पुष्यमित्र ने ब्राह्मण धर्म का संदेश सुनाया और दो अश्वमेघ द्वारा वैदिक यज्ञ को पुनः प्रसारित किया (द्वि अश्वमेध याजिनः सेनापतेः पुष्यमित्र अयोध्या का लेख) दक्षिण के सातवाहन राजा शातकर्णी द्वारा कई यज्ञ करने का वर्णन नानाघाट के लेख में है जिसमें नायिका ने अपने पति के कार्यों का उल्लेख किया है। यज्ञ के अतिरिक्त ईसा पूर्व सदियों (दूसरी व पहली) में भागवत धर्म का विशेष प्रसार था और कई लेखों से इस बात की पुष्टि होती है। नानाघाट लेख (महाराष्ट्र) के आरम्भ में ही संकर्षण तथा वासुदेव की प्रार्थना की गई है। घोरुण्डी शिलालेख (चित्तौरगढ़) में राजा भागवत की पदवी से विभूषित होकर अश्वमेध का कर्त्ता कहा गया है तथा संकर्षण वासुदेव के पूजा निमित्त शिला प्रकार का उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राज्ञो भागवतेन, अश्वमेधयाजिना
भगवभ्यां संकर्षण वासुदेवाभ्यां।

इस तरह पाटलिपुत्र, राजपुताना तथा महाराष्ट्र के भूभाग में अश्वमेध यज्ञ को पुनः आरम्भ तथा भगवत धर्म का प्रसार ब्राह्मण धर्म के जागृति का सूचक है। भारतीय नरेशों को छोड़कर विदेशी यूनानी राजदूत हेलियोडोरस भी भागवत धर्म का अनुयायी हो गया और उसने एक गरुणस्तम्भ पर लेख खुदवाया। भिलसा (मध्यप्रदेश) के समीप खम्वा बाबा के नाम से वह स्तम्भ आज भी प्रसिद्ध है। उसने भगवान विष्णु के मन्दिर के सम्मुख गरुड़ स्तम्भ स्थापित किया जिसमें विष्णु महान देवता (देव देवस वासुदेवस) कहे गए हैं तथा वह स्वयं अपने को भागवत (विष्णु का पुजारी) कहता है। इससे भागवत मत के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है (मूल लेख पृष्ठ २४)।

ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से गुप्त सम्राटों ने अपने विजय के उपलक्ष्य में कई लेख उत्कीर्ण करवाये थे जिनसे ऐतिहासिक विवरण के अतिरिक्त धार्मिक विषय पर भी प्रकाश पड़ता है। गुप्त नरेश परम वैष्णव थे जिसका वृत्तान्त लेखों में निहित है। विष्णु के वाहन गरुड़ का ध्वज उस वंश का राजचिह्न था जिसका उल्लेख प्रयाग के स्तम्भ लेख में मिलता है (गरुत्मदङ्क स्वविषय युक्ति शासन याचना) इसके अतिरिक्त गुप्त लेखों तथा मुद्रालेखों में राजाओं के लिए 'परम भागवत' की पदवी खुदी है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के रजतमुद्रा में "परम भागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यः" लिखा है। प्रथम कुमार गुप्त तथा स्कन्द गुप्त के लेखों में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा प्रथम कुमार गुप्त 'परम भागवत' की पदवी से विभूषित हैं (भिलसद, भितरी स्तम्भ लेख तथा भितरी राजमुद्रा का लेख) साहित्यिक प्रमाणों से पुष्टि की जाती है कि अवतारवाद की कल्पना गुप्तकाल में पूर्ण हो गई थी। गुप्त लेखों का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि उस युग में विष्णु के विभिन्न अवतारों की पूजा होती थी। एरण के स्थान पर वराह की भीमकाय प्रतिमा मिली है जिस पर उत्कीर्ण लेख में वराह विष्णु की स्तुति सुन्दर शब्दों में की गई है। इसी तरह दामोदरपुर ताम्रपत्र में श्वेत वराह स्वामिन के लिए दान का वर्णन है। छठी सदी के तोरमाण के एरण लेख में 'देवो वराह-मूर्ति' की प्रार्थना पाई जाती है।

विष्णु पूजा

छठी सदी से १२वीं शताब्दी तक के लेखों के आधार पर वैष्णव मत के प्रसार का परिज्ञान होता है और पौराणिक धर्म में इसको प्रमुख स्थान मिल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया था। जो अभिलख वैष्णव मंत्र "नमोनारायणाय" या "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" अथवा "वासुदेव भट्टारक" से प्रारम्भ होते हैं, उन्हें वैष्णव मानने में कठिनाई नहीं है। वैष्गवमत ने ही सहजयान (मंत्रमान) को प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप बंगाल में "वैष्णव-सहजिया" का प्रचार हुआ। मध्य युग के अनेक लेखों में विष्णु मंदिर तथा प्रतिमा पूजा के निमित्त दान का विवरण भरा पड़ा है। प्रतिहार तथा कलचूरी प्रशस्तियों में (जबलपुर तथा गोहरवा) विष्णु की प्रार्थना निर्गुण तथा सगुण भाव से की गई है।

यस्मिनि विशन्ति भूतानि यत्स्सर्ग स्थिती. मते
स वः पयाद् धृषीकेशो निर्ग्गुणस्सगुणश्चयः
(भोज का जोधपुर की प्रशस्ति ए० इ० १८ पृ० ९५)

निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम्
भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तमै सद्ब्रह्मणे नमः
(सरखो ताम्रपत्र—ए० इ० २२ पृ० १६४)

प्रशस्तियों में विष्णु की स्तुति विभिन्न नामों से की गई है। नारायण, मुरारी, हरि, माधव "ओं नमो माधवाय" "ओम् नमो विष्णवे" मंत्र लेखों के आरम्भ में उल्लिखित हैं। गहड़वाल नरेश के कमौली दान पत्रों में विष्णु के लिए 'आदि केशव' नाम प्रयुक्त है। आज भी वाराणसी के पूर्वी भाग वरुणा गंगा के संगम समीप आदि केशव मंदिर स्थित है। इस तरह विष्णु पूजा की लोकप्रियता ज्ञात होती है। उत्तरी भारत के लेखों में वैष्णवमत का प्रचार अधिकतर मंदिर निर्माण के वर्णन से विदित होता है [प्रासादौ वैष्णवस्तेन निर्म्मितोन्तर्वहन्हरिम्) चन्देल राजा परमर्दि के वटेश्वर-लेख में विष्णु-मंदिर को कैलाश के सदृश ऊंचा बतलाया गया है। खजुराहो नामक स्थान से जो चन्देल लेख मिले हैं उन का वर्णन उपर्युक्त बातों की पुष्टि करता है। परमार राजा भोज देव के लेख वेतमा ताम्रपत्र—(ए० इ० १८ पृ० ३२३) में विष्णु मंदिर के सम्मुख 'गरुड़ ध्वज' स्थापित करने का उल्लेख है इसी के सदृश धर्मपाल के खालीमपुर लेख में (ए० इ० भा० ४) 'नर-नारायण' के मंदिर निर्माण तथा नारायण पाल की प्रशस्ति में 'गरुड़ ध्वज' की स्थापना सुन्दर शब्दों में की गई है।

ईस्वी पूर्व सदियों में ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी मुद्रा-लेख नहीं मिलते परन्तु शैवमत से सम्बन्धित मुद्रा-लेख वीमकदफिस के सिक्के पर अंकित मिला है। सम्भवतः वह कुषाण नरेश शैवमतानुयायी था इसलिए वह 'महीश्वर' की पदवी से विभूषित किया गया है—

शैव मत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महरजस राजाधिराजस सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस वीमकदफिसस। कनिष्क ने भी शिव (ओइशो) का नाम अंकित करा कर शैवमत के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया था। उसके उत्तराधिकारी हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्कों पर शिव की प्रतिमा तथा नाम खुदा है जिससे उत्तर पश्चिम भारत में शैवमत का प्रचार प्रकट होता है।

कुषाणों के राजनीतिक परदे से हटते ही वाकाटक तथा भारशिव नरेशों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। नागवंशी राजा शिवलिङ्ग को अपने कन्धों पर वहन करते थे इसलिए उन्हें भारशिव कहा गया है। उसके सम्बन्ध में वाकाटक प्रशस्ति में निम्नलिखित वर्णन पाया जाता है--

शिवलिङ्गोद्वहन शिव- सुपरितुष्ट समुत्पादित
राजवंश— भारशिवानां महाराज
श्री भव नाग (प्रवरसेन द्वितीय का चमक लेख)

गुप्त युग के अभिलेखों का अध्ययन भी शैवमत के प्रचार की पुष्टि करता है। द्वितीय चन्द्र गुप्त के उदयगिरि लेख में शिव पूजा का उल्लेख मिलता है। राजा के मंत्री वीरसेन ने वहां शैव-गुहा (शिव-मंदिर) का निर्माण किया था--

भक्तया भगवतः शम्भोर्गुहामेतमाकारयत् (उदयगिरि का लेख) उसी समय [गु. स. ९६] ध्रुवशर्मा ने भिलसद [एटा, उत्तर प्रदेश] में स्वामी महासेन का मंदिर तैयार किया था। प्रथम कुमार गुप्त का करमदण्डा लेख शिवलिंग के अधोभाग पर उत्कीर्ण है। दामोदरपुर ताम्रपत्र में कोकमुख स्वामिन (बैनर्जी इसे पार्वती का द्योतक समझते हैं) के निमित्त अग्रहार का वर्णन है। गुणैधर ताम्रपत्र (बंगाल) में वैन्यगुप्त शिव भक्त (भगवन्महादेव पादानुध्यातो कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तयुग के अनेक शिव प्रतिमाओं को छोड़कर अभिलेखों का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि शैवमत का प्रचुर प्रचार था। इतना ही नहीं गुप्तों के सामंत महाराज हस्तिन के कई लेख मध्यभारत (मध्य प्रदेश) से प्राप्त हुए हैं जिन पर 'नमो महादेवाय' मंत्र से प्रशस्ति का आरम्भ किया गया है।

गुप्तकाल के पश्चात भी इस धर्म के प्रचार में उन्नति ही होती गई। वर्धन नरेश हर्ष मधुवन ताम्रपत्र में परमाहेश्वर की पदवी से विभूषित किया गया है। सम्भवतः प्रारम्भिक जीवन में वह शिव का पुजारी था। छठी सदी के शासक विष्णुवर्धन के मंदसोर (मालवा) लेखों में तथा इस हूण राजा मिहिर के ग्वालियर प्रशस्ति में शिव की प्रार्थना रोचक शब्दों में की गई है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(का. इ. भा. ३ पृ. ७४ व १५२) मिहिरगुल के सिक्के पर "जयतुवृष" का लेख अंकित है। यह विवरण हूण शासक मिहिरगुल द्वारा शिव पूजा में उसकी गाढ़ी भक्ति का परिचायक है।

सातवी सदी से बंगाल में भी शैवमत का प्रचार था जो शशांक, पाल नरेश नारायण पाल और सेनवंशी प्रशस्तियों से प्रकट होता है। शिव प्रतिमा के लेख में महावृषभ पर्याङ्क बालचन्द्र ज्योतिजटा भगवत स्यित्युत्पत्ति प्रलय सृष्टि के संहार कारणस्य" का उल्लेख मिलता है। इस काल में शिवपूजा लोकप्रिय रही इसीलिए शिव के विभिन्न नाम, अग्रहार दान तथा मंदिर निर्माण की बाते उल्लिखित हैं। शैवमत की उपशाखाएं भी इस युग में प्रचलित थी। लेख के प्रारम्भ में 'ओ नमो शिवाय' का मंत्र स्पष्ट प्रकट करता है कि शासक का झुकाव शैवमत की ओर अवश्य था। कलचुरी लेखों में केदारेश्वर, सोमनाथ तथा रुद्र के नाम उल्लिखित हैं। (ए. इ. १ व भा. १६ पृ. २३८; १३) तो परमार प्रशस्ति में भवानीपति, व्योमकेश, महादेव या उमापति के नाम से शिव प्रार्थना मिलती है (ए. इ. भा. ११ पृ. १८१)। पशुपति, योगस्वामी लोलार्क तथा बिन्ध्येश्वर (ए. इ. भा. ६; ५ पृ. १७४, ११६) के नाम विभिन्न लेखों से ज्ञात होते हैं। सेन तथा प्रतिहार लेखों में "अर्द्धनारीश्वर" शम्भू तथा नीलकण्ठ का उल्लेख पाया जाता है (ए. इ. भा. १९ पृ. १७५, भा. १४ पृ. १५९) सेनवंश के आराध्यदेव 'सदाशिव' कहे गए हैं जिनकी प्रतिमा लेखों के ऊपरी भाग पर खुदी है। शिव पूजा में आस्था करने के कारण ही परमार, चेदि, चन्देल, प्रतिहार, गहड़वाल तथा सेन शासकगण 'परम माहेश्वर' की पदवी से विभूषित थे। यह पदवी स्वयं बतलाती है कि महेश्वर के नए नाम से भी शिव की पूजा होती रही।

राजकीय लेखों में शिव की प्रार्थना ललित शब्दों में की गई है। प्रशस्तियों से उद्धरण सुनिएः—

(१) जयति जगत्रय मंडप मूलस्तम्भो महादेवः

(परमार लेख, ए. इ. २१ पृ. ४४)

(२) वंदेमहि महादेवं देव देव जगद्गुरुम्।

(कलचरि लेख, ए. इ. २ पृ. १८)

(३) गङ्गावुसं सिक्त माल वाले

कलेन्दोरमलां कुरामा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यन्मूर्द्धिन् नम्रेहित कल्प वल्या
भातीव भूत्यै स तवास्तु शंभुः ।
(उदयपुर प्रशस्ति–ए. इ. १ पृ. २३३)

(४) कल्याणिताम् विकलां भवतां तनोतु
भाले कलानिधि शशि शेखरस्य
(भेराघार लेख, ए. इ. २ पृ. १०)

बंगाल के पाल तथा सेन नरेशों के लेखों में शिव मन्दिर के निर्माण का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। पाल राजा नारायणपाल ने बौद्ध मतानुयायी होकर भी शिव (शिव भट्टारक) के सैकड़ों मन्दिर तैयार कराया जिसका वर्णन भागलपुर की प्रशस्ति में मिलता है––महाराजाधिराज श्री नारायणपाल देवेन स्वयं कारितं सहस्रायतनस्य। तत्र प्रतिष्ठापितस्य। भगवतः शिव भट्टारकस्य (इ. ए. भा. १५ पृ. ३०६) यदि इस संख्या को अत्युक्तिपूर्ण माने तो भी उसके शैवमत के आदर तथा उस धर्म के प्रति सहिष्णुता का भाव प्रदर्शित करता है। विग्रहपाल तीसरे ने भी शिव मन्दिर तैयार कराया। विजयसेन के देवपारा प्रशस्ति में प्रद्युम्नेश्वर (शिव) के विशाल देवालय निर्माण का वर्णन है— (स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासवः सौधमुच्चैः)। बंगाल के बाहर उड़ीसा में दसवीं सदी में शिवमन्दिर निर्मित किए गए जिसमें लिङ्गराज सर्व प्रसिद्ध है। मध्य भारत में चन्देल नरेशों की शक्ति और भक्ति के प्रमाण उनके मन्दिरों तथा लेखों से मिलते हैं। कन्दरिया महादेव का मन्दिर अत्यन्त सुन्दर ढंग से बनाया गया है। खजुराहो की प्रशस्तियों में शिवमन्दिर का वर्णन सुन्दर शब्दों में है। परमर्दि द्वारा निर्मित शिव मन्दिर भी उल्लेखनीय है (भारत कौमुदी भा. १ पृ. ४३५)। परमार शासन में नीलकण्ठ, महाकाल तथा मण्डलेश्वर शिव के देवालय बनाए गए थे (प्रासादामय माणेयं शिव एव करोति यः– ए. इ. २१ पृ. ४२, ४८) कलचुरी लेखों के परिशीलन से उसी तरह का ज्ञान होता है कि शासक शिव-भक्त होने के कारण शिव-मन्दिर का निर्माण करते रहे। रतनपुर के लेख में उल्लेख आता है कि कुमराकोट नामक स्थान पर शिव मन्दिर तैयार कराया गया था––

सुधांशु धवलं तत्र धूर्ज्जटे धाम निर्म्मितम्
निर्मितं मन्दिरं रम्यां कुमराकोट पत्तने।
(ए. इ. २६ पृ. २६२)

प्रतिहार लेखों का वर्णन इससे घटकर नहीं है। वाडक के ग्वालियर प्रशस्ति में निम्न वर्णन पठनीय है––

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुष्करणी कारिता येन त्रेता तीर्थे च पत्तनं
सिद्धेश्वरो महादेवः कारितस्तुंग मन्दिरः।
(ए. इ. १८ पृ. ९६)

इस प्रकार के अभिलेखों का अध्ययन स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि मध्यप्रदेश, राजपुताना, उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल तथा उड़ीसा में शैवमत लोकप्रिय था इसलिए पूजा या मन्दिर निर्माण का विशद् वर्णन मिलता है। लेखों का परिशीलन तथा प्रतिमाओं का परीक्षण यह बतलाता है कि भारतीय दर्शन के प्रकृति पुरुष या एक ब्रह्म की कल्पना को पूर्व मध्यकालीन प्रतिमाओं में स्थान मिल गया था। वैवाहिक प्रतिमा से प्रकृति पुरुष का बोध होता है तो अर्द्धनारीश्वर मूर्ति से 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का परिज्ञान हो जाता है। सेन लेख में अर्द्धनारीश्वर के सम्बन्ध में निम्न पंक्ति मिलती है—

संध्या ताण्डव समविधान विलसन् नान्दी निनादोर्म्मभि
न्निर्म्मर्यादासार्ण्णवो दिशतु वः श्रेयोर्द्धनारीश्वरः
(नईहटी का ताम्रपत्र ए. इ. १४ पृ. १५९)

७०० ई. के पश्चात् शैवमत का इतिहास विशेष महत्व रखता है। भारतवर्ष में सर्वत्र ही इस मत का प्रचार रहा। लेखों में शैवमत की प्रधान दो उपशाखाओं—पाशुपत तथा कापालिक—के नाम मिलते हैं।

पाशुपत तथा कापालिक

पाशुपत शाखा के प्रतिष्ठापक लकुलीश (हाथ में दण्ड) की आकृति हुविष्क के सिक्कों पर मिलती है परन्तु चौथी सदी में मथुरा स्तम्भ लेख में पाशुपत साधु उदिताचार्य द्वारा दो शिवलिङ्ग की स्थापना का वर्णन आता है (द्वितीय चन्द्रगुप्त का मथुरा स्तम्भ)। गुजरात के एक लेख में लकुलीश के रूप में शिव का अवतार वर्णित है—

भट्टारक श्री लकुलीश मूर्त्या तपः क्रिया कांड फल प्रदाता
अवातरेद्विश्वमनुग्रहीतुं देवः स्वयं बाल मृगांक मौलिः
(ए. इ. १ पृ. २८१)

पाशुपत मत के प्रचार के लिए ही लकुलीश का जन्म हुआ था—अवतेरुश्चत्वारः पाशुपत व्रत विशेष चर्यार्थं। राजपुताना के उदयपुर के समीपस्थ नाथ-मन्दिर की प्रशस्ति में लकुलीश की प्रार्थना की गई है (ओं नमो लकुलीशाय)। भ्रमवश लेखों में पाशुपत अथवा लकुलीश पाशुपत का उल्लेख है (राज्यपाल का नदलई लेख ए. ई. ११ पृ. ३९)। सम्भवतः नाथ मन्दिर के भू-भाग में शैवमत लकुलीश सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध था। चहमान नरेश विग्रहराज (११ वीं सदी) के अभिलेख में शैवसाधु अलात का शिष्य पाशुपत शिव का परम पुजारी था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आसीन्नैष्टिकरूपो यो दीप्त पाशुपत व्रतः
तीव्र वेग तपो जात पुण्यापुण्यमलक्ष यः ।

(हर्ष शिलालेख–ए. इ. २ पृ. १२३ श्लोक ३५)

राजपुताना संग्रहालय के लेख में पाशुपत मतानुयायी विश्वेस्वर प्रज्ञा नामक पुजारी सिद्धेश्वर मन्दिर में रहता था–ऐसा वर्णन आया है। कलचुरी लेख इस बात के प्रमाण हैं कि राजा पाशुपत उपशाखा के मानने वाले थे (ए. इ. १९ पृ. ७७) अल्हणदेवी के भेराघाट प्रशस्ति में वर्णन मिलता है कि (११ वीं सदी में) शिव मन्दिर की स्थापना कर पाशुपत साधु के हाथ सारा प्रबन्ध सौंप दिया गया था––

लाटान्वय पाशुपतस्तपस्वी––
स्थानस्य रक्षा विधिमस्य तावद्यावन्मिभीते भवनानि शम्भुः ।

तत्कालीन मठों में भी पाशुपत साधु के निवास करने का विवरण पाया जाता है––

श्री भोजनगरे श्री सोमेश्वर देव मठ निवासी
परम पाशुपत आचार्य भट्टारक श्री भाव वाल्मिकः ।

बंगाल के राजा नारायणपाल के शिव मन्दिर के पाशुपत साधुओं के निमित्त स्थान तथा औषधि के लिए दान का निम्न वर्णन मिलता है:––

पाशुपत आचार्यं परिषदश्च––
शयनासनग्लान प्रत्यय भैषज परिष्काराद्यर्थं ।

(भागलपुर का लेख–इ. ए. १५ पृ. ३०६)

इस समय में प्रचलित शैवमत की दूसरी उपशाखा-कापालिक का नाम पुराणों से आया है और मध्ययुग के लेखों में भी उल्लिखित है। इसके अनुयायी शरीर में मृत व्यक्ति का भस्म (विभूति) लगाते, खोपड़ी में भोजन करते तथा शराब का पात्र भी रखते थे। अघोरपन्थी साधु भी इनके सदृश थे। शैव धर्म पर तांत्रिक मत का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। राजपुताने के लेख में कापालिक साधुओं का उल्लेख है। उदयपुर की प्रशस्ति में कापालिक साधुओं के मठ निर्माण का विवरण पाया जाता है (आ० रि० राजपु० संग्रहालय १९२२-२३ पृ. २)। हम्मीर के एक लेख में कापालिक शाखा का उल्लेख मिलता है जिससे प्रकट होता है कि पाशुपत मत के पश्चात् उदयपुर के भाग में (१२ वीं सदी) कापालिक (शैव-शाखा) का प्रचार हो गया था (ए. इ. १९ पृ. ४७)।

वैदिक काल से ही सूर्य देवता की पूजा का प्रचलन भारत में रहा परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्वानों की धारणा है कि ईरान से सूर्य मत का प्रसार हुआ। ईसवी सन् के आरम्भ से सूर्य पूजा की प्रियता बढ़ने लगी इसलिए कनिष्क ने मित्र (सूर्य) की आकृति सिक्के पर खुदवाई तथा मीरो (मिहिर=सूर्य) लेख अंकित कराया। गुप्त युग में विष्णु तथा शिव के बाद सूर्योपासना का स्थान था। गुप्त लेखों में सूर्य पूजा का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। प्रथम कुमार गुप्त के मंदसोर वाले लेख में भगवान भास्कर की स्तुति ललित तथा काव्यमय भाषा में की गई है।

सूर्य–पूजा

हेतुर्य्यो जगत क्षयाभ्युदययो पायात्सवो भास्करः

× × ×

भक्तेभ्यश्च ददाति योऽभिलषिते तस्मैसवित्रे नमः।

× × ×

पायात्सवः सुकिरणाभरणों विवस्वान्।

इस लेख के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि प्रथम कुमार गुप्त के प्रांतपति बन्धु वर्मा के समय में तन्तुवाय श्रेणी द्वारा सूर्य मन्दिर का संस्कार भी हुआ था – श्रेण्यादेशेन भक्तया च कारितं भवनं रवेः

(मन्दसोर-मालवा की प्रशस्ति)

सम्राट् स्कन्द गुप्त के इन्दौर लेख में भगवान सूर्य की प्रार्थना सुन्दर शब्दों से आरम्भ की गई है।

पायाद्वः स जगत्पिधान पुट-भिद्रश्म्या करो भास्करः।

इसमें वर्णन है कि अन्तरवेद में (गंगा-यमुना के द्वाब) दो क्षत्रियों ने सूर्य पूजा के निमित्त भास्कर का मन्दिर निर्माण कराया। वैशाली के मुहरों पर गुप्तलिपि में––"भगवतो आदित्यस्य" उत्कीर्ण है। गुप्त लेखों में उल्लिखित सूर्य-पूजा के वर्णन को तत्कालीन मूर्त्तियां प्रमाणित करती हैं।

पूर्व मध्ययुग में उत्तरी भारत (राजपुताना, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार व बंगाल) में इस सिद्धान्त (सूर्य पूजा) का प्रचार हो गया था। वहां के अभिलेख "ओं नमो सूर्याय या नमो सूर्याय" मन्त्र से प्रारम्भ होते हैं। थानेश्वर के शासक राज्यवर्द्धन प्रथम, आदित्यवर्धन तथा महाराजा प्रभाकर वर्धन (हर्ष के पिता) सूर्य भक्त होने के कारण 'परम आदित्य भक्त' कहे गए हैं (मधुवन का लेख–ए. इ. १ पृ. ७२)। विदेशी हूण राजा तोरमाण सूर्य का पुजारी था उसने सिक्कों पर चक्र के प्रतीक का समावेश किया तथा पुत्र को मिहिर का नाम दिया था। मिहिरकुल के ग्वालियर प्रशस्ति में भी सूर्य मन्दिर के निर्माण का वर्णन मिलता है। उदयसिंह देव की भीनमल के लेख में भगवान सूर्य की प्रार्थना निम्न शब्दों में की गई है —

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुर्वतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्ना निधिः सूर्यः।

(ए. इ. ११ पृ. ५५)

दूसरे लेख में पुष्प तथा नीम पत्तियों के साथ सूर्य पूजा का वर्णन है तथा चहमान प्रशस्ति में (१२वीं सदी) सूर्य (इन्द्रादित्य) पूजा के निमित्त अग्रहार दान का विवरण है (ए. इ. १२ पृ. ५९)। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल द्वितीय के उज्जयिनी के दानपत्र में भी उसी प्रकार का वर्णन (पूजा-प्रकार) है। गहड़वाल नरेश जयचन्द्र ने भगवान लोलार्क (सूर्य का नाम) के पूजा निमित्त कई ग्राम दान किया था (ए. इ. ४ पृ. १२९—देव श्री लोलार्क्काय)। परमार वंश के वसन्तगढ़ के लेख में विधवा रानी द्वारा सूर्य मन्दिर के संस्कार का वर्णन पाया जाता है—

(अ) कृत्वा निकेतनं वटवासी भानो (ए. इ. ९ पृ. १३)

(ब) गृहं कारितमांशुभानोः (वही १४ पृ. १८१)

मुसलमान लेखकों ने सूर्य पूजा का वर्णन किया है जिसका प्रधान केन्द्र मुल्तान (=मूलस्थान) था। अलबेरूनी ने इसका सुन्दर विवरण दिया है और भारत के कोने-कोने से जनता मुल्तान के सूर्य मन्दिर में जाया करती थी। उनके दान से वह शहर वैभवपूर्ण हो गया था। पूर्वी भारत में भी सूर्य पूजा का प्रसार था। उड़ीसा का कोणार्क मन्दिर इसे प्रमाणित करता है। सूर्य प्रतिमा के पृष्ठ भाग पर दो प्रकार के लेख उत्कीर्ण पाये जाते हैं—

(१) सूर्य समस्त रोगानां हर्त्ता विश्व प्रकाशकः

(ज. ए. सो. वं. २६ पृ. १४७)

(२) श्री तकमीदिनकारिन् भट्टारक

(ए. इ. २७ पृ. २५)

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि सूर्य सब रोगों के नाशक (कुष्ट तथा अन्य चर्म रोग) माने जाते थे। अथर्ववेद में (१, ४, ६) तकमन शब्द रोग के लिए प्रयुक्त है इसलिए सूर्य को तकमी (रोग नाशक) कहा गया है। बंगाल के दसवीं सदी के कथित प्रशस्तियों से प्रकट होता है सूर्य की आराधना रोगों से मुक्त होने के लिए किया जाता था।

बिहार में निवास करने वाले शाकद्वीपी (मग) ब्राह्मण अत्यन्त पुराने समय से ही सूर्य के पुजारी माने गए हैं और आज भी औषधि या तंत्र का ज्ञान उनमें अधिक है। डा० भण्डारकर के मतानुसार भारत में मग ब्राह्मणों ने सूर्य-पूजा का प्रचार किया था। गया जिले से प्राप्त एक लेख में शाकद्वीपी मग नाम से उल्लिखित हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शाकद्वीपस्स दुग्धाम्बुनिधि वलयितो यत्र विप्रो मगाख्या (ए. इ. २ पृ. ३३३) उत्तरी भारत में पूर्वमध्यकाल से सूर्य पूजा अधिक लोकप्रिय हो गई जिसके कारण इस देवता के अनेक नाम—इन्द्रादित्य, लोलार्क्क, भास्कर, चक्रस्वामी वरुणस्वामी तथा मार्तण्ड–अभिलेखों में मिलते हैं तथा इन नामों से प्रतिमाएं भी बनती थीं। यहां सूर्य प्रतिमाओं का वर्णन अप्रासंगिक होगा परन्तु संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पंचायतन-पूजा में सूर्य का भी स्थान था तथा गुप्त युग के पश्चात् इस देवता की पूजा समाज में घर बना चुकी थी।

शक्ति-पूजा

भारत में मातृदेवी की पूजा प्रागैतिहासिक युग से प्रचलित है। मातृदेवी की मृणमयी प्रतिमा पांच हजार वष पहले भी बनती रही। मिश्र से लेकर हरप्पा युग की संस्कृति में मातृदेवी (Mother goddess) की मूर्तियां खुदाई से प्रकाश में आई हैं। इस मातृदेवी को शक्ति का रूप मानते हैं। शिव के साथ देवी को सम्बन्धित करना तांत्रिक मत का प्रभाव है। इसमें शक्ति और शक्तिमत को अभिन्न समझा जाता है। इसलिए प्रकृति पुरुष की भावना समाज में आई। बौद्धमत में 'प्रज्ञा तथा उपाय' शब्दों से उसकी अभिव्यक्ति की जाती है। तांत्रिक मत से प्रभावित होकर शक्ति की अधिक प्रतिमाएं बनने लगीं। भेराघाट (जबलपुर, मध्यप्रदेश) के चौसठ योगिनी का मन्दिर उसका जीता-जागता उदाहरण है। उन तांत्रिक देवी प्रतिमाओं के आधार-शिला पर नाम भी उत्कीर्ण है जिसके अध्ययन से हमारी जानकारी बढ़ती है। पूर्व मध्यकालीन लेखों में भी दुर्गा पूजा का वर्णन है जो शक्ति का उग्ररूप मानी गई है। प्रतिहार लेख महिषमर्दिनी देवी की प्रार्थना से आरम्भ होती है। उस स्थान पर वटयक्षिणी देवी (दुर्गा का एक नाम) के मन्दिर को शैवसाधुओं के हाथों सौंपने का वर्णन है (ए. इ. १४ पृ. १७७)। दूसरे लेखों में कांचनदेवी, सर्वमङ्गला या अम्बा के नाम से वर्णित है। उसकी प्रार्थना का एक उद्धरण दिया जा रहा है—

> दुर्गे जयाख्ये प्रबला सुरौर्च्चविध्वंसनी स्तोत्र परंपराभिः
> दुर्गास्तुवन्नेव सदैव भक्त्या कृताञ्जलिः पुण्य तमामुपास्ते।
>
> (ए. इ. भा. १ पृ. ३३४)

शक्ति का दुर्गा ही प्रसिद्ध नाम था यही कारण है कि भारतीय कला में महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा अधिक संख्या में बनी। बंगाल के एक अभिलेख में नव दुर्गा का उल्लेख हैं जिसकी पूजा तथा मन्दिर के संस्कार के लिए अग्रहार दान में दिया गया था (नव दुर्गायतनाय च पूजा संस्कारार्थम्–ए. इ. १ पृ. १५९) यहां नव दुर्गा का नाम नहीं मिलता पर साहित्य में शैलपुत्री, ब्रह्म-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चारिणी, चन्द्रघटहा, कुष्माण्डी स्कन्धमाता, कात्यायिनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धमाता (नव दुर्गा प्रकीर्तिता) के नाम मिलते हैं। बंगाल में शक्ति की विभिन्न स्वरूप की अनगिनत प्रतिमाएं प्रकाश में आई हैं जिनसे उस प्रदेश में शक्ति-पूजा की प्रधानता का अनुमान लगाया जा सकता है।

पंचायतन पूजा में गणेश को अन्तिम स्थान (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा गणेश) दिया गया है। यों तो हिन्दूधर्म में गणेश की आराधना सर्व प्रथम की जाती है परन्तु लेखों तथा कलात्मक उदाहरणों से गणेश-पूजा का प्रचुर प्रचार नहीं मालूम पड़ता। कई शैव प्रशस्तियों में गणेश, शिव-पार्वती के साथ प्रार्थना में सम्मिलित हैं।

गणेश

वैष्णव अभिलेख भी "ओं गणपतये नमः" से प्रारम्भ होते हैं। आरम्भ के श्लोकों में गणपति की प्रार्थना मिलती है परन्तु उस अभिलेख का मुख्य विषय विष्णु मन्दिर के दान से सम्बन्धित है (ए. इ. भा. १ पृ. २८८)। चन्देल प्रशस्ति में गणेश को विनायक कहा गया है। (ए. इ. ९ पृ. २७९)। विनायक नाम से जैन लोग भी गणेश की पूजा करते रहे जिसका उल्लेख राजकीय लेख में प्रस्तुत किया गया है (ज. इ. हि. भा. १८ पृ. १५८)।

प्राचीन लेखों से धार्मिक वृत्तान्त की जानकारी तो होती है पर यदा-कदा दार्शनिक सिद्धान्तों से भी पा क अवगत हो जाते हैं। दानपत्रों में अधिकतर देवता के नाम (पूजा निमित्त), मन्दिर के अधिकारी (पुरोहित) के नाम अथवा धार्मिक संस्था को भूमि या धन दान का विवरण है जिसकी आय लिखित मार्ग से व्यय की जाती थी (पूजा, संस्कार, भोजन, निवास, औषधि आदि) नासिक लेख में वर्णन आता है कि संचित धन के सूद से ही भिक्षुओं को भोजन या वस्त्र दिया जाता था। कोष के संचित द्रव्य को कभी व्यय नहीं किया जा सकता था। पूर्व मध्ययुग के लेखों का (दानपत्रों को) चिरस्थायी करने के लिए अन्त में श्रापयुक्त या मंगलमय श्लोक लिखवाए जाते थे। उसका एक मात्र कारण यह था कि दानकर्त्ता के उत्तराधिकारियों के मन में भय उत्पन्न किया जाय ताकि वे दान सम्पत्ति को वापस न ले सकें।

षाष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्।

प्राचीन भारत के अभिलेखों का परिशीलन एक विशेष प्रकार के सद्भावना से परिचय कराता है जो भारतीय इतिहास की अद्वितीय घटना है। मौर्य सम्राट् अशोक से लेकर १२वीं सदी के बंगाल नरेश धार्मिक सहिष्णुता की भावना से प्रेरित थे और कभी भी कट्टरपंथी नहीं कहे जा सकते हैं। अशोक ने अपने बारहवें शिलालेख में अदेश दिया

धार्मिक सहिष्णुता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि धार्मिक क्षेत्र में सब को सीमित ढंग से बोलना (वाक्य संयम करना) चाहिए (इयो मुलयं वचागुति) । अपने धर्म की प्रशंसा तथा अन्य मतों की बुराई की उसने निन्दनीय कार्य बतलाया ।

अत पषंड पुज व पर पषंड गरहन---

× × ×

अत पषंड क्षणति पर पषंडस च अपकरोति।

इतना ही नहीं अशोक ने तथा उसके पौत्र दशरथ ने आजीविक मत के साधुओं के लिए बराबर तथा नागार्जुनी पर्वत की गुफाओं (गया जिला) को दान में दिया था। अशोक के विचार तथा कार्य में सामंजस्य पाया जाता है। मौर्य युग के पश्चात् सातवाहन तथा शुंग नरेश ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे परन्तु उनके शासनकाल में अमरावती, सांची तथा भारहुत आदि बौद्ध कलाकेन्द्र विकसित हुए । गौतमी पुत्र शातकर्णी "एक ब्राह्मण" तथा "क्षत्रिय मान मदनस" (क्षत्रियों के मान को नष्ट करने वाला) कहा गया है उसी के शासन में भदावनीय तथा महासंघिक नामक बौद्ध शाखाओं को गुहा दान में दिया गया था। शासकों ने किसी प्रकार की रुकावट पैदा न की। ईसवी सन् के आरम्भ से उत्तर पश्चिम भारत में कनिष्क ने बौद्धमत को अपनाया था परन्तु उसने ईरानी (मित्र), यूनानी (आरदोक्षो), ब्राह्मण (शिव) तथा बौद्ध (बुद्ध) देवताओं के चित्र तथा नाम सिक्कों पर अंकित कराया जिससे उसकी सहिष्णुता का अनुमान किया जा सकता है। गुप्त सम्राटों में भी ऐसा गुण था जिसकी जानकारी उनके लेखों से हो जाती है। विष्णु के पुजारी (परम भागवत) होकर पंचदेव (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा गणेश) पूजा के समर्थक थे तथा अन्य सम्प्रदायों के प्रसार में योग देते रहे। मौखिक सहानुभूति का प्रदर्शन कर गुप्त सम्राटों ने शैव तथा जैनमतानुयायियों को प्रश्रय दिया। बौद्धकला को प्रोत्साहन देने के कारण सारनाथ का कलाकेन्द्र उनके राज्य में ही फूला और फला। द्वितीय चन्द्रगुप्त से लेकर बुधगुप्त तक के लेखों में विहार-दान का वर्णन मिलता है। हर्ष के पूर्वज सूर्य के उपासक थे, वह भी आरम्भिक जीवन में शिव का भक्त था परन्तु बौद्धमत की ओर उसका झुकाव हो गया।

पाल नरेश 'परमसौगत' पदवी से विभूषित थे तथा ताम्रपत्रों के ऊपरी भाग पर 'धर्म चक्र' चिन्ह अंकित है। बौद्ध सम्राटों में धर्मपाल का नाम अग्रणी है। इसने विक्रमशीला महा विहार की संस्थापना की जो वज्रयान का प्रसिद्ध केन्द्र था। धर्मपाल के द्वारा नर नारायण तथा नारायणपाल के द्वारा शिव मन्दिर के निमित्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दान का उल्लेख है। पाल शासन में दान का वर्णन है (खालीमपुर का लेख तथा भागलपुर का दानपत्र)। गहड़वाल राजा गोविन्द चन्द्र की रानी कुमारदेवी बौद्धमत में विश्वास रखती थी, इसलिए सारनाथ में उसने एक विहार बनवाया था। ब्राह्मण मतानुयायी राजा ने स्वयं जेतवन विहार के लिए कई ग्राम दान में दिया था। (ए. इ. ११पृ. २०) इसी तरह चन्देल राजा परम सहिष्णु थे। खजुराहो का विष्णु, शैव तथा जैन मन्दिर उनके धार्मिक सहिष्णुता के जीते उदाहरण हैं। मध्य देश के लेखों में बौद्ध शासकों के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्मानुयायी राजा भी सहिष्णु थे। परममाहेश्वर शैव शासक द्वारा नारायण-पूजा का वर्णन मिलता है। कलचुरी राजा के कसिया लेख में शैव तथा बौद्धमत सम्बन्धी बात एक ही स्थल पर कही गई हैं। "नमो बुद्धाय" तथा "ओं नमो रुद्राय" मन्त्रों से लेख प्रारम्भ होता है। कुछ पदों में शिव और कुछ श्लोकों में बौद्ध तारादेवी की प्रार्थना मिलती है।

पायात्ति पर्व्वे प्रभवभयमिदः शाश्वतं शंकरस्य
विभ्राणा भवतां सुखानि तनुतां तारा त्रिलोकेश्वरी
(ए. इ. १८ पृ. १३०)

११ वीं सदी के मारवाड़ लेख में शिव की प्रार्थना के साथ जैन मन्दिर को दान देने का विवरण पाया जाता है। संक्षेप में यह कहना सर्वथा उचित होगा कि भारतीय नरेशों में धार्मिक सहिष्णुता उच्च कोटि की थी और वैसा आदर्श अन्यत्र नहीं पाया जाता।

मौर्य युग के बाद भारतीय अभिलेखों में यज्ञों का विवरण मिलता है। अशोक के धर्म लेखों में बौद्ध धर्म के विनय का वर्णन है परन्तु तत्पश्चात् सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के साथ यज्ञ सम्पन्न हुए। ईसवी पूर्व सदियों में अयोध्या लेख में पुष्यमित्र द्वारा दो अश्वमेध का उल्लेख है—

वैदिक यज्ञ

कोसलाधिपेन द्विरश्वमेध-याजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य

उसी के समकालीन दक्षिण भारत के सातवाहन लेख में अनेक यज्ञों के नाम आते हैं—अग्न्याधेयः यज्ञः अनारम्भणीय यज्ञः राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, गर्गतिरात्रः यज्ञ, आप्तोर्याय यज्ञः, आङ्गिरसाति रात्रः यज्ञः तथा त्रयोदश रात्रः यज्ञ (नानाघाट लेख)। पश्चिम भारत के क्षत्रप शासक नहपान का जामाता ऋषभदत्त (दूसरी सदी) भारतीय संस्कृति का अनुयायी था। उसने तीर्थ यात्रा, दान आदि कार्यों को प्रोत्साहित किया परन्तु किसी वैदिक यज्ञ का नाम नहीं मिलता। तीसरी शताब्दी के शासक नागवंशी राजाओं के सम्बन्ध में डा. जायसवाल का मत था कि काशी के दशाश्वमेधघाट का नामकरण दश अश्वमेध के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण हुआ। नाग राजाओं (भारशिव) ने वहां यज्ञ किया था। दक्षिण भारत के राजा वीरपुरुषदत्त के लेख में "अग्निष्टोम, वाजपेय तथा अश्वमेध यज्ञों के नाम मिलते हैं (अगिहोतागिठोगिठोभ = वाजपेयासमेघ नागार्जुनी कोण्डा का लेख नं. ३–ए. इ. २० पृ. १६-१९)।

यज्ञ का यही क्रम उत्तरी भारत में भी था। गुप्त युग में समुद्र गुप्त ने अश्वमेध (यज्ञ) किया था जिसका उल्लेख अभिलेख तथा मुद्रालेख में गया है। समुद्रगुप्त के लिए गुप्त लेखों में "चिरोत्सन्नाश्वमेघा हर्तुः" (अश्वमेध को पुनः जीवित करने वाला) तथा वाकाटक वंशी प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र में "अनेक अश्वमेध यात्री" उल्लेख है (ए. इ. १५ पृ. ४१)। कई अश्वमेध की चर्चा संदिग्ध है तथापि एक अश्वमेध की घटना तो मुद्रालेख से सिद्ध होती है। अश्वमेध प्रकार की स्वर्ण मुद्रा पर अग्रभाग में निम्न लेख अंकित है—राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्या हृतवाजिमेधः। पृष्ठ भाग पर–अश्वमेध पराक्रमः लिखा है तथा पट्टमहिषि (कात्यायन श्रौत सूत्र में कथित प्रकार से) यज्ञ के लिए उद्यत है (का. श्रो. सू. २०-७)। पांचवी सदी के वाकाटक राजा प्रवरसेन द्वितीय के लिए चमक ताम्रपत्र में "चतुरश्वमेधयाजिनः" (चार अश्वमेध करने वाला) पदवी का उल्लेख है (का: . इ. ३ पृ. २३६)। इस प्रकार लेखों के अध्ययन से छठी सदी तक यज्ञ करने की बातें ज्ञात हो जाती हैं। बसीम लेख में (मध्य प्रदेश) अग्निष्टोभ, वाजपेय तथा ज्योतिष्टोभ यज्ञों के नाम मिलते हैं (इ. हि. क्वा. १६ पृ. १८२)। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणधर्म के अभ्युदय के साथ वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान भी होने लगा जो क्रम सातवीं सदी तक प्रचलित रहा।

भारत में धर्म को सदा प्रधान स्थान दिया गया है और जनता समाज में धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करती रही है।

धार्मिक कार्य

भोज प्रतिहार के लेख में इस तरह का विचार व्यक्त किया गया है—

प्राणांस्तृणाग्रजलविन्दु समा नराणां
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने

(ए. इ. ११ पृ. १८२)

अशोक ने धर्म-भावना के कारण ही लेखों को उत्कीर्ण कराया था जिसे पढ़ कर लोग उसके धार्मिक विचार से परिचित हो सकें। चौथे शिला लेख में "धमं चरणेन भेरी घोषो अहो धमं घोसो" का उल्लेख है तथा इसी भावना से साम्राज्य विस्तार की इच्छा को अशोक ने परित्याग कर दिया। उसने सारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्य "धर्म यात्रा", "धर्म मंगल", "धर्म शासन" (शिला लेख ८ तथा ९) धर्म के लिए ही पूर्ण किया तथा संसार के धर्म विजय की कल्पना करता था। उसके सम्मुख धर्म दान से बढ़ कर कोई कार्य न था (नथि हेडिषे दाने अदिष धमं दाने शिला लेख ११)। इसी कारण जो कुछ अशोक ने खुदवाया वह सभी (अयं धमं लिपि) धर्म लिपि कहलाया (इयं धमं लिपि लिखापिता–स्तम्भ लेख प्रथम चौथा) सातवाहन लेख भी "धर्माय नमः" की प्रार्थना से प्रारम्भ हुआ है (नानाघाट)। धार्मिक विचार तथा भारतीय संस्कृति के प्रशंसक होने के कारण नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने प्रभास तीर्थ में ब्राह्मण कन्या के विवाह के लिए धन दान में दिया था (प्रभासे पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्य अष्टभार्या प्रदेन– ए. इ. ८ पृ. ७८)।

ईसवी सन् की दूसरी सदी में महाक्षत्रप रुद्रदामन ने अपनी धर्म कीर्ति को बढ़ाने के लिए अपने कोष से पर्याप्त धन व्यय कर बांध बँधवाया था (गो ब्राह्मण हितार्थं धर्म कीर्ति वृद्धयर्थ–ए. इ. ८ पृ. ४२)। रुद्रसिंह प्रथम के गुण्डा लेख में पुण्य के लिए जनहित कार्य का विवेचन है (ग्रामे रसोपद्र के वापी खनिता वन्धापितश्च सर्व सत्वानां हित सुखार्थ मिति–ए. इ. भा. १६ पृ. २३५)। गुप्त युग में सभी धर्म से प्रेरित होकर कार्य करते थे।

तस्मिन्नृये शासति नैव कश्चि
द्धर्म्मादपेतो मनुजः प्रजासु

(स्कन्द का जूनागढ़ लेख–का. इ. इ. ३ पृ. ५८)

छठी सदी के फरीदपुर ताम्रपत्र (बंगाल) में निम्नलिखित वर्णन है—

धर्म षड्भागलाभः तदे तां प्रवृत्तिमधिगम्य
न्यासाधा स्वपुण्यकीर्ति संस्थापन कृताभिलाषस्य

यथा संकल्याभि तथा कृपाधृत्य साधनिक वतभोगन द्वादश दीनारानग्रतो दत्ता (मुकुर्जी सिल्वर जुबिली वालुम भा. ३ पृ. ४७५)।

तात्पर्य यह है कि धर्म की भावना ही सभी पुण्यकार्यों के मूल में निहित थी।

जो कुछ कार्य किया जाता था उसमें सांसारिक वैभव की कामना न रहती परन्तु पुण्य लाभ के लिए दान दिए गए थे। अशोक ने स्तम्भ का निर्माण धर्म-शासन के प्रसार के लिए किया। शुंग कालीन स्तूप तथा

मंदिर निर्माण

वेदिका पर अंकित लेख उसी भावना को पुष्ट करते हैं। वेस नगर स्तम्भ लेख में हेलियोडोरस द्वारा स्तम्भ निर्माण भी उसी भावना का द्योतक है– देव देवस वासुदेवस गरुणध्वजे अयं कारिते

(मूल पृष्ठ २४)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ईसवी पूर्व लेखों में चैत्य तथा गुहा निर्माण का विस्तृत विबरण नहीं मिलता परन्तु "अयं कारितं" वाक्य से निर्माण कार्य का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ–अरहतं पसादाय कलिंगानं समनानं लेनं कारितं (कलिंगदेश के जैन साधुओं के लिए गुहा बनाया–मंचपुरी गुहा लेख) बौद्ध लेखों में अनेक उल्लेख आते हैं। गुप्त कालीन अभिलेखों में मन्दिर निर्माण तथा संस्कार का विवरण उपलब्ध है—

श्रेणी भूतैर्भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मेः

(प्रथम कुमार गुप्त की मंदसोर लेख–मूल पृ. ६१)

खण्ड फुट्ट प्रति संस्कार करणाय (ग्रणैधर लेख–मूल पृ. ७८) ।

गुप्त युग में पांचरात्र संहिता में क्रिया तथा चर्या पर अधिक बल दिया गया जिस कारण धार्मिक कार्य दो विभिन्न मार्गों पर प्रवाहित हुए। दान के व्यय का तीसरा मार्ग सत्र था जहां निःशुल्क भोजन वितरित किया जाता था।

(१) पहला मन्दिर का निर्माण या संस्कार

(२) देव पूजा तथा तत्सम्बन्धी दान।

(३) सत्र (प्रशस्तियों में उल्लिखित)

इस काल के अभिलेखों में सभी कार्यों का उल्लेख अधिकतर मिलता है। गहड़वाल नरेश के कमौली प्रशस्ति में आदि केशव के मन्दिर निर्माण का वर्णन है (ए. इ. ४ व ८)। गुर्जर प्रतिहार राजा भोज ने विष्णु का मन्दिर तैयार किया था तथा उससे पूर्व वाउक ने सिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था।

राज्ञा तेन स्वदेविना यशः पुण्याभि वृद्धये
अन्तःपुर-पुरं नाम्ना व्यधापि नरकद्वीषः

(ए. इ. १८ पृ. ११०)

सिद्धेश्वरो महादेवः कारित स्तुंग मन्दिरः

(वही १८ पृ. ९६)

परमार वंशी राजा चामुण्डराज के अभिलेख शिव मन्दिर के निर्माण का उल्लेख करते हैं (ए. इ. १४ पृ. २९८)। चन्देल प्रशस्तियों में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है (नीलकण्ठाधिवास)।

प्रासादो वैष्वस्तेन निर्मितोन्तर्व्वहन्हरिम्

(ए. इ. १ पृ. १२१ व १२८)

ऐसे अनेक उल्लख खजुराहो की प्रशस्ति से ज्ञात हैं। एक उदाहरण देखिए (ए. इ. १ पृ. १२९)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ते नैतच्चारू चामीकर कलसलसद्व्योम धाम व्यधायि
भ्राजिष्णु प्रांशुवंशध्वज पटलां दोलितां भोज वृदम्
दैत्यारातेस्तुषार क्षितिधर शिखर स्पर्द्धिवर्विष्णु रागा
दृष्टे यात्रा सु यत्र त्रिदिववसतयो विस्मयन्त्ते समेताः ।

कलचुरी लेखों में ऐसे उदाहरण हैं जिनसे प्रकट होता है कि शासकों ने विभिन्न स्थानों पर शिव मन्दिर का निर्माण किया था (ए. इ. २६ पृ. २६२-९) ।

(अ) सुधाशु धवलं तत्र धूर्ज्जटे धाम निर्मितम्
(ब) प्रकाशितुं तादृशमेव कारितं विभोरिदं धाम हरेः सनातनम् ।

इलौरा के कैलाशनाथ गुहा मन्दिर का निर्माण राष्ट्रकूट राजा तृतीय कृष्ण-राज ने किया था तथा लेख से उसका स्पष्टीकरण हो जाता है। बंगाल की प्रशस्तियों में पाल तथा सेन शासकों द्वारा मन्दिर निर्माग का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। धर्मपाल ने नर-नारायग का मन्दिर तैयार कर चार ग्राम दान में दिया था (ए. इ. ४ पृ. २५०) । नारायणपाल ने अत्युक्ति पूर्ण उल्लेख किया है कि सहस्र शिव मन्दिरों का निर्माण उसके हाथों किया गया—महाराजाधिराज श्री नारायणपाल देवेन स्वयं कारित सहस्रायतनस्य (भागलपुर लेख–इ. ए. १५) सेन नरेश विजयसेन ने प्रद्युम्नेश्वर का विशाल शिव मन्दिर तैयार कराया ।

स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासव सौध मुच्चैः
(ए. इ. १ पृ. ३१०)

१२ वीं सदी तक बंगाल में वैष्णव मन्दिर के निर्माण का पता चलता है (ए. इ. १३ पृ. २५) । इस तरह अभिलेखों का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि पुण्य तथा यश की भावना और धार्मिक विचार से प्रेरित होकर राजा तथा जनता मन्दिरों का निर्माण करती रही।

संस्कार

नवीन मन्दिर के अतिरिक्त पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार और संस्कार भी उसी तरह पुण्य का काम समझा जाता था। अभिलेखों में "खन्ड स्फुट संस्कार" शब्दों का प्रयोग उस कार्य के लिए मिलता है। यदि मन्दिरों का इतिहास देखा जाय तो पता चलता है कि गुप्त युग से मन्दिर कला का प्रारम्भ तथा विकास हुआ इसलिए उसी युग से देवालय के संस्कार का भी प्रश्न सम्मुख आता है। गुणै-घर तथा दामोदरपुर ताम्रपत्रों में "खन्ड स्फुट प्रति संस्कार करणाय" (इ. हि. क्वा. ६ पृ. ५३) तथा श्वेत वराह स्वामिनो देवकुले खन्ड स्फुट प्रति सस्कर करणाय (ए. इ. १५ पृ. १४२) का उल्लेख है। वैग्राम (५ वीं सदी) तथा खोह ताम्रपत्रों में भी एक समान (खन्ड स्फुट संस्कारार्थं) वर्णन आता है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ए. इ. २१ पृ. ८१ तथा का. इ. इ. ३ पृ. ११४) ।

७वीं सदी के पश्चात् प्रशस्तियों में संस्कार का अधिक वर्णन है जिससे जनता के धार्मिक कृत्य का अनुमान लगाया जा सकता है। राजपुताने के लेख ऐसे विवरण से भरे पड़े हैं। साधारणतया दान में इस बात का उल्लेख किया जाता था कि पूजा व्यय के अतिरिक्त मन्दिर के संस्कार में शेष द्रव्य व्यय किया जाय। इसलिए मन्दिर प्रबन्ध समिति को यह कार्य सुपुर्द कर दिया जाता था। गुप्त युग के अधिकतर लेखों में ऐसा वर्णन है। छठी सदी के पश्चात् लेख भी ऐसा विवरण उपस्थित करते हैं—एतेषां स्थाव-राणां भाटकं यत्मुत्पद्यते ते तत्सर्वं गोष्टिभिः कुंकुम धूम पुष्प दीपक ध्वजा धवला पर्न खन्ड स्फुटित समरचनादिषु धर्मोपयोग्यं कर्त्तव्यम् (ए. इ. १९ पृ. ६२) ११ वीं तथा १२ वीं सदी के लेखों में मन्दिरों के नष्ट किए जाने के कारण अधिक विवरण मिले हैं। सम्भवतः इस्लाम के उत्थान तथा विस्तार के कारण राजपुताने में मन्दिरों की हानि हुई और शासकों ने उनका संस्कार किया। परमार वंश की रानी ने मन्दिर संस्कार के लिए पर्याप्त धन दान किया। (ए. इ. ९ पृ. १३)।

नए मन्दिरों के निर्माण के साथ-साथ देव पूजा के लिए दान देना आवश्यक था, अतएव अभिलेखों में पूजा के प्रकार तथा विभिन्न सामग्रियों के नाम मिलते हैं। अभिलेख के आरम्भ में मन्त्रों के उल्लेख से शिव, विष्णु या बुद्ध की उपासना का ज्ञान होता है। "ओं नमो भगवते वासुदेवाय", "ओं नमो शिवाय" अथवा "नमो बुद्धाय" आदि मंत्र मिलते हैं। लेखों में अनुलेपन, पुष्प, धूप दीप तथा नैवेद्य आदि सामग्रियों की आवश्यकता पूजा के लिए बतलाई गई है। देवता को त्रिकाल स्नान (ए. इ. २५ पृ. ६ : भा. ३ पृ. २६६) कराया जाता तथा जल, घी, दही, दूध (पंचामृत) का प्रयोग इस कार्य के लिए होता था (दधि क्षीर घृत स्नपन-गंध धूप दीप पुष्पार्चन—ए. इ. १३ पृ. ११६) तत्पश्चात् चन्दन, कर्पूर, कुंकुम पुष्प धूपदीप नैवेद्य की आवश्यकता होती थी। चहमान लेखों में इसे अंगराग तथा अनुलेपन शब्दों से व्यक्त किया गया है (का. इ. इ. भा. ४ पृ. १५०; भा. ३ पृ. २६४, ए. इ. भा. २१ पृ. ११७, इ. ए. १४ पृ. १६०) ।

देव पूजन

देवस्यवलेचन संमार्जनाङ्ग राग धूप दीप नैवेद्यार्थ
(ए. इ. १ पृ. १७३)

अंगभोगे अगरु कर्पुर कुंकुम (ए. इ. ११ पृ. ५७)

चहमान लेख में नैवेद्य के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। नैवेद्य, घी, आटा, मूंग तथा चावल पका कर तैयार किया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोधूम शे २ पक्के घृत क ८ नैवेद्य मूँग मा १ चाषा २ (ए. इ. ११ पृ. ५७) आटा २ सेई घी ८ कलस मूँग १ मनि चावल २ पायली माप के बराबर नैवेद्य के लिए प्रयोग में आता था। पाल तथा कलचुरी लेखों में नैवेद्य के साथ वलिचरु का उल्लेख आता है जो सम्भवतः अंगराग तथा अनुलेप से तात्पर्य रखता था (ए. इ. १ पृ. १७३; भा. ११ पृ. १९३)। अन्य लेखों के अध्ययन से पता चलता है कि पुष्प गंध धूप दीप नैवेद्य का प्रयोग जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बी भी प्रयोग करने लगे थे। चाहमान लेख में निम्न वर्णन आता है—
नेमिनाथ देवस्य धूप दीप नैवेद्य पूजा (ए. इ. ११ पृ. ३५)। पहाड़पुर लेख में 'विहारे भगवतामर्हतां गन्ध धूप सुमनो दीपाद्यर्थम् (ए. इ. २० पृ. ६१) का उल्लेख है तथा वैन्यगुप्त के लेख में "भगवतो बुद्धस्य सततं त्रिकाल गन्ध पुष्प दीप धूपादि प्रवर्तनाय" (इ. हि. क्वा. ६ पृ. ५३) के वर्णन से पता चलता है कि बुद्ध भगवान के पूजा में ब्राह्मण देवता को सदृश अंगराग का प्रयोग होन लगा था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण रीति का प्रभाव जैन तथा बौद्ध-मतों पर हो गया था तथा देवपूजन की विधि में समता आ गई थी।

सत्र की स्थापना

उत्तर गुप्त युग के लेखों में एक विशेष संस्था का उल्लेख मिलता है जिसे सत्र कहते थे। इस स्थान पर विद्यार्थियों, साधुओं तथा निर्धन व्यक्तियों को बिना मूल्य भोजन वितरण किया जाता था। दान पत्रों में सत्र का उल्लेख विभिन्न रूप में पाया जाता है। धर्मसत्र, सत्र तथा अन्नसत्र। उससे यह प्रकट होता है कि मन्दिर तथा बिहार से सम्बद्ध ही सत्र का प्रबन्ध था। प्रासादाग्रभिरूपं गुणवर भवनं धर्म-सत्रं यथावत् – (प्रथमकुमार गुप्त का भिलसद लेख) ११ वीं सदी के लेखों में सत्र निर्माण का स्पष्ट वर्णन है—
भक्तशाला क्षुधार्थानां महादेवस्य संनिधौ – बल्लभदेव की प्रशस्ति (ए० इ० भा० ५ पृ० १८१, ए० इ० भा० १३ पृ० २८५)
९ वीं सदी से १२ वीं सदी तक के अभिलेखों में सत्र, वलि, चरु शब्दों के साथ प्रयुक्त है जिसका तात्पर्य यह है कि दान की सम्पत्ति पूजा, अर्चा तथा भोजन वितरण के लिए व्यय की जाती थी (वलिचरु नैवेद्य सत्रोपकरण हेतो पृथग्दत्तः– ए० इ० भा० ११ पृ० १९३) उसी स्थान पर वर्णन है कि सत्र के व्यय निमित्त दान का एक भाग निश्चित कर दिया गया था (एसां भागास्त्रयः सत्रे खण्ड स्फुटित संस्कृतौ–कलचुरि प्रशस्ति)। विपुल श्री मित्र के नालंदा लेख में सत्र के लिए दान का वर्णन है —

(सत्रेषु पर्व्वणि समर्प्पयतिस्म—ए० इ० २१ पृ० ९९)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कलचुरि प्रशस्ति में सत्र में स्वादिष्ट भोजन वितरण की चर्चा की गई है (मिष्ठान्नं पान सम्पन्ना सर्व सत्री–वही पृ० १६५)। प्रतिहार लेख (ए० इ० १४ पृ० १७७) तथा चाहमान प्रशस्ति में भी वैसा ही वर्णन है (सतत मुचित वृत्तिः कल्पयित्वान्न सत्रम्–ए० इ० १३ पृ० २९०) मध्ययुग में सत्र की स्थापना से भिक्षा वृत्ति को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया था। आज भी वाराणसी में छत्र (सत्र का विकृत रूप) में सैकड़ों व्यक्तियों को भोजन बांटा जाता है।

गोष्ठी या प्रबंध-समिति

धार्मिक कार्य का वर्णन समाप्त करने से पूर्व मन्दिरों की प्रबंध समिति के बारे में दो शब्द कहना आवश्यक है। समिति के लिए लेखों में गोष्ठी तथा सदस्य के लिए 'गोष्ठिक' शब्द प्रयुक्त हैं (ए० इ० भा० १ पृ० २९२, भा० १९ पृ० ५७)
गोष्ठिक समुदाय समन्वितेन
गोष्ठिकः सारा कार्या (ए० इ० ११ पृ० ५४)

चाहमान लेखों में सारा प्रबन्ध गोष्ठिक द्वारा करने का वर्णन आता है––

ऐते च भागा यथोदिष्ट स्थित्या गोष्ठिकै कल्पयितव्या (ए० इ० १ पृ० १८८)

उनके सदस्यता के सम्बन्ध में विशेष कहा नहीं जा सकता पर मथुरा लेख में उल्लिखित नामों से पता चलता है कि स्यात् ११ व्यक्तियों की समिति होती थी (ए० इ० ११ पृ० २९२)। मेवार के लेख में गोष्ठी के हूण सदस्य का नाम आता है (इ० ए० ५८ पृ० १६१)। इससे पता चलता है कि समाज में प्रतिष्ठित व्यक्तियों को गोष्ठी का सदस्य (गोष्ठिक) बनाया जाता था। आर्य संस्कृति के पालक लोगों को उसमें सम्मिलित किया जाता था। कालान्तर में मन्दिर का प्रबन्ध पुजारी के हाथों आ गया। वह मन्दिर के समस्त सम्पत्ति (भूमि तथा धन) का मालिक बन बैठा। मध्ययुग से वही मठाधीश कहलाया जो वर्तमान समय तक धार्मिक सम्पत्ति का स्वामी है। मठाधीश तो अकेले सारा प्रबन्ध करता था। प्रतिहार के राजा महेन्द्रपाल के लेख में एक सन्यासी के हाथों दुर्गा तथा सूर्य मन्दिरों के प्रबन्ध का विवरण पाया जाता है (ए० इ० १४ पृ० १७७)। उसी तरह पाशुपत साधु भी प्रबन्धक हो गया था। परमार भोज के विलेश्वर ताम्रपत्र में भी ऐसी ही चर्चा मिलती है (ओ० का० प्रो० पूना पृ० ३१९)। सारांश यह है कि मन्दिर निर्माण के बाद देवपूजन का कार्य तथा दान प्रबन्ध-समिति या किसी व्यक्ति (पुजारी या प्रधान साधु) द्वारा सम्पन्न होने लगा।

अभिलेखों का वर्गीकरण करते समय यह कहा जा चुका है कि अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दान का उद्देश्य तथा प्रकार

संख्या दानपत्रों की है। यों तो दान की महिमा पुराणों में वर्णित है परन्तु स्मृतियों में इसका विशेष वर्णन है। वृहस्पति ने निम्न रूप में लिखा है —

यत्किंचित कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः
अपि गोचर्म मात्रेण भूमि दानेन शुध्यति।
स नरः सर्वदा भूपः यो ददाति वसुन्धराम्
भूमिदानस्य पुण्येन फलं स्वर्गं परंदर।

इस प्रकार विभिन्न धार्मिक कार्यों में भूमिदान को अधिक महत्व दिया गया। राजा से प्रजा तक सभी ने पुन्य लाभ तथा स्वर्ग कामना से प्रेरित होकर भूमिदान को श्रेष्ठ समझा। अत्रि का कथन था "शूलपाणिस्तु भगवानभिनन्दन्ति भूमिदम् (संहि० ३३७) पृथिवी दान करने वाले को भगवान भी अभिनन्दन करते हैं। इन सभी कारणों से दान की ओर सदा से जनता का ध्यान रहा है। अशोक ने धर्म शासन में इस पर जोर दिया है।

ब्राह्मण स्रमणानां साधुदानं (शि० ले० ११)
प्रव्रजितनि ग्रहृथनिच पूजेति दनेन (शि० ले० १२)
वहुकयाने दयादाने (स्त० ले० २)

बौद्ध युग में बिहार दान की ओर शासक का विशेष ध्यान था तथा ग्रामदान भिक्षुओं के भोजन आदि कार्यों के लिए दिया जाता था। अतएव 'गामे दतानि' का उल्लेख नासिक लेख में किया गया है। इसी प्रकार ब्राह्मण भोजन के निमित्त भी दान दिए जाते थे।

ब्राह्मणेभ्यः षोड़श ग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण शतसाहस्त्री भोजाययित्वा
(नासिक लेख ए० इ० ८ पृ० ७८)

सातवाहन लेख में यज्ञ की दक्षिणा में ग्रामदान देने का वर्णन है।

पूर्व मध्ययुग के लेखों में ग्रामदान को तुलापुरुष दान की दक्षिणा स्वरूप माना गया है। गहणवाल तथा सेन अभिलेखों में अधिकतर इस प्रकार की दक्षिणा का विवरण मिलता है (महादान दक्षिणा –ए० इ० १४ पृ० १५८)। गोविन्द चन्द्रदेव (गहड़वाल नरेश) ने ३२ ग्राम दक्षिणा के रूप में दिया था (कनक तुलापुरुष दान होम कर्मण दक्षिणा–ए० इ० १४ पृ० १९७) सेन राजा वत्सालसेन तथा लक्ष्मणसेन ने महादान की दक्षिणा में अग्रहार दिया था (ए० इ० १२ पृ० १०, भा० १५ पृ० २८४)। गुप्त लेखों में देवकार्य के लिए दान का विवरण प्रशस्तियों में मिलता है। स्कन्द गुप्त के बिहार स्तम्भ लेख में ग्राम दान का उल्ले है (अक्षय नीवि ग्राम क्षेत्रं–का० इ० इ० ३ पृ० ४९)। दामो-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दरपुर के ताम्रपत्रों में भूमि विक्रय कर मन्दिर के लिए दान करने का वर्णन है। (ए० इ० भा० १५) दक्षिण भारत के लेख इसी प्रकार का विवरण उपस्थित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दान का उद्देश्य स्वर्ग की प्राप्ति थी जिसे प्रायः सभी लेखों के अन्त में अंकित कराया जाता था।

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यस्यभूमिं प्रयच्छति
उभौ तौ पुण्यकर्मणौ नियते स्वर्ग गामिनौ।

भूमिदान करने की घोषणा शासक करता था और समस्त पदाधिकारियों की इसकी सूचना देता था। इसी कारण प्रशस्तियों में कर्मचारियों की लम्बी सूची मिलती है (ए० इ० भा० ४, १४, १८)। दान देने वाली भूमि की सीमा निश्चित कर दी जाती तथा दानग्राही को सारा कानूनी अधिकार भी मिल जाता था। परमार, गहड़वाल तथा पाल वंशी लेखों में इस प्रकार का वर्णन है (ए० इ० १८ पृ० ३२०; भा १४ पृ० भा० १५ पृ० २९९)।
"सहिरण्य भाग भोगकर सोपरिकर सर्वादाय समेत सनिधि निक्षेप" का उल्लेख यह स्पष्ट कर देता है कि राजा के सदृश 'कर' ग्रहण करने तथा खान खोदने का अधिकारी दानग्राही ही था (ए० इ० ९ पृ० ११२ भा० ७ पृ० १०६)। उड़ीसा के एक लेख में इसका अपवाद प्रकट होता है उस लेख में 'कर शासन' का उल्लेख किया गया है जिसका तात्पर्य था कि दानग्राही को भूमिकर (लगान) देना पड़ता था। वहां दस पल तौल में चांदी 'कर' के रूप में ली जाती थी (ए० इ० २९ पृ० १६७)।

स्मृति ग्रन्थों में जिस रूप में दान का विधान उल्लिखित है, वैसा ही प्रशस्तियों में वर्णित है। स्थान के सम्बन्ध में तीर्थ ही सर्वोत्तम समझा जाता था और इसी कारण देवपाल के मूँगेर ताम्रपत्र में तीर्थेषु-

देश काल पात्र

धर्म्याः क्रिया (ए० इ० १८ पृ० ३०५) का उल्लेख है। गहड़वाल लेख में काशी, प्रयाग, अयोध्या आदि तीर्थों के नाम मिलते हैं। श्रीमद् वाराणस्यां गंगाया स्नात्वा (ए० इ० ४; भा० ८ पृ० १५४) तथा स्वर्गद्वार नाम्नि तीर्थे स्नात्वा (ए० इ० १४ पृ० १९३) का उल्लेख यह बतलाता है कि तीर्थों में स्नानकर देवपूजा समाप्त कर दान दिया जाता था।

काल के सम्बन्ध में मध्यकालीन अभिलेखों का उल्लेख विशेष महत्व रखता है। यों तो कुछ सामाजिक संस्कार नामकरण (इ० ए० १८ पृ० १३०) या श्राद्ध (इ० ए० १९ पृ० ३५१, भा० ४ पृ० १०३, भा० २ पृ० ३१०) के नाम आते हैं जिस अवसर पर शासक दान देता था परन्तु अधिकतर पुण्य तिथियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर ही दान देना यश तथा पुण्य लाभ का मार्ग समझा जाता था। सूर्य ग्रहण (राहु ग्रस्ते दिवाकर–ए० इ० ४ पृ० १५८, भा० २१ पृ० २१९) का उल्लेख गहड़वाल, परमार तथा कलचुरी (सूर्योपरागे–ए० इ० ९ पृ० १६९) प्रशस्तियों में तथा चन्द्रग्रहण (सोमग्रहण या सोमग्रहण पर्वणि) का नाम चन्देल लेखों में आता है (इ० ए० १६ पृ० २०१) दूसरा अवसर संक्रान्ति का था जिसे लेखों में अयन (उत्तरायन, दक्षिणायन) शब्द से व्यक्त किया गया है (ए० इ० ७ पृ० १५८, इ० ए० १८ पृ० ११)। कलचुरी प्रशस्तियों में चन्द्रग्रहण के अवसर पर दान का विशेष वर्णन मिलता है (का० इ० इ० ४ पृ० २३८)। संक्रान्तियों में कर्क, मकर, कन्या, मीन, वैष्णव संक्रान्ति के नाम अधिक मिलते हैं (इ० ए० १८ पृ० ३३, ए० इ० ४ पृ० १३१, भा० १४ पृ० १८६, भा० २९ पृ० ७)। छोटे पर्वों पर भी दान देने का उल्लेख है। उस प्रसंग में अक्षय तृतीया, माघी पूर्णिमा (ए० इ० ४ पृ० १०७, भा० ८ पृ० १५२) श्रावण पूर्णिमा (ए० इ० ४ पृ० ११०), कार्तिक पूर्णिमा (ए० इ० २६ पृ० ७२), रामनवमी (ए० इ० १४ पृ० १८८) तथा जन्माष्टमी (ए० इ० ४ पृ० ११८) के नाम भी उल्लेखनीय हैं। देवोत्थान अथवा प्रबोधिनी एकादशी (कार्तिक शुक्ल ११) का नाम भी लेख में उपलब्ध है (देवोष्ठनी एकादश्यां –इ० ए० ४३ पृ० १९३ तथा एकादसि देव उपस्थापनी पर्व्वणि–ए० इ० १३ पृ० २११) । राजपुताने के लेखों में अधिक श्रावण (आर्यमास) भी उल्लिखित है (इ० ए० १८ पृ० २१२, आ० रि० ग्वालियर १९३०-३१ पृ० ११)। इन तिथियों को पुण्य-काल समझ कर दान दिए जाते थे।

दान के पात्र के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। ताम्रपत्रों का अध्ययन यह प्रकट करता है कि अत्यन्त प्राचीन समय से ही किसी संस्था को दान देने का अधिक महत्व था। मौर्य युग तथा उसके बाद भी संघ को बिहार या गुहा का दान दिया जाता था। सातवाहन लेख तथा गुप्त युग के अभिलेख संस्था के दान का उल्लेख करते हैं। ६०० ई० के बाद दान के दो पात्र दिखलाई पड़ते हैं (१) विद्वान तथा (२) संस्थाएं। पहला विद्वान व्यक्ति जो ऊंची शिक्षा पा रहा हो अथवा शिक्षा समाप्त कर अध्यापन कार्य करता हो। इस प्रसंग में अधिकतर ब्राह्मणों के नाम वैदिक शाखा के साथ या वेदांग के अध्यापक के रूप में मिलता है। कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर उत्तर प्रदेश) में ऐसे ही ब्राह्मण दानग्राही के नाम आते हैं जो छान्दोग्य वाजसनेय, माध्यन्दिन शाखा के विद्वान थे। मध्यप्रदेश के कलचुरी प्रशस्तियों में आश्वलायन, शांखायन, कठ शाखा के अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ए० इ० भा० ७ पृ० ८७; भा० ९ पृ० ११६) मालवा के लेख में आश्वलायन तथा कौथुम शाखाओं वाले ब्राह्मणों का वर्णन मिलता है। राजा भोज के दौलतपुर ताम्रपत्र तथा गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र की प्रशस्ति में उन सभी शाखा के पढ़ने वाले विद्वान ब्राह्मणों के नाम मिलते हैं जिन्हें शासक ने भूमिदान किया था (ए० इ० ५ पृ० ११२; भा० ८ पृ० १५४)। जयचन्द्र के लेख में यजुर्वेद शाखिने ब्राह्मण का विवरण है (ए० इ० ४ पृ० १२१)। इसी प्रकार बंगाल के पाल राजा देवपाल के लेख में "ऋग्वेद शाखिने" उल्लिखित है और वह दानग्राही ब्राह्मण आश्वलायन शाखा का विद्यार्थी कहा गया है (इ० ए० २१ पृ० २५५)। विग्रहपाल के दानग्राही अर्कदेव शर्मन सामवेदिन कहा गया है (ए० इ० १५ पृ० २९५)। सेन शासकों के समय में चारों वेदों के विभिन्न शाखाओं के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को दान देने की परिपाटी थी। वैरकपुर लेख तथा नईहटी ताम्रपत्र में ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा, साम की कौथुम शाखा, यजुर्वेद की काण्व शाखा तथा पिप्पलाद शाखा (अथर्ववेद) के नाम उल्लिखित हैं। इन शाखाध्यायिने ब्राह्मणों को दान दिए गए थे। (ए० इ० १५ पृ० २८४; भा० १४ पृ० १५६; भा० २२ पृ० ६ इ० हि० क्वा० ३ पृ० ८९, ज० ए० सो० वं० १९०० पृ० ६१ तथा १९०९ पृ० ४६७) इस तरह पता चलता है कि वल्लालसेन तथा लक्ष्मणसेन ने विद्वान ब्राह्मणों को ही दान दिया था। ऐसा वर्णन भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश की प्रशस्तियों में मिलता है। शाखाध्यायिने लिखकर दान देने वाले ने इस बात पर जोर दिया है कि ऊंची श्रेणी के विद्वान ही दान के वास्तविक पात्र थे (ए० इ० ११ पृ० १९२)। इसका तात्पर्य यह नहीं था कि वेदाध्ययन करने वाले ही दान के पात्र थे परन्तु वेदांग, (ए० इ० २ पृ० ३३६) या षड्दर्शन (ए० इ० ११ पृ० ३११) के पढ़ने वाले भी दानग्राही होते थे। पाल वंशी लेख में तो रानी को महाभारत सुनाने वाले विद्वान को दान देने की चर्चा है (ज० ए० सो० व० ६९ पृ० ६७)।

विद्वान व्यक्तियों के अतिरिक्त मध्य युग में बड़ी संख्याओं को भी दान देने की प्रथा थी। पाल नरेशों ने विक्रमशीला तथा नालंदा महाविहारों को सब प्रकार की सहायता की थी। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी का लेख (ए० इ० ९ पृ० ३२१) तथा देवपाल का ताम्रपत्र (ए० इ० १७ पृ० ३१०) इसके प्रमाण हैं कि बौद्ध संस्थाओं को आर्थिक सहायता दी गई। नालंदा महाविहार की तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। यशोवर्मदेव के शिलालेख में वहां के विद्वानों की प्रशंसा निम्न पंक्तियों में मिलती है--

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नालंदा हंसतीव सर्व नगरी शुभाभ्र गौर स्फुर
च्चैत्यांशु प्रकरोस्सदागमकला विख्यात विद्वज्जना ।
(ए० इ० २० पृ० ४३)

इसकी ख्याति समुद्रपार पूर्वी द्वीप समूह में पहुंच चुकी थी तथा जावा के राजा बालपुत्रदेव ने नालंदा में विहार बनवाया (नाना सद्गुण भिक्षु संघ वसति तस्या विहारः कृतः) और पाल नरेश देवपाल ने श्रीनगर मुक्ति में स्थित पांच ग्राम दान में दिया था (ए० इ० १७ पृ० ३२२) । नालंदा शिलालेख में वर्णन मिलता है कि दान की आय से भिक्षुओं के भोजन, वस्त्र, आसन तथा औषधि का भी प्रबन्ध किया गया था (ए० इ० २० पृ० ४४) । इस तरह संस्था को दान देकर शिक्षा की वृद्धि की जाती थी । इसी के सदृश दक्षिण भारत के चोलवंशी लेख में वर्णन है कि जावा के शासक विजयोत्तुंग वर्मन ने नागपट्टन में एक विहार बनवाया जिसके प्रबन्ध-निमित्त चोल नरेश राजराजा राजकेसरी वर्मन (९८५–१०१३ ई०) ने ग्राम दान दिया था ।

पांचवीं सदी के पश्चात् लेखों के अंत में कई श्लोक उल्लिखित मिलते हैं जिन्हें "धर्मश्लोकाः" कहते हैं । गुप्त युग से पूर्व अभिलेखों में अंतिम स्थान पर किसी प्रकार के पद्य (श्लोक) का सदा अभाव दिखलाई

धम श्लोक

पड़ता है । इनके लिखने का उद्देश्य यह था कि दान करने वालों की प्रशंसा हो । उन्हें पुण्य तथा स्वर्ग लाभ की बातें सुनाई जायँ । दान-भूमि को किसी भी शासक का उत्तराधिकारी वापस न ले सके, अतः भय उत्पादक श्लोक भी लिखे जाते थे । सारांश यह है कि अंतिम पद्यों में पुण्य तथा श्राप की भावनापूर्ण श्लोक अंकित हैं । लेखों में जो श्लोक हैं उनके सम्बन्ध में निम्न प्रकार का उल्लेख मिलता है—

(१) भूमिदान सम्वद्धाः श्लोका भवन्ति (ए० इ० १५ पृ० १४२)
(२) भवन्ति चात्र धर्मशास्त्राश्लोकानि अथवा
(३) भूमिदानापहरण प्रतिपाल गुण दोष व्यञ्जका आर्ष श्लोकाः (ए० इ० २२ पृ० १५९)

पांचवीं सदी के गुप्त लेखों में तो इन श्लोकों की संख्या तीन ही है परन्तु समयान्तर में सोलह की संख्या अभिलेखों में पाई गई है (कलचुरी राजा यशः कर्णदेव का ताम्रपत्र–ए० इ० १२ पृ० २०५ तथा चाहमान प्रशस्ति (ए० इ० भा० ११ पृ० ३१२) ।

इन श्लोकों में कोई मौलिकता नहीं है परन्तु ये पद्य स्मृति ग्रंथों से लिए गए हैं । अधिकतर लेखों में व्यास का लिखा "व्यासेन उक्तम्" "उक्ते च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगवता वेद व्यासेन महात्मना" अथवा "वेद व्यासेन गीता श्लोकाः भवन्ति" पद्य कहे गये हैं (ए० इ० २१ पृ० ८२; भा० २० पृ० ६३, भा० १५ पृ० १३९; इ० हि० क्वा० ६ पृ० ६३)। यदि इन धर्म श्लोकों का अध्ययन किया जाय तो प्रकट होता है कि कुछ वृहस्पति स्मृति (२६, २८, ३०, ३२, ३३ व ३९) से उद्धृत हैं। उनमें निम्न तीन श्लोक सारे लेखों में बिना परिवर्तन के मिलते हैं यानी समस्त लेखों में एक समान है (गुप्त, कलचुरी, गहड़वाल, परमार, पाल सेन आदि वंश)।

स्वदत्ता परदत्तां च यो हरेत वसुन्धरां
स विष्ठायां क्रमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते।
बहुभि वसुधादत्ता राजभिस्सगरादिभिः
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं
पष्टि वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदति।

इन श्लोकों का आरम्भ विषय विवादास्पद है। जैसा कहा गया है कि कुछ लेखों में इसे व्यास का कथन कहते हैं तो कुछ में पौराणिक श्लोक (ए० इ० ४६ पृ० ९०) या तथा चोक्तं धर्म शास्त्रे (ए० इ० ४ पृ० २५९) कह कर अनिश्चित छोड़ दिया गया है।

प्राचीन लेखों का अध्ययन स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि भूमि दान अक्षयनीवि प्रणाली से दिया जाता था। दानग्राही का उस भूमि पर सारा अधिकार हो जाता जिस पर शासक का स्वामित्व था। उस भूमि की आय को ही उपभोग किया जाता था और उस क्षेत्र को बेचने का अधिकार दानग्राही को न था। नासिक के लेख में इस तरह का उल्लेख पाया जाता है।

अग्रहार का बंधक तथा कर-शासन

(ऐते च काहापणा अपडिदातवा वधि भोजा)

समाज में उसे पुण्य क्षेत्र समझा जाता तथा दानग्राही के वंशज उसकी आय को ही व्यय करते थे। मध्य प्रदेश के कलचुरी नरेश त्रैलोक्य मल्लदेव (१२ वीं सदी) के लेख में दानभूमि को बंधक रखने का विस्तृत विवरण पाया जाता है तथा उसे "वित्त बंध" कहा गया है। शैव साधु शांति शिव द्वारा ऋण के धन का उल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु बंधक का वर्णन मिलता है (इति वित्त बंधतया किंचित्कार्य–ए० इ० भा० २५ पृ० ६)। गहड़वाल लेख में भी ऐसा वर्णन मिलता है कि गोविन्दचन्द्र द्वारा कलचुरी भूभाग के विजय करने पर शिवाचार्य से हटाकर वशिष्ठ शर्मन को भूमि दी गई थी (ज० ए० सो० व०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३१ पृ० १२३) । इस तरह विशेष कारणवश अग्रहार को दानग्राही परिवार से पृथक किया जा सकता था अन्यथा दान की भूमि अक्षयनीवि नीति से अचल समझी जाती थी । दानग्राही ही उसका स्वामी हो जाता था ।

उड़ीसा के एक लेख में "कर-शासन" शब्द का विशेष ढंग से प्रयोग किया गया है। इस दान पत्र में अग्रहार भूमि पर भी 'कर' लगाया गया था और दानग्राही को प्रति वर्ष चांदी दस पल 'कर' के रूप में देना पड़ता था (ए० इ० २९ पृ० १६७) । इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि दान की भूमि पर राजा का अधिकार था किन्तु अन्य दान पत्रों की तरह भूमि का स्वामित्व ब्राह्मण को देने पर भी शासक 'वार्षिक कर' वसूल किया करता था। ऐसे कुछ ही उदाहरण सम्मुख आए हैं जहां अग्रहार को बंधक रखने तथा दान भूमि पर 'कर' लगाने का वर्णन मिलता है।

षोड़श महादान

पूर्व मध्ययुग की प्रशस्तियों में भूमिदान के अतिरिक्त महादान का भी वर्णन आता है जिसका नाम (सोलह नाम) पुराणों में मिलता है। मत्स्य (अध्याय २७४–२८९) अग्नि (अध्याय २१०) तथा लिंग (अध्याय २८) पुराणों में निम्नलिखित सोलह नाम आते हैं–तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, कल्पवृक्ष, गोसहस्र, कामधेनु, हिरण्याश्व, हिरण्याश्वरथ, हेमहस्तिरथ, पंचलाङ्गस, धरादान, विश्व-चक्र, कल्पलता, सप्तसागर, रत्नधेनु तथा महाभूतघट। परन्तु मध्ययुगी लेखों में केवल चार महादान के नाम मिलते हैं––तुलापुरुष, गोसहस्र, हिरण्याश्व हिरण्याश्वरथ। दूसरा नाम गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में मिलता ––गो शतसहस्र प्रदायिनः। नागार्जुनी लेख में वीर पुरुषदत्त द्वारा इस महादान (हिरणकोटि गो सत सहस्र) को सम्पन्न करने का वर्णन मिलता है (ए० इ० २० पृ० १६ न० २)। छठी सदी में परिव्राजक राजा संक्षोभ ने भी गोसहस्र नामक महादान सम्पन्न किया था (का० इ० इ० ३ पृ० ११४)। गहड़वाल लेख भी यही बतलाते हैं। गहड़वाल तथा सेन अभिलेखों में इन चारों महादान के सम्बन्ध में वर्णन है। तुलापुरुष में दानकर्त्ता को सोना या कीमती प्रस्तरों से तोला जाता और सारा धन ब्राह्मणों में विभक्त कर दिया जाता था। गोविन्दचन्द्र के लेख में––हेमात्म तुल्यमनिशं ददता द्विजेभ्यो मिलता है (ए० इ० ४ पृ० ११८, भा० १३ पृ० २१८, भा० २ पृ० ३६२, इ० ए० १८ पृ० ११)। किन्तु अन्य प्रशस्तियों में तुलापुरुष महादान या कनक तुलापुरुष (इ० ए० १८ पृ० १३२; ए० इ० १५ पृ० २७८) का उल्लेख आता है। कलचुरी लेखों में भी तुलापुरुष उसी अर्थ (महादान) में प्रयुक्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया गया है (ए. इ. २ पृ. ४–महादानस्तैस्तुलापुरुषादिभिः)। अतएव लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि महादान की परिपाटी उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, आसाम तथा बंगाल में प्रचलित थी। सेन प्रशस्तियों में राजा को सोने से तौलने का वर्णन मिलता है। विलासदेवी ने तुलापुरुष नामक महादान दिया (ए. इ. १४ पृ. १५७) और लक्ष्मणसेन ने उसे 'कनकतुलापुरुष महादान' के नाम से सम्बोधित किया है (ए. इ. १५ पृ. २८०)। इस महादान का भी विशेष महत्व था और इसे भी तीर्थ तथा पर्व के समय (संक्रान्ति आदि) ब्राह्मणों को दिया जाता था।

हेमाश्व तथा हेमाश्वरथ का नाम सेन प्रशस्तियों में आता है। वहां वर्णन है कि वल्लालसेन ने सोने का घोड़ा बनाकर ग्रहण के समय ब्राह्मण को दान किया था (सूर्योपरागे प्रदत्त हेमाश्व महादान–ए. इ. १४ पृ. १६१)। तथा लक्ष्मणसेन ने सोने के घोड़े वाला रथ दान किया था (ए. इ. भा. १२ पृ. १०)। तुलापुरुष के अतिरिक्त सोने का घोड़ा दान करने का क्या उद्देश्य था यह कहना कठिन है। अभिलेखों में केवल दान का विवरण पाया जाता है। उस दान के वास्तविक उद्देश्य की चर्चा लेखों में नहीं मिलती।

दानपत्रों में दान करने की शास्त्रीय विधि का विस्तृत विवरण है। दान का उद्देश्य तो स्वर्ग प्राप्ति की कामना थी ही, उसके विधान में शास्त्रकारों ने निश्चित क्रम बतलाया है जिसे दान कर्त्ता को मानना पड़ता था। लेखों में स्मृतियों से भी अधिक विशद वर्णन मिलता है। गहड़वाल लेखों में गंगा में स्नान कर तर्पण करने का वर्णन है। तत्पश्चात् भगवान की आराधना कर दान कर्त्ता हाथ में जल कुश लेकर स्वस्ति वाचन करता था। निम्नलिखित उद्धरण इस प्रश्न को स्पष्ट कर देते हैं।

दान विधि

(१) विधिवत् स्नातवा देव मनुज मुनि भूत पितृ
गणास्तर्पयित्वा, वासुदेवस्य पूजां विधाय
कुशलता पूत करतलोदक पूर्वम् (इ. ए. १५ पृ. ८)

(२) पुन्य तीर्थोदकेन विधिवत् स्नात्वा देव मनुज
पितृन् संतर्प्य भास्कर पूजा पुर सर ––
भवानी पतिमभ्यर्च हुतभुज हुत्वा राहुग्रस्ते
दिवाकरे नाना गोत्रेभ्योः नाना प्रवरेभ्यो नाना
नामेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः कुशलता पूतेन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हस्तोदकेन स्वस्ति वाचन पूर्त्रम् संकल्पित
भूमेः सम्बन्धे शासनी कृता प्रदताः

(ए. इ. ४ पृ. १५८)

राजपुताने के लेखों में कुशलता के अतिरिक्त जल के साथ तिल अक्षत रखने उल्लेख है (तिलाक्षत कुशबु प्रणयिनं दक्षिण कर कृत्वा–ए. इ. २१ पृ. ३१०)। साधारणतया तिल का प्रयोग पितृ तर्पण के लिए किया जाता है (तिलोदकेन संतर्प्य –इ. ए. १६)। परन्तु चाहमान प्रशस्ति में तिलाक्षत के उल्लेख से यह मानना पड़ता है कि सम्भवतः ग्रहण के समय (दान का काल) तिल तथा अक्षत दोनों का प्रयोग किया जाता हो। प्रशस्तियों में 'कुशलता पूत' शब्दों का तात्पर्य स्मृति ग्रंथों के आधार पर समझ में आता है। शंखलिखित (१३।१३) में तिल तथा कुश को पूजा का आवश्यक अंग माना है। तिल से पितृ प्रसन्न होते हैं। कुश में त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) का निवास माना गया है (गरुण पुराण प्रेतखण्ड २।२१)। इसीलिए जप होम, तर्पण तथा दान में कुश की अंगूठी (पवित्र) बनाकर पहनते हैं (कुश पवित्र पाणिः जपं कुर्यात् –शंख-स्मृति १२।४)। देवता-पूजन का कार्य दानकर्त्ता के भावना पर निर्भर था। वह वैष्णव होकर वासुदेव का या शैव होने पर शिव का अथवा सूर्य (भास्कर-पूजा) का पूजन करता था। इस प्रकार प्रशस्तियों में जो विधि विधान है वह धर्मशास्त्र के आधार पर उल्लिखित है। स्थान-स्थान पर तो स्मृतियों से विस्तृत विवरण प्रशस्तियों में ही पाया जाता है।

हिन्दु समाज में इस बात की विशेषता है कि जनता श्रुति तथा स्मृति के आधार पर या उसके विधान अनुसार सदा धार्मिक उत्सव किया करती है। गृह कार्यों में पंच महायज्ञ का नाम आता है। (१) देव यज्ञ (२) पितृ यज्ञ (श्राद्ध) (३) भूत यज्ञ (वलि) (४) ब्रह्म यज्ञ (स्वाध्याय) (५) मनुष्य यज्ञ (अतिथि सत्कार)। गृहस्थ को इनसे पुण्य लाभ होता है।

धार्मिक उत्सव व्रत तथा तीर्थ

छठी सदी के एक लेख से प्रकट होता है पूर्वी भारत में पंचमहायज्ञ नित्य सम्पन्न किया जाता था (ए. इ. २३ पृ. १५९)। गुर्जर लेख में अन्य रूप में इसका वर्णन आता है –वलिचरु वैश्व देवग्नि होत्रतिथि पंच (विम्हा) यज्ञादि– (ए. इ. २३ पृ. १५२)

व्रत के सम्बन्ध में प्रशस्तियों में अनेक स्थान पर उल्लेख है और उस पुण्य पर्व के अवसर दान दिए जाते थे। व्रत में स्त्री-पुरुष पवित्र जीवन तथा सात्विक विचार से समाज में देव पूजन करते थे। अधिकतर लेखों में देवोस्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकादसी (कार्तिक शुल्क ११) तथा हरिशयिनी (आषाढ़ शुल्क ११) के नाम मिलते हैं (ए. इ. १३ पृ. २११ भा. ४—कमौली लेख)। रामनवमी (ए. इ. १४ पृ. १८८) तथा शिवरात्री (ए. इ. भा. ११ पृ. ३९) का भी उल्लेख आता है जिस समय सर्वसाधारण उपवास रखते थे तथा भगवान राम तथा शिव का पूजन करते थे। चाहमान नरेश ने शिवरात्री के उपलक्ष्य में आज्ञा जारी किया था कि कोई व्यक्ति जीवहत्या नहीं कर सकता था (वही)। रथयात्रा का उत्सव भी प्रधान स्थान रखता था। इस उत्सव के व्यय निमित्त शासक 'कर' लगाता था जिसका विवरण लेखों में है। चाहमान लेख में लोगों को आदेश दिया गया था कि देवयात्रा या रथयात्रा के समय उत्सव मनाने के लिए उत्तम वस्त्राभूषण पहन कर लोग आवें तथा संगीत में भाग लें। यत्रदिने यत्रदेवे यात्रा भवति तत्रापर समस्तदेवानां सत्क प्रमादा कुलैः साकल्पैः सुवस्त्रैः वाद्य नृत्य गानादि विधिना यात्रा कर्तव्या (ए. इ. ११ पृ. २८) मेवार के लेख में इसे 'पर्व यात्रा' कहा गया है तथा चार ग्राम व्यय के लिए दिए गए थे (ए. इ. २ पृ. १२४)। देवताओं की यात्रा का अन्य धर्मों पर भी प्रभाव पड़ा और जैनियों ने शान्तिनाथ (तीर्थंकर) की यात्रा आरम्भ की।

श्री शांतिनाथ देवयात्रां निमित्तं —— जवादानं

(ए. इ. ११ पृ. ५०)

तीर्थ यात्रा का महत्व भारतीय समाज में बहुत प्राचीन काल से माना जाता है। अशोक ने उसे लेखों में 'धर्मयात्रा' कहा है। उसने बोध गया (सम्बोधि) तथा लुम्बिनी (बुद्ध का जन्मस्थान) की यात्रा की थी (शिलालेख ८, रूम्मनदेई स्तम्भलेख) उस यात्रा के कारण अशोक ने भूमिकर आठवां भाग (छठा से घटाकर) कर दिया था। तीर्थ स्थानों पर दान का महत्व समझ कर ही ऋषभदत्त ने काशी, नासिक प्रभास (काठियावाड़) तथा पुष्कर (अजमेर के समीप) तीर्थों में नाना प्रकार का दान दिया था। काशी में सुवर्णदान, प्रभास तीर्थ में ब्राह्मण कन्या के विवाह निमित्त धन दान (प्रभास पुन्य तीर्थे ब्राह्मणेभ्यः अष्टभार्या प्रदेन) नासिक (गोवर्धन) में आरामगृह का दान किया था (ए. इ. ८ पृ. ७८)।

मध्ययुग के दानपत्रों में विभिन्न तीर्थों का भी उल्लेख मिलता है जहां शासक जाकर दान दिया करते थे। कलचुरी लेख में प्रभास, गोकर्ण तथा गया तीर्थों के नाम मिलते हैं (ए. इ. २५ पृ. ३१७)। मध्यदेश में गंगा या सरयू तीर पर तीर्थ स्थित थे अतएव गंगा के किनारे निवास कर शासक मोक्ष प्राप्ति की कामना करते थे। चेदि राजा गांगेयदेव के प्रयाग तीर्थ पर गंगा लाभ का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उल्लेख मिलता है (ए. इ. २ पृ. २, पृ. ४)। अपसद के लेख में भी आदित्य-सेन के पूर्वज द्वारा प्रयाग में प्राण त्यागने का विवरण पाया जाता है (का. इ. इ. ३ न. ४२)। गहड़वाल राजाओं ने काशी तीर्थ में अधिक दान दिया था। गोविन्दचन्द्र के ताम्रपत्र आदि केशव मन्दिर के समीप कमौली में (काशी के समीप) मिले हैं जिससे प्रकट होता है कि राजा काशी तीर्थ में आकर दान देता रहा (श्रीमद् वाराणस्यां गंगायां स्नात्वा–ए. इ. भा. ८ पृ. १५४)। जयचन्द्र का ध्यान काशी तीर्थ की ओर इतना अधिक था कि मुसलमान लेखकों ने उसे काशी का राजा कहा है (इलियट-भारत का इतिहास भा. २ पृ. २२३, २५०)। उसके पूर्वज चन्द्रदेव को काशी कुशिक, कन्नौज, अयोध्या तथा इन्द्रप्रस्थ तीर्थों का रक्षक कहा गया है (ए. इ. २६ पृ. ७२)।

तीर्थानि काशी कुशिकोत्तर कोसल
इन्द्रप्रस्था यकानि परिपाल यन्ताधिगम्य
(ए. इ. ११ पृ. २३)

अयोध्या नामक तीर्थ, काशी तथा प्रयाग की श्रेणी में माना गया है और उसे स्वर्ग का द्वार कहा गया है (ए. इ. १४ पृ. १९३, इ. ए. १५ पृ. ६)। राजपुताने में पुष्कर तीर्थ अधिक प्रसिद्ध था जिसका वर्णन ऋषभदत्त ने नासिक लेख में भी किया है (प्रभासे पुन्य तीर्थे–ए. इ. ८ पृ. ७८)। मध्ययुग में सिंह राज ने पुष्कर तीर्थ में चार ग्राम दान में दिया और अन्य प्रशस्तियों में भी इसका नाम उल्लिखित है (ग्राम चतुरः —श्री पुष्कर तीर्थे स्नात्वा–ए. इ. २ पृ. १२९; भा. ९ पृ. ३०४, इ. ए. भा. १८ पृ. ११)। सब से विचित्र घटना पाल वंश के राजा धर्मपाल के समय की उल्लिखित है। वह परम सौगत था और बौद्ध धर्मावलम्बी होकर भी उसने हिन्दू तीर्थों की यात्रा की। बंगाल जो वज्रयान तथा तंत्रयान का केन्द्र था वहां पर तीर्थ यात्रा की भावना विचित्र घटना कही जा सकती है। खालीमपुर नालंदा तथा मुंगेर ताम्रपत्रों में निम्न पंक्तियों में तीर्थ का विवरण मिलता है--

केदारे विधि नोप युक्त पयसां गंगासमेताम्बुधौ
गोकर्णादिषु चाप्यनुष्ठितवतां तीर्थेषू धर्म्म्याःक्रिया

इससे पता चलता है कि धर्मपाल केदार, गंगासागर तथा गोकर्ण तीर्थों में यात्रा करने गया था। केदार यानी हिमालय में स्थित केदार नाथ, गंगासागर (गगा का समुद्र से संगम) तथा गोकर्ण (कनारा, बम्बई के समीप) तीर्थों में धर्मपाल विजय कामना से नहीं गया किन्तु धर्मयात्रा के लिए पहुँचा (ए० इ० ४ पृ० २४३ भा० १७ पृ० ३१; भा० १८ पृ० ३०५) अन्य लेखों में कुरुक्षेत्र (देहली के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समीप) प्रभास, गया तथा कालाकालेश्वर आदि तीर्थों के नाम मिलते हैं जहां राजा तथा जनता तीर्थ यात्रा कर दान दिया करती थी (ए० इ० २५ पृ० ३१७) इनमें गया तीर्थ की प्रसिद्धि थी तथा पुराण और स्मृतियों में इसका महत्व वर्णित है [अभि ५५, शंख १४।२७, लिखित १२।१३) पश्चिमी पंजाब में मुल्तान का नाम मुसलमानों ने तीर्थों में गिनाया है जहां के सुप्रसिद्ध सूर्य मंदिर के दर्शनार्थ भारत के कोने से लोग जाया करते थे (इलियट इतिहास भा० १ पृ ८३)। लेखों में इसका नाम नहीं मिलता क्योंकि मुल्तान मुसलमानी राज्य के अन्तर्गत था और दान करना वहां असम्भव था। अतएव दानपत्रों में इसका नाम न मिलना स्वाभाविक ही है। सूर्य मंदिर के कारण हिन्दू वहां जाया करते थे और उनके भेंट से सुल्तान को लाखों रुपयों की आमदनी हुआ करती थी।

इस प्रकार यह पता चलता है कि तीर्थ यात्रा का महत्व अशोक से लेकर जयचन्द्र तक (यानी ईसा पूर्व तीसरी सदी से ईसवी सन् की बारहवीं सदी तक) राजाओं को ज्ञात था। शासक वहां दान दे कर पुण्य का भागी बनते तथा स्वर्ग प्राप्ति की कामना करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ८

प्रशस्तियों से साहित्य का ज्ञान

प्राचीन काल में अभिलेख खुदवाने के विभिन्न उद्देश्य तथा अवसर थे किन्तु लेखों द्वारा किसी प्रकार की साहित्यिक चर्चा का ध्येय नहीं था। प्रशस्तियां प्राकृत या संस्कृत भाषा में खोदी जाती रहीं परन्तु उसका लेखक विद्वान पदाधिकारी होगा जो समुचित रीति से उस शासन को तैयार करता था। उन अभिलेखों के अध्ययन द्वारा साहित्य के अंग पर गौण रूप से प्रकाश पड़ता है। यों संस्कृत लिखने की कला ईस्वी पूर्व सदियों में अवश्य वर्तमान थी लेकिन रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख (१५० ई०) से पूर्व संस्कृत भाषा का कोई भी अभिलेख नहीं मिला है। इसलिए उसे संस्कृत साहित्य का पहला नमूना मानते हैं। जूनागढ़ का प्रशस्तिकार एक विद्वान लेखक प्रकट होता है तथा उसने गद्य पद्य की जो विशेषता लिखी है वह दण्डिन के काव्यादर्श (अध्याय १) में उल्लिखित है। लेख में राजा के लिए स्फुट-लघु मधुर-चित्र-कान्त शब्द समयोदारालंकृत गद्य पद्य (काव्यविधान प्रवीणेन) का विशेषण प्रयुक्त किया गया है (ए० इ० ८ पृ० ४२) काव्यादर्श में भी ठीक इसी से मिलती वैदर्भी शैली की विशेषता लिखी है–श्लेषः प्रसादः माधुर्य्यं सुकुमारता, अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्ति समाधयः (काव्यादर्श अध्याय १) संस्कृत के अलंकार ग्रंथों में काव्य की जो परिभाषा लिखी है उसी तरह की बातें रुद्रदामन के लेख में पायी जाती हैं। इसमें समास की बहुलता दिखलाई पड़ती है। सम्पूर्ण लेख के पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि लेखक काव्यमय शैली लिखना जानता था। संस्कृत साहित्य का पहला अंश होने पर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि साधारण जनता भी संस्कृत से परिचित थी। अन्यथा राजकीय लेख अलंकारिक भाषा में नहीं लिखा जाता। आश्चर्य तो यह है कि रुद्रदामन का आंडुलेख तथा मुद्रा-लेख प्राकृत में मिलते हैं। यही नहीं दक्षिण तथा पश्चिम भारत के समस्त लेख प्राकृत भाषा में लिखे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गए थे। तात्पर्य यह है कि ई० स० १५० से पूर्व संस्कृत मय अभिलेख नहीं मिले हैं। तीसरी सदी से समस्त भारत में संस्कृत भाषा में लेख उत्कीर्ण होने लगे जिनके अध्ययन से अनेक साहित्यिक बातों का पता चलता है। गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त की प्रयाग (स्तम्भ लेख) प्रशस्ति गद्य पद्य मय भाषा में लिखी गई है। साहित्यदर्पण के अनुसार 'गद्यपद्यमयं काव्य' को चम्पू कहते हैं। प्रयाग स्तम्भ लेख चम्पू का प्रथम उदाहरण उपस्थित करता है। दण्डिन ने काव्य गुण के विषय में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है–ओज समास भूयस्त्वं एतद् गद्यस्य लक्षणम्। ओज में समास की बहुलता पाई जाती है। यही रूप प्रयाग स्तम्भ लेख का है।

इसके लेखक ने इतना अधिक समास का प्रयोग किया है कि उसकी साहित्य शास्त्र की जानकारी स्पष्ट हो जाती है। इस लेख की प्रधान विशेषता यह है कि ऐसे विद्वान प्रशस्तिकार यानी हरिषेण का नाम अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसे चम्पू शैली के लेखक हरिषेण की कोई अन्य कृति का पता नहीं है। सबसे आश्चर्य तो यह है कि हरिषेण ऐसे साहित्यिक परम्परा का व्यक्ति होकर भी सान्धिविग्रहिक कुमारामात्य तथा महादण्डनायक के पद को सुशोभित कर चुका था। गुप्त वंश के लेख तो किसी न किसी छंद में लिखे गए थे परन्तु प्रथम कुमार गुप्त का मंदसोर का लेख तथा स्कन्द गुप्त का जूनागढ़ वाला लेख अनेक छंदों में लिखे गए हैं। उपगीति वसन्ततिलका आर्या, शार्दूलविक्रीडित, द्रुत विलम्बित हरिणीं, वंशस्थ इन्द्रवज्रा, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, अनुष्टुभ आदि छंदों से युक्त पद्य उल्लिखित हैं। मंदसोर की प्रशस्ति का लेखक वत्सभट्टि भी अन्य साधनों से अज्ञात ही है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अभिलेख ऐसे विद्वान प्रशस्तिकार के नाम बतलाते हैं जिनका नाम दूसरे ग्रंथों में नहीं पाया जाता। तात्पर्य यह है कि प्रशस्तियों से संस्कृत साहित्य का इतिहास जानने में सहायता मिलती है। हरिषेण की एक मात्र रचना प्रयाग स्तम्भ लेख है।

अभिलेख में कविगण

प्रशस्ति के आरम्भ में स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे लम्बे लम्बे आठ छंद हैं जिनमें समुद्रगुप्त की कीर्ति का रमणीय वर्णन मिलता है। उसके अनन्तर एक वृहत् गद्यांश में हरिषेण ने दिग्विजय का विवरण दिया है। पद्य तथा गद्य शैली में हरिषेण उच्च कोटि के कवि कालिदास आदि के समान माना जा सकता है। स्थान स्थान पर दोनों शब्दों में साम्य मिलता है। दिग्विजय के वर्णन में कालिदास तथा हरिषेण में विम्ब प्रतिविम्ब भाव है। दूसरे विद्वान् वीरसेन का नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय की उदयगिरि वाली प्रशस्ति में मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह उसके दरबार का एक रत्न था और व्याकरण, न्याय तथा राजनीति का ज्ञाता था। वह एक कवि होने के नाते उस प्रशस्ति का लेखक था और उसने अपने को राजा का कुल क्रमागत सचिव लिखा है। गुप्त कालीन जिन कवियों की कीर्ति केवल प्रस्तरों में सुरक्षित हैं उनमें सबसे योग्य विद्वान तथा कवि वत्सभट्टि है। प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल में लिखी गई मंदसोर की प्रशस्ति इस कवि की अद्वितीय रचना है। इसमें दशपुर में सूर्य मंदिर बनवाने का वर्णन मिलता है। संस्कृत काव्य के इतिहास से इस प्रशस्ति का विशेष स्थान है। भाषा ललित होते हुए अर्थ गौरव से युक्त है। अलंकार इस प्रशस्ति में भरे पड़े हैं। वत्सभट्टि कालिदास के काव्यों का विशेष अनुरागी प्रतीत होता है। उसने कई स्थानों पर पर कालिदास का अनुकरण किया है। भाषा के अतिरिक्त भाव में कालिदास का छाप दिखलाई पड़ता है। इस कवि द्वारा वर्णित दशपुर का वर्णन कालिदास द्वारा वर्णित अलकापुरी के प्रासादों से सर्वथा मिलता-जुलता है—

चलत्पताकाव्य बला सनाथान्यत्यार्थः
शुक्लान्यधिकोन्नतानि
तडिल्लता चित्रसिताब्भ्रकूट
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिभानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्घबलभीनि सवेदिकानि
गान्धर्व शब्द मुखराणि निविष्ट चित्र
कर्माणि लोल-कदली वन शोभितानि

मंदसोर प्रशस्ति––(वत्सभट्टि)

विद्युत्वंन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वं तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।

उत्तरमेघ १—(कालिदास)

और देखिए। मंदसोर की प्रशस्ति (पद्य ३१) में किया गया ऋतु वर्णन कालिदास के ऋतु संहार (५।३) वर्णन के समान है।

न चन्दनं चन्द्रमरीचिशीतलं
न हर्म्यपृष्ठं शर दिन्दुनिर्मलम्
न वायवः सान्द्र तुषार शीतला
जनस्य चितं रमयन्ति साम्प्रतम्

(कालिदास)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामा सनाथ रचने दर-भास्करांशु
वह्नि प्रताप सुभगे जललीन मीने
चन्द्राशुहर्म्यतल चन्दन तालवृन्तं
हारोपभोग रहिते हिम दग्ध पद्मे
(वत्सभट्टि)

इससे प्रकट होता है कि वत्सभट्टि की कविता सरस और रसीली है। वह वैदर्भी रीति में लिखे गए काव्य का एक उत्कृष्ट नमूना है। सुन्दर अलंकारों का समावेश स्थान-स्थान पर किया गया है। कविता में गुण के कारण वत्सभट्टि महाकवियों की श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में साब नाम के भी राजकवि हुए हैं जिनका नाम लेखों में मिलता है।

इस युग के कवियों में वासुल का भी नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मालवा के नरेश यशोधर्मन की मंदसोर की प्रशस्ति लिखकर अपनी काव्य निपुणता का परिचय दिया है। इसमें राजा के गुणावली का वर्णन किया गया है। ईशान वर्मा की हरड़ा की प्रशस्ति के लेखक रविशान्ति का नाम भी गर्व के साथ लिया जा सकता है जो मौखरि नरेश के आश्रित कवि थे। इस कवि की कविताएँ समास अधिकता हैं तथा भाव से भरी हुई है। इसके काव्यमय लेख से मौखरि इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। ईशान की कीर्ति तथा युद्ध गाथा के लेखक का नाम तथा रवि शान्ति की रचना अन्यत्र नहीं मिलती। इस प्रकार प्रशस्ति के अन्त में कवियों के नाम आते हैं जिनमें प्रधान (प्रथम श्रेणी के) कवियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यदि प्रशस्तियों का अध्ययन न होता तो इनकी कीर्ति का पता लगना असम्भव था। इस प्रकार हजारों लेख मध्यकाल में लिखे गए। सर्वत्र लेखक के नाम का पता नहीं लगता। मध्ययुग के गोविन्दपुर के (गया, बिहार) लेख में वेद पारंगत ब्राह्मण का उल्लेख है, जिसकी कविता सदुक्त कर्णामृत में सुभाषित के स्थान पर उद्धृत की गयी है। उस श्रीधर दास नामक कवि का नाम अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य का वास्तविक इतिहास इन लेखों की सहायता बिना तैयार होना सम्भव नहीं।

प्रशस्तियों के अतिरिक्त गुप्त शासकों का साहित्यिक प्रेम उनके मुद्रा-लेख से भी झलकता है। अधिकतर मुद्राओं पर लेख छंदबद्ध उपगीति छंद में मिलते हैं उदाहरणार्थ समुद्र का मुद्रा लेख "समर शत वितत विजयी जित रिपु रजितो दिवं जयति" तथा प्रथम कुमारगुप्त का लेख "पृथिवीतलांबर शशी कुमार गुप्तो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जयत्यजितः'' उपगीति छंद में हैं।

इसी प्रकार चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी का अयहोल लेख सुन्दर काव्य में लिखा गया है। रवीकीर्ति के वर्णन की शैली काव्यमय है। इसलिए अयहोल प्रशस्ति के ३७वें पद्य में कालिदास तथा भारवी से उसकी तुलना की गई है। तात्पर्य यह है उपमा तथा अर्थ गौरव में रवीकीर्ति श्रेष्ठता प्राप्त कर चुका था। यही कारण है वह प्रधान कवियों में स्थान प्राप्त कर सका है। प्रशस्तिकार अलंकार शास्त्र से पूर्ण विज्ञ था। कई स्थानों पर उसके भाव रघुवंश तथा किरातार्जुनीय से मिलते हैं प्रशस्तिकार ने रघु के दिग्विजय की तरह पुलकेशी की विजय यात्रा का वर्णन किया है। अयहोल प्रशस्ति के निम्न पद्य कालिदास के समान भाव व्यक्त करते हैं–

प्रशस्ति का पद्य ५ (रघुवंश ७।४८), पद्य १० (किरात ५।९)
प्रशस्ति का पद्य १७ (रघुवंश ३।२६) तथा पद्य ३० (रघु ४।४५)

इन सभी साहित्यिक पद्यों के अतिरिक्त कुछ नाटक प्रस्तर पर खोदे गए थे जिनसे सम्पूर्ण नाटक का रूप खड़ा किया गया है। अजमेर के शिलाखण्ड पर सोमदेव रचित "ललित विग्रह नाटक" मिला है जिसमें चाहमान नरेश विग्रह राज की कीर्ति वर्णित है। धारा के समीप (उज्जैन का भू भाग) प्रस्तर पर हरकेलि नाटक उत्कीर्ण पाया गया है जिसका लेखक विग्रह राज था। पारिजात मंजरी की भी वही कथा है। इसके अतिरिक्त धारा के एक शिलालेख में विष्णु के कूर्मावतार का वर्णन किया गया है जो प्राकृत भाषा की काव्य रचना है। इस तरह प्रशस्तियों का अध्ययन प्राकृत तथा संस्कृत साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालता है तथा लेखों से कई उलझनें स्पष्ट हो सकी हैं। ई० स० १५० से पूर्व का कोई संस्कृत साहित्य का अंश नहीं मिलता पर उससे पूर्व भी संस्कृत का प्रचार था, यह स्पष्ट हो जाता है। जूनागढ़ लेख की शैली एक दिन की कृति नहीं है वरन् साहित्य सम्बन्धी कार्य सैकड़ों वर्ष पहले से होता रहा।

पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) की अवधि में संस्कृत साहित्य का भण्डार भरा गया। जितनी संख्या में नाना विषयों पर ग्रंथ लिखे गए, उतनी ही संख्या में अभिलेख भी संस्कृत में उत्कीर्ण किए गए। काव्य शैली, अलंकार की प्रचुरता (ग्वालियर प्रशस्ति ए० इ० भा० १ पृ० १५६) छंदों की बहुलता और श्लेष का अधिकता (ए० इ भा० २९ पृ० १७९) प्रशस्तियों में पाया जाता है।

अभिलेखों में साहित्य की समीक्षा करते समय चन्देल नरेश के खजुराहो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख का उद्धरण प्रशस्तिकारों के काव्यमय शैली तथा साहित्यिक सूझ की ओर ध्यान आकर्षित करता है—– (ए० इ० भा० १ पृ० १५९)

दारिद्रं हरतार्थिनो रिपुजना लक्ष्मी मनो योषितः
रूपं पंचशरादगाधपयसो गाम्भीर्यमंभोनिधेः
चित्तं येन विचारु चारु मनसामाचारमातन्वता
सर्वत्रैव जनापवाद रहितं चौर्यं प्रकाशीकृतः

अभिलेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि शिक्षण संस्थाओं का जन्म कुछ बाद में हुआ। सुदीर्घकाल में अध्यापक व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देते थे।

शिक्षा-केन्द्र

प्राचीन गुरुकुल तथा काशी एवं तक्षशिला के गुरुगृह शिक्षा में योगदान देते रहे। ईसवी सन दूसरी सदी के नासिक लेखों में भिक्षुओं के चीवर तथा भोजन निमित्त अग्रहार का वर्णन है। बौद्ध ग्रंथ महाबग्ग से प्रकट होता है कि गुहा में शिक्षा का कार्य सम्पन्न किया जाता था जिसकी सहायता शासक किया करता था। प्रायः शिक्षा केन्द्र समस्त भारत में फैले हुए थे। तक्षशिला, काशी, पाटलिपुत्र, कन्नौज, मिथिला तथा धारा का नाम शिक्षा केन्द्रों में लिया जा सकता है। बौद्ध विहार तथा हिन्दू-मंदिरों से शिक्षण संस्थाओं का जन्म हुआ अतएव जनता मठ तथा मंदिरों को दान देने लगी। मध्यकाल में मठ ही प्रधान केन्द्र बन गए। तक्षशिला के विषय में जातकों के अतिरिक्त अन्य साधनों से कम प्रकाश पड़ा है। यहां के लेख यह बतलाते हैं कि जनता खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा जानती थी। वह स्थान यूनानी शासकों के समय में टकसाल था। गांधार कला की उन्नति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तक्षण कला की शिक्षा वहां अवश्य दी जाती होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि वहां सुव्यवस्थित तथा संगठित शिक्षा-केन्द्रों में (विश्वविद्यालय न होने पर भी) सब कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। तक्षशिला की खुदाई से ऐसा भवन मिल न सका जिसे विद्यालय या छात्रावास कहा जा सके।

तक्षशिला से बढ़कर काशी विद्या का केन्द्र था। बुद्ध के यहां धर्म प्रचार आरम्भ करने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ई० पूर्व सदियों में काशी विद्या का महत्वपूर्ण केन्द्र होगा। काशी की प्रसिद्धि कई सदियों तक ज्यों की त्यों बनी रही। दसवीं सदी के गाहड़वाल ताम्रपत्र कमौली नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं जिसमें विद्वान् ब्राह्मणों को दान देने का विवरण मिलता है। (ए० ई० भा० ४) सम्भवतः राजा की ओर से अध्यापक तथा विद्यार्थियों को पठन-पाठन के लिए सहायता मिलती रही।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वैदिक काल से ही काशी की प्रधानता थी। बौद्ध युग में भी वही स्थिति बनी रही। बुद्ध ने प्रथम धर्मोपदेश (धर्मचक्र परिवर्तन) के लिए मृगदाव को ही चुना था। जातक कथाओं में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का नाम सैकड़ों बार आया है। इससे सिद्ध होता है कि काशी की प्रधानता (धर्म तथा शिक्षा क्षेत्र में) सदियों तक बनी रही। ब्राह्मण तथा बौद्ध युग में यह नगरी एक समान रूप से आकर्षक थी।

अशोक के समय से ही सारनाथ की प्रधानता रही और मौर्य युग के पश्चात् वह एक प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षा केन्द्र हो गया। यहां पर पढ़ाई का कार्य बारहवीं सदी तक होता रहा और इसी कारण से गाहड़वाल राजा गोविन्द्रचन्द्र की पत्नी कुमार देवी ने एक विहार को दान दिया था जिसका विवरण उसके सारनाथ वाले लेख में पाया गया है। हजारों की संख्या में यहां विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। खुदाई से अनेक विहारों की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। सारनाथ में कला की भी शिक्षा दी जाती रही जिसके कारण वहां पर एक शैली (स्कूल) की स्थापना हुई थी। सारनाथ शैली की बुद्ध प्रतिमा बौद्ध कला में अद्वितीय समझी जाती है। यहां साहित्य तथा कला की शिक्षा की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है। आज भी काशी क्षेत्र (वाराणसी) संस्कृत विद्या का महान् केन्द्र है।

नालंदा महाविहार

पाटलिपुत्र के समीप नालंदा का विहार एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का रूप धारण कर चुका था जिसकी प्रसिद्धि पाँचवीं सदी के पश्चात् प्रकट हुई। यों तो बुद्ध के समय से ही इसकी प्रधानता थी परन्तु पांचवीं सदी से नालंदा विद्या का केन्द्र हो गया। गुप्त राजाओं तथा पालवंशी नरेशों ने इस महाविहार की उन्नति में हाथ बंटाया तथा आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया। प्राचीन समय से ११वीं सदी तक विहार-निर्माण का कार्य अविच्छिन्न रूप से होता रहा। नालंदा की खुदाई से वहां विशाल विश्वविद्यालय का पता चला है जिसमें करीब ३०० छोटे कमरे हैं तथा सात विशाल व्याख्यान मंदिर भी। पूर्व मध्ययुग के एक लेख से नालंदा के विशाल भवन की स्थिति प्रमाणित होती है जहां विहार के शिखर गगन-चुम्बी थे। वर्णन सुनिए।

यस्यामम्वुधरावलेहि शिखर श्रेणी विहारावली
मालेवोर्ध्व विराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञाभुवः
(ए. इ. २० तृ. ४३)

नालंदा हसतीव सर्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरस्फुट
च्चर्यत्यांशु प्रकरोस्सदागमकला विख्यात विद्वज्जना।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ७००-१२०० ई० तक नालंदा प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र था तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वहां निवास करते थे।

भिक्षु एवं विद्यार्थियों के आवास के लिए ही ऊंचे विहार बनाए गये थे। जहां उनके भोजन, स्थान तथा औषधि का प्रबंध था--भिक्षु संघस्य वलि चरुसत्र चीवर पिण्डपात शयना भेषजादि (ए. इ. २० पृ० ४४) इन सभी कार्यों के लिए दाताओं से दान मिलता था तथा दो सौ ग्राम इस महाविहार को दान में मिल चुके थे। इसकी अभिवृद्धि आठवीं सदी के पाल नरेश देवपाल के ताम्रपत्र से ज्ञात है। देवपाल ने जावा के राजा बालपुत्रदेव के आग्रह पर पांच गांव दान में दिया था। ताम्रपत्र में वर्णन आता है कि जावा के राजा ने नालंदा में दो विहार तैयार किये तथा उसने अपने दूत द्वारा देवपाल से भिक्षुओं के निमित्त दान देने की प्रार्थना की। देवपाल ने उस विहार में निवास करने वाले भिक्षु विद्यार्थी के भोजन, आवास, औषधि निमित्त दान दिया तथा धर्म ग्रंथ लिखने के व्यय का आयोजन भी था (ए. इ. भा. १७ पृ० ३२२)

मालंदा गुण वृंद लुब्ध मनसा भक्तया च सौद्धोदने

× × ×

नाना सद् गुणभिक्षुसंघ वसतिस्तस्या विहारः क्रत;

सुवर्णद्वीपाधिप महाराज बालपुत्रदेवेन दूतक

मुखेन वयं विज्ञापिताः। यथा ममा नालंदायां विहारः कारितः।

इससे इस महाविहार की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का पता चलता है। यही कारण है कि चीन के यात्री ह्वेनसाँग तथा इत्सिग वर्षों रहकर नालंदा महाविहार में शिक्षा प्राप्त करते रहे। यहीं से पंडित नेपाल, तिब्बत तथा चीन में बौद्ध धर्म फैलाने के लिए निमंत्रित किए गए थे।

काठियावाड़ में वलभी भी प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था जहां से अधिक मात्रा में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता था। वलभी के स्नातक ऊंचे पद पर नियुक्त किए जाते थे। गंगाघाटी से ब्राह्मण अपने पुत्रों को विद्याभ्यास के लिए वहां भेजते रहे।

अन्तवेद्यामभूत्पूर्व वसुदत्त इति द्विजः

× × ×

गतुं प्रववृते विद्या प्राप्ते वलभीपुरम्।

वलभी के धनीमानी श्रेष्ठी इस विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता दिया करते थे। यहाँ के मैत्रक नरेश साधारण व्यय के अतिरिक्त पुस्तकों के लिए भी दान देते थे जो लेख से विदित होता है

(सद्धर्मस्य पुस्तकोपचयर्थिम्--स. इ. ए. ७ पृ० ६७)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मैत्रकों के पिछले उत्तराधिकारी भी वलभी विश्वविद्यालय को प्रर्याप्त आर्थिक सहायता करते रहे।

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजा के मंत्री नारायण ने सलोत्गी (बीजापुर, बम्बई प्रदेश) में एक देवालय का निर्माण कराया था जो १२वीं सदी में वैदिक शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। उस स्थान पर विद्यार्थियों के रहने के लिए अनेक भवन बने थे। वहां की प्रशस्ति में वर्णन आता है कि दीपक, भोजन तथा आवास के लिए ५०० निर्वतन भूमिदान में दी गई थी (ए. इ. ४ पृ० ६०)

तेनेयं कारिता शाला श्री विशाला मनोरमा
अत्र विद्यार्थिनः संति नाना जनपदोभ्दवा
शाला विद्यार्थी संघाय दत्तवान्भमिमुत्तमाम्।

अन्य लेखों से भी पता चलता है कि दक्षिण में कई विद्यापीठ राजकीय सहायता पर चलते थे और देवालय शिक्षा के केन्द्र हो गए थे। १२वीं सदी में दक्षिण अरकाट जिले में एन्नायिरम् विद्यापीठ (साउथ. इ. ए. रि. १९१८ पृ० १४५) तथा चिङ्गलपुट (मद्रास के करीब) में व्यंकटेश पेरुमल देवालय (ए. इ. २१ पृ० २२०) महत्वपूर्ण संस्था थी। विद्यार्थियों को खाद्य सामग्री निःशुल्क वितरण की जाती थी। चिकित्सा का भी प्रबंध था। ११वीं सदी के लेख में बीजापुर के विद्यार्थियों का वर्णन है कि आचार्य योगेश्वर पंडित के शिष्यों को शिक्षा तथा भोजन के लिए १२०० एकड़ भूमि दान में दी गई थी। (इ. ए. १० पृ० १२९) अभिलेखों के आधार पर कई उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं (ए. इ. ४ पृ० ३५५. साउथ इ. ए. रि. १९१२ पृ० २०१ : १९-१७ पृ० १२२) अग्रहार दान (ए. इ. भा. ५ पृ० २२, भा० १३ पृ० ३१७) शिक्षा की उन्नति में सहायक थे तथा आर्थिक चिन्ता से विद्यालय मुक्त रहता था। जिस गांव के पंडित के पास ज्ञान-पिपासु लोग आते थे उसे भी दान दिया जाता था (ए. इ. भा. १६ पृ० १४)। अतएव प्राचीन अभिलेखों का अध्ययन शिक्षा-केन्दों, छात्रावास, औषधि, भोजन, पुस्तक आदि विषयों पर प्रकाश डालते हैं। उनके परिशीलन से प्रकट होता है कि बिना राजकीय सहायता के शिक्षा की उन्नति सम्भव न थी।

प्राचीन अभिलेखों में अध्ययन तथा अध्यापन का सीधा वर्णन उपलब्ध नहीं है केवल प्रसंग वंश साहित्य का उल्लेख मिलता है। अथवा दान के पात्र सम्बन्धी वार्ता में दानग्राही की विद्वता का वर्णन किया गया है। उसी अभिलेख में यह कहा गया है कि अमुक व्यक्ति कई विषयों का पण्डित था। या यों कहिए कि उस के वंश का विवरण देते समय ब्राह्मण के वैदिक शाखा का

अध्ययन के विभिन्न विषय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाम लिया गया है। इन सभी प्रकार के उल्लेखों से हमें अध्ययन सम्बन्धी विषयों का परिज्ञान हो जाता है। अशोक से पूर्व का कोई लेख नहीं मिला है इसलिए ई० पूर्व के ३०० वर्ष से पहले की बातें ज्ञात नहीं है। उसने वैराट (भाब्रू, जयपुर) के शिलालेख में इस बात का आदेश दिया था कि निम्नलिखित ग्रंथों को भिक्षुओं को सुनना तथा पढ़ना चाहिए:—

इमानि भंते धम्मपलियायानि विनय समुकसे अलिय-वसाणि अनागत भयानि मुनिगाथा मोनेयते उयातिस प्रसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावदं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते (भाब्रू लेख) मुनिगाथा मौनेय सूत्रं उपतिष्यप्रश्न राहुलवाद मृषावादम्" को बारबार सुनना चाहिए तथा अध्ययन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त (विनय समुकसे) आर्यवंश (अंगुत्तर निकाय में वार्तालाप अलियवसाणि) और भिक्षु की भविष्य चर्चा (अनागतभयानि) को भी सुनना चाहिए जिससे संघ चिर स्थायी हो सके।

मौर्ययुग के पश्चात् अभिलेखों में कई सदियों तक शिक्षा सम्बम्धी किसी विषय का उल्लेख नहीं पाया जाता। यज्ञों के विधवत सम्पन्न होने से यह सिद्ध होता है कि वैदिक शिक्षा का प्रचलन समाज में था। उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी गुरुगृह में विद्याभ्यास करता रहा। पूर्वमध्ययुग (७००-१२०० ई०) में उपनयन की अवस्था में समानता न रही। प्राचीन गुरुकुल की परिपाटी छिन्न भिन्न हो गई और विद्यार्थी गण मंदिर या मठ अथवा विहार में शिक्षा पाने लगे। इस काल के उत्कीर्ण अभिलेख तथा दानपत्र शिक्षा के सभी बातों पर प्रकाश डालते हैं। दान व्यक्तिगत न रहकर संस्थाओं से सम्बन्धित कर दिए गए। जिन संस्थाओं को दान दिया जाता था वहां विद्या का केन्द्र अवश्य कार्य कर रहा था। यह अनुमान सर्वथा उचित है। खेद है कि अभिलेखों में प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में किसी तरह का उल्लेख नहीं मिलता। केवल ऊंची शिक्षा का मूल्यांकन किया जा सकता है। ऊंची श्रेणी की संस्थाओं तथा किसी विषय में पारंगत पंडित को ही दान देने की परिपाटी थी। अतएव पूर्वमध्ययुग में एक विषय के गम्भीर अध्ययन की बातें सोची जा सकती हैं। बौद्ध मठों में नए आगंतुक भिक्षु को कोमल अवस्था के कारण कुछ साधारण ज्ञान दे कर धर्मरत्न का अध्ययन कराया जाता था। परन्तु ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी बातें ज्ञात नहीं हैं। इस निर्णय पर पहुंचने का कारण यह है कि विद्यार्थी वैदिक शाखा के ज्ञाता कहे गए हैं यानी किसी सम्पूर्ण वेद का पठन पाठन भी सम्भव न था। गम्भीर अध्ययन के कारण विद्यार्थी केवल एक शाखा में ही पांडित्य प्राप्त कर सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्व मध्ययुग के अभिलेखों का विवेचन यह बतलाता है कि वेद, वेदांग के अतिरिक्त दर्शन, उपवेद तथा इतिहास का भी पठन-पाठन होता रहा। दानग्राही के गुणों का वर्णन करते समय उन विषयों के नाम आते हैं। ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र का भी उल्लेख मिलता है जिसके अध्ययन के पश्चात् वह व्यक्ति राजकीय विभाग में पदाधिकारी हो जाता था। इसलिए वेदांग (शिक्षा, निरुक्त, छंद, व्याकरण, कल्प, (धर्मशास्त्र) तथा ज्योतिष) का अध्यापन प्रधान हो गया। उस युग के लेखों में चारों वेद, उनकी विभिन्न शाखाओं, वेदांग तथा षड्दर्शन के नाम मिलते हैं। चाहमान (राजपुताना) के लेखों में यजुर्वेद के अनुसार यज्ञ करने की चर्चा की गई है (ए० इ० ९ पृ० ३०६) और बंगाल के सेन नरेश के लेख भी यही बातें उल्लिखित करते हैं (ज० आफ० हि० रि० सो० भा० २पृ० १४०) इसका अर्थ यह है कि समस्त उत्तरी भारत में वैदिक यज्ञ तथा वेदों का अध्ययन होता था। दक्षिण भारत के लेखों में भी वैदिक शाखाओं के नाम से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दक्षिण में वैदिक अध्ययन की परिपाटी समान रूप से वर्तमान थी। प्रतिहार, चन्देल, परमार तथा बंगाल के राजाओं के अभिलेखों में एक तरह के शाखा के नाम आते हैं। कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर, उत्तर प्रदेश) में छांदोग्य, वाजसनेय तथा माध्यन्दिन शाखाध्यायी ब्राह्मणों के नाम उल्लिखित हैं (ए० इ० भा०२ पृ० ८७) मध्यप्रदेश के चेदि वंश के लेखों में आश्वलायन शांखायन, कठ कौथुमी तथा राणायनीय शाखाओं के नाम मिलते हैं (ए० इ० ९ पृ० ११६) मालवा के लेख में माध्यन्दिन, आश्वलायन तथा कौथुमी के नाम प्राप्त हुए हैं (ए० इ० ९ पृ० ११६) कन्नौज के राजा भोज का ताम्रपत्र तथा गाहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र के दानपत्र में आश्वलायन तथा वाजसनेय शाखाध्यायी ब्राह्मणों का वर्णन आया है। ए० इ० ५ पृ० २१२ तथा भा० ८ पृ० १५४) पाल तथा सेन दानपत्रों में यही नाम मिलते हैं (इ ए० २१ पृ० २५५ ए० इ० १५ पृ० २९५) विजयसेन का बैरकपुर ताम्रपत्र (ए० इ० १५ पृ० २८४) वल्लालसेन का नईहटी लेख (ए० इ० १४ पृ० १५६) तथा लक्ष्मणसेन के अनेक दानपत्रों में (ए० इ० १२ पृ० ६ इ० हि० का० ३ पृ० ८९ ज० ए० सो० बं० १९०० भा० ६९ पृ० ६१) में उन्हीं शाखाओं के नाम उल्लिखित हैं जिनके विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। लक्ष्मणसेन के अभिलेखों में यजुर्वेद, सामवेद, ऋगवेद की शाखाओं के अतिरिक्त अर्थव की पिप्पलाद शाखा का नाम भी मिलता है जो अन्य प्रदेशों की प्रशस्तियों में नहीं मिलता। यदि समस्त शाखाओं को क्रम बद्ध किया जाय तो लेखों के शाखा नाम निम्न प्रकार के वर्गीकरण में रक्खे जा सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१) ऋग्वेद की शाखाएं- आश्वलायन, शाङ्खायन
(२) शुक्ल यजुर्वेद- माध्यन्दिन, काण्व तथा वाजसनेय
(३) कृष्ण यजुर्वेद-मैत्रायिणी, कठ तथा तैत्तिरीय
(४) सामवेद–कौथुमी व राणायनीय
(५) अथर्व–पिप्पलाद

शाखाओं के नाम तथा वर्गीकरण से पता चलता है कि ऋग्, साम तथा यजुर्वेद का अध्ययन उत्तरी भारत के अधिक भागों में होता था परन्तु पिप्पलाद का अध्ययन केवल पूर्वी भारत में सीमित था। दक्षिण भारत के लेख भी यही बतलाते हैं कि अथर्व के सिवाय अन्य तीनों वेदों का अध्ययन व अध्यापन पूर्व मध्ययुग से हो रहा था। इसकी पुष्टि निम्नलिखित उद्धरण से होती है––

ब्रह्म त्रिक्रमोर्कश्च विष्णु देवस्तथा पर
तथा महिरदेवस्य चात्वारो वह्वृचोत्तमा (ऋग्वेद)
एवं कपर्दोपाध्यायो भास्करो मधुसूदनः
वेदगर्भश्च चत्वारो यजुर्वेदस्य पारगाः (यजुर्वेदस्य)
तथा भास्कर देवश्च स्थिरोपाध्याय एव च
त्रलोक्यहन्सो मोड–चत्वारः सामपारगाः (साम)
(ए० इ० ११ पृ० १९२)

समस्त अभिलेखों का परीक्षण यह बतलाता है कि अधिकतर ब्राह्मण तीन ही वेद (ऋक्, यजु व साम) पढ़ते या पढ़ाते थे जिससे द्विवेदी या त्रिवेदी की पदवि से पुकारे जाते थे। (ए० इ० १६ पृ० १० भा १ पृ० ३११)

मध्ययुग में वेदांग का नाम भी लेखों में उल्लिखित है जिन विषयों को पढ़ कर व्यक्ति पदाधिकारी का आसन सुशोभित करता था। बंगाल के लेख में वेद वेदांग पारग ब्राह्मणों के नाम आते हैं (इ. ए. १६ पृ० २०५) तथा बैरकपुर दानपत्र में षडाङ्गाध्यायिने ब्राह्मण को अग्रहार देने का वर्णन मिलता है (ए. इ. १५ पृ० २८४) गोविन्दपुर के ताम्र पत्र में निम्न श्लोक द्वारा वेदांग के छः विषयों के अध्ययन की चर्चा की गई है––

सत्कल्पप्रवणाः श्रुति प्रणयिनः **शिक्षा**भिरू द्धासिताः
सज्जयोतिषर्गतियो **निरुक्त** विशदा **श्छन्दों** विधौ साधवः
ख्याता **व्याकरण** क्रमेण विदुषामत्युच्यधि शीलना
द्वेदाङ्ग प्रतिभाः षडेव भुवनेते विभ्रति भ्रातरः
(ए. इ. २ पृ० ३३६)

अभिलेखों का अध्ययन इस बात को स्पष्टतया प्रकट करता है कि व्याकरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा ज्योतिष का अध्ययन तथा अध्यापन वेदांग विषयों में सबसे प्रमुख था। व्याकरण सभी शास्त्रों को बोधगम्य करता है इसलिए उसका पढ़ना नितांत आवश्यक था। ज्योतिष के पण्डित को नैमित्तिक की संज्ञा दी गई थी। गहड़-वाल प्रशस्तियों में नैमित्तिक पदाधिकारियों की सूची में मिलता है (ए. इ. ४ पृ० १२२, भा. ७ पृ० ९९ तथा भा. १८ पृ० २२२) उड़ीसा के भुवनेश्वर लेख में ब्राह्मण को सिद्धांत, तंत्र, फलसंहिता तथा व्याख्या का ज्ञाता बतलाया गया है (ए. इ. भा० ६ पृ० २०६) तथा बंगाल की प्रशस्ति में दामोदर शर्मन पांच सिद्धान्त का पंडित कहा गया है। ज्योतिष में पुलिश (पौलिश), रोमक, वशिष्ठ, सूर्य (सौर) तथा पितामह (पैतामह) को ज्योतिष का पांच सिद्धान्त मानते हैं। इस तरह ज्योतिष को सांसारिक विषय मान कर पढ़ते और राजदरबार में ज्योतिषी प्रतिष्ठा पाता था। अन्य चार-कल्प निरुक्त, शिक्षा तथा छंद का नाम लेखों में नहीं मिलता। परन्तु इससे यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि वेदांग में व्याकरण तथा ज्योतिष दो ही विषयों की शिक्षा दी जाती होगी और अन्य चार पढ़े न जाते होंगे। छंद तथा शिक्षा के अभाव में वेद मंत्रों का उच्चारण कठिन होता है तथा निरुक्त बिना मंत्रों का अर्थ समझना सम्भव नहीं है। यह काल वैदिक यज्ञ तथा अध्यापन का युग था इसलिए वेदांग के सभी अंगों पर विद्यार्थियों का ध्यान रहता होगा। पूर्व मध्ययुग में अनेक स्मृतियों की रचना हुई थी। इसलिए धर्मशास्त्र (कल्प) के ज्ञान को पूर्व पीठिका मानना असंगत न होगा। यह कहना उचित होगा कि वेदांग का अध्ययन भी ब्राह्मणों के लिए प्रमुख हो गया था।

अध्ययन के अन्य विषयों में षड्दर्शन को भी प्रधान माना गया है और लेखों में प्रत्येक दर्शन का पृथक-पृथक नाम उल्लिखित है। षड्दर्शन से न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक तथा वेदान्त का बोध होता है (ए० इ० ११ पृ० ३११) रींवा के लेख में काशी के ब्राह्मण को वेदान्त मीमांसा तथा योग-दर्शन का पंडित कहा गया है (ए० इ० १९ पृ० २९५) लेकिन वही प्रतिहार वंशी बानगढ़ की प्रशस्ति में मीमांसा तथा तर्कविद्या (न्याय) में पारंगत माना गया है (ए० इ० १४ पृ० ३२५) पाल लेखों में इसी तरह का वर्णन मिलता है कि दानग्राही ब्राह्मण मीमांसा व तर्क विद्या (न्याय शास्त्र) का ज्ञाता था (ए० इ० १५ पृ० २९५ : भा० १४ पृ० ३२५ इ० ए० १४ पृ० १६८ भा २१ पृ० १६८ : भा २१ पृ० ९७––मीमांसा व्याकरण तर्कविद्याविदे) मूंगेर लेख में वेदान्त का उल्लेख है (इ० ए० १५ पृ० ३०७)। इससे प्रकट होता है कि षड्दर्शन में न्याय, मीमांसा तथा वेदान्त का अध्ययन अध्यापन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिक प्रचलित था। साहित्य के इतिहास से इसकी पुष्टि होती है। यह विदित है कि मिथिला के वाचस्पति मिश्र ने न्याय ग्रंथ की रचना की। मीमांसा में भी कुमारिल युग (६००-९०० ई०) सर्व प्रसिद्ध है। कुमारिल तथा उनके शिष्यों ने अनेक टीकाएं तथा निबंध तैयार किया। वेदान्त विद्वानों में शंकर और गौड़पाद के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रशस्तियों में उपवेद—गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद—का सीधा वर्णन नहीं है पर यत्र-तत्र उल्लेखों से तात्पर्य निकाला जा सकता है कि इन विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। जहाँ तक संगीत की शिक्षा का प्रश्न है मौर्य सम्राट् अशोक ने इसे निरुत्साहित किया। प्रथम शिला लेख में ही वह 'न च समाजो कतव्यो, बहुकं हि दोसं समाजम्हि" का आदेश देता है कि संगीत तथा आनन्दमय समाज एकत्रित न करना चाहिए। साधारण जनता तो इसके विपरीत थी अतएव उसके मरते ही संगीतमय समाज का आयोजन होने लगा। भारहुत की वेदिका पर नृत्य का दृश्य है और उस स्थान पर लेख खुदा है जिसमें विभिन्न अप्सराओं के नाम मिलते हैं। गुप्त लेख में समुद्रगुप्त गान्धर्व विद्या में निपुण कहा गया है जिसने तुम्बरू तथा नारद को संगीत में लज्जित कर दिया था (गान्धर्व ललितैर्व्रीडित-त्रिदशपति-तुम्बरु नारदादेः—प्रयागस्तम्भ लेख) प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर वर्णन है कि लेख में श्रेणी के सदस्य संगीत में भी दक्ष थे। सामवेद की शिक्षा भी जनता के संगीत प्रेम की बात स्पष्ट करती है। मंदिरों की दीवारों पर वाद्य तथा नृत्य के अनेक प्रदर्शन मिलते हैं और मंदिरों के एक कक्ष को नट मण्डप (नृत्य मण्डप) कहते थे जो प्रशस्तियों के उल्लेख को पुष्ट करता है।

आयुर्वेद की शिक्षा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था। अशोक ने दूसरे शिला लेख में दो प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख है—मनुस चिकिछा च पसु चिकिछा। मनुष्यों के साथ पशु चिकित्सा पर राजा का ध्यान यह व्यक्त करता है कि आयुर्वेद की शिक्षा ऊंची श्रेणी की थी। उसने यह भी लिखा है कि जिस स्थान पर जो दवाएं न थीं वह भेजी गई तथा जड़ी-बूटी के पौधे भी लगाए गए थे (मूलानि फलानि यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि रोपापितानि) मध्ययुग के गहड़वाल लेखों में भिषग् (चिकित्सक) का उल्लेख मिलता है। (कमौली ताम्रपत्र—ए० इ० भा० ४) चन्देल राजा परमर्दि के लेख में वैद्य का नाम पदाधिकारियों की सूची में उल्लिखित है (ए० इ० भा० ४ पृ० १७०) पालवंशी लेखों में भैषज्य (दवा) शब्द का उल्लेख भिक्षुओं के दान (दवा का व्यय) सम्बन्ध में किया गया है (इ० ए० १५ पृ० ३०६) देवपाल के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नालंदा ताम्रपत्र में भी भिक्षुओं के लिए भोजन, वस्त्र (चीवर) तथा औषधि (भेषजादि) के प्रवन्ध निमित्त दान का वर्णन है (ए० इ० १७ पृ० ३२२ भा० २० पृ० ४४) अतएव इन सभी विवरणों के आधार पर आयुर्वेद के पठन-पाठन का अनुमान लगाया जा सकता है।

धनुर्वेद की शिक्षा सम्भवतः राजकुमारों में ही सीमित थी। सेना में इन शास्त्रों का प्रयोग पूर्ण ढंग से हुआ करता था। जनसाधारण में भी इसके प्रति अभिरुचि थी। गुप्त युग में सम्भवतः इस विद्या का अभ्यास किया जाता था। प्रयाग प्रशस्ति में "परशु--शर--शन्कु-शक्ति--प्रसासितोमर" आदि शस्त्रों के नाम उल्लिखित हैं। इसी ने धनुर्धरांकित स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की जो शासक का धनुर्विद्या से प्रेम प्रकट करता है। प्रथम कुमार गुप्त के मंदसोर लेख में वर्णन मिलता है कि श्रेणी के सदस्य धनुर्वेद के भी ज्ञाता थे—श्रवण सुभगधनुर्वेद्यं दृढ़ परिनिष्ठिता, सुचरित शतासङ्गा केचिद्विचित्र कथाविदः (मंदसोर की प्रशस्ति का० इ० इ० ३ पृ० ८१) गुप्तसम्राट् भी कुशलधनुर्धारी थे, यह उनके सिक्कों के देखने से स्पष्ट हो जाता है। समुद्रगुप्त से बुधगुप्त तक धनुर्धारी प्रकार के सिक्के अत्यन्त लोकप्रिय थे, इससे यह झलकता है कि धनुर्वेद की शिक्षा में लोगों को प्रेम था। सूर्य की प्रतिमा में दो स्त्रियां (उषा प्रत्यूषा) धनुष चलाती प्रदर्शित की गई हैं। देवताओं का आयुध समझ कर दुर्गा की प्रतिमा के हाथों में धनुषबाण प्रदर्शित किया गया है। खेद है कि प्रशस्तियों में इस उपवेश के सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं मिलती।

संस्कृत साहित्य की शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। ईसवी सन् को दूसरी सदी से प्रायः अधिक लेख जनता के लिए संस्कृत में ही लिखे गए। इतना ही नहीं गुप्तकाल में तो मुद्रालेख भी छंदबद्ध संस्कृत में अंकित कराए गए। अतएव यह कहना उचित होगा कि संस्कृत भाषा की शिक्षा सभी वर्गों को दी जाती थी। सर्वसाधारण इसके द्वारा सारा कार्य करते रहे किन्तु दुःख तो यह है कि इस साहित्य के सम्बन्ध में लेख शान्त हैं। संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान, कवि तथा लेखकों ने ग्रंथ लिख कर साहित्य की अभिवृद्धि की तथा जनता के ज्ञान को बढ़ाया।

हस्तकला की शिक्षा

अभिलेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चार प्रकार की हस्तकला का ज्ञान लोगों को दिया जाता था। वास्तुकला (Architecture) तक्षण कला (Sculpture) ढ़ालना (Casting) तथा खोदना (Engraving)। प्राचीन समय के असंख्य मंदिर स्तूप तथा वेदिका की स्थिति से यह स्वयं सिद्ध है कि भवन निर्माण का ज्ञान कारीगरों को था। राजपुताना के एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख में ऐसे कारीगरों--चण्डशिव तथा उसके पुत्र--के नाम मिलते हैं जो कुशल सूत्रधार थे। हर्ष शिला लेख (१०वीं सदी) में निम्न प्रकार का वर्णन आता है--

बीरभद्रसुतः ख्याता सूत्रधारीत्र चण्डशिव
विश्वकर्मेव सव्र्वज्ञो वास्तु विद्यां ....
येन निर्मितमिदं मनोहरं शंकरस्य भवनं समण्डपम्
(ए० इ० २ पृ० १२३)

उत्तरी भारत में मंदिर तथा प्रतिमाओं का निर्माण पर्याप्त संख्या में हुआ। गुप्तयुग से पूर्व के भवन निर्माण का उल्लेख तो नहीं पाया जाता परन्तु सांची वेदिका पर अंकित लेख दानकर्ताओं का नाम उपस्थित करते हैं। तोरण पर खुदे भवन, दुर्ग आदि का प्रदर्शन इस कार्य का अनुमान कराता है कि समाज में लोगों को भी भवन या दुर्ग निर्माण से रुचि थी। धनिक के नगर शिलालेख में वास्तुविद्या में निपुण व्यक्तियों के नाम मिलते हैं–श्री भिल्लमाल सूत्तधार ग्रहभट्टोत्पन्न सूर्यवर्म। गंगा वर्मभिः सूत्रधारत्व कुशलै रूपकर्म निपुणै र्वास्तुविद्या पारणैः (भारत कौमुदी भा० १ पृ २७६)

इसके अतिरिक्त प्रतिमा निर्माण की कला में भी अनेक व्यक्ति दक्ष थे। हिन्दू, जैन तथा बौद्ध देवी देवताओं की अनगिनत मूर्तियां प्राचीन समय में तैयार की गई थी। पूर्वमध्ययुगी बौद्ध प्रतिमाओं पर राजाओं की शासन तिथि अथवा निम्नपद्य खुदा मिलता है--

ये धम्मा हेतु प्रभवा हेतुं तेषां तथागतो अवदत्
तेषां च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः।

खेद है कि कलाकारों के नाम कहीं नहीं मिलते। केवल तिब्बत इतिहासकार तारनाथ ने नालंदा के प्रसिद्ध कलाकार धीमान का नामोल्लेख किया है जो अपने पुत्र विटपाल के साथ धातु प्रतिमा के ढालने में लगा रहता था। प्रस्तर प्रतिमाओं की वास्तविक अनुकरण धातु मूर्तियों में दृष्टिगोचर होता है (ए० इ० १४ पृ० १९९) अतएव यह कहना उचित होगा कि प्रतिमा निर्माण की कला ऊंची श्रेणी तक पहुंच गई थी।

गुप्तयुग के पश्चात अधिकतर लेख ताम्रपट्टिकाओं पर उत्कीर्ण किए गए थे जिसका मुख्य कारण यह था कि दानग्राही उस शासन को सुरक्षित रखता था। वह ताम्रपत्र उसके वंशज के लिए परमावश्यक राजकीय आज्ञापत्र था। उसी के अनुसार दानग्राही के उत्तराधिकारी अग्रहार भूमि का उपभोग करते थे। उस लेख को पट्टिका पर उत्कीर्ण करने की कला सब को ज्ञात न थी। थोड़े से कला-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार उसे खोद सकते थे। बंगाल के एक लेख में मगध का कलाकार सोमेश्वर निम्न प्रकार से वर्णित किया गया है।

शिल्पविन मागधः कामी तन्मना वर्णभक्तिभिः
सोमेश्वरो लिखदिमाम् प्रशस्तिं स्वामिव प्रियाभ् ।

(सिलिमपुर लेख ए० इ० १३ पृ० ४२)

अन्य प्रशस्तियों में भी कलाकार का नाम (लेखों के) अंत में मिलता है। महीपाल के लेख में—इमं शासनं उत्कीर्णं श्री महीधर शिल्पिना-वाक्य मिलता है (ए० इ० १४ पृ० ३२३) कई लेखों के उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि सुन्दर अक्षर लिखने के लिए विशिष्ट शिल्पी बुलाए जाते थे। सर्व साधारण के वश की बात न थी कि लेख सुन्दर रीति से उत्कीर्ण किए जायं। यही कारण है कि कुशल कलाविद् (शिल्पी) का नाम गर्व के साथ लिया जाता था। निम्नलिखित उद्धरणों से यह कथन स्पष्ट हो जाता है। पाह्लण शिल्पी का वर्णन इस प्रकार है।

रजपालस्य पुत्रेण पाह्लवेण च शिल्पिना
उत्कीर्णा वर्णघटना वैदग्धी विश्व कर्मणा

(ए० इ० २० पृ० १३१)

नागवर्म नामक शिल्पी के विषय में भी कहा गया है कि वह खोदने की कला में निपुण था।

यशोवर्मसुतेनेयं साधुना नागवर्मणा
रम्या प्रशस्तिरूत्कीर्णा कला कौशलशालिना।

(धनिक की नगर प्रशस्ति-भारत कौमुदी भा० १ पृ० २७६)

इसी तरह कई उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं—

लिपिज्ञान विधिज्ञेन प्राज्ञेन गुण शालिना
सिंहनेयं समुत्कीर्णा सद्वर्णारूप शालिना

(ए० इ० १ पृ० १४७)

उत्कीर्णा सोमनाथेन टङ्क विज्ञान शालिना
उत्कीर्णा प्रचुरसा प्रशस्तिरियमक्षरै रुचिरैः।

(ए० इ० २६ पृ० २६३ : भा १० पृ० ४४, भा० १ पृ० ८१)

इन सभी उद्धरणों का भाव यह है कि ७ वीं सदी के बाद लेख उत्कीर्ण करने की कला सिखलाई जाती थी। विशिष्ट व्यक्ति ही कुशल शिल्पी होकर ताम्र-पट्टिकाओं पर प्रशस्ति खोदा करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेखों की विभिन्न भाषाएं

प्राचीन लेखों की लिपियों के सम्बन्ध में ऊपर कुछ कहा जा चुका है। लिखने की कला के साथ साथ भाषा के सम्बन्ध में भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। भाषा वह है जो हम बोलते हैं। पुराने समय में प्रचलित भाषा को ही लेखों में स्थान दिया गया होगा। परन्तु साहित्य का सहारा न लेकर अभिलेखों की भाषा विचारणीय प्रश्न है। साधारणतया लोगों को प्रशस्तियों की भाषा सम्बन्धी ज्ञान अपूर्ण सा है। पालि का नाम सभी लोग जानते हैं और इसी को बुद्ध धर्म-ग्रंथ तथा अशोक के धर्मलेखों की भाषा मानते हैं। आज २५०० वर्ष पहले मगध में जो भाषा बोली जाती थी उसका नाम 'मागधी' था। बुद्ध ने सर्व साधारण की भाषा होने के कारण इसी मागधी का प्रयोग किया जिसे अशोक ने धर्म लेखों में प्रयुक्त किया था। चुल्लवग्ग (५, ३३, १) में ऐसा वर्णन आता है कि भगवान ने लोगों को अपनी भाषा में बुद्ध-वचन सीखने की आज्ञा दी—अनुजानामि भिक्खवे सकाय निमत्तियां बुद्ध बचनं परिया पुणितुं। कच्चायन व्याकरण में इसका निम्न प्रकार उल्लेख है—सा मागधी मूलभाषा सम्बुद्धा चापि भासरे (भगवान के बोलने की मूलभाषा को मागधी नाम दिया गया था) सामंत पसादिका के "समासम्म बुद्धेन वुत्तपकारो मागध को वोहारो" तथा विशुद्ध मग्ग के "मागधिकाय सबा संत्तानं मूलभासाय" उद्धरणों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि बुद्ध ने मागधी में ही अपना प्रवचन आरम्भ किया था। अशोक ने उसी मागधी का प्रयोग धर्म लेखों में किया। इसलिए राजा शब्द के स्थान पर लाजा प्रयुक्त मिलता है जैसे एग्यारहवें प्रधान शिलालेख और सातवें स्तम्भ लेख में "देवानं पिये पियदशी लाजा हेवं आहा" उल्लिखित हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि राजा शब्द का प्रयोग सदा के लिए स्थगित कर दिया गया था। मागधी का प्रयोग प्रायः सर्वत्र (अशोक के साम्राज्य में) होता रहा, केवल मगध तथा मथुरा के मध्य भाषा को अर्द्ध मागधी कहा गया है जिसमें र अथवा श का प्रयोग नहीं मिलता। पश्चिमी भारत में र तथा श का ज्ञान लोगों को था।

पालि

अशोक के पश्चात् मागधी भाषा का नाम प्रचलित न रहा परन्तु पालि शब्द से वह भाषा प्रसिद्ध हुई। पालिग्रंथों का इतिहास यह बतलाता है कि अशोक के समय में भी पालि का ज्ञान था। बैराट का लेख (भाब्रू धर्म लेख) बतलाता है कि विनय तथा सूत्त पिटकों का वर्गीकरण हो गया था। परन्तु मौर्ययुग के पश्चात् पालि का कुछ दूसरा रूप मिला है। कला के आधार पर यह ज्ञात है कि शुंगकाल में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जातक का प्रदर्शन भारहुत तथा सांची की वेदिका तथा तोरण पर क्रमशः हो चुका था।भारहुत के जातक प्रदर्शनों का नाम भी पालि में व्यक्त किया गया है। (Levelling of the sculptures) उन संक्षिप्त पालि लेखों में सूत्तंतिक (सूत्त का व्याख्याता) पंचने कायिक (पांच निकायों का ज्ञाता) तथा पेटकिन (पिटक को जानने वाला) शब्दों का प्रयोग मिलता है। अतएव यह कहना उचित होगा कि ईसा पूर्व तीसरी सदी के बौद्ध संगीति में सभी ग्रंथों का अंतिम रूप तैयार न हो सका। अशोक के पश्चात ही पालि साहित्य का सृजन सम्भव मालूम पड़ता है। पालि में र का सर्वत्र प्रयोग है तथा मागधी की भी झलक है। पालि शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम (५ सदी में) बुद्ध घोष के ग्रंथ में मिलता है जहां इसे दो अर्थों में प्रयुक्त किया गया है (१) बुद्ध वचन या (२) त्रिपटक (बौद्ध साहित्य) बुद्धघोष की जीवनी में उल्लेख आता है कि उनके गुरु ने बुद्ध की कथाओं को सिंहली से मागधी में रूपान्तर करने की आज्ञा दी। जिस भाषा में सिंहली कथाओं का रूपान्तर हुआ वही पालि मानी जाती है--

कता सिंहल भासाय सीहलेसु पवत्तति
तं तत्थ गन्त्वा सुत्वात्वं मागधानां पवसति

(महावंस परि० ३७)

यानी मागधी का ही नाम पालि था। संस्कृत भावा में पालि का अर्थ पंक्ति भी है लेकिन दक्षिण में इससे यह भाव प्रकट होता है "उन ग्रंथों की पंक्तियां" जिसमें बुद्ध के मूल बचन संग्रहीत हैं।

डा० वेलसर पालि को पाटलि का अशुद्ध रूप मानते हैं जिसे (पाटलि को) पाटलिपुत्र की भाषा कहते थे (इ० हि० क्वा० भा० ४ पृ० ७७३) पालि का अर्थ यह भी मानते हैं कि वह गद्य बिना विराम के शीघ्रता से लिखा जाय। जैसा चुल्लवग्ग का उद्धरण दिया गया है। 'परियाय' शब्द कई बार त्रिपटक में प्रयुक्त है। अंगुत्तर निकाय में परियाय शब्द बार बार आता है (धम्म परिया-योति इमं धम्म परियायं, अयं भंक्ते धम्मपरियायोति)। अशोक के भाब्रू लेख में "इमानि भंते धम पालियायानि-------भगवता बुधेन भासिते एतानि भंतेधंम पलियायानि" ऐसा उल्लेख आता है। इससे तात्पर्य यह निकलता है कि पलियाय अथवा परियाय शब्दों में बुद्ध के उपदेश का भाव निहित है। दीघ निकाय में भी परियाय का अर्थ बुद्धवचन समझा गया है "भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो" यदि शब्दों के रूपान्तर का क्रम देखा जाय तो पता चलता है कि परियाय, पलियाय में बदल गया जो कालान्तर में पलीयाया अथवा पालीयाय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बन गया । पालि शब्द अंतिम पालियाय का संक्षिप्त रूप है। भाषा शास्त्रियों ने भी परियाय,पंक्ति, पाल, पल्ली, पालि आदि शब्दों को एक ही श्रेणी में रक्खा है। ऐसा जान पड़ता है कि बुद्ध के परि निर्वाण के बाद पाली (पालि) शब्द का प्रयोग उस भाषा विशेष के लिए किया गया जिसमें उन्होंने उपदेश दिया था। पालि को मागधी का उपनाम मान सकते हैं जिसे अशोक के धम्मलेख में पाते हैं। अतएव मगध ही पालि का जन्म स्थान था। मागधी में कुछ स्थानीय समिश्रण होकर पालि भाषा का प्रचार हुआ। अन्त में पालि शब्द के विषय में तीन विभिन्न मतों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। जैसा कहा गया है यह शब्द निम्न रूप में—

पङक्तिः— पन्तिः—पत्ति-पट्ठि-पल्लि-पालि विकसित हुआ। संस्कृत में इसका अर्थ पंक्ति से हैं जिसे बौद्ध ग्रंथ अभिधानप्प दीपिका में भी इसी अर्थ (पंक्ति) में प्रयुक्त किया गया है (पालि-पंक्ति, वचनं पन्ति पालि) दूसरा मत यह है कि पालि शब्द पल्लि से बना जिसका (पल्लि) का अर्थ है ग्राम। यानी ग्राम में बोली जाने वाली भाषा को पालि नाम दिया गया और वह नगर की भाषा संस्कृत से भिन्न थी। तीसरा मत मैक्समूलर का था और वह पालि का सम्बन्ध पाटलिपुत्र की भाषा से मानते हैं। परन्तु यह मत मान्य नहीं है क्योंकि मगध की भाषा पालि नहीं थी (जैसा ऊपर कहा गया है मागधी थी)। इन समस्त विचारों को सामने रखते हुए भी पालि शब्द की व्युत्पत्ति तथा विकास विवाद-ग्रस्त प्रश्न है।

पालि के जन्म-स्थान के विवेचन में न जाकर यह कहा जा सकता है कि अधिकंतर विद्वान मागधी को ही इसका आधार मानते हैं। भगवान बुद्ध ने

पालि का स्थान

अपने धर्म प्रचार के लिए किसी विशेष भाषा का निर्देश नहीं किया। उनका उपदेश बोलचाल की भाषा (पालि=मागधी) में ही सीमित रहा। पालि में ४१ वर्ण हैं जिसमें तालव्य श या मूर्धन्य ष नहीं पाया जाता। ऐ, औ, विसर्ग रेफ का पालि में स्थान नहीं है। पालि बोलचाल की भाषा होने से संस्कृत से सरल थी। उस समय की बोली को प्राकृत का भी नाम दिया जाता है। कुछ विद्वान प्राकृत शब्द को प्रकृत (आधार) से बना मानते हैं। अतः प्राकृत भाषा तो संस्कृत की उत्तराधिकारिणी हो जाती है। संस्कृत (old-Indo-Aryan language) के बाद ही प्राकृत का प्रचलन हुआ जो स्थान तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होती रही। यद्यपि यह पालिसमूह [दक्षिण बौद्ध धर्मग्रंथ, अशोक के धर्मलेख तथा अन्य मुद्रा लेख] से कुछ भिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है परन्तु साधारण परिभाषा में इसे जनसाधारण की बोली ही मानते हैं जो व्याकरण के नियमों से सीमित नहीं है। महायान बौद्ध संस्कृत ग्रंथों में प्राकृत का प्रयोग मिलता है। इन्डो-आर्यन समूह में प्राकृत का स्थान मध्य में रक्खा जाता है (Middle Indo-Aryan) जो ईसा पूर्व ६०० से ईसवी सन् ११०० तक प्रचलित रही। संस्कृत के साथ-साथ इसका प्रयोग गुप्तयुग में भी होता रहा। शिष्ट लोगों की भाषा संस्कृत रही और उसकी प्रधानता गुप्त युग में थी। तथापि जन साधारण प्राकृत बोलते थे। अशोक के समय में प्राकृत ने संस्कृत को कुछ सीमा तक दबा दिया था जिसका प्रमाण अशोक के धर्म लेख हैं।

अशोक के पश्चात् दक्षिण भारत के शासक सातवाहन वंशी के लेखों तथा मुद्रा लेखों में प्राकृत का ही प्रयोग मिलता है। नासिक, कन्हेरी तथा कार्ले की प्रशस्तियां प्राकृत में है। उनमें र तथा स के प्रयोग के साथ

प्राकृत

अ के स्थान में ओ का प्रयोग मिलता है। कार्लेलेख में "रञो वासिठीपुतस सामिसिरि" (राज्ञः वासिष्ठीपुत्रस्य स्वामिश्री के लिए) प्राकृत में लिखा है। ग्राम के लिए गामो उल्लिखित है। नासिक लेख में प्राकृत में "सातवाहन कुलयस पतिथापन करस" (यानी सातवाहन कुलयशः प्रतिष्ठापन करस्य) पदवी गोतमीपुत्र शातकर्णी के लिए प्रयुक्त है। इतना ही नहीं सातवाहन नरेशों के सभी प्रकार के सिक्कों में तथा सभी स्थानों में प्रचलित सिक्कों के मुद्रा-लेख प्राकृत में ही मिलता है। उदाहरणार्थ—

रञो गोतमो पुतस सिरि यञ सातकनिसि (प्राकृत में) मिलता है। जिसका संस्कृत रूप होगा—राज्ञः गोतमीपुत्रस्य श्री यज्ञ शातकर्णी। आंध्रदेश, मध्य प्रदेश, मैसूर, पूर्वी घाट तथा सोपारा के भू भाग में सभी मुद्रालेख प्राकृत में हैं। इतना ही नहीं, हाल नामक राजा ने प्राकृत में गाथासप्तसती नामक ग्रंथ की रचना की। आश्चर्य तो यह है कि सातवाहन नरेश वैदिक धर्म के मानने वाले थे। शातकर्णी के सम्बन्ध में उसकी रानी नायनिका ने लिखा है कि राजा ने अनेक वैदिक यज्ञ किया था। नासिक लेख में एक ब्राह्मण (सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण) की पदवी गोतमीपुत्र शातकर्णी के लिए उल्लिखित है। शासन कार्य के लिए प्राकृत भाषा का ही प्रयोग किया। उच्च वर्ग की (शिष्ट लोगों की) भाषा होने पर भी संस्कृत का नाम भी नहीं मिलता। यह तो स्पष्ट है कि उस समय (दूसरी सदी में) रामायण तथा महाभारत का अध्ययन होता था (जो ग्रंथ संस्कृत में थे) तभी तो प्रशस्तिकार ने गोतमीपुत्र शातकर्णी की शक्ति की समता में देवता तथा मुनियों—केशव, राम, भीम, अर्जुन से की है और सगर ययाति, जनमेजय के समान तेजस्वी कहा है। विद्वानों का मत है कि पहली

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सदी ई० स० से एक तरह का मिश्रित संस्कृत का प्रचार हो रहा था जिस का स्वरूप महावस्तु तथा ललित विस्तर में पाया जाता है। पाणिनि तथा पंतजलि द्वारा प्रयुक्त संस्कृत ईसवी पूर्व सदियों में प्रचलित था। परन्तु लेखों में संस्कृत प्राकृत से प्रभावित था जो पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी धन देव के अयोघ्या लेख से स्पष्ट प्रकट है। यह कहा गया है कि जनता में ईसवी सन् के बाद संस्कृत का अधिक प्रचार होने लगा। महाक्षत्रप रुद्रदामन का एक शिलालेख (१५० ई०) जूनागढ़ से उपलब्ध हुआ है जो शुद्ध संस्कृत में उत्कीर्ण है। उसमें "स्फुट लघु मधुर चित्रकान्त शब्द समयोदार अलंकृत गद्यपद्य" का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिम भारत के शक नरेश संस्कृत से अनभिज्ञ न थे। परन्तु कारणवश उन्हें प्राकृत का प्रयोग करना पड़ा था। जूनागढ़ के अतिरिक्त नहपान कालीन सभी लेख (नासिक, जूनार, कार्ले आदि) तथा क्षत्रप मुद्रालेख प्राकृत भाषा में हैं। नासिक लेख में राञो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस लिखा है तो कार्ले में रञो खहरातस खतपस नहपानस खुदा है। जूनार में "राञो महाखतपस सामि नहपानस" उल्लिखित है। मुद्रालेख इस प्रकार है—

"राञो क्षहरातस नहपानस या राञोचहरतस नहपानस"

पश्चिमी भारत के क्षत्रप सिक्कों पर निम्न प्रकार के प्राकृत शब्द सर्वत्र पाए जाते हैं—

प्राकृत	संस्कृत रूप
राञो	राज्ञः
सिरी	श्री
सामि	स्वामी
पुतस	पुत्रस्य
क्षत्रपस	क्षत्रपस्य
रुद्रसिहस	रुद्रसिंहस्य

कालान्तर में क्षत्रप मुद्रालेख संस्कृत से प्रभावित होने लगे। सिहसेनस्य (संस्कृत षष्ठी) महाक्षत्रपस (प्राकृतरूप) के साथ प्रयुक्त पाया जाता है। पुतस के बदले पुत्रस खुदा है। सत्यदाम के स्थान पर सत्यदाम्न लिखा गया। इस तरह जनता में प्रचलित मुद्राओं पर सातवाहन तथा क्षत्रप नरेशों ने प्राकृत का ही प्रयोग किया था। केवल कुछ संस्कृत प्रभावित शब्द क्षत्रप मुद्रालेख में पाए जाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारत में अशोक के दोनों लेख-शहबाजगढ़ी तथा मानसेरा प्राकृत भाषा में लिखे गए थे। उसके पश्चात् भारतीय यूनानी राजाओं ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदेशी होकर भी इसी भाषा को अपनायां। मिलिन्द का विजौर का लेख तथा सभी शासकों के खरोष्ठी में मुद्रालेख प्राकृत में हैं। "मिनेद्रस महरजस कटि अस दिवस" (विजौर लेख) तथा "महरजस त्रतरस हेरमयस" (मुद्रालेख) उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उनके उत्तराधिकारी पह्लव नरेशों के भी मुद्रा लेख प्राकृत में ही अंकित हैं जैसे—रजदिरजस महतस मोअस, महरजस रजरजस, महतस अयिलिषस। पहला लेख राजा मोग तथा दूसरा अयिलिष के मुद्रा पर खुदा है। गुदफरस के तख्ति वहाई लेख में भी ऐसी ही भाषा पाई जाती है—महरयस गुदुव्हरस—वेशखस मसस—(महाराजा गुदफर—वैशाख मास—का० इ० इ० भा० २ पृ० ६२)

कुषाण राजा वीम कदफिस तथा कनिष्क समूह के शासकों के अभिलेख या मुद्रालेख प्राकृत में ही खोदे गए थे। वीमकदफिस के स्वर्ण मुद्रा में निम्न तरह से मुद्रालेख अंकित है—

"महरजस रजरजस सवलोग ईश्वरस महीश्वरस"

कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारी पेशावर में राज्य करते रहे जहां पर (उत्तर पश्चिमी प्रांत, पश्चिमी पाकिस्तान) अशोक के समय से ही खरोष्ठी का प्रसार था। उस लिपि में जितने लेख हैं वह प्रायः प्राकृत में ही हैं। जैसा कहा गया है कि पहली सदी से ही संस्कृत का प्रयोग होने लगा था, इसलिए कनिष्क के प्राकृत लेख संस्कृत से प्रभावित हुए। कनिष्क के पंजाब से उपलब्ध लेखों में "अषडस मसस-----कनिष्कस" प्राकृत भाषा में हैं तो दूसरे में "महरजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य" मिश्रित संस्कृत+प्राकृत है। पूर्वीभाग (यानी उत्तर प्रदेश) में कुषाण लेख संस्कृतमय मिले हैं। हुविष्क का मथुरा लेख (ए०इ० भा० २१) लखनऊ संग्रहालय के जैन प्रतिमा लेख (ए० इ० भा० १० पृ० ११२) तथा वासुदेव का मथुरा प्रतिमा अभिलेख संस्कृत मिश्रित प्राकृत में हैं। इस तरह पता चलता है कि संस्कृत का प्रभाव बढ़ रहा था। बुद्ध धर्म में भी महायान मत वालों ने संस्कृत को अपनाया। बौद्ध संस्कृत साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पालि का प्रचलन पुराना था हीनयान और महायान बौद्धों ने पालि में साहित्य का सृजन किया। अशोक के भाब्रू लेख की चर्चा की गई है जिसके आधार पर धार्मिक तथा साहित्य कार्यों में पालि का प्रयोग सिद्ध होता है। ईसा पूर्व तीसरी सदी लेकर ईसवी सन् की कई शताब्दियों तक पालि का प्रयोग संस्कृत के साथ मिलता है। ईसवी सन् की तीसरी सदी से सर्वत्र राजकीय अभिलेख संस्कृत में उत्कीर्ण होने लगे जो क्रम गुप्तयुग से पूर्णरूपेण कार्यान्वित किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत

यह तो कहा जा चुका है कि रुद्रदायन के जूनागढ़ वाले शिलालेख में (ई० स० १५०) प्रथम वर्ग के संस्कृत का प्रयोग मिलता है। चौथी सदी में गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति चम्पू भाषा में हरिषेण द्वारा लिखी गई जिसमें उसके दिग्विजय का वर्णन है। गुप्तवंशी अभिलेख, मुद्रालेख तथा उत्तर-गुप्तयुग के समस्त अभिलेख व प्रशस्तियां संस्कृत भाषा में ही लिखी हैं। दक्षिण में वाकाटक, चालुक्य, राष्ट्रकूट तथा चोलवंशी लेख संस्कृत में खोदे गए थे। अतएव संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तीसरी सदी से बारहवीं सदी तक भारतवर्ष में ताम्रपत्र या प्रशस्तियां संस्कृत में ही लिखी गई। आश्चर्य तो यह है कि गुप्तकाल में अभिलेखों के अतिरिक्त मुद्रा-लेख भी संस्कृत में लिखे गए और वह भी छंदोबद्ध मिले हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त की दण्डधारी तथा प्रथम कुमार-गुप्त के अश्वारोही मुद्रा पर उपगीति छंद में क्रमशः "समर-शत-वितत विजयो जितरिपुरजितो दिवं जयति" और "गुप्तकुलामल चन्द्रो महेन्द्र कुर्माजितो जयति" —अंकित हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त का सिंहनिहंता प्रकार के सिक्के पर वंशस्थविल छंद में निम्न लेख मिलता है—

"नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंह विक्रमः"

प्रथम कुमारगुप्त के खड्ग निहन्ता (गैंडा मारने वाला) प्रकार सिक्के पर श्लेषात्मक शब्द का प्रयोग है तथा मुद्रा लेख छंदोवद्ध भी हैं। खड्ग शब्द गैंड़ा तथा तलवार के लिए प्रयुक्त है। इसी प्रकार चांदी के सिक्कों पर छंदयुक्त लेख—"विजितावनिरवनिपतिःकुमार गुप्तो दिवं जयति" उत्कीर्ण है।

इसी प्रकार के छंद्वोबद्ध लेख मध्यदेश, मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश में दो सौ वर्षों तक लिखे गए। तोरमाण, मौखरि, हर्षवर्धन तथा कलचूरी रजत मुद्राओं पर वैसा ही लेख पाया जाता है। तात्पर्य यह है कि सर्वसाधारण जनता संस्कृत से विज्ञ थी। अतएव मुद्रा लेख पद्यमय तथा छंदमय अंकित किए गए। इसका यह अर्थ नहीं कि प्राकृत का प्रयोग लेख या साहित्य में समाप्त हो गया था। प्राकृत, (वैयाकरणों ने जिसका विवरण दिया है) संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त है। मध्य इन्डो आर्यन (Middle Indo Aryan) के वर्णनात्मक साहित्य में प्राकृत को स्थान मिल चुका था और उसमें पांच बोलियाँ सम्मिलित थीं—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची तथा अपभ्रंश। भरत नाट्यशास्त्र तथा रुद्रट के काव्यालंकार में प्राकृत का प्रयोग है। उस युग के वृहत्तर भारत की खोतानी (खरोष्टी लिपि में) भारतीय प्राकृत का उदाहरण उपस्थित करती है। इसी के साथ हिन्दू, बौद्ध तथा जैनियों द्वारा संस्कृत का प्रयोग पुराने इन्डो आर्यन (Old Indo Aryan) भाषा परिवार की याद दिलाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है जो वैयाकरणों द्वारा पीढ़ियों से सुरक्षित रक्खा गयी थी और बाद में लोकप्रिय साधारण साहित्य में प्रयुक्त हुई। भारतीय संस्कृति का रक्षण इन्हीं भाषाओं के (संस्कृत तथा प्राकृत) द्वारा हुआ है।

भारतीय अंकों का विकास

मनुष्य की बुद्धि के सबसे महत्वपूर्ण (दो कार्यों की) कल्पना हमारे सम्मुख आती है। जिसमें ब्राह्मी लिपि तथा वर्तमान शैली के अंक का नाम लिया जा सकता है। भारतीय लिपि का विकास लोगों को आश्चर्य में डाल देता है। भारतवर्ष की लिपि हजारों वर्षों से अपना स्थान बना चुकी थी, वैसी उत्तम, स्थिति किसी अन्य लिपि को प्राप्त नहीं थी। ब्राह्मी के ध्वनि तथा अक्षरों में साम्य है यानी पूर्णरूपेण वैज्ञानिक ढंग पर विकसित हुई। इसी तरह अंक के भी मूल्य आंके जा सकते हैं। आरम्भ में संसार की अंक विद्या अवैज्ञानिक थी। कहीं अक्षर भिन्न अंक के लिए काम में लाए जाते तो कहीं १-९ तक के पृथक-पृथक चिह्न थे। भारत में भी अंकों का प्राचीन क्रम यही था। इस जटिल अंक-क्रम से गणित विद्या में विशेष उन्नति नहीं हो सकती थी, अतः यहां के विद्वानों ने वर्तमान अंक-क्रम को निकाला जिसमें १ से ९ तक के नव अंक एवं खाली स्थान सूचक शून्य—इस दस चिह्नों से अंक विद्या को पूर्ण बनाया। भारतवर्ष के इस अंक-क्रम को संसार भर ने सीखा और वर्तमान समय में गणित तथा तत्सम्बन्धी अन्य शास्त्रों की उन्नति हुई।

शिला लेख, दानपत्रों तथा सिक्कों के देखने से पता चलता है कि लिपियों की तरह प्राचीन तथा अर्वाचीन अंकों में भी अन्तर है। आकृति के अतिरिक्त अंक लिखने में भी भेद है। प्राचीन ढंग में शून्य के लिए कोई स्थान न था। दहाई, सैकड़े, हजार के लिए पृथक चिह्न थे। किन्तु नवीन शैली पूर्ण है जिसमें शून्य का व्यवहार तथा स्थान का मूल्य ज्ञात है।

प्राचीन अंक

प्राचीन काल में अंक १ से ९ तथा १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९० तक के नव दहाइयों के लिए नव और १०० के अलग-अलग चिह्न थे। एक हजार का भी पृथक चिह्न था। लाख करोड़ के लिए अभिलेखों में कोई चिह्न नहीं मिलता। ११ से ९९ तक लिखने का क्रम ऐसा था कि पहले दहाई के अँक-चिह्न बाद में इकाई का अंक लिख दिये जाते थे। जैसे २५ के लिए २० का चिह्न और ५ का। ९३ के लिए ९० के चिह्न के साथ ३ रक्खा जाता। २०० से लिए १०० के चिह्न में ऊपर मध्य या नीचे सीधी रेखा जोड़ दी जाती थी। ९९५ के लिए ९००, ९० तथा ५ के चिह्न काम में लाए जाते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थे। १, २, ३, के लिए क्रमशः १, २ या ३ आड़ी लकीर का प्रयोग होता था जो आगे चलकर वर्तमान १, २, ३ बन गया। ४ से १००० तक के लिए चिह्न अक्षरों से मिलते जुलते हैं। यानी अक्षर लिखकर अंक व्यक्त किए जाते थे। उदाहरण के लिए ५ पु से, ६ द से, ७ ड की मात्रा से तथा ८ ट से मिलता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सब अंक अक्षरों से ही बतलाए जाते रहे। आरम्भ में अंकों का भी जन्म मौर्य काल से पाया जाता है।

भगवान लाल इन्द्र जी का मत था कि अंक अक्षर या संयुक्ताक्षर के सूचक हैं। पश्चिमी विद्वानों में वुलर तथा वर्नेल भी यह सिद्धान्त मानते थे। वेले का मत था कि भारत के अंक मिश्र या फिनिशिया से लिए गए (जैसा ब्राह्मी के सम्बन्ध में कहा गया है) पं० गो० ही० ओझा का मत था कि भारतीय अंकों की कल्पना ब्राह्मणों ने की। विदेशी चित्र-अंक तो जटिल थे। १ से ९ तक नव खड़ी लकीर तथा १९ के लिए १० के चिह्न की बाई ओर ९ खड़ी लकीरें खींचते थे। पीछे से मिश्र वालों ने भारतीय अंक जैसा नवीन क्रम तैयार किया।

ऊपर जैसा कहा गया है नवीन शैली में १ से ९ तक के लिए नव अंक तथा खाली स्थान का सूचक शून्य है। इसी से अंक विद्या का समस्त व्यवहार चलता है। इसमें प्रत्येक अंक संख्या के ही ईकाई सूचक नहीं हैं परन्तु ईकाई, दहाई, सैकड़ा तथा हजार आदि स्थानों पर आ सकते हैं। यानी स्थान के मूल्य की नवीन कल्पना प्राचीन काल में उपस्थित की गई। इस तरह दाहिनी ओर से बाई ओर अंक हटने से प्रत्येक अंक का स्थानीय मूल्य दस गुना हो जाता है। इसी को दशगुणोत्तर संख्या कहते हैं और वर्तमान काल में संसार भर का अंक क्रम यही है।

भारत में शब्द तथा अंक में तिथि का उल्लेख प्रशस्तियों में किया गया है। अशोक के रूपनाथ शिला लेख में २००+५०+६ लिखा है। मिलिन्द कालीन (ई० पू० ११५) शिनकोट लेख में ब्राह्मी में १४ के लिए १०+४ उपयुक्त नहीं है किन्तु ४+४+४+१+१ लिखा है। मथुरा अथवा पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप लेखों में पुरानी शैली के अँक-क्रम से तिथियां लिखी हैं। ७३ के लिए ७०+३ (सोडास का लेख) : २६ के लिए २०+४+१+१ (गुदफर का तख्त-वहाई शिलालेख) १३४ के लिए १००+२०+१०+४ (कलवान ताम्रपत्र) १८ के लिए १०+४+४ (कनिष्क का मानिकियाला लेख) ४६ के लिए ४०+६ (जूनार का लेख), ८२ के लिए ८०+२ (चन्द्रगुप्त का उदयगिरि का गुप्त लेख); ११३ के लिए १००+१०+३ (प्रथम कुमार गुप्त का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धनैदह ताम्रपत्र) तथा २२४ के लिए २००+२०+४ (दामोदरपुर का ताम्रपत्र) का तिथिक्रम यह बतलाता है कि मौर्य युग से लेकर ई० स० छठी सदी तक प्राचीन शैली के अंक प्रयुक्त होते थे जिनमें अंक-स्थान-मूल्य का अभाव था।

अंक व्यक्त करने की प्राचीन भारतीय शैली

अंक लिखने का इतिहास यह बतलाता है कि भारतीय अंक को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) खरोष्ठी अंक (२) ब्राह्मी (३) शब्द तथा अक्षर। खरोष्ठी अंक ईसवी पूर्व ४०० से तीसरी सदी तक कई अभिलेखों में मिलते हैं जिनको भारतीय यूनानियों ने गान्धार प्रदेश में उत्कीर्ण कराया था। ब्राह्मी अंक अशोक से पहले के नहीं मिले हैं। सातवाहन राजा के नाना घाट लेख में अधिक अंक खुदे हैं। जिसमें १ से ९ तक के अंक अंकित हैं। शक वंशी लेखों तथा मुद्राओं पर अधिक मात्रा में अंक खोदे गये थे। नासिक के गुहा लेख में पर्याप्त परिष्कृत अंक मिलते हैं। उन लेखों में ९ से अधिक अंक नहीं मिलते । शून्य के अभाव में उन अंकों का स्थान मूल्य निश्चित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक सँख्या को पृथक-पृथक अंक लिखकर व्यक्त किया जाता था। तीसरी शैली शब्द तथा अक्षर द्वारा अंक व्यक्त करने की थी। यह हिन्दुओं की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था थी । ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट--सिद्धान्त में अंक के लिए शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए शक ८६७ लिखने के लिए गिरि (=७) रस (=६) तथा वसु (=८) शब्दों द्वारा उस संख्या को व्यक्त किया गया है। उन शब्दों को दाहिने से बाएं पढ़ा जाता था। उस स्थिति में शब्द द्वारा पूर्णरीति से अंक लिखने की परिपाटी काम कर रही थी। सर्वप्रथम कात्यायन श्रौतसूत्र में इसका प्रयोग हुआ परन्तु इस परिपाटी का जन्मदाता अज्ञात है। वराहमिहिर ने भी वृहत्संहिता (अध्याय ८) में शब्दों द्वारा अंक व्यक्त किया है (संख्या-७, अश्विन--२, वेद ४=४२७ शक काल) दिल्ली संग्रहालय के एक लेख से उपरियुक्त विषय को पुष्टि होती है। इसमें १३८४ विक्रम के लिए निम्न पद्य मिलता है (ए० इ० भा १ पृ० ९४)

वेदवस्वग्नि चन्द्रार्क संख्येब्दे विक्रमार्क्कतः
पंचम्यां फाल्गुन सिते लिखितं भौमवासरे

(वेद--४, वसु--८, अग्नि--३ तथा चन्द्र--१ को दाहिने से बांए पढ़ने पर सं० १३८४ हो जाता है।)

वैदिक साहित्य को छोड़ कर ज्योतिष तथा गणित सम्बन्धी ग्रंथों में संख्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूचक सांकेतिक शब्द मिलते हैं जो मनुष्य के अंग, ग्रह, नक्षत्र आदि के संख्या पर से कल्पित किए गए थे। निम्न प्रकार के संकेत मिलते हैं—

०=आकाश (क्योंकि आकाश खाली होता है)
१=चन्द्र, धरा आदि (जिनकी संख्या एक है)
२=नेत्र, पक्ष, बाहु आदि (जो दो ही मिलते हैं)
३=राम, गुण, लोक आदि (तीन समझे गए हैं)
४=वेद, दिशा, आश्रम (इनकी संख्या चार हैं)
५=पाण्डव, रत्न आदि (जो गिनती में पांच हैं)
६=रस, दर्शन (षट् रस या षडदर्शन ६ हैं)
७=ऋषि, वार (सप्तर्षि, सात दिन)
८=मंगल, दिग्गज (अण्टमांगलिक या आठ दिशाओं के हाथी)
९=ग्रह, निधि (नवग्रह या नवनिधि से ९ का बोध होता है)
१०=दिशा, अवतार। (दश दिशा या दश अवतार)
११=रुद्र, (रुद्र एग्यारह माने जाते हैं)
१२=मास, राशि (बारह महीना या बारह राशि)
१५=तिथि (पक्ष में पंद्रह तिथियां होती हैं)
२४=गायत्री
३२=दंत (मनुष्य के बत्तीस दांत होते हैं)

इस तरह शब्दों से अंक बतलाने की परिपाटी पुरानी है।

आर्यभट्ट ने अक्षर द्वारा अंक लिखने की परिपाटी निकाली। फ्लीट का मत था कि उन्होंने यूनान से अनुकरण किया (ज० रा० ए० सो, १९११ पृ०७२५) परन्तु निम्नलिखित बातों से प्रकट होता है कि आर्यभट्ट ने किसी आर्य से पृथक जाति की नकल नहीं की। आर्यभट्ट ने व्यंजन से ही अंक को व्यक्त किया क्योंकि उनका मत था कि स्वर स्थायी नहीं रहते तथा व्यंजन में छिप जाते हैं। १ से ९ तक संख्या को अंक पल्ली तथा दसवें शून्य को सून्य बिन्दु (या शून्य) कहते थे। शून्य के सम्बन्ध में कहना कठिन है कि किस विद्वान ने इसे जन्म दिया या शून्य विन्दु की कल्पना उसे सूझी। इसमें संदेह नहीं है कि अंक का स्थान-मूल्य भारतीय है और दशगुणोत्तर अंक क्रम को (दशमलव शैली) भारत से ही योरप तथा अरबवालों ने सीखा। इसीलिए अरबी में इसे हिन्दसे कहते है।

साहित्यिक तथा अभिलेखों के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि ५०० ई० से शन्य का प्रयोग भारत में होने लगा था जिससे अंकों के स्थान-मूल्य निश्चित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो सका। आर्य भट्टीय के गणित पाठ में वर्तमान अंक प्रणाली का आरम्भ दिखलाई पड़ता है। बख्शाली (अंक गणित) पोथी में नवीन शैली के अंक मिले हैं (यानी चौथी सदी में इसका व्यवहार था) वराहमिहिर ने (छठी सदी) वृहत्संहिता में अंक पर लिखते समय शून्य का प्रयोग किया है। वाण ने वासवदत्ता के सम्बन्ध में आकाश के तारे को शून्य के सदृश बतलाया है। ब्रह्मगुप्त ने (सातवीं सदी) शून्य पर विचार किया है। ७वीं सदी में शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्र की टीका में इकाई तथा दहाई का उल्लेख मिलता है। गणितसार संग्रह (८३० ई०) में लेखक ने शून्य पर अपना विचार व्यक्त किया है। श्री हर्ष ने नैषध चरित में शून्य बिन्दु कहकर शून्य का विवरण दिया है तथा दमयन्ती के कान की उपमा नव अंक से दी है (७-६९)। इस तरह साहित्य ग्रन्थों से पता चलता है कि पांचवीं सदी के बाद शून्य की कल्पना गणित में आ गई थी जिसके सहारे स्थान-मूल्य को निश्चित करने में सरलता हो गई। सुधार द्विवेदी ने यह मत व्यक्त किया है कि शाके ४२० तक हिन्दुओं में १ से ९ तक ही अंक दिखलाने का प्रचार था (गणित का इतिहास पृ० ३८)।

दशमलव प्रणाली

जहां तक अभिलेखों का सम्बंध है नवीन शैली के अंक कलचुरी सम्वत् ३४६ (=५९४ ई०) के गुर्जर लेख में व्यवहृत दिखलाई पड़ते हैं। यही सब से प्राचीन लेख है जहां अँक स्थान-मूल्य की कल्पना वैज्ञानिक ढंग पर मिलती है। इस तरह के अनेक लेख प्रकाश में आए हैं जिनमें दसवीं सदी तक नवीन शैली के अँक (स्थान मूल्य सहित) उल्लिखित हैं (इ० हि० क्वा० भा० ३ पृ० ११८) इससे पता चलता है कि छठी सदी से पहले भारतीय जनता स्थान मूल्य द्योतक अंक क्रम से परिचित न थी। ग्वालियर के लेख (सम्वत् ९३३) में शून्य स्पष्ट रूप से लिखा है। उस में पचास वर्तमान अँक की तरह पांच पर शून्य लिख कर अँकित है। इन सभी प्रमाणों से विदित होता है कि दशगुणोत्तर अंक क्रम भारतीय है तथा शून्य और अँक स्थान मूल्य के सिद्धान्त को पश्चिम वालों ने भारत से सीखा। यदि वर्तमान अँकों के आकार पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि नानाघाट तथा नासिक लेखों में अँकित अँकों से वर्तमान अंक विकसित हुए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वर्तमान नागरी अँक ब्राह्मी लेखों में उल्लिखित ब्राह्मी अँकों से विकसित हुए। नानाघाट (पूना के समीप) का लेख ई० पू० दूसरी सदी का है तथा नासिक गुहा लेख दूसरी सदी का। विकास का क्रम निम्न प्रकार से है। यानी

नागरी अँक १--अशोक के १ से (खड़ी लकीर से।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नागरी अंक २—नानाघाट के २ (दो=पड़ी लकीर से)
" " ३—नानाघाट के ३ (तीन पड़ी लकीर से ☰)
" " ४—नासिक गुहा ४ से
" " ५--प अक्षर से
" " ६—अशोक के ६ से
" " ७--नानाघाट के ७ से ।
" " ८—नासिक गुहा के ८ से।
" " ९—नानाघाट
या
नासिक गुहा के ९ से
" शून्य ० --वृत्त से या
नानाघाट के दस के चिह्न से (दस का चिह्न नागरी अंक ०--के तरह होता है)

ये सब चालुक्य, परमार, कलचुरी लेखों से प्राप्त अँकों से मिलते-जुलते हैं । इस तरह यह ज्ञात होता है कि अंक लिखने की जो भी परिपाटी थी, दसवीं सदी से उनका स्वरूप निश्चित हो गया और सभी सर्वथा नागरी अंक हो गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ९

अभिलेखों में आर्थिक-विवरण

प्राचीन भारत में न केवल आध्यात्मिक उन्नति पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी किन्तु भौतिक क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति दृष्टि में आती है। उस समय के अभिलेखों में सामाजिक विषयों पर चर्चा करते समय आर्थिक वर्णन भी प्रशस्तिकार उपस्थित करता था। जनता द्वारा दान देने की प्रणाली से प्राचीन समय के वैभव तथा सुखी जीवन का अनुमान लगाया जा सकता है। धन तथा भूमि दान से लोगों की संतोशप्रद आर्थिक-स्थिति का परिज्ञान होता है। गुप्तकालीन एक लेख में वर्णन आता है कि साम्राज्य में कोई भी अति दरिद्र तथा दुखी न था––

आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड् न वा यो भृश पीडितः स्यात्
(स्कन्द का जूनागढ़ लेख-का० इ० इ० ३ पृ० ५८)

दानपत्रों के विवरण से जनता की प्रचुर सम्पत्ति का ज्ञान हो जाता है। यद्यपि मौर्ययुग से लेखों में किसी न किसी आर्थिक विषय का उल्लेख पाया जाता है परन्तु मध्ययुग से (७०० ई०) भूमिदान के सम्वन्ध में कथित वार्ता से जनता की आर्थिक स्थिति स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है।

भारतवर्ष सदा से कृषि प्रधान देश रहा है और जनता के जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि ही था। सभी प्रकार के अन्न तथा फल यहाँ पैदा होते थे जिनका नाम प्रशस्तियों में मिलता है। यद्यपि अशोक ने फलों का नाम नहीं लिखा है परन्तु दूसरे शिलालेख में निम्न उल्लेख से पता चलता है कि फलों के वृक्ष स्थान-स्थान पर लगाए गए थे––

मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च
(दूसरा शिलालेख)

मौर्ययुग के पश्चात् प्रशस्तियों में धर्म या विजय सम्बन्धी वर्णन मिलता है। मध्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

युग के आरम्भ से दान सम्बन्धी आज्ञा पत्रों में भोजन सामग्रियों का नाम भी यत्र-तत्र पाया जाता है। नालंदा के ताम्रपत्र में "सभ्यग् वहुघृत दधिभिः व्यञ्जनैः युक्तमन्नम्" (ए० इ० २० पृ० ४४) का वर्णन नाना प्रकार के व्यंजन युक्त भोजन का परिज्ञान कराता है। पालवंशी आमागाद्दी दानपत्र के वर्णन से प्रकट होता है कि नीची भूमि का दान उत्तम समझा जाता था ताकि उसमें खेती हो सके और वर्षा के जल से पृथ्वी उर्वरा हो जाय। (ए० इ० १५ पृ० २९७)। गहड़वाल लेखों में गन्ना, आम्र, महुआ (मधूक) आदि वृक्षों का वर्णन पाया जाता है (ए० इ० १६ पृ० १३) इससे ज्ञात होता है कि अन्न तथा फल की पैदावार में लोग लगे रहते थे। खेती का समुचित प्रबंध था। तात्पर्य यह है कि दानकर्त्ता कृषि योग्य भूमि को ही दान देता था ताकि दानग्राही खेती से अन्न उत्पन्न कर सके।

भूमि की सिंचाई की ओर राजा का भी ध्यान रहता था और लेखों में सिंचाई निमित्त झील, नहर तालाब तथा बांध के निर्माण का वर्णन मिलता है।

सिचाई का प्रबंध मौर्य युग से ही शासक सिंचाई का प्रबन्ध करता रहा। चन्द्र गुप्त मौर्य ने काठियावाड़ में गिरनार पर्वत के नीचे एक विशाल झील बनवाया जिसकी उपयोगिता इतनी अधिक थी कि पिछले सम्राटों ने (४०० वर्ष बाद) मरम्मत कर उस पर बांध बंधवाया। मेगास्थनीज ने भी सिचाई के विषय में उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र में तो मौर्यकालीन सिंचाई का विस्तृत वृतांत पाया जाता है (२।२३) ई० सन् १५० के महाक्षत्रप रुद्रदामन के गिरनार लेख में उसी झील का सविस्तृत वर्णन मिलता है। [देखिए मूल लेख पृष्ठ संख्या ४४]

मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन
पुष्य गुप्तेन कारितं, अशोकस्य मौर्यस्य यवनराजेन
तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृत कृत ।

लेख के आरम्भ में ही सुदर्शन नामक तालाब का वर्णन है जिसके चारों तरफ बांध बंधे थे। परन्तु समीप के पहाड़ से निकली नदियों में ऐसे वेग से पानी आया कि वह बांध टूट गया (सलिल विक्षिप्त जर्जरीकृतावदीर्ण क्षिप्ताश्म वृक्ष गुल्म लता प्रतानं आ नदी तलादित्युद्घाटितमासीत्) इसलिए रुद्रदामन ने उस बांध की मरम्मत करवाई और तिगुना मजबूत बांध का निर्माण हुआ। यद्यपि इस कार्य में उसके मंत्रीगण विरोध करते रहे परन्तु अपने निजी धन से इस कार्य को उसने सम्पन्न किया (ए० इ० ८ पृ० ४२—स्वस्मात्कोशा महता धनौघेन अनित महता च कालेन त्रिगुण-दृढ़तर-विस्तारायामं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेतुं विधाय) इस भाग में उस तालाब से अत्यधिक सिंचाई होती रही, यही कारण है कि पांचवी सदी में गुप्त शासक स्कन्द गुप्त ने भी उस सुदर्शन झील की मरम्मत कराई। जूनागढ़ के लेख में निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है—

अथ क्रमेणाम्बुद काल आगतं
निदाध-कालं प्रविदार्य तोयदैः
ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं
सुदर्शनं येन विभेद चात्वरात्
अपीहलोके सकले सुदर्शनं
पुमां हि-दुर्दर्शनतां गतं क्षणात्
अ-जाति-दुष्टम्प्रथितं तटाकं
सुदर्शनं शाश्वत-कल्प कालम्

(जूनागढ़ लेख का० इ० इ० ३ पृ० ५८)

तात्पर्य यह है कि जिस समय सुदर्शन झील को नदियों की बाढ़ ने नष्ट किया, उस समय के शासकों ने उस बांध की मरम्मत करवाई ताकि वह सदा सुदर्शन (देखने में सुन्दर) बना रहे। उसकी उपयोगिता ही एक मात्र कारण थी। दक्षिण के सातवाहन नरेश पुलवावी के राज्यकाल में सिचाई के लिए तालाब बनाने का उल्लेख किया गया है। (ए० इ० भा० १४ पृ० १५५)

पूर्वी भारत में जल के कारण नहर की कम आवश्यकता थी तथापि खारवेल ने हाथी गुम्फा लेख में स्पष्ट रूप से लिखा है कि राज्याभिषेक के पांचवे वर्ष में राजधानी तक नहर तैयार किया ताकि जनता लाभान्वित हो सके।

अघोटितं तनसुलिभि वाय पणडि नगरं पवेसयति

(ज० वि० ओ० रि० सो० भा० १३ व० १४ पृ० २२१ व १५०)

गुप्तयुग तक राजाओं का ध्यान नहर निर्माण की ओर था परन्तु ७ वीं सदी से लेखों में तालाव निर्माण का अधिक वर्णन पाया जाता है। मगध नरेश आदित्य सेन की स्त्री कोण देवी ने एक तालाब का निर्माण किया था जो सम्भवतः सिंचाई के लिए तैयार किया गया था [तस्यैव प्रिय भार्यया नरपतेः श्री कोण देव्या सरः-अपसद का लेख का इ० इ० भा० ३) पूर्वमध्ययुग की प्रशस्तियों तथा दानपत्रों में जल के साथ अग्रहार भूमि का वर्णन आता है। इससे यह प्रकट होता है कि गहड़वाल तथा चन्देल शासकों ने तालाब तथा नहर के साथ भूमि दान में दी थी। दानग्राही का भी कार्य उससे सरल हो जाता तथा समय से खेतों की सिंचाई हो जाती थी। राजपुताने के एक चाहमान लेख में प्रत्येक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अरहट की सिंचाई के लिए एक हाटक (हारा अन्न का एक माप) अन्न (यव) कर के रूप में दिया जाता था (अरहट प्रति प्रदत्तं द्रां १ ए० इ० भा० ११ पृ० ३३)। इस तरह के सिंचाई-कार्य का वर्णन लेखों में अधिकतर मिलता है (ए० इ० ११ पृ० ४९ व० ५१). वलभी लेख में विवरण मिलता है कि ध्रुवसेन प्रथम ने तीस पादावर्त माप के क्षेत्र की सिंचाई निमित्त एक कुंआ तैयार कराया था। सम्भवतः एक वापी से ही उस भाग की सिंचाई पूरी हो जाती। गुर्जरप्रतिहार राजा महेन्द्रपाल ने नदी के किनारेभूमि का दान दिया था और सिंचाई के लिए रहट का प्रबंध किया जिससे दानग्राही उस अग्रहार भूमि को सिंचाई से उर्वरा कर सके। (ए० इ० १४ पृ० १८१) सम्भवतः सिंचाई के लिए शासक द्वारा कर लगाया गया था इसीलिए परमार राजा चामुण्डराय की प्रशस्ति में एक रहट पर एक हाटक (कर) का वर्णन है (ए० इ० १४ पृ० ३१०) उत्तर प्रदेश के देवल प्रशस्ति में नहर निर्माण का सुन्दर वर्णन पाया जाता है। शासक ने नदी से राजधानी तक नहर तैयार किया ताकि बाग-बगीचे की सिंचाई सरल होजाय। (स्वपुरी सन्निधौ रभ्या पुण्या कठनदी कृता –ए० इ० भा० १ पृ० १९) महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख में उल्लेख आता है कि एक मोट से सींचने योग्य भूमि को दान दिया गया था (द्वितुल्लाक क्षेत्रं शासनेन प्रदतं--ए० इ० १४ पृ० १८७) उसी प्रसंग में दस माणि (स्यात् मन) बीज द्वारा बोने वाले खेत के दान का विवरण है। वर्तमान आंकड़े के अनुसार एक मन बीज एक बीघा के बोने में पर्याप्त समझा जाता है। अतएव दस बीघा जमीन की सिंचाई एक मोट से की जाती थी।

इस प्रकार नहर, तालाब कुंआ, अरहट तथा मोट की सहायता से पुराने समय में खेतों की सिंचाई होती थी।

भारतीय अभिलेखों में गुप्त युग से ही खेतों के माप का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। भूमि को दान देते समय दानकर्त्ता के लिए क्षेत्र की सीमा तथा उसके माप का स्पष्ट उल्लेख करना नितान्त आवश्यक था।

क्षेत्र का माप

जिस भूभाग को दानग्राही स्वीकार करता उसी क्षेत्रफल से 'कर' ग्रहण करता था तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बंधक भी रखता। यही कारण है कि खेत को माप कर ही दान में दिया जाता था। गुप्त युग से बारहवीं सदी तक के दान पत्रों (ताम्रपत्रों) में माप का दो रूपों में उल्लेख मिलता है। पहली श्रेणी में खेत की लम्बाई चौड़ाई नापने के साधन का नाम उल्लिखित है जो लेखों में विभिन्न नाम से उत्कीर्ण हैं। जैसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हल, पादावर्त, निवर्तन, नल या नालक। द्वितीय श्रेणी में पैमाइश के उस साधन के नाम हैं जो बीज बोने के माप से वर्णित किए गए हैं। जसे **पाटक, द्रोण, माणि, कुल्यवाप** आदि। इसी माप का उपयोग कर भूमि दान में दी जाती थी।

हल शब्द से स्पष्ट प्रकट होता है कि एक हल से जितनी भूमि जोत में रक्खी जाय उस माप का नाम हल था। उत्तरी या दक्षिणी भारत में अधिकतर लेखों में हल का नाम मिलता है (हलस्य भूः—ए. इ. १ पृ. १६७; भा. ३ पृ १२८)। राजपुताने के एक लेख में भी ऐसा ही उल्लेख आता है (ए. इ. ११ पृ. ४७)—पंच हलानि वहिष्कृत्य शेष भूमि शासनी कृत्य प्रदत्ता (ए. इ. २० पृ. १२९) के वाक्य से स्पष्ट हो जाता है पाँच हल से जोतने योग्य भूमि को छोड़कर खेत का शेष भाग दान में दिया जाय। कांगरा के कुछ लेखों में भी।

हल

(१) इहत्येन नवग्राम दत्ता चात्र हलार्ध भूः (ए. इ. भा. १ पृ. १०६)
(२) भूमिश्च हल चतुष्टयं योग्या दत्ता नवग्रामात् (ए. इ. १ पृ. ११५)
(३) हल वाहनीया दत्ता भूमिः (ए. इ. १ पृ. १०१)

अतः उद्धरणों से यह निश्चित हो जाता है कि एक हल से जोत वाली भूमि का अर्थ था जिसकी लम्बाई चौड़ाई के सम्बन्ध में कुछ कहना सम्भव नहीं।

दूसरे माप को पादावर्त कहते थे जिसका वर्णन वलभी दानपत्रों में मिलता है। बारह पादावर्त की भूमि एक कुंआ से सींचने योग्य समझी जाती थी (ए. इ. ११ पृ. ११२ व ११४)। एक पादावर्त भूमि एक वर्ग पाद (=९ इञ्च) के बराबर मानी गयी है और तीन सौ पादावर्त आठ खन्ड के समान माप में समझा जाता था (क्षेत्र खन्डान्यष्टौ यत्र पादावर्त शतत्रयं—ए. इ. भा. ३ पृ. ३२१)।

पादावर्त तथा हस्त

चन्देल तथा गहड़वाल लेखों में हस्त (=हाथ) का नाम क्षेत्र माप के लिए प्रयुक्त किया गया है। ग्वालियर लेख में "परमेश्वरीय हस्त" का उल्लेख है। संभवतः किसी व्यक्ति विशेष के हाथ की लम्बाई प्रामाणिक समझी गई जिस कारण उसका नाम हस्त के साथ जोड़ दिया गया हो। तात्पर्य यह था कि १८ इञ्च से कम का हस्त नहीं हो सकता था। इसके आधे भाग को पाद कहते थे। जिसके कारण एक वर्ग पाद 'पादावर्त' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रतिहार लेख में भी हस्त माप का प्रयोग मिलता है (सियादोनी लेख—ए० इ० भा० १)। गहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र के पाली दान पत्र में चार सौ हस्त भूमि को एक नालुक (=नालक=नल) कहा गया है (ए० इ० भा० ४ पृ०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२४९)। सम्भवतः नल (=११८ इञ्च) एक डंडा होगा जिसकी लम्बाई से भूमि नापी जाती थी (ए० इ० १४ पृ० १५८)। परन्तु नालुक शब्द का कुछ भिन्न तात्पर्य होगा जो चार सौ हाथ लम्बी भूमि के लिए प्रयुक्त किया गया है।

निवर्तन

प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट प्रशस्तियों में निवर्तन शब्द क्षेत्र-माप के लिए प्रयुक्त है (ए० इ० ४ पृ० ६०)। बांसखेरा लेख में सौ निवर्तन भूमि के दान का उल्लेख है (भू निवर्त्तन शतैकं—ए० इ० ११ पृ० १८२)। परन्तु निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है कि इस से किस क्षेत्रफल का परिज्ञान होता था।

कुल्यवाप-द्रोणवाप तथा पाटक

क्षेत्रफल के माप से सर्वथा भिन्न खेतों के नापने का वर्णन बीज-माप से भी किया गया है। गुप्त प्रशस्तियों में 'कुल्यवाप' शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। दानपत्र, क्रय तथा विक्रय के प्रसंग में यही शब्द माप के लिए प्रयुक्त है। दामोदरपुर, वैग्राम, फरीदपुर तथा पहाड़पुर के लेखों में यह शब्द क्षेत्रमाप के लिए उल्लिखित है (ए० इ० १५; भा० २१ पृ० ८१, भा० २० पृ० ६१, मुकुर्जी जुबिली ग्रंथ भा० ३)। निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत है—

(अ) क्षेत्रस्य कुल्यवापमेकस्य—दामोदरपुर

(ब) त्रिदीनारिक्य कुल्यवाप विक्रय मर्यादा—पहाड़पुर

(स) खिलक्षेत्र-कुल्यवाप त्रयं—वैग्राम ताम्रपत्र

(द) कुल्यवापेन क्षेत्राणि विक्रीयमानकानि—फरीदपुर

स्पष्ट है कि पांचवीं सदी से ही कुल्यवाप क्षेत्र माप के लिए उत्तरी भारत में प्रयोग होता रहा। इस शब्द के दो खण्ड हैं, कुल्य+वाप। कुल्य की समता एक टोकरी से की जाय तो इसका अर्थ होगा कि एक टोकरी बीज के बोने योग्य भूमि (कुल्य=टोकरी; वाप=बोना) पांचवीं सदी के लेखों में द्रोण शब्द का भी प्रयोग उसी माप के लिए मिलता है जो कुल्य वाप से छोटा माप है। आठ द्रोण एक कुल्य बीज के बराबर था इसलिए द्रोण मात्र बीज बोने योग्य भूमि को द्रोणवाप कहा गया है। वैजनाथ की प्रशस्ति में द्रोण के धान्य से बोई भूमि को दान देने का वर्णन आता है (धान्य द्रोण द्वयं शिवे —ए० इ० भा० १ पृ० १०६)। "यवानां द्रोणं एकादश" (ए० इ० भा० १ पृ० १५९) भी वाक्य द्रोण को बीज (अन्न) का माप बतलाता है, इसीलिए द्रोण वाप क्षेत्र का माप समझा गया (एरण लेख —इ० हि० क्वा० भा० ४ पृ० ५३)। गुनैधर ताम्रपत्र (एकादश खिल पाटकाः—इ० हि० क्वा० ६ पृ० ५३) तथा सेन वंशी राजा वल्लालसेन के नईहटी लेख में द्रोण के साथ पाटक शब्द भी माप के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उल्लिखित है। वैन्यगुप्त के लेख में भी निम्न विवरण है—

यत्रैक क्षेत्र खण्डे नव द्रोण वाप अधिक
सप्त पाटक परिमाणे सीमा लिङ्गानि
(गुणैधर का ताम्रपत्र लेख—ए० इ० १४ पृ० १५८)

इससे प्रकट होता है कि पाटक द्रोण से बड़ा क्षेत्र स्वीकृत था। समस्त प्रशस्तियों का परीक्षण यह बतलाता है कि—

८ द्रोण = १ कुल्यवाय
५ कुल्यवाप = १ पाटक

यह माप प्रामाणिक समझा गया है। अनुमानतः एक कुल्यवाप सोलह मन अन्न का माप था जिसके द्वारा चौदह बीघा खेत बोया जाता था। पार्जिटर ने बिना किसी प्रमाण के एक कुल्यवाप भूमि को एक एकड़ माना है (इ० ए० ३९ पृ० १९५)। नईहटी ताम्रपत्र में आढ़क माप का भी उल्लेख मिलता है जो द्रोण से भी छोटा था और चार आढ़वाप एक द्रोणवाप भूमि के क्षेत्रफल के बराबर था। (चतुराढ़को भवेद्दोणः—पहाड़पुर ताम्रपत्र—इ० ए० २० पृ० ६१) **आढ़, द्रोण, कुल्य तथा पाटक** बीज के माप हुए जिनसे जितनी भूमि बोई जा सके उसे क्षेत्रमाप के अर्थ में व्यक्त किया गया है। बंगाल में एक आढ़वाप डेढ़ एकड़ भूमि समझी जाती थी। प्रतिहार लेख में एक भूमि के दान का वर्णन है जो दस माणि बीज से बोई जाती थी। इससे यह समझा जा सकता है कि माणि (= मन) को भी क्षेत्रमाप के लिए प्रयुक्त करते थे। एक माणि (= मन) बीज से एक बीघा खेत बोते हैं। इसलिए प्रशस्ति के निम्न उद्धरण—कोसवाह्ने द्वितुल्लाक क्षेत्रं मणिवाप १० शासनेन प्रदत्तं (ए० इ० १४ पृ० १८७) से यह तात्पर्य निकलता है कि दस मन बीज बोने योग्य भूमि (जिसे एक मोट से सींचते रहे) दान में दी गई थी। संभवतः उसका क्षेत्रफल दस बीघा रहा हो। इस प्रकार अभिलेखों के अध्ययन से पैमाइश करने के माप हमें प्राप्त हो जाते हैं। क्षेत्रमाप के उल्लेख से वर्तमान बीघा के रूप में क्षेत्रफल व्यक्त करना कठिन है क्योंकि बीघा का प्रयोग प्राचीन लेखों में नहीं मिलता।

व्यापार की चर्चा

प्राचीन अभिलेखों में शासक द्वारा प्रदत्त अग्रहार भूमि से सम्बन्धित कर (टैक्स) का वर्णन मिलता है। उसी प्रसंग में व्यापारिक संस्थाओं को आज्ञा दी गई थी कि सभी मंदिरों में प्रतिमा की पूजा निमित्त निश्चित 'कर' दिया करें। इस प्रकार लेखों में गौण रूप से व्यापार की चर्चा मिलती है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि तपुस्स तथा भल्लिक नामक व्यापारी बुद्ध के पास बोध गया में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्यमान थे और राजमार्ग से व्यापार में व्यस्त थे। कुछ विशिष्ट व्यापारी राजकीय शासन में सहायता किया करता था यानी शासन-परिषद् का वह सदस्य था। तीसरे प्रकार की हमारी जानकारी प्रशस्तियों में वर्णित प्रमुख स्थान के विवरण से होती है तो प्राचीन समय में व्यापारिक केन्द्र रहे होंगे। एक वंश का प्रमुख स्थानों पर अधिकार इस बात का द्योतक था कि विजेता उस भू-भाग के व्यापार को भी अपने हाथों में लेना चाहता था। अशोक के समय में राजकीय आज्ञा द्वारा मुख्य स्थानों पर ही लेख खोदे गए थे ताकि उस स्थान से आने-जाने वाला व्यक्ति राजाज्ञा से परिचत हो जाय। अशोक ने इस बात की स्पष्ट चर्चा की है। उसके दूसरे शिलालेख में उल्लेख है कि मार्ग में कुएँ खुदवाए गए तथा यात्री गण के आराम के लिए वृक्ष लगवाए गए थे। इस तरह मौर्य युग में राजमार्ग सुगम बनाए गए और अशोक के शासन काल में उड़ीसा से तक्षशिला तक जाने का सुन्दर मार्ग रहा होगा। सम्राट् अशोक के प्रांतपति उज्जैन, सुवर्णगिरि तथा तक्षशिला में शासन करते थे। सारनाथ तथा कौशाम्बी नगर प्रधान मार्ग पर स्थित रहे और सांची का महत्व कम न था। चार् मार्गों का संगम (चातुमहापत्रे-परिनिर्वाण सूत्र) होने के कारण वहां अशोक ने स्तूप बनवाया तथा स्तम्भ लेख खुदवाया। अशोक ने स्वयं बहुत बड़ी सेना के साथ कलिंग पर आक्रमण किया जिसमें लाखों व्यक्ति मारे गए तथा डेढ़ लाख कैद किए गए थे [कलिंग विजित दिअढ़ मते प्रण शत सहस्रे ततो अपवूढ़े] इस प्रकार यह अनुमान सही ज्ञात होता है कि अशोक के समय में बड़े राजमार्ग थे जिन पर व्यापार होता था।

शासकों के आक्रमण तथा विजित प्रदेशों से भी व्यापारिक केन्द्रों का पता लगता है। कनिष्क के सारनाथ प्रतिमा लेख (ए० इ० भा० ८ पृ० १७३) में वाराणसी का नाम उल्लिखित है जो प्राचीन भारत का प्रसिद्ध नगर रहा। है। उसके महत्व को समझ कर ही जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का नाम कई बार उल्लिखित है। द्वितीय शताब्दी के नासिक लेख में क्षत्रप नरेश नहपान के जामाता ने भरुकच्छ (भरौंच) दशपुर (मंदसोर, मालवा), गोवर्धन (नासिक) तथा शोर्पारग (सोपारा) का नाम गर्व के साथ उल्लिखित किया है। ये चारों स्थान महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थे और भरौंच तथा सोपारा व्यापार के निर्यात के लिए प्रसिद्ध वन्दरगाह थे। [ए० इ० भा० ८]। महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में अनेक प्रसिद्ध स्थानों के नाम आते हैं जहां से सातवाहन वंश का अधिकार हटाकर स्वयं शासन करने लगा। उसमें मालवा, आनर्त (उत्तरी काठियावाड़), अपरान्त (उत्तरी कोंकण) सुराष्ट्र (दक्षिणी काठि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यावाड़) राजपूताना, सिन्धु आदि स्थानों का नाम उल्लेखनीय है जो व्यापार के कारण समृद्ध भू-भाग थे। इस तरह लेखों का अध्ययन व्यापारिक केन्द्रों की जानकारी देता है।

क्षत्रप अभिलेखों के सदृश माढ़रिपुत (सातवाहन-सामंत) के चौदहवें वर्ष के लेख में सिंहलद्वीप के बौद्ध भिक्षुओं द्वारा चैत्य के दान का वर्णन है जिन भिक्षुओं ने काश्मीर, गांधार, चीन, तोसली (मैसूर) अपरान्त, वंग आदि प्रदेशों में बौद्धधर्म का प्रसार किया था। इन भू-भाग की केवल भौगोलिक जानकारी ही नहीं होती किन्तु समृद्ध नगर या प्रांत होने की बात सिद्ध होती है। सातवाहन सिक्कों (पुलमावी तथा यज्ञश्री) पर नाव का मस्तूल चोल मण्डल से पूर्वी द्वीप समूहों में भारतीय व्यापार की ओर संकेत करता है।

गुप्त युग के स्वर्ण काल में व्यापार तो चरम सीमा को पहुंच गया था जिसका आभास लेखों के द्वारा मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम के मंदसोर लेख में लाट से आने वाली तथा दशपुर में स्थायीरूप से स्थित शिल्प श्रेणी (संघ) यानी रेशम के व्यापारियों का वर्णन मिलता है जिसने वहां सूर्यमंदिर का निर्माण किया था [का० इ० इ० ३ पृ० ८१] इसी राजा के दामोदरपुर ताम्रपत्र में नगर श्रेष्ठि (व्यापारिक संस्था का मुखिया सेठ) तथा सार्थवाह का उल्लेख है (ए० इ० १५ पृ० १३०)। यात्रा करने वाले पान्थों का समूह 'सार्थ' कहलाता था, और बाहरी मंडियों से व्यापार करने वाले (व्यापारियों का) नेता 'सार्थवाह' कहलाता था (पान्थान् वहति सार्थवाह :—अमर ३।९।७८) बौद्ध ग्रन्थों में भी कौशाम्बी के सार्थवाह का उल्लेख आता है।

फरीदपुर ताम्रपत्र में व्यापार के संचालन कर्त्ता गोपाल स्वामी (व्यापार-कारण्डय) का नाम मिलता है (इ० ए० ३९ पृ० २००) उसी स्थान के दूसरे लेख में व्यापार के संचालक वत्सपासस्वामी का नाम आया है। उसी दानपत्र में व्यापार में व्यस्त लोगों की चर्चा की गई है (प्रधान व्यापारिण—इ ए० ३९ पृ० २०४) अतः इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिलेखों में गौड़ रूप से व्यापार तथा संघ, संचालक तथा व्यापारिक संघ के नेता का वर्णन किया गया है।

अर्थशास्त्र के पण्डितों से यह बात छिपी नहीं है कि प्राचीन काल में भारतीय व्यापार उन्नति के शिखर पर था। व्यापार सम्बन्धी समस्त कार्य का संचालन

श्रेणी

एक संस्था द्वारा होता था जिसे अभिलेखों में "श्रेणी" कहा गया है। यह संस्था प्रजातन्त्र शैली पर कार्य करती थी। देश की आर्थिक नीति श्रेणी के हाथों में थी। वर्तमान काल के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"भारतीय चैम्बर आफ कामर्स" से उसकी तुलना कर सकते हैं। दोनों में भेद यही है कि श्रेणी संस्था एक शिल्प के समूह से सम्बन्धित थी।

एकेन शिल्पेन ये जीवन्ते तेषां समूह श्रेणी (कौटिल्य)

प्राचीन साहित्य में (गौतम धर्मसूत्र, अष्टाध्यायी, अर्थशास्त्र) में श्रेणी के विषय में जिस तरह की चर्चा की गई है, स्मृति ग्रन्थों में भी श्रेणी का कार्य उसी ढंग से वर्णित है।

सातवाहन तथा क्षत्रप वंशी अभिलेखों में तत्कालीन संगठित शिल्य श्रेणी का वर्णन मिलता है। उस से पता चलता है कि शिल्पियों तथा वणिकों के निकाय शक्ति-सम्पन्न तथा समृद्ध थे। गुप्तकाल में भी उद्योगों की उन्नति का श्रेय तत्कालीन श्रेणियों तथा निगमों को था। ये निकाय सुव्यवस्थित रूप से व्यापार का परिचालन करते थे तथा वाकाटक एवं गुप्त युग में इन संगठनों की बहुत बड़ी संख्या थी। इन के द्वारा व्यापार में राज्य को बड़ी आय होती थी। क्योंकि ये श्रेणियां या निकाय देश विदेश में व्यापार संचालन करते थे। इन के पास जहाज या नावें भी रहती थीं। भारत के इस देशी जहाजरानी से व्यापारिक क्षेत्र में अधिक सुविधा थी। वस्तुओं के आयात निर्यात में राष्ट्र का धन समुचित रूप से व्यवहृत किया जाता था। गुप्तकालीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, मुद्राओं तथा सिक्कों का अध्ययन तत्कालीन श्रेणियों तथा निगमों पर प्रकाश डालता है। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर लेख में रेशम के व्यापारीगण की श्रेणी का उल्लेख है जिसके द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण तथा कालान्तर में संस्कार का उल्लेख मिलता है। (का० इ० इ० ३ पृ० ८१)

शिल्पावाप्तैर्द्धन समुदयैः पट्टवायैरूदारं
श्रेणीभूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्त-रश्मेः

मंदसोर लेख के वर्णन से पता चलता है कि वह श्रेणी लाट (गुजरात) देश से दशपुर (मंदसोर, मालवा) में आकर कार्य करने लगी और इसके सदस्य नाना प्रकार के गुणों के लिए प्रसिद्ध थे।

स्वकुल-तिलक भूतैः मुक्तरागरुदारै–
रधिक मभिविभाति श्रेणीरेवं प्रकारैः। (वही)

गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र में तैलिक श्रेणी का विवरण मिलता है (इन्द्रपुर निवासिन्यास्तैलिक श्रेण्या) जिसने सूर्य-मंदिर के दीपदान निमित्त दो पल तेल का दान किया था (देयं तैलस्य तुल्येन पलद्वयं तु)। बैशाली मुहरों के लेख में निगम का नाम अंकित है। पूर्व मध्ययुग के अभिलेखों में विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख मिलता है जिससे व्यापारिक संस्थाओं द्वारा देश की आर्थिक सहायता का परिज्ञान होता है। मंदिरों के दान-प्रसंग में श्रेणियों के नाम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मिलते हैं जो पूजा के निमित्त कर (टैक्स) दिया करती थी। तैलिक तथा मालिक श्रेणी क्रमशः तेल तथा पुष्प 'कर' के रूप में देती रही (ए० इ० १ पृ० १६० : भा० १९ पृ० ५७) (समस्त तैलिक श्रेण्या प्रति कोल्हू ··· दातव्ये)। किसी विशेष प्रदेश में कार्य करने वाली श्रेणी का मुख्य "सेष्ठी के नाम से विख्यात था (वर्तमान सेठ) तथा विदेशों से व्यापार करने वाले समूह (वनजारा-श्रेणी) का अगुआ 'सार्थवाह' कहलाता था (अत्रेषु समस्त वणजारेषु देसी मिलित्वा--ए० इ० ११ पृ० ४३) संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि प्राचीन भारत में धन का समुचित बंटवारे के लि प्रजातंत्र ढंग से श्रेणियां व्यापार में लगी रहती थी जिससे समाज का कल्याण होता रहा।

प्राचीन समय में श्रेणी तथा निगम बक का कार्य करती और इनके साथ रुपया जमा करना सब से अधिक सुविधाजनक समझा जाता था। पश्चिम भारत के क्षत्रप नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने धार्मिक कार्य के लिए तंतुवाय श्रेणी के पास तीन हजार कार्षापण जमा किया था। (नासिक लेख) उसमें दो हजार एक कार्षापण प्रति सैकड़ा वार्षिक व्याज की दर पर जमा था और एक हजार कार्षापण का व्याज दर तीन चौथाई पण था।

श्रेणी का बैंक-कार्य

त्रीणि ३००० संघस ···· ऐते च काहापाण प्रयुक्ता गोवधनं वाथवासु श्रेणिसु। २००० वृद्धि पडिक शत अपर कोलीक निकाये १००० वधि पायून पडिक शत। ऐते च कहापण अपडिदातवा वधिभोजा। एतो चिवरिक सहस्रानि वे २००० पडिके शते (ए० इ० भा० ८)। मथुरा के द्वितीय शती के एक लेख में वर्णन मिलता है कि किसी धार्मिक व्यक्ति ने पुण्यशाला के लिए ५५० पुराणों की दो धन राशियां दो निकायो में (अस्थाई मूलधन के रूप में) जमा कर दिया था। इस धन के व्याज से गोबर्धन (नासिक) के भिक्षुओं के चीवर तथा भोजन का प्रबंध किया जाता था। उसी तरह मथुरा वाले धनराशि के व्याज से दीन-दुखियों के भोजन अतिरिक्त प्रत्येक मास एक सौ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था।

इससे पता चलता है कि शिल्पियों तथा वणिकों के निकाय वैभवपूर्ण तथा शक्ति सम्पन्न होते थे। जनता के विश्वासपात्र थे। इसीलिए उनके बैंकों में धन राशि जमा करने का विवरण पाया जाता है। उनकी स्थायी आर्थिक नीति के कारण ही जनता बैंक का उपयोग किया करती थी। जनता को कभी भी भय नहीं होता था कि श्रेणी-बैंक का दिवाला हो जायगा और जमा किया धन मर जायगा। गुप्तकालीन एक लेख में श्रेणियों के स्थानान्तरित होने का वित्ररण पाया जाता है। मंदसोर के लेख में वह श्रेणी लाट (गुजरात) से उठकर दशपुर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(मालवा) चली आई थी। इन्दौर (उत्तर प्रदेश) के ताम्रपत्र में स्कन्दगुप्त के शासनकालीन तेलियों के श्रेणी का उल्लेख आया है जिसके पास देवविष्णु नामक ब्राह्मण ने सूर्य मंदिर के हेतु कुछ दान दिया था और वह स्थायी धन की (fixed-deposit) तरह इनके बैंक में जमा कर दिया था।

विश्वास होने तथा अच्छे कार्य शैली के कारण श्रेष्ठी, सार्थवाह आदि उच्च अधिकारियों के सदृश शासन में सहयोग किया करते। उनके कार्यालय की मुहरें होती थीं। नालंदा, कौशाम्बी तथा वैशाली से मिट्टी की मुहरें वहुत संख्या में मिली हैं जिसमें निकाय तथा श्रेणी की मुहरें प्रचुर संख्या में हैं। (आ० स० इ० रि० १९०३-४ तथा १९१३-१४)

भारतीय इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन काल से यहां के निवासी आर्य संस्कृति का संदेश लेकर स्थल तथा जलमार्ग द्वारा विदेश जाते रहे।

व्यवसायिक कर तथा मुद्राएँ

जल यात्रा की सुगम बनाने के लिए नौकाओं का निर्माण हुआ और स्थल मार्ग को सुव्यवस्थित किया गया। मौर्य सम्राटों ने व्यापार की बड़ी उन्नति की और अच्छी सड़कों का निर्माण किया। अशोक ने सम्भवतः पाटलिपुत्र से पुरुष पुर (पेशावर) तक राजमार्ग तैयार करवाया जिस मार्ग के किनारे राजगृह, काशी, प्रयाग कोशाम्बी, साकेत, कन्नौज, मथुरा आदि समृद्ध नगर बसे हैं। पाटिलपुत्र से कौशम्बी तथा उज्जैन होते पश्चिमी बन्दरगाह सुपारा तक मार्ग बना था। इसी स्थान से अशोक का लेख भी मिला है। शक सातवाहन युग में भी उत्तर तथा दक्षिण भारत में वैसे ही व्यापार चलता रहा। इस समय के लेखों से शिल्प तथा व्यापार पर प्रकाश पड़ता है। व्यापार की अभिवृद्धि के लिए कुषाण राजाओं ने स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन किया। वीमकदफिस द्वितीय ने सर्वप्रथम सोने का सिक्का चलाया और कनिष्क के शासन काल में अधिक सिक्के तैयार हुए जो व्यापार के विनिमय का प्रमुख साधन था। सिक्कों की वृद्धि से व्यापार की उन्नति का परिज्ञान होता है। दक्षिण भारत में पांडेचेरी के समीप अरिकमेडू की खुदाई से रोमन सिक्के अधिक संख्या में मिले हैं जिससे भारत तथा रोम के व्यापारिक सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है। (ऐंसेट इंडिया संख्या २ पृ० १७) जीवन उपयोगी सभी प्रकार की सामग्रियां विदेशों को भारत से भेजी जाती थीं।

गुप्त शासन के आरम्भ से पूर्वी जगत् में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ट तथा व्यापक हो गया था। प्रयाग के स्तम्भ लेख में समुद्र गुप्त के दिग्विजय का वर्णन मिलता है उसने पूर्वी बन्दरगाह ताम्रलिप्ती (तामलुक) पर भी अधिकार कर लिया था। प्राचीन भारत के गुप्त, वाकाटक, कदम्ब तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पल्लच शासकों ने वाणिज्य उन्नति में बड़ा योग दान दिया था। नालंदा, कौशाम्बी तथा वैशाली से गुप्त कालीन मुहरें अधिक संख्या में मिली हैं जिन पर अनेक श्रेणियां निगम तथा निकाय के कार्यालय के नाम उल्लिखित हैं जिससे पता चलता है कि कौशाम्बी, नालंदा तथा वैशाली मुख्य व्यवसायिक केन्द्र थे (श्रेणी सार्थवाह कुलकि तथा निगम की मुहरें--आ० स० रि० १९०३ ४ तथा १९१३-१४) वैशाली तथा भीटा से प्राप्त मुद्रा लेखों के अतिरिक्त दामोदर पुर (उत्तरी बंगाल) के ताम्रपत्रों में नगर श्रेष्ठि सार्थवाह तथा प्रथम कुलिक का उल्लेख है जो शासन में भी सहायता करते रहे। इससे यह पता चलता है कि सारे उत्तरी भारत में व्यापारिक संघ फैले हुए थे। समृद्धशालिनी नगरी में मालवा का दशपुर भी गिना जाता था जिसका सुन्दर वर्णन वत्सभट्टि ने किया है।

प्रासाद माला-भिरलंकृतानि: धरां विदार्यैव समुत्थितानि
विमान माला सदृशानि यत्र, गृहाणिपूर्णेन्दुकरामलानि

(कुमारगुप्त प्रथम का मंदसोर शिलालेख)

गुप्तयुग में देश के शिल्प तथा वाणिज्य की उन्नति के हेतु बड़ी संख्या में सिक्के ढलवाए गए थे। साधारण वस्तुओं के खरीद के लिए चाँदी तया तांबे के सिक्के तैयार हुए और ऊँचे क्रय-विक्रय तथा विदेशी व्यापार के लिए सोने के सिक्के चालू किए गए थे। कुमारगुप्त प्रथम ने इस कार्य के निमित्त चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्रा प्रचलित की जो व्यापार के चरम सीमा का द्योतक है।

गुप्त युग के पश्चात् भारतीय व्यापार कई केन्द्रों में संगठित होता रहा। हर्षवर्द्धन, पुलकेशी द्वितीय तथा उड़ीसा के गंगावंशी नरेशों ने वाणिज्य को प्रोत्साहित किया। इन राजाओं के सिक्कों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं है और पूर्व सदियों की तरह मुद्रा निर्माण का कार्य दिखलाई नहीं पड़ता। यद्यपि गुर्जर नरेशों, दक्षिण के चालुक्य तथा चोल शासकों ने वाणिज्य में पोत का प्रयोग किया था परन्तु अभिलेखों में इसकी चर्चा नहीं के बराबर है। साहित्य ग्रंथों से विविध व्यवसाय तथा विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध का अनुमान लगाया जाता है। विदेशी यात्रियों ने भी विशेष रूप से इसकी चर्चा की है। उनमें चीनी तथा अरब यात्रियों ने पर्याप्त विवरण प्रस्तुत किया है। कथा साहित्य में भी भारतीय वणिकों के द्वीपान्तर गमन का उपाख्यान सुरक्षित है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रशस्तियों से अधिक वर्णन साहित्य में मिलता है।

पहले कहा जा चुका है कि पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) के अभिलेख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजाओं तथा धनी व्यक्तियों द्वारा दान का वर्णन करते हैं; इसलिए उनमें वाणिज्य वार्त्ता के लिए स्थान नहीं है। तौ भी कई स्थानों पर शासक द्वारा दान सम्बन्धी भूमि 'कर' तथा 'सामयिक कर' का उल्लेख किया गया है और इस तरह आय-व्यय का लेखा सम्मुख आता है। अभिलेखों में इस बात का स्पष्ट वर्णन है कि भूमिकर दानग्राही ग्रहण करेगा तथा विभिन्न कर (टैक्स) मंदिर के पूजा निमित्त व्यय किया जायेगा। इसी प्रसंग में बाजार से चुंगी तथा मेला में क्रय-विक्रय से सम्बन्धित 'कर' वसूली का वर्णन है इस प्रकार गौण रूप से आर्थिक बातों की चर्चा मिलती है। वस्तुओं के क्रय-विक्रय के प्रसंग में माप तौल के अध्यक्ष का उल्लेख भी लेखों में मिलता है। "प्रत्यापणं मानयै" (ए० इ० ४ पृ० २४८) से उसी अध्यक्ष का बोध होता है तो माप को निश्चित करता तथा परीक्षण किया करता था।

'कर' सम्बन्धी विवरण

विभिन्न प्रशस्तियों में वर्णित दान के प्रकरण में तीन प्रकार की चुंगी (कर) का उल्लेख है। सर्वप्रथम उस कर का वर्णन है जो बाजार में बिकने वाले सामान पर लगाया गया था। पाल लेखों में हाटक नाम के पदाधिकारी का उल्लेख है जो इस कार्य को सम्पन्न करता था (खालीमपुर दान पत्र--ए० इ० भा० का ४) दूसरे स्थान पर कारखानों पर लगाए 'कर' का नाम मिलता है और तीसरे प्रकार का 'कर' मेला में क्रय-विक्रय से सम्बन्धित था। इन करों को दान-ग्राही ग्रहण करता या दानकर्त्ता मंदिर को समर्पित करता था। उसी आय से पूजा, राग-भोग का प्रबंध होता था। बाजार के लिए 'हाट' तथा चुंगीघर के लिए 'मण्डपिका' शब्द लेखों में मिलते हैं। 'कर' निश्चित करने का कोई विशेष नियम नहीं था परन्तु वस्तुओं के प्रकार तथा मात्रा के अनुसार कर में विभिन्नता पाई जाती है। बेचने तथा खरीदने वाले दोनों व्यक्तियों पर कर लगाया गया था। इस सम्बन्ध में विभिन्न सिक्कों का नामोल्लेख किया गया है जिसका विवरण अगले पृष्ठों में मिलेगा।

राजपूताना के अनेक लेखों में ऐसा विवरण है। मथनदेव के लेख में अनाज के एक बोरे की बिक्री पर तीन विंशोपक (रुपया के बीसवें भाग) कर लगता था (ए० इ० ३ पृ० २६४)। एकविंशोपक घास बोझ पर; एक द्रम (चांदी की मुद्रा) चीनी के एक बोरे पर; एक वरणिक चीनी के एक बोझ पर; एक रुपया बंगाल के तागे की गांठ पर 'कर' के रूप में वसूल किए जाते थे (ए० इ० १ पृ० ११४)।

उस समय सामान ढोने के लिए ऊँट, घोड़ा, बैल तथा बैलगाड़ी का प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया जाता था। इन पशुओं तथा गाड़ी पर सामग्री की मात्रा एक सी नहीं रहती, इस कारण कर भी न्यून या अधिक लिया जाता था। यदि एक गाड़ी पर कुछ पैला (नाप के लिए प्रयुक्त) सामान लदा रहता तो दो रुपया चुंगी ली जाती थी। मार्गे गच्छतानामागतानां वृषभानां शकेषु (मार्ग से होकर बाजार में आने वाली बैलगाड़ी) का उल्लेख चहमान लेख में अधिक आता है जिस पर मसाला लदा रहता था (ए० इ० भा० ११ पृ० ३७)। सम्भवतः किराना सामग्री पर अधिक कर देना पड़ता था क्योंकि साधारण सामग्री (जो मात्रा में बीस पैला होती) और बैलों पर लदी रहती थी उस पर दो रुपया ही टैक्स लगता था। यदि दस ऊँट तथा बीस बैलों के समूह (कारवां) पर लदा सामान (अन्न?) बाजार में आता था तो एक पैला कर के रूप में लिया जाता था (ए० इ० ११ पृ० ४३)। भरतपुर के समीप प्राप्त लेख में वर्णन है कि घोड़े पर लदी सामग्री पर एक द्रम चुंगी लगती थी। (ए० इ० २२ पृ० १२७)।

बाजार में सामान संग्रह करने के लिए भवन (आढ़त) भी वर्तमान थे जहाँ व्यापारी गण सामग्री सुरक्षित रख देते। उससे निकालने तथा रखने के कारण व्यापारी को कर देना पड़ता था। नायक देवी के लेख में गोदाम में सुरक्षित सामान पर 'कर' दान का विवरण है। प्रति मन दो ैला नाज 'कर' के रूप में लिया जाता जो मंदिर को अर्पित कर दिया गया था [ए० इ० ११ पृ० ६२ व ६७-मण्डपिकायां वस्तु मणं प्रति पाइला २] चाहमान कालीन गोदाम में रखने तथा वेचने के कारण छः द्रम 'कर' लिया जाता था [ए० इ० भा० १ पृ० ११४--मण्डपिकोत्पत्तिधनाद्दत्ता षट् प्रत्यहं द्रम्माः] मध्ययुग में बाजार से सम्बन्धित मकान तैयार करके दान करने की प्रथा प्रचलित थी। उन दूकानों का किराया मंदिर में अर्पित किया जाता था और उस आय से रागभोग का प्रबंध होता था [ए० इ० भा० १ पृ० १६७] स्यात् उस तरह की दूकान (विथि) से दो विशोपक प्रतिमास किराया मिलता था। बाजार में पत्तों की बोझ पर पचास पंक्तियां तथा माली से पचास माला ग्रहण कर मंदिर में भेंट किया जाता था (इह पुष्पैर्माला पंचाशत् ५० माला प्रतिदिनं दातव्ये-- ए० इ० १ पृ० १६०) परमार नरेश चामुण्डराय के एक लेख (ए० इ० १४ पृ० ३०९) में वर्णन है कि हाट में बिकने वाले नारियल के प्रति भार से एक फल, सहस्र सुपारी पर एक सुपारी तथा कपड़े की प्रति गांठ पर डेढ़ रुपया 'कर' के रूप में देना पड़ता था। कोई भी व्यापारी इस कर के देने में आगा-पीछा नहीं सोच सकता था।

कहा गया है कि राजपूताने के बाजार में करनाट, मध्यप्रदेश (गंगा यमुना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घाटी), लाट (गुजरात) तथा तक्क (व्यास तथा सिन्ध नदियों का मध्यभाग) से आने वाले वणिक विष्णु मंदिर के निमित्त कर देना अस्वीकार नहीं कर सकते थे। (इ० ए० भा० ५८ पृ० १६१-२) सम्भवतः यह बाजार मेला के रूप में संगठित था क्योंकि सुदूर स्थानों से व्यापारी वहाँ एकत्रित होते थे। उस लेख में वर्णन आता है कि हाथी के विक्रय पर एक द्रम घोड़े के विक्रय पर दो द्रम या एक द्रम (ए० इ० ११ पृ० ३३) तथा गाय या भैंस के बिक्री पर द्रम का चालीसवां भाग 'कर' लिया जाता था (इ० ए० भा० ५८ पृ० १६१) मेला सम्बन्धित क्रय-विक्रय के प्रसंग में ऐसा ही उल्लेख कई प्रशस्तियों में पाया जाता है। पृथुदक मेले में दो द्रम पशुओं के बेचने वाला तथा एक द्रम खरीदने वाले व्यक्ति को देना पड़ता था (ए० इ० भा० १ पृ० १८५-७)।

व्यवसायिक कर

व्यवसाय द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर भी कर लगाया जाता और द्रव्य या सामान 'कर' के रूप में ग्रहण किया जाता था। लेखों में तैलिक श्रेणी अथवा तेल के कारखानों (घाणक) से देवता के दीपार्थ (कर के रूप में) तेल वसूल किया जाता था। प्रायः प्रत्येक घाणक से दो पल तेल मिलता था (पलिका द्वयं घाणकं प्रति धर्माय दत्तं-ए० इ० भा० ११ पृ० ३५) दूसरे लेख में प्रति दिन एक पल तेल अर्पित करने का विवरण मिलता है। (समस्त तैलिकानां घाणकं घाणकं प्रतिदिनं धर्मार्थ हेतो तैलपलिका प्रदत्ताः—ए० इ० १ पृ० १७७) कभी तैलिक श्रेणी से एक पल प्रति मास तेल का एक पल लिया जाता था (तैलिक श्रेण्या प्रति कोल्हू मासि मासि तैल पलिका दातव्ये—ए० इ० १ पृ० १६०)। साधारण व्यक्ति कभी तेल या घी पात्र में रखकर बेचता था तो उसे प्रति तेल कूप (चमड़े का पात्र) दो विंशोपक कर (ए० इ० २ पृ० २४०) और घी के विक्रेता को भी प्रति घड़ा (मिट्टी का पात्र) एक पल टैक्स देना पड़ता था (ए० इ० १४ पृ० ३०९)

शराब के कारखाने वाले भी नकद पैसा देवता के राग भोग के लिए देते रहे। राजपूताना के लेख में प्रति सुराभाण्ड पर आधा द्रम 'कर' का वर्णन है (सुराभाण्ड प्रति मासान्मासं विग्रह तुङ्गीय दातव्यं द्रमार्द्ध धूप दीप नैवेद्यार्थं—ए० इ० १ पृ० १७४) परमार लेख में वर्णन है कि प्रति कारखाने को चार रुपया देना पड़ता था (इ० ए० भा० ५८ पृ० ३०९) इस प्रसंग में अन्यत्र कहा गया है कि प्रत्येक मास प्रति सुराभाण्ड पर आधा मुद्रा (विग्रहपाल-द्रम) कर देना पड़ता था (ए० इ० १ पृ० १६७)। मदिरा के व्यापारी से कर ग्रहण कर धार्मिक कार्य में व्यय करना अनुचित नहीं समझा जाता और देवपूजा में उस आय से कार्य सम्पन्न होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अस्थाई कर

पूर्व मध्य युग के शासक किसी धार्मिक कृत्य के लिए अस्थायी 'कर' भी लगाया करते थे। चहमान नरेश शिवरात्री के अवसर पर आठ मुद्रा प्रति व्यक्ति (ए० इ० ११ पृ० ३१––प्रति वर्षक द्रम्माष्टकं प्रमाणेन) तथा देवयात्रा (रथ यात्रा) के सुअवसर पर चार द्रम का 'कर' आरोपित करते रहे। देव यात्रा निमित्तं द्रां ४––ए० इ० भा० ११ पृ० ३५)। इसी वंश के एक लेख में तैलिक श्रेणी द्वारा रथ यात्रा के समय विंशोपक देने का वर्णन मिलता है। परमार शासक चैत्रमास के बसंतोत्सव पर प्रत्येक व्यापारी से एक द्रम कर के रूप में वसूल करते थे (ए० इ० भा० १४ पृ० ३०९) तथा जनसाधारण से प्रति गृह एक द्रम (मुद्रा) 'कर' लिया जाता था।

तत्कालीन कर की सूची में एक प्रकार के विचित्र 'कर' का उल्लेख है जो विशिष्ट भोज (दावत) के समय उस व्यक्ति से ग्रहण किया जाता था। भोज (रनधनि) के आयोजक को एक रुपया देना पड़ता था। इससे अधिक आश्चर्य जुआ पर लगाए कर से प्रकट होता है जिसमें सम्पूर्ण खेल में एक **पेटक** (पेच = दाव-एक बार जितना धन साहस 'कर' लगाया जाय) 'कर' स्वरूप जुआरी को देना पड़ता था (इ० ए० ५८ पृ० १६१) किसी लेख में जुआ-गृह पर दो रुपया कर लगाने का उल्लेख मिलता है [ए० इ० भा० १ पृ० १४४] इससे अनुमान किया जा सकता है समाज में घृणित कर्म से जो कर मिलता उसे व्यक्तिगत कार्य में व्यय न कर शासक धार्मिक कृत्य में लगा दिया करता था।

सिक्कों के विभिन्न नाम

यद्यपि साहित्य ग्रंथों में सिक्कों के विभिन्न नामों का उल्लेख मिलता है परन्तु अभिलेखों में कार्षापण (प्राकृत काहापन) का नाम सबसे पुराना है। सातवाहन तथा क्षत्रप के नासिक लेखों में काहायना या काहापन नाम से उस प्राचीन सिक्के का उल्लेख मिलता है जो पुराण या धरण नाम से पुकारे जाते थे। अधिकतर चांदी के सिक्के इस नाम से विख्यात थे और स्वर्ण मुद्रा की तरह १६ मासे तोल में होते थे। सोने के लिए पांच रत्ती का मासा (तौल) तथा चांदी के लिए दो रत्ती का माशा निर्धारित किया गया था। भारत में यूनानी शासन के समय चांदी के सिक्के ड्रम कहे जाते थे और यह नाम इतना प्रचलित हो गया कि भारतीय लेखों में द्रम शब्द से (जो ड्रम का विकृत रूप है) सैकड़ों बार उल्लेख किया गया है। अधिक प्रचार होने के कारण ही गुर्जर प्रतिहार, परमार, सेन आदि वंश की प्रशस्तियों में इसका नाम आता है। भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यूनानी, पल्लव तथा शक राजाओं ने उसके आधे तौल के बराबर अर्द्ध द्रम सिक्का निकाला था जिसे गुप्त सम्राट्, हूण राजा, हर्ष वद्धन, मौखरि आदि ने चांदी के सिक्कों में अनुकरण किया। द्रम नाम सबसे अधिक प्रचलित रहा और ईसा पूर्व तीसरी सदी से १३ वीं सदी तक इस शब्द का प्रयोग मिलता है। भास्कराचार्य ने (१२ वीं सदी) भी लीलावती में इसी नाम का प्रयोग किया है।

नानाघाट तथा नासिक लेखों के वर्णन से पता चलता है कि काहापना (कार्षापण) अधिक संख्या में तैयार किये जाते थे। सम्भवतः समाज में स्वर्ण-मुद्रा की आवश्यकता न थी। नहपान के लेख से पता चलता है कि सोने चांदी के सिक्कों में १४ : १ का अनुपात था। उसमें सत्तर हजार काहापन मूल्य में दो हजार सुवर्ण के बराबर कहे गए हैं (ए० इ० भा० ८)।

यद्यपि कुषाण नरेशों ने सोने का सिक्का सर्व प्रथम प्रचलित किया परन्तु कुषाण लेखों में उस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। पिछले कुषाणों के अनुकरण पर गुप्त सम्राटों ने सोने की मुद्रा तैयार कराई जिसका नाम सांची के लेख तथा दामोदरपुर ताम्रपत्रों में 'दीनार' शब्द से अंकित है। यह नाम भी रोमन सिक्का दिनेरियस (Denarius) का विकृत रूप है। गुप्त नरेश रोमन माप तौल (१२० ग्रेन) का प्रयोग भी करने लगे थे। प्रथम कुमार गुप्त के शासन में अंकित वैग्राम ताम्रपत्र से तत्कालीन सोने चांदी के सिक्कों का अनुपात निश्चित किया जा सकता है। उसमें वर्णन मिलता है कि तीन कुल्या-वाप भूमि का मूल्य ६ दीनार था तथा एक चौथाई कुल्यावाप जमीन (उर्वरा) आठ रूपक (चांदी का सिक्का) में विक्रय होती थी (ए० इ० भा० २१ पृ० ८१—षड्दीनारानष्ट च रूपकाना)। इस आधार पर एक दीनार १६ रूपक के मूल्य में बराबर था। उसका अनुपात ६$\frac{१}{४}$: १ के होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि १२ वीं सदी तक दीनार, रूपक तथा द्रम शब्दों का प्रयोग उत्तरी भारत में सिक्के के लिए होता था (स्मृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि दीनार शब्द को छोड़कर चांदी के सिक्के कार्षापण कहे जाते थे)। दक्षिण भारत में कार्षापण का प्रयोग चांदी के सिक्कों के लिए होता रहा। परन्तु तीसरी सदी के बाद चांदी का मिलना कठिन हो गया। गौतमी पुत्र यज्ञ श्री सातकर्णी ने चांदी का सिक्का तैयार किया जो क्षत्रप अर्द्ध द्रम का अनुकरण था। स्यात् महाराष्ट्र में क्षत्रपों को पराजित कर विजय-घोषणा के लिए यह कार्य आवश्यक होगा। तत्पश्चात् चोल, पाण्डया या केरल राज्यों में चांदी के सिक्के नहीं मिलते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्व मध्ययुग (७००–१२०० ई०) की प्रशस्तियों तथा साहित्य ग्रंथों में द्रम का अधिक प्रयोग है। सियादोनी तथा ग्वालियर के अभिलेखों में द्रम शब्द शासक के नाम से जुड़ा है। विनायक पालीय द्रम, आदि वराह द्रम शब्दों से उस शासक के सिक्के का परिचय मिलता है जिसने (विनायकपाल तथा प्रतिहार भोज) उनका प्रचलन किया था। सियादोनी लेख में कर ग्रहण करने के प्रसंग में विशोयक शब्द भी सिक्के के लिए उल्लिखित है। वह रूपक (सिक्का) का बीसवां भाग था जो संभवतः ताम्बे का सिक्का होगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन नाम कार्षापण के अतिरिक्त अभिलेखों में अधिकतर विदेशी सिक्कों के नामों का विकृत रूप पाया जाता है। रूपक शब्द का प्रयोग चेदि तथा राजपूताने के लेखों में मिलता है (इ० ए० ५८ पृ० १६१-२) जो कालान्तर में रुपया हो गया और आज भी उसी नाम से प्रचलित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय १०

तिथियां और सम्वत्

प्राचीन लेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि प्रशस्तिकार अभिलेख खुदवाते समय इस बात का ध्यान रखते थे कि उनमें तिथि का उल्लेख अवश्य हो। भारत का तिथि-क्रम इतिहास जानने में उत्कीर्ण लेखों से अधिक सहायता मिलती है। तिथियां दो प्रकार से उल्लिखित मिलती हैं। पहला राज्य-वर्ष (Regnal year) का उल्लेख तथा दूसरे स्थान पर उन तिथियों को रक्खा जाता है जिसे विद्वानों ने किसी सम्वत् से सम्बद्ध किया है। अशोक के धर्म लेखों में अभिषेक के ८ वें वर्ष (अठ वर्ष अभिसिलस देवन प्रिअस प्रिअद्रशिस तेरहवां शिलालेख) १२वें वर्ष (चौथाशिलालेख, छठा स्त० ले० तथा बराबर गुहालेख) १३वें वर्ष (पांचवा शि० ले०) १४वें वर्ष (निगाली सागर लेख) २०वें वर्ष (देवानपियेन पियदसिन लाजिन वीसति वसाभिसितेन—— हिद भगवं जाते ति लुंमिनि गामे-रुम्मिनदेई स्त० ले०) २६वें वर्ष (चौथा व पांचवा शि० ले०) तथा २७वें वर्ष (सत विसति वसाभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापापिता ति एतं देवा नं पिये आहा-सातवा स्त० लेख) का उल्लेख है। वेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख शुंगराजा भागभद्र के चौदहवें वर्ष में स्थापित किया गया (कोसी पुतस भागभद्रस त्रातारस वसेन चतुदसेन राजेन) हाथी गुम्फा लेख में खारवेल के प्रथम से तेरहवें वर्ष तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है (पधमें वसे ततिये पुनवसे--नवमे च वसे--तेरसमे च वसे आदि।)

मौर्यों के उत्तराधिकारी सातवाहन लेखों में भी गोतमी पुत्र शातकर्णी का १८वें एवं २४वें वर्ष का उल्लेख है (नासिक गुहालेख) पुलमावि के ७वें, १९वें २२वें तथा २४वें वर्ष के लेख हैं (नासिक तथा कार्ले का गुहा लेख) तथा यज्ञ श्री शातकर्णी के नासिक गुहा लेख ७वें वर्ष (सिरियन सातकणिस संवछरे सातमे ७) में उत्कीर्ण किया गया था (यह क्रम मध्य युग तक चलता रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हूण राजा मिहिर गुल के ग्वालियर लेख से पंद्रह वर्ष तक शासन का परिज्ञान होता है (अभिवर्द्धमान राज्ये पंचदशाब्दे--का० इ० इ० भा० ३ पृ० १६२)

इसी प्रकार मध्ययुग के पालवंशी अभिलेखों में शासकों के राज्य वर्ष का उल्लेख मिलता है। खालीमपुर ताम्रपत्र से पता चलता है कि धर्मपाल ने ३२ वर्ष तक राज्य किया तथा भागलपुर ताम्रपत्र में नारायण पाल के ५४ वें वर्ष का उल्लेख है किन्तु इन तिथियों को किसी सम्बत् से सम्वद्ध नहीं है।

प्राचीन भारत में दूसरे प्रकार के अभिलेखों में शासकों की तिथि किसी न किसी सम्बत् से अवश्य सम्बद्ध हैं। कुषाण नरेशों की तिथियां ३ से ८० तक अंकित हैं और प्रत्येक लेख सं० (सम्बत्) अथवा संवत्सरे से आरम्भ होता है यानी तिथि का सम्बत् से सम्बन्ध अवश्य है। यद्यपि उसका नाम स्पष्ट रूप से नहीं मिलता किन्तु यह विषय अज्ञात नहीं है कि उन सब लेखों की तिथियां शक सम्वत् (७८ ई०) से सम्बन्धित हैं। कुषाण के सामंत पश्चिमी भारत तथा मथुरा के क्षत्रप शासक भी इसी सम्वत् में अपने लेखों की तिथियां अंकित कराते रहे। उदाहरण के लिए-नहपान के नासिक तथा जूनार गुहालेख क्रमशः ४२ तथा ४६ वें वर्ष (४६+७८ = १२४ ई०) में उत्कीर्ण किए गए। रुद्रदामन के गिरनार लेख में ७२ वर्ष का उल्लेख है यानी १५० ई० (७२+७८) में वह लेख खोदा गया था। गुप्त सम्राटों के अभिलेख भी इसी (तिथियों से सम्बन्धित) हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त का साँची लेख ९३ वर्ष में, प्रथम कुमार गुप्त का करमदण्डा शिवलिङ्ग प्रशस्ति ११७ वर्ष में, स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख १३६ वर्ष में, इन्दौर ताम्रपत्र १४६ वर्ष में, वैन्यगुप्त का गुणैधर ताम्रपत्र १८८ वर्ष में तथा भानुगुप्त का एरण स्तम्भ लेख १९१ वर्ष में खोदे गए थे। इन तिथियों को राज्य वर्ष कदापि माना नहीं जा सकता, अतएव इनको गुप्त सम्वत् से सम्बन्धित करते हैं। हर्ष वर्धन के ताम्रपत्र की तिथियां हर्ष-सम्वत् से जुड़ी हैं। यहां तक कि नेपाल के लेख भी हर्ष सम्वत् से ही सम्बन्धित हैं।

कई प्रशस्तियों में तिथि न मिलने पर तीसरे मार्ग के सहारे काल ज्ञात होता है याना प्राचीन भारत के शासकों की तिथियां समकालीनता पर भी स्थिर हो जाती हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख में अनेक समकालीन विदेशी शासकों के नाम उल्लिखित हैं। उनकी ज्ञात तिथियों के सहारे शासक के तिथियों का वास्तविक समय निर्धारित हो जाता है। यूनानी राजा आंतियोकास द्वितीय ई०पू० २६१-४६ तक पश्चिमी एशिया में राज्य करता रहा। द्वितीय टालेमी उत्तरी अफ्रीका में ई० पू० २८२-४७ तक शासन करता रहा। ये दोनों अशोक के समकालीन थे। इस तिथि २८२ में से १२ वर्ष (अभिषेक के ८ वें वर्ष में तेरहवां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख खोदा गया तथा अशोक अभिषेक से चार वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था) घटा देने से ई० पू० २७० वर्ष अशोक के शासक होने की तिथि निश्चित हो जाती है। सातवाहन राजा गोतमीपुत्र शातकर्णी भी क्षत्रप नहपान का समकालीन शासक था। नासिक लेख (पु० १९वें वर्ष) तथा जोगलथम्बी के सिक्कों के ढेर की परीक्षा यह बतलाती है कि शातकर्णी ने नहपान को पराजित किया था। नहपान की तिथि ४६ शक सम्वत् (ई० स० ७८) से सम्बन्धित मानी जाती है इसलिए नहपान की तिथि ई० स० १२४ स्थिर होती है और इस तिथि के समीप गौतमीपुत्र शातकर्णी भी राज्य करता होगा। इसके पुत्र पुलमावी को महाक्षत्रप रुद्रदामन ने ई० स० १५० में हराया था जो जूनागढ़ के लेख (तिथि ७२ यानी ७२+७८ = १५० ई०) से स्पष्ट प्रकट होता है। इस प्रकार पिता (गौतमी पुत्र शातकर्णी) की तिथि १२४ से १३० ई० तथा पुत्र पुलमावी ई० स० १५० मानी जा सकती है। नासिक के १९ वर्ष वाले लेख से ज्ञात होता कि पुलमावी १३० ई० के समीप गद्दी पर बैठा और १९ वर्ष में यानी १४९ ई० (१३०+१९) में वह पराजित किया गया। मिहिरकुल के सम्बन्ध में इसी प्रकार से राज्यकाल का पता चलता है। गुप्त शासक भानुगुप्त का एरण स्तम्भ लेख १९१ (गु० स०) वर्ष में यानी ५१० ई० (१९१+३१९) में लिखा गया था जिसमें गोपराज की मृत्यु का वर्णन है। सेनापति गोपराज हूण युद्ध में मारा गया था और उसी के बाद तोरमाण का राज्य मध्य भारत में स्थापित हुआ। उसने पन्द्रह वर्ष तक शासन किया जिसके पश्चात् मिहिरकुल पंद्रह वर्ष शासक रहा। ग्वालियर के १५ वें वर्ष की तिथि (अभिवर्द्धमान राज्य पंचदशाब्दे नृप-वृषस्य) ५३० ई० के समीप (५१० +१५+१५) स्थिर हो सकती है। राज्य वर्ष में तिथि खुदवाने की परिपाटी पाल लेखों में भी वर्तमान थी। जिसे अन्य तिथि के सहारे काल निर्णय करने में उपयोगी मानते हैं। इसे चौथी रीति कह सकते हैं। निम्नलिखित राज्यवर्ष से गणना देखिये।

धर्मपाल	३२ वर्ष
देवपाल	३९ ,,
विग्रहपाल प्रथम+	
सूरपाल	३ ,,
नारायणपाल	५४ ,,
राज्यपाल	२४ ,,
गोपाल द्वितीय	१७ ,,
विग्रहपाल द्वितीय	२६ ,,
महीपाल प्रथम	४८ ,,
योग	२४६ वर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दसवें राजा महीपाल प्रथम का एक लेख सारनाथ से उपलब्ध हुआ है जिसकी तिथि वि० स० १०८६ उल्लिखित है। अतः २४३ वर्ष पीछे जाने पर धर्मपाल की तिथि (१०२६-२४३) ७८३ ई० के समीप निश्चित हो जाती है। इस प्रकार समकालीनता तथा ज्ञात तिथि से या सम्वत् से सम्बन्ध जोड़ कर राजाओं के शासनकाल का परिज्ञान होता है।

यों तो भारतवर्ष में ईसा पूर्व ५७ वर्ष में सम्वत् चलाया गया (विस्तृत वर्णन आगे देखिए।) परन्तु इसमें तिथि का उल्लेख अधिक दिनों तक नहीं पाया जाता। ईसवी सन् के ७८ वर्ष में कनिष्क ने एक सम्वत् चलाया जिसमें लेखों की तिथियां पाई जाती हैं। कुषाण वंशी राजाओं (कनिष्क. हुविष्क तथा वासुदेव)के लेखों में जो अंक (तिथि) मिलते हैं उनका सम्बन्ध शक सम्वत् से है। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा लेख में ३ वर्ष खुदा है तो कनिष्क के उत्तराधिकारी वासुदेव के मथुरा-प्रतिमा लेख में ८० वर्ष पाया जाता है जिसकी तिथि क्रमशः ई० स० ८१ (७८+३) तथा ई० स० १५८ (७८+८०) ज्ञात हो जाती है। पश्चिमी भारत के क्षत्रप राजाओं के सिक्कों पर तिथि शक सम्वत् में मिलती है। उन्हीं सिक्कों के अध्ययन से क्षत्रप इतिहास ज्ञात होता है। रुद्रसेन प्रथम के सिक्के पर १२१, पृथिवीषेण के १२२-१४४ तथा दामसेन के सिक्कों पर १४५-१५८ तिथि का उल्लेख है जिन सब को शक सम्वत् से सम्बन्धित मानते हैं। गुप्त लेखों में भी वर्षांक उल्लिखित है जिनका सम्बन्ध गुप्त सम्वत् से था। उनके प्रशस्ति को छोड़ कर सिक्कों पर भी इसी सम्वत् में तिथियां अंकित हैं। सौराष्ट्र के बलभी लेखों में इसी गुप्त सम्वत् का प्रयोग है जिससे भ्रमवश वलभी सम्वत् का नाम दिया गया था (गुप्त सम्वत् का विवरण आगे दिया जायगा) पिछले गुप्त राजाओं के लेखों में जिस तिथि वर्ष का उल्लेख है उसका सम्बन्ध गुप्त सम्वत् से नहीं है। सम्भवतः सातवीं सदी के आरम्भ से उत्तरी भारत में हर्ष सम्वत् (ई० स० ६०६) का प्रयोग होने लगा था। बांसखेड़ा का ताम्रपत्र, गुप्त राजा आदित्यसेन का शाहपुरलेख (६६ वर्ष) तथा विष्णुगुप्त का मंगराव लेख (वर्ष ११७) आदि हर्ष सम्वत् से सम्बन्धित हैं और उसी गणना पर उनकी तिथि निश्चित हो जाती है। नेपाल के अनेक लेखों में तिथि हर्ष सम्वत् में ही उल्लिखित है। मध्यप्रदेश तथा मध्यभारत के सैकड़ों लेख कलचूरी सम्वत् से सम्बन्धित हैं (का० इ० इ० भा० ४ खण्ड २) इस प्रकार लेखों की तिथियां निश्चित करने के लिए अथवा तिथियुक्त घटनाओं के वर्णन निमित्त प्रशस्तिकार ने अधिकतर किसी सम्वत् से सम्बन्धित अंकों का उल्लेख किया है। तुलना में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहली प्रणाली (राज्य वर्ष) में समकालीनता स्थिर करना आवश्यक था पर किसी सम्वत् से सम्बन्धित तिथि द्वारा भी सरलतापूर्वक शासक का राज्यकाल निश्चित हो जाता है । पहली शैली में 'वसेन चतुदसेन राजेन वधमानस' आदि या 'प्रवद्धमान विजय राज्य' वाक्य उल्लिखित मिलते हैं ।

प्राचीन भारत में तिथि तथा वार की गणना में विचित्रता दिखलाई पड़ती है। अभिलेखों का अध्ययन इस विषय के समझने में अधिक सहायता करता है।

मास तथा वार सबसे प्राचीन लेखों में ऋतु को ३ विभागों में बांट कर पक्ष द्वारा समय का उल्लेख किया जाता था । ईसा पूर्व सदियों में समस्त भारत में यही रीति काम में लाई गई थी । ब्राह्मी लेखों में (लुडर संख्या ९८७. १००१. १०२१, १०२४, ११००, ११०५, ११२०-२६, ११४७, ११८६ आदि) ऋतु, पक्ष तथा वार का उल्लेख है । सातवाहन के नासिक तथा कार्ले अभिलेखों में ग्रीष्म वर्षा या जाड़े की ऋतु के अतिरिक्त पक्ष तथा बार (दिन) की संख्या मिलती है । इसके विपरीत भारतीय-यूनानी लेख (शिनकोट लेख-ए० इ० १४ पृ० ७) में वैशाख मास के २५वें दिन का उल्लेख है । ईसवी सन् के पश्चात् शक, कुषाण तथा क्षत्रप लेखों में मास का नाम तथा तिथि संख्या निश्चित रूप से मिलती है । परन्तु ऋतु तथा पक्ष का सर्वथा अभाव नहीं है । (ए० इ० भा० १ न० ४, ज० यू० पी० हि० सो० भा० ११ पृ० ६६-७६) उत्तरी पश्चिमी भू भाग में खरोष्ठी लेखों में दूसरी सदी के पश्चात् मास नाम तिथि संख्या तथा वार का प्रयोग मिलता है । (का० इ० इ० भा० २ पृ० ६२-६६ पृ० ७०, ७७, १२७, १४९) उन दिनों वर्ष को तीन प्रधान विभाग में–वर्षा शीत तथा उष्ण–विभक्त किया गया था। उदाहरण के लिए––वास पखे (वर्षा) हेमंतान पखे (जाड़ा) या गिह्मन (गिम्ह) पखे (ग्रीष्म) । प्रत्येक ऋतु के चार मास तथा प्रत्येक मास में दो पक्ष की गणना द्वारा आठ पक्ष को ऋतु के नाम के साथ उल्लेख किया जाता था । सम्भवत: मास नाम से कोई गणना न होती थी यानी चैत्र से फाल्गुन तक के बारह मासों का नाम अज्ञात था । निश्चित समय बतलाने के लिए पक्ष तथा तिथि से काम लिया जाता था । यदि जेष्ठा कृष्ण पक्ष १० के अवसर पर किसी बात का उल्लेख करना होता तो गिम्ह पखे ५ दिवसे १० से काम चल जाता था । ग्रीष्म चैत्र से प्रारम्भ होता इसलिए चैत्र वैशाख के चार पक्ष तथा ज्येष्ठ प्रथम पक्ष मिलाकर पांच पक्ष हो गए । इसलिए उससे ज्येष्ठ कृष्ण १० की तिथि समझी जाती थी। गिम्हाण पखे वितीय दिवसे १३ से चैत्र शुक्ल १३ का ज्ञान होता था । इसी प्रकार वर्षा या हेमंत से सम्बन्धित पक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व वार कहने से ठीक समय का ज्ञान हो जाता था।

वास पखे २ दिवसे ३ = श्रावण शुदि ३
हेमंत पखे ३ दिवसे १ = पौष कृष्ण १
हेमंत पखे २ दिव १ = मार्ग शीर्ष शुक्ल १

इस रूप से सातवाहन नरेशों ने वर्ष, पक्ष के द्वारा (नासिक लेख) तिथि का ज्ञान कराया तथा गोतमी पुत्र शातकर्णी के पश्चात् लेखों में तिथियाँ मिलने लगीं। शक क्षत्रप युग में पहली सदी से ही भारतीय मास का उल्लेख प्रशस्तियों में है। आश्चर्य तो यह है कि क्षत्रप के महाराज कुषाण नरेश ऋतुओं के पक्ष गणना से ही समय का निरूपण करते रहे। हुविष्क के मथुरा प्रतिमा लेख में गृ १ दि० ८ (ग्रीष्म पक्ष १ = चैत्र कृष्ण ८) हेमंत मास १ (मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष) का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु साथ ही विशिष्ठ मास अंकित करने का कार्य भी प्रारम्भ हो गया था। कनिष्क के मानिकियाला शिलालेख (१८ वें वर्ष) में आषाढ़, अषडस मसस, जेदा लेख में कातिक, आरा की प्रशस्ति (४१ वें वर्ष) में तथा ज्येष्ठ (जेठस मसस) का नाम मिलता है। पह्लव गुदफरस के लेखों में भी वेशखस मसस तथा श्रवणस मसस के नाम आते हैं। नहपान के नासिक लेख में वेसाख मासे, कातिक शुधे पनरस (शुदि १५), रुद्रदामन के आंर्डो (५२ वर्ष) में फगुण वहुलस द्वितीय वारे २ (फाल्गुण कृष्ण-पक्ष २) मार्ग शीर्ष वहुल प्रतिपदि (जूनागढ़ शिलालेख) तथा द्रसिंह के गंडा लेख में 'वैशाख शुद्धे पंचम घण्यतिथौ रोहिणी नक्षत्र मूहूर्ते' आदि वाक्यों का प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि ई० सं० १२५ (नहपान की तिथि) से ई० सं० १८१ तक (रुद्रसिंह की तिथि) भारतीय कालगणना में आमूल परिवर्तन हो गया था। आश्चर्य यह है कि कौशाम्बी के मघ नरेश के लेख में वर्षा पक्ष ३ दिवस ५ उल्लेख मिलता है। स्यात् तीसरी सदी के बाद उत्तरी भारत में समुचित मास, पक्ष, एवं वार की गणना आरम्भ हुई हो। दक्षिण में ऋतु पक्ष से ही गणना होती थी। चौथी सदी के इच्छाकु नरेश विरुपाक्षदत्त के नागार्जुनी कोण्डा लेख में प्राचीन ढंग के ऋतु तथा पक्ष का प्रयोग मिलता है (स ६ वा प ६ दि १० यानी सम्वत् ६ वर्षा पक्ष ६ दिवसे १०)। पल्लव राजा शिवस्कन्ध वर्मन के अभिलेख में इसी प्रकार ऋतु पक्ष के सहारे गणना की गई है। विदर्भ के वाकाटक लेख भी इसी श्रेणी में रक्खे जाते हैं। कालान्तर में उत्तरी भारत के शासक भारतीय मास का नाम, पक्ष नाम, तिथिनाम, नक्षत्र-नाम का प्रयोग करने लग गए। यहां यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि उत्तर पश्चिम के लेखों में यूनानी मास के भी नाम सम्मिलित कर लिए गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थे। कनिष्क के कुर्रम लेख (वर्ष २१) में अवदुनस तथा पटिक के तक्षशिला ताम्रपत्र में पनेमस के नाम उल्लिखित हैं।

गुप्त युग में भी मास पक्ष और तिथि का नामोल्लेख मिलता है। शुल्कपक्षे पंचभ्यां (मथुरा का स्तम्भ लेख) आषाढ़ मास शुल्केकादश्याम् (उदयगिरि का लेख), सहस्य मास (पौष) शुक्लस्य प्रशस्ते हित्रयोदशे (मंदसोर का लेख) फाल्गुण मासे (इन्दौर का ताम्रपत्र) वैशाख मास सप्तभ्यां मूले श्यामगते (बुधगुप्त का सारनाथ बुद्ध प्रतिमा लेख) आदि रूप में मास का उल्लेख किया गया है।

गुप्त सम्राटों के समकालीन परिव्राजक शासक संक्षोभ के खोह ताम्रपत्र में–सम्वत्सरे चैत्र मास शुक्ल पक्ष त्रयोदश्यां का उल्लेख है। नेपाल के चांगु-नारायण के स्तम्भ लेख में 'ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्षे प्रतिपदि' वाक्य का उल्लेख यह वतलाता है कि चौथी सदी से प्रायः नियमित रूप से मास पक्ष व तिथि का नाम उल्लिखित होने लगा। उत्तर-गुप्त युग में भी सम्वत् से सम्बन्धित लेखों में मास, पक्ष व वार का उल्लेख है–कार्तिक वदी १ (वांसखेड़ा प्रशस्ति) चैत्र वदी ५ (धरसेन का बलभी लेख) तथा मार्ग शीर्ष शुक्ल पंचमी (अपरा-जित की उदयपुर लेख) आदि। पूर्व मध्ययुग से प्रतिहार अभिलेखों में उचित रीति से–मास, पक्ष तथा तिथि उल्लिखित है। गहड़वाल लेख (माघ सुदी ५ कमौली दानपत्र) तथा परमार अभिलेख (आषाढ़ बदि २––जयसिंह की उदयपुर प्रशस्ति) मास तथा वार की चर्चा करते हैं। पाल तथा सेन लेखों में इस प्रकार का मास तथा वार का उल्लेख नहीं है। स्यात् उनमें विशिष्ट सम्वत् का प्रयोग न होने से विभिन्न रीति अपनायी गई जो गुप्त कालीन लेखों में प्रयुक्त थी।

यह कहा जा चुका है कि ईसवी सन् के पश्चात् अधिकतर लेखों में उल्लिखित वर्षांक किसी न किसी सम्वत् से (गणना) से सम्बन्धित हैं। अत्यन्त प्राचीन युग में किसी प्रकार की गणना आरम्भ हुई या नहीं, इस सम्बन्ध में यथार्थ कहना कठिन है। परन्तु जैन ग्रंथों में महावीर-निर्वाण सम्वत् के नाम से एक गणना का विवरण पाया जाता है। स्वेताम्बर लेखक सूरी ने अपनी पुस्तक 'विचार' श्रेणी में लिखा है कि महावीर तथा विक्रम सम्वत् में ४७० वर्ष का अन्तर है। यानी महावीर सम्वत् ४७०+५७=ई० पू० ५२७ वें वर्ष में प्रारंभ किया गया होगा। नेमि-चन्द्राचार्य ने भी इस गणना के सम्बन्ध में लिखा है महावीर निर्वाण के ६०५ वर्ष बाद शक लोगों की गणना आरंभ की गई। अतएव महावीर निर्वाण

सम्वत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्वत् ६०५-७८ ई० = ई० पू० ५२७ में स्थिर हो जाता है। दिगम्बर जैन लोगों की परम्परा पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्होंने महावीर निर्वाण तथा शक संवत् में ४६१, ७९५ या ७९३ वर्ष का अन्तर बतलाया है।

हाथी गुम्फा के लेख में एक वाक्य 'पनंतरिय सठ वस सते राज मुरिय काले' उल्लिखित है जिसका विद्वानों ने विभिन्न अर्थ किया है। स्तेन कोनो ने उसे 'मौर्यकाल (सम्वत्) के १६५ वें वर्ष' के अर्थ में अनूदित किया। उसका मत था कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक सम्वत् चलाया था जो खारवेल के समय कलिङ्ग में प्रचलित था। मूल पाठ को भी कुछ विद्वान् विवादास्पद मानते। 'पान तरीय सत सहसेहि, मुखिय कल वोच्छिन' को शुद्ध पाठ मानते हैं जिसका अर्थ है कि कई सहस्र मुद्रा व्यय कर के स्तम्भ प्रतिष्ठापित किया और प्रजा को मुख्य कला–गीत नृत्य-आदि से प्रसन्न किया। इस संवत् के मानने में एक दूसरी कठिनाई है कि इस गणना (१६५ मौर्य काल) से खारवेल की तिथि ३२१–१६५ = ई० पू० १५६ हो जाती है (जब ई० पू० ३२१ मौर्य काल माना जाय) जहां खारवेल ई० पू० पहली सदी में शासन करता रहा। तीसरे कठिनाई यह है मौर्य संवत् के सम्बन्ध में साहित्यिक अथवा लेखों का प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

ईसा पूर्व सदी में प्राचीन भारत में एक संवत् की स्थापना हुई जिसके संस्थापक के विषय में गहरा विवाद है। साहित्यिक तथा प्रशस्तियों के आधार पर यह कहा जाता है कि ई० पू० ५७ वर्ष में एक गणना प्रारम्भ हुई जिसके तीन पृथक पृथक नाम मिलते हैं। (१) कृत संवत् (२) मालव संवत् तथा (३) विक्रम संवत् या संवत्सर। समस्त प्रमाणों के अध्ययन से यह पता चलता है कि तीनों गणना का आरम्भ ई० पू० ५७ वर्ष से हुआ। ऐसी परिस्थिति में यह विचारणीय विषय है कि तीनों नाम एक ही गणना (संवत् या काल) के लिए प्रयुक्त मिलते हैं अथवा तीनों एक गणना के विभिन्न नाम हैं। इसे जानने के पश्चात् यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि एक गणना की तीन संज्ञा क्यों कर दी गई ?

विक्रमी सम्वत्

साधारणतया इसका समाधान यों किया जाता है कि मालवा गण के गणमुख्य विक्रमादित्य ई० पू० में शासन करते थे जिन्होंने आततायी शक लोगों को परास्त किया और देश में सुख शान्ति का राज्य हो गया। इसे दूसरे शब्दों में कृतयुग कहने लगे (वैभव पूर्ण समय)। ई० पू० ५७ वर्ष में मालवा गण ने विजय के उपलक्ष में एक सम्वत् चलाया गया तो कृत युग की परिस्थिति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो जाने के कारण कृत (सम्वत् के) नाम से पुकारा गया। कालान्तर में शक शासकों ने सिन्धु, सुराष्ट्र तथा अवन्ति के भू भाग पर अधिकार कर लिया। अवन्ति के उत्तर पूरव में निवास कर मालव गण अपने शक्ति तथा प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने में दत्तचित्त थे। अभिलेखों से पता चलता है कि कालान्तर में इस गणना के साथ मालव नाम जोड़ दिया गया और इस कारण वह सम्वत् दूसरे नाम--मालवा सम्वत् से विख्यात हुआ तौ भी कही मालव शब्द कृत से जुड़ा है।

राजपुताना तथा मध्यभारत के लेखों से निम्न प्रकार के उद्धरण इस कथन को प्रमाणित करते हैं—

कृतयोर्द्वयोः वर्षशतयोर्द्वय। (नंदसा यूपलेख)
कृते हि २००+८०+४
कृते हि २००+९०+५ फाल्गुण शुक्लस्य ५ (वड़वा यूप लेख)
कृते हि ३००+३०+५ (वर्नाला प्रशस्ति)
कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टा विशेषु
श्री मालव गणाम्नाते प्रशस्ते कृत संज्ञिते
(मंदसोर लेख नरवर्मन वर्ष ४६१)

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि मालव गण के नाम की गणना पहले कृत नाम से प्रसिद्ध थी। इस आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि छठी सदी से पूर्व के लेखों में कृत संज्ञा से ही विक्रम सम्वत प्रसिद्ध था।

छठी सदी के कई लेखों में मालव सम्वत् का उल्लेख पाया जाता है। कुमार गुप्त प्रथम के मंदसोर लेख में मालव गणना (सम्वत्) में तिथि ४९३ मिलती है—

मालवानां गणस्थित्या याते शत चुष्टये
त्रिनवत्यधिके ऽब्दानाम्रितौ सेव्यघनस्तने।

मालवा के राजा यशोधर्मन के मंदसोर वाली प्रशस्ति में उसी सम्वत् का उल्लेख निम्न शब्दों में पाया जाता है—

पञ्चसुशतेषु शरदां यातेष्वेकान्ननवति सहितेषु
मालवगण-स्थिति वशात्काल--ज्ञानाम लिखितेषु

(मालवगण के स्थापना के बाद ५८९ वसंत ज्ञान के लिए लिखा गया)
एक तीसरे लेख में

संवत शतैः यातैः सपञ्च--
नवत्यर्गलैः सप्तभिर्मालवेशां"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(मालव मुख्य के ७९५ वें वर्ष में) का उल्लेख मिलता है। दसवीं सदी तक के ग्यारसपुर (मालवा) के लेख में-"मालव कालाच्छरदाँषट्" मालव शब्द ही व्यवहृत होता रहा।

नवीं शताब्दी के बाद के लेखों में "विक्रम नृप कालातीत सम्वत्सर" "श्री विक्रमादित्योत्पादित सम्वत्सर" या "श्री विक्रमादित्य काले," "विक्रमाख्यस्य वैशाखस्य," "विक्रमकाले गते तु शुचिमासे" या "विक्रम संवत्सर" के वाक्य मिलते हैं। इसलिए यह प्रकट होता है कि उसी काल (सम्वत्) का तीसरा नाम विक्रम सम्वत् पड़ा। तात्पर्य यह है कि तीनों नाम एक सम्वत् के लिए प्रयुक्त होते रहे।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि वैभवपूर्ण काल के (कृतयुग) कारण गणना का कृत नाम पड़ा हो जो आगे चलकर मालव के नाम से सम्बन्धित कर दिया गया। ईसवी चौथी सदी में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (जिसकी पदवी विक्रमादित्य की थी) ने मालवा तथा काठियावाड के शक क्षत्रप शासकों को परास्त किया और वह भाग गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। पहले शक लोगों को परास्त कर ही यह गणना (सम्वत्) प्रारम्भ हुआ था। फिर उन्हीं शकों को गुप्त सम्राट् विक्रमादित्य ने पराजित किया। सम्भवतः इस विजय के स्मारक में प्राचीन सम्वत् का नाम बदल कर विक्रम-सम्वत् कर दिया गया। शकारि चन्द्रगुप्त के विजय का उल्लेख भिलसा के समीप उदयगिरि की गुहा लेख में पाया जाता है (कृत्स्न पृथ्वी जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः) कि राजा के साथ सेनापति वीरसेन भी मालवा में आया था। यही नहीं शक विजय के कारण ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम चांदी का सिक्का (अर्द्धद्रम) चलाया जो सर्वथा क्षत्रप सिक्कों का अनुकरण था। अतएव इसमें संदेह नहीं कि शको का अंतिम पराजय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के हाथों हुआ था। इस कारण सम्वत् के साथ विक्रम का नाम जोड़ना स्वाभाविक था। मालव सम्वत् विक्रम सम्वत् के नाम से पुकारा जाने लगा जिसका उल्लेख प्रशस्तियों में पाया जाता है। मालव आर्जुनायन तथा यौधेयगण राज्यों को चन्द्रगुप्त के पिता समुद्रगुप्त ने ही नष्ट कर दिया था (प्रयाग का स्तम्भ लेख) विक्रमादित्य द्वारा शकों के पराजय होने पर भी मालवा की जनता मालव सम्वत् का प्रयोग करती रही। यही कारण है कि कुमारगुप्त को भी मंदसोर वाले लेख में मालवा सम्वत् का प्रयोग करना पड़ा जब कि उसके अन्य सभी लेख गुप्त सम्वत् में तिथियुक्त हैं। यशोधर्मन का मंदसोर लेख (मा० स० ५८९=ई० स० ६४६) की तिथि मालव सम्वत् में दी गई है। लेखों में ८वीं सदी के पश्चात् विक्रम सम्वत् के प्रयोग का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक कारण यह होगा कि उस सदी के बाद जनता में गणराज्य की कल्पना सदा के लिए अनुपस्थित हो गई। राज्यतंत्र का बोलबाला हो जाने से लोगों ने भारतीय संस्कृति के रक्षक सम्राट् विक्रमादित्य को आदर्श मान कर विक्रम पदवी को प्राचीन सम्वत् के साथ जोड़ दिया। मालवा के चौथी सदी में ही विजित हो जाने पर भी विक्रम का नाम सम्वत् के साथ ९वीं सदी के बाद ही पाया जाता है।

संस्थापक

विक्रम सम्वत् के आदि संस्थापक का प्रश्न आज भी विवादास्पद है। मार्शल का कथन था कि शक राजा अयस ने इ० पू० ५७ में यह गणना आरम्भ की। गोपाल स्वामी ऐयर चष्टन को इसका संस्थापक मानते हैं। डा० जायसवाल का मत था कि आंध्र नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी ने शकों को पराजित कर इसे आरम्भ किया था। डा० अलतेकर आदि नाम कृत को व्यक्तिगत नाम मानते हैं। कृत नामधारी राजा अथवा सेनापति के द्वारा इस सम्वत् की स्थापना की गई होगी, इसीलिए उस गणना का नाम कृत[1] सम्वत् रक्खा गया। इन सब विभिन्न मतों का कारण यह है कि ई० पू० ५७ वर्ष में मालवा में किसी विक्रम नामक राजा की स्थिति सिद्ध न हो सकी है। विक्रम नाम से किसी ऐतिहासिक पुरुष के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान नहीं है जिसने किसी विजय के याद में काल––गणना आरम्भ किया हो। इतने विवेचन के पश्चात् भी विक्रम सम्वत् के विषय पर अभी तक पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ सका है।

आरम्भ काल

विक्रम सम्वत् किस समय आरम्भ किया गया इस विषय में अभिलेखों तथा साहित्यिक उल्लेखों द्वारा प्रकाश पड़ता है। मेरुतुंगाचार्य की पाठावली में महावीर निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम सम्वत् का आरम्भ बतलाया गया है (निर्वाण ई० पू० ५२६-४७० यानी ई० पू० ५७ वर्ष) कालिकाचार्य कथानक (तेरहवीं सदी) में ई० ५५७ वर्ष में विक्रम द्वारा शक पराजय की बात उल्लिखित है। विक्रम काल के १३५ वर्ष में शक सम्वत् आरम्भ हुआ, यानी १३५-७८ ई०=ई० पू० ५७ में विक्रम सम्वत् आरम्भ। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त के मंदसोर लेख में

---

१. फलतः जो कृत नाम से ज्ञापित हुआ मालव शब्द से भी प्रचलित हुआ, वही अद्यावधि विक्रम सम्वत् है। कृत शब्द कार्तिक वाची हो सकता है जो नाम (वर्षारम्भ) नक्षत्र कृत्तिका से सम्बन्धित है। आरम्भ से कृत्तिका गणना का माध्यम होने के कारण सम्वत् कृत नाम से प्रसिद्ध हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४८३ मालव सम्वत् की तिथि दी गई है। उसके करमदण्डा लेख की तिथि ११७ गु० स० है यानी वह ११७+३२०=ई० स० ४३७ में शासन करता था। अतएव ई० स० ४३६ तथा मालव सम्वत् ४९३ एक ही वर्ष होगा (ई० स० ४३६=मालव सम्वत् ४९३) इसके अनुसार मालव सम्वत् ४९३–४३७=५७ ई० पूर्व में आरम्भ माना जा सकता है। दोनों आधार पर विक्रम सम्वत् का आरम्भ ई० पू० ५७ में सिद्ध होता है। उत्तरी भारत में यह सम्वत् चैत्र शुक्ल से तथा दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ल १ से प्रारम्भ मानते हैं। बंगाल को छोड़कर समस्त भारत में आज भी विक्रम काल (सम्वत्सर) प्रयुक्त होता है। बंगाल के सम्वत् को फसली कहते हैं जो हिजरी का ही एक सुसंस्कृत रूप है।

यह कहा गया है कुषाण वंशी लेखों, पश्चिमी भारत के क्षत्रप प्रशस्तियों तथा सिक्कों पर एक ही सम्वत् का प्रयोग मिलता है। उसी के सहारे आंध्र लेखों की तिथियां (राज्य वर्षांक में) क्षत्रप समकालीनता के आधार पर निश्चित है। यह भारतीय गणना नहीं थी। क्योंकि शक लोगों द्वारा मालवगण को परास्त कर मालव-सम्वत् का प्रयोग असंगत था; इस कारण यह मानना उचित होगा कि शक नरेशों ने पृथक सम्वत् की स्थापना की। उस शक सम्वत् की स्थापना कब और किसके हाथों हुई? जैन ग्रंथ प्रभावक चरित में कालिकाचार्य कथा का उल्लेख है कि शक लोगों ने अपना सम्वत् चलाया था। शक लोगों ने विक्रम के उत्तराधिकारी को विक्रमादित्य के १३५ वर्ष में मार डाला उसी काल से शक गणना का आरम्भ मानते हैं। विक्रमादित्य द्वारा संस्थापित काल ई० पू० ५७ में १३५ जोड़ने से शक-काल ई० स० ७८ में स्थापित सिद्ध हो जाता है (ई० पू० ५७–१३५= ई० सं० ७८)। कुछ विद्वामों का मत है कि रुद्रदामन (ई० स० १५०) के पितामह चष्टन शक वंश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और सम्भवतः उसी ने इस गणना का आरम्भ किया। शक सम्वत् में सम्बन्धित लेखों में निम्न प्रकार का उल्लेख पाया जाता है —

शक सम्वत्

(१) शक नृपति राज्याभिषेक संवत्सर (इ. ए. भा. ९ पृ० ५८)
(२) शक नृपति संवत्सर (वही भा ६ पृ० ७३)
(३) शक नृप संवत्सर (वही १२ पृ० १६)
(४) शक सम्वत् (ए. इ. भा. १ पृ० १६)
(५) शक या शाके (वही पृ० ३४३)
(६) शक नृप काल (ए. इ. भा ३ पृ० १०९)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहने का तात्पर्य यह है कि पांचवी सदी से बारहवीं सदी तक के लेख शक-काल (सम्वत्) का उल्लेख करते हैं। पश्चिमी भारत में क्षहरात शक नहपान के लेख में शक काल प्रयुक्त मिलता है। क्षत्रपों के सिक्कों पर भी तिथि इसी सम्वत् से सम्बन्धित है। उसका आरम्भ जीवदामन के सिक्कों से होता है। १००, १०२, ११९ आदि अंक मिलते हैं। रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में ७२ की तिथि मिलती है जो ई० स० १५० माना जाता है (७२+७८)। यह तो सही है कि शक आरम्भ में सामंत रहे और सम्भवतः अपने सम्राट (कुषाण) के काल का प्रयोग करते रहे। अधिक समय (चौथी सदी) तक लोगों ने उस सम्वत् का प्रयोग किया। अतः यह गणना नृप काल के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। यह माना जा सकता है कि कुषाण राजा कनिष्क द्वारा ई० स० ७८ में गद्दी पर बैठने के कारण उस गणना का आरम्भ हुआ हो जो आज तक शक-काल के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्वत् से संस्थापक के विषय में बड़ा ही मतभेद है। फ्रीट तथा केनेडी कनिष्क को इसका संस्थापक नहीं मानते। उनके कथनानुसार उसने विक्रम सम्वत् की स्थापना की थी। फरगुसन, आलडेन वर्ग, वनैर्जी तथा राय चौधरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ में शक सम्वत् को आरम्भ किया था। कुषाण वंश के लेखों में ३-९३ वें वर्ष की तिथि अंकित है जो इसी सम्वत् में दी गई है। कौशाम्बी नरेश की प्रशस्तियों (ए० इ० भा. २४ पृ० १४६) में ५१ तथा १३९ की तिथि मिलती है तथा कैलवान लेख (ए० इ० भा. ३१ पृ० २२९) की तिथि १०८ है जो सभी शक सम्वत् सन् ७८ से सम्बन्धित हैं। पूर्वी मालवा का अभिलेख वाशिष्क के २८वें वर्ष में उत्कीर्ण हुआ जिसकी तिथि शक सम्वत् में मानने से ही निश्चित काल ज्ञात होता है। डा. मजूमदार का कथन (शक-सम्वत् ई. स. २८४ में आरम्भ हुआ था) मानने से चौथी सदी तक मालवा में कुषाण शासन को स्थिति प्रकट होती है जो द्वितीय चन्द्रगुप्त के सांची तथा उदयगिरि अभिलेखों के समक्ष असत्य हो जाता है। मध्य एशिया के रूसी पुरातत्व सम्बन्धी पत्रों की तिथियां (२०७ तथा २३१) भी कनिष्क सम्वत् सन् ७८ से जुड़ी हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि कनिष्क ने ई. स० ७८ में शक-सम्वत् की स्थापना की। अन्य विचार तथ्यहीन हैं। शक युग के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ने पर हम इसी निर्णय पर पहुंच सकते हैं। स्थापना के पांच सौ वर्षों के बाद ही लेखों में शक नृप काल या शकाब्द का उल्लेख मिलता है जो यह सिद्ध करता है कि शक द्वारा काल स्थापना की परम्परा लोगों को ज्ञात थी। चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी के अयहोल लेख से भी इस प्रकार की रचना मिलती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च
समासु समतीतासु शका नामपि भ्भुजाभ्
(ए० इ० भा० ६ पृ० १)

दक्षिण भारत में इसे शालिवाहन-शक कहते हैं। चौदहवीं सदी के लेखों में शालिवाहन शक-काल का उल्लेख है सम्भवतः दक्षिण में शक संवत्सर वर्ष का द्योतक था। दक्षिण की राजनीतिक परम्परा में शालिवाहन नरेश प्रसिद्ध माने गए हैं अतएव उस संवत्सर के साथ शालिवाहन नाम जोड़ देना उचित ही था। सारे भारत में इस शक-काल की गणना का समान प्रयोग होता रहा है। यही कारण है कि हमारी सरकार ने शक-सम्वत् को राष्ट्रीय-सम्वत् मान लिया है।

गुप्त-सम्वत्

भारतीय ऐतिहासिक गवेषणा में विद्वानों को अमुक राजा वा राजवंश के काल निर्णय में अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था और कब कहां आदि प्रश्न ऐतिहासिक परिशीलन में प्रायः पूछे जाते हैं। पूर्वकाल में भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में अनेक सम्वत् प्रचलित हुए थे, जिन्हें विभिन्न समयों पर पृथक-पृथक राजाओं ने स्थापित किया था। इन सम्वतों के आधार पर भारत का तिथि-क्रम युक्त शृंखला-बद्ध इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिली है। ईसा की चौथी शताब्दी से छठी तक गुप्त इतिहास की घटनाएं काल क्रमानुसार निबद्ध करने में विद्वानों को कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। परन्तु गुप्त लेखों में 'गुप्त काल' और गुप्त वंश की राज्य-परम्परा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिससे काल निर्णय में सरलता हो जाती है। अतएव गुप्त काल की प्रारम्भिक तिथि (गुप्त संवत्) को निर्धारित करना समुचित प्रतीत होता है। यह संवत् (गुप्त-संवत) किस राजा ने चलाया, इस विषय में लिखित प्रमाण अब तक नहीं मिला है।

प्रायः समस्त गुप्त लेखों में एक प्रकार की तिथि का उल्लेख मिलता है जिस से उस सम्राट् की शासन अवधि स्थिर की जाती है। सब तिथियों के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि तिथि का क्रम शनैः शनैः एक शासक से उसके उत्तराधिकारी के लेख में बढ़ता जाता है। गुप्त सम्राट द्वितीय चन्द्रगुप्त के लेखों में ८२ या ९३ आदि तिथि उल्लिखित हैं[1] तो उसके पुत्र प्रथम कुमार गुप्त की प्रशस्तियों में ९६, ९८, ११७, १२९ आदि तिथियां मिलती हैं[2]। इन

१. श्री चन्द्रगुप्तस्य विजय राज्य सम्वतसरे (का० इ० इ० भा० ३ नँ० ५ ७)
२. 'श्री कुमारगुप्तस्य अभिगर्धमान विजयराज्ये संवत्सरे षण्णवते'
वही न० ८, १०, ११

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंकों से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ९३ वर्ष तक शासन किया तथा प्रथम कुमारगुप्त १२९ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इन अंकों पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त सम्राट् किसी अमुक समय से काल गणना करते थे। ये अंक यही सूचित करते हैं कि गुप्त नरेश ९३वें वर्ष तथा १२९वें वर्ष में शासन करते थे। अतएव उस समय को निश्चित करना परमावश्यक प्रतीत होता है।

कतिपय लेखों तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि गुप्तों के नाम से किसी समय की गणना होती थी; जिसे 'गुप्त-काल' या 'गुप्त-संवत्' कहते हैं। इस से ज्ञात होता है कि लेखों की समस्त तिथियाँ इसी गुप्त संवत् में दी गई हैं। गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख में स्पष्ट रीति से उल्लेख है कि इस प्रशस्ति की तिथि 'गुप्त-काल' (गुप्त-संवत्) में दी गई है।

गुप्त-संवत् का नामोल्लेख

संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे **गुप्तप्रकाले गणनां** विधाय[1]॥

गुप्त नरेश द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के सारनाथ वाले लेख में भी गुप्त-संवत् का नामोल्लेख मिलता है[2]।

'वर्षे शते गुप्तानां सचतुः पंचाशदुत्तरे भूमिं।
शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयायाम्'
'गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति'॥

गंजाम लेख में "गौप्ताब्दे वर्ष शतत्रये" की तिथि शशांक के लिए मिलती है। (ए० इ० भा०६ पृ० १४३)

ईसा की दसवीं शताब्दी के मोरवि ताम्रपत्र में भी तिथि का उल्लेख गुप्त संवत् में पाया जाता है। उस ताम्रपत्र में 'गौप्ते' शब्द से स्पष्ट प्रकट होता कि गुप्त लोगों की भी कुछ काल-गणना थी[3]

'पञ्चाशीत्या युतेतीते समानाँ शतपञ्चके।
गौप्ते ददावदो नृपः सोपरागेर्कमण्डले'॥

---

१. गु० ले० नं० १४।

२. आ० स० रि० १९१४-१५।

३. गु० ले० भूमिका ९७। इस ताम्रपत्र के गोप्ते की समता फ्लीट किसी ग्राम से बतलाते हैं, परन्तु यह निर्विवाद है कि इसका सम्बन्ध गुप्त लोगों से है। (कलेक्टेड वर्कस आफ़ सर भण्डारकर भा० ३पृ० ३९३—४)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्त सम्राटों के सामंत परिव्राजक महाराजाओं के लेखों में तिथि का उल्लेख गुप्तनृपराज्यभुक्तौ' के साथ मिलता है[1]। अतः यह निर्विवाद है कि गुप्त संवत् की अवश्य स्थापना हुई जिस समय से गुप्तों की काल गणना प्रारम्भ हुई।

ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनवी के समकालीन इतिहासज्ञ अल-बेरूनी भारत आया। उसने भारत के अनेक विषयों का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। भारतीय संवतों की वार्ता को उसने अछूता नहीं छोड़ा; परन्तु अक्षरशः उसके वर्णन को सत्य नहीं माना जा सकता। अलबेरूनी ने गुप्त-संवत् के बारे में भिन्न विवरण दिया है—'लोग कहते हैं कि गुप्त शक्तिशाली तथा क्रूर नरेश थे। जब उस वंश की समाप्ति हुई उसी समय से इस संवत् की गणना होने लगी। यह भी ज्ञात होता है कि वलभ प्रतापी राजा था क्योंकि वलभी संवत् के समान गुप्त काल की गणना शक काल के २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ होती है[1]'।

अलबेरूनी का कथन

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस गुप्तकाल या गुप्त-संवत का उल्लेख किया गया है, वह किस समय चलाया गया तथा इसके प्रतिष्ठाता कौन थे ? इस संवत् के समय निर्धारित करने में अलबेरूनी से बहुत सहायता मिलती है।

अनेक संवतों की समानता दिखलाते हुए अलबेरूनी ने (१) १०८८ विक्रम संवत् (२) ९५३ शक संवत् (काल) तथा (३) ७१२ वलभ काल = गुप्त काल का उल्लेख किया है; जिससे उसके कथन की पुष्टि होती है कि गु० स० श० का० से २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ। अलबेरूनी के इन संवतों की तिथि ठीक है, परन्तु उसके समस्त वर्णन जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं। उसके कथन से ज्ञात होता है कि गुप्त-संवत् उस वंश के नष्ट होने पर प्रारम्भ हुआ। वलभ, जो वलभी नगर (सौराष्ट्र में स्थित) का शासक था, उस वंश का

१. गु० ले० नं० २२, २३, २५ आदि।

1. As regards the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist this date was used as the epoch of an Era. It seems that Valabha was the last of them, because the era of the Guptas falls, like that of the Valabha era, 241 years later than the Saka Kala.

—आलबेरूनी इंडिया, भा० २ पृ० ७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंतिम नरेश था। वलभी संवत् उसी के नाम से प्रारंभ हुआ। जैसा ऊपर कहा गया है, समस्त विवरण जनश्रुति के कारण अविश्वसनीय है। उसकी अप्रामाणिकता के लिए अन्य प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। अलबेरूनी लिखता है कि शक काल विक्रमादित्य द्वारा शक पराजय के समय से प्रारम्भ हुआ[1]; परन्तु चालुक्य-प्रशस्तिकार रविकीर्ति ने शक संवत् का आरम्भ शक राजा के सिंहासनारूढ़ होने के समय से बतलाया है[2]; जो वस्तुतः ठीक सिद्धान्त है। इसी प्रकार गुप्तों के विषय में भी उस इतिहासज्ञ ने असत्य बातें लिख डाली हैं। यदि वलभी लेखों पर ध्यान दिया जाय तो अलबेरूनी का कथन सर्वथा ग्राह्य नहीं है।

वलभी में मैत्रकों के सेनापति भट्टारक ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके तीसरे पुत्र ध्रुवसेन प्रथम के एक लेख में २०६ तिथि का उल्लेख मिलता है[3]। यदि वलभी राज्य स्थापन के अवसर पर वलभी संवत् का आरम्भ हुआ तो कभी भी माना नहीं जा सकता कि वलभी वंश के संस्थापक (भट्टारक) के २०६ वर्ष पश्चात् उसका पुत्र (ध्रुवसेन प्रथम) शासक हुआ। अतएव इस तिथि का वलभी संवत् से कुछ भी सम्बन्ध प्रकट नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में वलभी राज्य में किसी अन्य संवत् का प्रचार मानना आवश्यक है जिसमें उस वंश की तिथियां मिलती हैं। ऐतिहासिक पण्डितों ने वलभी लेखों की तिथियों का सम्बन्ध गुप्त-संवत् से बतलाया है। इस विवाद का परिणाम यही ज्ञात होता है कि गुप्तों के अधीनस्थ मैत्रकों ने स्वतन्त्र होने के समय से वलभी में प्रचलित गुप्त-संवत् को वलभी-संवत् का नाम दे दिया। अतः यह स्पष्ट रीति से कहा जा सकता है कि वलभी संवत नामक कोई स्वतन्त्र गणना नहीं थी; परन्तु गुप्त संवत् का दूसरा नाम है। इस आधार पर अलबेरूनी का वर्णन अग्राह्य हो जाता है, तिथि उल्लेख प्रमाणयुक्त है। उसके कथनानुसार गुप्त संवत् भी शक काल से २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ जो अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध होता है। कुछ जन ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है कि गुप्त-संवत् शक काल से २४१ वर्ष पश्चात आरम्भ होता है।

अलबेरूनी से पूर्व शताब्दियों में कुछ जैन ग्रंथकारों के आधार पर यह ज्ञात

---

१. अलबेरूनी इंडिया, भा० २पृ० ६।

२. पन्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पन्चसतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।—अयहोल का लेख शक संवत ५५६ (ए० इ० भा० ६ पृ० १)

३. इ० हि० क्वा० भा० ४ पृ० ४६०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जैन ग्रंथों के आधार पर गु० स० तथा श० का० का अन्तर (२४१)

होता है कि गुप्त तथा शक काल में २४१ वर्ष का अन्तर है। प्रथम लेखक जीनसेन, जो आठवीं शताब्दी में वर्तमान था, वर्णन किया है भगवान महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह पश्चात् शक राजा का जन्म हुआ तथा शक के अनन्तर और गुप्तों के २३१ वर्ष शासन के बाद कल्किराज का जन्म हुआ[1]। द्वितीय ग्रंथकार गुणभद्र ने उत्तर पुराण में (८९८ ई०) लिखा है कि महावीर निर्वाण के १००० वर्ष बाद कल्किराज पैदा हुआ[2]। जीनसेन तथा गुण भद्र के कथन का समर्थन तीसरे जैन लेखक नेमिचन्द्र करते हैं[3]।

नेमिचन्द्र त्रिलोकसार में लिखते हैं कि शकराज महावीर निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह के बाद तथा शककाल के ३९४ वर्ष ७ माह के पश्चात् कल्कि राज पैदा हुआ[4]।

इनके योग से—वर्ष	माह
६०५	५
३९४	७
१०००	

१. गुप्तानां च शतद्वयम्
एक त्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्।
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्कि राजस्य राजता।
ततोऽजितंजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः।
वर्षाणि षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराज ततोऽभवत।—जीनसेनकृत हरिवंश अध्याय ६०

२. इ० ए० भा० १५ पृ० १४३।

३. नेमिचन्द्र की तिथि दशवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी जाती है। एक लेख पर नेमिचन्द्र चामुण्डराय का राजकवि ज्ञात होता है—
त्रिलोकसारप्रमुखप्रबन्धान्।
(विरच्य सर्वान्) मुमि नेमिचन्द्रः
विभाति सैद्धान्तिकसार्वभौम।
चामुण्डरायार्च्चितपाद पद्मः—(नागर लेख इ० का० भा० ८)

यह (चामुण्डराय) गंग राजा रासमल्ल चतुर्थ का इ० सन् ९७७ के लगभग मंत्री था जो श्रवण-वेलगोला की प्रशस्ति से पता चलता है (राइस—वेलगोला का लेख भूमिका पृ० ३४) आधार पर नेमिचन्द्र की तिथि निश्चित की गई है।

१. पण छसय वसं पणमास जुदं गमयि वीरणि बुइदो सगराजो सो कल्किचदुण वतिय महिय सगमासं (त्रिलोकसार पृ० ३२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्ष होते हैं। इन तीनों जैन ग्रंथाकारों के कथानुसार शक काल तथा कल्किराज का जन्म निश्चित हो जाता है। इस शक काल की तिथि को विक्रम संवत् में परिवर्तन करने से शक, विक्रम तथा ई० स० में समकालीनता बताई जा सकती है जिसकी वजह से गुप्त काल को निश्चित करने में सरलता

विक्रम तथा शक काल का सम्बन्ध

हो जाती है। ज्योतिषसार के आधार पर यह ज्ञात है कि शक काल में १३५ जोड़ने से वह तिथि विक्रम संवत् में परिवर्तित हो जाती है[१]। शक काल के ३९४ वर्ष पश्चात् कल्किराज पैदा हुआ जो ५२९ विक्रम (३९४+१३५) होता है[२]। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त प्रथम के मंदसोर के लेख में दूसरी तिथि मालव-संवत् ५२९ का उल्लेख है[३]। मंदसोर लेख की पहली तिथि ४२९ वि० दूसरी तिथि से ३६ वर्ष पूर्व है। अतएव प्रथम कुमारगुप्त शक ३५८ (४९३-१३५) में बन्धुवर्मा साथ शासन करता था[४]।

शक तथा गुप्त काल का सम्बन्ध

गुण भद्र के कथनानुसार कल्किराज का शक ३९४ के पश्चात् माघसंवत्सर प्रारम्भ होता है[५]। वराहमिहिर ने भी कुछ निम्नलिखित व्यतीत शक संवत्सरों का वर्णन किया है[६]:—

शक	३९४	व्यतीत	माघ	संवत्सर
”	३९५	”	फाल्गुन	”
”	३९६	”	चैत्र	”
”	३९७	”	वैशाख	”

शक ३९७ के वैशाख संवत्सर का उल्लेख परिव्राजक महाराज हस्तिन् के

१. स एव पञ्चाग्निकुभियुक्तः स्याद्विक्रमस्य हि रेवाया उत्तरे तीर संवन्नाम्नाति विश्रुतः (ज्योतिषसार)

२. साधारणतया यह सर्व प्रसिद्ध है कि शक काल में ७८ जोड़ने से ई० स० तथा ई० सन् में ५७ जोड़ने पर विक्रम संवत् बनता है ३९४+७८+५७=५२९

३. संवत्सरशतेषु पंचसु विंशंत्यधिकेशु नवसु चाब्देषु यातेष्वाभिरम्य तपस्यमास-शुक्ल द्वितीयायाम् (गु० ले० नं० १८)।

इस आधार पर मालवा तथा विक्रम संवत् में समानता स्थापित होती है। (ईसा ५७)।

४. मालवानां गणस्थित्या याते शवचतुष्टये।
त्रिनवत्यधिकेब्दानां रितौ सेव्य घनस्वने।
सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नित्रयोदशे।—(गु० ले० नं० १८)।

५. चतुर्मुखाह्वयः कल्कीराजोद्वेजित भूतले।
उत्पन्येहं मघा संवत्सरेयोगसमागमे।—(उत्तरपुराण ७६।३९६)।

६. फ्लीट—का० इ० भा० ३ परिशिष्ट ३ पृ० १६१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खोह लेख गु० स० १५६ में मिलता है।[१] इस आधार पर शक तथा गुप्त काल में निम्नलिखित समता तैयार की जा सकती है:—

शक ३९४ = माघ	संवत्सर = गुप्त-संवत्		१५३	व्यतीत
" ३९५ = फाल्गुन	" = "	"	१५४	"
" ३९६ = चैत्र	" = "	"	१५५	"
" ३९७ = वैशाख	" = "	"	१५६	"

इस समता से यह ज्ञात होता है कि गुप्त-संवत् की तिथि में २४१ जोड़ने से शक काल में परिवर्तन हो जाता है। इस विस्तृत विवेचन के कारण अलबेरूनी के कथन की सार्थकता ज्ञात हो जाती है। यह निश्चित हो गया कि शक-काल के २४१ वर्ष पश्चात् गुप्त संवत् का आरम्भ हुआ।

गुप्त-संवत् तथा शक काल में २४१ वर्ष का अन्तर स्थिर हो जाने पर, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शक काल के २४१ वें वर्ष या २४१ वर्ष व्यतीत होने पर गुप्त काल (संवत्) प्रारम्भ हुआ।

फ्लीट का मत

फ्लीट महोदय का मत है कि गुप्त संवत् शक काल के २४१ वें वर्ष में आरम्भ हुआ उनके कथानुसार दोनों संवतों में २४२ वर्ष का अन्तर पड़ता है[२]। उदाहरणार्थ उसने बुध गुप्त के एरणस्तम्भलेख[३] की तिथि गु० स० १६५ शक काल ४०७ (१६५+२४२) से समता बतलाई है। यदि वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाय तो फ्लीट की धारणा तथा कथन सर्वथा निराधार प्रकट होते हैं।

मत का खण्डन

जैनग्रंथकार नेमिचन्द्र के कथनानुसार यह ज्ञात होता है कि शक काल के ३९४ वर्ष ७ माह व्यतीत होने पर कल्किराज का जन्म हुआ। इस लिए यह कहा जा सकता है कि ३९५ वें वर्ष में ७ माह बीतने पर कल्किराज का जन्म हुआ। ऊपर तुलनात्मक प्रसंग में दिखलाया गया है कि—

शक	३९४ = माघ	संवत्सर = गु० स०	१५३	व्यतीत
"	३९७ =	" "	१५६	"

अतएव शक काल तथा गु० स० में २४१ वर्ष का अन्तर ज्ञात होता है, २४२ वर्ष का नहीं।

---

१. शतपञ्चशतोत्तरेब्दे शते गुप्तनृपराज्यभुक्तौ महावैशाखसंवत्सरे कार्त्तिकमासशुक्लपक्षतृतीयाम्। (गु० ले० २१)।

२. फ्लीट गु० ले० भूमिका ८४।

३. का० इ० इं० भा० ३ नं० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शून्य गु० स०	=	शक २४१
१ ,, ,, प्रचलित	=	,, २४२ प्रचलित

इस उपरियुक्त कथन की पुष्टि लेखों से होती है। गुप्त लेखों में भी इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। गुप्त राजा कुमारगुप्त द्वितीय के सारनाथ लेख की तिथि गु० स० १५४ है[1]; जो शक काल ३९५ व्यतीत (१५४ +२४१) में परिर्वतन हो सकता है। इसके अतिरिक्त बुध गुप्त के सारनाथ प्रतिमा लेख में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि गु० स० १५७ वर्ष व्यतीत होने पर शासन करता था[2]। इस स्थान पर पूर्व समता को ध्यान में रखते तथा ज्योतिषसार के आधार पर एक नवीन तुलनात्मक वृत्त तैयार हो सकता है। यह निम्न प्रकार है :--

लेखों का प्रमाण

मालव-संवत्	शक काल	गुप्तसंवत्
५२९ व्यतीत	३९४ व्यतीत	१५३
५३० ,,	३९५ ,,	१५४
५३१ ,,	३९६ ,,	१५५
५३२ ,,	३९७ ,,	१५६
५३३ ,,	३९८ ,,	१५७ व्यतीत[3]

इस तुलना से यही परिणाम निकलता है कि शक काल तथा गुप्त सँवत् में २४१ का ही अन्तर है। इन प्रमाणों के आधार पर यह प्रकट होता है कि व्यतीत गुप्तवर्ष संवत् में २४१ जोड़ने से व्यतीत शक काल तथा प्रचलित गु० स० में २४१ जोड़ने से प्रचलित शक काल में परिवर्तन होता है[4]। अलबेरूनी ने

---

१. वर्ष शते गुप्तानां सचतु:पञ्चाशदुत्तरे भूमिम्। शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयायाम्।

२. गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्त पंचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति।

३. बुधगुप्त के सारनाथ के लेख से स्पष्ट हो जाता है कि वह गुप्तों के १५७ वर्ष व्यतीत होने पर सप्तमी बैसाख में शासन करता था, या उस समय को प्रचलित १५८ वर्ष कह सकते हैं। इसी नरेश का एक दूसरा लेख (एरण) आठ वर्ष के बाद गु० स० १६५ का है (गु० ले० न० १९)। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि वह राजा गु० स० १६५ आषाढ़ १२ में राज्य करता था। इससे भी आषाढ़ मास में व्यतीत गु० स० १६५ यानी प्रचलित १६६ ज्ञात होता है।

४. कलेक्टेड वर्कस आफ सर भण्डाकर भा० ३ पृ० ३८७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोनों संवतों का अन्तर बतलाते हुए विक्रम, शक काल तथा वलभी (गुप्त) संवत् में तीन तिथियों का उल्लेख किया है[१]।

मालव स०	श० का०	वलभी (गु०) स०
१०८८	९५३	७१२

यदि उपरियुक्त तुलना पर ध्यान दिया जाय तो प्रकट होता है कि लेखों तथा अलबेरूनी कथित संख्या (२४१) का ही अन्तर गु० स० तथा श० का० में पाया जाता है।

मालव-संवत्	शक काल	गुप्त-संवत्
५२९	३९४	१५३
१०८८	९५३	७१२

गुप्त लेख के अतिरिक्त वेरावल लेख के अध्यन से भी गु० स० तथा श० का० के अन्तर (२४१ वर्ष) पर प्रकाश पड़ता है। कर्नल टाड ने गुजरात के चालुक्य नरेश अर्जुनदेव के समय के वेरावल नामक स्थान से लेख का पता लगाया था[२]। इस लेख की विशेषता यह है कि इसमें चार संवतों में तिथि लिखी गई है। प्रशस्तिकार ने विक्रम १३२० वलभी ९४५; हिजरी ६६२ तथा सिंह संवत् १५१ तिथियों का उल्लेख किया है[३]। दीवान बहादुर पिलाई के गणनानुसार आषाढ़ बदी १२ रवि शक-काल ११८६ तथा विक्रम १३२१ एक ही वर्ष में पड़ता है[४]। लेखों में वर्ष तथा इस गणना में भिन्नता इसलिए होती है कि वेरावल के लेख में दक्षिण भारत की प्रणाली के अनुसार विक्रम १३२० तथा वलभी ९४५ कार्तिकादि में उल्लिखित है। अतएव—

वलभी व गुप्त संवत् की एकता

विक्रम	शक	वलभी
१३२१=	११८६=	९४५

इसमें से ७९२ घटाने पर

वि०	शक	वलभी
५२९=	३९४=	१५३

१. अलबेरूनी इंडिया भा० २ पृ ७।

२. एनल्स आफ राजस्थान भा० १ पृ० ७०५।

३. श्रीनृपविक्रम १३२० तथा श्रीमद्वलभी सं० ९४५ तथा श्रीसिंह सं० १५१ वर्ष आषाढ़ बदी १२ रवि (इ० ए० भा० ११ पृ० २४२)।

४. इंडियन क्रानालोजी टेबुल १० पृ० ९२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा इसमें से ३६ घटाने पर

वि०	श०	वलभी
४८३	३५८	११७

आता है। इस गणना में वलभी ११७ तथा गुप्त नरेश कुमारगुप्त प्रथम की करमदण्डा की प्रशस्ति की तिथि (गु० स० ११७) समान है[1]। अतः ज्ञात होता है कि वलभी तथा गुप्त-संवत् में कोई विभिन्नता नहीं है। इस बेरावल लेख की समता

श०	वि०	वलभी
११८६	१३२१	९४५

तथा उपर्युक्त तुलना में

श०	मा० स०	वलभी (गु० स०)
३९४	५२९	१५३

२४१ वर्ष का ही अन्तर है; जो ऊपर बतलाया गया है।

खैरा का ताम्रपत्र खैरा ताम्रपत्र अंतिम लेख है जिससे शक काल तथा गुप्त संवत् के अन्तर (२४१) पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख की तिथि वलभी संवत् ३३० मिलती है[2] जिसका उल्लेख निम्न प्रकार है—

सं० ३०० ३० द्वि० मार्ग शीर्ष शु० २

इस वलभी संवत् में २४१ जोड़ने से शक काल में परिवर्तन हो जाता है।

वलभी	शक
३३०	५७१

ज्योतिष गणना के आधार पर शक ५७१ अधिक मार्गशीर्ष में पड़ेगा[3]। अतएव

वलभी	शक
३३० प्रचलित=	५७१ प्रचलित

के समान है। पूर्व तुलना से इस तिथि का स्थान निश्चित हो जाता है।

श०	मा० स०	गु० (वलभी) स०
३९४[4]	५२९[4]	१५३[4]

---

१. ए० इ० भा० १० पृ० ७०।

२. गु० ले० भूमिका पृ० ९३।

३. भंडारकार कामेमोरेशन वालुम पृ० २०९।

४. देखिए ऊपर की तिथि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५७१[1]	७०६	३३०[1]
११८६[2]	१३२१[2]	९४५[2]

अतएव इन समस्त लेखों तथा अलबेरूनी के कथन के आधार पर यही निश्चित होता है कि गु० स० में २४१ जोड़ने पर श० का० बनता है। व्यतीत तथा प्रचलित में जोड़ने से क्रमशः व्यतीत तथा प्रचलित श० का० परिवर्तन होता है।

फ्लीट का मत था कि गु० स० श० का० के २४१ वर्ष बाद नहीं परन्तु २४२ वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुआ[3]। परन्तु ऊपर कथित विस्तृत विवेचन के सम्मुख फ्लीट महोदय का मत स्वीकार नहीं किया जा सकता

चैत्रादि वर्ष का प्रचार

फ्लीट ने डा० कीलहार्न के कथन का समर्थन करते हुए यह भूल की कि दक्षिण भारत की तरह उत्तरी भारत में भी मालव संवत् का प्रारम्भ कार्तिक से हुआ[4] चैत्र से नहीं, इसको मान लिया। परन्तु यदि गुप्त लेखों का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि मालव संवत् चैत्र से प्रारम्भ होता है[5]। कुमार गुप्त द्वितीय के सारनाथ लेख से पता चलता है कि गु० स० १५४ व्यतीत यानी गु० १५५ के ज्येष्ठ द्वितीया को वह मूर्ति स्थापित की गई थी[6]। इसी प्रकार बुध गुप्त के सारनाथ तथा एरण के लेखों से भी यही बातें प्रकट होती हैं। इन लेखों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राजा व्यतीत गु० स० १५७ तथा १६५ या प्रचलित १५८ वैशाख तथा प्रचलित १६६ आषाढ़ में शासन करता था। इतना ही नहीं, यशोधर्मन के मंदसोर के लेख (मा० स० ५८९) में यह वर्णन मिलता है कि संवत वसंत (चैत्र तथा वैशाख) से प्रारम्भ होता है[7]। इन प्रमाणों

१. खैरा ताम्रपत्र की तिथि।
२. वेरावल लेख की तिथि।
३. गु० ले० भूमिका पृ० ८४।
४. इ० ए० भा० २० पृ० ३२; गु० ले० भूमिका पृ० ६६।
५. भंडारकर कामेमोरेशन वालुम पृ० २०७-८।
६. आ० स० रि० १९१३—४।
७. पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्ननवति सहितेषु।
मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानाय लिखितेषु॥
यस्मिन् काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलाप-
भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से यह सिद्ध होता है कि गुप्तों के शासनकाल में मालव-संवत् चैत्र से प्रारम्भ होता था, कार्तिक से नहीं। वेरावल लेख के आधार पर पं० गौरीशंकर ओझा ने दिखलाया है कि विक्रम संवत् चैत्रादि है। वेरावल लेख के अनुसार वि० सं० तथा गु० स० का अन्तर ३७५ (१३२०-९४५) आता है; परन्तु यह लेख काठियावाड़ में स्थित होने के कारण वि० स० कात्तिकादि है जो चैत्रादि १३२१ होता है इस कारण वि० स० तथा गु० स० का अन्तर ३७६ होगा[1]। गु० स० में ३७६ जोड़ने से चैत्रादि वि० स०, २४१ मिलाने से श० का० तथा ३१९-२० मिलाने से ई० स० होता है।

अंतिम परिणाम — गुप्त संवत् पर इस विस्तृत विवरण से निम्न परिणाम निकलते हैं।

(१) मालव तथा शक संवत् चैत्र से प्रारम्भ होता है।

(२) गुप्त तथा वलभी संवत् एक ही हैं। दोनों के भिन्न भिन्न नाम होने के कारण समय में तनिक भी भिन्नता नहीं है।

(३) वलभी या गु० स० शक काल के २४१ वर्ष के पश्चात् आरम्भ होता है। शक काल के व्यतीत तथा प्रचलित होने का निर्णय गु० स० पर अवलम्बित है।

(४)-गुप्त संवत् भी चैत्र से प्रारम्भ होता है। चैत्रादि होने के कारण गुप्त संवत् का ई० स० ३१८–१९ से गणनारम्भ हुआ। इसका प्रारम्भिक वर्ष ई० सन् ३१९-२० (७८+२४१) से लिया जायगा।

गु० स० ० व्यतीत=शक २४१ व्यतीत
,, ,, १ प्रचलित=,, २४२ प्रचलित

यदि समस्त संवतों के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह पता चलता है कि अमुक संवत् का प्रारम्भ किसी काल विशेष से होता था या उस वंश के किसी

भृ[illegible]लीनां ध्वनिरनुरतं भारमन्द्रश्च यस्मिन्,
नाधूतज्यं धनुरिव नदच्छ्रूयते युष्पकेतोः॥
प्रि[illegible]तमकुपितानां रामयन्वदधरागं, किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां।
उप[illegible]यति नभस्वान्मानभङ्गाय यस्मिन्, कुसुमसमयमासे तत्र निर्मापितोयम्
—(क० इ० इ० भा० ३ नं० ३५)

१. प्राचीन लिपिमाला पृ० १७५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घटना के स्मारक में संवत्सर चलाया गया। गुप्त-वंश में भी ऐसी ही घटना उपस्थित हुई जिस कारण से वंश नाम के साथ (गुप्त) संवत् का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। गुप्त-वंश के आदि दो नरेश—गुप्त एवं घटोत्कच का नाम इतिहास में प्रसिद्ध नहीं है। वे साधारण सामन्त के रूप में शासन करते थे। गुप्तों के तीसरे राजा चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया तथा इसी ने सर्व प्रथम 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। बहुत संभव है कि सिंहासनारुढ़ होने पर इसने यह पदवी धारण की तथा उसी के उपलक्ष में अपने वंश के नाम के साथ गुप्त संवत् की स्थापना की। इस की पुष्टि गुप्त लेखों में उल्लिखित तिथियों से भी होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम के पौत्र चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के लेखों में ८२, ९३ की तिथियाँ मिलती हैं। इस आधार पर विद्वानों का अनुमान ठीक ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ही प्रतापी शासक था और उसी के रज्यारोहण पर संवत् चला। पितामह तथा पौत्र के बीच तीन पीढ़ियों में ९३ वर्ष का अन्तर युक्त-संगत मालूम पड़ता है। इस संवत् का प्रारम्भ ई० स० ३१९-२० से होता है। फ्लीट व एलन के मतानुसार गुप्त संवत् अन्य संवतों की भाँति राज्यवर्षों में गणना की परिपाटी से बराबर उसका प्रयोग होते रहने पर क्रम से प्रचलित हो गया; इस से अनुमान होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के प्रचलित किये हुए राज्य-संवत् का प्रयोग उस के उत्तराधिकारी वंशधर करने लगे, जो आगे चलकर गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो हो परन्तु यह निःसंदेह है कि गुप्त संवत् या गुप्त-काल नामक संवत्सर का प्रारम्भ ई० स० ३१९-२० से हुआ। इसी में समस्त गुप्त लेखों तथा समकालीन प्रशस्तियों की तिथियां दी गई हैं। यह संवत् लगभग ६००० वर्ष तक प्रचलित रहा और गुप्तवंश के नष्ट हो जाने पर काठियावाड़ में वलभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुप्त-संवत के संस्थापक

गुप्त सम्वत् की चर्चा करते समय इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अलबेरूनी के कथनानुसार वलभ नामक राजा ने बलभी सम्वत् चलाया जो शक काल के २४१वें वर्ष प्रारम्भ होता था। गुप्त सम्वत् के समान ही यह गणना थी। गुजरात के बलभी नरेशों के लेख में जो सम्वत् मिलता है वह गुप्त सम्वत् ही है। सौराष्ट्र में गुप्त संवत् का प्रयोग होता था और वहां गुप्त शासन के समाप्त हो जाने पर वलभी के राजा ने उसी गणना का नाम परिवर्तित कर 'बलभी सम्वत्' रख दिया।

बलभी सम्वत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हर्ष-सम्वत्

थानेश्वर के पुष्पभूति वंश के अंतिम सम्राट हर्ष ने भी एक गणना प्रारम्भ की थी जिसे हर्ष-सम्वत् नाम से पुकार सकते हैं। इस गणना के साथ श्री हर्ष का नाम जुड़ा नहीं मिलता। उसके लेख की तिथियां राज्यकाल में दी गई है। बांसखेरा ताम्रपत्र में "सम्वत् २०+२ कार्तिक वदि १" उल्लिखित है (ए० इ० भा० ४ पृ० २०८) उसी का मधुवन ताम्रपत्र पचीसवें वर्ष में लिखा गया था (संवत् २०+५ मार्गशीर्ष)। उत्तरी भारत तथा नेपाल में भी इस गणना का (हर्ष-सम्वत्) प्रयोग होता रहा जो कालान्तर में हटा दिया गया और विक्रम सम्वत् प्रयुक्त होने लगा। पिछले गुप्त नरेश आदित्यसेन का शाहपुर वाला लेख में ६६ वर्ष अंकित है। फ्लीट के मतानुसार यह वर्ष हर्ष-सम्वत् से सम्वन्ध रखता है इसी के सहारे आदित्यसेन की तिथि ई० स० ६७२ मानी जाती है। इसकी प्रामाणिकता साहित्य के आधार पर भी सिद्ध की गई है। वाण ने माधव गुप्त को हर्ष का मित्र बतलाया है। अपसद लेख में भी आदित्यसेन के पिता का नाम माधव गुप्त उल्लिखित है तथा वही हर्ष का मित्र कहा गया है [श्री हर्षदेव निजसङ्गम्वाञ्छया च] उसी वंश के राजा विष्णु गुप्त का मंगराव का लेख ११७ वर्ष में उत्कीर्ण किया गया था। डा० अल्तेकर के कथनानुसार ११७ हर्ष-सम्वत् से सम्बन्ध रखता है [ए० इ० भा० २६ पृ० २४१] इसी ढंग से नेपाल के राजा अंशुवर्मन के एक लेख में तिथि निम्न प्रकार उल्लिखित मिलती है—

"संवत् ३०+४ प्रथम पौष शुक्ल द्वितीयायाम्" कीलहार्न का मत है कि तिथि ३४ का सम्बन्ध हर्ष सम्वत् से है जिससे प्रकट होता है कि नेपाल में ७वीं सदी में हर्ष संवत् का प्रयोग किया गया।

अलबेरूनी ने लिखा है कि काश्मीर के पत्रा में इस बात का उल्लेख पाया जाता है कि विक्रमादित्य के ६६४ वर्ष बाद हर्षवर्धन ने राज्य किया। इसलिए ६६४—५७=६०६-७ ई० हर्ष सम्वत् की तिथि स्पष्ट मिल जाती है। इसी के अनुसार हर्ष, आदित्यसेन, विष्णुगुप्त या अंशुवर्मन का शासन-काल निश्चित किया गया है।

सातवीं सदी के पश्चात सम्पूर्ण भारत में सर्वत्र प्रचलित किसी नई काल गणना का अभाव दिखलाई पड़ता है। हर्ष-संवत् तो उत्तरी भारत तथा नेपाल में प्रचलित रहा। पर कलचुरी अथवा लक्ष्मणसेन संवत् स्थानीय गणना ही थे। मध्ययुग में इनका प्रारम्भ हुआ और शीघ्र समाप्ति हो गई। उत्तरी भारत में विक्रम संवत् का प्रचार हम पाते हैं। मध्य भारत तथा राजपुताना के जितने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजवंश उत्तरी भारत में शासन किए, सभी ने विक्रम सम्वत् का प्रचार किया और वह लोकप्रिय हो गया। उज्जैन में शक राज्य नष्ट हो जाने पर मालव-संवत ही लोकप्रिय हुआ तथा वहां से उत्तरी भारत में प्रचलित हुआ। बंगाल में लक्ष्मण सेन संवत् के पश्चात् मुसलमानों ने फसली सम्वत् का प्रसार किया। आज वह गणना बंगला-संवत् के नाम से पुकारी जाती है। दक्षिण भारत में शक सम्वत् का प्रचार रहा क्योंकि मालवा तथा महाराष्ट्र पर शासन करने वाले क्षत्रप नरेश शक गणना का ही प्रयोग करते थे। उज्जैन के गणितज्ञों ने उस शक संवत् का प्रयोग किया। भारत के गणित शास्त्र में शक गणना की प्रधानता तथा उत्तरी भारत में विक्रम सम्वत् का प्रचलन होने के कारण ज्योतिष के पण्डितों ने पत्रा में दोनों सम्वत् का उल्लेख किया। वर्तमान सरकार को किसी कारणवश यह प्रचलन उचित न मालूम हुआ और शक-सम्वत् को ही राष्ट्रीय सम्वत् घोषित कर दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय ११

भारत में लेखनकला की प्राचीनता

भारतवासी जिस वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखते उसे ईश्वर द्वारा रचित समझते हैं। यही कारण है कि भारतीय जनश्रुति में लेखन कला का सम्बन्ध ब्रह्मा से स्थिर किया गया और प्राचीन भारतीय लिपि को ब्राह्मी का नाम दिया गया। इस विचार को प्रस्तर पर भी बादामी में (ई० सं० ५८०) प्रदर्शित किया गया है जहां ब्रह्मा के हाथ में ताड़पत्र का समूह दिखलाई पड़ता है (इ० ए० भा० ६ पृ० ३६६ : भा० ३३ पृ० १) लेखन कला का इतिहास अधिक प्रकाश में नहीं आया है। इस कारण विद्वान विभिन्न मत रखते हैं। पश्चिमी विद्वानों का मत था कि आर्य लोगों के आगमन (ईसा पूर्व दो हजार वर्ष) के पश्चात् लेखन कला का विकास हुआ होगा परन्तु हरप्पा की सभ्यता के प्रकाश में आने पर तथा मध्य पूर्व से तुलनात्मक अध्ययन के कारण विचार में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। लेखन कला की प्राचीनता के सम्बन्ध में दो विद्वानों के नाम--पं० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा तथा बुलर, उल्लेखनीय हैं। मैक्समूलर लेखन कला की उत्पत्ति ईसा पूर्व चौथी सदी (हिस्ट्री आफ एन्सेंट संस्कृत लिटरेचर पृ० २६२) तथा बुलर ई० पू० ८०० से पूर्व कथमपि मानने को तैयार नहीं हैं (इंडियन पैलियोग्राफी--इ० ए० १९०४ परि० पृ० १७) डिरिंजर ने प्रायः बुलर की तिथि का समर्थन किया है (दि एलफाबेट—१९४९ पृ० ३३४) पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों की विचार धारा में एकता नहीं है इसलिए भारतीय लेखन कला का इतिहास एक विवादास्पद विषय बना है।

इससे सम्बन्धित जितने विचारणीय प्रमाण हैं उन्हें कई वर्गों में रक्खा जा सकता है। इस प्रसंग में विभिन्न विद्वानों की सम्मति जानकर ही संतोष करना होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१) यूनानी लेखकों के कथन।
(२) यात्रियों के विवरण।
(३) ब्राह्मण ग्रन्थों की विचारधारा।
(४) बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में उल्लेख।
(५) भारतीय अभिलेख की परम्परा।

यूनानी लेखकों ने, जो सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् भारत आए, भारतीय लेखन कला का प्रसार विभिन्न रूप से व्यक्त किया था। सिकन्दर के सेनापति ने आंखों देखा वर्णन दिया था कि भारतवासी रुई से कागज तैयार करना जानते थे (स्ट्रेवो १५, ७१७)। इसी प्रकार यूनानी दूत मेगस्थनीज ने (ई० पू० चौथी सदी) मार्गों पर स्थित प्रस्तरों पर अंक उत्कीर्ण करने की परिपाटी का वर्णन किया है (इंडिया आफ मेगस्थनीज) इसका तात्पर्य यही था कि भारतवासी लिखने की कला से विज्ञ थे। मक क्रिण्डिल ने करटियस के कथन का उद्धरण देते लिखा है कि वृक्ष के छाल (भोजपत्र) का प्रयोग लिखने के कार्य में किया जाता था। (हिस्ट्री आफ एलेक्ज़ेन्डर इनवेजन आफ इंडिया अ० ८)

विदेशी यात्रियों ने भी भारतीय लिपि के सम्बन्ध में विवरण दिया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने प्राचीन युग में भारतीय लिपि की उत्पत्ति बतलाई है। (बील-सिमुकी १,७७) चीनी ग्रंथ-फ-वन-सु-लीन में ब्राह्मी के विषय में उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मा ने लिखने की कला को जन्म दिया और ब्राह्मी बांए से दाहिने लिखी जाती थी (वेविलोनियन तथा ओरियंटल रेकर्ड १,५९) दसवीं सदी का मुसलमान लेखक अलवेरूनी ने यह वर्णन किया है (सांचू-अलवेरूनी का भारत अ० १) कि हिन्दू लिखने की कला भूल गए थे जिसे पुनः व्यास ने आरम्भ किया जो कलियुग (ई० पू० ३१०१) से प्रचलित हुआ (व्यास का वेद तथा महाभारत से सम्बन्धित मानते हैं। इस कारण अलवेरूनी ने कलियुग का उल्लेख किया है।)

ईसवी पूर्व छठी शताब्दी में कई बौद्ध ग्रंथों का संकलन हो गया था जिनमें लेखन-कला के सम्बन्ध में सारगर्भित बातें लिखी हैं। सूत्तान्त (१, १) नामक ग्रंथ में भिक्षुओं को अक्षरिका नामक खेल खेलना निषेध किया गया था। इस तरह के खेल में व्यक्ति के पीठ या आकाश में अक्षर के संकेत को समझ कर पहचानना पड़ता था। विनयपिटक में (पाराजिक भा० ३, ४) लेखन-कला की प्रशंसा की गई है कि गृहस्थों के लिए यह जीविका पैदा करने का एक साधन था। (वुधिस्ट इंडिया पृ० १०८)। कई जातकों (रूरू, कन्ह आदि) में व्यक्तिगत तथा सरकारी पत्रों का लेखन, सरकारी घोषणा, हस्तलिखित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुस्तक आदि का उल्लेख मिलता है। महावग्ग में (भिक्खुपाचितिय ६५,१) लेख, गणना तथा रूप को प्रारम्भिक शिक्षा का विषय माना है। जातक में भी फलक (तख्ती) और वर्णक (कलम) के नाम मिलते हैं। ललितविस्तर (अध्याय १०) में भी बुद्ध को लिपिशाला (पाठशाला) में विश्वामित्र द्वारा पत्र लेखन सिखलाने की बात उल्लिखित है। यूनानी लेखकों ने कागज तैयार करने की बात लिखी है (ई० पू० ४००)। प्राचीन समय में तालपत्र तथा भोजपत्र भी लिखने के काम में आता था। अतएव बौद्धग्रंथों के आधार पर यह प्रकट होता है कि ई० पू० ६०० के समीप लेखन-कला की जानकारी भारतवासियों को अवश्य थी।

ललितविस्तर की तरह जैन ग्रंथ समवायांगसूत्र (ई० पू० तीसरी सदी) तथा पणवनासूत्र में भी लेखन-कला की प्राचीनता का उल्लेख पाया जाता है। पिछली सदियों में काव्य, नाटक तथा स्मृति ग्रंथों में स्थान-स्थान पर ऐसा वर्णन आता है जिससे पता चलता है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में लेखन-कला का ज्ञान था। नारद तथा वृहस्पति ने लिखा है कि ब्रह्मा द्वारा लिखने की कला उत्पन्न की गई जिससे लोगों को ज्ञान हो सका। मौर्य युग के राजनीति ग्रंथ अर्थशास्त्र में लिखने का संदर्भ कई स्थानों पर पाया जाता है––

(अ) वृत चौलकर्मा लिपि संस्यानं चौपयुंजीत (१, ५, २)

(ब) पत्र सम्प्रेषणेन मंत्रयेत (१, १९, ६)

(स) सर्वसमय विदाशुग्रंथः चार्वक्षरो लेखवाचन समर्थो लेखकः स्यात् (२, ९, २८)

यानी चूड़ाकर्म के पश्चात् गणना तथा लेखन विद्या सीखना चाहिए। पत्र द्वारा मंत्रणा करना चाहिए। राजकार्य में लेखक को शीघ्र पढ़ना तथा लिखना आवश्यक समझा जाता है। इससे भी पूर्व (ई० पू० आठ सौ) वशिष्ठ धर्मसूत्र (१६, १०, १४) के कथनानुसार लिखित पत्र को प्रमाण में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके समकालीन व्याकरण (वेदांग में) लेखन-कला का विवरण मिलता है तथा यह कदापि सम्भव नहीं है कि विना लेखन-कला की जानकारी के व्याकरण तथा दर्शन आदि का प्रसार हो सकता। पाणिनि के अष्टाध्यायी में लिपि, लिपिकर, यवनानी, ग्रंथ, (अध्याय प्रथम तथा तृतीय) शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि समाज में लेखन-कला का समुचित ज्ञान था। छठे अध्याय में जानवर के कान में स्वस्तिक के साथ ५ या ८ अंक के चिन्ह लगाने का वर्णन है। व्याकरण के प्रसंग में पाणिनि ने अनेक वैयाकरणों का नाम उल्लिखित किया है। तात्पर्य यह है कि पाणिनि से पूर्व (ई० पू० आठवीं सदी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में) लिपि का ज्ञान लोगों का था। यास्क ने भी निरुक्त में अपने पूर्ववर्ती विद्वानों का नामोल्लेख किया है। शब्दों के चयन के साथ लेखन-कला की भी तिथि यास्क से पूर्व ही मानी जा सकती है। छांदोग्य उपनिषद (२, १०) में अक्षर के लिखने का संदर्भ मिलता है तथा वर्ण और मात्रा का उल्लेख तैतरीय उपनिषद (१, १) में आता है (वर्णः स्वरः मात्रा वलम्)। उपनिषद ग्रंथों में दार्शनिक विचारों का विवेचन अधिकतर गद्य में किया गया है और उन विवेचनों को यथा शक्ति लोग स्मरण रखते थे, तथापि लिखित ग्रंथ की स्थिति असम्भव नहीं मानी जा सकती। वेदो का अध्ययन भी कण्ठगता समझा जाता था पर ऋग्वेद में (१०, १४, १६) गायत्री, विराज, जगती छंदों के नाम आते हैं। संहिता तथा अथर्व में (८, ९, १९) भी ग्यारह छंदों का उल्लेख पाया जाता है अतएव लेखन-कला की जानकारी की बात स्वतः सिद्ध हो जाती है। ऋग्वेद में अंक से अंकित गायों. का वर्णन मिलता है (सहस्रमेददतो अष्टकर्ण्यः १०, ६२, ७) जो भिक्षा या दान में दी गई थीं। तात्पर्य यह है कि ऊपर लिखी बातों से वैदिक युग में भी लिखने के प्रमाण को असिद्ध नहीं किया जा सकता। आश्चर्य यह है कि ईसा पूर्व पांचवीं सदी से पहले लिखने का कोई भी नमूना सामने नहीं आता। सम्भवतः भोजपत्र या कागज पर लिखे ग्रंथ सदियों तक वास्तविक रूप में न रह सके और जलवायु के कारण नष्ट हो गए। प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ को नष्ट होते देखकर लोगों ने पुनः कागज पर लिखा ताकि शास्त्र का ज्ञान स्थायी रहे। इस क्रम में समय-समय लिपि का परिवर्तन होता गया और नए रूप में ग्रंथ सामने आते गए। प्राचीनकाल में विद्या कण्ठगता थी और गुरु के मुख से सुनकर शास्त्र का पठन-पाठन किया जाता था। वेदों का ठीक उच्चारण आवश्यक था और धार्मिक जगत में अशुद्ध उच्चारण यजमान का घातक समझा गया है।

सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽपरा, धात् महाभाष्य १)

इस कारण गुरु मुख से सुनकर यज्ञ करना अथवा स्मरण करना उचित समझा गया। पुस्तक पढ़ने से यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता था।

पुस्तकस्था च या विद्या पर हस्तगतंधनम्।
कार्य काले तु सम्प्राप्ते नसा विद्या न तद्धनम्।

(चाणक्य नीति)

पश्चिमी विद्वानों में राथ के मत को डा० हीरा० गौरीशंकर औझा ने (लिपि माला पृ० १५ में प्र० संस्करण) उद्धृत किया है। उनके मतानुसार वेदों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रातिशाख्य विना लिखे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था यानी अत्यन्त प्राचीन काल में ही लिखित प्रातिशाख्य वर्तमान था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लेखन कला का ज्ञान भारत वासियों को अवश्य था।

संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखते समय भारतीय प्राचीन साहित्य की तिथि का निर्णय पश्चिम विद्वान (मैक्समूलर आदि) नहीं कर सके। परन्तु यह तो निश्चित है कि ईसा पूर्व सहस्रों वर्ष उनकी रचना हो चुकी थी। अप्रत्यक्षरूप से यह कहना यथार्थ होगा कि ईसवी पूर्व एक हजार वर्ष में लेखन कला का प्रारम्भ हो चुका था।

ईसवी पूर्व तीसरी सदी के अशोक के लेख साक्षात् प्रमाण हैं कि उस समय ब्राह्मी तथा खरोष्ठी का प्रचार था। पेशावर से उड़ीसा तथा हिमालय (कालसी) से येरगुड़ी (करनूल, मद्रास) तक उसके लेख मिलते हैं। उन लेखों में अभिन्न रूप की लिपि है कुछ में भेद भी है। इससे यह स्पष्ट विदित है कि भारत में लिपि का ज्ञान पूर्व से ही रहा जिसका विकास अशोक के लेखों में हुआ था। एक दिन में ऐसी ब्राह्मी सम्मुख नहीं आ सकती। ब्राह्मी का विभिन्न स्वरूप यह घोषित करता है कि अशोक से पूर्व लिपि का परिज्ञान था जो परि-वर्द्धित तथा परिवर्तित होकर अशोक ब्राह्मी के रूप में आ गई। लिपि के विकास में कई सदियां वीत जाती हैं।

इसके प्रमाण में अशोक के लेख ही सम्मुख रक्खे जा सकते हैं। दक्षिण से उत्तर तक के सभी लेखों के अक्षर एक से नहीं हैं। गिरनार, सिद्धपुर धौली तथा जौगढ़ के अक्षर असमान हैं। ख, ज, म तथा स विभिन्न रूप से लिखे गए हैं। स्थानीय शैली से यह अर्थ निकलता है कि अशोक से पूर्व वहां लिपि का प्रचार था।

अशोक ने प्रस्तर पर लेख चिरस्थायी होने के हेतु खुदवाया था [इय धंमलिपि लेखिता चिलठितीका होतु—प्र० शि० ले० २]। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अन्य आधार पर भी लेख खोदे जाते होंगे। अशोक पूर्व युग के पिपरावा (उत्तर प्रदेश) सोहग्रोरा ताम्रपत्र, (गोरखपुर), महास्थान लेखों के (बंगाल) प्रमाण पर यह कहा जा सकता है ईसवी पूर्व पांच सौ के लगभग लेखन कला का प्रचार अवश्य था। साहित्यिक आधार पर ई० पू० कई हजार वर्ष में भी इसकी तिथि मानी जा सकती है। ब्राह्मी अत्यन्त प्राचीन काल से समस्त भारत में प्रयुक्त होती रही और इसे ही हम राष्ट्र लिपि कह सकते हैं। उत्तर पश्चिम भारत में जहां खरोष्ठी का प्रचार था वहां भी तक्षशिला के सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि अंकित है। रैपसन को ऐसे ईरानी सिक्के मिले हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिन पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियों में मुद्रा-लेख खुदे हैं। तात्पर्य यह है गान्धार के भू भाग में खरोष्ठी का प्रयोग रहते ब्राह्मी को राष्ट्रीय लिपि मानना उचित है।

भारतीय लेखों का सम्बन्ध लेखन कला तथा लिपि से इतना अधिक है कि इनका अध्ययन नितांन्त आवश्यक हो जाता है। संसार में संस्कृति के आरम्भ के साथ लिखने-पढ़ने का कार्य होने लगा। लेखन कला जानने के कारण ही मनुष्य के ज्ञान की स्थिरता मानी गई है। इस कारण लेखन कला का इतिहास महत्व रखता है तथा मनुष्य के मस्तिष्क की उन्नति का लेखा उपस्थित करता है। लिखने की क्रिया का समाज में बड़ा आदर रहा और लेखन कला के जन्मदाता को ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न मानते हैं। मिश्र, यूनान, चीन तथा भारत आदि देशों में देवता को ही इसका उत्पादक माना गया है। भारत में लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानते हैं, अतएव प्राचीन भारतीय लिपि को ब्राह्मी का नाम दिया गया।

लिपि, लेखन-कला तथा उसका इतिहास

संसार की सभ्यता एवं संस्कृति में मनुष्य के मानसिक विकास के साथ लिपि का जन्म स्वतंत्र रूप में ही हुआ। मनुष्य ने आध्यात्मिक प्रगति में इसे जन्म दिया ताकि विचारों का आदान-प्रदान कर सकें। अधिक समय तक लिखने की कला अज्ञात थी और मनुष्य संकेत से ही अपना कार्य करता रहा। शताब्दियों बाद मुख से निकली ध्वनि को लिपि बद्ध करने की क्रिया ज्ञात हुई।

लेखन-कला का इतिहास यह बतलाता है कि सर्व प्रथम आकृतियों द्वारा या चित्र द्वारा मनुष्य अपने विचार को व्यक्त करता अथवा लिखता था। सूर्य कहने का भाव बतलाने के लिए चक्र की आकृति जानवर के लिए जानवर तथा मनुष्य के लिए मनुष्य के चित्र खींच दिए जाते थे। इसे "चित्र-लिपि" कह सकते हैं। शब्द या उच्चारित ध्वनि का लिखना अज्ञात था। इस चित्र से किसी घटना को व्यवत नहीं करते परन्तु उसे वर्णित करते थे। मिश्र, मेसोपटामिया, क्रीट, स्पेन, अमेरिका आदि देशों में ऐसे शब्द चित्र पाये गए हैं। उन चित्रों से किसी धारा प्रवाहिक घटना का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता था। उच्चारण किए शब्दों का लिखना यानी लिपि बद्ध करना अथवा यों कहा जाय कि मुंह से निकले ध्वनि को लिखने की कला सब से उन्नत अवस्था का द्योतक है। इसमें किसी प्रकार के चिह्न (प्रतीक) का प्रयोग नहीं किया जाता परन्तु अक्षर मुख से उच्चारित ध्वनि को व्यक्त करते हैं'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेसोपटामियां की संस्कृति में एक अक्षर (का चिह्न) किसी शब्द समह को व्यक्त करता रहा । लेकिन भारत में एक अक्षर एक ध्वनि का द्योतक है । यही कारण है कि भारतीय लिपि वैज्ञानिक मानो जाती है । जो कुछ उच्चारण किया जाता है वही अक्षरों के माध्यम से लिखा जाता है । जो लिखा गया है उसे पढ़ कर उसी बात को ही समझ सकते हैं । किसी भाषा के वाक्य को भारतीय लिपि से लिख सकते हैं तथा उसका उच्चारण भी एक सा होता है। पढ़ने से यह पता नहीं चल सकता कि भारतीय भाषा या लिपि से इसका कुछ भी सम्बन्ध है। जैसे "आइ गो" इस अंग्रेजी वाक्य को नागरी में लिखने पर भी पढ़ने में अन्तर नहीं आ सकता। अतएव भारतीय लिपि सर्वथा वैज्ञानिक हो जाती है ।

ईसा पूर्व चार हजार वर्ष में मिश्र देश में 'चित्र-लिपि' का व्यवहार होता था। हथियार के साथ सिपाही का चित्र यह बतलाता था कि सेना का एक सिपाही हथियार लेकर युद्ध स्थल को जा रहा है । क्रमश: बोले गए एक शब्द के लिए विशिष्ट चिह्न का प्रयोग होने लगा। उस चिह्न के कथन से एक शब्द का भाव प्रकट होता था। इस रूप से अक्षर का प्रयोग मिश्र में आरम्भ हुआ। यह अक्षर दाएं से बाएं लिखे जाते थे ।

लिपि तथा लेखन कला का इतिहास यह बतलाता है कि ई० पू० ४००० वर्ष में सुमेरियन लोगों की एक विचित्र लिपि थी जो नुकीली चीज से निशान बना कर लिखी जाती रही । उसे ३ हजार वर्षों के पश्चात् दजलाफरात की घाटी के बेबिलान तथा एसिरिया के जातियों ने अपनाया। इस तरीके को प्राचीन सुसा के इलामाइट, हिटाइट, मिटानी तथा ऊर के लोगों ने कार्यों में अपनाया तथा जीवन में अनुकरण किया। ईरानी लेख भी इसी नुकीली (कीलाक्षर) लिपि (क्यूनिफार्म) में अंकित किए गए तथा इस तरह की लिपि-शैली ईसवी सन् तक एशिया के पश्चिमी भाग में प्रचलित रही । उसे कुछ पुरोहित, ज्योतिषी तथा कानून वेत्ता प्रयोग करते थे। ईसा पूर्व छठी सदी का एक ईरानी लेख कीलाक्षर में पाया गया है जिसे उन्नीसवीं सदी में पढ़ा जा सका।

ईसा पूर्व ३००० वर्ष में हरप्पा तथा मोहेनजोदड़ो नामक भारतीय प्रागऐतिहासिक स्थानों में एक विचित्र लिपि का प्रयोग हुआ जिसके सम्बन्ध में कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। यानी हरप्पा सभ्यता की लिपि (?) अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी। जो तावीज उन स्थानों की खुदाई से निकले हैं उन पर ही लेख खुदा है। प्राय आठ सौ मुद्राएं (तावीज) लेख युक्त हैं। वह भी एक तरह की "चित्र-लिपि" कही जा सकती है । कुछ विद्वान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरप्पा सभ्यता की लिपि को ब्राह्मी से सम्बन्ध स्थापित करन का प्रयत्न करते रहे तथा कुछ उसे तांत्रिक मानते हैं परन्तु उनके कथन सारगर्भित नहीं हैं।

भारत से पूर्व एशिया में चीन देश से लिपि का आरम्भ मानते हैं। ईसा पूर्व २००० से पहले लेखन कला का आरम्भ हुआ और ११०० ईसा पूर्व से ही धातु तथा प्रस्तर पर लेख खोदे जाने लगे। पहले लकड़ी तथा बांस की तख्तियों पर पुस्तकें लिखी गई जो जलवायु के कारण नष्ट हो गई। प्रायः ई० स० १५० के समीप चीन में कागज का प्रयोग आरम्भ हुआ जो वहीं तैयार किया जाता था।

पश्चिमी एशिया में लेखन कला का आरम्भ मिश्र के अनुकरण पर हुआ था जहां अधिकतर 'चित्र-लिपि" का प्रयोग होता रहा। मिश्र से क्रीट तथा फिलिस्तीन में लिखने की क्रिया प्रचलित की गई। भूमध्य सागर के किनारे रहने वाले फिनिशियन जाति ने उसका अनुकरण कर अत्यधिक प्रसारित किया। उनके अक्षर भी भाव को व्यक्त करने वाले "चित्र-लिपि" की तरह थे। कुछ विद्वानों का यह मत है कि फिनिशिया तथा सीरिया में अक्षर का जन्म हुआ। अक्षरों के प्रतीक (Symbols) का पता लगाना कम महत्वपूर्ण कार्य न था। और इस ओर मिश्र, क्रीट, एशिया माइनर, ईराक तथा भारत के निवासी कार्य करते रहे परन्तु कोई पूर्णता को पहुँच न सका। फिनिशिया के निवासियों ने जिस लिपि का प्रचार किया उसे सेमिटिक (अनार्य) का नाम दिया गया है जिसमें २२ व्यंजन अक्षर थे तथा उसमें स्वर का सर्वथा अभाव था (यूनानी भाषा में भी २२ अक्षर माने गए हैं) इसे दाहिने से बाएं लिखा करते थे जो शैली आज भी प्रचलित है। व्यंजन में स्वर का न होना एक अजीब बात थी जिसका कोई समुचित उत्तर नहीं दिया जा सकता। एक अक्षर एक शब्द की ध्वनि करता था। अथवा स्थानीय प्रसंग में स्वर जोड़ दिया जाता था। इसका अर्थ यह है कि सेमिटिक अक्षर अपूर्ण थे। स्वर के सम्बन्ध में कुछ निश्चित मत प्रकट करना कठिन है। व्यंजनों की प्रधानता सदियों तक बनी रही। इसका यह अर्थ नहीं कि स्वर का प्रयोग जान बूझ कर छोड़ दिया गया था पर इसकी अनपस्थिति में कोई कठिनाई सामने नहीं आई। सेमिटिक (अनार्य) भाषा में २२ अक्षर व्यंजन से आरम्भ किए गए थे। आर्य भाषा में इसका विपरीत ढंग दिखलाई पड़ता है। भारतीय लिपि में स्वर के सहारे व्यंजन का प्रयोग किया जाता है। पाणिनि सूत्रों में स्वर पहले उल्लिखित हैं तत्पश्चात् व्यंजन। अच् को स्वर तथा हल् को व्यंजन कहा गया है। सेमिटिक अक्षरों के नाम दैनिक जीवन के वस्तुओं से लिया गया था पर आर्य भाषा में ऐसी बात नहीं है।

दक्षिणी अरब में अक्षर का जन्म अज्ञात है। सेमिटिक शाखा से सम्बन्धित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चिम या पूरब में अक्षरों का प्रयोग बढ़ता गया। अरब में २२ से २८ अक्षर हो गए जिसमें अंतिम व्यंजन पीछे जोड़े गए थे। अलीफ, बे, ते, जीम आदि। यही अरबी अक्षर धर्म तथा व्यापार के साथ पूरब की ओर बढ़े। अरब से ईरान में इन अक्षरों का प्रसार हुआ और कालान्तर में भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में इसका प्रयोग हुआ। जो खरोष्ठी के नाम से विख्यात हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आरमैईक (दक्षिणी अरब) से इस खरोष्ठी का जन्म हुआ। ईरानी इसे ईसा पूर्व ६०० में व्यवहृत करते थे और उत्तरी पश्चिमी भारत में ईरानी राज्य के विस्तृत होने पर सीमा प्रान्तों में खरोष्ठी का प्रयोग होने लगा। मौर्य सम्राट् अशोक ने भी इसे अपने शिला लेखों में प्रयोग किया क्योंकि मौर्य साम्राज्य काबुल तक विस्तृत था।

भारतीय लिपि का जन्म तथा इतिहास

भारतीय साहित्य के आधार पर यह पता चलता है कि इस देश में कम से कम ईसा पूर्व ७०० वर्ष में लिपि का ज्ञान था। पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी (३, २, २१) में लिपि के प्रसंग में यवनानि शब्द का प्रयोग किया है यानी उन्हें यूनानी लिपि के प्रचलन की सूचना थी। खेद है कि पाणिनि ने भारतीय लिपि के विषय में कुछ कहा नहीं। अर्थशास्त्र (२, १, २) में भी लिपि शब्द का प्रयोग मिलता है तथा अशोक ने अपने लेखों में लिपि, लिवि तथा दिपि शब्दों का प्रयोग किया है (चौदहां लेख) कहने का तात्पर्य यह है कि ईसा पूर्व कई सदियों में ही भारत वासी लिखने की कला जानते थे तभी तो लिपि शब्द प्रयुक्त किया गया। यद्यपि यह शब्द ताड़पत्र पर कील से खुदे अक्षरों पर स्याही लेपन क्रिया से ही सम्बन्धित समझा जाता है [स्याही लेपन से ताड पत्र के सुराख में काला रंग प्रवेश कर जाता था और अक्षर स्पष्ट हो जाते थे] परन्तु क्रमवश ऐसी बात कही जाती है। जैन सूत्र तथा बौद्ध साहित्य के आधार पर प्राचीन समय में क्रमशः अठारह तथा चौंसठ लिपियों के नाम मिलते हैं। जैन ग्रंथ समवायांग सूत्र में (अ० १८) पहला नाम बम्भी (ब्राह्मी) का मिला है (नमो वंभीये लिवियेे-ब्राह्मी को नमस्कार) तथा दूसरा स्थान जवनालीय (यूनानी लिपि) को दिया गया है। बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर (अध्याय १०, १२५—जिसमें भगवान बुद्ध के जीवन चरित का वर्णन है) में पहला स्थान ब्राह्मी तथा दूसरा खरोष्ठी को दिया गया है। उस सूची के अवलोकन से पता चलता है कि सबसे प्रचलित लिपि ब्राह्मी थी जो सारे भारत में व्यवहृत होती थी (महावस्तु १, १३५,५)। खरोष्ठी तथा यवनानि का प्रयोग उत्तर पश्चिम भारत (वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान) में होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्राह्मी तथा खरोष्ठी का प्रयोग भारतीय राजाओं ने भी किया। मौर्य सम्राट् अशोक के दो लेखों को छोड़ कर सारे लेख ब्राह्मी में मिलते हैं। दो लेख —मनसेरा तथा शाहब्राज गढ़ी (उत्तर पश्चि भारत =पाकिस्तान) खरोष्ठी में लिखे मिले हैं। उसका कारण भी स्पष्ट है। यह कहा जा चुका है कि ईरानी राजाओं द्वारा उत्तर-पश्चिम भारत विजय कर लेने पर खरोष्ठी का वहां प्रचार किया गया। इसलिए उस भाग में खरोष्ठी की ही सदा प्रधानता थी और जो राजा वहां शासन करते थे उन लोगों ने अपने शासन लेख या मुद्रा लेख में खरोष्ठी का ही प्रयोग किया। मौर्य-काल के पश्चात् यूनानी शासकों ने भी खरोष्ठी का प्रयोग किया उक्रतिद ने (१७५ ई० पू०) अपने सिक्कों पर खरोष्ठी में "महरजस एउक्रतितस" खुदवाया था। इसी तरह मिलन्द के लेख तथा मुद्रा लेख खरोष्ठी में लिखे गये। अंतिम यूनानी नरेश हरमेयस (३० ई०) ने सिक्के पर खरोष्ठी में मुद्रा लेख अंकित कराया था। (महरजस त्रतरस हेरमयस) कुषाण सम्राटों ने पेशावर को अपनी राजधानी बनाया और वहीं से शासन करने लगे। इस कारण जितने लेख कदफिस अथवा कनिष्क समूह के नरेशों ने उत्कीर्ण कराया वह सभी खरोष्ठी में हैं। कलवान ताम्रपत्र, स्यूविहार ताम्रपत्र तथा कुरम ताम्रपत्र का नाम उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। ईसवी सन् के आरम्भ में कनिष्क के सामंत जुवल ने मथुरा में भी खरोष्ठी में लेख खुदवाया था (मथुरा सिंहस्तम्भ लेख) परन्तु यह एक ही लेख है जो उत्तरी पश्चिमी सीमा के बाहर खरोष्ठी में मिला है। सोड़ास ने मथुरा में ब्राह्मी का प्रयोग किया तथा कनिष्क ने भी सहेत महेत (श्रावस्ती गोंड़: उत्तर प्रदेश) में ब्राह्मी में लेख खुदवाए। कहने का तात्पर्य यह है कि खरोष्ठी का प्रयोग सीमित था जिसके बाहर भारत के अन्य प्रदेशों में ब्राह्मी का प्रयोग होता रहा। खरोष्ठी का प्रसार उत्तर में मध्यएशिया (तरीम घाटी) में हुआ था और वहां के शासन-लेख पट्टियों पर खरोष्ठी में मिले हैं। खोतान में खरोष्ठी खोतानी लिपि के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी।

ललित विस्तार तथा चीनी ग्रंथ फवानसूलीन में खरोष्ठी नाम की लिपि का उल्लेख पाया जाता है और सातवीं सदी तक यह नाम प्रचलित रहा।

खरोष्ठी

इसके नाम करण के विषय में विद्वानों में मतभेद है। यह कहा जाता है कि इस लिपि का जन्म दाता वह व्यक्ति था जिसके होठ गदहे के सदृश (खर+ओष्ठ) था। इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि अनार्य लोगों द्वारा उत्तर पश्चिम भारत में इसका प्रयोग हुआ था (यूनानी, शक, पहलव तथा कुषाण)। कुछ विद्वानों-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिलवन लेव्री तथा स्टेन कोनो आदि का मत था कि खरोष्ठ मध्य एशिया के नगर काशगर का संस्कृत रूप है। मध्य एशिया के अनेक नगरों से खरोष्ठी में शासन लेख तथा हस्तलिखित ग्रंथ मिले हैं किन्तु खरोष्ठी में सभी ग्रंथ ई० स० के दूसरी सदी तक के हैं। उत्तर पश्चिम भारत में (तक्षशिला भू भाग में) ई० पू० तीसरी शताब्दी में इसका प्रयोग हो रहा था।

ईरानी भाषा में खरपोस्ट शब्द का अर्थ गदहे का चर्म है। स्यात् चमड़े पर लेख लिखे जाते रहे, इस कारण भारतीय विद्वानों ने इसका नाम खरोष्ठी रक्खा था।

दक्षिण अरब में आरमेयिक भाषा में खरोथ शब्द मिलता है जो लिपि के लिए प्रयुक्त है। अतः खरोष्ठी उसी का संस्कृत रूप माना जा सकता है।

इस लिपि का खरोष्ठी नाम चीनी ग्रंथ (ई० स० ६६८) में मिलता है जिसके जन्म दाता खरोष्ठ माने गए हैं। यह भारतीय शब्द था जो चीनी साहित्य में प्रयुक्त है। स्यात् इस लिपि को टेढा लिखने के कारण ही (गदहे के ओठ के समान घूमने वाला) खरोष्ठी का नाम दिया गया हो।

खरोष्ठी आरमेयिक लिपि से ही निकली जो पांचवीं सदी ई० पू० में प्रचलित थी। यह दाहिने से बाएं लिखी जाती है। यह अनार्य सेमिटिक लिपि से सर्वथा मिलती है और कई सुधार के साथ खरोष्ठी का प्रयोग भारत वर्ष में होने लगा। मध्ययुग की अरबी लिपि भी इसके समान है। जिसमें दीर्घ स्वर का सर्वथा अभाव है। इस आधार पर जनता में एक कल्पना सम्मुख आई कि प्राकृत भाषा लिखने के लिए खरोष्ठी का आविष्कार किया गया जिस भाषा में दीर्घ स्वर तथा लम्बे समास का अभाव सभी को ज्ञात है। खरोष्ठी साधारणतया लोकप्रिय लिपि थी। इसके प्रचार तथा प्रसार के सम्बन्ध में विशिष्ट ढंग से कहना कठिन है। यों तो ईरानी राजाओं ने उत्तर पश्चिम भारत पर शासन किया पर उन्होंने स्वयं खरोष्ठी का प्रयोग लेखों में नहीं किया। इसलिए आरमेयिक से इसकी उत्पत्ति क्योंकर मानी जा सकती है। जबकि उसका प्रयोग उत्तर पश्चिमी भाग में कभी भी नहीं हुआ। खरोष्ठी का प्रयोग अशोक ने मानसरा तथा शाहबाजगढी के लेखों में किया था। वहीं से भारत के व्यापारियों ने उत्तर उपनिवेश-मध्य एशिया तक इस लिपि का प्रसार किया। इस लिपि में मध्य एशिया के लिखित ग्रंथ ईसवी सन् के बाद के हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि सम्भवत खरोष्ठी का जन्म उत्तर पश्चिम भारत में हुआ। ईरानी साम्राज्य के उस भाग पर विस्तृत होने पर ईरानी मुद्रा पर खरोष्ठी में शब्द अंकित किए गए। उत्तर पश्चिम भारतीय सीमा पर जिन शासकों ने राज्य किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सभी ने खरोष्ठी का प्रयोग किया। और भारत वासियों को उस लिपि के प्रयोग के लिए बाध्य किया गया। चूंकि उसमें स्वर का अभाव है अतः प्राकृत भाषा लिखने में प्रयुक्त हुई। वहां दीर्घ स्वर का प्रयोग कम रहता है ब्रह्मी में ई उ ए तथा ओ स्वरों के लिए सीधी रेखा का प्रयोग होता था जिसका अनुकरण खरोष्ठी में किया गया जो जेर, जबर, पेश के नाम से प्रसिद्ध है।

साहित्य में लिपियों की सूची में ब्राह्मी को पहला स्थान दिया गया है और वह पश्चिमोत्तर प्रांत को छोड़ कर सर्वत्र व्यवहृत होती थी। भारत वर्ष के मौर्य सम्राट् अशोक के लेखों में ब्राह्मी का प्रयोग मिलता है। जैसा नाम से ही पता चलता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मणों ने वेदों के रक्षार्थ इस लिपि को जन्म दिया। यह तो सभी मानते हैं कि ब्राह्मी का आविर्भाव भारत वर्ष में हुआ और ब्राह्मण द्वारा ग्रंथों में इसका प्रयोग हुआ। इस मार्ग में केवल कठिनाई यह है कि ई० पू० चौथी सदी से पूर्व का कोई लेख ब्राह्मी में नहीं मिला है। अतएव पश्चिमी विद्वानों का मत है कि व्यापारियों ने पश्चिमी एशिया से ब्राह्मी का अनुकरण किया, जो भारत की राष्ट्रीय लिपि नहीं है।

ब्राह्मी

जो विद्वान ब्राह्मी को विदेशी लिपि से उत्पन्न मानते हैं उनमें अधिकतर इस लिपि को अरबी (सेमिटिक) से विकलित समझते हैं। जेम्स प्रिंसेप (अलफाबेट पृ० ३३५) विलसन, सेनार्ट आदि (इ० ए० भा० ३५ पृ० २५३) ब्राह्मी को यूनानी लिपि से उत्पन्न मानते हैं और यूनानी सम्पर्क से इसमें सुधार की बातें देखते हैं। इनके मतानुसार यूनानी लिपि (जिसका वर्णन पाणिनि ने किया है) से ब्राह्मी निकली है। यूनानी लिपि फोनिशियन अक्षरों से अधिक प्रभावित है। वैदिक पणिस (फोनिशियन) ने ही भारत से लेखन कला को पश्चिमी एशिया तक पहुंचाया और उसी से यूनानी लिपि का प्रचलन हुआ।

बह्लर तथा बेबर इससे विपरीत विचार रखते हैं। (अलफाबेट पृ० ३३५, इंडि० पैलियो० पृ० १०) उनके विचार से फोनिशिया (पश्चिमी एशिया की एक जाति) से ही ब्राह्मी कीं उत्पत्ति हुई। यानी अनार्य लिपि से ब्राह्मी निकली है। उनके कथनानुसार फोनिशिया की लिपि का एक तिहाई अक्षर ब्राह्मी से मिलता (यानी सदृश) है। यद्यपि दोनों देशों में आवागमन के साधन कठिन थे तथापि यह क्यों निश्चित कर लिया जाय कि फोनिशिया से ही व्यापारी भारत आए और अपनी लिपि का प्रसार किया? इसके विपरीत यह भी माना जा सकता है कि भारतीय व्यापारी जब वहां गए तो पश्चिमी एशिया में लिपि की उत्पत्ति हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

टेलर दक्षिणी सेमिटिक तथा बुह्लर ने उत्तरी सेमिटिक से ब्राह्मी की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्थिर किया हैं (डिरिंजर-अलफाबेट पृ० ३३५) अत्यन्त प्राचीन समय में भू मध्य सागर से हिन्द महासागर में आवागमन की सुविधा रही। परन्तु अरब से ब्राह्मी पर प्रभाव की बात हास्यास्पद है। बुह्लर अपने विचार पर अधिक बल देते हैं कि मेसोपटामिया तक प्रचलित उत्तरी समिटिक अक्षरों में सुधार लाकर ब्राह्मी का विकास किया गया। उनके सिद्धान्त के अनुसार (अ) ब्राह्मी के अक्षर सीधे तथा एक ऊंचाई के होते हैं (व) सभी अक्षर लम्बवत् लिखे जाते हैं और ऊपर तथा नीचे ही कुछ चिह्न जोड़ा जाता है।

इस तरह आर्य जाति ने कुछ चिह्न आदि जोड़ कर अपनी सुविधा से ब्राह्मी को तैयार किया। उन लोगों ने सदा ही सिरे के लकीर से अक्षर को नीचे लटकाया और स्वर के चिह्न को ऊपर या नीचे जोड़ दिया। इसके कारण सेमिटिक अक्षर को उलट कर दूसरे रूप में परिवर्तित कर दिया। ऐसी परि-स्थिति (सेमिटिक अक्षर में नए चिह्नों को जोड़ने से) में सेमिटिक लिपि के लिखने की दिशा को भी बदलना पड़ा और भारत में उसे बांएं से दाहिने लिखा गया। बुह्लर के कथनानुसार ब्राह्मी के २२ अक्षर उत्तरी सेमिटिक से लिए गए हैं। कुछ फोनिशिया से और थोड़े एसिरिया के तौल पर अंकित लिपि से। शेष अक्षर नए चिह्नों को जोड़ कर तैयार किए गए और इस ढंग से ब्राह्मी की वर्णमाला तैयार हो सकी।

डा० डिरिंजर का मत भी बुह्लर के सिद्धान्त से मिलता है। उनके कथन से अनार्य (आरमेइक) अक्षर ही ब्राह्मी के पूर्व रूप माने जा सकते हैं (अलफाबेट पृ० ३३६-७)। उनका कहना है कि पश्चिमी एसिया की सेमिटिक या अरमीनियन व्यापारियों ने सर्व प्रथम भारत से सम्पर्क स्थापित कर अक्षरों का वहां समावेश किया। भारत ने ब्राह्मी को जन्म नहीं दिया। जो पश्चिमी एशिया से ली गई वही लिपि प्रचलित की गई। स्वर तथा व्यंजन को चिह्न से व्यक्त करने की कला भी पश्चिमी एसिया से भारत पहुंची। अनेक अरबी अक्षर (अलिफ (अ) बेद (व) गिमेल (ग) दालेथ (द) आदि ब्राह्मी के सदृश लिखे जाते हैं। दूसरे स्थान पर यह कहा जाता है कि भारतीय अक्षर चित्रलिपि की तरह थे। सर्व प्रथम 'चित्र-लिपि' सेमिटिक ही थी। इसलिए सेमिटिक से ब्राह्मी उत्पन्न हुई। तीसरा प्रमाण दिया जाता है कि ब्राह्मी आरम्भ में दाहिने से बाएँ लिखी जाती रही (जैसे अरबी लिखी जाती है)। अंत में यह व्यक्त किया गया है कि ई० पू० ५०० से पहले ब्राह्मी का कोई रूप नहीं मिलता अतएव अशोक ब्राह्मी को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्यों कर भारतीय मान सकते हैं ? उपरि-लिखित प्रमाणों के उत्तर में यह कहना यथार्थ होगा कि बुह्लर तथा डिरिंजर द्वारा कथित सेमिटिक तथा ब्राह्मी की समानता काल्पनिक है। उत्तर पश्चिम भारत में प्रचलित खरोष्ठी से मिलता है परन्तु ब्राह्मी से नहीं। फिर भी यह मत अन्य प्रमाणों से पुष्ट नहीं होता कि सेमिटिक से ही ब्राह्मी या खरोष्ठी की उत्पत्ति हुई। यह ठीक विपरीत भी हो सकता है (खरोष्ठी से सेमिटिक निकली) दोनों लिपियों अथवा अक्षरों में कुछ समानता दिखलाई पड़ती है ; पर इससे यह भाव नहीं निकाला जा सकता कि ब्राह्मी सेमिटिक का अनुकरण है। यों तो अंग्रेजी अक्षर इ(E) के सदृश ब्राह्मी ज होता है किन्तु ऐसे आधार पर कोई सिद्धान्त स्थिर करना युक्तिसंगत नहीं।

संसार में प्राय: सभी लिपियां प्रारम्भ में "चित्र-लिपि" थीं। उससे ही लोगों ने कालान्तर में अक्षरों को लिखना शुरू किया। भारतवर्ष के प्रागऐतिहासिक युग के मुहरों के लेख सर्वथा "चित्र-लिपि" में नहीं हैं। कुछ चित्र हैं पर स्वरध्वनि तथा शब्दांश के द्योतक हैं या नहीं यह निर्णय नहीं हो सका है। उनमें कुछ अक्षर भी प्रकटित हो रहे हैं। अतएव सम्भव है कि हरप्पा सभ्यता में उपलब्ध मुहरों (seals) की लिपि से ब्राह्मी क्रमश: विकसित हुई हो।

बूह्लर ने ब्राह्मी को दाहिने से बांए लिखने का जो प्रमाण दिया है वह अशोक के येरगुडी (करनूल, मद्रास) लेख तथा एरण के एक मुद्रा-लेख पर आधारित है। कनिंघम ने मध्य प्रदेश के जबलपुर से उस सिक्के का पता लगाया था जिस पर ब्राह्मी में मुद्रा-लेख दाहिने से बांए लिखा है। इसे एक आकस्मिक् घटना मान सकते हैं और टकसाल के साँचा निर्माता-की भूल से ऐसा हो गया होगा। इसी तरह अशोक के लेख में लिखने का क्रम उलटा मिलता है। येरगुडी के लेख में पहली पंक्ति ठीक ढंग से बांए से दाहिने लिखी है और दूसरी पंक्ति दाहिने से बांए। तीसरी बांए से दाहिने तथा चौथी दाहिने से बांए। इससे स्पष्ट है कि लेख अंकित करने वाला वास्तविक रूप में ब्राह्मी लिखना जानता था। पर एक नयी प्रणाली (दाहिने से बाएँ) का उसी लेख में समावेश करना चाहता था। इसलिए उलटा क्रम (दाहिने से बांए) भी कार्यान्वित किया। किन्तु इस कृत्रिम रूप के आधार पर कोई गम्भीर सिद्धान्त स्थिर करना युक्ति संगत न होगा।

यह कहना उचित होगा कि साहित्यिक आधार पर बुद्ध-काल से भी पूर्व ब्राह्मी का प्रचलन प्रकट होता है। पुरातत्व विभाग की खुदाई में अशोक ब्राह्मी से भी पूर्व पिपरावा स्तूप (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त पात्र पर अक्षर खुदे हैं (ई० पू० ४५०) इससे भी पूर्व पाणिनि के समय लिपि का ज्ञान भारतवासियों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था। संक्षेप में यह व्यक्त करना आवश्यक है वैज्ञानिक रूप में ब्राह्मी में प्रत्येक अक्षर ध्वन्यात्मक चिह्न हैं। लिखने तथा बोलने में समता है यानी जो लिखते हैं उसी के समान उच्चारण भी करते हैं। इसमें चौसठ स्वर व व्यंजन के चिह्न हैं। ह्रस्व तथा दीर्घ के पृथक पृथक चिह्न वर्तमान है तथा मध्य में स्थित चिह्न से स्वर व्यंजन का मेल होता है। अ सभी व्यंजन में निहित तथा अन्तर्वती है। इस प्रकार ब्राह्मी वैज्ञानिक लिपि है जिसमें एक क्रम है। इन सबल प्रमाणों के सम्मुख सेमिटिक ऐसी अनियमित बात अवैज्ञानिक लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है?

ब्राह्मी से भारतीय लिपियों का विकास

यह तो कहा जा चुका है कि बौद्ध ग्रंथों में जितनी लिपियों के नाम आते हैं उनमें ब्राह्मी को सर्व प्रथम स्थान दिया गया है। ईसा पूर्व पांच सौ वर्षों से ब्राह्मी का प्रयोग निरन्तर होता रहा है। अशोक के समय में तो सारे भारत वर्ष में (उत्तर पश्चिम के कुछ गांधार का भागछोड़ कर) इसी लिपि में लेख अंकित किए गये। यह राष्ट्रीय लिपि ई० पू० ५०० से ईसवी सन् के ३०० तक समान रूप में पाई जाती है जिसके पश्चात् कुछ विभिन्नता आने लगी। गुप्त काल से ब्राह्मी में स्पष्ट विभेद दिखलाई पड़ने लगा और उस के स्वरूप को ध्यान में रख कर दो विभाग किया जा सकता है—

(१) उत्तरी भारतीय शैली
(२) दक्षिण भारत की शैली

डिरिंजर के मतानुसार मौर्य सम्राट अशोक के लेखों में प्रयुक्त लिपि के पश्चात् (ईसा पूर्व दूसरी सदी) कलिङ्ग में कुछ भिन्नता उत्पन्न हो गयी थी। हाथी गुम्फा लेख की लिपि को कलिंग शैली की ब्राह्मी कह सकते हैं। इसी प्रकार शुंग कालीन भारहुत वेदिका के लेख तथा दक्षिण के शासक सातवाहन लेखों (नासिक, नानाघाट) की लिपि एक सदृश नहीं हैं। बुह्लर ने उत्तरी भारत की शैली को यानी गुप्त युग से पूर्व लिपि को दो भागों में विभक्त किया है। शुंग कालीन लिपि से उत्तरी क्षत्रप (रंजुवल) का मथुरा लेख के अक्षर मिलते हैं तथा दोनों लिपियों में समानता है। उससे भी भिन्न कुषाण लिपि समझी जाती है जो कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव की प्रशस्तियों में प्रयुक्त है। प्राय: सत्तर लेखों में उस तरह की लिपि वर्तमान है।

यदि मौर्य काल से ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी तक के लिपियों का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि अशोक कालीन लिपि में स्वर के चिह्न अक्षर के सिरे पर या नीचे लगाए जाते थे। विसर्ग का नाम नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋ का सर्वथा अभाव था। इनका व्यवहार सर्वप्रथम उष्वदत्त के नासिक लेख (ई० स० १२०-२५) में पाया जाता है। रुद्रदामन के गिरनार लेख (ई० स० १५०) में संयुक्त अक्षर का प्रयोग निश्चित रूप से पाया जाता है।

अशोक के पश्चात् अनेक लेखों (वेसनगर, नानाघाट, भारहुत तथा हाथी गुम्फा के लेख) में विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ पहले चार विन्दुओं से इ मात्रा का बोध होता था पर बाद से तीन विन्दुओं से ई तथा चौथे से अनुस्वार का बोध होने लगा। भारहुत में ई के लिए एक निश्चित स्वरूप दिखलाई पड़ता है। मथुरा के क्षत्रप लेखों में अक्षरों का आकार त्रिभुज के रूप में होने लगा। हाथी गुम्फा में अक्षरों के सिरे छोटी रेखा आती है। अशोक कालीन ब्राह्मी में अक्षरों में गोलाई थी। रेखा नहीं थी जो आगे चल कर प्रकट हो गई। मौर्य ब्राह्मी में दीर्घ ई तथा ऊ के लिए क्रमशः सिरे तथा नीचे दो रेखा जोड़ दी जाती थी। परन्तु ईसवी सन् से इनका पृथक स्वरूप मिलता है। मथुरा तथा सारनाथ के लेख में कुषाण युग में ई के लिए विन्दुओं के स्थान पर रेखाओं का प्रयोग होने लगा। ई स्वर के चिह्न ने नवीन रूप धारण कर लिया। ण चार प्रकार से लिखे जाने लगे। दूसरी सदी में हलंत् का प्रयोग आरम्भ हुआ। उसके लिखने में हलंत वाला अक्षर साधारण अक्षरों से नीचे (उसी सीध में नहीं) लिखा जाने लगा। अक्षरों की सिरो रेखा गिरनार के लेखमें (१५० ई०) अक्षरों के सिरे पर एक छोठी रेखा के सदृश प्रकट हुई जो आगे चलकर लम्बी लकीर बन गई। पश्चिमी भारत के क्षत्रप शासक तथा दक्षिण के सातवाहन नरेशों के मुद्रा लेखों में अक्षरों के नए स्वरूप मिलते हैं। ज्ञ, यं, स, ह, क्ष, म तथा इ का नया रूप सामने आता है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि सिक्कों पर स्थान की कमी के कारण नए शैली के अक्षर लिखे गए।

चौथी सदी से भारतीय लिपि में विशेष रूप से भिन्नता आ गई। मौर्य युग से तीसरी सदी तक ब्राह्मी में आमूल परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। अक्षर का रूप तथा कुछ नए रूप के समावेश से वह भिन्नता नहीं आ सकी जिसे नाम देकर व्यक्त किया जाता। किन्तु चौथी सदी से छठी सदी तक नर्वदा के उत्तर में प्रचलित लिपि को "गुप्त लिपि" का नाम दिया गया क्योंकि उस अवधि में गुप्त शासक थे। समय तथा स्थान के कारण निश्चित रूप से ब्राह्मी में विभेद आ गया। गुप्त लिपि का प्रयोग संस्कृत भाषा में सर्वत्र होने लगा। उदयगिरि

गुप्तलिपि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(भिलसा के समीप) के लेख में जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय का सर्वप्रथम उपयोग दिखलाई पडता है। "गुप्त लिपि" के अध्ययन के फलस्वरूप दो उप-विभाग किये गये हैं। श्री राखालदास बैनर्जी चार उपविभाग मानते हैं। (१) पश्चिमी ढंग के अक्षर जिसमें कोई नया रूप नहीं है। कुमार गुप्त प्रथम के भिलसद लेख (एटा जिला उत्तर प्रदेश) की लिपि पश्चिमी उपविभाग का प्रतिनिधि समझी जाती है। इसमें स्वर के चिह्न स्पष्ट हैं जो आगे चलकर कुटिल लिपि का स्थान लेते हैं।

(२) पूर्वी शैली में ल, स, ह तथा म अक्षरों का नया रूप दिखलाई पड़ता है। प्रयाग का स्तम्भ लेख इसका प्रतिनिधित्व करता है। इ के लिए दो बिन्दु तथा सामने लम्बवत् रेखा का प्रयोग मिलता है। सभी अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा का समावेश गुप्त लिपि में पाया जाता है। इसी को "सिद्धमात्रृका" के नाम से पुकारने लगे।

गुप्त युग के पश्चात् छठी से नवीं सदी तक गुप्त-ब्राह्मी से भी अधिक भिन्नता उत्तरी भारत के लिपि में दिखलाई पड़ने लगी। गुप्त लिपि के प्रत्येक अक्षर में नीचे की ओर खड़ी रेखाएं बाई ओर मुड़ी हैं

कुटिल लिपि

तथा स्वर की मात्राएं टेढ़ी और लम्बी हो गई। इसी कारण इन तीन सौ वर्षों की लिपि की कल्पना की गई जो "कुटिल लिपि" के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह शब्द देवल लेख (उत्तर प्रदेश) में 'कुटिला क्षराणि" कहा गया है तथा विक्रमांकदेव चरित में कुटिललिपि उल्लिखित है। पीछे इसको 'विकटाक्षरा' भी कहने लगे। पिछले गुप्त नरेश आदित्यसेन के अपसद (गया जिला) तथा विष्णु गुप्त के मंगराव। (शाहाबाद जिला) लेख इस लिपि में उत्कीर्ण हैं। उत्तर प्रदेश, विहार तथा राजपुताना के लेख इस लिपि से सम्बन्धित हैं। मंदसोर, मधुवन जोधपुर आदि लेखों में अक्षर नागरी से मिलते जुलते हैं। आ, हलंत, उपध्मानीय आदि का प्रयोग नागरी के समान है यानी कुटिल तथा देव नागरी लिपि में कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता। कुटिल लिपि से ही नागरी तथा शारदा 'लिपियां' निकलीं। हलंत व्यंजनों के सिरे पंक्ति से नीचे नहीं किन्तु स्वर व्यंजनों के साथ समान पंक्ति में ही लिखा है।

भारतवर्ष की सर्व प्रसिद्ध लिपि नागरी का विकास सिद्धमातृका से माना जाता है। नागरी का नामकरण विवादास्पद है। नगर के

देवनागरी लिपि

रहने वाले जिस लिपि में लिखने लगे उसे नागरी का नाम दिया गया अथवा गुजरात के नागर ब्राह्मण जिस लिपि का प्रयोग करते थे, उसे नागरी कहा गया। इसमें सिरे की पड़ी रेखा लम्बी हो गई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और अक्षरों में लम्बी लकीर का समावेश हो गया। सिद्धमातृका से भिन्न सिरे की मात्राएं अधिकतर सीधी हो गई। सातवीं सदी में नागरी के स्वरूप का आभास मिलने लग गया था। परन्तु नवीं सदी से सर्वत्र नागरी में लेख या पुस्तक लिखना आरम्भ हो गया। ११वीं सदी तक तो उत्तरी भारत में नागरी ही प्रधान लिपि थी और उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, विहार, बंगाल, राजपुताना में सर्वत्र नागरी में अभिलेख तथा मुद्रालेख उत्कीर्ण किए गए।

नागरी को देव नागरी का नाम दिया गया। सम्भवतः देव कार्य के लिए ब्राह्मण प्रयुक्त करते थे इसलिए देवनागरी नाम प्रसिद्ध हुआ। यह सब से अधिक वैज्ञानिक लिपि है जिस के अक्षर में 'अ' अन्तर्निहित है। उसका पृथक उच्चारण नहीं होता। इसमें १४ स्वर तथा ३४ व्यंजन पाए जाते हैं।

उत्तरी भारत की ब्राह्मी से ही देव नागरी विकसित हुई और उसके समकालीन शारदा तथा बंगला लिपियों की भी उत्पत्ति हुई। पश्चिमी गुप्त लिपि से आठवीं सदी में काश्मीर में शारदा लिपि का विकास तथा प्रसार हुआ। शारदा में अक्षर मूलतः देवनागरी के समान है परन्तु उनका स्वरूप भिन्न है। पूर्वी गुप्त लिपि में बंगला लिपि का पूर्व रूप पाया जाता है। यानी सातवीं सदी के पश्चात् नागरी लिपि से ही बंगाला लिपि निकली। पाल राजा धर्मपाल तथा देवपाल के लेख नागरी लिपि में ही मिलते हैं। श्री चक्रवर्ती ने अपने लेख (बंगाली अक्षर का विकास) में इस बात को सिद्ध किया है कि सातवीं सदी की लिपि के पूर्वी उपविभाग से बंगला का जन्म हुआ। नागरी से दसवीं सदी तक वह प्रभावित रही यानी दोनों लिपियों में समानता रही। परन्तु इसके बाद स्वतंत्र रूप धारण कर लिया। उसे १५वीं तथा १६वीं सदी में पूर्ण विकसित पाते हैं। पूर्वी नागरी से ही कैथी, महाजनी, राजस्थानी तथा गुजराती लिपियां निकली। कैथी को कायस्थ लोग लिखते रहे। देवनागरी से इसमें विभिन्नता दो स्थानों में दिखलाई पड़ती है। सिरे की पड़ी रेखा तथा अक्षरों में खड़ी रेखा का कैथी में सर्वथा अभाव है। कैथी में ई या ऊ का दीर्घ नहीं होता तथा स या श में अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता। महाजनी को मारवाड़ी वर्ग व्यापार के सम्बन्ध में प्रयोग करते हैं।

कैथी आदि

भारत में विन्ध्या के दक्षिण नर्वदा नदी दक्षिणापथ की सीमा निश्चित करती है परन्तु लेखन कला के आधार पर पश्चिम में काठियावाड़ तथा पूरब में बंगाल के दक्षिण भाग को दक्षिणी भारत के नाम से प्रयुक्त किया गया है और उस भाग में प्रचलित लिपि दक्षिण भारतीय शैली कही जाती है। उस भूभाग में बसने वाले लोग

दक्षिण भारत की शैली

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्रविड़ या द्रमिड के नाम से विख्यात हैं। पाली दमिल तथा संस्कृत तमिल शब्दों से वहां की भाषा परिवार की जानकारी होती हैं। इसलिए भारतीय लिपि के दक्षिणी शाखा को "द्रविड़ लिपि' कहा जा सकता है। वह लिपि ईसवी स ् की चौथी सदी से प्रयुक्त होने लगी और गुप्त काल में उत्तर तथा दक्षिण शाखाएँ पृथक हो गई। मोटे तौर पर उत्तरापथ की लिपि में कोण युक्त अक्षर तथा अक्षर के सिरे पर पडी रेखा को स्थान मिल गया। दक्षिण के अक्षरों पर वर्गाकार आकृति जोड़ दी गई जो वाक्सनुमा कहा जाता है।

दक्षिणापथ के द्रविड़ लिपि निम्न भागों में विभक्त की गई है :—

(१) **पश्चिमी उपविभाग**—काठियावाड़ गुजरात, मराठा जिले तथा कोंकण में प्रयुक्त। गुजरात काठियावाड़ में उत्तरी शाखा की लिपि काम में लाई जाती थी, अतएव उसका प्रभाव दिखलाई पडता है।

(२) **मध्यभारत की लिपि**--इसमें भी अक्षरों पर वर्ग का स्थान दिया गया था यानी वाक्सनुमा आकार वाले अक्षर।

(३) **तेलगु लिपि**--दक्षिण भारत में इस लिपि को प्रधान स्थान दिया गया है। इसका प्रयोग तथा विकास बम्बई के दक्षिण भाग में, मैसूर तथा आंध्र प्रदेश में मिलता है। इस लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग पांचवीं सदी में पाया जाता है तथा कन्नड़ ग्रंथ 'कविराज मार्ग' (९वीं सदी) में यह दिखलाई पड़ती है। मद्रास प्रदेश के तेलगु लेख से भी पहले तामिल का प्रयोग मिलता है।

(३) **ग्रंथ लिपि**--पूर्वी मद्रास किनारा कांची के भाग से प्राप्त प्राचीन संस्कृत अभिलेख की लिपि 'ग्रंथ' के नाम से प्रसिद्ध थी। कांची में ५वीं-९वीं सदी तक तथा चोल (उत्तरी मद्रास) राज्य में ९ ीं से १४वीं सदी तक प्रयुक्त होती रही। पल्लव राजवंश के ताम्रपत्र (७वीं सदी) 'ग्रंथ' में ही लिखे गये थे। आरकाट से केरल तक पुस्तकें इसी लिपि में लिखी गई थी; इसी कारण इसका नाम 'ग्रंथ लिपि' पड़ा।

(४) **तामिल लिपि**--इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। बुह् लर का मत था कि पांचवीं सदी की ब्राह्मी से यह निकली और कालान्तर में "ग्रंथ" से प्रभावित हुई। द्रविडी लिपि से तामिल लिपि का सम्बन्ध अनिश्चित है। आरकाट, मदूरा तथा केरल तक तामिल की अपूर्णता के कारण संस्कृत की पुस्तकें 'ग्रंथ' लिपि में लिखी गई। मद्रास के भूभाग में तथा मालावार प्रदेश के लेखों में (चोड़ चालुक्य एवं राष्ट्र कूट के दानपत्रों) में सातवीं सदी से तामिल का प्रयोग होने लगा था। इस में संयुक्त व्यंजन एक दूसरे से मिला कर नहीं किन्तु पास-पास लिखे जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसमें कुल १८ व्यंजन हैं। इसी कारण संस्कृत इसमें लिखा नहीं जा सकता। जब आवश्यकता पड़ती है तो 'ग्रंथलिपि' में लिखे जाते हैं।

कलिंग लिपि

मद्रास के गंजाम तथा कलिंग में शासन करने वाले गंग वंशी राजाओं के दानपत्रों में ७वीं से ११वीं सदी तक इस लिपि का प्रयोग मिलता है। इसमें मध्यदेशीय लिपि का अनुकरण है तथा अक्षर के सिरे संदूक की आकृति वर्तमान है। इसमें तेलेगु, ग्रंथ तथा नागरी का सम्मिश्रण पाया जाता है।

लेखक तथा लिखने की विधि

भारतवर्ष में अक्षर को विद्वानों ने पता लगाया और साहित्यिक क्षेत्र में पुरोहित अथवा ब्राह्मण इसका प्रयोग करते रहे। लिपि से पूर्व भाषा तथा स्वर विद्या का ज्ञान स्वतः प्रमाणित होता है। भाषाविद् के समक्ष साहित्य का अध्ययन प्रधान था और लेखन कार्य की उतनी आवश्यकता न थी। समाज के विकास के साथ विभिन्न जीविका के द्वारा लोग निर्वाह करने लगे और लेख-कार्य भी एक जीविका का साधन बन गया।

हमारे महाकाव्यों में लेखन शब्द का उल्लेख पाया जाता है। रामायण तथा महाभारत के अतिरिक्त पालि साहित्य में इस शब्द का प्रचुर प्रयोग किया गया है। मुद्राराक्षस में पदाधिकारी लेखक या श्रोतिय की प्रशंसा की गई है––

(अ) श्रोत्रिय अक्षराणि प्रयत्न लिखितान्यपि · · · ·

(ब) अहो दर्शनीयान्यक्षराणि (प्रथम अंक)

बौद्ध ग्रंथ विनयपिटक (भिक्खुपाचित्तिय एवं बुधिस्ट इंडिया पृ० १०८) में लेखन कला की प्रशंसा की गई है। महावग्ग (१, ४९) तथा जातकों में (इंडियन स्टडीज ३, २) राजकीय पत्रों का विवरण पाया जाता है जिससे प्रकट होता है कि राजकीय आज्ञा पत्रों के लिखने में दक्षता की आवश्यकता रहती थी। अभिलेखों में सर्वप्रथम सांची के लेख में (स्तूप नं० १ सं० १४३) 'लेखक' शब्द का प्रयोग मिलता है। उससे दानकर्त्ता के जीविका का तात्पर्य था। पीछे 'लेखक' शब्द का प्रयोग प्रशस्तिकार (शिला या ताम्रपत्र) से किया जाने लगा। ब्राह्मण या कायस्थ वर्ग के व्यक्ति इस कार्य को करते थे। जैन-धर्म ग्रंथ-भिक्षु तथा भिक्षुणी द्वारा नकल किया जाता था। नालंदा के लेख में धर्म-ग्रंथ के लिखने के लिए (नकल करने) दान देने का वर्णन मिलता है (ए० इ० भा० २०)। अशोक के लेख में (ईसा पू० चौथी सदी में) लिपिकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(लिखितं लिपिकरेण-ब्रह्मगिरि ; लिपिकरापराधेन-गिरनार लेख तथा दिपिकर शहवाजगढ़ी १४वां शिलालेख) शब्दों का प्रयोग धर्मशासन के प्रस्तर पर लिखने वालों के लिए प्रयुक्त मिलता है। लिपिकर तथा लेखक समानार्थक शब्द हैं परन्तु लेखक का ही अधिक प्रयोग मिलता है। आठवीं सदी के बलभी लेख में दिविरिपति शब्द उल्लिखित है जिसका तात्पर्य यह हो सकता है कि वह राजकीय पत्रों के लेखकों से उच्च कोई अधिकारी था। बुह्लर ने अशोक के दिपिकर शब्द को ईरानी दिविर से उत्पन्न बतलाया है। दिपिकर प्राकृत में दिविकर हो गया होगा और दोनों एक ही शब्द के दो रूप होंगे।

ईसवी सन् के पश्चात लेखन कार्य एक विशिष्ट वर्ग के हाथों आ गया जो कायस्थ कहलाए। याज्ञवल्क्य स्मृति (१, ३३६) में उल्लिखित कायस्थ शब्द पर टीका करते विज्ञानेश्वर न उसका अर्थ लेखक माना है। (कायस्थ गणका लेखकाश्च)। पांचवीं सदी के दामोदरपुर ताम्रपत्र में कायस्थ वर्ग का मुखिया जिला समिति का सदस्य बतलाया गया है (ए० इ० भा० १५)। कायस्थ उस समय किसी वर्ग या जाति का नाम नहीं था परन्तु राज घराने में जो कोई लेखक का कार्य करता रहा वह कायस्थ नाम से सम्बोधित किया जाता था। कायस्थ शब्द का दार्शनिक रीति से यह अर्थ निकलता है कि जिस व्यक्ति का ध्यान शरीर (काय) में केन्द्रीभूत हो जाय और किसी वस्तु की परवाह न करे, वह कायस्थ पुकारा जा सकता है। अस्तु, विभिन्न वर्ण तथा जाति के व्यक्ति राजदरबार में कायस्थ का कार्य (लेखन कार्य) करते थे--जो कालान्तर में एक जाति के रूप में संगठित हो गए।

कायस्थ शब्द के अतिरिक्त लेखक के लिए करण, करणिक, करनिन आदि शब्द प्रयुक्त होते रहे। चेदि लेख में (करणिक धीर सुतेन) तथा चन्देलों के खजुराहो प्रशस्ति में करणिक शब्द का प्रयोग मिलता है जो सुन्दर अक्षर लिखते थे। कार्यालय (अधिकरण या श्रीकरण) से सम्बन्धित लेखक करण या करणिक कहलाया। कीलहार्न ने करण से भी कानूनी पत्रों के लेखक का अर्थ माना है।

मध्य युग के [१२वीं सदी] चन्देल, चेदि व चाहमान लेखों में कायस्थ के सम्बन्ध में अत्यधिक बातें उल्लिखित हैं। अनेक प्रशस्तियों में लेखक के अतिरिक्त वह धर्मलेखी (धार्मिक दान का लेखक) भी कहा गया है। दानपत्रों में एक प्रकार का वर्णन आता है कि गौड़ (उत्तरी बंगाल) कायस्थ सुन्दर अक्षर लिखते थे (लिखिता रूचिरा अक्षरा गौडेन--ए० इ० भा० १ पृ० १४७) स्यात् अच्छे ढंग से लिखने के कारण गौड़ कायस्थ को मध्य देश के राजाओं द्वारा निमंत्रण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिया जाता था । खजुराहो लेख (१०वीं सदी) मध्यप्रदेश के कलचुरि प्रशस्ति तथा मारवाड़ से प्राप्त चाहमान लेखों में कायस्थ की प्रशंसा की गई है क्योंकि वह राजकीय पत्रों को सुन्दर व ललित अक्षरों में लिखता था ।

(१) लिखितं श्री गौडान्वय कायस्य पेथडेन

(ए० इ० ११ पृ० ४१)

(२) द्विजवरनतिरिक्तः शुद्ध कायस्थ वंश्यो
हृदयधर समाख्यः श्री शिव स्तंभ सूनुः
अलिख दखिल वर्ण व्यक्त पंक्ति प्रशस्यं
नव किसलय कान्तँ ताम्रेत द्विजानाम् (ए० इ० १४ पृ० १९५)

(३) विरचित शुभ कर्म्मानाम कायस्थ वंश्यः
सकल गुण गुणानां वेश्य पृथ्वीधराख्यः
अलिख दवनि पालस्याज्ञया धर्मलेखी
स्फुट ललित निवेशैरक्षरैस्ताम्रपट्टम् (ए० इ० १४ पृ० १४)

इसी तरह करणिक की भी चर्चा लेखों में आती है जो सुन्दर अक्षर लिखने के कारण गौड़ देश से मध्य देश या राजपुताना में निमंत्रित किये जाते थे । यह भी कहा गया है कि उन्हें संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान रहता था, इस कारण शुद्ध लिख सकते थे ।

लिखितं चेद करणिक श्री सर्वानन्देन

(ए० इ० ११ पृ० १४५)

सँस्कृत भाषा विपुषा जयगुण पुत्रेण
कौतुका लिखिताः रुचिराक्षरा
प्रशतिः करणिक जद्धेन गौडेन

(ए० इ० १ पृ० १२९)

प्राचीनं अभिलेखों में प्रशस्ति अंकित कराने के प्रसंग में शिलिपन, रूपकार या सूत्रधार या शिलाकूट शब्दों का प्रयोग मिलता है । उसके विवेचन से प्रकट होता है कि सर्व प्रथम प्रशस्ति या लेख राजकीय पदाधिकारी द्वारा लिखा जाता था (जिसे लेखक कह सकते हैं) उसको प्रस्तर अथवा ताम्रपत्र पर खोदा जाता था । गौतमी पुत्र शातकर्णी के नासिक लेख में "तापसेन कृता" अंत में उल्लिखित है जिसका भाव यह है कि तापस (नाम) द्वारा खोदा गया (उत्कीर्ण किया गया) । इस तरह का संदभ पूर्व मध्यकालीन प्रशस्तियों में अधिकतर पाया जाता है । जो

सूत्रधार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ताम्रपट्टिका या प्रतिमा आधार शिला पर खोदी गई हैं। खोदने वाला शिल्पी कहा गया है बंगाल के लेख में मगध के शिल्पी सोमेश्वर का उल्लेख है जिसने प्रशस्ति खोदी थी—

शिल्पबिन मागधः कामी तन्मना वर्ण्णभक्तिभिः
सोमेश्वरो लिखिदिमाम् प्रशस्ति स्वामिव प्रियाम्
(ए० इ० १३पृ० ४२)

उसी तरह महीपाल के लेख में—इमं शासनं उत्कीर्णं श्री महीधर शिल्पना" पाया जाता है (ए० इ १४ पृ० ३२३) अन्य लेखों में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

रजपालस्य पुत्रेण पाह्लणेन च शिल्पिना
उत्कीर्णा वर्ण्णघटना वैदग्धी विश्वकर्मण
(ए० इ० भा० २० पृ० १३१)

यशोवर्म सुतेनेयं साधुना नाग वर्मणा
रम्या प्रशस्तिरूत्कीर्णा कला कौशलशालिना
(धनिक की नगर प्रशस्ति से)

ताम्रपत्र पर कुशल शिल्पी द्वारा लेख खुदवाने का कार्य १२वीं सदी तक के लेखों में पाया जाता है—

(१) उत्कीर्णा प्रचुरासा प्रशस्तिरियमक्षरै रुचिरैः
(ए० इ० भा० २६ पृ० २६३)

(२) लिपिज्ञान विधिज्ञेन प्राज्ञेन गुणशालिना
सिंहनेयं समुत्कीर्णा सद्वर्ण्णा रूप शालिना
(ए० इ० १ पृ० १४७)

(३) उत्कीर्णा सोमनाथेन टङ्क विज्ञान शालिना (वही पृ० ८१)

इन उद्धरणों से अर्थ यह निकलता है कि शिल्पी को प्रस्तर या ताम्रपट्टिका पर प्रशस्ति खोदने (उत्कीर्ण) में कुशल समझ कर कार्य सौंप दिया जाता था। वह सुन्दर अक्षरों में उचित रीति से प्रशस्ति उत्कीर्ण करता जिससे उसकी कुशलता का परिज्ञान होता था। वह कारीगर सुनार, लोहार कांष्यकार या ताम्रकार जाति का होता था जिसकी जीविका उसी कार्य पर निर्भर थी।

शासन का निर्माणकर्ता

गुप्त युग के लेखों का अध्ययन यह बतलाता है कि शासन (राजकीय पत्र) तैयार करने का कार्य किसी ऊंचे पदाधिकारी के हाथ में रहता था। प्रयागस्तम्भ लेख में हरिषेण ने प्रशस्ति तैयार करवाई थी जो कुमारामात्य तथा सन्धिविग्रहिक (मंत्री) पद को सुशोभित कर चुका था। बलभी के राजा धरसेन के ताम्रपत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में "सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत दिविरपति स्कन्दभट्ट' का नाम आता है (इ०ए० ६ पृ० ९) जो उपरियुक्त कथन की पुष्टि करता है। शासन लिखते समय दूतक भी मौजूद रहता था और अंत में शासक हस्ताक्षर करता था। बांसखेड़ा ताम्रपत्र के अंत में "स्वहस्तोमम महाराजाधिराज श्री हर्षस्य" का उल्लेख हस्ताक्षर को (वर्तमान वा० खुद) व्यक्त करने के लिए अंकित किया गया था। राजतरंगिनी में एक पदाधिकारी––पट्टपाध्याय का नाम आता है जो काश्मीर में राजकीय पत्रों (शासन) को तैयार करता था। अक्षपटलिक नामक अधिकारी उन शासनों को संग्रह कर रखता था। इस तरह पुराने समय में राजाज्ञा को प्रस्तर या पट्टिका पर उत्कीर्ण करने का कार्य सम्पन्न किया जाता था।

निबंध कर्म

नासिक गुहा लेख में वर्णन मिलता है कि दान की घोषणा कर तथा लेखन कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् ताम्रपत्र (फलक) को निगम सभा को रजिस्ट्री (निबंध) कर दिया जाता था। वही कार्यालय (फलकवार) में सुरक्षित रक्खा जाता था ताकि भविष्य में उसी लिखित नियम का पालन हो सके। उल्लेख पठनीय है :—एत च सर्व स्रावित निगम सभाय निबंध च फलकवारे चरित्रतोति। भूयोनेन दत्तं वसे ४०+१ कार्तिक शूधेपनरसपुवाक वसे ४०+५ स्रावितं ············ फलकवारे चरित्रतो ति।

(ए० इ० भा० ८ पृ० ८२)

दान लिखकर राजकीय कार्यालय (फलकवार) में सुरक्षित किया जाता यानी रजिस्ट्री (निबंध) किया जाता था। समयानुकूल (चरित्रतो) उसकी प्रति सुरक्षित की जाती। पूर्वमध्ययुग के लेखों में उस पदाधिकारी को 'अक्षपटलिक' कहते थे।

लिखने की शैली

प्राचीन समय में ब्राह्मी को बांए से दाहिने लिखने की रीति प्रचलित थी। पर खरोष्ठी दाहिने से बांए (अनार्य ढंग पर) लिखी जाती थी। एरण के मुद्रा लेख में 'धनपलदस' तथा अशोक के येरगुडी लेख में कुछ पंक्तियां दाहिने से बांई ओर लिखी मिली हैं जिस आधार पर विदेशी विद्वान ब्राह्मी की उत्पत्ति खरोष्ठी से मानने लगे थे। परन्तु इसमें वास्तविकता नहीं है। येरगुड़ी में शिल्पी एक नया क्रम का प्रयोग कर रहा था जिसमें कुछ पंक्तियां (२, ४, ६, ९, ११, १३, १४, २३) दाहिने से बांई ओर लिखी मिली हैं। इस पर कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं किया जा सकता। प्रागैतिहासिक युग की मुद्राओं पर भी सम्भवतः बाईं ओर से दाहिने अक्षर खुदे प्रकट होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तात्पर्य यह है कि बांए से दांए लिखने की परिपाटी ही सब से प्राचीन तथा तथा भारतीय है।

पुराने अक्षरों में सिरे पर पड़ी लकीर देने की रीति ई० सं० से आरम्भ हुई परन्तु वह भी नोक की तरह छोटा। पड़ी रेखा नहीं थी। यह कहना उचित होगा कि अक्षर सीधी पंक्ति में होते थे। सम्भव है कि सीधी पंक्ति के लिए शिल्पी पूर्व ही निशान लगा देता रहा ताकि लिखते समय टेढ़ा न हो। प्राचीन लेखक अक्षर समूह या शब्द समूह की ओर ध्यान नहीं देते थे और वाक्य को पृथक दिखाने के लिए किसी तरह का विराम चिह्न का प्रयोग नहीं करते रहे। यद्यपि प्राकृत लेखों में अक्षर समूह का प्रारम्भ हो गया था परन्तु संस्कृत अभिलेखों में विराम या खाली स्थान के प्रयोग से पद पृथक किए जा सकते थे।

मौर्य युग से ईसवी सन् की पहली सदी तक विराम के निश्चित चिह्न नहीं थे। केवल एक छोटी पड़ी रेखा का प्रयोग मिलता है। किन्तु पांचवीं शताब्दी से विराम के चिह्न स्पष्ट हो गए। मंदसोर तथा हरहा (फ्लीट नं० ३५ तथा ए० इ० भा० १४) की प्रशस्ति में एक खड़ी रेखा से पूर्ण विराम व्यक्त किया गया है। तीन खड़ी रेखाएं कभी शासन के अंत में दिखलाई पड़ती हैं।

दक्षिण के सातवाहन, उत्तर पश्चिम के शक क्षत्रप तथा कुषाण लेखों में एक

संक्षिप्त चिन्ह विशेषता है कि उनमें संक्षिप्तीकरण की परिपाटी दिखलाई पड़ती है।

सम्वस्तर के लिए सम्व, सव, सं या स
गृष्म ,, ,, गृ० गँ० गि०
हेमन्त ,, ,, हे०
दिवस ,, ,, दि०
शुक्ल पक्ष ,, ,, सु० दि०
बहुल पक्ष ,, ,, ब० व० दि०
द्वितीय ,, ,, द्वि०
सिद्धम् ,, ,, श्री० श्री० सि०
राउत ,, ,, रा०

अंत में इस विषय को समाप्त करते यह कहना असंगत न होगा कि स्वस्तिक, त्रिरत्न या धर्मचक्र आदि धार्मिक चिह्न भी प्रशस्ति उत्कीर्ण करते समय खोदे जाते थे जो धार्मिक भावना के द्योतक हैं। लेख के अन्त में राजमुद्रा को भी अंकित किया जाता था। गुप्त युग में गरुण का चिह्न सिक्कों तथा कुछ लेखों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर मिलता है (गरुड़ ध्वज)। गजलक्ष्मी, शिव प्रतिमा, बोधिवृक्ष आदि चिह्न विभिन्न राजवंशों की प्रशस्तियों पर मिलते हैं।

प्राचीन भारत में सहस्रों अभिलेख, प्रस्तर या ताम्रपट्टिकाओं आदि पर उत्कीर्ण किए गये थे जिनकी लिपि के सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है।

प्राचीन भारतीय लिपि का स्पष्टी करण

प्राय: सभी को जानने की प्रबल इच्छा होगी कि इन ब्राह्मी तथा खरोष्ठी के लेखों तथा प्रशस्तियों का स्पष्टीकरण कब और किस प्रकार हुआ। इसका इतिहास यह बतलाता है कि कुछ भारतीय विद्वान ७वीं या आठवीं सदी के हस्त-लिखित ग्रंथों को (संस्कृत या प्राकृत) पढ़ सके थे परन्तु इसके पूर्व लिपियों की जानकारी न हो पाई थी। १४वीं सदी में फिरोजशाह तुगलक ने अशोक के लेखों को पढ़ाने का प्रयत्न किया था जो अशोक स्तम्भ पर खुदे थे और जिस स्तम्भ को अम्बाला के टोयरा तथा मेरठ से दिल्ली लाया गया था। भारत वासी उस लिपि से १८वीं सदी तक अनभिज्ञ थे जब १७८४ में स्थापित बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के सहयोग से इस कार्य में प्रगति हुई। १७८५ में विल्किन्स ने एक पाल प्रशस्ति को (बदल स्तम्भ लेख) पढ़ा तथा राधाकान्त शर्मा ने चाहमान विशाल देव की प्रशस्त को स्पष्ट किया। विल्किंस ने उन पठित अक्षरों की सहायता से गुप्त लिपि के थोड़े अक्षरों को स्पष्टतया पढ़ लिया। जेम्स टाड को राजपुताना मध्य भारत तथा गुजरात से एकत्रित लेखों को पढ़ने में आंशिक सफलता मिल सकी।

१८३४ में ट्रायर तथा डा० मिल प्रयाग स्तम्भ लेख के पढ़ने में सफली-भूत हुए थे। उसके बाद ही स्कन्द गुप्त का भितरी स्तम्भ लेख पढ़ा गया। इस सम्बन्ध में जेम्स प्रिंसेप का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है जिसने गुप्त लिपि को पूर्ण रीति से स्पष्ट किया और अक्षर पहचाने जा सके। चार्ल्स मेलेट ने ब्राह्मी अभिलेखों के स्पष्टीकरण का कठिन परिश्रम किया था पर सफल न हो पाया। १८३६ में लसेन द्वारा भारतीय यूनानी मुद्रा लेख पढा गया और इस तरह ब्राह्मी के अक्षर अंशतः ज्ञात हो गए। इसका कारण यह था कि अगथुल्कियस के सिक्कों पर एक ओर यूनानी लिपि में मुद्रा लेख था और पृष्ट और ब्राह्मी में। कभी-कभी अग्रभाग में यूनानी और पृष्ठ भाग में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी के लेख क्रमश: अग्र तथा पृष्ठ भाग पर अंकित थे। इस समय यूनानी लिपि की सहायता से खरोष्ठी तथा ब्राह्मी के अक्षर स्पष्ट हो सके। ब्राह्मी के पूर्ण ढंग से स्पष्ट करने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को है जिसने प्रयाग, रधिया, मथैया तथा दिल्ली स्तम्भ लेखों का तुलनात्मक अध्ययन किया और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्त लिपि को पूर्णतः जान लिया। गुप्त लिपि से ब्राह्मी की जानकारी सरल हो गई क्योंकि अक्षरों के सिलसिला पता लग गया। उसने स्वर तथा व्यंजन को पृथक किया। स्वर का मूल्य जान कर प्रिंसेप ने वर्ग में उन्हें विभाजित कर दिया। सांची वेदिका पर खुदे लेख के अंतिम दो अक्षरों का ज्ञान अनुमान से ठीक हो गया। दान शब्द सर्वत्र एक सा था जिसे वेदिका के दान देने के प्रसंग से पकड़ा जा सका। अनुमान से अक्षर का वास्तविक ज्ञान हो गया।

खरोष्ठी के पढ़ने में अधिक सुविधा दो भाषा के मुद्रालेख से मिली जो भारतीय-यूनानी सिक्कों पर खुदी थी। टाड तथा वर्न को ऐसे अनेक सिक्के मिले थे जिनपर अग्रभाग में यूनानी तथा पृष्ठ भाग में खरोष्ठी लेख उत्कीर्ण था। विद्वानों का अनुमान ठीक निकला कि यूनानी लिपि तथा खरोष्ठी के मुद्रालेख एक समान है और दोनों लिपियों में एक नाम अंकित है। प्रिंसेप इस को ध्यान में रखकर ग्रीक राजाओं का नाम पढ़ सका तथा खरोष्ठी के लेख पढ़े गये। इस प्रकार मुद्रालेख के सहारे लिपि की जानकारी पूर्ण हो सकी। शनैः शनैः ब्राह्मी तथा खरोष्ठी के समस्त वर्णमाला का ज्ञान हो सका जिससे भारतीय संस्कृति के अमूल्य रत्नों की जानकारी सुलभ हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्याय १०

भारतीय अभिलेख तथा बृहत्तर भारत

पिछले पचास वर्षों से भारतीय इतिहास के एक विशेष शाखा का अध्ययन किया जा रहा है जिसे 'बृहत्तर-भारत' की संज्ञा दी गई है। भारत की संस्कृति वर्तमान भौगोलिक सीमा के बाहर विस्तृत थी जिसके अध्ययन से एक ज्ञान-राशि प्रकाश में आई है। उत्तर-पश्चिम मार्ग से होकर मध्यएसिया, चीन तथा जापान तक भारतीय संस्कृति का विस्तार हुआ और पूर्वी बंदरगाहों से दक्षिण-पूर्वी एशिया में हमारी संस्कृति का फैलाव हुआ। बृहत्तर-भारत में इस संस्कृति के ले जाने का श्रेय भारतीय व्यापारियों को है जो वाणिज्य की उन्नति तथा व्यवसाय की अभिवृद्धि के लिए उन देशों में गए। वहां जाकर उन्होंने अपना उपनिवेश बसाया और क्रमशः सांस्कृतिक बातों का फैलाव किया। बृहत्तर-भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा कला का इतिहास इस बात को स्पष्ट व्यक्त करता है कि भारतीय संस्कृति का विस्तार किस रूप में वहाँ हुआ था। वहाँ के खण्डहर, भवन, मन्दिर तथा खुदाई से प्राप्त पुरातत्व सामिग्रियाँ ऐसे अकाट्य प्रमाण हैं जिसके आधार पर भारतीय संस्कृत के स्वरूप तथा उसके विस्तार का परिज्ञान हो जाता है।

उन ऐतिहासिक सामिग्रियों में लेखों पर विचार करना ही प्रस्तुत विषय है। समस्त प्राप्त अभिलेखों पर विचार करने से पता चलता है कि लेख शिलाखण्ड, स्तम्भ (यूप), प्रतिभा आधार, ताम्रपत्र तथा कांस्य घंटे (bell) पर अंकित किए गए हैं। एशिया के दक्षिण-पूर्वी भाग में अनाम, चम्पा, मलय, वोर्नियो, जावा, बाली, बर्मा आदि देशों में लेख पर्याप्त संख्या में मिले हैं। जावा में अधिकतर ताम्रपत्र तथा बर्मा में घंटे पर लेख खुदे प्राप्त हुए हैं। मध्यएशिया में खुदाई के फल-स्वरूप जो भोजपत्र पर लिखे ग्रंथ मिले हैं और गुफाओं से चित्र तथा मूर्तियाँ प्रकाश में आई है, इनके अध्ययन से विस्तार पूर्ण भारतीय संस्कृति की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जानकारी होती है। अतएव बृहत्तर-भारत के अभिलेखों की चर्चा तथा वर्णन से सीमित विवरण उपस्थित किया जायगा। अभिलेखों के अध्ययन से विशिष्ट देशों का राजनीतिक इतिहास का ही ज्ञान नहीं होता किन्तु उस देश का समाज, साहित्य तथा अन्य विचार धारा का परिज्ञान होता है। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि हिन्द-चीन के समस्त लेख संस्कृत भाषा में तथा भारतीय लिपि में अंकित किए गए हैं। भाषा अलंकारिक तथा काव्यमय है। उसका वैज्ञानिक विश्लेषण कतिपय विषयों पर प्रकाश डालता है।

उनके विवेचन से भारतीय देवता तथा धर्म सम्बन्धी बातों का परिचय मिलता है। प्रतिमाओं पर अंकित लेख यह बतलाता है कि हिन्द-चीन की जनता भारतीय लोगों की तरह देवताओं की पूजा करती थी। बुद्ध-धर्म के वहाँ प्रचार होने से हिन्दू धर्म पर प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। हीनयान तथा महायान का प्रचार प्रकट होता है। "यो धम्मा हेतु प्रभवा" का मंत्र भी अंकित मिलता है। लेखों का अध्ययन इस बात को स्पष्ट कर देता है कि हिन्द चीन की जनता भारतीय साहित्य को पढ़ती थी। ब्राह्मण यज्ञ का वहाँ प्रसार था। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्ध मत के साथ हिंदू धर्म का प्रसार भली-भाँति हो गया ा। ब्राह्मण संस्कृति की ही प्रधानता दिखलाई पड़ती है। भारतवर्ष की तरह 'पद-चिन्ह' की पूजा होती थी। दानपत्रों की चर्चा करते समय भारत के ताम्र-पत्रों की याद आती है। उनमें दान का वणन है। षोडश महादान की भारतीय कल्पना हिन्द चीन में भी घर बना चुकी थी। उस प्रसंग में 'कल्पवृक्ष' तथा 'गोसतसहस्र' का उल्लेख लेखों में आया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के इतिहास, उपनिवेश का प्रारम्भ, भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों का प्रसार आदि बातों की जानकारी लेखों से हो जाती है।

भारतीय साहित्य के आधार पर पता लगता है कि सुवर्ण-द्वीप (=सुमात्रा) में सर्व प्रथम ईश्वर वर्मा ने पदार्पण किया था और क्रमशः वहाँ उपनिवेश बना।

सुमात्रा के लेख

अरब या चीनी यात्रियों के विवरण के अतिरिक्त सुमात्रा के अभिलेख उस देश को सुवर्ण द्वीप या सुवर्ण भूमि कहते हैं (सुवर्णभूमि से मलय प्रायद्वीप तथा समीपवर्ती सारे द्वीप समूह का बोध होता था।) उस द्वीप के लेखों में भी विजय राज्य की चर्चा की गई है। सारे अभिलेख संस्कृत में लिखे गए हैं और लिपि के विचार से पाँचवीं सदी के उत्तर भारत की लिपि से मिलते हैं। विजय राज्य के इष्टदेव भी विजय की प्रार्थना से लेख आरम्भ हुए हैं और उस संरक्षक के विरोधी लोगों के दण्ड का भी विधान किया है। लेखों में वर्णन आता है कि श्री विजय नाम का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्थान संस्कृत विद्या का केन्द्र हो गया था। उसी में श्रीविजय राजा का विजय और वैदेशिक नीति की भी चर्चा है। दो संस्कृत लेखों में एक बौद्ध राजा जयसिंह का विवरण करता है।

मलय के संस्कृत लेख भी बुद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन करते हैं। सभी संस्कृत लेख पाँचवीं सदी की गुप्त-लिपि में अंकित हैं। इससे प्रमाणित हो जाता है कि पाँचवीं सदी तक मलय में भारतियों का उपनिवेश स्थापित हो गया था। प्रयाग स्तम्भ लेख में समुद्रगुप्त द्वारा समतट के भू-भाग पर अधिकार करने का वर्णन आता है। वहाँ के प्रसिद्ध बन्दरगाह ताम्रलिप्ति (वर्तमान तामलुक) से भारत-वासी मलय गए होंगे और वहाँ उपनिवेश बनाकर लेख खुदवाया होगा। एक लेख में वर्णन है कि कर्ण सुवर्ण से (उत्तरी बंगाल) बुधगुप्त नामक नाविक मलय प्रायद्वीप में गया था। मलय के समस्त संस्कृत लेख शिलाखण्ड या स्तम्भ पर अंकित हैं। एक में "महानाविक बुधगुप्तस्य रक्तमृतिका वास्तकस्य" (कर्णसुवर्ण = रक्तमृतिका का निवासी नाविक बुधगुप्त का--ज० ए० सो० व० ९४ पृ० ७१) का उल्लेख है। सुवर्णभूमि के लेख तथा प्रतिमाएं ब्राह्मण धर्म तथा दर्शन के विस्तार का ज्ञान कराती हैं। लेखों के काव्यमय लिखने की शैली यह घोषित करती है कि वहाँ के निवासी भारतीय साहित्य से परिचित थे। नालंदा का एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान धर्मपाल भी आठवीं सदी में सुवर्णभूमि में गया था। हिन्दू तथा महायान का विशेष प्रचार था और भारतीय परम्परा तथा सांस्कृतिक विचारधारा का प्रवाह भलीभाँति हो गया था।

दक्षिण पूर्व एशिया में उपनिवेश स्थापित हो जाने पर भारतीय सामाजिक रीति-रिवाज का प्रचार हुआ। स्वभावतः उन द्वीप समहों में हिन्दू धर्म व साहित्य की ओर लोगों का ध्यान गया। जावा में बौद्ध तथा

जावा के अभिलेख

हिन्दू मत का ज्ञान वहां के लेखों से होता है जो संस्कृत में लिखे गए थे। संस्कृत का विशेष प्रभाव जावा पर दिखलाई पड़ता है। दूसरी सदी से ही भारतीय जावा में जाते रहे। फाहियान ने हिन्दू धर्म के प्रचार का विशद वर्णन किया है। पांचवीं सदी से वहां लेख भी अंकित हुए जिनकी भाषा संस्कृत है तथा उत्तरी भारत की लिपि में उत्कीर्ण किए गए थे। संस्कृत लेख छंदबद्ध, काव्यशैली में लिखे गए थे। जावा के प्राचीन "कवि भाषा" में भी रामायण तथा महाभारत से सम्बन्धित काव्य मिलते हैं, जो कालिदास के काव्य से प्रेरित हुए हैं।

जावा के लेखों में ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म का वर्णन है। उनमें महायान तथा वज्रयान मतों का विवरण मिलता है। एक लेख के चार पंक्तियों में बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धर्म का प्रसिद्ध पद मिलता है:—

ये धम्मा हेतु प्रभवा
तेषाम् हेतुं तथागतो ह्यवदत्
तेषां च यो निरोध,
एवं वादी महाश्रमण:

ब्राह्मण धर्म के लेखों में महादान का वर्णन आता है। एक स्थान पर शासक द्वारा गोशत सहस्र दान करने का उल्लेख है [षोड़श महादान का विवरण भारतीय अभिलेखों में मिलता है जिसमें तुलापुरुषदान के साथ सहस्र गाय दान को भी महादान कहते हैं] दूसरे लेखों में विष्णुपद की पूजा की चर्चा की गई है। जावा के राजा पूर्ण वर्मन के राज्य काल में संस्कृत साहित्य का अध्ययन होता था। उसके निम्न लिखित लेख में भारतीय तिथि तथा पर्व का उल्लेख मिलता है।

श्री मान्दाता कृतज्ञो नरपतिरसमो य⌒पुरातारुमाया
नाम्ना श्री पूर्णवर्मा प्रचुर=रिपु-शराभेद्य विख्यात वर्मा
(चक्रवर्ती-इंडिया एण्ड जावा पृ० २५)

नरेन्द्र-ध्वज-भूतेन श्रीमता पूर्णवर्मणा
प्रारभ्य फाल्गुन मासि खाता कृष्णाष्ठमी तिथौ
चैत्र शुक्ल त्रयोदश्याम् दिन: सिद्धकविङ्गकैः।

× × ×

ब्राह्मणौर्ग्गोसहश्रेण प्रयाति कृत दक्षिण:
[वोजेल—दि एरलीयस्ट इन्स क्रप्शन्स आफ जावा पृ० ३२]

भारतीय अभिलेखों में शैलेन्द्रवंश की चर्चा

जावा के शैलेन्द्र वंश का इतिहास अभिलेखों में ही सुरक्षित है। इस वंश के राजा ने जावा, सुमात्रा तथा मलय पर अधिकार कर लिया था। आठवीं सदी के सिगोर लेख में बौद्ध धर्म सम्बन्धी देवी देवताओं का उल्लेख यह वतलाता है कि शैलेन्द्र वंशी राजा बौद्ध थे। उन लोगों ने तीन बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया, तारा की प्रतिमा स्थापित की और संघ के लिए कई ग्राम दान में दिये। कलसन के लेख में इस तरह के दान का विवरण प्राप्त हुआ है। उस वंश के प्रसिद्ध राजा बालपुत्र देव ने नालंदा में दो विहार तैयार कराये थे और उसके रक्षण तथा संस्कार के लिए पालवंशी राजा देवपाल देव से पांच ग्राम दान देने के लिए निवेदन किया था। देवपाल ने उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और स्वयं बौद्ध होने के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पटना तथा गया जिले के पांच गांव दान में दे दिये। नालंदा के ताम्रपत्र से उनके नाम नन्दीवनाक, मणिवाटक, नाटिका, हस्तिग्राम तथा पालामक–मिलते हैं (ए० इ० भा० १७पृ० ३१०) इसी प्रकार का वर्णन चोलप्रशस्ति में भी पाया जाता है। लीडेन में एक्कीस ताम्रपत्र सुरक्षित हैं जिनका अधिक अंश संस्कृत में लिखा है तथा कुछ अंश तामिल में। संस्कृत अंश में वर्णन आता है कि शैलेन्द्र वंश के राजा मार बिजयो तुंगवर्मन ने नागपट्टन में (आंध्रप्रदेश) बिहार तैयार किया था और उसके व्यय निमित्त राजराजा राजकेशरी वर्मन ने संघ को ग्राम दान किया। राजेन्द्र चोल ने उस अग्रहार की प्रतिष्ठा के लिए ताम्रपत्र खुदवाया था। इस तरह पता लगता है कि आठवीं सदी से ११वीं सदी तक शैलेन्द्र वंशी (जावा के शासक) राजा भारतीय नरेश से सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार रखते रहे। बंगाल के पाल राजा देवपालदेव तथा राजराजा ने उनकी प्रतिष्ठा को स्थायी रखने के लिए ग्राम दान किया था। जावा के निम्नलिखित शिला लेख के अध्ययन से पता चलता है कि भारत तथा जावा में दान का उद्देश्य एक ही प्रकार का था। पूजा के लिए भूमि का दान किया गया था। इसके अतिरिक्त यज्ञ तथा धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन के लिए भी व्यय दिया जाता था। भारतीय दान की शैली से जावा का दानपत्र समानता रखता है। पूर्वी जावा के एक शिलालेख (७६० ई०) में अगस्त ऋषि की काले स्तर की प्रतिमा स्थापित करने का विवरण पाया जाता है। अगस्त ऋषि की परम्परा उत्तर भारत से दक्षिण होकर स्यात् जावा पहुंच गई थी। इसलिए लेख में पाषण मूर्ति की स्थापना का वर्णन किया गया है।

आज्ञाप्य शिल्पिनमरं स च दीर्घदर्शी कृष्णाद् भूतोपसमयीं नृपतिः चकार।
राज्ञागस्तः शकाब्दे नयन वसुरमे मार्गशीर्षे च मासे
आर्द्रस्थे शुक्रवारे प्रतिपद दिवसे पक्षसन्धौ ध्रुवे।
ऋत्विग्भिः वेदविद्भिः यतिवर सहितैः स्थापकाद्यैः सभौमैः
क्षेत्रः गावः सुपुष्पा महिषः गणयुता दासदासी पुरोगा
दत्ता राज्ञा महर्षिप्रवर चरू हविस्स्नान सम्वर्धनादि
वंश्या नृपस्य रुचिताः यदिवदत्तिवृद्धौ आस्तिक्वशुद्ध मतयः पूजा,
दानाद्यपुण्य यजनाद्ध ययनादिशीलाः रक्षन्तु राज्यं (मखिलं) नृपतिः यथैवम्।

राजेन्द्र चोल से प्रेम पूर्ण व्यवहार स्थायी न रह सका और शैलेन्द्र नरेश और चोल राजा में युद्ध छिड़ गया। तिरवालंगाडु के संस्कृत प्रशस्ति में इस युद्ध का विवरण पाया जाता है (सा० इ० इ० भा० ३० हि० ३ पृ० ३८३)। बंगलोर के मेलूर मंदिर के लेख में राजेन्द्र चोल के समुद्र पर विजय का वर्णन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मिलता है (इ० कर० भा० ९ पृ० १४८-५२)। तंजोर लेख (१०३० ई०) में वर्णन है कि राजेन्द्र चोल का जहाजी बेड़ा सुमात्रा के पूर्वी भाग, मलय का भाग तथा श्री विजय पर अधिकार कर लिया था। लीडेन के छोटे लेखों में शैलेन्द्र वंश का इतिहास तथा जावा, मलय तथा सुमात्रा पर अधिकार का वर्णन मिलता है। दसवीं सदी के ताम्रपत्रों में (चांगल तथा केडु) वहां के शासकों के नाम उल्लिखित हैं। चांगल के एक शिलालेख में हिन्दू देवता शिव, ब्रह्मा, विष्णु की प्रार्थना बारह श्लोकों में मिलती है। यह निश्चित कहना कठिन है कि कलिङ्ग या आंध्र देश से भारतीय जावा में जाकर उपनिवेश स्थापित किए परन्तु मध्य तथा पूर्वी जावा के ताम्रपत्रों से पता लगता है कि अगस्त ऋषि के नाम पर एक मंदिर मध्य जावामें निर्मित हुआ था। इस आधार पर दक्षिण भारत में प्रचलित अगस्त्य की जन श्रुति का प्रसार जावा में हो गया था। चांगल के लेख में अगस्त्य के पूजा का वर्णन आता है। लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संजय ने दक्षिण भारत से अगस्त्य पूजा को जावा में फैलाया था। पूर्वी जावा के संस्कृत लेखों से शैव मत का प्रसार भी ज्ञान होता है।

भारत के प्राचीन साहित्य तथा अभिलेखों में सुवर्ण भूमि से मलाया तथा बर्मा का बोध होता है। महावंश में सोम तथा उत्तर द्वारा उपनिवेश स्थापित करने का वर्णन आया है। बर्मा के लेख तथा मलया की प्रशस्तियां चौथी तथा पाँचवीं सदी में संस्कृत में लिखी गई जिनमें भारतीय लेखों के सदृश दान का वर्णन किया गया है। बर्मा के लेख बौद्ध धर्म से सम्बन्धित होने के कारण "यौधम्मा हेतु प्रभवा" के मंत्र सेप्रारम्भ होते है।

बर्मा तथा मलाया के संस्कृत लेख

बोर्नियो में चौथी सदी से हो उपनिवेश स्थापित हो गया था और भारतीय संस्कृति का विस्तार गुप्तयुग में वहाँ हुआ। बोर्नियो के अभिलेख इसके प्रमाण हैं और संस्कृत लेख मूर्तियों के आधारशिला अथवा स्तम्भ (यूप) पर खोदे गए थे। एक यूपप्रशस्ति में मूलवर्मन राजा के धार्मिक कार्यों का वर्णन मिलता है। लेख में यज्ञ तथा कल्पवृक्ष के महादान का विवरण है। लेख निम्न प्रकार है:—

बोर्नियो तथा बलि के लेख

श्री मूलवर्मा राजेन्द्रो यस्ट्वा वहु सुवर्णकम्
तस्य यसस्य यूपोऽयम् द्विजेन्द्रैस्सम्प्रकल्पितः।

× × × ×

दानं पुण्यतमे क्षेत्रे यद्दत्तम्व प्रकेश्वरे
द्विजातिभ्यो ग्निकल्पेभ्य। विङ्श तिङ्गो सहस्रिकम्
(ज० रा० ए० सो० लि० भा० १ पृ० ३८)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बालि एक ऐसा द्वीप है जहां आज भी भारतीय संस्कृति की लहर बहती है। वहां पर भी संस्कृत भाषा में लेख उपलब्ध हुए हैं। उनमें राजा धर्मादमन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दसवीं सदी के लेखों में वहां का इतिहास तथा भारतीय संस्कृति की चर्चा सुरक्षित है।

हिन्द-चीन के संस्कृत लेख

हिन्द-चीन के विभिन्न प्रदेशों से––अनाम, कम्बोडिया आदि स्थान से––जितने लेख प्राप्त हुए हैं उन सब की भाषा संस्कृत है। चम्पा (अनाम) की प्रशस्तियों का अध्ययन यह बतलाता है कि संस्कृत वहां की राजभाषा थी और सब लेख ब्राह्मी में लिखे गए थे। सम्भवतः तीसरी सदी से वहां संस्कृत भाषा और ब्राह्मी में लेख मिलते हैं। भारतीय धर्म तथा साहित्य के प्रचार में संस्कृत का ही सहारा था और इस की प्रधानता हो गई। उन लेखों की सहायता से अनाम में प्रचलित साहित्य (रामायण तथा महाभारत) तथा हिन्दू देवी देवताओं की पूजा का ज्ञान हो जाता है। शिव तथा विष्णु के पूजा का विवरण मिलता है। चम्पा के अन्य लेखों में त्रिदेव (ब्रह्मा विष्णु व महेश) का नाम आता है। एक संस्कृत लेख इन की प्रार्थना से प्रारम्भ होता है––नमो महेश्वरम् उमाश्च प्रति ब्रह्माणं विष्णु-मेव च नमो। (मजूमदार––चम्पा ३ पृ० ४)

चम्पा के शासक विक्रान्त वर्मा का ६५३ शक का लेख भी ऐसी ही स्तुति से आरम्भ किया गया है।

जयति जित मनोजो ब्रह्मविष्णवादि देव
प्रणतपद-युगाब्जो निष्फलोऽप्यष्ट मूर्तिः
त्रिभुवनहित हेतुः सर्व संकल्पहारी
पर परुष इह श्री शानदेवोऽयत्राधः

सब से विचित्र बात यह है कि चम्पा के चौथी सदी के एक शिलालेख में (चो दिन–cho–dinh) मनुष्य बलि का वर्णन किया गया है। महाराज भद्रवर्मन ने ऐसा कहा कि मैं तुम्हें अग्नि को समर्पित करूंगा (लेख न०२) उस भावना के साथ एक दास को यूप से बांधने का विवरण मिलता है। सम्भवतः इस ढंग की बलि का क्रम प्राचीन भारत से अनुकरण किया गया होगा जिसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण (१३, ६, १, २) आपस्तम्ब (२०, २४, २) तथा कात्यायन (२१, १) सूत्रों में मिलता है [मजूमदार-चम्पा न०२,३] वहां के निवासी चाम जाति के लेखों में भारतीय दार्शनिक विचार का उल्लेख किया गया है। दक्षिणी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनाम के एक संस्कृत लेख में मारवंशी राजा के उत्तराधिकारी नरेश के कार्यों की चर्चा छंदबद्ध श्लोंको में की गई है।

श्री मार राजकुलवंश विभूषणेन
श्री मार लोक नृपते कुल नन्दनेन
आज्ञापितं स्वजन सज्जन संध मध्ये
वाक्यं जाहितकरं करिणोभिः वरेण

(ज० ग्र० इ० सो० ६ पृ० ५७)

चम्पा के दूसरे राजा इन्द्रवर्मा प्रथम (७९९ई०) ने शिव प्रतिमा की स्थापना की थी जिसका नाम भद्रेश्वरस्वामी रक्खा गया था। उस शासक ने भगवान शिव के लिए स्थायी रूप से (अक्षयनीवी) भूमि दान में दी। उस भाग से पैदावार का छठा भाग जो राजकीय कर के रूप में लिया जाता था वह घटा कर दसवाँ भाग कर दिया गया।

"भूमि दत्ता--जदपद मर्य्यादा षड्भागेपि अस्माकं
स्वामिना दशभागेनानुगृहीता देवस्य देय इति [वही]

उस लेख के अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि भारतीय दान पत्रों की शैली में चम्पा के दान लेख उत्कीर्ण किए गए थे। राजवंश वर्णन के बाद इन्द्रवर्मा द्वारा दान का वर्णन है। अन्त में धर्मश्लोक भी उल्लेखित है जो भारतीय दान पत्रों से भिन्न है।

तस्मै भगवते सकल लोकहित कारणाय श्रीन्द्रभद्रेश्वरा
ये दमिति स भगवान श्रीमानिन्द्रवर्मा जजंकोष्ठागारे
शिव यज्ञज्ञेत्रद्वयं शिविशिखा गिरि प्रदेशं भक्तया
शुद्धेन मनसेव दत्तवानिति।
इन्द्रभद्रेश्वर स्येव सर्वद्रव्यं महीतले
येरक्षन्ति रमन्त्ये ते स्वर्गे सुरगुणैस्सदा
लुब्धेन मनसा द्रव्यं यो हरेत् परमेश्वरात्
नरकात् न पुनर्ग च्छेत् न चिरन्तु स जीवति।

इसी चम्पा नरेश का दूसरे दानपत्र (८०१ ई०) में अग्रहार (कोश, कोष्टागार, दासदासी, गो महिष-क्षेत्रादि का दानपत्र) तथा राजवंश का ऐसा सुन्दर वर्णन मिलता है जैसे कोई गहड़वाल या पाल वंशी ताम्रपत्र का अनुकरण हो। धर्म-श्लोक को स्पष्ट कर गद्य में उल्लिखित किया है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ये केचित् साधुपुरुषाः स्वपुण्यपरिरक्षार्थं ते तानि सर्व्वाणि
संरक्ष्य दीर्घायुषा भवन्तु सर्वैः कुल सन्तानै स्स्वर्गे
वसन्तु———। ये केचित् पापपुरुषाः नरक निर्भयाः
तानि द्रव्याणि वा हरन्ति नाश्यन्ति तेह्यल्पायुषा
वन्तु नरके पतन्तु, सर्वैः सप्तमकुलैः यावत्
सूर्या चन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्र तारा गणस्सन्ति
तावत् नरके वसन्तुस्म।

कम्बोज (कम्बोडिया) के संस्कृत लेखों से पर्याप्त विषयों पर प्रकाश पड़ता है। उन प्रशस्तियों में दान का विवरण के साथ दानग्राही ब्राह्मणों के विद्या तथा ज्ञान का वर्णन मिलता है। उनमें वेद वेदांग में पारंगत ब्राह्मणों का उल्लेख है। रामायण तथा महाभारत का पठन पाठन भी ब्राह्मण करते थे। हिन्दू शास्त्रों के साथ बोद्धधर्म ग्रंथों का भी वे ज्ञान रखते थे। अभिलेखों में इस बात पर बल दिया कि राजा तथा मंत्री गण धर्मशास्त्र का पूर्ण रूप से अध्ययन करें। ९वीं सदी के कम्बोडिया की प्रशस्तियों में भारतीय षड्दर्शन का नाम (न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक तथा वेदान्त) पृथक पृथक मिलता है। कम्बोज के इतिहास में ८वीं तथा १०वीं सदियों में संस्कृत की अभिवृद्धि हुई और अधिक संख्या में संस्कृत लेख भी खोदे गए थे (मजुमदार—हिन्दू-कालोनीज इन फारईस्ट पृ० १८२) संस्कृत के लेखों का विवेचन यह स्पष्टतया बतलाता है कि कम्बोडिया में छंद तथा अलंकार शास्त्र का ज्ञान लोगों को पूर्ण रीति से था, इसीलिए लेख काव्यमय शैली में लिखे गए। उसमें दार्शनिक विचार तथा पौराणिक आख्यानों का विशद विवेचन पाया जाता है। एक लेख में कम्बोज नरेश यशोवर्भन द्वारा महाभाष्य पर लिखित टीका का उल्लेख है जिसमें पाणिनि अष्टाध्यायी सम्बन्धी बातें लिखी हैं। वहां के अभिलेखों में मनु तथा कालिदास के श्लोक उद्धृत किए गए हैं। यशोवर्मन के लेख में वाकाटक नरेश प्रवरसेन के सेतुबन्ध काव्य की चर्चा की गई है। इस प्रकार अभिलेखों का अध्ययन संस्कृत की उन्नत अवस्था तथा पूर्ण काव्यमय शैली का परिज्ञान कराता है।

जहां तक धार्मिक विषयों का प्रश्न है, कम्बोडिया के लेखों में धार्मिक क्रिया तथा नियमों का विवेचन मिलता है। देवता की पूजा तथा दार्शनिक पद्धति का भी विवरण है। दान का वर्णन तो साधारण घटना है। मनुष्य जीवन के गूढ़ रहस्य तथा बाहरी धार्मिक कर्त्तव्यों का विवेचन लेखों में किया गया है। संसार की अनित्यता, मुक्ति, ब्रह्म में विलीन होना, तप, दया आदि बातों की चर्चा सुन्दर शब्दों में की गई है (मजुमदार-कम्बोज इन्सक्रिपशन्स) नवीं सदी के शासक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिवसोम ने अपने समकालीन शंकर के बिचार तथा धार्मिक भावना का उल्लेख किया है। कम्बोज के लेखों में एक विचित्र प्रकरण मिलता है जिसमें आश्रम-स्थापना की बातें लिखी हैं। कम्बोडिया के संस्कृत लेख यह बतलाते हैं कि शासक तथा प्रजावर्ग आश्रम स्थापना में अभिरुचि रखते थे। यशोवर्मन ने अकेले सौ आश्रमों की स्थापना की। वह स्थान ध्यान चिन्तन तथा मनन के के लिए उपयुक्त समझा गया था। इस कारण इसकी स्थापना के साथ दान भी दिया गया जिसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन अभिलेखों में किया गया है। इन प्रशस्तियों का अध्ययन भारतीय संस्कृत के प्रचार का (ज्ञान) तथा उसके बाहक संस्कृत लेखों के महत्व की जानकारी कराता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्द चीन के संस्कृत अभिलेख वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रसार तथा उसकी वृद्धि और भारत से सदियों तक उन प्रदेशों का सम्बन्ध बतलाते हैं।

नेपाल, तिब्बत तथा मध्य एशिया

दक्षिण पूर्व एशिया के अतिरिक्त उत्तर पश्चिम के मार्ग से भी भारतीय संस्कृति का प्रसार मध्य एशिया तक हुआ। अफगानिस्तान को तो भारतीय सीमा में यथा समय हम पाते हैं इसलिए वहां भारत का प्रभाव स्वाभाविक है। मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रचार व्यापारियों के हाथों हुआ। वहां भारतीय उपनिवेश स्थापित हुए। चीनी यात्रियों के विवरण से पता चलता है कि भारतीय धर्म को प्रसार कर वहां संघ कायम किए गए। उन विहारों में बौद्धभिक्षु रहते तथा भारतीय साहित्य का अध्ययन करते थे। मध्य एशिया के भोजपत्रों पर जो कुछ लिखा जाता था वह खरोष्ठी तथा मिश्रित भाषा में। उस मरु भूमि में लेख नहीं मिलते परन्तु प्राप्त ग्रंथ, गुहा चित्र, विहार के भग्नावशेष से भारतीय संस्कृति का मूल्य आंका जा सकता है।

नेपाल का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध सदा से रहा है। भारतीय शासक वहां राज्य करते रहे हैं। तीसरी सदी में लिच्छवी लोगों का नेपाल में शासन था जिनके लेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी में मिले हैं। चांगू-नारायण का स्तम्भ लेख इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इसकी भाषा संस्कृत है तथा चौथी पांचवीं सदी के ब्राह्मी में लिखा गया है। इसमें भारतीय सम्वत् तथा मास तिथि का उल्लेख है (इ० ए० भा० ९ पृ० १६३)।

सातवीं सदी के पश्चात् तिब्बत का इतिहास हमें ज्ञात है। नेपाल से ही वहां भारतीय संस्कृति, धर्म आदि का (वज्रयान का) प्रसार हुआ, जिस के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्ध से भारतीय साहित्य वहां फैला। तिब्बत-लिपि गुप्त-लिपि से ही निकली है जो मैथिली से अधिक समीप है। (ए० इ० भा० ११ पृ० २६७)

विदेशियों का भारतीय करण

वृहत्तर भारत की चर्चा समाप्त करने से पूर्व भारतीय लेखों के आधार पर यह विवरण उपस्थित किया जा सकता है कि प्राचीन समय में विदेशियों का क्रमशः भारतीय करण हो गया। बाहर से लोगों ने विभिन्न धर्म तथा परिस्थिति को लेकर भारत में प्रवेश किया। कालान्तर में उन्होंने भारतीयता को अपनाया। ईसवी पूर्व सदियों में इसके कई उदाहरण मिलते हैं। विदिसा (मालवा) के समीप यूनानी दूत हेलियोदोरस का जो स्तम्भ लेख मिला है उसमें यूनानी दूत हेलियोदोरस भागवत शब्द से विभूषित किया है। इससे पता चलता है कि वह वैष्णव मतानुयायी हो गया था। इसलिए विष्णु मंदिर के सम्मुख गरुड़ ध्वज स्थापित किया। इतना ही नहीं अपलदतस तथा पंतलेव नामक यूनानी शासक भारतीय धर्म से प्रभावित हुए थे। ईसवी सन् के आरम्भ में शक राजा वीमकदफिस भी शैव हो गया और भगवान शिव की मूर्ति को अपने सिक्कों पर स्थान दिया था। वह अपने को 'महीश्वरस्य' भी लिखा था। कुषाण नरेश के सामंत भी पश्चिमी भारत में भारतीय संस्कृति के अनुगामी हो गये और वैदिक कर्मकाण्ड को अपनाया था। नासिक के लेख में नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने ब्राह्मणों को ग्राम दान दिया तथा नदियों के घाट को पुण्यतर (निःशुल्क) कर दिया। उसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणों के कन्या-दान का सारा व्यय ऋषभदत्त ने दिया था। भारतीय संस्कृति में इसे एक महादान मानते थे तथा ब्राह्मण कन्या के विवाह के लिए द्रव्यदान करना अत्यन्त पुण्य समझा जाता था। पद्म पुराण में वर्णन आता है कि ऐसे कार्य से स्वर्ग की प्राप्त होती थी (ब्रह्मखण्डअध्याय २४)

सालङ्कार द्विज श्रेष्ठ कन्यां यच्छति यो नरः
स गच्छेत् ब्रह्म सदनं पुनर्ज्जन्म न विद्यते।

विदेशी शक लोगों ने सीथियन नाम छोड़ कर भारतीय नामों को अपनाया। घसमोटिक के वंशज रूद्रसिंह कहलाए तथा वीम के उत्तराधिकारी वासुदेव के नाम से विख्यात हुए। खरोष्ठी तथा प्राकृत के स्थान पर ब्राह्मी तथा संस्कृत को क्रमशः स्थान दिया गया। अतएव संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न भारतीय लेखों का अध्ययन यह सूचित करता है कि विदेशियों ने किस प्रकार भारतीय संस्कृति को अपनाया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस सम्बन्ध में भागवत का श्लोक प्रस्तुत किया जा सकता है कि विदेशी जातियां वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गई ।

किरात–हूणांध्र–पुलिंद–पुल्कसा
आभीर–कङ्का यवना खशादयः
येऽन्ये च पाया यदुपाश्रमाश्रमाः
शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः

(भागवत, स्कन्ध २, अ० ४, श्लो० १८)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट—अ

पुरातत्व सम्बन्धी चर्चा

इस विषय की चर्चा करने से पूर्व यह उचित है कि पुरातत्व के कार्यारम्भ का इतिहास हम जान लें। सन् १८६२ की बात है कि भारत में पुरातत्व विभाग का श्रीगणेश हुआ था। परन्तु इससे पहले भी इस देश में सांस्कृतिक विषयों पर अनुसंधान तथा अध्ययन का काम हो रहा था। सन् १७८३ में कलकत्ता के सुप्रीमकोर्ट के जज सर विलियम जोन के मस्तिष्क में सर्व प्रथम यह बात आई कि भारतीय साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन के निमित्त एक संस्था स्थापित करनी चाहिये। दूसरे वर्ष ही यानी १७८४ ई० में एशियाटिक सौसाइटी का जन्म हुआ जिसकी स्थापना में प्राच्य विद्या के अनेक प्रेमियों ने सहायता की थी। सोसाइटी के द्वारा एक पत्र प्रकाशित होने लगा जिसमें भारतीत इतिहास कला, विज्ञान आदि-आदि विषयों पर लेख छापे जाते थे। उसी में प्राचीन भारतीय खण्डहरों का भी विवरण छपने लगा। साहित्य के साथ प्रशस्तियों तथा मुद्राओं के अध्ययन की ओर भी विद्वानों का ध्यान गया। इसी अध्ययन के प्रसंग में १८३७ के समीप जेम्स प्रिसेप नामक विद्वान् ने ब्राह्मी लिपि का स्पष्टीकरण किया, जिस से पूर्व के लोगों के लिये ब्राह्मी एक समस्या थी। इसी लिपि में भारत के प्राचीनतम लेख खुदे हैं जिन्हें पढ़ने के लिये उद्योग किया जा रहा था। उसी के समकालीन दूसरी लिपि खरोष्ठी में भी प्रशस्तियाँ उत्कीर्ण की गई थी। उत्तर पश्चिमी भारत में इस का प्रचार था जिस लिपि का स्पष्टीकरण ब्राह्मी के बाद किया गया।

सन् १८४८ में 'कनिंघम' जो ब्रिटिश सेना के इंजीनियर के पद पर नियुक्त होकर भारत आये थे; ने सरकार से आग्रह किया कि भारतवर्ष में पुराने खडहरों तथा प्रचीन स्थानों के सम्बन्ध में अन्वेषण करने के लिये एक विद्वान पदाधिकारी की नियुक्ति हो। वह व्यक्ति भारत के धर्म कला तथा अन्य पुरातत्व विषयों का जानने वाला हो ताकि वह कार्य को शीघ्र बढ़ा सके। उस समय कम्पनी के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

डायरेक्टरों ने कनिंघम की बात अनसुनी कर दी। १८५७ ई० में भारत में क्रान्ति हुई और भारत का शासन ब्रिटिश सत्ता के हाथों आ गया। १८६० में भारत के सर्व प्रथम गवर्नर जनरल व वायसराय लार्ड केनिंग ने लोगों के आग्रह पर उत्तरी भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना की जिसे प्राचीन स्थानों तथा ध्वसांव-शेष के संरक्षण का कार्य सौपा गया। कनिंघम इस विभाग के डायरेक्टर चुने गये। उन्हें आदेश दिया गया कि वास्तविक जनश्रुति तथा ऐतिहासिक आधार पर ऐसे स्थानों की सूची तैयार करें जिन पर सरकार का ध्यान होना चाहिये। कनिंघम चार वर्षों (१८६२-१८६५ ई०) तक कार्य करते रहे किन्तु उत्तर प्रदेश तथा बिहार प्रान्तों के बाहर जाने का उन्हें अवसर न मिल सका। दूसरे वर्ष ही इस पद को अनावश्यक समझ कर समाप्त कर दिया गया जिसके कारण सारे भारत में हल्ला मचा। भारतीय तथा अंग्रेज विद्वानों ने इस विभाग की उपयोगिता पर जोर दिया। उस उत्तेजना का फल यह हुआ कि १८१७ ई० में वायसराय लार्ड मेयो ने पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर का पद स्थायी कर दिया ओर कनिंघम सर्वोच्च पदाधिकारी नियुक्त किये गये। कनिघंम ने अपने तीन सहायकों के साथ उत्तरी भारत के सम्बन्ध में सारे ऐतिहासिक विवरण एकत्रित किये और सातवीं सदी के चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा कथित स्थानों का पहचान किया। उसके कार्य का वास्तविक मूल्यांकन नहीं हो सकता। कनिघंम ने थोड़े ही समय २१ जिल्दों में अपना पुरातत्व सम्बन्धी वृतान्त तैयार किया था। उसने प्रशंसनीय कार्य कर कई अमूल्य ग्रंथों की रचना की जिस में अशोक की प्रशस्तियाँ और 'भारत का प्राचीन भूगोल' का नाम लिया जा सकता है। कार्य का मूल्य बढ़ने लगा और चार वर्षों के बाद पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत के लिये जेम्स वर्गेस इस विभाग के प्रधान अधिकारी नियुक्त किये गये।

पुरातत्व विभाग के अधिकारी प्राचीन खण्डहरों तथा टीलों के सम्बन्ध में सरकार को सूचना देते रहे जिसका संरक्षण प्रांतीय सरकार द्वारा होता था। इस कार्य में जन कार्य विभाग समुचित प्रबन्ध न कर पाता जिस कारण संरक्षण कार्य गिरता जा रहा था। १८७८ ई० में लार्ड लिटिन का ध्यान इस दोष की तरफ गया और तीन वर्षों के पश्चात् प्राचीन इमारतों की देख-रेख के लिये एक अधिकारी नियुक्त हुआ जो संरक्षण सम्बन्धी वृतान्त तथा कार्य शैली का लेखा प्रांतीय सरकार के सम्मुख उपस्थित करता रहा। केन्द्रीय सरकार का भी समुचित ध्यान संरक्षण की ओर था और वह प्रान्त को इसके लिये आर्थिक सहायता किया करती थी।

१८८५ ई० में जनरल कनिघंम के अवकाश ग्रहण करने पर जेम्स वर्गेस सारे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारत के पुरातत्व विभाग के प्रमुख अधिकारी बनाये गये। उनके कार्य में अनुसंधान, संरक्षण तथा पैमाइश करना भी सम्मिलित था। उसी समय से प्रशस्तियों के स्पष्टीकरण के लिये हुल्स की नियुक्ति हुई। वर्गेस इमारतों के अध्ययन में जुटे रहे और तीस वर्षों में उसने अनेक मूल्यवान पुस्तकें लिख डालीं। ब्रिटिश सरकार की नीति स्थिर न हो पाई थी इसलिये पुरातत्व विभाग का भविष्य कभी उज्जव और कभी अंधकारमय हो जाता था। भारत में कई प्रांतों में पैमाइश का भी काम बन्द हो गया था। संरक्षण तथा अनुसंधान की तो कोई कथा ही नहीं। १८९९ ई० में भारतीय सरकार ने एक नयी व्यवस्था चलाई जिसमें सारे देश को पांच भागों में बांट दिया गया—(१) पंजाब (२) मद्रास (३) उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश (४) बम्बई (५) बंगाल और आसाम। इन पांच केंद्रों में जो अधिकारी रहे वह प्रान्तीय सरकार को इमारतों तथा टीलों के संरक्षण विषय में केवल सलाह देते थे। केन्द्र की सरकार ने प्रशस्तियों के प्रकाशित करने के लिये एक पत्र (इपिग्राफिया इंडिका) निकाला जिसका सम्पादन हुल्स को सौंपा गया। इस विभाग के कार्य ज्ञानवर्धक थे। १८९९ में लार्ड कर्जन ने भारत पहुंचते ही यह घोषणा की कि पुरातत्व विभाग बढ़ाया जायगा। और अध्ययन तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलेगा। बंगाल एसियाटिक सोसाइटी के समक्ष भाषण करते समय वायसराय ने कहा कि प्राचीन इमारतों का संरक्षण सरकार का मुख्य कर्त्तव्य है। वह प्राचीन इमारतों का संरक्षण करे। विशाल इमारतों तथा सुन्दर कलात्मक मंदिरों को नष्ट होने से बचाना सरकार के अतिरिक्त संस्थाओं का भी कर्त्तव्य हो जाता है क्योंकि ये ऐतिहासिक भवन तथा देवालय पुराने राज्य वंशों के सम्बन्ध में ज्ञान की अभिवृद्धि करते हैं। लार्ड कर्जन ने विश्वास दिलाया था कि भविष्य में पुरातत्व के कार्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती और सरकार अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकती। इस कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर देखना होगा और प्रान्तीय सरकार की जिम्मेदारी पर छोड़ा नहीं जा सकता। सन् १९०१ का शुभ वर्ष था जब भारत सचिव ने वायसराय के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पुरातत्व विभाग के डायरेक्ट जनरल का पद स्थायी कर दिया गया। उस समय एक लाख रुपया प्रति वर्ष काम के लिय निश्चित हुआ। सरकार ने १९०२ में सरजान मार्सल को डायरेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त किया। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त रियासतों में भी इमारतों के संरक्षग का कार्य आरम्भ हो गया और कई स्थानों में पुरातत्व सम्बन्धी काम प्रारम्भ कर दिये गये।

आरम्भ में इस कार्य में विशेष प्रगति न हो सकी। मार्शल अन्य पदा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धिकारियों से साथ प्रत्येक प्रान्त की आवश्यकता की जांच करने लगे। प्राचीन खण्डहर तथा भवनों की सुरक्षा की ओर उन लोगों का समुचित ध्यान दिलाया, परन्तु पर्याप्त धन तथा कार्यकर्त्ताओं के अभाव में संतोषप्रद कार्य न हो पाया। १९०४ में विधान सभा ने प्राचीन इमारतों का संरक्षण बिल पास कर दिया जिससे पुरातत्व विभाग में कुछ जान आ गई। उस समय के शिक्षा विशारद सर आरेस स्तीन भी अस्थायी रूप से इस विभाग से सम्बन्धित कर लिये गये। सबसे बड़ी बात यह थी कि भारतवासियों को पैसा देकर पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषण के लिये आमंत्रित किया गया। १९०६ से इस विभाग का स्थायी रूप से संगठन हुआ और डाइरेक्टर की सहायता के लिये सर स्टेन कोनो को प्रशस्तियों के सम्बन्धी कार्य निमित्त नियुक्त किया गया।

१९१४ई० में प्रथम महायुद्ध छिड़ जाने से पुरातत्व विभाग के दुर्दिन आ गये। इस विभाग के व्यय में भारी कमी कर दी गई। १९१९ के भारतीय संविधान के अनुसार पुरातत्व विभाव केन्द्रीय विभाग घोषित कर दिया गया। यद्यपि कुछ वर्ष के पश्चात् ही न े पदाधिकारियों की नियुक्ति की गयी परन्तु कटौती समिति ने इस विभाग को समाप्त करने की सिफारिश उपस्थित की। तत्कालीन भारत सचिव तथा वायसराय ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। केवल व्यय में कमी कर दी और विभाग का काम धीमा पड़ गया।

प्राचीन टीलों की खुदाई के सिलसिले में संयोगवश सिन्ध नदी की घाटी में मोहेन जोदडो तथा हरप्पा के स्थानों का पता लगा। भारतीय इतिहास में इन स्थानों के कारण उथल-पुथल मच गई। १९२१ के पहले पुरातत्व विभाग की और से जितने स्थानों का पता लगा था उन सबका सम्बन्ध मौर्यकाल से था। साधारणतया ईसा पूर्व ६०० से पहले का इतिहास अज्ञात था। वैदिक युग के किसी स्थान का पता नहीं लग सका था। मोहन जोदडो तथा हरप्पा के कारण ईसापूर्व ३००० साल से भारतीय संस्कृति का इतिहास ज्ञात हो गया। मोहन जोदडो की खुदाई १९३१ ई० तक तथा हरप्पा की १९३५ तक चलती रही। सर जानमार्सल के समय में वैज्ञानिक ढंग से भारतवर्ष में खुदाई का श्री गणेश हो सका।

इसी के समय में भारतीय सीमा के बाहर तुर्किस्तान में भी भारत के सांस्कृतिक विस्तार का पता चला। इसलिये भारतीय सरकार ने सर आरेलस्तीन को चीनी तुर्किस्तान में खोज के लिये नियुक्त किया जो १९००-१९१६ तक कार्य करते रहे। तिब्बत की सीमा तथा विलोचिस्तान में खोज का काम भी आरम्भ था। नाल तथा चन्हुदारों में इस विभाग के अधिकारी गण ने प्राचीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वस्तुओं का पता लगाया था। कारण वश भारत में अंग्रेजों के कार्यों की समालोचना होने लगी थी और मार्शल के कार्य से लोग पूर्ण संतुष्ट नहीं थे। भारत में १९३१ का सत्याग्रह प्रसिद्ध है। ब्रिटिश सरकार के सामने कांग्रेस को दबाने की समस्या थी। संसार में अशान्ति थी। इसलिये सेना के व्यय के कारण ब्रिटिश सरकार ने पुरातत्व विभाग के व्यय को बहुत कम कर दिया, जिससे खुदाई या खोज का काम ठप पड़ गया। १९३५ ई० में भारतीय संविधान में परिवर्तन होने पर भी पुरातत्व विभाग में कुछ भी सुधार न हो पाया। सन् १९३८ में भारतीय सरकार ने इस विभाग में सुधार की बातें सोचीं और इसीलिये सर ऊली को पुरातत्व विषय पर सलाह देने के लिये आमंत्रित किया। उनके रिपोर्ट में कई बातों पर अधिक ध्यान देने की बात कही गई थी तथा इस विभाग के कार्य कर्त्ताओं की कार्य क्षमता पर भी प्रकाश डाला गया था। धन का अभाव, वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा की कमी तथा उचित संख्या में कार्य कुशल व्यक्ति न होने के कारण पुरातत्व विभाग पूर्णरूप से विकसित न हो सका था। उस रिपोर्ट से अवगत हो जाने पर १९४४ में विदेश से डा० ह्वीलर को डायरेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त किया गया।

ह्वीलर ने भारत में आतेही कई विभागीय सुधार किये। संरक्षण का कुछ काम केन्द्रीय सरकार के हाथों से हटा कर प्रांतीय पुरातत्व विभाग को सोंपा गया। कई अधिकारी गण नियुक्त हुये और सब को विशेष रूप से शिक्षित किया गया। संरक्षण तथा खुदाई विभाग को नये सिरे से संगठित किया। सरकार को सलाह देने के लिये केन्द्रीय सलाहकार समति बनाई गयी जिसमें विश्व विद्यालय के प्रतिनिधि तथा प्रमुख विद्वान सदस्य बनाये गये। और वह समिति आज तक इस कार्य में सलाह देती है। भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् पुरातत्व विभाग की भी वृद्धि होती जा रही है। रियासतों के गण तंत्र में मिल जानेसेनये केन्द्र खोले जा चुके हैं जहाँ पर पहले कोई काम न हो सका था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस विभाग की सार्थकता बढ़ गई है और भारत के प्राचीन वैभव तथा संस्कृति को प्रकाश में लाने का भार इस पर आ गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट—ब

भारत में पुरातत्व का ज्ञान

प्राचीनकाल में भारतवासियों का ध्यान इतिहास की ओर न था। सांसारिक बातों से अधिक पारलौकिक विषयों का चिंतन किया करते थे। यही कारण है कि उनमें ऐतिहासिक वर्णन की ओर झुकाव न था। इसी कारण भारतवासियों को अपने राष्ट्रीय बीरों के विषय में कम बातें ज्ञात हैं। उस सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है वह कथानक का रूप प्रकट करता है। व्यास, पाणिनि, कालिदास अथवा भास के जीवन सम्बन्धी बातों का कुछ पता नहीं चलता। हां, अशोक तथा समुद्रगुप्त ऐसे बीरों के विषय में प्रस्तर पर खुदे लेख जानकारी उपस्थित करते हैं। जो थोड़ी जानकारी हुई वह ज्ञान भी विना खुदवाई या पुरातत्व की सहायता के उपलब्ध नहीं हो सकता था।, लेखों की सहायता से टुकड़े-टुकड़े को जोड़ कर क्रमवद्ध इतिहास खड़ा किया जाता है इस तरह पुरातत्व खोजों की सफलता से ही प्राचीन भारत का इतिहास तैयार हो सका है। यदि हमारे पूर्वजों ने इतिहास लिखा होता तो देश की दूसरी स्थिति होती। सौभाग्यवश उन्होंने पुरातत्व सम्बन्धी अनेक प्रकार के ऐतिहासिक सामग्रियां छोड़ी हैं जिनके आधार पर प्राचीन इतिहास तैयार किया जा रहा है। पुरातत्व सम्बन्धित विषयों को प्रकाश में लाने का श्रेय योरप निवासियों को है जो यहां सत्तरहवीं सदी से ही व्यापार में लगे थे अपने कार्य के सम्बन्ध में उन्होंने भारतीय भाषा पढ़ना आरम्भ किया और बाद में संस्कृत की ओर भी आकर्षित हुए। मिशनरी लोगों ने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। एब्राहिम राजर नामक डच व्यक्ति ने १६५१ ई० में एक पुस्तक लिखी जिसमें ब्राह्मण रीतिरिवाज का वर्णन पाया जाता है। वरनियर (१७७१ में) तथा टेवर्नियर (१७७७) ने भारत में कई वर्ष रहकर भूगोल का ज्ञान सबके सामने उपस्थित किया। धर्म प्रचारकों ने भारतीय समाज तथा धर्म का अध्ययन कर पुस्तकें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिखना आरम्भ किया जिससे उनमें भारतीय विषयों की ज्ञान पिपासा की बात स्पष्ट हो जाती है। उस समय भारतीय धर्म तथा साहित्य पर पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। योरप के लोगों ने वेदों का अध्ययन आरम्भ कर दिया जिसमें जर्मन विद्वानों का प्रधान हाथ था। योरप में भारत के सम्बन्ध में भी पुस्तकें छपने लगीं। १८वीं सदी तक कई पुस्तकें तैयार हो गयीं जिससे भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों की ओर योरप वालों का झुकाव प्रकट होता है। वेद, व्याकरण, दर्शन तथा धर्म का अध्ययन आगे बढ़ता ही गया। १७७६ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज की इच्छानुसार अंग्रेजी में भारतीय कानून पर एक ग्रंथ लिखा गया जिसके अनुसार अंग्रेज न्यायाधीश कलकत्ते में मुकद्दमा फैसला करने लगे। गवर्नर जनरल की आज्ञा से कुछ पंडित भी नियुक्त किये गये जो मूल संस्कृत से कानून की सामग्री एकत्रित करने में व्यस्त थे। इस तरह विद्वानों की दिलचस्पी बढ़ने लगी और संस्कृत से फारसी तथा अंग्रेजी में अनुवाद होने लगे। १७८४ ई० में एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की स्थापना हुई जिसके अगुआ सर चार्ल्स जोन्स थे। फोर्टविलियम में जज का काम करते हुए जोन्स ने शकुन्तला तथा गीत गोविन्द का अनुवाद किया था। विल्किन्स ने सर्वप्रथम प्रस्तर पर खुदे लेखों का अध्ययन किया था और अंग्रेजी में उसका अनुवाद किया। इस प्रकार संस्कृत से अन्य भाषाओं का सम्बन्ध स्थापित हो गया। यद्यपि सरकार की ओर से पुरातत्व का कोई विभाग न था तथापि उससे सम्वन्धित कार्य होते रहे। विल्किन्स के काम को कोलब्रुक ने आगे बढ़ाया जो सर जोन्स का इस मार्ग में उत्तराधिकारी समझा जाता है। इसने स्मृति ग्रंथों का अनुवाद सब के सामने उपस्थित किया तथा कतिपय संस्कृत लेखों का अनुवाद किया। उसने अपने कार्य काल के अंत में बहुत सी हस्त लिखित प्रतियां इंगलैंड भी भिजवायी थीं। अंग्रेजों के अतिरिक्त जर्मन तथा फ्रांसीसी विद्वान भी इस ओर लगे थे। जर्मनी में संस्कृत का पठन पाठन तथा शोध का कार्य आरम्भ हो गया। १९वीं सदी के मध्य तक योरपीय विद्वानों ने संस्कृत की ओर ही अधिक ध्यान दिया और बौद्ध साहित्य अछूता सा था। जब योरप में भारतीय साहित्य का अध्ययन चल रहा था, यहां अंग्रेजी विद्वान प्राचीन इतिहास की खोज में व्यस्त थे। भारत में पुरातत्व विषयक सामग्रियां एकत्रित की जा रही थीं। सिक्के तथा प्रस्तर पर खुदे लेखों की लिपि पढ़ने में विद्वान व्यस्त थे। उस ओर साहित्य से किसी तरह की सहायता न मिल सकी। इस सम्बन्ध में जेम्स प्रिंसेप का नाम लिया जाता है जिसने १९वीं सदी में प्रशंसनीय कार्य किया। उस समय लेख तथा सिक्कों पर खुदे अक्षरों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पढ़ने में उसे पर्याप्त सफलता मिली परन्तु प्रिन्सेप की मृत्यु से उस शोध के कार्य में बहुत धक्का लगा। उस विषय पर वेबर ने भी कार्य कर तत्सम्वन्धी साहित्य अंग्रेजी में उपस्थित किया। इस तरह के कार्य से भारतीय प्राचीन ऐतिहासिक विषयों का अध्ययन इतना आगे बढ़ गया था कि किसी एक व्यक्ति के लिए सभी विषयों का पठन असम्भव हो गया। अंग्रेजी सरकार ने इन बातों के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए पुरातत्व विभाग की स्थापना की। पुरातत्व सम्बन्धी खोज में योरपीय विद्वानों के साथ भारतीय पण्डित भी कार्य करते रहे। उनमें कोल्ब्रुक, विलसन तथा जोन्स के सहयोग में श्री भाऊ जी, श्री राजेन्द्रलाल मित्र ने काफी काम किया जिससे पिछला इतिहास प्रकाश में आ सका है।

जेम्स प्रिन्सेप ने ब्राह्मी अक्षरों को पढ़ कर शोध कार्य में बड़ी भारी जागृति पैदा की। विल्सन ने भारतीय लेख तथा सिक्कों के अध्ययन में प्रशंसनीय कार्य किया। उसी का कार्य था कि प्राचीन ब्राह्मी तथा चिन्हों का पूर्ण रीति से पता लगा सका। उस मार्ग में काम करने वालों में कनिंघम का भी नाम लिया जा सकता है, जो सेना विभाग में इंजिनियर होने पर भी भारतीय पुरातत्व की खोज में संलग्न रहे। उन्होंने सारे भारतवर्ष का भ्रमण कर पुरातत्व सम्वन्धी रियार्ट तैयार की जिस से कितनी ही आवश्यक एवं नयी बातें मालूम हो गयी। उसी तरह काम करने वाला डा० जेम्स वर्जेस भी था जो इतिहास का प्रगाढ़ विद्वान ओर लगन काव्यक्ति था। उसी ने इंडियन ऐंटीक्वायरी नामक शोध पात्रिका निकाली थी। पात्रिका का कार्य भार सम्भाल न सकने पर उसने १८८४ ई० में डा० ल्फीट को कार्य सोंप दिया परन्तु ऐतिहासिक शोध में लगा रहा। फरगुसन की सहायता से वर्जेस ने 'भारतीय गुफायें' नामक पुस्तक लिखी थी। कनिंघम का स्थान ले कर उस विद्वान ने "ऐपिग्राफिया इंडिका" नामक लेख सम्वन्धी पात्रिका प्रकाशित करवाई। वह ऐन्टिक्वेयरी का एक अंग था। परन्तु १९२१ से केन्द्रीय सरकार ने उसका प्रकाशन अपने हाथों में ले लिया। चूँकि सरकार ने पुरातत्व विभाग की स्थापना वर्षों पूर्व करदी थी। उसके मृत्यु पश्चात् वूह्लर ने भारतीय लेख विद्या पर अत्यधिक कार्य किया। उसी ने संस्कृत का महत्व तथा उसमें छिपी भारतीय संस्कृति की बातें संसार के सम्मुख रक्खी थी। उसने इस दशा में अनेक कार्य किये परन्तु सब में भारतीय ब्राह्मी लिपि तथा उसका अध्ययन प्रमुख माना जाता है। उसके तैयार किये गये लिपियों की तालिका सभी के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है। कीलहार्न ने भी उसके साथ संसार का ध्यान आकर्षित किया और भारतीय प्राचीन विद्याओं के महत्व को समझाया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था। बूल्हर तथा कीलहार्न ने भारतीय पंडितों द्वारा प्राचीन संस्कृत का अध्ययन कर अपना नाम विख्यात किया था। उस दिशा में फ्लीटने गुप्त शासकों के संस्कृत लेखों पर कार्य किया तथा गुप्त लेखों पर उनकी पुस्तक सर्व प्रसिद्ध मानी जाती है।

भारतीय विद्वान किसी से पीछे नहीं रहे। भारतीय लेख विद्या में भगवान लाल इन्द्रजी का कार्य सब से अधिक है और बूल्हर द्वारा जन्मना पुरातत्व वेत्ता, कहे गये हैं। दूसरे स्थान पर डा० भाऊदा जी का नाम उल्लेखनीय है। लेख तथा मुद्रा सम्बन्धी शास्त्रों पर उनके कार्य अधिक प्रशंसनीय हैं। मथुरा के सिंह स्तम्भ का पता लगाने के कारण उनका नाम अमर हो गया है। डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर के नाम से सभी परिचित हैं। भण्डारकर की तरह खोज पूर्व तथा मनन करने वाला व्यक्ति मिलना कठिन हैं। अपने अन्वेषण में वह न्याय तथा तर्क से काम लेते थे। तत्कालीन विद्वानों में हुल्स ने भी लेख विद्या पर सराहनीय कार्य किया था।

राखालदास वनैर्जी तथा डा० काशीप्रसाद जायसवाल किसी ऐतिहासिक विद्वान से छिपे नहीं थे। उनके लेख तथा ग्रंथों ने भारतीय इतिहास के कितने प्रश्नों पर प्रकाश डाला है। यह श्री वनैर्जी का ही अध्यवसाय था कि सिन्ध की घाटी में मोहन जोदडो का पता लग सका।

मुद्राशास्त्र में कनिघंम, राजर्स, वनैर्जी, रैंपसन, अलन तथा नेल्सन आदि के नाम प्रमुख माने गये हैं। भारतीय विद्वानों में डा० अलतेकर का कार्य प्रशंसनीय है। सिक्कों द्वारा भारतीय इतिहास के कई काल विभाग प्रकाश में आये हैं।

भारतीय संस्कृति का अध्ययन विभिन्न देशों में अनेक विद्वानों द्वारा होता रहा है। साहित्यिक विकाश के साथ भारतीय इतिहास का ज्ञान भारतीय पुरातत्व से पूर्ण हो सका। जहाँ तक लेख का सम्बन्ध है भारत में इसका अथाह भण्डार है। वे ही ऐतिहासिक अनुसंधान के वास्तविक आधार हैं। भारतीय प्रशस्तियों का अध्ययन १९ वीं सदी के मध्य से आरम्भ हुआ था जिसे पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों ने आगे बढ़ाया। उनसे भारतीय संस्कृति के प्रत्येक अंग पर प्रकाश पड़ा है। किसी विषय को उठा लें भारतीय लेखों में उसका विवरण किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिलेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय-खण्ड

मूल-लेख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अशोक के धर्म लेख

(१) प्रधान शिला लेख

[१ गिरनार पाठ]

१ इय(ं) धंम-लिपी **देवानं पि[प्रि] येन**
२ **पि[प्रि]यदसिना राञा** लेख(ा)पि(ता) (।*) (इ)ध न किं-
३ चि जीवं आरभिप्ता[त्पा] प[प्र]जूहितव्यं[व्यं] (।*)
४ न च समाजो कतव्यो[व्यो] (।*) बहुकं हि दोसं
५ समाजम्हि पसति देवानं पि[प्रि]यो पि[प्रि]यदसि राजा (।*)
६ अस्ति पि तु एकचा समाजा साधु-मता देवानं
७ पि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो (।*) पुरा महानसम्हि
८ देवानं पि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो अनुदिवसं ब-
९ हूनि प[प्रा]ण-सत-सहसा[स्रा]नि आरभिसु सूपाथाय (।*)
१० से अज यदा अयं धंम-लिपी लिखिता ती एव प[प्रा]-
११ णा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो (।*) सो पि
१२ मगो न धुवो (।*) एते पि त[त्री] प[प्रा]णा पछा न आरभिसरे (।।*)

[२]

१ सर्वत विजितम्हि **देवानंपि[प्रि]यस पियदसिनो राञो**
२ एवमपि प[प्र]चंतेसु यथा **चोडा पाडा सतियपुते केतलपुतो** आ **तंब-**
३ **पंणी अंतियो(ो*)को योन-राजा** ये वा पि तस अंतिय(ो*) कस सामीप(ा)
४ राजानो सर्वत[त्र] देवानंपि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो द्वे चिकीछ(ा*) कता
५ मनुस-चिकीछा च पसु-चिकीछा च (।*) ओसुढानि च यानि मनुसोप-गानि च
६ पसो(प)गानि च यत यत नास्ति सर्वत्र[त्र] हारापितानि च रोपा-पितानि च (।*)
७ मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८ पंथेसू कूपा च खानापिता वं[व्र]छा च रोपापित(ा) परिभोगाय पसु-
मनुसानं (॥*)

[३]

१ **देवानंपि[प्रि]यो पियदसि र(ा*)जा** एवं आह (।*) **द्वादस-वासाभिसितेन**
मया इदं आञ्पितं (।*)
२ सर्वत विजिते मम **युता** च **राजूके** च **पा[प्रा]देसिके** च पंचसु पंचसु
वासेसु **अनुसं-**
३ **य(ा)न(ं)** f (न) यातु एतायेव अथाय इमाय धंमानुसट्सि[स्टि]य यथा
अञा
४ य पि कंमाय (।*) (स)ाधु मातरि च पितरि च सुसूं[सू']सा मितासंस्तु-
तञातीनं बाम्हण-
५ समणानं सा(धु) (द)ानं पा[प्रा]णानं साधु अनारंभो अप-व्यव[व्य]यता
अप-भांडता साधु (।*)
६ **परिसा** पि युते आञपयिसति गणनायं हेतुतो च व्यं[व्यं]जनतो च (॥*)

[४]

१ अतिकातं अंतरं बहूनि वास-सतानि वढितो एव पा[प्रा]णारभो विहिंसा च
भूतानं ञातीसु
२ अ(सं)पं[प्र]तिपती ब्रा(म्ह)ण-सं[स्र]मणानं असंपं[प्र]तीपती-(।*)
त अज **देवानंपि[प्रि]यस पि[प्र]यदसिनो राञो**
३ धंम-चरणेन (भे)री-घोसो अहो धंम-घोसो।(*) विमान-दसंणाच हस्ति
द(स)णा च
४ अगि-खंधा(नि)च (अ)ञानि च दिव्या[व्या]नि रूपानि दसयिप्ता[त्पा]
जनं यारिसे बहूहि वा(स)-सतेहि
५ न भूत-पु(वे)तारिसे अज वढिते **देवानंपि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो**
धंमानुसट्सि[स्टि]या अनारं-
६ (भो) पा[प्रा]णानं अविहीसा भू(ता)नं ञातीनं संपटिपती ब्रम्हणसमणानं
संपटिपती मातरि पितरि
७ (सु)सुं[स्रु]सा थैर-सुसुसा (।*) एस अञे च बहुविधे (ध)ंमचरणे
व(ढि)ते(।*) वढयिसति चेव **देवानंपि[प्रि]यो**
८ **(प्रि*)यदसि राजा** धंम-(च*)रणं इदं (।*) पुतां[त्रा] च(पो)ता-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[त्रा] च र्प[प्र]पो-र्ता[त्रा] च **देवानंपि[प्रि]यस पि[प्रि] यदसिनो राञो**

९ (प्र*)वधयिसंति इदं (धं)म-चरणं आव सवट-कपा धंमम्हि सीलम्हि तिट्सं[स्टं]तो (ध)मं अनुसासिसंति (।*)

१० (ए)स हि सेट्से[स्टे] कंमय धंमानुसासनं(।*) धंमचरणे पि न भवति असीलस (।*) (त) इमम्हि अथम्हि

११ (व*)धी च अहीनी च साधु(।*) ए(ता)य अथाय-इद(ं) लेखापितं इमस अथ(स) वधि युजंतु ह(ो)नि च

१२ (नो) लोचेतव्वा[व्या] (।*) **द्वादसवासाभिसितेन देवानंपि[प्रि]येन पि [प्रि]यदसिना** राञ(ा) इदं लेखापितं (।।*)

[५ मानसेरा पाठ]

१ दे(वनं)प्रियेन प्रियद्रशिदरज एव(ं) अह (।*)कलण(ं)दुकर(ं)(।*) ये अदिकरे कयणस से दुकरं करोति(।*) तं मय वहु (क)यणे(क)टे(।*) (त)ं म(अ) पुत्र (च)

२ नत(रे) च पर च(ते)न ये अपतिये मे (अ)व-कपं तथ अनुवटिशति से सुकट क(ष)ति (।*) ये (चु) अत्र देश पि हपेशति से दुकट कषति(।*)

३ पपें हि नम सुपदरवे (।*) (से) अतिक्रत(ं) अ(ं)तर(ं) न भुतप्रुव **ध्रम(म)ह-मत्र** नम (।*) से **त्रेडश-व(ष)भिसितेन** मय **ध्रम-महमत्र** कट(।*) ते सव्र-प(ष)डेष

४ वपुट ध्रमधिय(न)ये च ध्रम-व्रध्रिय हिद-सुखये च (ध्र)मयुतस **योन-कंबोज-गधरन र(ठि)क-पितिनिकन** ये व पि अञो अपरत (।*) भ(ट)मये

५ षु ब्रमणिभ्येषु अनथेषु वुध्रेषु हिद-सु(खये) ध्रमयुत-अपलिबोधये विय-(पु)ट ते (।*) बधन-बध(स) पटिवि(धनये) अपलिबोधये मोक्ष(ये) (च) (इयं)

६ अनुबध (प्र)ज(व*) (ति) व कट्रभिकर ति व महलके ति व वियप्रट ते (।*) हिद बहिरेषु च नगरे(षु) सव्रेषु (ओ)रोधनेषु भतन च स्प(सु)न (च)

७ ये व पि अञो ञातिके सव्रत्र वियपट(।*) (ए) इयं ध्रम-निंशितो तो व ध्रमधियने ति व दन-संयुते ति व सव्रत्र विजतसि मअ ध्रमयुतसि वपुट(ते)

८ **ध्रम-महमत्र** (।*) एतये अथ्रये अयि ध्रम-दिपि लिखित चिर-ठितिक होतु तथ च मे प्रज अनुवटतु (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[६]

१ (**देवा**) (**नंपियो***) (**पियद***) **सि राजा** एव आह (।*) अतिक्रातं अंतरं
२ न भूतर्पु (प्रु) (व) (स) (वे*) (काले*) अथ-कंमे व पटिवेदना वा (।*) त
मया एवं कतं (।*)
३ (स)वे काले भ ं (ज)मानसमे ओरोधनम्हि गभागारम्हि वचम्हि व
४ विनीतम्हि च उयानेसु च सवर्त[त्र] पटिवेदका ट्सि[स्टि]ता अथे
मे (ज)नस
५ पटिवेदेथ इति (।*) सर्वत्र च जनस अथे करोमि (*।) य च किंचि
मुख (तो)
६ आञपयामि स्वयं दापकं वा सर्ा[स्रा]वापकं वा य वा पुन **महामा (तें-**
[त्रे]) सु
७ आचायि (के) अरोपितं भवति ताय अथाय विवादो निझती व (स) ंतो
परिसायं
८ आनंतरं प(टि)वेदेत(य्वं[व्यं]) मे स(र्व)र्त[त्र] सर्वे काले (।*) एवं
मया आञपितं (।*) नास्ति हि मे तो(सो)
९ उट्सा[स्टा]नम्हि अथ-संतीरणाय व (।*) कतय्व [व्य]-मतेहि मे
स(र्व)-लोक-हितं (।*)
१० तस च पुन एस मूले उट्सा[स्टा]नं च अथ-संतीरणा च (।*) नास्ति हि
कंमतरं
११ सर्व-लोक-हितप्ता[त्पा] (।*) य च किंचि पराक्रमामि अहं किंति
भतानं आनंणं गछेयं (।*)
१२ इध च नानि सुखापयामि परत्रा च स्वगं आराधयंतु (।*) त एताय
अथाय
१३ अयं ध(ं)म-लिपी लेखापिता किंति चिरं तिट्से[स्टे]य इति तथा च
मे पुत्रा पोता च पं[प्र]पोर्ता[त्रा] च
१४ अनुवतरां सव-लोक-हिताय (।*) दुकरं (तु) इदं अञर्त[त्र] अगेन
पराक्रमेन (।।*)

[७ **शाहवाजगढ़ी पाठ से**]

१ **देवनंप्रियो प्रिय (द्र*) शि रज** सवत्र इछति सत्र-
२ (प्र)षंड वसेयु (।*) सवे हि ते सयमे भव-शुधि च इछंति (।*)
३ जनो चु उचवुच-छंदों उचवुच रगो (।*) ते सत्रं व एकदेशं व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४ पि कवंति (।*) विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम भव-

५ शुधि किट्रञत द्रिढ-भतित निचे पदं (॥*)

[८]

१ अतिकातं अंतरं राजानो विहार-यातां ञयासु (।*)एत मगव्या[व्या] अञानि च एतारिस(।*)नि

२ अभीरमकानि अहुं सु(।*)सो **देवानंपियो पियदसि राजा दसवसभिसितो** संतो अयाय **संबोधि**(।*)

३ तेनेसा धंम-याता (।*) एतयं होति बाम्हण-समणानं दसणे च दाने च थैरानं दसणे (च)

४ हिरंण-पटिविधानो च जानपदस च जनस दस्पनं धंमानु(स)ठ्सी [स्टी] च धम-परिपुछा च

५ तदोपया (।*) एसा भुय-रति भवति **देवानंपियसि पि[प्रि]यदसिनो राञो** भागे अंञे (॥*)

[९ **मानसेरा पाठ से**]

१ (**देवनप्रिये**) **प्रियद्रशि रज** एवं अह (।*) जने उचवुच (ं) (म)गल (ं) करोति(।*)

२ अवधसि अ(व) हसि वि(व)हसि प्रजोपदये प्रवसस्पि एतये अञये(च) (एदि)श(ये) (जने)

३ बहु मंग(लं) (क)रो(ति)(।*) अत्र तु अवक जनिक बहु च बहुविध च खुद च निरथ्रिय च मगलं करोति (।*) से क(टविये) (चे) व खो

४ मगले(।*) अप-फले चु (खो) (ए)षे (।*) इयं चु खा मह-फले ये ध्रम-मगले(।*) अत्र इयं दस-भटकसि सम्य-पटिपति गुरुन अ(पचिति),

५ प्र(ण)न (स)यमे श्रमण-व्रमणन (दने) एवे अणे च एदिशे ध्रम-मगले नम (।*) से वतविय पि(तु)न पि पुत्रेन पि भ्रतुन पि स्पमिकेन पि

६ मित्र-स(ं)स्तुतेन (अ)व पटिवेशियेन पि इयं सधु इयं कटविये मगले अव तस अथ्रस निवुटिय निवुटसि व पुन इम (क)षमि ति(।*) ए हि (इ)-तरे मग(ले)

७ श(श)यिके से(।*) (सि)य व तं अथ्रं निवटेय (सि)य पन नो (।*) हिद (लो)-किके चेव से (।*) इयं पुन ध्रम-मगले अकलिके (।*) (ह)चे पि तं अथ्रं नो निवटेति (हि)द, अ(थ)परत्र

८ अनत पुण प्रसवति (।*) हचे पुन त(ं) अथ्रं निव(टे)ति हिद ततो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उभयेसं (अर)धे होति(।*) हिद च से अथ्रे परत्र च अनत पुणं प्रसवति तेन ध्रम-(म*)गलेन(॥*)

[१०]

१ **देवानंपि [प्रि]यो पि[प्रि]यदसि राजा** यसो व कीति व न महाथावह(ा) मञाते अञात तदाप्त[त्प]नो दिघाय च मे (ज)नो

२ धंम-सुसुं[स्रु\]सा सुसुं[स्रु]सता धंम-वुतं च अनुविधियतां (*) एतकाय **देवानंपियो पियदसि राजा** यसो व किति व इ(छ)ति (।*)

३ यं तु किचि परिकामते **देवानं(प्रियो*) पि[प्रि]यदसि राजा** त सवं पारतिं[त्रि]काय किंति सकले अपपरिर्से[स्र]वे अस(।*) एस तु परिसवे य अपुंञं (।*)

४ दुकरं तु खो एतं छुदकेन व जनेन उसटेन व अञात[त्र]अगेन परार्क[क्र]मेन सवं परिचजिप्ता[त्ता] (।*) एत (तु) (खो) उसटेन दुकरं (॥*)

[११ **कालसी पाठ**]

१ **देवानं(पि)ये पियदषि(ल)ाजा** हेवं (आ*)हा (।*) नथि (हे)डिषे दाने अदिष ध(ं)म-दाने । धम-ष(f)वभगे । धंम-षंब(धे) । त(त) एवे ताष-भठ-कषि । षम्या-पटिपति माता-पितिषु । षुषुषा । मित-षंथुत-नातिक्यानं समना(व) भनाना (दा)ने

२ पानानं अनाल(ं)भे(।*) एषे वत(f)वये पिर्ि (त)ना पि पुते(न)पि भातु (त)-ना पि षवा(f)मक्येन पि मित-शंथुताना अवापटिवेषियेन(ा) इय(ं) षाधु इयं कटवियेे (।*) (श) तथा कल (ंत) हिदलोकिक्य च कं आलधे होति पलत च(ा) अनत पुना पशवति तेना धंम-दानेना (॥*)

[१२ **शाहवाजगढ़ी पाठ**]

१ **देवनंप्रियो प्रियद्रशि रय** सत्र-प्रषंडनि प्रव्रजित(नि) ग्रहथनि च पुजेति दनेन विविधये च पुजये (*) नो चु तथ(द)न व पुज व

२ **देवनंप्रियो** मञाति यथ किति स(ल)-व्रढि सिय सत्र-प्रषंडनं (*) सल-वढि तु बहुविध (*) तस सु इयो मुल यं वचोगुति(।*)

३ किति अत-प्रषंड-पुज व प(र)-पषंड-गर[ह*]न व नो सिय (अ)-पकरणसि लहुक व सिय तसि तसि प्रकर(णे) (।*) पुजेतविय व चु पर-प्रषं-

४ (ड) तेन तेन अकरेन (।*) ए(व) करतं अत-(प्र)षंडं वढेति पर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रषंडंस पि च उपकरोति (।*) तद अञथक(र)मि (नो) अत-प्र-(षंड)
५ क्षणति (पर)-प्रपडस च अपकरोति (*) यो हि कचि अत-प्रषडं पुजेति (पर)-(प्र)-षड(ं) गरहति सव्रे अत-प्रषड-भतिय व किति
६ अत-प्रषैडं दिपयमि ति सो च पुन तथ करतं -सो च पुन तथ करतं) ब(ढत)रं उपहंति अत-प्रषडं (।*) सो सयमो वो सधु(।*) किति अञमञस ध्रमो
७ श्रुणेयु च सुश्रुषेयु च ति (।*) एवं हि **देवनंप्रियस** इछ किति सव्र-प्रषंड बहु-श्रुत च क(लण)गम च सियसु (।*) ये च तत्र तत्र
८ प्रसन तेष(ं) वतवो **देवनंप्रि(यो)** न (तथ) (द)न(ं) (व)(पुज) व मञति य(थ) किति सल-वढि सियति सव्रप्रषडनं (।*) बहुक च एतये अठ(ये*)
९ व(प)ट (ध्र)**म-म(ह)** इ **(स्त्रिधि)यक्ष-म(ह)मत्र (व्र)च-भूमिक** अञो च निकये (।*) इमं च एतिस (फ)लं यं अत-पषड-वढि (भोति)
१० ध्रमस च दि(पन) (।।*)

[१३ शाहवाजगढ़ी पाठ]

१ **(अठ-वष-अ(भिसि)त(स) (देवन)प्रि(अ)स प्रि(अ)द्रशिस र(ञो) क(लिग)** विर्(ज)त (।*) दिअढ-म(त्रे) प्रण-शत(सह)स्रे (ये) ततो अपवुढे शत-सहस्र-मत्रे तत्र हते बहु-तवत(के) (व) (मुटे) (।*)
२ ततो (प)च अ(धु)न ल(धे)षु **(कलिगेषु)** (तिव्रे) (ध्रम-शिलन)ध्र-(म-क)मत ध्रमनु-शस्ति च **देवनप्रियस** (।*) सो (अ)स्ति अनुसोचन देवन(प्रिअ)स विजिनिति कलिग(नि) (।*)
३ अविजितं (हि) (वि)जिनमनो-या त(त्र) वध व मरणं व अपवहो व जनस तं बढं (वे)दंनि(य)-म(तं) गुरु-मत(ं) च **देवनंप्रियस** (।*) इदं पि चु (ततो) गुरुमततरं **(देवनं)प्रियस** ये तत्र
४ वसति व्रमण व श्रम(ण) व अ(ं)ञ व प्रषंड ग्र(ह)थ व येसु विहित एव अग्रभुटि-सुश्रुष मत-पितुषु सुश्रुष गुरुन सुश्रुष मित्र-संस्तुत-सहय-
५ ञातिकेषु दस-भटकनं सम्म-प्रतिप(ति) द्रिढ-भतित तेष तत्र भोति(अ) प-(ग्र)थो व वधो व अभिरतन व निक्रमणं (।*) येष व पि सुविहितनं (सि) (ने*)हो अविप्रहिनो (ए) (ते)ष मित्र-संस्तुत सहय-ञातिक वसन
६ प्रपुणति (त)त्र तं पि तेष वो अपध्रथो भोति (।*) प्रतिभगं च(ए)तं सव्र-मनुशनं गुरुमतं च **देवनंप्रिय(स)** (।*) नस्ति- च एकतरे पि प्रषडस्पि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न नम प्रसदो (।*) सो यमत्रो (ज)नो तद **कलिगे** (ह) तो च मु(टो) च अप (वुढ) च ततो

७ शत-भगे व सहस्र-भगं व(अ)ज गुरु-मतं (वो) **देवनंप्रियस** (।*) यो पि च अपकरेययति क्षमितविय-मते व **देवनं(प्रि)यस** यं शको क्षमनये (।*) य पि च अटवि **देवनंप्रियस** विजिते भोति त पि अनुनेति अपुनिजपेति (।*) अनुतपे पि च प्रभवे

८ **देवनंप्रियस** वुचति तेष किति अवत्रपेयु न च (ह) ञेयसु (।*) इछति हि (**देव**)**नंप्रियो** सव्र-भुतन अक्षति स(ं)यमं समचरियं रभसिय (।*) अयि च मुख-मुत विजये **देवनंप्रिय**(**स**) यो ध्रमविजयो (।*) सो च पुन लधो **देवनंप्रियस** इह च सवेषु च अंतेषु

९ (अ) षषु पि योजन-श(ते)षु यत्र **अंतियोको** नम (**यो**)**न**-रज परं च तेन(अ(ं*)-तियो(के)न चतुरे ४ रजनि **तुरमये नम अंतिकिनि नम मक नम अलिकसुन्दरो** नम निच **चोड-पंड** अव **त**(ं)**बपं**(**णि**)**य** (।*) (ए)वमेव (हि)द रज-विषवस्पि **योन-क(ं)बोयेषु नभक-नभितिन-**

१० **भोज-पितिनिकेषु अंध्र-पलिदेषु** सवत्र **देवनंप्रियस** ध्रमनुशस्ति अनुवटंति (।*) यत्र पि **देवनंप्रियस** दुत न व्रचंति ते पि श्रुतु **देवनंप्रियस** ध्रम-वुटं विधनं ध्रमनुशस्ति ध्रमं (अ)नुविधियंति अनुविधियिशं(ति) च (।*) यो (स) लधे एतकेन भो(ति) सवत्र विजयो सव(त्र) पु(न)

११ विजयो प्रिति-रसो सो(।*) लध (भोति) प्रिति ध्रम-विजयस्पि (।*) लहुक तु खो स प्रिति (।*) परत्रि(क)मेव मह-फल मेञति **देवन**(ं)**प्रियो** (।*) एतये च अठये अयि ध्रम-दिपि निपि(स्त) (।*) किति पुत्र पपोत्र मे असु नवं विजयं म विजेत(वि)वअ मञिषु स्प(कस्पि) यो विज(ये) (क्षं)ति च लहु-द(ं)डत च रोचेतु तं च यो विज(यं*) मञ(तु)

१२ यो ध्रम-विजयो (।*) सो हिदलोकिको परलोकिको (।*) सव चति-रति-भोतु य (ध्र)म-रति- (।*) स हि हिदलोकिक परलोकिक (।।*)

[१४]

१ अयं धंम-लिपी **देवानंपि[प्रि]येन पि[प्रि]यदसिना र(ा)ञा** (ले)खापिता (।*) अस्ति एव

२ संखि(ते)न अस्ति मझमेन अस्ति विस्ततन (।*) न च सर्वं (स)र्वत घटितं (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ महालके हि विजितं वहु च लिखितं लिखापयिसं चेव (।*) अस्ति च एत कं
४ पुन पुन वु तं तस तस अथस माधूरताय (।*) किंति जनो तथा पटिपजेय (।*)
५ तत्र एकदाअसम ा (त) लिखित (ं) अस देसं व सछाय-(का) रणं व
६ (अ) लोचेप्ता (त्पा) लिपिकरापरधेन वं (।।*)

(२) कलिङ्ग लेख

धौली लेख

१ (देवान) ं (पि) य (स) (वच) नेन तोसलियं म (हा) मात (नग) ल-ि (व) (यो) हालक (ा)

२ (व) तविय (।*) (अं) किछि (दखा) मि हकं तं इछामि (किंति) कं (मन) (प) टि (पादये) हं

३ दुवालते च आलभेहं (।*) एस च मे मोख्य-मत दुवा (ल) (एतसि) (अठ)-सि अं तु (फेसु)

४ अनुसथि (।*) तुफे हि वहूसु पानसहसेसुं आ (यत) पन (यं) (ग) छेम सु मुनिसानं (।*) सवे

५ मुनिसे पजा ममा (।*) अथ (ा) पजाये इछामि हक (ं) (किंति) (स) वे (न)-(हि) त-सुखेन हिदलो (किक)-

६ पाललोकिके (न) (यूजेवू) (ति) तथा (सव*)-(मुनि) सेसु पि (इ) छामि (ह) क (ं) (।*) नो च पापुनाथ आव-ग-

७ (मुके) (इयं अठे) (।*) (केछ) (व) एक-पुलि (से) (पापु*) नाति ए (तं) से पि देसं नो सवं (।*) दे (खत) (हि) (तुफे) एतं

८ सुवि (हि) ता पि (।*) (नि) तियं एक-पुलिसे (पि) (अथि) (ये) बंधनं वा पलिकिलेसं वा पापुनाति (।*) तत होति

९ अकस्मा तेन बधन (ं) तिक अंने च (तत*) (ब*) हुजने द (वि) ये दुखीयति (।*) तत चिर इछितविये

१० तुफेहि किंति मझं पटिपादयेमा ति (।*) इमे (हि) चु (जातेहि) नो संपटिपजति इसाय आसुलोपेन

११ नि (ठू) लियेन तूलना (य) अनावूतिय आलसियेन (ि) कलमथेन (।*) से इछितविये किंति एते

१२ (जाता) (नो) हुवेवु म (म) ा ति (।*) एतस च सव (स) मूले अनासुलोपे अ (तू) लना च (।*) निति (य) ं ए किलंते सिया

१३ (न) ते उग (छ) संचलितवि (ये) तु व (ट) त (व) (ये) एतविये वा (।*) हेवं मेव ए द (खेय) (तु) फाक तेन वतविये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४ आनं ने देखत हेवं च हेवं च (दे)**वानंप्रियस** अनुसथि(।*) से मह(ा-फ)
(ले) (ए)तस (संप)टिपाद

१५ महा-अपाये असंपटिपति(।*) (वि)प(ि)टपादयमीने हि एतं नथि स्वगस
(आल)धि नो लाज(ा)लधि (ध)(।*)

१६ दु-आ(ह)ले हि इ(म)स कंम(स) (मे) कुते म(ने)अतिलेके (।*) स(ं)
पटिपज(मीं)-(ने) चु(एतं) स्वर्ग(ं)

१७ आलाध(यि)स(थि) (मम) (च) (आ)ननियं एहथ (।*) इयं च
(लिपि) (**ति**)**स-न**(**ख**)**तेन** सो(त)विय(ा) (।*)

१८ अंत(ल)ा ि(प)च ि(त)(सेन)(ख)नसि ख(नसि) एकेन पि सोतविय
(।*) हेवं च कलंतं तुफे

१९ चघथ संप(टि)पाद(ि)यतवे (।*) (एता)ये अठाये इयं(ं) (लिपि)
लिखित (हि)द एन

२० नगल-वि(योहा)लका स(स्व)तं समयं यूजेवू (ि)त (एन*) (ज*)
(न)स अकस्मा (प)लिबोधे व

२१ अकस्मा पलिकि(लेसे) व नो सिया ति (।*) एताये च अठाये हक(ं)
(महा*)मते पंचसु पंचसु (व)से-

२२ सु (निखा)मयिसामि ए अखखसे अ(चंडे) सखिनालंभे होसति एतं
अठं आजितु (तं*) (पि*) (त)तथा

२३ कल(ं)ति अथ मम अनुसथी ति (।*) **उजेनिते** पि चु **कुमाले** एताये
व अठाये (नि)खाम (यिस)(ति*) * * *

२४ हेदिसमेव वर्ग नो च अतिकामयिसति तिंनि वसानि (।*) हेमेव **तख-**
(**सि**)**लाते** यप (।*) (अ)दा अ * * *

२५ ते महामता निखमिसंति **अनुसयानं** तदा अहापयितु अतने कंमं एतं पि
जानि-संति

२६ तं पि त(थ)ा कलंति अ(थ) लाजिने अनुसथी ति (।।*)

जौगढ़ लेख

१ **देवानंपिये** हेवं आ(ह)(।*)**समापायं महामता** ल(ा)जवचनिक वतविया
(।*) अं किछि दख(ा)मि हकं तं इ(छ)ामि हकं (किं)ति कं कमन

२ पटिपातयेहं दुवा(ल)ते च आलभेहं (।*) एस च मे मोखियमतदुवाल
एतस अ(थ)स अ(ं) (तुफे)सु अनुस(थि) (।*) सव-मुनि-

३ सा मे पजा (।*) अथ पजा(ये) इछामि किंति मे सवेण हित-सु(खे)न
यु(जे)यू (अ)थ पजाये इछामि किं(ति) (मे) सवेन हित-सु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४ (ख)न युजेयू ति हिदलोगिक-पाललोकि(केण) हेवंमेव मे इछ सवमुनिसेसु (।*) सिया अंतानं (अ)विजिता-

५ नं किं-छांदे सु लाजा अफेसू ति(।*) एताका (वा) मे इछ (अ) तेसु पापुनेयु लाजा हेवं इछति अनु(विगि)न ह्वे(यू)

६ ममियाये (अ)स्वसेयु च मे सुखं(मेव च लहे(यू) ममते (नो) (दु*)ख() (।*) हेवं च पापुनेयु ख(मिस)ति ने लाजा

७ ए सकिये खमितवे ममं निमितं च धंम(ं) चले(यू) ति हिदलोग(ं) च पललोग च आलाधये(यू) (।*) एताये

८ च अठाये हकं तुफेनि अनसासामि अन(ने) (एत)केन (ह)कं तुफेनि अ(नु)सासितु छंद(ं) (च) वेदि-

९ (तु) आ मम धिति पटिंना च अचल (।*) स हेवं (क)टू क(ं)मे (च)लितविये अस्वास(नि)या च ते एन ते पापुने-

१० यु अ(थ)ा पित (हे)वं (ने) लाजा ति अथ(अ)तानं अनुकंप(ति) (हे)वं अ(फे)नि अनुक(ंप)ति अथा पजा हे-

११ वं (मये) ला(जि)ने (।*) तुफेनि हकं अनुसासित (छ)ांदं (च) (वेदि)त (आ) (म)म धिति पटिंना चा अचल (सक)ल-

१२ देसा-आ(युति)के- होसामी एतसि (अ)थ(ि)स (।*) (अ)लं (हि) तुफे अस्वास(ना)ये हि(त)-सुखाये (च) (ते)स(ं) हिद-

१३ लोगि)क)-प(ा)ल(लो)कि(काये) (।*) हेवं च कलंतं स्वग(ं) (च) (आ)लाधयिस(थ) मम च आन(ने)यं एसय (।*)ए-

१४ ताये च अ(थ)ाये इ(यं) लिपि लि(खित) (हि)द ए(न) (म)-ह(ा)माता सास्वतं समं युजेयू अस्वासनाये च

१५ धंम-चल(ना)ये च अंता(न)ं (।*) इयं च लिपि अ(नु)च(ा)तुं (म)ासं (सोत)विया तिसेन (।*) अंतला पि च सोतविया (।*)

१६ खने संतं एके(न) पि (सोतवि(या) (।*) हेव(ं) च (क)लं(त)ं चघथ संपटिपातयित-(वे) (।।*)

(३) लघु शिला-लेख

रूपनाथ[1]

१ **देवानंपिये** हेव(ं) आहा (।*) साति(र)केकानि अढति(या)नि

---

१ इस लेख की प्रतियां कई स्थानों पर मिली हैं। ब्रह्मगिरि में कुछ अधिक पंक्तियां हैं जिनमें आमूल भेद नहीं है। मास्की के लेख में "देवानं पियस असोकस" से प्रारम्भ होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व(सानि*) य सुमि पाकास (**सके**) (।*) नो चु बाढि पकते (।*) सातिलेके चु छवछरे य सुमि हक(ं) **सघ** उ(पे)ते

२ बाढि च- पकते(।*) या (इ)माय कालाय **जंबुदिपसि** अमिसा देवा हुसु ते दानि (मिसा) कटा(।*) पकमसि हि (ए)स फले(।*) नो च एसा महतता प(ा)पोतवे खुदकेन

३ पि प(क)म(मि)नेना सकिये पिपुले पा स्वगे आरोधेवे (।*) एतिय अठाय च सावने कटे (खु)दका च उडाला च पकमतुति अता पि च जानंतु इय पक(रा) (व)

४ किति चिर-ठितिके सिया (।*) इय हि अठे वढि वढिसिति विपुल च वढिसिति अपलधियेना दियढिय वढिसत (।*) इय च अठे पवति(सु) लेखापेत वालत (।*) हध च अथि

५ साला-ठ(भे) सिला-ठ(ं)भसि लाखापेतवय त(।*) एतिना च वयजनेना यावतक तुपक अहाले ,सवर विवसेतवा(य) ति (।*) (व्यु)टेना सावने कटे (।*) २०० (+*) ५० (+*) ६ स-

६ त विवासा त (।।*)

येरुगुड़ी लेख

१ **देवानंपिये** हेवं १a हआ (।*) १b (स)ाधिकानि.....

२ ते(कप रछवसं कंए २a खोतुनो (।*) केसपाउ कंह (यं)

३ हुस साति(रे)कं (तु खो) सवछरे यं मया संघे उपयि-

४ (अ) (न)लेका च नामिइ (।*) तेकप में च ढवा ते

५ -मिसा मुनि-

५a सा देवेहि ते दानि मिसिभूता (।*) पकमस हि (एस फलो ।*)

६ खु येकिस वनेदेत्पहम (न)

७ -दकेन पि प(क)- ७a धेतवे (।*) ए

८ (म)मीनेन सकिये विपुले स्वगे आरा ताय च अठाय इयं

९ (स)ावने साविते अथा खुदक-महधना इमं पराकमेवू अं-

१० च कातिठिरचि वुनेजा मे च ता-

११ (इ)यं पकमे होतु विपुले पि च वढसिता अपरधिया दियढियं (।*)

१२ सा नेवसा च यं(इ)

१३ -(वापि)ते व्यूथेन २००(+*)५०(+*)६(।*)

१३a हेवं देवानं **देवानंपि-** १३b **-ये** आह यथा **देवान-**

१४ (।*) (यवतिक थात हाआ) **येपि**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१५ (राजू) के आनपितविये
१६ नआ दपनजा नीदा ते
१७ -पयिसति रठिकानि च (।*) मातापितूसू सु(सु*)-
१८ सितविये हेमेव गरूसु सुसूसितविये पानेसु दयितविये
१८a सच वतविय
१९ सुसुम धंमगुना पवतितविया (।*) हेवं तुफे आनपयाथ देवानंपियस वचनेन (।*) हे-
२० पनआ वमे
२१ यथ हथियारोहानि कारनकानि यू(ग्य)चरियानि बंभनानि च तुफे (।*) हेवं निवेसया-
२२ थ अतेवासीनि या(रि)सा पोराना पकिति (।*) इयं सुसुसितविये अपचायना य वा सव मे
२२a आचरि-
२३ -यस यथाचारिन आचरियस (।*) नातिकानि यथारह नातिकेसु पवतितविये (।*) हेसा (पि)
२४ अंतेवासीसु यथारह पवतितविये यारिसा पोराना पकिति (।*) यथारह यथा इयं
२५ आरोके सिया हेवं तुफे आनपयाथ निवेसयाथ
२५a च अंतेवास(ी)नि (।*) हेवं **दे-** २६ (।।*) तियपनआ **योपिनंवा**[१]

(४) अशोक के स्तम्भ-लेख

[१ देहली-तोपरा का पाठ]

१ **देवानंपिये पियदसि लाज** हेवं आहा (।*) **सडुवीसति-**
२ **वस-अभिसितेन** मे इयं धंम-लिपि लिखापिता (।*)
३ हिदत-पालते दुसंपटिपादये अनंत अगाया धंम-कामताया
४ अगाय पलीखाया अगाय सु(सू)याया अगेन भयेना
५ अगेन उसाहेना (।*) एस चु खो मम अनुसथिया

---

१ इस लेख की खुदाई विभिन्न ढंग से की गई है। कुछ पंक्तियां बाएं से दाहिने तथा कई दाहिने से बाएं लिखी गई हैं। उस ढंग से पढ़ने पर क्रम ठीक हो जाता है। पहली पंक्ति में आह के स्थान पर हआ खुदा है। दूसरी पंक्ति को उल्टा पढ़ने से एकं संवछरे पकते हो जाता है। २a के अंत को इकं उपासके पढ़ा जायगा। चौथे का अंत 'ते बाढ़य मे पकते' इमिनाय कालेन हो जायगा। इस तरह १०, १२, १४, १६, २० तथा २६ पंक्तियों को ऊपर मिलाकर उल्टा पढ़ें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६ धंमापेखा धंम-कामता चा सुवे सुवे वढिता वढीसति चेवा (।*)
७ **पुलिसा** पि च मे उकसा चा गवेया चा मझिमा चा अनुविधीयंती
८ संपटिपादयंति चा अलं चपलं समादपयितवे (।*) हेमेवा **अंत-**
९ **महामाता** पि (।*) एस हि विधि या इयं धंमेन पालना धंमेन विधाने
१० धंमेन सुखियना धंमेन गोती ति (।।*)

[२]

१ ... ...**देवानंपिये पियदसि लाज**
२ हेवं आहा (।*) धंमे साधू (।*)कियं चु धंमे ति(।*)अपासिनवे बहु-कयाने
३ दया दाने सचे सोचये (।*) चखु-दाने पि मे बहुविधे दिंने (।*) दुपद-
४ चतुपदेसु पखि-वालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे आ पान-
५ दाखिनाये(।*)अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि(।*)एताये मे
६ अठाये इयं धंम-लिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु चिलं-
७ थितिका च होतू ती ति(।*) ये च हेवं संपटिपजीसति सेसु कटं कंछती ति (।।*)

[३]

१ **देवानंपिये पियदसि लाज** हेवं अहा (।*) कयानंमेव देखति इयं मे
२ कयाने कटे ति (।*) नो मिन पापं (दे)खति इयं मे पापे कटे ति इयं वा आसिनवे
३ नामा ति (।*) दुपटिवेखे चु खो एसा (।*) हेवं चु खो एसदेखिये (।*) इमानि
४ आसिनव-गामिनि नाम अथ चंडिये निठूलिये कोधे माने इस्या
५ कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं (।*) एस वाढ देखिये इयं मे
६ हिदतिकाये इयंमन मे पालतिकाये (।।*)

[४]

१ **देवानंपिये पियदसि ल(ा)ज** हेवं आहा (।*) **सडुवीसति-वस-**
२ अभिसितेन मे इयं धंम-लिपि लिखापिता (।*) **लजूका** मे
३ बहुसू पान-सत-सहसेसु जनसि आयता (।*) तेसं ये अभिहाले वा
४ दंडे वा अत-पतिये मे कटे (।*) किंति लजूका अस्वय अभीता
५ कंमानि पवतयेवू जनस जानपदसा हित-सुखं उपदहेवू
६ अनुगहिनेवु चा (।*) सुखीयन-दुखीयनं जानिसंति धंमयुतेन च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

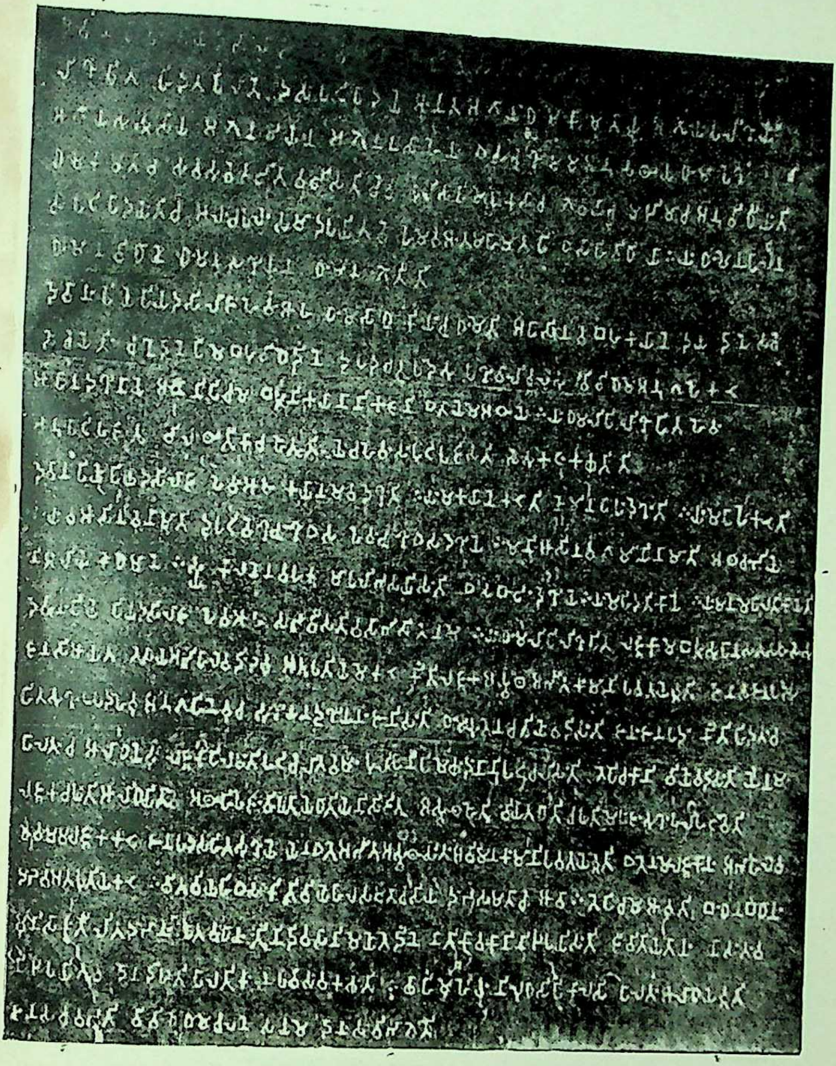

(अशोक का दिल्ली स्तम्भ लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७ वियोवदिसंति जनं जानपदं (।*) किंति हिदतं च पालतं च
८ आलाधयेवू ति (।*) **लजूका** पि लघंति पटिचलितवे मं (।*) **पुलिसानिपि मे**
९ छंदंनानि पटिचलिसंति (।*) ते पि च कानि वियोवदिसंति येन मं **लजूका**
१० चघंति आलाधयितवे (*) अथा हि पजं वियताये धातिये निसिजितु
११ अस्वथे होति वियत धाति चघति मे पजं सुखं पलिहटवे
१२ हेवं ममा **लजूका** कटा जानपदस हित-सुखाये (।*) येन एते अभीता
१३ अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतयेवू ति एतेन मे **लजूकानं**
१४ अ(f) भहाले व दंडे वा अत-पतिये कटे (।*) इछितविये (हि) एसा- (।*) किंति
१५ वियोहाल-समता च सिय दंड-समता चा (।*) अव इते पि च मे आवुति (।*)
१६ बंधन-बधानं मुनिसानं तीलित-दंडानं पत-वधानं तिंनि दिवसा (नि) मे
१७ योते दिंने (।*) नातिका व कानि निझपयिसंति जीविताये तानं
१८ नासंतं वा निझपयिता दानं दाहंति पालतिकं उपवासं व कछंति (।*)
१९ इछा हि मे हेवं निलुधसि पि कालसि पालतं आलाधयेवू ति (।*) जनस च
२० वढति विविधे धंम-चलने संयमे दान-सविभागेति (।।*)

[५ रामपुरवा का पाठ]

१ **देवानंपिये पियदसि लाज** हेवं आह (।*) **सडुवीसति-(व) साभिसितेन** मे इमानि पि जातानि अवध्यानि कटानि (।*) से यथ
२ सुके सालिक अलुने चकवाके हंसे नंदीमुखे गेलाटे जतूक अंबा-कपिलिक दुलि अनठिक-मछे वेदवेयके
३ गंगा-पुपुटके संकुज-मछे कफट-सेयके पंन-ससे सिमले संडके ओकपिंडे पलसते सेत-कपोते
४ गाम-कपोते सवे चतुपदे ये पटिभोगं नो एति न च खादियति (।*) अजका नानि एलका च सूकली च गभिनी व
५ पायमीना व अवध्य पोतके च कानि आसंमासिके (।*) वधि-कुकुटे नो कटविये (।*) तुसे सजीवे नो झापयितविये (।*)
६ दावे अनठाये व विहिसाये व नो झापयितविये (।*) जीवेन ज़ीवे नो पुसितविये (।*) तीसु चातुंमा (सी) सु तिस्यं पुंनमासियं
७ तिंनि दिवसानि चावुदसं पंनडसं पटिपदं धुवाये च अनु-पोसथं मछे अवध्ये नो पि विकेतविये (।*) एतानि येव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८ दिवसानि नाग-**वनसि** केवट-**भोगसि** यानि अंनानि पि जीव-निकायानि नो हंतवियानि (।*) अठमि-पखाये चावुदसाये
९ पंनडसाये तिसाये पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये गोने नो निलखितविये (।*) अजके एलके सूकले
१० ए वापि अंने नीलखियति नो नीलखितविये (।*) तिसाये पुनावसुने चातुं-मासिये चातुंमासि-पखाये अस्वस गोनस
११ लखने नो कटविये (।*) याव-**सडुवीसति-वसाभिसितेन** मे एताये अंतलिकाये पंनवीसति बंधन-मोखानि कटानि (।।*)

[६]

१ **देवानंपिये पियदसि लाज** हेवं आह (।*) **दुवाडस-वसाभिसितेन** मे धंम-लिपि लिखापित लोकस हित-सुखाये (।*) से तं अपहट
२ तं तं धंम-वढि पापोव (।*) हेवं लोकस हित-सुखे ति पटिवेखामि अथ इयं नातिसु हेवं पत्यासंनेसु हेवं अपकठेसु किंमं कानि
३ सुखं आवहामी ति तथा च विदहामि (।*) हेमेव सव-(नि)कायेसु पटि-वेखामि ।(*) सव-पासंडा पि मे पूजित विविधाय पूजाय (।*) ए चु इयं
४ अतन पचूपगमने से मे मोख्य-मुते (।*) **सडुवीस(ति)-वसाभिसितेन** मे इयं धंम-लिपि लिखापित (।।*)

[७]

१ **देवानंपिये पियदसि लाजा** हेवं आहा (।*) ये अतिकंतं
२ अंतलं लाजाने हुसु हेवं इछिसु कथं जने
३ धंम-वढिया वढेया नो चु जने अनुलुपाया धंम-वढिया
४ वढिया (।*) एतं **देवानंपिये पियदसि लाजा** हेवं आहा (।*) एस मे
५ हुथा (।*) अतिकंतं च अंतलं हेवं इछिसु लाजाने कथं जने
६ अनुलुपाया धंम-वढिया बढेया ति नो च जने अनुलुपाया
७ धंम-वढिया वढिथा (।*) से किनसु जने अनु(प)टिपजेया (।*)
८ किनसु जने अनुलुपाया धंम-वढिया वढेया ति (।*) (f)कनसु कानि
९ अभ्युंनामयेहं धंम-वढिया ति (।*) एतं **देवानंपिये पियदसि लाजा** हेवं
१० आहा (।*) एस मे हुथा (।*) धंम-सावनानि सावापयामि धंमानुसथिनि
११ अनुस(ा)सामि (।*) एतं जने सुतु अनुपटीपजीसति अभ्युंनमिसति
१२ धंम-वढिया[1] च बाढं वढिस(ति) (।*) एताये मे अठाये धंम-सावनानि सावा-

---

१ १२ से स्तम्भ की गोलाई में खुदा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

-पितानि धंमानुसथिनि विविधानि आनपितानि य(था*) (**पुलि***) (**स**)ा पि बहुने जनसि आयता एते पलियोवदिसंति पि पवियलिसंति पि (।*) **लजूका** पि बहुकेसु पान-सत-सहसेसु आयता(।*) ते पि मे आनपिता हेवं च हेवं च पलियोवदाथ

१३ जनं धंम-यु(त) (।*) (**देव**)**ानंपिये पियदसि** हेवं आहा (।*) एतमेव मे अनुवेखमाने धंम-थंभानि कटानि **धंम-महामाता** कटा धं(म)(सावने*) कटे (।*) **देवानंपिये पियदसि लाजा** हेवं आहा (।*) मगेसु पि मे निगोहानि लोपा-पितानि छायोपगानि होसंति पसु-मुनिसानं अंबा-वडिक्या लोपापिता (।।*) अढ(कोसि)क्यानि पि मे उदुपानानि

१४ खानापापितानि निंसि(ढ)या- च कालापिता (।*) आपानानि मे ब(हु) कानि तत तत क(ा)लापितानि पटीभोगाये पसु-मुनिसानं (।*) (ल)(हुके*) (चु*) एस पटीभोगे नाम (।*) विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च सुखयिते लोके(।*) इमं चु धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति एतदथा मे

१५ एस कट(।*) **देवानंपिये पियदसि** हेवं आहा(।*) **धंम-महामाता** पि मे ते बहुविधेसु अठेसु आनुगहिकेसु वियापटासे पवजीतानं चेव गिहियानं च सव-(पासं*)-डेसु पि च वियापटासे(।*)संघठसि पिमे कटे इमे वियापटा होहंति ति हेमेव **बाभनेसु आ(ज)ीविकेसु** पि मे कटे

१६ इमे वियापटा होहंति ति **निगंठेसु** पि मे कटे इमे वियापटा होहंति नानापासंडेसु पि मे (क)टे इमे वियापटा होहंति ति पटिविसिठं पटीविसिठं तेसु तेसु (ते) (ते)*) (**महा***)**माता** (।*) **धर्म-महामाता** चु मे एतेसु चेव विया(प)टा सवेसु च अंनेसु पासंडेसु (।*) **देवानंपिये पियदसि लाजा** हेवं आहा (।*)

१७ एते च अंने च बहुका मुखा दान-विसगसि वियापटासे मम चेव **देविनं** च (।*) सवसि च मे ओलोधनसि ते बहुविधेन आ(का)लेन तानि तानि तुठा-यतन(ा)नि पटी... हिद चेव दिसासु च (।*) **दालकानां** पि च मे कटे अंनानं च **देवि-कुमालानं** इमे दान-विसगेसु वियापटा होहंति ति

१८ धंमापदानठाये धंमानुपटिपतिये(।*) एस हि धंमापदाने धंम-पटीपति च या इयं दया दाने सचे सोचवे मदवे साध(वे) च लोकस हेवं वढिसति ति (।*) **देवानांपिये** (**पियदसि***) **लाजा** हेवं आहा (।*) यानि हि (क)ा निचि ममिया साधवानि कटानि तं लोके अनूपटीपंने तं च अनुविधियंति (।*) तेन वढिता च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१९ वढिसंति च मातापितिसु सुसुसाया गुलुसु सुसुसाया वयो-महालकानं अनुपटीपतिया बाभन-समनेसु कपन-वलाकेसु आव दास-भटकेसु संपटीपतिया (।*) **देवानंपि(ये*)** **(पि*)** **(य)दसि** लाजा हेवं आहा (।*) मुनिसानं चु या इयं धंम-वढि वढिता दुवेहि येव आकालेहि धंम-नियमेन च निझतिया च (।*)

२० तत चु लहु से धंम-नियमे निझतिया व भुये (।*) धंम नियमे चु खो एस ये मे इयं कटे इमानि च इमानि जातानि अवधियानि (।*) अंनानि पि चु बहु-(कानि*) धंम-नियमानि यानि मे कटानि (।*) निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंम-वढि वढिता अविहिंसाये भूतानं

२१ अनालंभाये पानानं (।*) से एताये अ(थ)ाये इयं कटे पुता-पपोतिके चंदम-सुलियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति (।*) हेवं हि अनुपटीपजंतं हि(द)त-(पाल)ते आलधे होति(।*) **सतविसति** वसाभिसितेन मे इयं धंमलिबि लिखापापिता ति(।*) एतं देवानंपिये आहा(।*) इयं

२२ धंम-लिबि अत अथि सिला-थंभानि वा सिला-फलकानि वा तत कटविया एन एस चिल-ठितिके सिया (।।*)

(५) गौड़ स्तम्भ लेख

रानी का स्तम्भ लेख

१ **देवानंपियषा** वचनेना सवत **महमता**
२ वतविया (।*) ए हेता दुतियाये **देवीये** दाने
३ अंबा-वडिका वा आलमे व दान-(गहे) (व) (ए) (वा) (पि) (अ)ंने
४ कीछि गनीयति ताये देविये षे (।*)नानि(हे)वं(ग*) (न) (तविये*)
५ दुतीयाये देविये ति **तीवल**-मातु **कालुवाकिये** (।।*)

कौशाम्बी स्तम्भ लेख

१ **(देवानं*)** **(पि)**ये आनपयति (।*)**कोसंबियं** महाम(ा)त
२ ......(स)म(गे) (कटे) **स(ं)घसि** नो लहिये
३ ......(संघं) (भा)खति- भि(खु) व(ा) भि(खु)नि वा (से) (पि)चा
४ (ओ*)दाता(ा)नि दुसानि (स)नंधापयितु अ(नावा)स(सि)(आ) व(ा)सयि(ये) (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सांची स्तम्भ लेख

१ ......
२ ......(य)ा भे(त)...(।*) (सं*)(घे) (स*)मगे कटे
३ (भि*)खून(ं) च भि(खुनी)नं चा ति (पु)त- प-
४ (पो*)तिके चं(द)न-(सू)रि(यि)के(।*) ये संघं
५ भ(ा)खति- भिखु वा भिखुनि वा ओदाता-
६ नि दुस(ानि) सनं(धापयि)तु अना(वा)-
७ ससि वा(सा)पेतवि(ये) (।*) इछा हि मे कि-
८ ति संघे समगे- चिल-ायतीके सिया ति (॥*)

सारनाथ स्तम्भ लेख

१ **देवा(नंपिये–)** ... ...
२ ए ल... ... ...
३ **पाट** ... ... ये- केन पि **संघे** भेतवे(।*)
ए चुं खो
४ (भिखू) (वा) (भिखु)नि वा **संघं** भ(ाखति) (से) ओदातानि दुस(ानि) (स)ं- नंधापयिया आनावाससि
५ आवासयिये (।*) हेवं इयं सासने **भिखु-संघसि** च **भिखुनि-संघसि** च विंनपयितविये (।*)
६ हेवं **देवानंपिये** आहा (।*) हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवा ति संसलनसि निखिता (।*)
७ इकं च लिपिं हेदिसमेव उपासकानंतिकं निखिपाथ (।*) ते पि च उपासका अनु-पोसथं यावु
८ एतमेव सासनं विस्वंसयितवे(।*) अनपोसथं च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये
९ याति एतमेव सासनं विस्वंसयितवे आजानितवे च(।*) आवते चतुफाकं आहाले
१० सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन(।*) हेमेव सवेसु कोट-विषवेसु एतेन
११ वियंजनेन विवासापयाथा (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(६) स्मारक स्तम्भ लेख

सम्भनदेई स्तम्भ लेख

१ **देवानपियेन पियदसिन** लाजिन **वीसति-वसाभिसितेन**
२ अतन आगाच महीयिते हिद **बुधे** जाते **सक्य-मुनी** ति (।*)
३ सिला-विगड-भीचा- कालापित सिला-थभे च उसपापिते (।*)
४ हिद **भगवं** जाते ति **लुंमिनि-गामे** उबलिके कटे
५ अठ-भागिये च (॥*)

(७) गुहा लेख

बराबर

I

१ **लाजिना पियदसिना दुवाडस-वसा (भिसितेना)**
२ (इयं) (निगोह)-कुभा दि(ना) (आजीविकेहि) (॥*)

II

१ **लाजिना पियदसिना दुवा-**
२ **डस-वसाभिसितेना** इयं
३ कुभा **खलतिक-पवतसि**
४ दिना (आजीवि)केहि (॥*)

III

१ **लाजा पियदसी एकुनवी-**
२ **सति**-वसा(भि)सिते (।*) ज(लघो)-
३ (सागम)थात (मे) इ(यं) (कुभा)
४ सुपि(ये)ख(लतिकपवतसि*) (दि)
५ ना (॥*)

नागार्जुनी गुहा लेख

I

१ वहियक(ा) कुभा **दषलयेन** देवानंपियेना
२ आनंतलियं अभिषितेना (आजीविकेहि)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ भदंतेहि- वाष-निषिदियाये निषिठे
४ आ-चंदम-षूलियं (॥*)

II

१ गोपिका कुभा **दषलथेना** देवा(न) पि-
२ येना आनंतलियं अभिषितेना आजी-
३ विके(हि) (भदं)तेहि वाष-निसिदियाये
४ निसिठा आ-चंदम-षूलियं (॥*)

I I

१ वडथिका कुभा **दषलथेना** देवानं
२ पियेना आनंतलियं अ(भि)षितेना (आ)-
३ (जी)विके हि भदंतेहि वा(ष-निषि)दियाये
४ निषिठा आ-चंदम-षूलियं (॥*)

(८) बैराट-शिला लेख

१ **पि(प्रि)यदसि लाजा मागधे संघं** अभिवादे(तू)नं आहा अप(ा)बाधतं **च** फासुविहालतं चा (।*)

२ विदिते वे भंते आवतके हमा **बुधसि धंमसि संघसी** ति गालवे चं पं(प्र)-सादे च(।*) ए केचि भंते

३ भगवता **बुधे(न)** भासिते सवे से सुभासिते वा(।*)ए चुखो भंते हमियाये दिसेया हेवं **सधंमे**

४ चिल-(ठि)तीके होसती ति अलहामि हकं तं व(ा)तवे (।*) इमानि भंते (धं)म-पलियायानि **विनय-समुकसे**

५ **अलिय-वसाणि अनागत-भयानि मुनि-गाथा मोनेय-सूते उपतिस-पं(प्र)सिने** ए चा **लाघुलो-**

६ **वादे** मुसा-वादं अधिगिच्य भगवता **बुधेन** भासिते एतानि भंते धंमपलिया-यानि इछामि

७ किंति बहुके भिखु(प)ाये चा भिखुनिये चा अभिखिनं सु(ने)यु चा उपधालयेयू चा (।*)

८ हेवंमेवा उपासका चा उपासिका चा (।*) एतेनि भंते इमं लिखा(प)यामि अभिपेतं मे जानंतू ति (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(६) स्मारक स्तम्भ लेख

सम्भनदेई स्तम्भ लेख

१ **देवानपियेन पियदसिन** लाजिन **वीसति-वसाभिसितेन**
२ अतन आगाच महीयिते हिद **बुधे** जाते **सक्य-मुनी** ति(।*)
३ सिला-विगड-भीचा- कालापित सिला-थभे च उसपापिते (।*)
४ हिद **भगवं** जाते ति **लुंमिनि-गामे** उबलिके कटे
५ अठ-भागिये च (॥*)

(७) गुहा लेख

बराबर

I

१ **लाजिना पियदसिना दुवाडस-वसा(भिसितेना)**
२ (इयं) (निगोह)-कुभा दि(ना) (आजीविकेहि) (॥*)

II

१ **लाजिना पियदसिना दुवा-**
२ **डस-वसाभिसितेना** इयं
३ कुभा **खलतिक-पवतसि**
४ दिना (आजीवि)केहि (॥*)

III

१ **लाजा पियदसी एकुनवी-**
२ **सति**-वसा(भि)सिते (।*) ज(लघो)-
३ (सागम)थात (मे) इ(यं) (कुभा)
४ सुपि(ये)ख(लतिकपवतसि*) (दि)
५ ना (॥*)

नागार्जुनी गुहा लेख

I

१ वहियक(ा) कुभा **दषलयेन** देवानंपियेना
२ आनंतलियं अभिषितेना (आजीविकेहि)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ भदंतेहि- वाष-निषिदियाये निषिठे
४ आ-चंदम-षूलियं (॥*)

II

१ गोपिका कुभा **दषलथेना** देवा(न) पि-
२ येना आनंतलियं अभिषितेना आजी-
३ विके(हि) (भदं)तेहि वाष-निसिदियाये
४ निसिठा आ-चंदम-षूलियं (॥*)

I I

१ वडथिका कुभा **दषलथेना** देवानं
२ पियेना आनंतलियं अ(भि)षितेना (आ)-
३ (जी)विके हि भदंतेहि वा(ष-निषि)दियाये
४ निषिठा आ-चंदम-षूलियं (॥*)

(८) बैराट-शिला लेख

१ **पिं(प्रि)यदसि लाजा मागधे संघं** अभिवादे(तू)नं आहा अप(I)बाधतं **च** फासुविहालतं चा (।*)
२ विदिते वे भंते आवतके हमा **बुधसि धंमसि संघसी** ति गालवे चं पं(प्र)-सादे च(।*) ए केचि भंते
३ भगवता **बुधे(न)** भासिते सवे से सुभासिते वा(।*)ए चुखो भंते हमियाये दिसेया हेवं **सधंमे**
४ चिल-(ठि)तीके होसती ति अलहामि हकं तं व(I)तवे (।*) इमानि भंते (धं)म-पलियायानि **विनय-समुकसे**
५ **अलिय-वसाणि अनागत-भयानि मुनि-गाथा मोनेय-सूते उपतिस-पं(प्र)सिने** ए चा **लाघुलो-**
६ **वादे** मुसा-वादं अधिगिच्य भगवता **बुधेन** भासिते एतानि भंते धंमपलिया-यानि इछामि
७ किंति बहुके भिखु(प)ाये चा भिखुनिये चा अभिखिनं सु(ने)यु चा उपधालयेयू चा (।*)
८ हेवंमेवा उपासका चा उपासिका चा (।*) एतेनि भंते इमं लिखा(प)यामि अभिपेतं मे जानंतू ति (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुङ्ग कालीन तथा आंध्र-वंशी लेख

भारहुत वेदिका स्तम्भ लेख

१ **सुगनं रजे** रञो गागी-पुतस **विसदेवस**
२ पौतेण गोति-पुतस आगरजुस पूतेण
३ वाछि-पुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां
४ सिला-कंमंतो च उपंण (॥*)

वेसनगर का गरुड़स्तम्भ लेख

[१]

१ (दे)वदेवस **वा(सुदे*)वस** गरुडध्वजे अयं
२ कारिते इ(अ) **हेलिओदोरेण भाग-**
३ **वतेन** दियस पुत्रेण **तखसिलाकेन**
४ **योन-**दूतेन (आ)गतेन महाराजस
५ **अंतलिकितस** उप(*)ता सकासं रञो
६ (को)सीपु(त्र)स **(भ)गभद्रस** त्रातारस-
७ **वसेन च(तु)दसेंन** राजेन वधमानस (॥*)

[२]

१ त्रिनि अमुत-पदानि (इअ*) (सु)-अनुठितानि
२ नेयंति (स्वगं) दम चाग अप्रमाद (॥*)

घोसुडी शिला लेख

१ (कारितो अयं राज्ञा भागव*) (ते)न गाजायनेन पाराशरी-पुत्रेण **स-**
२ **(वंतातेन अश्वमेध-या*)** जिना भगव(द्*)भ्यां **संकर्षण-वासुदेवाभ्यां**
३ (अनिहताभ्यां सर्वेश्वरा*)भ्यां पूजा-शिला-प्राकारो **नारायण-**वाटका
(॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

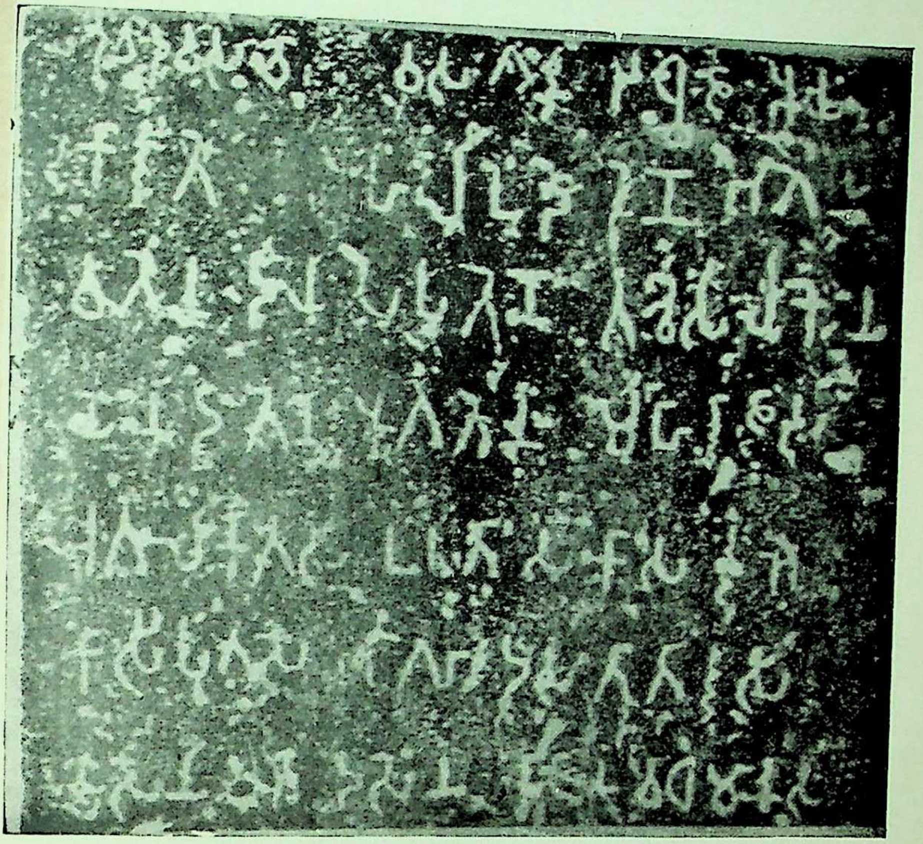

(वेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धनदेव का अयोध्या शिला लेख

१ कोसलाधिपेन **द्विरश्वमेध-याजिनः** सेनापतेः **पुष्यमित्रस्य** षष्ठेन कौशिकी पुत्रेण **धन** . . .
२ धर्मराज्ञा पितुः **फल्गुदेवस्य** केतनं कारितं (॥*)

मौखरि वंशी बडवा यूप लेख

[१]

१ सिद्धं (*।) क्रितेहि २०० [+ *]९०[+ *] ५ फ(।–)ल्गुणशुल्कस्य पञ्चे दि० श्रि-महासेनापतेः **मोखरेः बल**-पुत्रस्य बलवर्द्धनस्य यूपः(।*) **त्रिरात्र-संमितस्य** दक्षिण्यं गवां सहस्रं (१०००) (।*)

[२]

१ सिद्धं(।*)क्रितेहि २००[+ *]९०[+ *]५ फ(ा)ल्गुण-शुक्लस्य पञ्चे दि० श्री-महासेनापतेः **मोखरेः बल**-पुत्रस्य सोमदेवस्य यूपः (*।) **त्रिरात्र-संमितस्य** दक्षिण्यं गव(ां)सह(स्रं) (१०००)-(।*)

[३]

१ क्रितेहि २००[+ *]९०[+ *]५ फ(*ा)ल्गुण-शुक्लस्य पञ्चे (f)-द० श्रीमहा-सेनापते(ः*) **(मो)खरे-**
२ **बल**-पुत्रस्य बलसिंहास्य यूपः (*।) **त्रिरात्र-संमितस्य** दक्षिण्यं गवां सहस्रं (१०००) (।*)

मिलिन्द कालीन लेख

(शरीर के भस्मपात्र पर उत्कीर्ण)

[१]

... ...**मिनेद्रस** महरजस **कटिअस** **दिवस** ४[+ *] ४[+ *] ४[+ *]१ [+ *]१ प्र(ण-(स)मे(द)... (शरीर)

A

.. ...(प्रति*)(थवि)त (।*)

A

प्रण-समे(द) (शरिर*) (भगव*)(तो) **शकमुनिस** (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

B

वियकमित्र अप्रच-रजस (।*)

[२]

C

१ **विजय (मित्रे)ण...** २ पते प्रदिथविदे

D (पात्र के भीतर)

१ इमे शरिर पलुग भुद्रओ न सकरे अत्रित (।*) स शरिअत्रि कलद्रे नो शध्रो न पिंडोयकेयि पित्रि ग्रिणयत्रि (।*)

२ तस ये पत्रे अपोमुअ (।*) **वषये पंचमये** ४[+ *]१ **वेश्रखस मसस दिवस पंचविश्रये** इयो

३ पत्रियवित्रे **विजयमित्रेन** अप्रचरजेन भग्रवतु **शकिमुणिस** सम-स(ं)बुधस शरिर(।*)

E

विश्पिलेन अणंकतेन लिखित्रे (।*)

खारवेल का हाथी गुम्फा लेख

१ नमो अरहंतानं (।*) नमो सव-सिधानं (॥*) **ऐरेण** महाराजेन **महामेघवाहनेन चेति**-राज-व(ं)स-वधनेन पसथ-सुभ-लखनेन चतुरंत-लुठ-(ण)-गुण-उपितेन **कलिंगाधिपतिना** सिरि**खारवेलेन**

२ **(पं)दरस-वसानि** सीरि-(कडार)-सरीर-वता कीडिता कुमार-कीडिका (॥*) ततो लेखरूप-गणना-ववहार-विधि-विसारदेन सव-विजावदातेन **नव-वसानि** योवराज (प)सा-सितं (॥*) संपुंण-**चतुवीसति-वसो** तदानि वधमानसेसयो-वेनाभिविजयो ततिये

३ **कलिंग**-राज-वसे पुरिस-युगे महराजाभिसेचनं पापुनाति (॥*) अभिसितमतो च **पधमे वसे** वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति **कलिंग-नगरि-खिबी(रं)** (।*) सितल-तडाग-पाडियो च बंधापयति सवूयान-प(टि)संथपनं च

४ कारयति पनति(सि?)साहि सत-सहसेहि पकतियो च रंजयति (॥*) **दुतिये** च **वसे** अचितयिता **सातकंनि** पछिम-दिसं हय-गज-नर-रध-बहुलं दंडं पठापयति (।*) **कन्हबेंणा**-गताय च सेनाय वितासिति **असिकनगरं**(॥*) **ततिये** पुन **वसे**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५ गंधव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित-संदसनाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिं (।।*) तथा **चवुथे वसे विजाधराधिवासं** अहतपुवं **कलिंग** (?-) पुव-राज-(निवेसितं) ....वितध-म(कु)ट ....च निखित-छत(?)-

६ भिंगारे(हि)त-रतन-सपतेये सव-**रठिक-भोजके** पादे वंदापयति(।।*) **पंचमे** च दानी **वसे नंद-राज-ति-वस-सत**-ओ(घा)टितं **तनसुलिय-वाटा** पणाडिं नगरं पवेस(य)ति सो......(।*)(अ*)भिसितो च(**छठे वसे***)राजसेयं संदंसयंतो सवकर-वण--

७ अनुगह-अनेकानि सत-सहसानि विसजति पोर-जानपदं (।।*) **सतमं** च **वसं** (पसा)सतो वजिरघर...... स मतुक पद......(कु) प......(।*)...... **अठमे** च **वसे** महता सेन(ा)......**गोरधगिरिं**

८ घातापयिता **राजगहं** उपपीडपयति (।*) एतिन(ा) च कंमपदान-स(ं)नादेन ......सेन-वाहने विपमुचितुं **मधुरं** अपयातो **यवनरा(ज)** (डिमित?) ......यछति......पलव...

९ कपरुखे हय-गज-रथ-सह यति सव-घरावास......सव-गहणं च कारयितुं ब्रह्मणानं ज(य)-परिहारं ददाति(।*) अरहत...(**नवमे** च **वसे***)...

१० ....**महाविजय**-पासादं कारयति अठतिसाय सत-सहसेहि (।।*) **दसमे** च **वसे** दंड-संधी-सा(ममयो)(?) **भरधवस**-पठा(?)न मह(ी) जयनं(?) ......कारापयति (।।*) (**एकादसमे** च **वसे***)......प(ा) यातानं च म (नि)-रतनानि उपलभते(?)

११ ......पुवं राज-निवेसितं **पीथुंडं** गदभ-नंगलेन कासयति (।*) जन(प)द-भावनं च तेरस-वस-सत-कतं भि(ं)दति **तमिर**-दह(?)-संघातं (।*) **बारसमे** च वसे............(सह) सेहि वितासयति **उतरापथ**-राजानो......

१२ **म(ा)गधानं** च विपुलं भयं जनेतो हथसं **गंगाय** पाययति (।*) **म(ाग)ध(ं)** च राजानं **बहसतिमितं** पादे वंदापयति (।*) **नंदराज**-नीतं च **का(लि)**ंग-जिनं संनिवेस...... **अंग-मगध**-वसुं च नयति(।।*)...

१३ ......(क)तु(ं) जठर-(लखिल-(गोपु)राणि सिहराणि निवेसयति सत-विसिकनं (प)रि-हारेहि(।*) अभुतमछरियं च हथी-निवा(स) परिहर.... हय-हथि-रतन-(मानिकं) **पंडराजा**.....(मु)त-मनि-रतनानि आहरापयति इध सत-(सहसानि)

१४ ......सिनो वसीकरोति (।*) **तेरसमे** च **वसे** सुपवत-विजय-चके **कुमारीपवते** अरहते[हि*] पखिन-सं(सि)तेहि **कायनिसीदियाय**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यापूजावकेहि राजभितिनि चिन-वतानि वास(।) (सि)तानि पूजानुरत-
उवा(सग-**खा**)**रवेल**सिरिना जीवदेह(सयि)का परिखाता (।।*)
१५ ......सकत-समण सुविहितानं च सव-दिसानं ञ(नि)नं(?) तपसि-
इ(सि)न संघियनं **अरहतनिसीदिया**-समीपे पाभारे वराकार-समुथा-
पिताहि अनेकयोजना-हिताहि......सिलाहि ....
१६ .... चतरे च वेडुरिय-गभे थभे पतिठापयति पानतरीय-सत-
सहसेहि (।*) मु(खि)य-कल-वोछिनं च चोय(ठि)-अंग संतिक(ं)
तुरियं उपादयति (।*) खेम-राजा स वढ-राजा स भिखु-राजा
धम-राजा पसं(तो) सुनं-(तो) अनुभव(तो)कलानानि
१७ ......गुण-विसेस-कुसलो सव-पासंड-पूजको सव-दे(वाय)तन-सकारकारको
अपतिहत-चक-वाहनबलो च धरो गुतचको पवतचको राजसि**वसू**-कुल-
विनिश्रितो महाविजयो राजा **खारवेलसिरि** (।।*)

खारवेली महिषी का मचपुरी लेख

१ अरहंत पसादाय **कलिंगा**(न) (सम)नानं लेन कारितं (।*) राजिनो **ललाक(स)**
२ **हथि(सि)हस** पपोतस धु(तु)ना(या?) **कलिंग**-च(कवतिनो सिरि-**खार***)**वेलस**
३ अगमहिसि(य?)। (कारितं) (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सातवाहन वंशी लेख

नालिक-गुहा लेख

१ **सादवाहन-कु**(ले) **कन्हे** राजिनि **नासिककेन**
२ समणेन महामातेण लेण(ं) कारित(ं) (।।*)

नानाघाट गुहा चित्र लेख

[१]

१ राया **सिमुक-सातवाह-** २ **नो** सिरिमातो (।।*)

[२]

१ देवि-**नायनिकाय** रञो २ च सिरि-**सातकनिनो** (।।*)

[३]

१ कुमारो भा- २ य... (।।*)

[४]

महारठि त्रनकयिरो (।।*)

[५]

कुमरो हकुसिरि (।।*)

[६]

कुमारो सातवाहनो (।।*)

नागनिका का नानाघाट गुहालेख

१ (सिधं।*)...नो **धंमस** नमो **ईदस** नमो **संकंसन-वासुदेवानं चंद-सूरानं** (महि)मा(व)तानं चतु नं चं लोकपालानं **यम--वरुन-कुबेर-वासवानं** नमो (।।*) कुमारवरस **ख**(**द**)**सिरिस** र(ञो)
२ ... ...(व)ीरस थेरस अ-प्रतिहत-चकस **दखि**(**नप***)**ठ**-(पतिनो*)...

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ (मा)......(बाला*)य महारठिनो **अंगिय**-कुल-वधनस सगर-गिरिवर-वल(या)य पथविय पथम-वीरस वस...य व अलह (वंतठ?)...... सलसु ...महतो मह...

४ **सिरिस...** भारिया देवस पुतदस वरदस कामदस धनदस (**खद**) **सिरि**-मातु **सतिनो सिरिमतस** च मातु(य) सीम...........

५ वरिय... ...ा (न)ागवर-दयिनिय मासोपवासिनिय गह-तापसाय चरित ब्रम्हचरियाय दिख-व्रत-यञ्ञ-सुंडाय यञ्ञा हुता धूपन-सुगंधा य निय... ...

६ **रायस.....** (य*)ञेहि यिठं(।*)वनो । **अगाधेय** यंञो द(खि)ना दिना गावो वारस १०[+*]२ असो च १(।*)**अनारभनियो** यंञो दखिना धेनु.........

७ ....दखिनायो दिना गावो १०००[+*] ७०० हथी १०.........

८ ....स...ससतरय (व)ासलठि २००[+*] ८०[+*]९ कुभियो रुपामयियो १०[+*]७ भि... ... ...

९ ....**रिको** यंञो दखिनायो दिना गावो १००००[+*] १००० असा १००० पस(पको*)...

१० ....१०[+*]२ गमवरो १ दखिना काहापना २००००[+*] ४०००[+*]४०० पसपको कहापना ६०००।- **राज(सूयो** यंञो*) ... ...सकटं द्वितीय अंश

११ धंञगिरि-तंस-पयुतं सपटो १ असो १ अस-रथो १ गावीनं १००(।*) **असमेधो** यंञो वितियो (यि*)ठो दखिनायो (दि)ना असो रुपाल-(ंका)रो १ सुवंन...नि १०[+*]२ दखिना दिना काहापना १०००० [+*] ४००० गामो १ (हठि)... ... ...(दखि)ना दि(ना)

१२ गावो— सकटं धंञगिरितस-...पयुतं...(।*) ***ावायो** यंञो... ...१० [+*] ७ (धेनु?)... ... ...(*)ा(*)ावाय...सतरस

१३ ....१०[+*]७ अच...न...लय...पसपको दि(नो)... ...(दखि) ना दिना सु ...पीनि १०[+*]२ अ(?)सो रुप(ालं)कारो १ दखिना काहाप(ना) १००००......२

१४ ... ...गावो २०००० (।*) (**भगल)-दसरतो** यंञो यि(ठो) (दखिना) (दि)ना (गावो) १०००० । **गर्गतिरतो** यञा यिठो (दखिना)... ... पसपको पटा ३०० । **गवामयनं** यञो यिठो (दखिना दिना) गावो १००० [+*]१०० । ......गावो १०००[+*] १००(?)पसपको काहापना... पटा १०० (।*) **अतुयामो** यञो.......

१५ ... ...(**ग)वामयनं** य(ञो) दखिना दिना गावो १०००० [+*] १०० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंगिरस(ा)**-मयनं** यञो यिठो (द)खिना गावो १००० [+*]१००। त... ...(दखिना दि)ना गावो १०००[+*]१००। **सतातिरतं** यञो...... १००...(।*)...(य)ञो दखिना ग(ा)(वो) १००० [+*] १०० (।*)**अंगिरस(ति)रात्रः** यञो यिठो(दखि)ना गा(वो)...(।*)...

१६ ...(गा)वो १०००[+*] २(।*) **छन्दोमप(व)मा(नतिरात्रः)** दखिना गावो १०००। **अं(गि)र(सतिर)तो** यं(ञो)(यि)ठो द(खिना)...**रतो** यिठो यञो दखिना दिना...(।*)...**तो** यंञो यिठो दखिना...(।*)...यञो यिठो दखिना दिना गावो १०००।

१७ .. ..न स सयं... ...दखिना दिना गावो......त...(।*)**(अं)गि(रसा) मयनं** छवस......(दखि)ना दिन गाव १०००...(।*)...(दखिना) दिना गावो १०००। **तेरस**......अ...(।*)

१८ ......(।*)**तेरसरतो** स...छ...(अ)ाग-दखिना दिना गावो...(।*)... **दसरतो** म...(दि)ना गावो १००००। उ.........१००००। द.........

१९ ....(यं)ञो दखिना दि(ना).........

२० ....(द)खिना दिना.........

गोतमी पुत्र शातपर्णी का नासिक गुहालेख

(तिथि १८ वर्ष)

१ सि(धं) (।।*) सेनाये (वे)जयं(त)ये विजय-खधावारा **(गो)वधनस बेनाकटक**-स्वामि **गोतमि-पुतो** सिरि-**सदकणि**

२ आनपयति **गोवधने** अमच (विराहु)पालितं(।*) गामे **अपर-कखडि(ये)** (य) खेतं अजकालकियं **उसभदातेन** भूतं निवतन

३ सतानि वे २०० एत अम्ह-खेत निवतण-सतानि बे २०० इमेस पवजितान **तेकिरसिण** वितराम (।*) एतस चस खेतस परिहार

४ वितराम अपावेसं अनोमस अलोण-खा(दकं) अरठसविनयिकं सवजा-तपारिहारिक च (।*) ए(ते)हि नं परिहारेहि परिह (र) हि (।*)

५ एते चस खेत-परिहार(रे) च एय निबधापेहि (।*) अवियेन आणतं (।*) अमचेन सिवगुतेन छतो (।*) महासमियेहि उपरखितो (।*)

६ दता पटिका **सवछरे** १०(*।)८वास-पखे २दिवसे १(।*)तापसेन कटा(।।*)

गोतमी पुत्र शातकर्णी का नासिक गुहालेख

(तिथि २४ वर्ष)

१ **सिद्धं** (।।*) **गोवधने** अम(च)स सामकस (दे)यो (रा)जाणितो(।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ रञो **गोतमिपुतस सातकणि (स)** म(ह)देवीय च जीवसुताय राजमातुय वचनेन **गोवधने** (अम*) चो सामको आरोग वतव (।*) ततो एव च
३ वतवो (।*) एथ अम्हेहि पवते **तिरण्हुम्हि** अम्ह-धमदाने लेणे पतिवसतानं पवजितान भिखन गा(मे) **कखडीसु** पुव खेतं दत (।*) त च खेत
४ (न) कसते (।*) सो च गामो न वसति (।*) एवं सति य दानि एथ नगर-सीमे राजकं खेतं अम्ह-सतकं ततो एतेस पवजितान भिखूनं **तेरण्हुकानं** दद(म)
५ खेतस निवतण-सतं १०० (।*) तस च खेतस परिहार वितराम अपावेस अनोमस अ-लोण-खादक अ-रठ-सविनयिक सव-जात-पारिहारिक च (।*)
६ एतेहि न परिहारेहि परिहरेठ (।*) एत चस खेतपरीहा(रे) च एथ निबधापेथ (।*) अवियेन आणत (।*) पटिहार(र*)-रखिय लोटाय छतो लेखो (।*) **सवछरे** २०[+ *]४
७ वासान पखे ४ दिवसे पचमे ५ (।*) सुजिविना कटा (।*) निबधो-निबधो **सवछरे** २०[+ *]४ गिंहान पखे २ दिवसे १० (॥*)

पुलमावी का कार्ले गुहा-लेख

(तिथि ७ वर्ष)

१ रञो वासिठिपुतस सामि-सिरि-**(पुलुमाविस*) सवछरे सतमे** ७ गिम्ह-पखे पचमे ५
२ दिवसे पथमे १ एताय पुवाय ओखलकियानं महार(थि)स कोसिकि-पुतस मित-देवस पुतेन
३ (म*)हारथिना वासिठिपुतेन सोमदेवेन गामो दतो **वलुरक**-संघस **वलुरक**-लेनस स-करुकरो स-देय-मेयो (॥*)

पुलमावी का नासिक गुहालेख

(तिथि १९ वर्ष)

१ सिद्धं (॥*) रञो वासिठीपुतस सिरि-**पलुमायिस सवछरे इकुनवीसे** १०[+ *] ९ गीम्हाणं पखे बितीये २ दिवसे तेरसे १०[+ *]३ राजरञो **गोतमी-पुतस हिमव(त)-मेरु**
२ **मंदर**-पवत-सम-सारस **असिक-असक-मुलक-सुरठ-कुकुरापरंत-अनुप-विदभ-आकारावंति**-राजस **विभछवत-पारिचात-सय्ह(ह्य)-कण्हगिरि-सचसिरि-टन-मल-यमहिद-**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ **सेटगिरि-चकोर-**पवत-पतिस सवराज(लोक)म(˙)डल-पतिगहीत-सासनस दिवसकर-(क)र-विबोधित-कमलविमल-सदिस-वदनस तिसमुद-तोय-पीत-वाहनस पतिपू(˙)ण-चद-मडल-ससिरीक-

४ पियदसनस वर-वारण-विकम-चारु-विकमस भुजगपति भोग-पीन-वाट-विपुल-दीघ-सुद(र*)-भुजस अभयोदकदान-किलिन-निभय-करस अविपन-मातु-सुसूसाकस सुविभत-तिवग-देस-कालस

५ पोरजन-निविसेस-सम-सुख-दुखस खतिय-दप-मान-मदनस **सक-यवन-पल्हव-**निसूदनस धमोपजित-कर-विनियोग-करस कितापराधे पि सतु-जने अ-पाणहिसा-रुचिस दिजावर-कुटूब-विवध-

६ नस **खखरात-**वस-निरवसेस-करस **सातवाहनकुल-**यस-पतिथापन-करस सव-मंडला-भिवादित-च(र*)णस विनिवतित-चातूवण-संकरस अनेक-समरावजित-सतु-सघस अपराजित-विजयपताक-सतुजन-दुपधसनीय-

७ पुरवरस कुल-पुरिस-परपरागत-विपुल-राज-सदस आगमान (नि)लयस सपुरिसानं असयस सिरी(ये) अधिठानस उपचारान पभवस एककुसस एक-धनुधरस एक-सूरस एक-बम्हणस राम-

८ केसवाजुन-भीमसेन-तुल-परकमस छण-घनुसव-समाज-कारकस नाभाग-नहुस-जनमेजय-सकर-य(या)ति-रामावरीस-सम-तेजस अपरिमितमखयमचितभुत पवन-गरुल-सिध-यख-राखस-विजाधर-भूत-गधव-चारण-

९ चद-दिवाकर-नखत-गह-विचिण-समरसिरसि जित-रिपु-सघस नागवर-खधा गगनतल-मभिविगाढस कुल-विपु(लसि)रि-करस सिरि-**सातकणिस** मातुय महादेवीय **गोतमीय बलसिरीय** सचवचन-दान-खमाहिसा-निरताय तप-दम-निय-

१० मोपवास-तपराय राजरिसिवधु-सदमखिलमनुविधीयमानाय कारित देयधम (केलासपवत*)-सिखर-सदिसे **(ति)रण्हु**-पवत-सिखरे विम-(ान*)वर-निविसेस-महिढीकं लेण(।*) एत च लेण महादेवी महाराज-माता महाराज-(पि)तामही ददाति निकायस **भदावनीयान** भिखु-सघस (।*)

११ एतस च लेण(स) चितण-निमित महादेवीय अयकाय सेवकामो पिय-कामो च ण(ता) * * * * **(दखिणा*)पथेसरो** पितु-पतियो धमसेतुस (ददा)ति गामं **तिरण्हु-**पवतस अपर-दखिण-पसे **पिसाजिपदक** सव जात-भोग-निरठि (॥*)

पुलभावी का नासिक गुहा लेख

(तिथि २२ वर्ष)

१ सिद्धम् । **नवनर-**स्वामी **वासिठी-पुतो** सिरि-**पुलुमवि** (आ)नपयंति **गोवधने** आमच

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ सिवखदिल य अ(म्हे हि) **सव १०** [+ *]९ गि प २ दिव १०[+ *] ३ **धनकट**-समनेहि यो एथ (पवते) तिर(ण्हुम्हि*)...न धं(म)सेतुस(ले)णस पटिसंथरणे (दत) अखय(नीवि*)-हेतु एथ **गोवधनाहारे** दखिण-मगे गामो **सुदिसणा** भिखुहि देवि-लेण-वासीहि निकायेन भदायनियेहि (प)तिगय दतो (।*) एतस दान-गामस सुदिसन(स) परिवटके एथ **गोवधन**(हारे)पुव-मगे

३ गाम **समलिपद** ददाम (।*) एत त मह-अइरकेन ओदेन धमसेतुस लेणस पटिसंथरणे अखय-निवि-हेतु गाम सामलिप(द) (भिखुहि देवि)--लेण-(वासीहि*) (निका)येन भदायनियेहि पति(ग)ग्ह-(ओ)यप (पे)हि (।*) एतस च गामस **सामलि-(पदस** भिखुहल-परिहार)

४ वितराम अपा(वे)स अनोमस अ(लो)णखादक अरठसविनविक सवजात-पारिहारिक च (।*) एतेहि न परिहारेहि परिहरेहि (।*) एत च गाम-**समलिपद**-प(रि)हारे च एथ निबधापेहि **सु(दिसन)** गामस च (।*) सुदिसना(स)- विनिब(ध*)कारेहि अणता (।*) महासेनापतिना मेधुनेन ......ना छतो (।*) बटि(का)......केहि ......तो (।*) दता पटिका **सव २२** गि पखे * दिव ७(।*) * तकणिना कटा (।*) **गोवधन**-वाथवान फा(सुकाये) विराहुपालेन स्वामि-वणन णत (।*) नम भगत-सपति-पतपस जिनवरस बुधस (।।*)

पुलभावी का कार्ले गुहा लेख

(तिथि २४ वर्ष)

१ सिध (।*) रञो वासिठिपुतस सिरि-**पुलमाविस सवछरे चतुविसे २०** [+ *] ४ **हेमंतान पखे ततिये ३ दिवसे** बि-

२ तिये २ उपासकस हरफरणस सेतफरण-पुत्तस्य सोवसकस्य **अबुलामाय** वथवस्य इम देयधम मडपो

३ नव-गभ माहासघियानं परिगहो सघे चातुदिसे दिन मातापितुनं पुजा-(ये*) सव-सतानं हित-सूघ-स्थतये (।*) **एक(वि)से सं-**

४ **वछरे** निठितो सहेत च मे पुन बुधरखितेन मातर चस्य दि...उपासिकाय (।*) बुधरखितस मातु देयधंम पिठो अनो (।।*)

यज्ञ शातकर्णी का नासिक गुहा-लेख

(तिथि ७ वर्ष)

१ सिधं (।*) रञो **गोतमिपुतस** सामि-सिरि-**यञ-सातकणिस सवंछरे सातमे** ७ हेमताण पखे ततिये ३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ दिवसे पथमे कोसिकस **महासे(णा)पतिस** (भ)वगोपस भरिजाय माहसेणापतिणिय वासुय लेण

३ बोपकि-यति-सुजमाने अपयवसित-समाने वहुकाणि वरिसाणि उकुते पयवसाण नितो चातुदि-

४ सस च भिखु-सघस आवसो दतो ति ॥

इच्छाकुवंशी वीर पुरुषदत्त

का नगार्जुनी कोंडा लेख

[१]

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो देवराज-सकतस सुपबुध-बाधिनो सवंञुनो

२ सव-सतानुकंपकस जित-राग-दोस-मोह-विपमुतस महागणि-वसभ-

३ (गं)धहधिस **संम-सं(बुध)स** धातुवर-परिगहितस (।*) महाचेतिये महाराजस

४ विरूपखपति-महासेन-परिगहितस हिरण कोटि-गोसतसहस हलस-

५ तसह(स)-दायिस सवथेसु अपतिहतसंकपस वासिठिपुतस **इस्वाकुस**

६ सिरि-**चातमूलस** सोदरा भगिनि रंञो माढरीपुतस सिरि-**विरपुरिसदतस**

७ पितुछा महासेनापतिस महातलवरस वासिथी-पुतस **पूकीयानं** कंदसिरि (स)

८ भरिया समण-बमण–कवण-वनिजक-दीनानुगह-वेलामिक-दान-पटिभागवो-

९ छिन-धार-पदायिनि सव-साधु-वछला महादानपतिनि महातलवरि खंदसागरंनक माता

१० च(ा)तिसिरि अपनो उभयकुलस अतिछितमनागतवटमानकानं परिनाभेतुनं

११ उभय-लोक-हित-सुखावहथनाय च अतनो च निवाण-संपति-संपादके

१२ सव-लोक-हित-सुखावहथनाय च इमं खंभं पतिथपितं ति (।*)

१३ रंञो सिरि-**वीरपुरिसदतस सव** ६ वा प ६ दि १० (॥*)

[२]

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो देवराज-सकतस सुपबुध-बोधिनो संवंञुनो सवसत(ानु*)

२ कंपकस जित-राग-दोस-मोह-विपमुतस महागणि-वसभ-गंधहथिस

३ **संम-संबुधस** धातुवर-परिगहितस (।*) महाचेतिये **उजनिका**-महार-बलिका

४ महादेवि **रुद्रधरभटरिका** इमं सेल-खंभं अपनो हित-सुख-निवाणथनाय पतिठपितं (।*)

५ महातलवरिहि च पूकियानं चांतिसिरिणिकाहि इमस महाविहारस महाचेतियं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६ समुथपियमाने महातलवरीय उभयिता **दिनारि-मासका** सतरि-सतं १०० [+*]७० खंभो च(।*)

७ रंञो सिरि-**विरपुरिसदतस संव** ६ वाप ६ दिव १० (॥*)

[३]

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो देवराज-सकतस **संम-संम-संबुधस** धातुवर-

२ परिगहितस (।*) महाचेतिये महारजस विरूपखपति-महासेन-परिगहितस

३ **अगिहोतागिठोगिठोम-वाजपेयासमेध-**याजिस हिरणकोटि-गोसत-

४ सहस-हलसतसहस-पदायिस सवथेसु अपतिहत-संकपस

५ वासिठी-पुतस **इखाकुस** सिरि-**चातमूलस** सोदराय भगिनिय हंम-

६ सिरिंणिकाय बालिका रंञो सिरि-**विरपुरिसदतस** भया महादेवि **बपिसिरिणिका**

७ अपनो मातरं हंमसिरिणिकं परिनमतुन अतने च निवाण-संपति-सपादके

८ इमं सेलथंभं पतिठपितं (।*) अचरि(या)नं **अपरमहाविनसेलियानं** सुपरिगहित(˙*)

९ इमं महाचेतिय-नवकमं (।*) पंणगाम-वथवानं दीघ-मझिम-पंद-म (ा) तुक-देस(क-वा*)-चकानं

१० अ(च*)रयान अयिर-हघान अंतेवासिकेन दीघ-म(झिम*)-निगय- धरेन भदंतानं-देन

११ निठपित(˙) इम(˙) नवकम(˙) महाचेतियं खंभा च ठपिता ति(।*) रञो सरि-**विरिपुरिसदतस**

१२ **संव** ६ वा प ६ दिव १० (॥*)

वीर पुरुषदत्त का नागार्जुनी कोंडा लेख

(तिथि १४ वर्ष)

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो **इखाक**राज-पवररिसिसतपभव-वंस-संभवस देव-मनुस-सव-सत-हित-सुख-मग-देसिकस जित-काम-कोध-भय-हरिस- तरिस-मोह-दोसस दपित-मार-बल-दप-मान-पसमन-करस दसबल-महबलस अठग-मग–धमचक पवतकस चक-लखण-सुकुमार-सुजात-चरणस तरुण-दिवसकर-पभस सरद-ससि-सोम-दरिसनस सव-लोक-चित-महितस **बुधस** (।*) रंञो मा(ढ)रिपु(त*)(स) **(संवछरं*) चोदं १० [+*]४** हेमंत-पखं छठं ६ दिवसं तेरं १०[+*] ३(।*) (भ*)(दं)त-(रा)जाचरीयानं **कस्मीर-गंधार-चीन-चिलात-तोसलि-अवरंत-वंग-वनवासी-(यवन)-(दमिल)-(प)लूर-तंबपंणिदीप-**पसदकानं थेरियनं **तंबपंणकानं** सुपरिगहे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ **सिरिपवते विजयपुरीय** पुव-दिसा-भागे विहारे **चुल-धंमगिरीयं** चेतिय घरं सपट-संथरं स-चेतीयं सव-नियुतं कारितं उवासिकाय वोधिसिरिय अपनो भतुनो वुधि(ं)नकस पितुनो च से **गोवगाम**-वयवस रेवत-गहपतिस मातुय च स वुधंनिकाय भातुनं च से चंदमुस्त्रनस करुंत्रुधिनस हधंनस भगिनीय च रेवतिनिकाय भातु-पुतानं च महाचंदमुख-चुलचंदमुखानं भागिनेयानं च महामूल-चुलमूलानं अपनो च अयकस मूल-वानियस अयिकाय वुधवानिकि(नाय) मातुलक.........कोठ(ा)-कारिकस भदस बोधिसंमस चंदस बोधिक (स) महामातुकाय भदि-(ला) य बोधिय च अपनो (पितुनो) वुधि(वा)नियस मा(तुय).........

३ भातुनो मूलस भगिनीनं वुधंनिकाय मूलंनिकाय नागबोधिनिकाय धूतुय वीरंनिकाय पुतानं नागंनस वीरंनस च सुंन्हानं च भदसिरि-मिसीनं(।*) एवमेव च **कुलह-विहारे** चेतियघरं **सीहल**-विहारे बोधि-रुख-पासादो **महाधंमगिरीयं** ओवरको १ महावि(हा*)रे मंडव-खंभो(१?) **देवगिरियं** पधान-साला **पुवसेले** तलाक(ं) अल(ं)दा-मडवो च **कंटकसोले** महाचेतियस पुव-दारे सेल-मंडवो **हिरुमुठुवे** ओवरका तिंणि ३ **पपिलायं** ओवरका सत ७ **पुफगिरीय**(ं) सेल-मंडवो **धं**-..........विहारे सेल-मंडवो (१?) (।*) एतं च सवं उपरि-वंणि(तं*) ......(सा*) धुवगस अचत-हित-सुखाय थवितं सव(स) च लोकस (।*) इमं नवकंमं तिंहि नवक(ं)मिकेहि कारितं चंदमुख-थेरेन च

४ धंमनंदि-थेरेन च नाग-थेरेन च (।*) सेल वढाकिस विधिकस कंमं ति (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६ समुथपियमाने महातलवरीय उभयिता **दिनारि-मासका** सतरि-सतं १००
[+*]७० खंभो च(।*)
७ रंञो सिरि-**विरपुरिसदतस संव ६** वाप ६ दिव १० (॥*)

[३]

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो देवराज-सकतस **संम-संम-संबुधस** धातुवर-
२ परिगहितस (।*) महाचेतिये महारजस विरूपखपति-महासेन-परिगहितस
३ **अगिहोतागिठोगिठोम-वाजपेयासमेध-**याजिस हिरणकोटि-गोसत-
४ सहस-हलसतसहस-पदायिस सवथेसु अपतिहत-संकपस
५ वासिठी-पुतस **इखाकुस** सिरि-**चातमूलस** सोदराय भगिनिय हंम-
६ सिरिणिकाय बालिका रंञो सिरि-**विरपुरिसदतस** भया महादेवि**बपिसिरिणिका**
७ अपनो मातरं हंमसिरिणिकं परिनमतुन अतने च निवाण-संपति-सपादके
८ इमं सेलथंभं पतिठपितं (।*) अचरि(या)नं **अपरमहाविनसेलियानं**
सुपरिगहित(।*)
९ इमं महाचेतिय-नवकमं (।*) पंणगाम-वथवानं दीघ-मझिम-पंद-म(ा)तुक-
देस(क-वा*)-चकानं
१० अ(च*)रयान अयिर-हघान अंतेवासिकेन दीघ-म(झिम*)-निगय- धरेन
भदंतानं-देन
११ निठपित(ं) इम(ं) नवकम(ं) महाचेतियं खंभा च ठपिता ति(।*)
रञो सरि-**विरिपुरिसदतस**
१२ **संव ६** वा प ६ दिव १० (॥*)

वीर पुरुषदत्त का नागार्जुनी कोंडा लेख

(तिथि १४ वर्ष)

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो **इखाक**राज-पवररिसिसतपभव-वंस-संभवस देव-मनुस-सव-सत-हित-सुख-मग-देसिकस जित-काम-कोध-भय-हरिस- तरिस-मोह-दोसस दपित-मार-बल-दप-मान-पसमन-करस दसबल-महबलस अठग-मग–धमचक पवतकस चक-लखण-सुकुमार-सुजात-चरणस तरुण-दिवसकर-पभस सरद-ससि-सोम-दरिसनस सव-लोक-चित-महितस **बुधस** (।*) रंञो मा(ढ)रिपु(त*)(स) **(संवछरं*) चोदं १०** [+*]४ हेमंत-पखं छठं ६ दिवसं तेरं १०[+*] ३ (।*) (भ*)(दं)त-(रा)जाचरीयानं **कस्मीर-गंधार-चीन-चिलात-तोसलि-अवरंत-वंग-वनवासी-(यवन)-(दमिल)-(प)लूर-तंबपंणिदीप-**पसदकानं थेरियनं **तंबपंणकानं** सुपरिगहे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ **सिरिपवते विजयपुरीय** पुव-दिसा-भागे विहारे **चुल-धंमगिरीयं** चेतिय घरं सपट-संथरं स-चेतीयं सव-नियुतं कारितं उवासिकाय बोधिसिरिय अपनो भतुनो बुधि(ं)नकस पितुनो च से **गोवगाम**-वयवस रेवत-गहपतिस मातुय च स बुधंनिकाय भातुनं च से चंदमुखनस करुंबुधिनस हघंनस भगिनीय च रेवतिनिकाय भातु-पुतानं च महाचंदमुख-चुलचंदमुखानं भागिनेयानं च महामूल-चुलमूलानं अपनो च अयकस मूल-वानियस अयिकाय बुधवानिकि(नाय) मातुलक.........कोठ(ा)-कारिकस भदस बोधिसंमस चंदस बोधिक (स) महामातुकाय भदि-(ला) य बोधिय च अपनो (पितुनो) बुधि(वा)नियस मा(तुय).........

३ भातुनो मूलस भगिनीनं बुधंनिकाय मूलंनिकाय नागबोधिनिकाय धूतुय वीरंनिकाय पुतानं नागंनस वीरंनस च सुंन्हानं च भदसिरि-मिसीनं(।*) एवमेव च **कुलह-विहारे** चेतियघरं **सीहल**-विहारे बोधि-रुख-पासादो **महाधंमगिरीयं** ओवरको १ महावि(हा*)रे मंडव-खंभो(१?) **देवगिरियं** पधान-साला **पुवसेले** तलाक(ं) अल(ं)दा-मडवो च **कंटकसोले** महाचेतियस पुव-दारे सेल-मंडवो **हिरुमुठुवे** ओवरका तिंणि ३ **पपिलायं** ओवरका सत ७ **पुफगिरीय**(ं) सेल-मंडवो **धं**-..........विहारे सेल-मंडवो (१?) (।*) एतं च सवं उपरि-वंणि(तं*) ......(सा*) धुवगस अचत-हित-सुखाय थवितं सव(स) च लोकस (।*) इमं नवकंमं तिंहि नवक(ं)मिकेहि कारितं चंदमुख-थेरेन च

४ धंमनंदि-थेरेन च नाग-थेरेन च (।*) सेल वढाकिस विधिकस कंमं ति (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुषाण तथा क्षत्रप लेख

कनिष्क का सारनाथ प्रतिमा लेख

(तिथि ३ वर्ष)

[१]

१ महारजस्य **कणिष्कस्य** सं ३ हे ३ दि २० [+*] २
२ एताये पूर्वये भिक्षुस्य पुष्यबुद्धिस्य सद्धयेवि-
३ हारिस्य भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य
४ बोधिसत्वो छत्रयष्टि (च) प्रतिष्ठापितो
५ **बाराणसिये** भगवतो च(ं)कमे सहा मात(ा*)-
६ पितिहि सहा उपद्धयायाचर्येहि सद्धयेविहारि-
७ हि अंतेवासिकेहि च सहा बुद्धमित्रये त्रेपिटिक-
८ ये सहा क्षत्रपेण **वनस्परेन खरपल्ला-**
९ **नेन** च सहा च च(तु)हि परिषाहि सर्वसत्वनं
१० हितासुखार्त्थं (।।*)

[२]

१ भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठापितो ।
२ महाक्षत्रपेन **खरपल्लानेन** सहा क्षत्रपेन **वनष्परेन** ।।

स्यूविहार ताम्र-पत्र

(तिथि ११ वर्ष)

१ महरजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य **क(निष्कस्य) संव(त्स)रे एकदशे सं** १०[+*]१ दइसिकस्य मस(स्य) दिवसें अठविंशे दि २० [+*] ४[+*]४
२ (अत्र)त्र दिवसे भिक्षुस्य नगदतस्य ध(र्म)-कथिस्य अचर्य-दमत्रत-शिष्यस्य अचर्य-भवे-प्रशिष्यस्य यठिं अरोपयत इह **द(म)ने**
३ विहरस्वमिणि उपसिक (ब)लनंदि-(कु)टिंबिनि बलजय-मत च इमं यठिप्रतिठनं ठप(इ)चं अनु परिवरं ददरि(।*) सर्व-सत्वनं
४ हित-सुखय भवतु (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कनिष्क का जेडा लेख

१ सं १० (+ *) १ अषडस मसस दि २० उतर-फगुणे इशे क्षुणमि

कुर्म ताम्र-पत्र

१ सं २० [+*]१ मस)स अवदुनकस दि २० इ(शे) क्षुनंमि श्वेड्रवर्म यश-पुत्र तनु(व)कंमि रंञांमि (नवविह*)रंमि अचर्यन सर्वस्तिवदन परि-(ग्रहं)मि थुवंमि भग्रवतस शक्यमुनिस
२ शरिर प्रतिठवेदि(।*) यथ वुत भग्रवद अविज-प्रचग्रसंकंरं संकंरं-प्रचग्र विञान (वि)ञान-प्रचग्र नम-रुव-नमरुव-प्रचग्र षड्र(य)-(दन) षड्रयदन-प्रचग्र फश पश-प्रचग्र
३ वेदन वेदन-प्रचग्र तष्ण तष्ण-प्रचग्र उवदन उवदन-प्रचग्र भव भव-प्रचग्र जदि जदि-प्रच(ग्र) जर-मर(न)-शोग्र परिदेव-दुख-दोर्मनस्त-उपग्रस (।*) (एत्रं) (अस) केवलस दुख-कंधस संमुदए भवदि (।*)
४ सर्व-सत्वन पुयए अय च प्रतिच-संमुपते लिखिद महिफतिएन सर्वसत्वन पुयए (॥*)

कनिष्क का श्रावस्ती-लेख

१ (महाराजस्य देवपुत्रस्य **कणिष्कस्य**(?) सं * * * * दि) १० [+*]९ एतये पुर्वये भिक्षुस्य पुष्य(वु*)–
२ (द्धिस्य*) सद्धेचविहारिस्य भिक्षुस्य ब(ल)स्य त्रेपिकटस्य दान(ं) (बो)धिसत्वो छात्रं दाण्डश्च **शावस्तिये** भगवतो चंकभे ..
३ कोसंवकुटिये (अचर्य्या)णां सर्वस्तिवादिन परिगहे (॥*)

कनिष्क का आरा लेख

(तिथि ४१ वर्ष)

१ महरजस रजतिरजस देवपु(त्रस) (क)इ(स)रस
२ व(झि)ष्प-पुत्रस **कनिष्कस** संवत्सरए एकचप(रि)-
३ (शए) **सं** २० [+*]२०[+*]**१** जेठस मसस दिव(से)१ **इ**(शे) दिवस-क्षुणमि ख(दे)
४ (कुपे) दषव्हरेन **पोषपुरिअ-**पुत्रण मतर-पितरण पुय(ए)
५ (हि)रंणस सभर्य(स) (स)पुत्रस अनुग्रहर्थए सर्व(सप)ण
६ जति(षु) छ(?)तए (।*)इमो च लिखितो म(धु)...(॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुविष्क का जैन प्रतिमा लेख

(तिथि ४८ वर्ष)

१ महा(रा)राजस्य हु(वि)क्षस्य- सवचर ४० [+*]८ व २ दि १० [+*]९ एतस्य पुवायं (कोट्टिये-गणे) (बम)(दा*)-

२ (सि)ये (कु)ले पचनगरिय-शाकाय (ध)ञवलस्य शिशि(निये) धञ(शि)रि(ये) निवतन

३ (ब)धुकस्य वधुये शवत्रात-पो(त्रिये) यशा(ये) दान स(ं)भवस्य प्रोदिम प्र-

४ त(स्थ)पित (।।*)

हुविष्क का बौद्ध प्रतिमा लेख

(तिथि ५१ वर्ष)

१ महारजस्य दवपुत्रस्य हुवष्कस्य सवत्सरे ५० [+*]१ हेमन्त-मास १ दव... (एतस्यां) पु(र्व्वा)यां (भिक्षुणा) (बु)द्धवर्म(णा) (भग*) वतः श(क्य)(मुनेः*)

२ प्रतिमा प्रतिष्टापित सर्व-बुद्ध-पूजार्त्थ (म्) (।*) अ(नेन) (दे)-यधर्म-परित्यागेन उपध्यायस्य सघदासस्य (निवनावा()प्तये (ऽ*)स्तु मा(तापित्रो च) (।*) (बुद्धार्थम् इदं च दानं ?)

३ बुद्धवर्मस्य सर्व-(दु)खोपशम(ा)य सर्व-सत्व-हित-सुखार्थ(ं) (म)हाराज-दे(वपुत्र-वि)हरे (।।*)

सोडास क्षत्रप का मथुरा लेख

१ स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोंडासस्य गंजवरेण ब्राह्मणेन शेग्रव-सगोत्रेण (पुष्क*)-

२ रणि इमाषां यमड-पुष्करणीनं पश्चिमा पुष्करणि उदपानो आरामो स्तम्भो इ(मो*)

३ (शिला)पट्टो च... ... (।।*)

पटिक का तक्षशिला ताम्रपत्र

(तिथि ७८ वर्ष)

१ (सवत्स)रये अठसततिमए २०[+*]२०[+*]२०[+*]१०[+*] ४[+*]४ महरयस महंतस (मो)गस प(नें*)मस- मसस दिवसे पंचमे ४[+*]१ एतये पुर्वये क्षहर(स)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

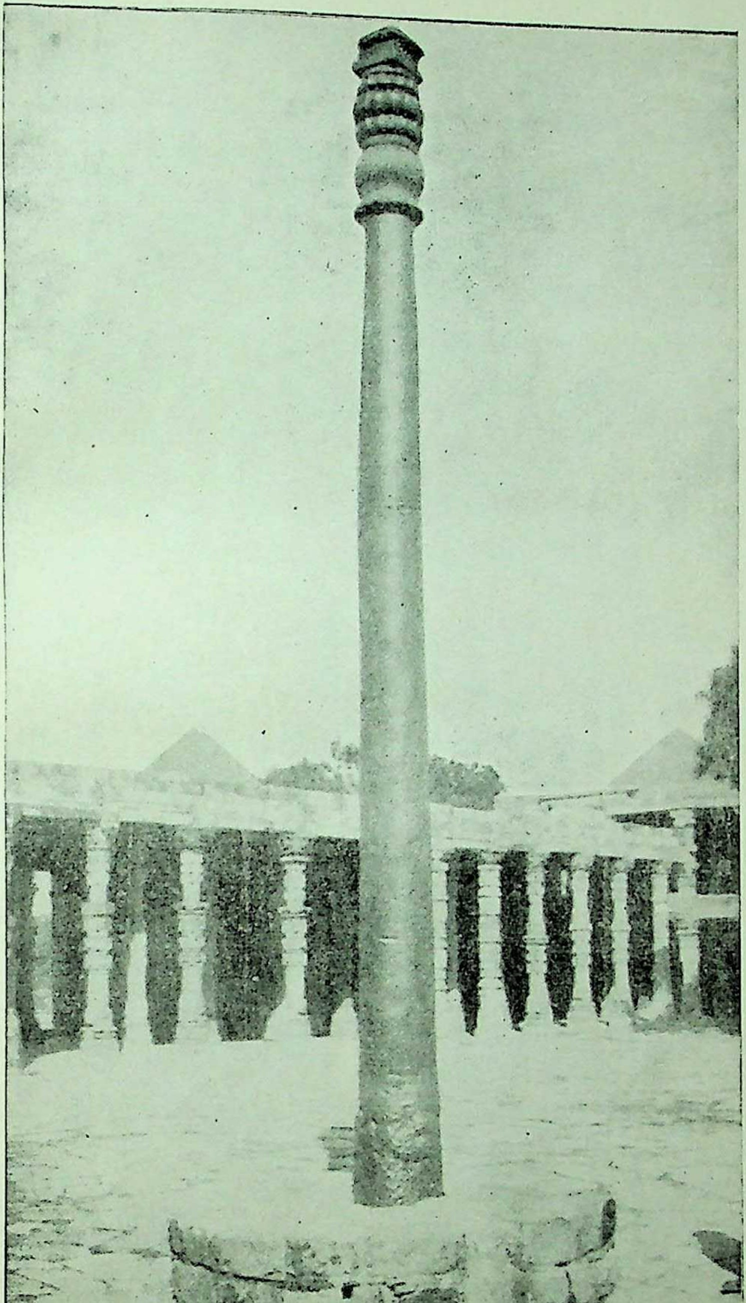

(चन्द्र का लौह स्तम्भ)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ चुख्सस च क्षत्रपस **लिअको कुसुलुको** नम तस पुत्रो **(पति) (को*)**
तखशिलये नगरे (।*) उतरेण प्रचु-देशो **क्षेम** नम (।*) अत्र
३ (दे*)शे पतिको अप्रतिठवित भगवत शकमुनिस शरिरं (प्र*)
तिथ (वेति) (सं) घरमं च सर्व-बुधन पुयए मत-पितरं पुयय(ंतो)
४ क्षत्रपस स-पुत्र-दरस अयु-बल-वधिए भ्रतर सर्व (च) (ञातिग)-(बं*)धवस
च पुययंतो (।*) महदनपति पतिक सज उव(झ)-ए(न*)
५ रोहिणिमित्रेण य इम (मि?) संघरमे नवकमिक (॥*)

कलवान ताम्रपत्र

१ **सवत्सरये** १[+*] १००[+*] २०[+*] १०[+*]४ **अजस**
श्रवणस मसस दिवसे त्रेविशे २०[+*] १[+*] १[+*] १
इमेण क्षुणेण चंद्रभि उअसिअ
२ ध्रंमस ग्रहवतिस धित भद्रवलस भय छ(?)डशिलए शरिर प्रइस्तवेति गहथू-
३ बमि सध भ्रदुण नंदिवढ़णेण ग्रहवतिण सध पुत्रेहि शमेण सइतेण च। धतुण च
४ ध्रमए सध ष्णपएहि रजए इद्रए य सध जिवणंदिण शमपुत्रेग अयरिएण
य स(र्व)स्ति-
५ वअण परिग्रहे रठ-णिकमो पुयइत सर्व-स्वत्वण पुयए (।*) णिवणस
प्रतिअए होतु (॥*)

नहपान कालीन नासिक गुहालेख

(तिथि ४२, ४५ वर्ष)

१ सिधं (॥*) **वसे** ४०[+*]२ वेसाख-मासे रान्ञो **क्षहरातस** क्षत्रपस
नहपानस जामातरा दीनीक-पुत्रेन **उषवदातेन** संघस चातुदिसस इमं लेणं
नियातितं (।*) दत चानेन अक्षय-निवि काहापण-सहस्रा-
२ नि त्रीणि ३००० संघस चातुदिसस ये इमस्मि लोणे वसांतान(ं)२
भविसंति चिवरिक कुशाणमूले च (।*) एते च काहापणा प्रयुता गोवधनं
वाथवासु श्रेणिसु (।*) कोलीक-निकाये २००० वृधि पडिक-शत
अपर-कोलीक-निका-
३ ये १००० वधि पा(यू) न-(प)डिक-शत (।*) एते च काहापणा
(अ)पडिदातवा वधि-भोजा (।*) एतो चिवरिक-सहस्रानि बे २०००
ये पडिके सते (।*) एतो मम लेणे वसवुथान भिखुनं **वीस(ा)य एकीकस**
चिवरिक बारसक (।*) य सहस्र प्रयुतं पायुन-पडिके शते अतो कुशन-
४ मूऌ (।*) **कापूराहारे** च गामे चिखलपद्रे दतानि नालिगेरान मुल-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सहस्राणि अठ ८००० (।*) एत च सर्व स्रावित (नि)गम-सभाय निबध च फलकवारे चरित्रतो ति (।*) भूयोनेन दतं **वसे** ४० [+ *] **१ कातिक शूधे पनरस** पुवाक **वसे** ४०[+ *]५

५ पनरस नियुतं भगवता(ं) देवानं ब्राह्मणानं च कार्षापण-सहस्राणि सतरि ७००० प(ं)चत्रि(ं)शक सुवण कृता दिन सुवर्ण-सहस्रणं मूल्य(ं) (।।*)

६ फलकवारे चरित्रतो ति (।।*)

नहपान कालीन नासिक गुहा लेख

१ सीद्धम्-(।।*) राज्ञः **क्षहरातस्य** क्षत्रपस्य नहपानस्य जामात्रा दीनीक-पुत्रेण **उषवदातेन** त्रि-गोशत-सहस्रदेन नद्या **बार्णासायां** सुवर्णदान-तीर्थकरेण देवत(ा)भ्यः ब्राह्मणेभ्यश्च षोडश-ग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण-शतसाहस्री-भोजापयित्रा

२ **प्रभासे** पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्यः **अष्टभार्याप्रदेन भरुकछे दशपुरे गोवर्धने शोर्पारगे** च चतुशालावसध-प्रतिश्रय-प्रदेन आराम-तडाग-उदपान-करेण **इबा-पारादा-दमण-तापी-करबेणा-दाहनुका** नावा पुण्य-तर-करेण एतासां च नदीनां उभतो तीरं सभा-

३ प्रपा-करेण **पींडीतकावडे गोवथर्धने सुवर्णमखे शोर्पारगे** च **रामतीर्थे** चरक-पर्षभ्यः ग्रामे **नानंगोले** द्वात्रीशत-नालीगेर-मूल-सहस्र-प्रदेन गोवर्धने **त्रीरश्मिषु** पर्वतेषु धर्मात्मना इदं लेणं कारितं इमा च पोढियो (।।*) भटारका-अञातिया च गतोस्मिं वर्षा-रतुं **मालये**(हि) * * हि रुधं **उतमभाद्रं** मोचयितुं (।*)

४ ते च **मालया** प्रनादेनेव अपयाता उतमभद्रकानं च क्षत्रियानं सर्वे परिग्रहा कृता(।*) ततोस्मिं गतो **पोक्षरानि** (।*) तत्र च मया अभिसेको कृतो त्रीणि च गोसहस्रानि दतानि ग्रामो च (।।*) दत च(ा)नेन क्षेत्र(ं) ब्राह्मणस वाराहि-पुत्रस अश्विभूतिस हथे कीणिता मुलेन काहापण-सहस्रेहि चतुहि ४००० यो स-पितु-सतक नगरसीमायं उतरापरा(यं दीसायं) (।*)एतोमम लेने वस-

५ तानं चातुदीसस भिखु-सघस मुखाहारो भविसती (।।*)

नहपान का नासिक गुहालेख

१ सीधं (।।*) रांञो **क्षहरातस** क्षत्रपस **नहपानस** दीहि-

२ तु दीनीक-पुत्रस **उषवदातस** कुडुंबिनिय **दखमित्राय** देयधम ओवरको (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहपान कालीन कार्ले गुहा लेख

१ सिवं (।।*) रञो **खहरातस** खतपस **नहपानस** जा(म)तरा (दीनीक)-पूतेन **उसभ-दातेन** ति-
२ गो-सतसहस(दे)ण नदिया **बणासाया** (सु)वण-(ति)थकरेन (देवतान*) ब्रह्मणन च सोलस-गा
३ म-दे(न*) **पभासे** पूत-तिथे ब्रह्मणाण अठ-भाया प(देन*) (अ) नुवासं पितु सतसहसं (भो)-
४ जपयित **वलूरकेसु** लेण-वासिनं पवजितानं चातुदिसस सघस
५ यापणथ गामो **(कर)जिको** दतो स(वा)न (वा)स-वासितानं (?) (।।*)

नहपान कालीन जुनार गुहा लेख

(तिथि ४६ वर्ष)

१ (राञो*) महखतपस सामि-**नहपानस**
२ (आ)मतस- वछ-सगोतस **अयमस**
३ (दे*)(यधम) च (पो*)ढि मटपो च पुञथय **बसे** ४०[+*]६ कतो (।।*)

चष्टन—रुद्रदामन का ग्रंडौ लेख

(तिथि ५२ वर्ष)

[१]

१ (राज्ञो) **(चाष्ट)नस** **य्सामोतिक**-पुत्रस राज्ञो **रुद्रदामम** **जयदाम**-पुत्रस
२ **व(र्षे)** **(द्वि)प(ं)च(ाशे)** **(५०)** [+*]२ फगुण-बहुलस (द्वि) तिय-वारे(?) मदनेन सीहिल-पुत्रेन (भ)गिनिये जेष्टवीराये
३ (सी)हि(ल-धि)त ओपशति-सगोत्राये लष्टि उथापित (।।*)

[२]

१ (राज्ञो **चाष्ट**)**नस** **य्सामोतिक**-
२ पु(त्र)स राज्ञो **(रु)द्रदामस**
३ **जयदाम**-पुत्रस **वर्षे द्वि-प(ं)**-
४ **(चा)शे** ५०[+*]२ फगुण-बहुलस
५ द्वितीय-वारे(?) २ ऋषभदेवस
६ सीहिल-पुत्र स ओपशति-सगोत्रस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७ भ्रात्र(ा) (मदने)न (सीहि)ल-पुत्रेन
८ लष्टि उथापित (।।*)

[३]

१ राज्ञो **चाष्टनस य्सा(ा)मोतिक**-पुत्रस राज्ञो **रूद्रदामस जयदाम**--पुत्रस **वर्षे द्विपंचाशे** ५०[+*]२
२ फगुण-बहुलस द्वितिय-वा २ यशदताये सीहमित-धीता शेनिक-सगोत्राये शामणेरिये
३ मदनेन सीहिल-पुत्रेन कुटुबिनिये (लष्टि) उथापिता (।।*)

[४]

१ र(ा)ज्ञो **चाष्टनस य्सामोतिक**--पु(त्रस) (राज्ञो) **रु(द्रदामस) ज(य)दा(म)-**
२ पुत्र(स) **वर्षे** ५०[+*२] फगु(न)-बहुलस (द्वितिय)- वारे (?) २
३ ऋषभदेवस त्रेष्टदत-पुत्र(स) ओपश(ति)-गो(त्र)स
४ पि(त्रा(तिन?) त्रेष्टदतेन श्राम(णे)रेन लष्टि उथापित (।।*)

रुद्रदामन का गिरनार शिलालेख

(तिथि ७२ वर्ष)

१ सिद्धं (।*) इदं तडाकं **सुदर्शनं** गिरिनगराद(पि) * *......(मृ*)(त्ति)कोपल-विस्तारायामोच्छ्रय-निसःन्धि-बद्ध-दृढ-सर्व्व-पालीकत्वात्पर्व्वत-पा-
२ द-प्प्रतिस्पर्द्धि-सुश्लि(ष्ट)-(वन्धं*)......(व)जातेनाकृत्रिमेण सेतुबन्धेनोपपन्नं सुप्प्रति-विहित-प्प्रनाली-परीवाह-
३ मीढविधानं च त्रिस्क(न्ध*).........नादिभिरनुग्र(है)र्महत्युपचये वर्त्तते (।*) तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृही-
४ त-नाम्नः स्वामि-**चष्टनस्य** पौत्र(स्य*) (राज्ञः क्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामि-**जयदाम्न***): पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्त-नाम्नो **रु(द्र)दाम्नो वर्षे द्विसप्ततित(मे)** ७०[+*]२
५ मार्ग्गशीर्ष-बहुल-प्र(ति)(पदि—)......: सृष्टवृष्टिना पर्ज्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरू**र्जयतः सुवर्णसिकता-**
६ **पलाशिनी**-प्रभृतीनां नदीनां अतिमात्रोद्वृत्तैर्व्वेगैः सेतुम...(यमा) णानुरूप-प्रतीकार - मपि गिरिशिखर-तरु-तटाट्टालकोपत(ल्प)- द्वारशरणोच्छ्रय-विध्वंसिना युगनिधन-सदृ-
७ श-परम-घोर-वोगेन वायुना प्रमथि(त)-सलिल-विक्षिप्त-जर्ज्जरीकृताव(दी)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(र्ण*) (क्षि)प्ताश्म-वृक्ष-गुल्म-लताप्रतानं आ नदी(त)लादित्युद्घाटित-मासीत् (।*) चत्वारि हस्त-शतानि वीशदुत्तराण्यायतेन एतावत्येव (वि)स्ती(र्णे)न

८ पंचसप्तति-हस्तानवगाढेन भेदेन निस्सृत-सर्व्व-तोयं मरु-धंन्व-कल्पमतिभृशं दु(र्द)......(।*)...(स्य)ार्थे **मौर्यस्य राज्ञः चन्द्र(गु)(प्त*)-(स्य) राष्ट्रियेण (वै)श्येन पुष्यगुप्तेन** कारितं **अशोकंस्य मौर्यस्य** (कृ*)ते **यवनराजेन तुष(ा)स्फेना**धिष्ठाय

९ प्रण(ा)लीभिरल(ं)कृत(ं) (।*) (त)त्कारित(या) च राजानुरूप-कृत-विधानया तस्मिं (भे)दे दृष्टया प्रनाडया- वि(स्तृ)त-से)(तु*)...........णा आ गर्भात्प्रभृत्यवि(ह)त-समुदि(वरा)जलक्ष्मी-धारणा-गुणतस्सर्व्व-वर्णैरभिगंम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेन (आ) प्राणोच्छ्वासात्पुरुष-वधनिवृत्ति-कृत-

१० सत्यप्रतिज्ञेन अन्य(त्र) संग्रामेष्वभिमुखागत-सदृश-शत्रु-प्रहरण-वितरणत्वा-विगुणरि(पु*).........त-कारुण्येन स्वयमभिगतजन-पदप्रणिपति (ता*) (यु)षशरणदेन दस्यु-व्याल-मृग-रोगादिभिरनुपसृष्टपूर्व्व-नगर-निगम-

११ जनपदानां स्ववीर्य्यार्जितानामनुरक्त-सर्व्व-प्रकृतीनां **पूर्व्वापराकरावन्त्यनूपनी-वृदानर्त्त-सुराष्ट्र-श्व (भ्र-मरु-कच्छ-सिन्धु-सौवी) र-कुकुरापरांत-निषादा-दीनां** समग्राणां तत्प्रभावाद्य(थावत्प्राप्तधर्मार्थ*)काम-विषयाणां विषयाणां पतिना सर्व्वक्षत्राविष्कृत-

१२ वीर-शब्द-जा(तो)त्सेकाविधेयानां **यौधेयानां** प्रसह्योत्सादकेन **दक्षिणापथ-पतेस्सातकर्णे**र्द्विरपि नीर्व्याजमवजीत्यावजीत्य संबंधा-(वि)दूर(त*)या अनुत्सादनात्प्राप्तयशसा (वाद)-......(प्रा*)- (प्त)-विजयेन भ्रष्टराज-प्रतिष्ठापकेन यथार्त्थ-हस्तो-

१३ च्छ्रयार्जितोर्जित-धर्मानुरागेन शब्दार्त्थ-गान्धर्व्व-न्यायाद्यानां- विद्यानां महतीनां पारण-धारण-विज्ञान-प्रयोगावाप्त-विपुल-कीर्त्तिना तुरग-गज-रथचर्य्यासि-चर्म-नियुद्धाद्या ......ति-परबल-लाघव-सौष्ठव-क्रियेण अहरहर्द्दान-मानान-

१४ वमान-शीलेन स्थूललक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्क-भागैः कानक-राजत- वज्र-वैडूर्य रत्नोपचय-विष्यन्दमान-कोशेन स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्तशब्दसमयो-दारालंकृत गद्य-पद्य-(काव्य-विधान-प्रवीणे*)न प्रमाण-मानोन्मान-स्वर-गति-वर्ण्ण-सारसत्वादिभिः

१५ परम-लक्षण-व्यंजनैरुपेत-कान्त-मूर्त्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रप-नाम्ना नरेन्द्र-क(न्या)-स्वयंवरानेक-माल्य-प्राप्त-दाम्न(ा) महाक्षत्रपेण **रुद्रदाम्ना** वर्ष-सहस्राय गो-ब्रा(ह्म)(ण*)...........(र्त्थं) धर्म्मकीर्त्तिवृद्धयर्थं च अपीडयि(त्व)ा कर-विष्टि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६ प्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात्कोशा महता धनौघेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुण-दृढतर-विस्तारायामं सेतुं विधा(य स*) र्व्वत(टे) ......(सु)दर्शन-तरं कारितमिति (।*) (अस्मि)न्नर्त्थे

१७ (च) महा(क्ष)त्रप(स्य) **मतिसचिव-कर्मसचिवै**रमात्य-गुण-समुद्युक्तैरप्यति-महत्वाद्भेदस्यानुत्साह-विमुख-मतिभि(:) प्रत्याख्यातारंभ(ं)

१८ पुनःसेतुबन्ध-नैराश्याद्हाहाभूतासु प्रजासु इहाधिष्ठाने पौरजानपदजनानु-ग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नाना**मानर्त्त-सुराष्ट्रा**णां पालनार्थन्नियुक्तेन

१९ **पह्लवेन कुलैप-पुत्रेणामात्येन सुविशाखेन** यथावदर्थ-धर्म-व्यवहारदर्शनैरनुराग-मभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेनाविस्मितेनार्य्येणा-हार्य्येण

२० स्वधितिष्ठता धर्म-कीर्त्ति-यशांसि भर्तुरभिवर्द्धयतानुष्ठित(मि)ति (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्तवंशी लेख

समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख

१ ...कुल्यैः (?)...स्वै......तस............

२ (यस्य ?)..............(॥*) (१*)

३ ...मं (?) वं........................

४ (स्फु)रद्वं (?) ......क्षः स्फुटोद्ध(ं)सित......प्रवितत.........(॥*) (२*)

५ यस्य प्र(ज्ञानु)षङ्गोचित-सुख-मनसः शास्त्र-त(त्त्व)ार्थ-भर्त्तुः
— —स्तब्धो ∪ — — — ∪नि ∪ ∪ ∪ ∪ —नोच्छृ— — ∪— —
(।*)

६ (स*)त्काव्य-श्री-विरोधान्बुध-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा
(वि)द्वल्लोके(ऽ*)वि(ना)(शि*) स्फुटबहु-कविता-कीर्त्ति-राज्यं भुनक्ति
(॥*) (३)

७ (आ*)र्य्यो हीत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्ण्णितै रोमभिः
सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्य-कुलज-म्लानाननोद्वीक्षि(त)ः (।*)

८ (स्ने)ह-व्यालुलितेन बाष्प-गुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा
यः पित्राभिहितो नि(रीक्ष्य)निखि(लां*)(पाह्येव*)(मुर्वी)मिति ॥४।

९ (दृ*)ष्ट्वा कर्माण्यनेकान्यमनुज-सदृशान्य(द्भु)तोद्भिन्न-हर्षा
भ(ा*)वैरास्वादय(न्तः*)∪∪∪∪∪∪— — ∪ — —∪(के*)
चित् (।*)

१० वीर्य्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते (ऽ*) प्रणामे-
(ऽ*)प्य(र्त्ति ?)-(ग्रस्तेषु?) — — ∪ ∪ ∪ ∪ ∪ ∪ — — ∪
— — ∪ — —(॥*) (५*)

११ संग्रामेषु स्व-भुज-विजिता नित्यमुच्चापकाराः
श्वः-श्वो मान-प्र∪∪∪∪— — ∪ — — ∪ — —(।*)

१२ तोषोतुङ्गैः स्फुट-बहु-रस-स्नेह-फुल्लै-र्म्मनोभिः
पश्चात्तापं व ∪ ∪ ∪ ∪ — — ∪ म(ं ?)स्य(ा)द्वसन्त(म् ?)।६।

१३ उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणा-
दुन्मूल्याच्युत नागसेन-ग ∪— — — ∪— — ∪ —(*)

१४ दण्डैर्ग्राहयतैव **कोतकुलजं पुष्पाह्वये** क्रीडता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूर्य्यें(?)नित्य(?)–◡–◡तट –––◡––◡–(॥*) (७*)
१५ धर्म्म-प्राचीर-बन्धः शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स-प्रताना
वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम◡◡◡ कु—च— ◡ मु (सु?)— ◡तार्त्थम्
१६ (अद्ध्येयः) सूक्त-मार्ग्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं
को नु स्याद्यो(ऽ*)स्य न स्याद्गुण-मति(वि)दुषां ध्यानपात्रं य एकः
(॥*) (८)
१७ तस्य विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य स्वभुज-बल-पराक्रमैकबन्धोः
पराक्रमाङ्कस्य परशु-शर-शन्कु-शक्ति-प्रासासि-तोमर-
१८ भिन्दिपाल-न(ा)राच-वैतस्तिकाद्यनेक-प्रहरण-विरूढाकुल-व्रण-शताङ्क-शोभा-
समुदयो-पचित-कान्ततर-वर्ष्मणः
१९ **कौसलकमहेन्द्र-माह(ा*)कान्तारकव्याघ्रराज-कौरालकमण्टराज-पैष्टपुरक-**
महेन्द्रगिरि-कौट्टूरकस्वामिदत्तैरण्डपल्लकदमन-काञ्चेयकविष्णुगोपावमुक्तक
२० **नीलराज-वैङ्गेयकहस्तिवर्म्म-पालक्ककोग्रसेन-दैवराष्ट्रककुबेर-कौस्थलपुरक -**
धनञ्जय-प्रभृति-सर्व्व**दक्षिणापथ**राज-ग्रहण- मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र -
माहाभाग्यस्य
२१ **रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म्म-गणपतिनाग-नागसेनाच्युत-नन्दि-बलवर्म्मा-**
द्यने**कार्य्यावर्त्त**राज-प्रसभोद्धरणोद्वृत-प्रभाव-महतः परिचारकीकृत-**सर्व्वाट-**
विक-राजस्य
२२ **समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्त्तृपुरादि**-प्रत्यन्त-नृपतिभि**र्म्मालवार्जुनायन-**
यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जून-सनकानीक-काक-खरपरिकादिभिश्च सर्व्व-कर-
दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-
२३ परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य अनेक-भ्रष्टराज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोद्भूत-
निखिल-भु(व)न-(विचरण-शा)न्त-यशसः **दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि-शक-**
मुरुण्डैः सैंहळकादिभिश्च
२४ **सर्व्व-द्वीप-वासिभि**रात्मनिवेदन–कन्योपायनदान-गरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्ति –
शासन (य)ाचनाद्युपाय-सेवा-कृत-बाहु-वीर्य्य-प्रसर-धरणि-बन्धस्य प्रिथि-
व्यामप्रतिरथस्य
२५ सुचरित-शतालङ्कृतानेक-गुण-गणोत्सिक्तिभिश्चरण-तल-प्रमृष्टान्य-नरपति -
कीर्त्तेः साद्ध्व– साधूदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य भक्तयवनति-मात्र-ग्राह्य-
मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो-(ऽ*)नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन(:)
२६ (कृप)ण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-सन्त्रदीक्षाभ्युपगत-मनसः समिद्धस्य विग्रह-
वतो लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य स्वभुज-बल-विजितानेक-
नरपति-विभव-प्रत्यर्प्पणा-नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

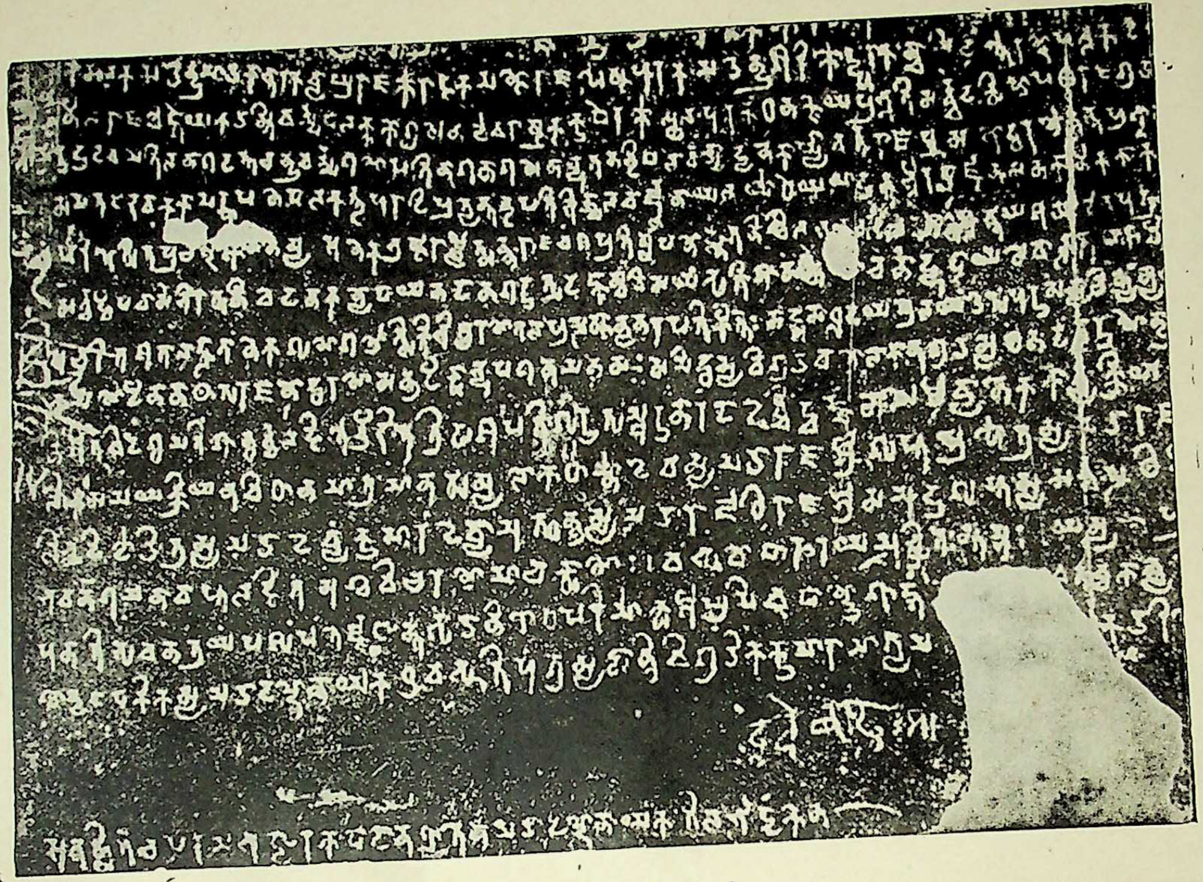

(प्रयाग स्तम्भ लेख पंक्ति १९ से)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२७ निशितविदग्धमति - गान्धर्व्वललितैर्व्रीडित - त्रिदशपतिगुरु - तुम्बुरुनारदादे - र्विद्वज्जनोप-जीव्यानेक-काव्य-क्रियाभिः प्रतिष्ठित-कविराज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार-चरितस्य

२८ लोकसमय-क्रियानुविधान-मात्र-मानुषस्य लोक-धाम्नो देवस्य- महाराज-श्री-**गुप्त**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-**घटोत्कच**-पौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री-**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य

२९ **लिच्छवि**-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्री-**समुद्रगुप्तस्य** सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति-

३० भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः (।*) यस्य।

प्रदान-भुजविक्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदयै-

रुपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेकमार्ग्गं यशः (।*)

३१ पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-

निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डु गाङ्गं (पयः*) (॥*) (९*)

एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणा-नुग्रहोन्मीलित-मतेः

३२ खाद्यटपाकिकस्य महादण्डनायक-ध्रुवभूति-पुत्रस्य सान्धिविग्रहिक-कुमारा-मात्य-म(हादण्डनाय*) क-**हरिषेणस्य** सर्व्व-भूत-हित-सुखायास्तु।

३३ अनुष्ठितं च परमभट्टारक-पादानुध्यातेन महादण्डनायक-तिलभट्टकेन।

समुद्रगुप्त का एरण लेख

१ (संवा*)रिता नृपतयः पृथु-राघवाद्याः (॥*)१

२ (पुत्रो*) बभूव धनदान्तक-तुष्टि-कोप-तुल्यः

३ (पराक्र*)न-नयेन **समुद्रगुप्तः** (।*)

४ (यं प्रा*)प्य पार्त्थिव-गणस्सकलः पृथिव्याम्

५ (पर्य*)स्त-राज्य-विभव-द्धृतमास्थितो(ऽ*)भूत् (॥*)२

६ (ताते*)न भक्ति-नय-विक्रम-तोषितेन

७ (यो*) राज-शब्द-विभवैरभिषेचनाद्यैः (।*)

८ (सम्ना*)नितः परम-तुष्टि-पुरस्कृतेन

९ (सोऽयं ध्रु*)(वो) नृपतिरप्रतिवार्य्य-वीर्य्यः (॥*)३

१० (**दत्ता***)स्य- पौरुष-पराक्रम-दत्त-शुल्का

११ (हस्त्य*)श्व-रत्न-धन-धान्य-समृद्धि-युक्ता (।*)

१२ (नित्य*)ङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३ (स*)ङ्क्रामिणी कुलवधुः व्रतिनी निविष्टा (॥*)४

१४ (यस्यो*)र्ज्जितं समर-कर्म्म पराक्रमेद्धं

१५ (पृथ्व्यां*) यशः सुविपुलम्परिबम्भ्रमीति (।*)

१६ (वीर्या*)णि यस्य रिपवश्च रणोर्ज्जितानि

१७ (स्व*)प्रान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति (॥*)५

१८ — — ∪ — ∪ ∪ ∪ — ∪ ∪ — ∪ — —
(स्त*)(म्भः?): स्वभोगनगरै**रिकिण**-प्रदेशे (।*)

१९ — — ∪ — ∪ ∪ ∪ — ∪ ∪ — ∪ — —
(सं*)स्थापितस्स्वयशसः परिब्रिङ्हनार्थम् (॥*)६

समुद्रगुप्त का नालंदा लेख

१ १ँ स्वस्ति (।*) महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारा**नन्दपुर**-वासका-(त्स)-र्व्वरा-(जोच्छे)त्तु(:*) पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलि-(लास्वा)-

२ दित-यशसो धनद-वरुणे(न्द्रा)न्त(क*)-समस्य- कृतान्त-परशोर्न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरोत्स(न्ना)-

३ श्वमेधाहर्त्तुर्म्महाराज-श्री-**गु(प्त*)**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-**घटोत्कच**पौत्रस्य महारा(जाधि)राज-(श्री-**चन्द्रगुप्त**)-पुत्र-

४ स्य **लिच्छवि**-दौ(हि)त्रस्य महादेव्याङ्**कुमारदेव्या**मुत्पन्न परमभा (गवतो महाराजाधिराज-**श्रीसमुद्रगु**)**प्तः तावि(र्गुण्य)** (?)-

५ वै(षयिक)**भद्रपुष्करक**ग्राम-**क्रिमिला**वैषयिक**पू(र्णना?)**)**गग्रा**(म(योः*)] (ब्राह्मणपुरोग*)-ग्राम-व(ल)त्कौशभ्या (?)माह (।*)

६ एव(ं*) चाह विदितम्वो भवत्वेषौ ग्रा(मौ) (मया) (मा)तापित्त्रोरा-(त्मनश्च) पु(ण्याभिवृद्ध)ये जयभट्टिस्वामिने

७ * * * * (सोपरि)करो(द्देशेनाग्र)हा(रत्वे)नातिसृष्टः (।*) तद्युष्माभिर(स्य)

८ त्त्रैविद्यस्य श्रोत्तव्यमाज्ञा च कर्त्त(व्या) (स)र्व्वे च (स)मुचिता ग्रा-(म*)-प्रत्या-(या*) मेय-हिरण्यादयो देया न चेत प्र-

९ (भृ)त्यनेन त्त्रै(वि)द्येनान्य-ग्रामादि-करद-कुटुम्बि-(कारुक)ादय प्रवेश(यित)व्या(म)न्यथ(ा) नियतमाग्रहाराक्षेपः

१० (स्य)ादिति ॥ **सम्बत्** ५ माघ-दि० २ निवद्धः (।*)

११ अनुग्रामाक्षपटलाधि(कृत)-महापीलूपति-महावलाधि(कृत)त-गोप-स्वाम-(च*)ादेश-लिखितः (।*)

१२ (कुमा*)र-श्री-**चन्द्रगुप्तः** (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय चन्द्रगुप्त का मथुरा स्तम्भ-लेख

(गु० स० ६१)

१ सिद्धम् (।*) भट्टारक-महाराज-(राजाधि) राज-श्री-**समुद्रगुप्त-स-**
२ (त्पु) त्रस्य भट्टारक-म (हाराज) (रा*जाधि) राज-श्री-**चन्द्रगुप्त-**
३ स्य विज (य*)-राज्य-संवत्स (रे*) **(पं) चमे (५) काला वर्त्तमान-सं-**
४ **वत्सरे एकषष्ठे** ६०[+*]१......(प्र) थमे शुक्लदिवसे पं
५ चम्यां (।*) अस्यां पूर्व्वा (यां) (भ) गव (त्कु) शिकाद्दशमेन भगव-
६ त्पराशराच्चतुर्थेन (भगवत्क*) पि (ल) विमल-शि-
७ ष्य-शिष्येण भगव (दुपमित*) विमल-शिष्येण
८ आर्य्योदि (ता*) चार्य्ये (ण*) (स्व*)-पु (ण्या*) प्यायन-निमित्तं
९ गुरूणां च कीर्त्य (र्थमुपमितेश्व) र-कपिलेश्वरौ
१० गर्व्वायतने गुरु......प्रतिष्ठापितो (।*) नै-
११ तत्ख्यात्यर्थमभिलि (ख्यते) (।*) (अथ*) माहेश्वराणां वि-
१२ ज्ञप्ति×क्रियते सम्बोधनं च (।*) यथाका (ले) नाचार्या-
१३ णां परिग्रहमिति मत्वा विशङ्क (ं) (पू) जा-पुर-
१४ स्कार (ं) परिग्रह-पारिपाल्यं (कुर्य्या) दिति विज्ञप्तिरिति (।*)
१५ यश्च कीर्त्य भिद्रोहं कुर्य्या (त्) द्य (श्चा) भिलिखित (मुप) र्य्यधो
१६ वा (स) पंचभिर्मह (ा*) पातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् (।*)
१७ जयति च भगवा (ण्डण्ड:) रुद्रदण्डो (ऽ*) त्र (ना) यको नित्य (ं) (॥*)

द्वितीय चन्द्रगुप्त का उदयगिरि गुहा-लेख

(गु० स० ८२)

१ सिद्धम् ॥ **संवत्सरे** ८० (+*) २ आषाढ़-मास-शुक्लेकादश्याम् परमभट्टा-
रकमहाराजाधि (राज*)-श्री-**चन्द्र (गु) प्त**-पादानुद्धयातस्य ।
२ महाराज-**छगलग**-पौत्रस्य महाराज-**विष्णुदास**-पुत्रस्य **सनकानिकस्य**
महा (राज*) * * लस्यायंदे (यधर्म्म): ।
सिद्धम् (॥*) (संख्या २)
१ यद (ं) तज्ज्योतिरर्क्काभमुर्व्व्या (म्भा) * * ‿ — ‿ * (।*)
* * * * ‿ -- व्यापि **चन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम्** (॥*) (१)
२ विक्रमावक्रयक्रीता दास्य-न्यग्भूत-पार्त्थिव (ा) (।*)
* * * (स) न-संरक्ता धर्म्म * * ‿ — ‿ * (॥*) (२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ तस्य राजाधिराजर्षेरचि(न्त्यो) (ज्ज्वल-क*) (र्म्म)णः (।*)
अन्वय-प्राप्त-साचिव्यो व्या(पृत-सन्धि-वि*)ग्रहः (:) (॥*) ३

४ कौत्सश्शाव इति ख्यातो **वीरसेनः** कुलाख्यया (।*)
शब्दार्त्थ-न्याय-लोकज्ञ×कवि‿**पाटलीपुत्रकः** (॥*) ४

५ कृत्स्न-पृथ्वी-जयार्त्थेन राज्ञैवेह सहागतः (।*)
भक्त्या भगवतश्शम्भोर्ग्गुहामेतामकारयत् (॥*) ५

द्वितीय चन्द्रगुप्त का सांची लेख

(गु० स० ९३)

(सिद्धम् ॥*)

१ **का(कना*)दबोट**-श्रीमहाविहारे शील-समाधि-प्रज्ञा-गुण-भावितेन्द्रियाय परम-पुण्य-

२ क्षे(त्र) (ग*)ताय चतुर्दिगभ्यागताय श्रमण-पुङ्गवावसथायार्य्य-सङ्घाय महाराजाधि-

३ रा(ज-श्री) **चन्द्रगुप्त**-पाद-प्रसादाप्यायित-जीवित-साधनः अनुजीवि-सत्पुरुष-सद्भाव

४ वृ(त्यर्थं*) जगति प्रख्यापयन् अनेक-समरावाप्त-विजय-यशस्पताकः **सुकुलिदेश-न**

५ **ष्टी** * * * वास्तव्य उन्दान-पुत्रा**म्रकार्द्दवो** मज-शरभङ्गाम्ररात-राजकुल-मूल्य-क्री-

६ त(म) * * * * **ईश्वरवासकं** पञ्च-मण्डल्या(ं*) प्रणिपत्य ददाति पञ्चविंशतिश्च दीना-

७ रान् (॥*) * * * * * * * यादर्द्धेन महाराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्तस्य देवराज** इति प्रि-

८ य-ना(म्नः*) * * * * * रितस्य सर्व्व-गुण-संपत्तये यावच्चन्द्रादित्यौ तावत्पञ्च भिक्षवो भुंज-

९ तां र(त्न*)-गृ(हे*) (च*) (दी*)(प)को ज्वलतु (।*) मम चापरार्द्धात्पञ्चैव भिक्षवो भुंजतां रत्न-गृहे च

१० दीपक इ(ति) (॥*) (त)देतत्प्रवृत्तं य उच्छिन्द्यात्स गो-ब्रह्म-हत्यया संयुक्तो भवे-त्पश्चभिश्चान-

११ न्तर्य्यैरिति (॥*) **सं** ९० (+*)३ भाद्रपद-दि ४ (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

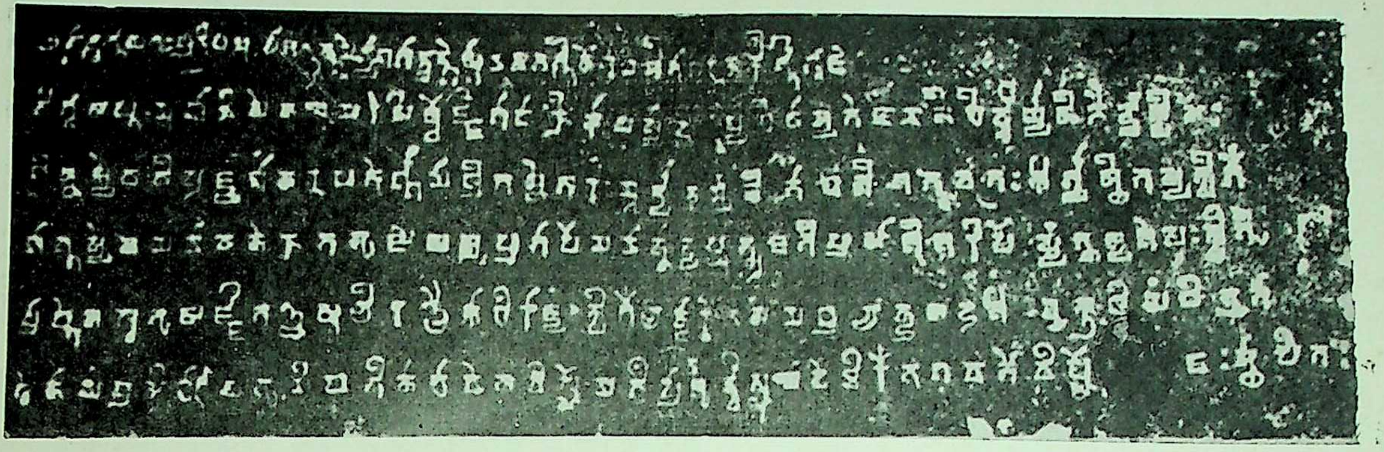

(चन्द्र का मेहरौली स्तम्भ लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय चन्द्रगुप्त का मेहरौली स्तम्भ-लेख

१ य(स्यो)द्वर्त्तयतः प्रतीपमु(र)सा शत्रून्समेत्यागता-
न्वङ्गेष्वाहव-वर्त्तिनो(ऽ*)भिलिखिता खड्गेन कीर्त्ति(र्भु)जे (।*)
२ तीर्त्वा सप्त **मुखानि** येन (स)म(रे) **सिन्धोर्**जिर्जता (**व**)**ाह्लिकान्**
यस्याद्याप्यधिवास्यते **जलनिधि**र्व्वीर्य्यानिलै**र्द्दक्षिणः** (।।*)१
३ (खि)न्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्ग्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्म्म-जितावनिं-गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ (।*)
४ शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महा-
न्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशित-रिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम् (।।*)२
५ प्राप्तेन स्व-भुजार्ज्जितञ्च सुचिरञ्चैकाधिराज्यं क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्र-चन्द्र-(स)दृशीं वक्त्र-श्रियं बिभ्रता (।*)
६ तेनायं प्रणिधाय- भूमि-पतिना भावेन **विष्णो** मतिं
प्रांशुर्**विष्णुपदे**- गिरौ भगवतो **विष्णोर्ध्वजः** स्थापितः (।।*) ३

प्रथम कुमारगुप्त का भिलसद स्तम्भ-लेख

१ (सिद्धम्।।*) (सर्व्व-राजोच्छेत्तुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-स* (लिला)-स्वादित-यशसो
२ (धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य कृतान्त-परशोः न्यायागतानेकगो-हि*)-रण्यकोटि-प्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुः
३ (महाराज-श्री**गुप्त**-प्रपौत्त्रस्य महाराज-श्री**घटोत्कच**-पौत्त्रस्य० म*) (हा)राजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्त्रस्य
४ **लिच्छ**(**वि**-दौहित्त्रस्य*) (महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजा*) धिराज-श्री**समुद्रगुप्त**-पुत्त्रस्य
५ महादेव्यां दत्त(देव्यामुत्पन्नस्य) (स्वयमप्रतिरथस्य*) (परम*)-भागवतस्य महाराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्त्रस्य
६ महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्री**कुमारगुप्तस्या**भि-(व)र्द्धमान-**विजय-राज्य-संवत्सरे षण्णवते**
७ (अस्यान्दि)वस-पूर्व्यायां भगवतस्त्रैलोक्य-तेजस्संभार-संतताद्भुत-मूर्त्ते-**र्ब्रह्मण्यदेवस्य**
८ * * * * * निवासिनः स्वामि-**महासेनस्या**यतने-
(ऽ*)स्मिन्कार्त्तयुगाचार-सद्धर्म्म-वर्त्मानुयायिना (।।*)१
९ (माता) * * * * * * (प)र्षदा (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मानितेन **ध्रुवशर्म्मणा** कर्म्म महत्कृतेदम् ।(।*)२

१० कृ(त्व)ा (नेत्र*)ाभिरामां मु(नि-वसति) (मिह*) (स्व)र्ग सोपान-(रू)पां ।

कौबेरच्छन्दबिम्बां स्फटिकमणिदलाभास-गौरां प्रतोलीम् ।

११ प्रासादाग्राभिरूपं गुणवर-भवनं (**धर्म्म-स***)त्त्रं यथावत् ।

पुण्येष्वेवाभिरामं व्रजति शुभमतिस्तात-**शर्म्मा** ध्रुवो(ऽ*)स्तु।(।*)३

१२ — ा —ी — स्य ◡ — शुभामृतवर-प्रख्यात-ल(ब्धा भुवि) ।

`—`—भक्तिरहीन-सत्व-समता कस्तं न संपूजयेत् ।

१३ (येनापूर्व्व*)-विभूति-सञ्चय-चयैः शैली— ◡ — — ◡ — : ।

तेनायं ध्रुवशर्म्मणा स्थिर-वरस्तभो(च्छ्र)यः कारितः ।(।*)४

प्रथम कुमारगुप्त का धनैदह ताम्रपत्र लेख

(गु० स० ११३)

१ …………(**स***)**म्वत्सर-श**(**ते**) **त्रयोदशोत्त**(**रे***)

२ (१००+१०+३*)…………(अस्या*) (न्दि)वस-पूर्व्वायां परमदैवत-पर-

३ (म-भट्टारक-महाराजाधिराज-**श्रीकुमारगुप्तः***)…… कुटु(म्बि)…… ब्राह्मण-शिवशर्म्म-नागशर्म्म-मह-

४ …………वकीर्त्ति-क्षेमदत्त-गोष्ठक-वर्ग्गपाल-पिङ्गल-शुङ्कक-काल-

५ …………विष्णु-(देव)शर्म्म-विष्णुभद्र—खासक-रामक-गोपाल-

६ …………श्रीभद्र-सोमपाल-रामाद्यक (?)-ग्रामाष्टकुलाधिकरणञ्च

७ …………विष्णुना(?णा) विज्ञापिता इह **खादा(टा?)पार**-विषये-(ऽ*)नुवृत्तमर्य्यादास्थि(ति)-

८ …नीवीधर्म्म-क्ष(क्क?)येण लभ्य(ते) (।*) (त)दर्हथ ममाद्यानेनैव-क्रमेन(?ण) दा(तुं)

९ ……समेत्या(?)भिहितै(:*) सर्व्वमेव * * कर-प्रतिवेशि(?)-कुटुम्बिभिरवस्थाप्य क-

१० ……*रि*कन*यदितो* * (त)दवधृतमिति यतस्तथेति प्रतिपाद्य

११ …………(अष्टक-न*)वक-नला(भ्या)मपविञ्छ्य क्षेत्र-कुल्यवापमेकं दत्तं (।*) ततः आयुक्तक-

१२ ……* **भ्रा(?)तृकटक**-वास्तव्य-छन्दोग-ब्राह्मण-वराहस्वामिनो दत्तं-(।*) त(द्ध्रुव)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

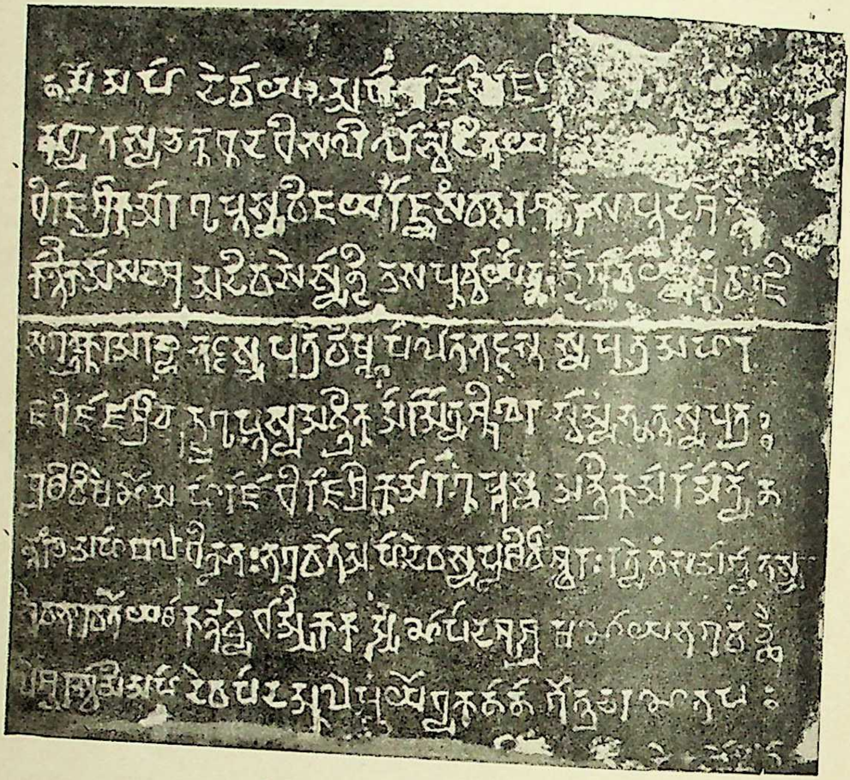

(करमदण्डा शिवलिङ्ग प्रशस्ति)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३ ....भूम्या दा(नाक्षे)पे च गुणांगुणमनुचिन्त्य शरीर-क(ा*)-
ञ्चनकस्य चि-

१४ (र-चञ्चलत्वं*)......... (।।*) (उ)क्तञ्च भगवता द्वैपायनेन (।*)
स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा

१५ (यो हरेत वसुन्धरां ।*)
(स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृ*)भिः सह पच्यते (।।*) १
षष्टिं वर्ष-सहस्रानि स्वर्ग्गे मोदति (भू)मिदः (।*)

१६ (आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।।*) २
(पू*)र्व्वदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
महीं (मही)(मताञ्छ्रेष्ठ*)

१७ (दानाच्छ्रेयोऽनुपालनं ।।*) ३
........................यं...भद्रेन उत्कीर्ण्णा स्थम्भेश्वरदासे(न) (।।*)

प्रथम कुमारगुप्त की करमदण्डा शिवलिङ्गप्रशस्ति

(गु० स० ११७)

१ नमो **महादेवाय** । म(हाराजाधिराज-श्री) (**चन्द्रगुप्त**-पादा*)-

२ नुध्यातस्य चतुधुदधि-सलिलास्वादित-य(शसो) (महाराजा*)

३ धिराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** विजयराज्य-**संवत्स(र)-शते सप्तदशोत्त(रे*)**

४ कार्त्तिक-मास-दशम-दिवसे(ऽ*)स्यान्दिवस-पूर्व्वायां (च्छान्दोग्याचार्य्याश्व)
वाजि-

५ सगोत्त्र-कुरम(ा)र(व्या?)भट्टस्य पुत्रो विष्णुपालितभट्टस्तस्य पूत्रो-
मह(ा)र(ा)-

६ जधिजाजा-श्री**चन्द्रगुप्तस्य** मन्त्री कुमारामात्यशिखरस्वाम्यभूत्तस्य पुत्रः

७ पृथिवीषेणो महाराजाधिराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** मन्त्री कुमारामात्यो(ऽ*)न-

८ न्तरं च महाबलाधिकृतः भगवतो महादेवस्य **पृथिवीश्वर** इत्येवं
समाख्यातस्या-

९ स्यैव भगवतो यथा-कर्त्तव्य-धार्म्मिक-कर्म्मणा पाद-शुश्रूषणाय भगव**च्छै**-

१० **लेश्वरस्वामि**-महादेव पादमूले **आयोध्यक**-नानागोत्त्रचरण-तपः-

११ स्वाध्याय-मन्त्र-सूत्र-भाष्य-प्रवचन-पारग-भारडिदसमद-देवद्रोण्यां

प्रथम कुमारगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

(गु० स० १२४)

१ **सम्व १००(+*)** २० (+*)४ फाल्गुण-दि ७ परमदैवत-परम-
भट्टारकमहाराज (ा*)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ धिराज-श्री**कुमारगुप्ते** पृथिवीं-पतौ तत्पाद-परिगृहीते **पुण्ड्रवर्द्ध (न*)**-
३ भुक्तादुपरिक-**चिराततदतेना**नुवलवानक-**कोटिवर्ष**-विषये च त-
४ न्नियुक्तक-कुमारामात्य-वेत्रवर्मन्यधिष्ठाणाधिकरणञ्च नगरश्रेष्ठि
५ धृतिपाल-सार्त्थवाहवन्धुमित्र--प्रथमकुलिकधृतिमित्र-प्रथमका (य*)-
६ स्थशाम्बपाल-पुरोगे संव्यवहरति यतः ब्राह्मण-कर्प्पटिकेग
७ विज्ञापित (ं*) अरर्हथ ममाग्निहोत्रोपयोगाय अप्रदाप्रहत-खि-
८ ल-क्षेत्र (ं*) त्रदीनारिक्य-कुल्यवापेण शश्वताचद्राक्र्क-तारक-भोज्ये (त*)-

पृष्ठ भाग

९ या नीवी-धर्म्मेण दातुमिति एवं दीयतामित्युत्पन्ने त्रिनी दीना (राण्यु*)-
१० पसंगृह्य यतः पुस्तपाल-रिशिदत्त--जयनन्दि-विभुदत्तानामवधा-
११ रणया **डोङ्गया** उत्तर-पश्चिमद्देशे-कुल्यवापमेकम् दत्तम् (॥*)
भूमि-(दान)-संवद्धा (:*) श्लोका भवन्ति (।*)
१२ स्व-दत्तां पर-दत्ताम्बा यो हरेत वसुन्धरां (।*)
१३ स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पित्रिभि सह पच्येतेति (॥*) १

प्रथम कुमारगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

१ **स**(ं) १००(+*) २० (+*)८ वैशाख-दि १०(+*)३ पर-
(मदैव)त- परमभट्टारक-महाराजाधिराज-(श्री) **(कुमा*)**-
२ **रगुप्ते** पृथिवी-पतौ (तत्पाद)-परिगृहीतस्य **पु(ण्ड्र)वर्द्धन**-भुक्तावुप-
(रिक-**(चि)रात- दत्त(स्य)**
३ भोगेना(नुव)ह(मानक)-**कोटिव(र्ष)**-विषये तन्नियुक्तक-कु(मा)रामात्य-
वे(त्र)-
४ वर्म्मणि अधिष्ठाना(धिक)र(णञ्च) नगर(श्रे)ष्ठिधृतिपाल-सार्थवा-
(हवन्धुमि)त्र -प्र(थ)-
५ मकुलिकधृतिमित्र-(प्रथ)मकायस्थ(शाम्ब)पाल-पुरो(गे)सम्व्यव-(हर)ति
(यतः*)स....
६ विज्ञापितं अ(र्ह)थ मम प(ञ्च)-महायज्ञ-प्रवर्त्तनायानुवृत्ताप्रदाक्षय-
नि(वी*)-
७ मर्य्यादया दातुमिति एतद्विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपा(ल)-रिसिदत्त-
जयन(न्दि-वि)- (भुदत्तानामव*)-
८ धारणया दीयतामित्यु(त्प)न्ने एतस्माद्य(था)नुवृत्त-त्रैदीनारि(क्य-कु)
ल्यवापे(न)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ (द्व)यमुप(संगृ)ह्य (ऐरा)वता(गो)राज्ये पश्चिण-दिशि पञ्चद्रो(णा)-

१० (म)का:ह(ट्ट)-पानकैश्च सहितेति दत्ताः (।*) तदुत्तर-कालं सम्व्य-
वहारिभिः (धर्म्ममवेक्ष्या)नु(म)-

११ न्तव्याः (।*) अपि च भूमि-दान-सम्बद्धामिमौ श्लोकौ भवतः (।*)
पूर्व-दत्तां द्विजाति (भ्यो)

१२ यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
महीं महीवतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपा(ल*)नं (॥*) १
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता दी(य)ते च

१३ पुनः पुनः (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति(॥*) २

प्रथम कुमारगुप्त का मन कुंवार प्रतिमा लेख

(गु० स० १२९)

१ १ँ नमो बुधान (।*) भगवतो सम्यक्सम्वुद्धस्य स्व-मताविरुद्धस्य इयं प्रतिमा
प्रतिष्ठापिता भिक्षु-**बुद्धमित्रेण**

२ **सम्बत्** १००(+*)२०(+*)९ महाराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** राज्ये
ज्येष्ठमास-दि १०(+*)८ सर्व-दुःक्ख-प्रहानार्त्थम्- (॥*)

प्रथम कुमारगुप्त का मंदसोर प्रशस्ति

(मालव स० ४९३ व ५२९)

१ (सिद्धम् ॥)
(यो) (वृत्यर्थ)मुपास्यते सुर-गणै(स्सिद्धैश्च) सिद्धयर्त्थिभि-
र्द्धयानैकाग्र-परैर्व्विधेय-विषयैर्म्मोक्षार्त्थिभिर्य्योगिभिः।
भक्तया तीव्र-तपोधनैश्च मुनिभिश्शाप-प्रसाद-क्षमै-
र्हेतुर्य्यो जगत×क्षयाभ्युदययो⌒पायात्सवो **भास्करः**। (।*) १
तत्व–ज्ञान-विदो(ऽ*)पि यस्य न विदुर्ब्रह्मर्ष-

२ यो(ऽ*)भ्युद्यता-
×कृत्स्नं यश्च गभस्तिभिः प्रवृसृतै⌒पु(ष्ण)ाति लोक-त्रयम्।
ग(न्ध)र्व्वामर-सिद्ध-किन्नर-नरैस्संस्तूयते(ऽ*)भ्युत्थितो
भक्तेभ्यश्च ददाति यो(ऽ*)भिलषितं तस्मै **सवित्रे** नमः।(।*) २
य⌒(प्र)त्यहं प्रतिविभात्युदयाचलेन्द्र-
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखर-स्खलितांशुजालः (।*)
क्षीबाङ्गना-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ जन-कपोल-तलाभिताम्र-
पायात्स वस्सु(कि)रणाभ(रणो) विवस्वान्।(।*)३
कुसुमभराननततरुवर-देवकुल-सभा-विहार-रमणियात् ।
लाट-विषयान्नगावृत-शैलाज्जगति प्रथित-शिल्पाः।(।*)४
ते देश-पार्त्थिव-गुणापहृताः प्रकाश-
मद्ध्वादिजान्यविरलान्यसुखा-
४ न्यपास्य ।
जातादरा **दशपुरं** प्रथमं मनोभि-
रन्वागतास्ससुत-बन्धु-जनास्समेत्य ॥५
मत्तेभ-गण्ड-तट-विच्युत-दान-बिन्दु
सिक्तोपलाचल-सहस्र-विभूषणायाः (।*)
पुष्पावनम्र-तरु-मण्ड-वतंसकाया
भूमे परन्तिलक-भूतमिदं क्रमेण ॥६
तटोत्थ-वृक्ष-च्युत-
५ नैक-पुष्प-
विचित्र-तीरान्त-जलानि भान्ति ।
प्रफुल्त -पद्माभरणानि यत्र
सरांसि कारण्डव-संकुलानि ॥७
विलोल-वीची-चलितारविन्द-
पतद्रजः-पिञ्जरितैश्च हंसैः ।
स्व-केसरोदार-भरावभुग्नैः
क्वचित्सरांस्यम्बुरुहैश्च भान्ति।(।*)८
स्व-पुष्प-भारावनतैर्न्नगेन्द्रै-
र्मद-
६ प्रगल्भालि-कुल-स्वनैश्च ।
अजस्रगाभिश्च पुराङ्गनाभि-
र्व्वनानि यस्मिन्समलंकृतानि ॥९
चलत्पताकान्यबला-सनाथा-
न्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लता-चित्र-सिताब्भ्र-कूट-
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ॥१०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैलास-तुङ्ग-शिखर प्रतिमानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्घ-वलभी-
७ नि सवेदिकानि ।
गान्धर्व्व-शव्द-मुखरानि निविष्ट-चित्र-
कर्म्माणि लोल-कदली-वन-शोभितानि ॥११
प्रासाद-मालाभिरलंकृतानि
धरां विदार्य्यैव समुत्थितानि ।
विमान-माला-सदृशानि यत्र
गृहाणि पुर्णेन्दु-करामलानि ॥१२
यद्भात्यभिरम्य-सरिद्वयेन चपलोर्म्मिणा समुपगूढं (।*)
८ रहसि कुच-शालिनीभ्यां प्रीतिरतिभ्यां स्मराङ्गमिव ॥१३
सत्य-(क्षमा)-दम-शम-व्रत-शौच-धैर्य्य-
(स्वाद्धया)य-वृत्त-विनय-स्थिति-वुद्धचुपेतैः ।
विद्या-तपो-निधिभिरस्मयितैश्च विप्रै-
र्य्यद्भ्राजते ग्रहगणै×खमिव प्रदीप्तैः ॥१४
अथ समेत्य निरन्तर-सङ्गतै-
रहरहः-प्रविजृम्भित-
९ सौहृदाः (।*)
नृपतिभिस्सुतवत्प्रतिम(ा)निता
प्रमुदिता न्यवसन्त सुखं परे ॥१५
श्रवण-(सु)भग(ं) ध(ा)नुर्व्वै(द्यं) दृढं परिनिष्ठिताः
सुचरित-शतासङ्गा×केचिद्विचित्र-कथाविदः ।
विनय-निभृतास्सम्यग्धर्म्म-प्रसङ्ग-परायणा-
प्रियमपरुषं पत्थ्यं चान्ये क्षमा बहु भाषितुं ॥१६
१० केचित्स्व-कर्म्मण्यधिकास्तथान्यै-
र्व्विज्ञायते ज्योतिममात्मवद्भिः ।
(अद्यापि) चान्ये समर-प्रगल्भा-
(×कु)र्व्वन्त्यरीणामहितं प्रसह्य ।(*।)१७
प्राज्ञा मनोज्ञ-वधवः प्रथितोरुवंशा
वंशानुरूप-चरिताभरणास्तथान्यं।
सत्यव्रताः प्रणयिनामुपकारदक्षा
विस्रम्भ-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

११ (पूर्व्वं)मपरे दृढ-सौहृदाश्च ॥१८
विजित-विषय-सङ्गैर्द्धर्म्म-शीलैस्तथान्यै-
(र्मृ)दुभि(रधि)क-स(त्वैर्ल्लोकयात्रा)मरैश्च ।
स्व-कुल-तिलक-भूतैर्मुक्तरागैरुदारै-
रधिकमभि(वि)भाति **श्रेणिरेवंप्रकारैः** ॥१९
तारुण्य-कान्त्युपचितो(ऽ*)पि सुवर्ण्ण-हार-
तांबूल-पुष्प-विधिना सम-
१२ (लंकृ)तो(ऽ*)पि ।
नारी-जनः प्रियमुपैति न तावदग्र्यां
यावन्न पट्टमय-वस्त्र-(यु)गानि धत्ते ॥२०
स्पर्श(वता वर्ण्णा)न्तर-विभाग-चित्रेण नेत्र-सुभगेन (।)
यैस्सकलमिदं क्षितितलमलंकृतं पट्टवस्त्रेण ॥२१
विद्याधरी-रुचिर-पल्लव-कर्ण्णपूर-
वातेरिता(स्थि)रतरं प्रतिचिन्त्य
१३ (लो)कं ।
मानुष्यमर्त्थ-निचयांश्च तथा विशालां-
(स्ते)षां शुभा (म)ति(रभूद)चला ततस्तु ॥२२
चतु(स्समुद्रान्त)-विलोल-मेखलां
सुमेरु-कैलास-बृहत्पयोधराम् ।
वनान्त-वान्त-स्फुट-पुष्प-हासिनीं
कुमारगुप्ते प्रिथिवीं प्रशासति ॥२३
समान-धीश्शुक्र-बृहस्पतिभ्यां
ललामभूतो भुवि
१४ पार्त्थिवानां ।
रणेषु यः पार्त्थ-समानकर्म्मा
बभूव गोप्ता नृप-**विश्ववर्म्मा** ॥२४
दीनानुकंपन-परः कृपणार्त्त-वर्ग्ग-
सन्ध(ा)प्रदो(।*ऽ)धिकदयालुरनाथ-नाथः ।
(क)ल्पद्रु मः प्रणयिनामभयं प्रदश्च
भीतस्य यो जनपदस्य च बन्धुरासीत् ॥२५
तस्यात्मजः स्थैर्य्य-नयोपपन्नो
ब(न्धु)-प्रियो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१५ वन्धुरिव प्रजानां ।
बंध्वर्त्ति-हर्त्ता नृप-**बन्धुवर्म्मा**
द्विड्दृप्त-पक्ष-क्षपणैक(द)क्षः ॥२६
कान्तो युवा रण-पटुर्व्विनयान्वितश्च
राजापि सन्नुपसृतो न मदैः स्मयाद्यैः ।
शृङ्गार-मूर्त्तिरभिभात्यनलंकृतो(ऽ*)पि
रूपेण य⁀कुसुम-चाप इव द्वितीयः ॥२७
वैधव्य-तीव्र-व्यसन-क्षतानां

१६ स्मित्वा यमद्याप्यरि-सुन्दरीणां ।
भयाद्भवत्यायत-लोचनानां
धन-स्तनायास-करः प्रकम्पः ॥२८
तस्मिन्नेव क्षितिपति-व्रिषे **बंधुवर्म्म**ण्युदारे
सम्यक्स्फीतं **दशपुर**मिदं पालयत्युन्नतांसे ।
(शि)ल्पावाप्तैर्द्धन-समुदयैः पट्टवा(यैरु)दारं
स्रे(णीभूतै)र्भवनमतुलं कारितं

१७ दीप्त-रश्मेः ॥२९
विस्तीर्ण-तुङ्ग-शिखरं शिखरि-प्रकाश-
मभ्युद्गतेन्द्वमल-रश्मि-कलाप-(गौ)रं ।
यद्भाति पश्चिम-परस्य निविष्ट-कान्त-
चूडामणि-प्रतिसमन्नयनाभिरामं ॥३०
रामा-सनाथ-(र*)चने दर-भास्करांशु-
वह्नि-प्रताप-सुभगे जल-लीन-मीने ।
चन्द्रांशु-हर्म्यतल-

१८ चन्दन-तालवृन्त-
हारोपभोध--रहिते हिम-दग्ध-पद्मे ॥३१
रोद्ध्र-प्रियंगुतरु-कुन्दलता-विकोश-
पुष्पा-(सव)-प्रमु(दि)तालि-कलाभिरामे ।
काले तुषार कण-कर्क्कश-शीत-वात-
वेग-प्रनृत्त-लवली-नगणैकशाखे ॥३२
स्मर-वशग-तरुणजन-वल्लभाङ्गना-विपुल-कान्त-पीनोरु-

१९ स्तन-जघन-घनालिङ्गन-निर्भर्त्सित-तुहिन-हिम-पाते ॥३३
(मा)लवानां गण-स्थित्या या(ते) शत-चतुष्टये ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिनवत्यधिके(ऽ*)ब्दानान्त्रितौ सेव्य-घनस्तने ॥३४
सहस्यमास-शुक्लस्य प्रशस्ते(ऽ*)ह्नि त्रयोदशे ।
मङ्गलाचार-विधिना प्रासादो(ऽ*)यं निवेशितः ॥३५
बहुना समतीतेन
२० कालेनान्यैश्च पर्त्थिवैः ।
व्यशीर्य्यतैकदेशो(ऽ*)स्य भवनस्य ततो(ऽ*)धुना ॥३६
स्वयशो-(व्रिद्धये सर्व्वमत्युदा)रमुदारया ।
संस्कारितमिदं भूयः (श्रेण्या) भानुमतो गृहं ॥३७
अत्युन्नतमवदातं नभः*)-स्पृशन्निव- मनोहरैश्शिखरैः ।
शशि-भान्वोरभ्युदयेष्यमल-मयूखायतन-
२१ भूतं ॥३८
वत्सर-शतेषु पंचसु विशंत्यधिकेष नवसु चाब्देषु ।
यातेष्वभिरम्य-(तप)स्यमास-शुक्ल-द्वितीयायां ॥३९
स्पष्टैरशोकतरु-केतक-सिंदुवार-
लोलातिमुक्तकलता-मदयंतिकानां ।
पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नून-
मैक्यं विजृंभित-शरे हर-पूत-देहे ॥४०
२२ मधुपान-मुदित-मधुकर-कुलोपगीत-नगनैक-पृथु-शाखे ।
काले नव-कुसुमोद्गम-दंतुर-कांत-प्रचुर-रोध्रे ॥४१
शशिनेव नभो विमलं कौ(स्तु)भ-मणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः ।
भवन-वरेण तथेदं पुरमखिलमलंकृतमुदारं ॥४२
अमलिन-शशि-
२३ लेखा-दंतुरं पिङ्गलानां
परिवहति समूह यावदीशो जटानां ।
वि(कच-क)मल-मालामंस-सक्तां च शार्ङ्गी
भवनमिदमुदारं शाश्वतन्तावदस्तु ॥४३
श्रेण्यादेशेन भक्तया च कारितं भवनं रवेः ।
पूर्व्वा चेयं प्रयत्नेन रचिता **वत्सभट्टिना** ॥४४
२४ स्वस्ति कर्तृ-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्यः ॥ सिद्धिरस्तु ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख

(गु० स० १३६, १३७ व १३८)

१ सिद्धम् ।।
श्रियमभिमतभोग्यां नैककालापनीतां
त्रिदशपति-सुखार्थं यो बलेराजहार ।
कमल-निलयनायाः शाश्वत धाम लक्ष्म्याः
२ स जयति विजितार्त्तिर्**विष्णु**रत्यन्त-जिष्णुः ।।१
तदनु जयति शश्वत् श्री-परिक्षिप्त-वक्षाः
स्वभुज-जनित-वीर्यो राजराजाधिराजः ।
नरपति-
३ भुजगानां मानदर्प्पोत्फणानां
प्रतिकृति-गरुडा(ज्ञां) निर्व्विषी (ं) चावकर्त्ता ।।२
नृपति-गुन-निकेतः **स्कन्दगप्तः** पृथु-श्रीः
चतु रू(दधि जल)न्तां स्फीत-पर्यन्त-देशाम् ।
४ अवनिमवनतारिर्यः चकारात्म-संस्थां
पितरि सुरसखित्वं प्राप्तवत्यात्म-शक्त्या ।।३
अपि च जित (मे)व तेन प्रथयन्ति यशांसि यस्य रिपवो(ऽ*)पि (।*)
आमूल-भग्न-दर्प्पा नि(र्वचना) (म्लेच्छ-देशेषु) ।।४
५ क्रमेण बुद्धया निपुणं प्रधार्य
ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुण-दोष-हेतून् ।
व्यपेत्य सर्व्वान्मनुजेन्द्र-पुत्रां-
ल्लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार ।।५
तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चि-
द्धर्म्मादपेतो मनुजः प्रजासु ।
६ आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो
दण्ड नवा यो भृश-पीडितः स्यात् ।।६
एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां
भग्नाग्र-दर्पा(न्) द्विषतश्च कृत्वा ।
सर्व्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्
संचिन्तया (मा)स बहु-प्रकारम् ।।७
स्यात्को(ऽ*)नुरूपो
७ मतिमान्विनितो
मेधा-स्मृतिभ्यामनपेत-भावः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्यार्जवौदार्य-नयोपपन्नो
माधुर्य-दाक्षिण्य-यशोन्वितश्च ॥८
भक्तो(ऽ–)नुरक्तो नृ-(विशे)ष-युक्तः
सर्व्वोपधाभिश्च विशुद्ध-बुद्धिः ।
अनृण्य-भावोपगतान्तरात्मा: ।
सर्व्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्तः ॥९

८ न्यायार्जने(ऽ*)र्थस्य च कः समर्थः
स्यादर्जितस्याप्यथ रक्षणे च ।
गोपायितस्यापि (च) वृद्धि-हेतौ
वृद्धस्य पात्र-प्रतिपादनाय ॥१०
सर्व्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु
यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्**सुराष्ट्रान्** ।
आं ज्ञातमेकः खलु **पर्णदत्तो**
भारस्य तस्योद्वहने समर्थः ॥११

९ एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन
नैकानहो-रात्र-गणान्स्व-मत्या ।
यः संनियुक्तो(ऽ*)र्थनया कंथचित्
सम्यक्**सुराष्ट्रा**वनि-पालनाय ॥१२
नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां
स्वस्था यथा नोन्मनसो बभूवु(:) (।*)
पूर्व्वेतरस्यां दिशि **पर्णदत्तं**
नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत् ।(।*)१३

१० तस्यात्मजो ह्यात्मज-भाव-युक्तो
द्विधेव चात्मात्म-वशेन नीतः ।
सर्व्वात्मनात्मेव च रक्षणीयो
नित्यात्मवानात्मज-कान्त रूपः ।(।*)१४
रूपानुरूपैर्ललितैर्विचित्रैः
नित्य-प्रमोदान्वित-सर्वभावः ।
प्रबुद्ध-पद्माकर-पद्मवक्तो
नृणां शरण्यः शरणागतानाम् ।(।*) १५

११ अभवद्भुवि **चक्रपालितो**(ऽ*)साविति नाम्ना प्रथितः प्रियो जनस्य ।
स्वगुणैरनुपस्कृतैरुदा(त्तै) पितरं यश्च विशेषयांचकार।(।*)१६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षमा प्रभुत्वं विनयो नयश्च
शौर्यं विना शौर्य-मह(ा)र्च्चनं च।
दाक्ष्यं दमो दानमदीनता च
दाक्षिण्यमानृण्यम(शू)न्यता च।(।*) १७
सौंदर्यमार्येतर-निग्रहश्च
अविस्मयो धैर्य्यमुदीर्णता च।

१२ इत्येवमेते(ऽ*)तिशयेन यस्मि-
न्नविप्रवासेन गुणा वसन्ति।(।*) १८
न विद्यते(ऽ*)सौ सकले(ऽ*)पि लोके
यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत।
स एव कात्स्न्र्येन गुणान्वितानां
बभूव नृणामुपमान-भूतः।(।*) १९
इत्येवमेतानधिकानतो(ऽ*)न्या-
न्गुणान्प(री)क्ष्य स्वयमेव पित्रा।
यः संनियुक्तो नगरस्य रक्षां
विशिष्य पूर्वान्प्रचकार सम्यक्।(।*) २०

१३ आश्रित्य विर्यं- (स्वभु)ज-द्वयस्य
स्वस्यैव नान्यस्य नरस्य दर्पं।
नोद्वेजयामास च कंचिदेव-
मस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टाः।(।*) २१
विस्त्रंभमल्पे न शशाम यो(ऽ–)स्मिन्
काले न लोकेषु स-नागरेषु।
यो लालयामास च पौरवर्गान्
(स्वस्येव–) पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषान्।(।*) २२
संरंजयां च प्रकृतीर्बभूव
पूर्व्व-स्मिताभाषण-मान-दानैः।

१४ निर्यन्त्रणान्योन्य-गृह-प्रवेश(:*)
संवर्द्धित-प्रीति-गृहोपचारैः।(।*) २३
ब्रह्मण्य-भावेन परेण युक्तः
(शु)क्लः शुचिर्दानपरो यथावत्।
प्राप्यान्स काले विषयान्सिषेवे
धर्मार्थयोश्चा(प्य*)विरोधनेन।(।*) २४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(यो — ᴗ — — ᴗ ᴗ **पर्णदत्ता**)-
त्स न्यायवानत्र किमस्ति चित्रं ।
मुक्ता-कलापाम्बुज-पद्म-शीता-
च्चन्द्रात्किमुष्णं भविता कदाचित् ।(।*) २५

१५ अथ क्रमेणाम्बुद-काल आग(ते)
(नि)दाघ-कालं प्रविदार्य तोयदैः ।
ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं
सुदर्शनं येन बिभेद चात्वरात् ।(।*) २६

संवत्सराणामधिके शते तु
त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव ।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे
गुप्त-प्रकाले गणनां विधाय ।(।*) २७

१६ इमाश्च या **रैवतका**द्विनिर्गता (।*)
पलाशिनीयं सिकता-विलासिनी ।
समुद्र-कान्ताः चिर-बन्धनोषिताः
पुनः पतिं शास्त्र-यथोचितं ययुः ।(।*) २८

अवेक्ष्य वर्षागमजं महोद्भ्रमं
महोदधे**रूर्जयता** प्रियेप्सुना ।
अनेक-तीरान्तज-पुष्प-शोभितो
१७ नदीमयो हस्त इव प्रसारितः ।(।*) २९

विषाद्य(मानाः) (खलु) (सर्वतो) (ज)ना (:)
कथं-कथं कार्यमिति प्रवादिनः ।
मिथो हि पूर्वापर-रात्रमुत्थिता
विचिन्तयां चापि बभुवुरुत्सुकाः ।(।*) ३०

अपीह लोके सकले **सुदर्शनं**
पुमां हि दुर्दर्शनतां गतं क्षणात् ।
१८ भवेन्नु सो(ऽ*)म्भोनिधि-तुल्य-दर्शनं
सुदर्शन — ᴗ ᴗ — ᴗ — ᴗ — (।।*) ३१

ᴗ — ᴗ — — ᴗ वणे स भूत्वा
पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य ।
धर्मं पुरो-धाय शुभानुबन्धं
राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव ।(।*) ३२

संवत्सराणामधिके शते तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१९ **त्रिंशद्भिरयैरपि सप्तभिश्च ।**
(गुप्त)-(प्रकाले*) (नय*)-शास्त्र-वेत्ता (?) ।
विश्वो (ऽ*)प्यनुज्ञात-महाप्रभावः ।(।*) ३३
आज्य-प्रणामैः विबुधानथेष्ट्वा
धनैर्द्विजातीनपि तर्पयित्वा ।
पौरांस्तथाभ्यर्च्य यथार्हमानैः
भृत्यांश्च पूज्यान्सुहृदश्च दानैः ।(।*) ३४
२० **ग्रैष्मस्य मासस्य तु पूर्व-प(क्षे)**
⏑ — ⏑ — — (प्र)थमे(ऽ*)ह्नि सम्यक् ।
मास-द्वयेनादरवान्स भूत्वा
धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयम् ।(।*) ३५
आयामतो हस्त-शतं समग्रं
विस्तारतः षष्टिरथापि चाष्टौ ।
२१ उत्सेधतो (ऽ*) न्यत् पुरुषाणि (सप्त?)
⏑ — ⏑ — (ह)स्त-शत-द्वयस्य ।(।*) ३६
बबन्ध यन्त्रान्महता नृदेवा-
न(भ्यर्च्य?) सम्यग्घटितोपलेन ।
अ-जाति-दुष्टम्प्रथितं तटाकं
सुदर्शनं शाश्वत-कल्प-कालम् ।(।*) ३७
२२ अपि च सुदृढ-सेतु-प्रान्त(?)-विन्यस्त-शोभ-
रथचरणसमाह्व-क्रौंचहंसास-धूतम् ।
विमल-सलिल — — — ⏑ — — ⏑ — —
भुवि त ⏑ ⏑ ⏑ — — — द(ने)(ऽ*)र्कः शशी च ।(।*)३८
२३ नगरमपि च भूयाद्वृद्धिमत्पौर-जुष्टं
द्विजबहुशतगीत-ब्रह्म-निर्नष्ट-पापं ।
शतमपि च समानामीति दुर्भिक्ष-(मुक्तं*)
⏑⏑⏑ ⏑⏑⏑ — — — ⏑ — — ⏑ — —(।।*) ३९
(इति) **(सुद)र्शन**-तटाक-संस्कार-**ग्रन्थ** रचना (स)माप्ता ।।

द्वितीय अंश

२४ दृप्तारि-दर्प-प्रणुदः पृथु-श्रियः
स्ववङ्‌श-केतोः- सकलावनी-पतेः ।
राजाधिराज्याद्‌भुत-पुण्य-(कर्मणः)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

⏑ — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ (।।*) ४०
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
द्वीपस्य गोप्ता महतां च नेता
दण्ड-स्थि (ता*) नां
२५ द्विषतां दमाय । (।*) ४१
तस्यात्मजेनात्मगुणान्वितेन
गोविन्द-पादार्पित-जीवितेन ।
— — ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।।*) ४२
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — ग्धं
विष्णोश्च पादकमले समवाप्य तत्र ।
अर्थव्ययेन
२६ महता महता च काले-
नात्म-प्रभाव-नत-पौरजनेन तेन । (।*) ४३
चक्रं विभर्त्ति रिपु — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
तस्य स्व-तंत्र-विधि-कारण-मानुषस्य । (।*) ४४
२७ कारितमवक्र-मतिना चक्रभृतः **चक्रपालितेन** गृहं ।
वर्षशते (ऽ*) ष्टात्रिंशे गुप्तानां काल- (क्रम-गणिते*) (।।*) ४५
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
(स–) र्थमुत्थितमि**वोर्जयतो** (ऽ*) चलस्य
२८ कुर्वत्प्रभुत्वमिव भाति पुरस्य मूर्ध्नि ।। ४६
अन्यच्च मूर्द्धनि सु — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)

स्कन्द गुप्त का कहौम-लेख

(तिथि गु० स० १४१)

सिद्धम् (।।*)
१ यस्योपस्थान-भूमिर्नृपति-शत-शिरः-पात-वातावधूता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ **गुप्तानां** वन्शजस्य प्रविसृत-यशसस्तस्य सर्व्वोत्तमर्द्धेः (।*)
३ राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप-**शत-पतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्ते**
४ **वर्षे त्रिन्शद्दशैकोत्तरक-शततमे ज्येष्ठ-मासि प्रपन्ने** ।(।*) १
५ ख्याते (ऽ*) स्मिन्ग्राम-रत्ने **ककुभ** इति जनैस्साधु-संसर्ग-पूते ।
६ पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण-निधेर्भट्टिसोमो महा(त्मा) (।*)
७ तत्सूनू रुद्रसोम(:*) पृथुल-मति-यशा व्याघ्र इत्यन्य-संज्ञो ।
८ **मद्र**स्तस्यात्मजो(ऽ*)भूद्द्विज-गुरु-यतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः ।(।*) २
९ पुण्य-स्कन्धं स चक्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो
१० श्रेयोर्त्थं भूत-भूत्यै पथि नियमवतामर्हतामादिकर्त्तृन् (।*)
११ पञ्चेन्द्रां स्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निखातस्ततो(ऽ*)यम्
१२ शैल-स्तम्भः सुचार्व्गिरिवर-शिखराग्रोपमः कीर्त्ति-कर्त्ता (॥*) ३

स्कन्द गुप्त का इंदौर ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १४६)

१ सिद्धम् (॥*)
यं विप्रा विधिवत्प्रबुद्ध-मनसो ध्यानैकताना स्तुवः
यस्यान्तं त्रिदशासुरा न विविदुर्न्नोर्ध्वं न तिर्य-
२ ग्गति(म्) (।*)
यं लोको बहु-रोग-वेग-विवशः संश्रित्य चेतोलभः
पायाद्वः स जगत्पि(धा)न-पुट-भिद्ररस्या-
३ करो **भास्करः** ॥१
परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्री**स्कन्दगुप्त**स्याभिवर्द्धमान-विजय-राज्य-
संव्वत्सर-शते षच्चत्वा
४ **(रि*)ङशदुत्तरतमे** फाल्गुन-मासे तत्प(ा*)द-परिगृहीतस्य विषयपति-
शर्व्वनागस्यान्तर्व्वेद्यां भोगाभिवृद्धये वर्त्त-
५ माने **चन्द्रापुरक**-पद्मा-चातुर्व्विद्य-सामान्य-ब्राह्मण**देवविष्णु**र्द्देव-पुत्रो हरित्रात-
पौत्रः डुडिक-प्रपौत्रः सततागिनहो-
६ त्र-छन्दोगो राणायणीयो वर्षगण-सगोत्र **इन्द्रापुरक**-वणिग्भ्यां क्षत्रियाचल-
वर्म-भृकुण्ठसिङ्हाभ्याधिष्ठा-
७ नस्य प्राच्यां दिशी**न्द्रपुरा**धिष्ठान-**माडास्यात**-लग्नमेव **प्रतिष्ठापितकभगवते
सवित्रे दोपोपयोज्यमात्म-यशो-**
८ भिवृद्धये मूल्यं प्रयच्छतिः(॥*) **इन्द्रपुर**-निवासिन्यास्तैलिक-श्रेण्या जीवन्त-
प्रवराया इतो(ऽ*)धिष्ठानादपक्क म-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ ण-संप्रवेश-यथास्थिररायाः आजस्त्रिकं ग्रहपतेर्द्विज-मूल्य-दत्तमनया तु श्रेण्या
यदभग्नयोगम्

१० प्रत्थमार्हाव्य (व*) च्छिन्न-संस्थं देयं तैलस्य तुल्येन पलद्वयं तु २ चन्द्रार्क्क-
सम-कालीयं (॥*)

११ यो व्यक्क्रमेद्दायमिमं निबद्धम्
गोघ्नो गुरुघ्नो द्विज-घातकः सः (।*)
तैः पातकै (:*)

१२ पञ्चभिरन्वितो (ऽ*) ध-
र्गच्छेन्नरः सोपनिपातकैश्चेति ॥२

स्कन्द गुप्त का भितरी स्तम्भ-लेख

(सिद्धम् ॥*)

१ (सर्व्व)-रा (जो) च्छेत्तुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधिसलिल (ा) स्वादित-
यशसो धनद-वरुणेन्द्र (ा) न्तक-स (मस्य)

२ कृतान्त-परशोः न्यायागत (ा) नेक-गो-हिरण्य-(को) टि-प्रदस्य चिरो (त्स)-
न्नाश्वमेधाहर्त्तुर्महाराज-श्री**गुप्त**-प्रपौत्र (स्य)

३ महाराज-श्री**घटोत्कच**-प्रौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य
लिच्छिवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुम (ा) र (दे) व्या-

४ मुत्पन्नस्य महाराजधिराज-श्री**समुद्रगुप्त**स्य पुत्रस्तत्परिगृहीतो महादेव्यान्दत्त-
देव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः

५ परम-भागवतो महराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्धचातो
महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नः परम-

६ भागवतो महाराजाधिर (ा) ज-श्री**कुमारगुप्त**स्तस्य
प्रथित-पृथुमति-स्वभाव-शक्तेः
पृथु-यशसः पृथिवी-पतेः पृथु-श्रीः (।*)

७ पि (तृ)-प (रि) गत-पादपद्म-वर्त्ती
प्रथित-यशाः पृथिवी-पतिः सुतो (ऽ*) यम् (॥*) १
जगति भु (ज)-बलाड्यो **गुप्त--वङ्शै**क-वीरः
प्रथित-विपुल-

८ धामा नामतः **स्कन्दगुप्तः** (।*)
सुचरित-चरितानां येन वृत्तेन वृत्तं
न विहतममलात्मा तान-(धीदा?)-विनीतः (॥*) २
विनय-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ बल-सुनीतैर्व्विक्क्रमेण क्क्रमेण
प्रतिदिनमभियोगादीप्सितं येन ल(ब्ध)ा (।*)
स्वभिमत-विजिगीषा-प्रोद्यतानां परेषां
प्रणि-
१० हित इव ले(भे) (स) विधानोपदेशः (॥*) ३
विचलित-कुल-लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यतेन
क्षितितल-शयनीये येन नीता त्रियामा (।*)
समु-
११ दित-बल(ल)-कोशा(न्पुष्यमित्रांश्च) (जि)त्वा
क्षितिप-चरणपीठे स्थापितो वाम-पादः (॥*) ४
प्रसभमनुप [मै] र्व्विध्वस्त-शस्त्र-प्रतापै-
र्विन(य-स)मु-
१२ (चितैश्च*) क्षान्ति-शौ(र्यै)र्न्निरूढ़म् (।*)
चरितममलकीर्त्तेर्ग्गीयते यस्य शुभ्रं
दिशि दिशि परितुष्टैराकुमारं मनुष्यैः (॥*) ५
पितरि दिवमुपे(ते)
१३ विप्लुतां वङ्श-लक्ष्मीं
भुज-बल-विजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः (।*)
जितमिति परितोषान्मातरं सास्र-नेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपे -
१४ (त): (॥*) ६
(स्वै)र्द्द(ण्डैः) ⏑ ⏑ — ⏑ — त्प्रचलितं वङ्शं प्रतिष्ठाप्य यो
बाहुभ्यामवनिं विजित्य हि जितेष्वार्त्तेषु कृत्वा दयाम् (।*)
नोत्सिक्तो (न) च विस्मितः प्रतिदिनं
१५ संवर्द्धमान-द्युतिः
गीतैश्च स्तुतिभिश्च वन्दक-जनो (?) यं (प्रा) पयत्यार्य्यताम्
(॥*) ७
हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता
भीमावर्त्त-करस्य
१६ शत्रुषुशरा — — ⏑ — — ⏑ — (।*)
— — — ⏑ ⏑ - ⏑̇ - विरचितं (?) प्रख्यापितो (दीप्तिदा?)
न द्यो(?)ति ⏑ नभी(?)षु लक्ष्यत इव श्रोत्रेषु गाङ्ग-ध्वनिः
(॥*) ८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१७ (स्व)-पितुः कीर्त्ति * * * * * ◡ — ◡ * (।*)
* * * * ◡ * * * * * * ◡ — ◡ * (॥*) ९
(कर्त्तव्या) प्रतिमा काचित्प्रतिमां तस्य शार्ङ्गिणः (।*)
१८ (सु)-प्रतीतश्चकारेमां य(ावदाचन्द्र-तारकम्) (॥*) १०
इह चैनं प्रतिष्ठाप्य सुप्रतिष्ठित-शासनः (।*)
ग्राममेनं स विद(धे) पितुः पुण्याभिवृद्धये (॥*) ११
१९ अतो भगवतो मूर्त्तिरियं यश्चात्र संस्थितः (?) (।*)
उभयं निर्द्दिदेशासौ पितुः पुण्याय पुण्य-धीरिति (॥*) १२

स्कन्द गुप्त का विहार स्तम्भ-लेख

१ ◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —: (।*)
नृ-चन्द्र इन्द्रानुज-तुल्य-वीर्य्यो
गुणैरतुल्यः ◡ ◡ — ◡ — — (॥*) १
२ — — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
तस्यापि सूनुर्भुवि स्वामि-नेयः
ख्यातः स्व-कीर्त्या ◡ ◡ — ◡ — — (॥*) २
३ ◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
(स्व)सैव यस्यातुल-विक्रमेण-
कुमारगु(प्तेन) ◡ — ◡ — — (॥*) ३
४ — — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
(पि)त्रिश्च देवांश्च हि हव्य-कव्यैः
सदा नृशंस्यादि ◡ — ◡ — — (॥*) ४
५ ◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — — ◡
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — ◡ — (।*)
(अ)चीकरद्देव-निकेत-मण्डलं
क्षितावनौपम्य ◡ — ◡—◡— (॥–) ५
६ ....(स्कन्दगुप्त*) (बटे ?) किल (।*)
स्तम्भ-वरोच्छ्रिय–प्रभासे तु मण्ड...... (॥*) ६
७ ....भिर्वृक्षाणां (।*)
कुसुम-भरानताग्र-(श्रृंग?)-व्यालम्ब-स्तवक......(॥*) ७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८ — — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
भद्रार्य्यया भाति गृहं नवाभ्र-
निर्म्मोक-निर्मु(क्त) ⏑ — ⏑ — — (॥*) ८

९ — — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
स्कन्द-प्रधानैर्भुवि मातृभिश्च
लोकान्स सुप्य (?) ⏑ ⏑ — ⏑ — — (॥*) ९

१० — — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ यूपोच्छ्रयमेव चक्रे (॥*) १०

११ ....(**स्क***)**न्दगुप्त-वटे** अन्शानि ३०(+*) ५ ता(?)म्रकटा-

१२ ......पितुः स्वमातुर्य्यद्यस्ति हि दुष्कृतं भजतु तने............

१३ ....काग्रहारे अन्शानि ३ **अनन्तसेने**नोप...............

द्वितीय अंश

१४ ....(सर्व्व-राजोच्छे*)त्तुः प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य

१५ (चतुरुदधि-सलिलास्वादित-यशसो धनद-वरुणे*)न्द्रान्तकसमस्य कृतान्त

१६ (परशोः न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरो*)त्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुः

१७ (महाराज-श्री**गुप्त**-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री**घटो***)**त्कच**-पौत्रस्य महाराजा-

१८ (धिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य लिच्छवि-दौहित्रस्य म*))हादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य

१९ (महाराजाधिराज-श्री-**समुद्रगुप्तस्य** पुत्र*)स्तत्परिगृहीतो महादेव्यां

२० (दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः पर*)मभागवतो महाराजा-

२१ (धिराज-श्री**चन्द्रगुप्तस्**तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्या*)तो महादेव्यां ध्रुवदेव्या-

२२ (मुत्पन्नः परम-भागवतो महाराजाधिराज-श्री**कुमारगुप्त**स्तस्य*) पुत्रस्त-त्पादानुद्ध्यातः

२३ (परम-भागवतो महाराजाधिराज-श्री**स्क***)**न्दगुप्तः** (॥*)

२४ ... ... परमभागवतो

२५ (महाराजाधिराज-श्री-**स्कन्दगुप्तः***) ... ... (**व***)**षयिकाजपुरकसामै**-(ग्रा) (म*)-

२६ ... ... ग्रा...क...(अ–)क्षय-नीवी ग्रामक्षेत्रं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२७ ... ... कृ...उपरिक-कुमारामात्य-

२८ ... ... ङ्गि कुलः (?) वणि (ज*) क-पादितारिक-

२९ ... ...(आ*) ग्रहारिक-शौल्किक-गौल्मिकासन्यां श्र (?)

३० ... ... वा (सि) कादीनस्मत्प्रसादोपजीविनः

३१ (समाज्ञापयामि*)... ... ...**वर्म्मणा** विज्ञापितो (ऽ*) स्मि मम पितामहेन

३२ ... ... नमे भट्ट-गुहिलस्वामिना भद्रा (र्य्य) का

३३ ... ... (प्र) ति...... आग्रोकय...नाकय... ... ...

द्वितीय कुमार गुप्त का सारनाथ प्रतिमा-लेख

(तिथि गु० स० १५४)

१ **वर्षशते गुप्तानां सचतुःपञ्चाशदुत्तरे** (।*)-
भूमिं रक्षति **कुमारगुप्ते** मासि ज्येष्ठे- द्वितीयायाम् ॥ १

२ भक्त्यावर्ज्जित-मनसा यतिना पूजार्त्थमभयमित्रेण (।*)
प्रतिमा-प्रतिमस्य गुणै (र) प (रे) यं (का) रिता **शास्तुः** ॥ २

३ माता-पितृ-गुरु-पू (र्व्वैं) : पुण्येनानेन सत्व-कायो (ऽ*) यं (।*)
लभतामभिमतमुपशम-f * * * * म् ॥ ३

द्वितीय कुमार गुप्त का भितरी मुद्रा-लेख

१ (सर्व्व)-राजोच्छेत्तु⁀पृथिव्यामप्रतिरथस्य महाराज-श्री (**गुप्त**) -प्रपौ (त्र)-
स्य महाराज-श्री**घटोत्कच**-पौत्रस्य म (हा)-

२ (राजा) धिर (ा) ज-श्री**चन्द्रगुप्त**-पुत्रस्य **लिच्छ (वि**-दौहित्रस्य) म (हादे)-
व्य (ां) (कुमा) रदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-

३ (श्री) **समुद्रगुप्त**स्य पुत्रस्तत्परि (गृही) तो म (हादेव्या) (**न्दत्तदेव्या**) मुत्पन्न-
स्स्वयं च (ा) प्रतिरथ⁀परमभाग-

४ (वतो) (महाराजा) धिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य (पुत्र) स्तत्पाद (ा) नु-
(द्धचा) तो महादेव्य (ां) (ध्रु) वदेव्यामुत्पन्नो म (हारा)-

५ (जाधि) राज-श्री**कुमार (गुप्त)** स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्धचा (ातो) महादेव्या-
मनन्तदेव्य (ा) मुत्पन्नो महा (रा)-

६ (जाधिरा) ज-श्री (**पुरगुप्त**) स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्धच (ातो) महादे (वचां)
श्री चन्द्रदेव्यामुत्प (न्नो) म (हा)-

७ (राजाधिरा) ज-श्री**नरसिंहगुप्त**स्तस्य (पु) त्रस्त (त्प) ादा (नुद्धचातो) मह-
(ादेव्यां) श्रीम (न्मित्र)-

८ (देव्या) मु (त्प) न्न⁀परमभ (ा) गवतो मह (ाराजाधिरा) ज-श्री**कुम (ा) र**
(गुप्तः ॥)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बुधगुप्त का सारनाथ प्रतिमा-लेख

(तिथि गु० स० १५७)

१ **गुप्तानां** समतिक्रान्ते **सप्तपंचाशदुत्तरे** (।*)
शते समानां पृथिवीं **बुधगुप्ते** प्रशासति ॥ १
(वैशाख-मास-सप्तम्यां मूले श्याम-गते*)
मया (।*)
कारिताभयमित्रेण प्रतिमा शाक्य-भिक्षुणा ॥२
इमामुद्दण्ड-सच्छत्र-पद्मास(न-विभूषितां ।*)
(देवपुत्रवतो दिव्यां *)
३ चित्रवि(द्या)-सचित्रितां ॥३
यदत्र पुण्यं प्रतिमां कारयितत्वा मया भृतम् (।*)
माता-(पित्रोर्गु)(रूणां च लोकस्य च समाप्तये ॥*) ४

बुधगुप्त का दामोदर पुर ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १६३)

१ (सं १००*)(+*) (६०) (+*) ३ आषाढ-दि १० (+*) ३
परमदैवत-परम-भट्टा(र)क-महाराजाधिराज-श्री**बुधगुप्ते** (पृथि)वी-पतौ
तत्पाद-(परि)गृहीते **पुण्ड्र**(व)-

२ (**र्द्धन**)भुक्तावुपरिक-महाराज-**ब्रह्मदत्ते** संव्यवहरति(।*) स्व(स्ति)(।*)
पलाशवृन्दकात्सविश्वासं महत्तराद्यष्टकुलाधि(क)-

३ (र)ण-ग्रामिक-कुटुम्विनश्च **चण्डग्रामके** ब्राह्मणाद्यान्क्षुद्र-प्रकृति-कुटुम्बिनः
कुशल-मुक्त्वानुदर्शयन्ति (यथैवं ?)

४ (वि)ज्ञापयती नो ग्रामिक-नाभको(ऽ*)हमिच्छे मातापित्रोस्स्वपुण्या-
प्यायनाय कदिचिद्ब्राह्मणार्य्यान्प्रतिवासयितुं

५ (तद)र्हथ ग्रामानुक्रम-विक्रय-मर्य्यादया मत्तो हिरण्यमुपसंगृह्य समुदय-
वाह्याप्रद-(खिल-क्षेत्राणा(ं)

६ (प्र)सादं कर्त्तुमति (।*) यतः पुस्तपाल-पत्रदासेनावधारितं युक्तमनेन
विज्ञापित-मस्त्ययं विक्रय

७ मर्य्यादा-प्रसङ्गस्तद्दीयतामस्य परमभट्टारक-महाराज-पा(दे)न पुण्योप-
चयायेति (।*) पुनरस्यैव

८ (पत्रदा)सस्यावधारणयावधृत्य नाभक-हस्ताद्दीनार-(द्वय)मुपसंगृह्य स्थाय-
पाल-कपिल-श्रीभद्राभ्यायायकृत्य च समुदय-

९ (वाह्याप्रद*)-(खि)ल-क्षेत्रस्य कुल्यवापमेकमस्य **वायिग्रामको**त्तर-पार्श्व-
स्यैव च सत्यमर्य्यादाया दक्षिण-पश्चिम-पूर्वेण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१० मह(त्त)राद्यधिकरण-कुटुम्विभिः प्रत्यवेक्ष्याष्टक-नवक-नवक-नलाभ्याम-
पविञ्छय-चतुस्सीमोल्लिङ्गच्य च नागदेवस्य
११ (दत्तं) (।*) (तदु)त्तर-कालं संव्यवहारिभिर्द्धर्म्ममवेक्ष्य प्रतिपाल-
नीयमुक्तञ्च महर्षिभिः (।*)
स्वदत्ताम्परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां ।
१२ (स विष्ठा)यां कृमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते (॥*) १
बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिः (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य
१३ तदा फलं (॥*) २
षष्टिं वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः ।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति ॥३

बुधगुप्त का एरण स्तम्भ-लेख
(तिथि गु० स० १६५)

१ जयति विभुश्चतुर्भुजश्चतुरर्ण्णव-विपुल-सलिल-पर्य्यङ्कः (।)
जगतः स्थित्युत्पत्ति-न्य(यादि*)-
२ हेतुर्ग्गरुड-केतुः (॥*) १
शते पञ्चषष्टच्यधिके वर्षाणां भूपतौ च **बुधगुप्ते** ।
आषाढ-मास-(शुक्ल)-
३ (द्वा)दश्यां सुरगुरोर्द्दिवसे । (।*) २
सं १०० (+*) ६० (+*) ५ (॥*)
कालिन्दी-नर्म्मदयोर्म्मध्यं पालयति लोकपाल-गुणै-
र्ज्जगति महा(राज)-
४ श्रियमनुभवति **सुरश्मिचन्द्रे** च । (।*) ३
अस्यां संवत्सर-मास-दिवस-पूर्व्वायां स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतु-याजि (नः)
५ अधीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-वृषभस्येन्द्रविष्णोः प्रपौत्रेण पितु-
र्गुणानुकारिणो वरुण(विष्णोः)
६ पौत्रेण पितरमनुजातस्य स्व-वंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रेणात्यन्त-भग-
वद्भक्तेन विधातुरिच्छया स्वयंवरयेव र(ा)ज-
७ लक्ष्म्याधिगतेन चतुःसमुद्र-पर्य्यन्त-प्रथित-यशसा अक्षीण-मानधनेनानेक-शत्रु
समर-जिष्णुना महाराज-**मातृविष्णुन**(ा)
८ तस्यैवानुजेन तदनुविधायिन(ा) तत्प्रसाद-परिगृ(ही)तेन **धन्यविष्णु**ना
च । मातृ-पित्रोः पुण्याप्यानार्थमेष भगवतः ।
पुण्यजनार्द्दनस्य **जनार्द्दनस्य** ध्वजस्तम्भो(ऽ*)भ्युच्छ्रितः (॥*) स्वस्त्यस्तु
गो-ब्राह्मण-(पु)रोगाभ्यः सर्व्व-प्रजाभ्य इति । (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बुधगुप्त का दामोदर पुर ताम्रपत्र-लेख

१ ... ... फाल्गुन-दि १० (+*) (५) परमदैवत-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्री**बुधगु(प्ते)** (पृथिवी*)-

२ (पतौ*) (त*) त्पाद-परिगृहीतस्य **पुण्ड्रवर्द्धन**-भुक्तावुपरिक-महाराज-**जयदत्तस्य** भोगेनानु(वहमा)-

३ नके **(को)टि(वर्ष)**-विषये च तन्नियुक्तकेहायुक्तक-**शण्डके** अधिष्ठानाधि-करण(`*) नगरश्रेष्टिरिभु-

४ पा(ल)-सार्त्थवाहवसुमित्र-प्रथमकुलिकवरदत्त-प्रथमकायस्थविप्रपाल-पुरोगे च स(म्व्य)-वहरति

५ अनेन श्रेष्ठि-रिभुपालेन विज्ञापितं **हिमवच्छिखरे कोकामुखस्वामिनः** चत्वारः कुल्यवापाः **(श्वे)तव-**

६ **राहस्वामिनो**(ऽ*)पि सप्त कुल्यवापाः अस्मत्फलाशन्सिनो पुन्याभिवृद्धये **डोङ्गाग्रामे** पूर्व्वं मया

७ अप्रदा अतिसृष्टकास्तदहन्तत्क्षेत्र-सामीप्य-भूमौ तयोराद्य-**कोकामुखस्वामि-श्वेतवराह-**

८ **स्वामिनोर्न्ना(म)ल्लिङ्गमेकं** देवकुल-द्वयमेतत्कोष्ठिका-द्वयञ्च कारयितुमि-च्छाम्यर्हथ वास्तुना

९ सह(कुल्य)वापान्यथाक्रय-मर्य्यादया दातुमिति (।*) यतः पुस्तपाल-विष्णुदत्त-विजय-(नन्दि)-स्थानु-

१० नन्दिनामवधारणयावधृतमस्त्यनेन **हिमवच्छिखरे** तयोः कोकामुखस्वामि-श्वेतवरा(ह)-स्वामि(नोः)

११ अप्रदा-क्षेत्र-कुल्यवापा एकादश दत्तकास्तदर्त्थञ्चेह देवकुल-कोष्ठिका-करणे युक्त(मे)त-(द्विज्ञा)-

१२ (पितं) (क्र)मेण तत्क्षेत्र-सामीप्य-भूमौ वास्तु दातुमित्यनुवृत्त-त्रिदीनारि-**क्यकु(ल्यवा)प-विक्रय(मर्य्या)द-**

१३ (या*)... ... ...

१४ ... ... पु(ष्करि)णी पू(र्व्वेण) रिभु(पा)ल-पु(ष्करिणी?) (दक्षिणेन)

१५ ... ... दत्ताः (ऽ*) (त)दुत्तरकाल (सं)व्यवहारिभिर्द्दे-वभ(क्त्या)नु-मन्तव्या (उक्तं) व्यासेन (।*)
स्व-दत्तां परदत्ता-

१६ (म्वा) यो हरेत) वसुन्धराम् (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स विष्टा (यां) क्रिमिर्भूत्वा पि (तृ) भिस्स (ह पच्यते) (॥*) १
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो
१७ (यत्नाद्रक्ष यु) धिष्ठिर (।*)
महीं (महीमतां) श्रेष्ठ दा (नाच्छ्रेयो (ऽ*) नुपालनं) (॥*) २
(बहु) भिर्व्वसु (धा ·द) त्ता
१८ (राजभिश्च) पुनः पुनः (।*)
(य) स्य (य) स्य यदा भूमि (स्तस्य तस्य) त (दा) फलमिति (॥*) ३

वैन्यगुप्त का गुणैघर ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १८८)

१ स्वस्ति (॥*) महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारात्**क्रीपुरा**द्भगवन्**महादेव**-पादानुद्धयातो महाराज-श्री**वैन्यगुप्तः**
२ कुशली * * * * * * * * स्वपादोपजीविनश्च कुशलमाशंस्य समाज्ञापयति (।*) विदितं भवतामस्तु यथा
३ मया मातापित्रोरात्मनश्च पु (ण्या) भिवृ (द्ध) ये (ऽ*) स्मत्पाददास-महाराज**रुद्रदत्त**-विज्ञाप्यादनेनैव महायानिक-शाक्यभिक्ष्वा-
४ चार्य्य-**शान्तिदेव**मुद्दिश्य गोप (?) ... ... (दिग्भागे?) कार्य्यमाण-कार्य्यावलोकितेश्वराश्रम-विहारे अनेनै-
५ वाचार्य्येण प्रतिपादित (क?)-महायानिक-वैवर्त्तिक-भिक्षु-संघनाम्परिग्रहे **भगवतो बुद्धस्य सततं त्रिष्कालं**
६ **गन्ध-पुष्प-दीप-धूपादि-प्र (वर्त्तनाय–)** (त–) स्य भिक्षुसंघस्य च चीवर-पिण्डपात-शयनासन-ग्लानप्रत्ययभैषज्यादि-
७ परिभोगाय विहारे (–च) खण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्कार-करणाय **उत्तरमाण्डलिककान्तेडदकग्रामे** सर्वतो भो-
८ गनाग्रहारत्वेनैकादश-खिल-पाटकाः पञ्चभिः खण्डैस्ताम्र-पट्टेनातिसृष्टाः (।*) अपि च खलु श्रुति-स्मृती-
९ (ति*) हा (स)-विहितां पुण्यभूमिदान-श्रुतिमैहिकामुत्रिक-फल-विशेषे स्मृतो भावतः समुपगम्य स्वतस्तु पी-
१० डामप्यूरीकृत्य पात्रेभ्यो भूमिं * * * * * * * * * * (।*) द्विष-(?) द्भिरस्म-द्वचन-गौरवात्स्व-यशो-धर्मावाप्तये चैते
११ पाटका अस्मिन्वि (?) हारे शश्वत्कालमभ्य (नुपालयितव्याः ॥*) अनुपालनम्प्रति च भगवता पराशरात्मजेन वेदव्या-
१२ सेन **व्यासेन गीताः श्लोकाः भवन्ति** (।*)
षष्टिं वर्ष-स (हस्रा) णि स्वर्गे मोदति भूमिदः (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आक्षेप्ता चानुमन्ता च ता-
१३ न्येव न(र*)के वसेत् (।।*) १
स्व-दत्तां पर-दत्ताम्वा यो हरेत (वसु)न्धरां (।*)
(स) विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते (।।*) २
१४ पूर्व-दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
महीं महीमतां श्रेष्ठ दानात्श्रयो(ऽ*)नुपालनं (।।*) ३
वर्त्तमानाष्टाशीत्यु-
१५ **त्तर-शत-संवत्सरे** पौष-मासस्य चतुर्व्विन्शतितम-दिवसे दूतकेन महाप्रतीहार-
महापीलुपति-पञ्चाधि-
१६ करणोपरिक-पाटचुपरिक-(पुर?)पुरपालोपरिक-महाराज-श्रीमहासामन्त-
विजयसेने नैतदेकादश-पाटक-दा-
१७ नायाज्ञामनुभाविताः कुमारामात्य-रेवज्जस्वामी भामह-वत्स-भोगिकाः
(।।*) लिखितं सन्धिविग्रहारिकरण-काय-
१८ स्थ-नरदत्तेन (।।*) यत्रैक-क्षेत्रखण्डे नव-द्रोणावापाधिक-सप्त-पाटक-
परिमाणे सीमालिङ्गानि (।*) पूर्व्वेण **गुणेका-**
१९ **ग्रहार**ग्राम-सीमा विष्णुवधकि-क्षेत्रश्च (।*) दक्षिणेन मिदुविलाल(ऽ?)-
क्षेत्रं राज-विहार-क्षेत्रञ्च (।*) पश्चिमन सूरी-नाशी-रम्पूर्ण्णक-
२० क्षेत्रं (।*) उत्तरेण दोषी-भोग-पुष्करिण (ी) ... ...
(ए*)वम्पियाकादित्य-वन्धु-क्षेत्राणाञ्च सीमा (।।*)
२१ द्वितीय-खण्डस्याष्टाविन्शति-द्रोणवाप-परिमाणस्य सीमा (।*) पूर्व्वेण
गुणिकाग्रहारग्राम-सीमा (।*) दक्षिणेन पक्क-
२२ विलाल(?)-क्षेत्रं (।*) पश्चिमेन राजविहार-क्षेत्रं (।*)उत्तरेण वैद्य-
(?)-क्षेत्रं (।।*) तृतीय-खण्डस्य त्रयोविन्शति-द्रोणवाप-
२३ परिमाणस्य सीमा (*) पूर्व्वेण .... क्षेत्रं (।*) दक्षिणेन
नखद्दार्च्चरिक(?)-क्षेत्र-सीमा (।*) पश्चिमेन
२४ ज(जो?)लारी-क्षेत्रं (।*) उत्तरेण नागी-जोडाक-क्षत्रं (।।*) चतुर्थस्य
त्रिंशद्द्रोणवाप-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा (।*) पूर्व्वेण
२५ बुद्धाक-क्षेत्र-सीमा(।*) दक्षिणेन कालाक-क्षेत्रं (।*) पश्चिमेन (सू)र्य्य-
क्षेत्र-सीमा (।*) उत्तरेण महीपाल-क्षेत्रं (।।*) (प)ञ्चमस्य
२६ पादोन-पाटक-द्वय-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा (।*) पूर्व्वेण खण्ड-
वि(ड्ड)ग्गुरिक-क्षेत्रं (।*) दक्षिणेन मणिभद्र-
२७ क्षेत्रं (।*) पश्चिमेन यज्ञरात-क्षेत्र-सीमा (।*) उत्तरेण **नादडदक**ग्राम-
सीमेति (।।*) विहार-तलभूमेरपि सीमा-लिङ्गानि (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२८ पूर्व्वेण **चूडामणिनगरश्रीनौयोग**योर्म्मद्ध्ये जोला (।*) दक्षिणेन गणेश्वर-विलाल-पुष्करिण्या नौ-खातः (।*)

२९ पश्चिमेन प्रद्युम्नेश्वर देवकुल-क्षेत्र-प्रान्तः (।*) उत्तरेण **प्रडामार**-नौयोग-खातः (॥*) एतद्विहारप्रावेश्य-शून्यप्रतिकर-

३० हज्जिक-खिल-भूमेरपि सीमा-लिङ्गानि (।*) पूर्व्वेण प्रद्युम्नेश्वर-देवकुल-क्षेत्र-सीमा (।*) दक्षिणेन शाक्यभिक्ष्वाचार्य्य-जित-

३१ सेन-वैहारिक-क्षेत्रवसा(?)नः (।*) पश्चिमेन ह(?)चात-गंग उत्तरेण दण्ड-पुष्किणी चेति ॥ **सं** १०० (+*) ८० (+*) ८ पोष्ष-दि २० (+*) ४ (॥*)

भानुगुप्त का एरण स्तम्भ-लेख

(तिथि गु० स० १९१)

१ १˚ (॥*) **संवत्सर-शते एकनवत्युत्तरे** श्रावण-बहुलपक्ष-स(प्त)म्य(ां) (।*)

२ **संवत्** १०० (+*) ९० (+*) १ श्रावण-ब-दि ७ ॥

* * क्त-वङ्शादुत्पन्नो * *

३ **राजे**ति विश्रुतः (।*)

तस्य पुत्रो(ऽ*)तिविक्क्रान्तो नाम्ना राजाथ **माधवः** ॥ १

गोपराज(:)

४ सुतस्तस्य श्रीमान्विख्यात-पौरुषः (।*)

शरभराज-दौहित्रः स्व-वङ्शा-तिलको(ऽ*)धुना(?) (॥*) २

५ श्री **भानुगुप्तो** जगति प्रवीरो

राजा महान्पार्थ-समो(ऽ*)ति-शूरः (।*)

तेनाथ सार्द्धन्त्विह **गोपर(ाजो)**

६ मित्रानु(गत्येन) किलानुयातः ॥ ३

कृत्वा (च*) (यु)द्धं सुमहत्प्रक(ा)शं

स्वर्ग्गं गतो दिव्य-न(रे?)(न्द्र-कल्पः*) (।*)

७ भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता

भ(ार्य्याव)ल(ग्न)ा नुगता(ग्नि)र(ा)शिम् ॥ ४

दामोदर पुर ताम्रपत्र-लेख

कोटिवर्षाधिष्ठानाध(करणस्य) ।

१ **स(म्व)** २००(+*) २०(+*) ४ भाद्र-दि ५ परमदैवत-परमभट्टा-रक-म(हा)-राजाधिराज-श्री...

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ **गुप्ते** पृथिवीपतौ तत्पाद-परिगृहीते **पुण्ड्रवर्द्धन**--भुक्तावुपरि (क-महाराजस्य) (महा*)-

३ राजपुत्र-**देवभट्टारकस्य** हस्त्यश्व-जन-भोगेनानुवहमा (न) के **को (टिव)-र्ष**-विष (ये) च त-

४ न्नियुक्तकेह्विषयपति-**स्वयम्भुदेवे** अधिष्ठानाधिकरण (म्*) आर्य्य (न) गर-(श्रेष्ठिरिभु) पाल-

५ सार्त्थवाहस्थाणुदत्त-प्रथमकुलिकमतिदत्त-प्रथमकायस्थस्कन्दपाल-पुरोगे (स) व्य (वह) रति

६ **आयोध्यक**-कुलपुत्रक-अमृतदेवेन विज्ञापितमिह-विषये समुदयबाह्याप्रहत-खिल-(क्षे) त्रा-

७ णां त्रिदीनारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो (ऽ*) नुवृत्तः तपुर्हथ मत्तो दीनारानुप-संगृह्य मन्मातुः (पु) ण्या-

८ भिवृद्धये अत्रारण्ये भगवतः **श्वेतवराहस्वामिनो** देवकुले खण्ड-फुट्ट-प्रति-(सं) स्का (र)-(क)-

९ **रणाय बलिचरुसत्रप्रवर्त्तन-गन्धधूपपुष्पप्रापण-मधुपर्क्कदीपाद्युप (यो) गा (य) च**

१० अप्रदा-धर्म्मेण ताम्रपट्टीकृत्य क्षेत्र-स्तोकन्दातुमिति (।*) यतः प्रथमपुस्त-पाल-नर (न) न्दि-

११ गोपदत्त-भट (?) नन्दिनामवधारणया युक्त (त) या ध (र्म्माधि) कार-(बु)-द्धया विज्ञापित (ं*) ना (त्र*) (वि*)-

१२ षय-पतिना (ं*) कश्चिद्विरोधः केवलं श्री-परमभट्टारकपादेन धर्म्मप (र)

१३ (तावाप्ति) (:*)

१४ इत्यनेनावधारणाक्रमेण एतस्मादमृतदेवात्पञ्चदश-दीनारानुपसंगृह्य एत-न्मातु (:*)

१५ अनुग्रहेण **स्वच्छन्दपाटके** (ऽ*) (र्द्ध) टी-प्रावेश्य-**लवङ्गसिकायाञ्च** वास्तु-भिस्सह कुल्यवाप-द्वयं

१६ **साट्वनाश्रमके** (ऽ*) पि वास्तुना सह कुल्यवाप एकः **परस्पतिकायां** पञ्च-कुल्य-वापकस्योत्त (रे) ण

१७ **जम्बून (द्या)**: पुर्व्वेण कुल्यवाप एकः **पूरणवृन्दिकहरौ** पाटक-पूर्व्वेण कुल्यवाप एकः इत्येवं खिल-क्षेत्र-

१८ स्य वास्तुना सह पञ्च कुल्यवापाः अप्रदा-धर्म्मेण भग (व*) ते **श्वेतवराह-स्वामिने** शश्वत्कालभोग्या दत्ताः (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१९ तदुत्तरकालं संव्यवहारिभिः देवभक्त्यानुमन्तव्याः (।*) अपि च भूमि(दा)-
न-सम्वद्धाः श्लोका भवन्ति (।*)

२० स्व-दत्तां पर-दत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धरां (।*)
स विष्ठायां क्रिमिर्भ्भुत्वा पितृभिस्सह पच्यते (।।*) १
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता

२१ राजभिस्सगरादिभिः (।।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं (।।*) २
षष्टिं वर्ष्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद

२२ आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति (।।*) ३

आदित्यसेन का अपसद शिलालेख

आसीद्दन्तिसहस्रगाढकटको विद्याधराध्यासितः ।
सद्वंशः स्थिर उन्नतो गिरिरिव **श्रीकृष्णगुप्तो** नृपः ।।
दृप्तारातिमदान्धवारणघटाकुम्भस्थलीः क्षुन्दता ।
यस्यासंख्यरिपुप्रतापजयिना दोष्णा मृगेन्द्रायितम् ।।१।।
सकलः कलङ्करहितः क्षततिमिरस्तोयधेः शशाङ्क इव
तस्मादुदपादि सुतो देवः श्री **हर्षगुप्त** इति ।। २ ।।
यो योग्याकालहेलावनतदृढधनुर्भीमबाणौघपाती ।
मूर्तैः स्वस्वामिलक्ष्मीवसतिविमुखितैरी क्षितः सास्रुपातम् ।।
घोराणामाहवानां लिखितमिव जयं श्लाघ्यमाविर्दधानो ।
वक्षस्युद्दामशस्त्रव्रणकठिनकिणग्रन्थिलेखाच्छलेन ।। ३ ।।
श्री **जीवितगुप्तो**ऽभूत्क्षितीशचूडामणिः सुतस्य ।
यो दृप्तवैरिनारीमुखनलिनवनैकशिशिरकरः ।। ४ ।।
मुक्तामुक्तपयःप्रवाहशिशिरासूत्तुङ्गतालीवन-
भ्राम्यद्दन्तिकरावलूनकदलीकाण्डासु वेलास्वपि ।।
श्च्योतत्स्फारतुषारनिर्झरपयःशीतेऽपि शैले स्थिता-
न्यस्योच्चैर्द्विषतो मुमोच न महाघोरः प्रतापज्वरः ।। ५ ।।
यस्यातिमानुषं कर्म दृश्यते विस्मयाज्जनौघेन ।
अद्यापि कोशवर्धनतटात्प्लुतं पवनजस्येव ।। ६ ।।
प्रख्यातशक्तिमाजिषु पुरःसरं **श्रीकुमारगुप्त**मिति ।।
अजनयदनेकं रा नृपो हर इव शिखिवाहनं तनयम् ।। ७ ।।
उत्सर्पद्वातहेलाचलितकदलिकावीचिमालावितानः ।
प्रोद्यद्धूलीजलौघभ्रमितगुरुमहामत्तमातङ्गशैलः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भीमः श्रीशानवर्मक्षितिपतिशशिनः सैन्यदुग्धोदसिन्धु-
र्लक्ष्मीसंप्राप्तिहेतुः सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन ॥ ८ ॥
शौर्यसत्यव्रतधरो **यः प्रयागगतो धने** ।
अम्भसीव करीषाग्नौ मग्नः स पुष्पपूजितः ॥ ९ ॥
श्री **दामोदरगुप्तो**ऽभूत्तनयः तस्य भूपतेः ।
येन दामोदरेणैव दैत्या इव हता द्विषः ॥ १० ॥
यो मौखरेः समितिषूद्धतहूणसैन्य-
वल्गत्घटा विघटयन्नुरुवारणानाम् ॥
सम्मूर्च्छितः सुरवधूर्वरयन्ममेति ।
तत्पाणि पङ्कजसुखस्पर्शाद्विबुद्धः ॥ ११ ॥
गुणवद्द्विजकन्यानां नानालङ्कारयौवनवतीनाम् ।
परिणायितवान्स नृपः शतं निसृष्टाग्रहाराणाम् ॥ १२ ॥
श्री **महासेनगुप्तो**ऽभूत्तस्मा द्वीराग्रणीः सुतः ।
सर्ववीरसमाजेषु लेभे यो धुरि वीरताम् ॥ १३ ॥
श्रीमत्सुस्थितवर्मयुद्धविजयश्लाघापदाङ्कं मुहुः ।
यस्याद्यापि विबुद्धकुन्दकुमुदक्षुण्णाच्छहार तम् ॥
लौहित्यस्य तटेषु शीतलतलेषूत्फुल्लनागद्रुम-
च्छायासुप्तविबुद्धसिद्धमिथुनैः स्फीतं यशो गीयते ॥ १४ ॥
वसुदेवादिव तस्माच्छ्रीसेवनशोभितचरणयुगः ।
श्रीमाधवगुप्तोऽभून्माधव इव विक्रमैकरसः ॥ १५ ॥
.........नुस्मृतो धुरि रणे श्लाघावतामग्रणीः ।
सौजन्यस्य निधानमर्थनिचयत्यागोद्धुराणां वरः ॥
लक्ष्मीसत्यसरस्वतीकुलगृहं धर्मस्य सेतुर्दृणः ।
पूज्यो नास्ति स भूतले........सद्गुणैः ॥ १६ ॥
चक्रं पाणितलेन सोऽप्युदवहत्तस्यापि शार्ङ्गं धनुः ।
नाशायासुहृदां सुखाय सुहृदां तस्याप्यसिर्नन्दकः ॥
प्राप्ते विद्विषतां वधे प्रतिहत्..तेनाप...... ।
......................न्या प्रगेमुर्जनाः ॥ १७ ॥
आजौ मया विनिहिता बलिनो द्विषन्तः ।
कृत्यं न मेऽस्त्यपरमित्यवधार्य वीरः ॥
श्रीहर्षदेवनिजसङ्गमवाञ्छया च ।
.... ॥ १८ ॥
श्रीमान्बभुव दलितारिकरीन्द्रकुम्भ-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुक्तारजः पटलपांसु मण्डलाग्रः ॥
आदित्यसेन इति तत्तनयः क्षितीशः ।
चूड़ामणिर्द. ....॥ १९ ॥
...........मागत मरिध्वंसोत्थमाप्तं यशः ।
श्लाघं सर्वधनुष्मतां पुर इति श्लाघां परां बिभ्रति ॥
आशीर्वादपरम्पराचिरसकृद्..............॥
.........................यामास ॥ २० ॥
आजौ स्वेदच्छलेन ध्वजपटशिखया मार्जतो दानपङ्कं ।
खड्गं क्षुण्णेन मुक्ता शकल सिकति...........॥
.........................मत्तमातङ्गघातं ।
तद्गन्धाकृष्टसर्पद्बहलपरिमलभ्रांतमत्तालिजालम् ॥ २१ ॥
आबद्धभीमविकटभ्रुकुटीकठोर—
सङ्ग्राम...............
...........ववल्लभभृत्यवर्ग-
गोष्ठीषु पेशलतया परिहासशीलः ॥ २२ ॥
सत्यभर्तृव्रता यस्य मुखोपधानतापसी
परिहास.................॥ २३ ॥
...............ज्ञः सकलरिपुबलध्वंसहेतुर्गरीया
न्निस्त्रिंशोत्खातघातश्रमजनितजडोऽप्यूर्जितस्वप्रतापः ।
युद्धे मत्तेभकुम्भस्थल..............
.....श्वेतातपत्रस्थगितवसुमतीमण्डलो लोकपालः ॥ २४ ॥
आजौ मत्तगजेन्द्रकुम्भदलनस्फीतस्फुरद्दोर्युगो
ध्वस्तानेकरिपुप्रभाव...........यशोमण्डलः ।
न्यस्ताशेषनरेन्द्रमौलिचरणस्फारप्रतापानलो
लक्ष्मीवान्समराभिमानविमलप्रख्यातकीर्तिर्नृपः ॥ २५ ॥
येनेयं शरदिन्दुबिम्बधवला प्रख्यातभूमण्डला
लक्ष्मीसङ्गमकांक्षया सुमहती कीर्तिश्चिरं कोपिता ।
याता सागरपारमद्भुततमा सापत्नवैरादहो
तेनेदं भवनोत्तमं क्षितिभुजा विष्णोः कृते कारितम् ॥ २६ ॥
तज्जनन्या महादेव्या श्रीमत्या **कारितो मठः** ।
धार्मिकेभ्यः स्वयं दत्तः सुरलोकगृहोपमः ॥ २७ ॥
शङ्खेन्दुस्फटिकप्रभाप्रतिसमस्फारस्फुरच्छीकरं
नक्रक्रान्तिचलत्तरङ्गविलसत्पक्षिप्र नृत्यत्तिमि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

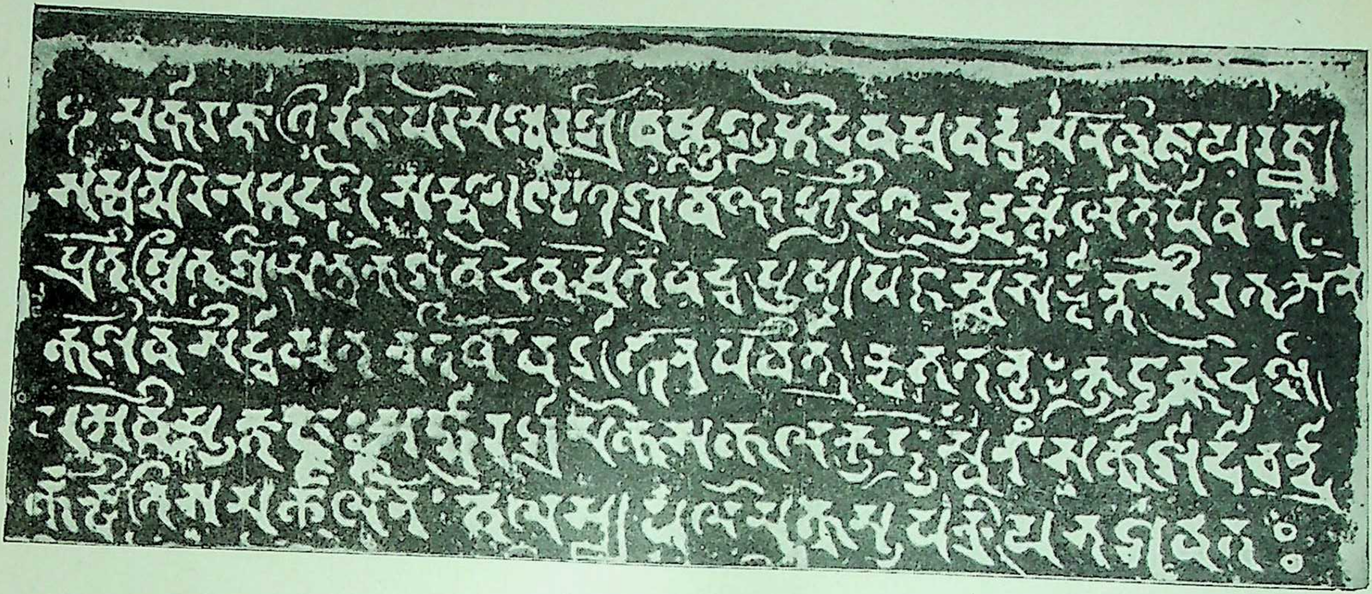

(विष्णुगुप्त का मंगराव लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राज्ञा खानितमद्भुतं सुपयसा पेपीयमानं जनै
स्तस्यैव प्रियभार्यया नरपतेः **श्रीकोण देव्या सरः** ॥ २८ ॥
यावच्चन्द्रकला हरस्य शिरसि श्रीः शार्ङ्गिणो वक्षसि
ब्रह्मास्ये च सरस्वती कृतः .... ।
भोगे भूर्भुजगाधिपस्य च तडिद्यावद् घनस्योदरे
तावत्कीर्तिमिहातनोति धवलामादित्यसेनो नृपः ॥ २९ ॥
सूक्ष्म शिवेन गौडेन प्रशस्तिर्विकटाक्षरा ।
.... मिता सम्यग् धार्मिकेण सुधीमता ॥ ३० ॥

विष्णुगुप्त का मंगरांव लेख

ओं महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविष्णुगुप्तदेवप्रवर्द्धमानविजयराज्यसम्वत्सरे सप्तदशे सम्व(त्) १ १०. ७ श्रावण शुदि २ चुन्दस्कीलातगोवनप्रतिष्ठित श्रीमित्रकेशवदेवप्रतिवद्धपुष्पपट्टे स्वसिद्धान्तभिरत अनेकशिवसिद्धायतन-तीर्थविगाहने पवित्रीकृतः तनुः कुट्टुकदेशीय अविमुक्तउजः अंगार ग्रामके सकल-कुटुम्बिनां सकासादाचन्द्रार्कक्षिति समकालीनं तैलस्य पलमेकमुपक्रीय भगवतः श्री सुभद्रेश्वरदेवस्य प्रदीपार्थ प्रतिपादितवान् । एवं योन्यथा करोति यदत्रापायं स्तनदवाप्नोतीति। लिखिता देवदत्तेन संक्षिप्ता क्रमचीरिका। उत्कीर्णा सूत्रधारेण कुलादित्येन धीमता ।

जीवितगुप्त द्वितीय का देव वरनार्क स्तम्भलेख

नमः स्वस्ति शक्तित्रयोपात्तजयशब्देन महानौहास्त्यश्वपत्तिसम्भारदुर्निवा-राज्जय-स्कन्धावारात मोमति कोट्टक समीप वासकं ।...... **श्रीमाधवगुप्तः** तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्रीमत्यामुत्पन्नः परम भावगत **श्रीआदित्यसेनदेवं** तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परमभट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां **श्रीकोण देव्यामुत्पन्नः** परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर **श्रीदेवगुप्तदेवः** तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भट्टारि- कायां राज्ञां महादेव्यां श्रीकमलादेव्यां उत्पन्नः परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजा-धिराज परमेश्वर **श्रीविष्णुगुप्तदेवः** तस्यपुत्रः तत्पादानुध्यातो परम भट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्री इज्जादेव्यामुत्पन्नः परम.... परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **जीवितगुप्तदेव** कुशलीनगर भुक्तौ वालवी विषयैक वा ? वो पद्रलिक (क्षा) न्त शयाति वारुणिका ग्राम गोष्ठ नकुल तलवाटक दूत सीमाकर्मकनद्या.... टक राजपुत्र राजामात्य महाक्षपटतिक महादण्डनायक महाप्रतिहार महा सा......

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रभातस..... कुमारामात्य राजस्थानीयो परिक....... धिक चौराधरणिक दाण्डिक दण्डपाशिक...... क....... शणिवलव्यायतकिशोरवाटक ग्राम.... मणिकग.... पटिकर्म.... रसक.... तास्मत्पादप्रसादोपजीविनः च प्रतिवासिनस च ब्राह्मणोत्तर महत्तरक कुक्षीपुर..... विज्ञापित, श्रीवरुणवासि भट्टारक प्रतिबद्ध भोजक सूर्य मित्रेण उपरिलिखित....ग्रामाधि संयुक्त....परमेश्वर श्री बालादित्य देवेन स्वशासनेन भागव श्रीवरुणवासि भट्टारक.....क..... व परिवाटक.... भोजक हंसमित्रस्य समापतया यथा कलाध्यासिभिश्च एवं परमेश्वर **श्रीसर्ववर्मन**... भोजकं ऋषिमित्र...यतकं एवं परमेश्वर श्रीअवन्तिवर्मन पूर्वदत्तक अवलम्ब्य..... एवं महाराजाधिराज परमेश्वर.....शासनदानेन भोजक दूर्धमित्रस्यानुमोदित.... तेन........ भुज्यते तदहं किमपि.... एवं...... मतिमान्..... अनुयामोदितमिति सर्वं समज्ञापना.... इता... पभु...... वरुण वास्यायतनं तदनुदत्तम् .... त्यक्ष....... **सोद्रर्ग सोपरिकरं सदा सापराधपञ्च**........

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्त सम्राटों के समकालीन अधीनस्थ राजाओं के लेख

चद्रवर्मन का सुसानिया लेख

१ **पुष्करणाधिपतेर्म्महाराज-श्रीसिङ्हवर्म्मणः** पुत्रस्य
२ महाराज-श्री**चन्द्रवर्म्मणः** कृतिः (।*)
३ **चक्रस्वामिनः** दोसग्रणतिसृष्टः (॥*)

वैग्राम ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १२८)

१ स्वस्ति (॥*) **पञ्चनगर्य्यां** भट्टारक-पादानुध्यातः कुमारामात्य-**कुलवृद्धि**रेत-द्विषयाधिकरणञ्च

२ **वायिग्रामिक-त्रिवृत** (।*)-**श्रीगोहाल्योः** ब्राह्मणोत्तरान्सम्व्यवहारि-प्रमुखा-न्ग्राम-कुटुम्बिनः कुशलमनु-

३ वर्ण्य बोधयन्ति (।*) विज्ञापयतोरत्रैव वास्तव्य-कुटुम्बि-भोयिल-भास्करा-वावयोः पित्रा शिवनन्दि-

४ ना कारि(त)क(।*) भगवतो **गोविन्दस्वामिनः** देवकुलस्तदसावल्पवृत्तिकः (।*) इह-विषये समुदय-

५ बाह्याद्यस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणामकिञ्चित्प्रतिकराणां शश्वदाचन्द्रार्क्कतारक-भोज्यानां- मक्षय-नीव्या

६ **द्विदीनारिक्क्यकुल्यवाप**-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथावयोस्सकाशात्षड्दी-नारानष्ट च रूप-कानायी-

७ (कृ)त्य भगवतो **गोविन्दस्वामिनो देवकुले (ख)ण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्क(।*)र करणाय गन्ध-धूप-दीप-**

८ **सुमनसा (।*) प्रवर्त्तनाय च त्रिवृतायां भोगिलस्य** खिलक्षेत्र-कुल्यवाप-त्रयं श्रीगोहाल्याश्चापि

९ तल-वाटकार्थं (।*) स्थल-वास्तुनो द्रोणवापमेकं भास्करस्यापि स्थलवास्तुनो द्रोणवापञ्च दातु-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१० मि(ति) (।*) यतो युष्मान्बोधयाम (:*) पुस्तपाल-दुर्गदत्तार्क्कदासयोर-वधारणया अवधृत-

११ मस्तीह-विषये समुदय-व्याह्याद्यस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणा (ं*) शश्वदाचन्द्रार्क्क-तारक-भोज्यानां द्विदी-

१२ नारिक्यकुल्यवाप-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तः (।*) एवंविधाप्रतिकर-खिलक्षेत्र-विक्क्रये च न कश्चिद्राजार्त्थ-

१३ विरोध उपचय एव भट्टारक-पादानां धर्म्मफल-षड्भागावाप्तिश्च तद्दीयता-मिति (।*) एतयोः

१४ भोयिल-भास्करयोस्सका(शा*)त्षड्दीनारानष्ट च रूपकानायीकृत्य भगवतो **गोविन्दस्वामिनो**

१५ देवकुलस्यार्त्थे भोयिलस्य **त्रिवृतायां** खिलक्षेत्र-कुल्यवाप-त्रयं तलवाटकाद्यर्त्थम्

१६ **श्रीगोहाल्या** (ं*) स्थल-वांस्तुनो द्रोणवापं भास्करास्याप्यत्रैव स्थले-वस्तुनो द्रोणवाप-

१७ मेव(ं*) कुल्यवाप-त्रयं स्थल-द्रोणवाप-द्वयञ्च अक्षयनीव्यास्ताम्र-पट्टेन दत्तम् (।*) निम्न-

१८ कु ३ स्थल-द्रो २ (।*) ते यूयं स्वकर्षणाविरोधि-स्थाने दर्व्वी-कर्म्म-हस्तेनाष्टक-नवक-नलाभ्या-

१९ मपविञ्च्छ्य चिरकाल-स्थ(ा*)यि-तुषाङ्गारादिना चिह्नैश्चातुर्द्दिशो नियम्य दास्यथाक्षय-

२० नीवी-धर्म्मेन चं शश्वत्कालमनुपालयिष्यथ (।*) वर्त्तमान-भविष्यैश्च संव्य-वहार्य्यादि- भिरेत-

२१ द्धर्म्मापेक्षयानुपालयितव्यमिति (।।*) **उक्तञ्च भगव(ता*) वेदव्यास-महात्मना** (।*) स्व-दत्तां पर-दत्तां

२२ व्वा यो हरेत वसुन्धरां।
स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते (।।*) १
षष्टिं वर्ष-सह-

२३ स्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः (।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् (।।*) २
पूर्व्व-

२४ दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
मही(ं*) महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रे यो(ऽ*)नुपाल-

२५ नमिति (।।*) ३
सं १००(+*)२०(+*)८ माघ-दि १०(+*)९ (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहाड़पुर का ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १५९)

१ स्वस्ति (।।*) पुण्ड्र(वर्द्ध)नादायुक्तका आर्य्यनगरश्रेष्ठि-पुरोगञ्चाधिष्ठाना-
धिकरणम् दक्षिणांशकवीथेय-नागरिट्ट-

२ माण्डलिक-पलाशाट्ट पार्श्विक-वटगोहाली-जम्बुदेवप्रावेश्यपृष्ठिमपोत्तकगोषाट -
पुञ्जक-मूलनागिरट्टप्रावेश्य-

३ नित्वगोहालीषु ब्राह्मणोत्तरान्महत्तरादि-कुटुम्बिनः कुशलमनुवर्ण्यानुबोध -
यन्ति (।*) विज्ञापयत्यस्मान्ब्राह्मण-नाथ-

४ शर्म्मा एतद्भार्य्या रामी च (।*) युष्माकमिहाधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारि-
क्क्य-कुल्य-वापेन शश्वत्कालोपभोग्याक्षयनीवी-समुदयवाह्या-

५ प्रतिकर-खिलक्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथानेनैव क्क्रमेणावयोस्स-
काशाद्दीनार-त्रयमुपसङ्गृह्यावयो (:*) स्व-पुण्याप्या-

६ यनाय वटगोहाल्यामवास्याङ्काशिक-पञ्चस्तूपनिकायिकनिग्रन्थश्रमणाचार्य्य-
गुह-नन्दि-शिष्य-प्रशिष्याधिष्ठित-विहारे

७ भगवतामर्हतां गन्ध-धूप-सुमनो-दीपाद्यर्थन्तलवाटक-निमित्तञ्च अ(तः*)एव
वट-गोहालीतो वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धञ्ज-

८ म्बुदेवप्रावेश्य-पृष्ठिमपोत्तके त्क्षेत्रं द्रोणवाप-चतुष्टयं गोषाटपुञ्जाद्द्रोणवाप-
चतुष्टयम् मूलनागिरट्ट-

९ प्रावेश्य-नित्वगोहालीतः अर्द्धत्रिक-द्रोणवापानित्येवमध्यर्द्ध क्षेत्र-कुल्यवापमक्षय-
नीव्या दातुम (ति) (।*) यतः प्रथम-

१० पुस्तपालदिवाकरनन्दि-पुस्तपालधृतिविष्णु-विरोचन-रामदास-हरिदास शशि-
नन्दि-(सु)प्रभ-मनुद(त्ताना)मवधारण-

११ यावधृतम् अस्त्यस्मदधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारिक्क्य-कुल्यवापेन शश्वत्कालो-
लोपभोग्या-क्षयनीवी-समु(दय)वाह्याप्रतिकर-

१२ (खिल*)क्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तद्यद्युष्माम्ब्राह्मण-नाथशर्म्मा एत-
द्भार्य्या रामी च पलाशाट्ट पार्श्विक-वटगोहाली-स्थ(ायि)-

१३ (काशि*)क-पञ्चस्तूपकुलनिकायिक आचार्य्य-निग्रन्थ-गुहनन्दि-शिष्य-
प्रशिष्याधिष्ठित-सद्विहारे अरहतां गन्ध-(धूप)ाद्युपयोगाय

१४ (तल-वा*)टक-निमितञ्च तत्रैव वटगोहाल्यां वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्ध
क्षेत्रञ्जम्बुदेव-प्रावेश्य-पृष्ठिमपोत्तके द्रोणवाप-चतुष्टयं

१५ गोषाटपुञ्जाद्द्रोणवाप-चतुष्टयं मूलनागिरट्ट-प्रावेश्य-नित्वगोहालीतो द्रोणवाप-
द्वय-माढवा(प-द्व)याधिकमित्येवम-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६ ध्यर्द्धं क्षेत्र-कुल्यवापम्प्रार्थयते(ऽ*)त्र न कश्चिद्विरोधः गुणस्तु यत्**परमभट्टारक**-
पादानामर्त्थोपचयो धर्म्म-षड्भागाप्याय-

१७ नञ्च भवति(।*) तदेवङ्क्रियतामित्यनेनावधारणा-क्क्रमेणास्माद्ब्राह्मणनाथ-
शर्म्मत एतद्भार्य्यारामियाश्च दीनार-त्र-

१८ यमायीकृत्यैताभ्यां विज्ञापितक-क्रमोपयोगायोपरि-निर्द्दिष्ट-ग्राम-**गोहालिकेषु**
तल-वाटक-वास्तुना सह क्षेत्रं

१९ कुल्यवाप (:*) अध्यर्द्धो (।*) क्षय-नीवी-धर्म्मेण दत्तः (।*) कु १ द्रो ४ (।*)
तद्युष्माभिः स्व-कर्षणाविरोधि-स्थाने षट्क-नडैरप-

२० विञ्छय दातव्यो(ऽ*)क्षय-नीवी-धर्म्मेण च शश्वदाचन्द्रार्क्क-तारक-काल-
मनुपालयितव्य इति (।।*) **सम्** १००(+*)५०(+*)९

२१ माघ-दि ७(।*) उक्तञ्च भगवता व्यासेन (।*)
स्व-दत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् (।*)

२२ स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते (।।*) १
षष्टि-वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे वसति भूमिदः (।*)

२३ आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् (।।*) २
राजभिर्व्वहुभिर्द्दत्ता दीयते च पुनः पुनः (।*)
यस्य यस्य

२४ यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलम् (।।*) ३
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
महीम्महीमतां श्रेष्ठ

२५ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं (।।*) ४
विन्ध्याटवीष्वनम्भस्सु शुष्क-कोटर-वाहिन(:*) (।*)
कृष्णाहिनो हि जायन्ते देव-दायं हरन्ति ये (।।*) ५

पारीदपुर का ताम्रपत्र-लेख

वारकमण्डलविषयाधिकरणस्य (।।*)

१ सिद्धं स्वस्त्यस्यां पृथिव्यामप्रतिरथे ययात्यम्बरिष-सम-धृतौ म-
२ हाराजाधिराज-श्री**धर्म्मादित्य**-राज्ये तत्प्रसाद-लब्धास्पद-महाराज-**स्था-**
३ **णुदत्त**स्याध्यासन-काले स्तद्विनियुक्तक-**वारकमण्डले** विषयपति-ज-
४ जावस्यायोगो(ऽ*)धिकरणं विषयमहत्तरेटित-कुलचन्द्र-गरुड-वृहच्च-
५ ट्टालुकानाचार-भाशैत्य-शुभदेव-घोषचन्द्रानिमित्र-गुणचन्द्र-कालस(सु?)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६ ख-कुलस्वामि-दुर्ल्लभ-सत्यचन्द्रार्ज्जुन-बप्प-कुण्डलिप्त-पुरोगा। (:*) प्रकृतयश्च

७ साधनिक-वातभोगेन विज्ञाप्ताः (।*) इच्छाम्यहं भवतान्सकाशा(त्)– क्षेत्र-स्वण्डमुप-

८ क्रीय ब्राह्मणस्य प्रतिपादयितुं (।*) तदर्हथ मत्तो मूल्यं गृहीत्वा विषये विभ-

९ ज्य दातुमिति (।*) यतः एतदभ्यर्थनमधिकृत्य (ा*)स्माभिरकात्ये भूत्वा पुस्तपाल-वि(न)-

१० यसेनावधारणया अवधृतमस्तीह-विषये प्राक्समुद्र-मर्य्यादा चतुर्द्दे-

११ नारिक्य-कुल्यवापेन क्षेत्राणि विक्रीयमानकानि (।*) तथा वाप-क्षेत्र-खण्डल(ा:*)

१२ कृत-कलना दृस्ति-मात्र-प्रवन्धेन ताम्रपट्ट-धर्म्मेण विक्रयमानका(:*) (।*) तच्च

१३ परमभट्टारक-पादानामत्र धर्म्म-षड्भाग-लाभः (।*) तदेतां प्रवृत्तिमधिगम्य न्यासा-

१४ धा स्व-पुण्य-कीर्त्ति संस्थापन-कृताभिलाषस्य यथा संकल्पाभि तथा क्रय(याधृ)

१५ त्य साधनिक-वतभोगन द्वादश-दीनारानग्रतो दत्वा (।*) शिवचन्द्र-ह(स्ते-नाष्ट)-

१६ क-नवक-नलेनामपविञ्छ्य वातभोग-सकाशे(ऽ*)स्माभि **ध्रुविलाटचां** क्षेत्र-(कुल्य)-

१७ वाप-त्रयं तांम्रपट्ट-धर्म्मेण विक्रीत(ं*) (।*) अनेन(ा*)पि वातभोगेन

१८ चन्द्रताराक्र्क-स्थितिकाल-संभोग्यं य(ा*)वत्परत्रानुग्रह-कांक्षिणा भ(ा*)-रद्वाज-सगो-

१९ त्र-**वाजसनेय-षड़ङ्गाध्यायि**नस्य **चन्द्रस्वामिन**स्य मातापित्रोरनुग्रहा-

२० य मुदक-पूर्व्वेण प्रतिपादितमिति (।*) तदुपरिलिखितकागाम-सामन्त-राजभि(:*) सम-

२१ धिगतशास्त्रभि भूमि-दानानुपालन-क्षेपानुमोदनेषु सम्य(ग्*)-दत्तान्यपि दानानि

२२ राजभिरनै प्रतिपादनीयानिति प्रत्यवगम्य भूमिदानं सुतरामेव प्रतिपालनी-

२३ यमिति (।।*) सीमा-लिङ्गानि चात्र पूर्व्वेण हिमसेन-पाटके दक्षिणेण त्रिघटिका

२४ अपर-ताम्रपट्टश्च पश्चिमेण त्रिघट्टिकायाः शीलकुण्डश्च उत्तरेण (ना)वाता-

२५ क्षेणी हिमसेन-पाटकश्च (।।*) भवति चात्र शोकः (।*)

स्व दत्तां परदत्ताम्वा यो ह-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२६ रेत वसुन्धरां (।*)-
श्व-विष्ठायां (*) क्रिमिर्भूत्वा पच्यते पितृभस्सह ॥१

२७ **सम्वत्** ३ वैशा दि ५ (॥*)

धर्म्मादित्य का दूसरा लेख

१ स्वस्त्यस्याम्पृथिव्यामप्रतिरथे. नृग-नघुष-ययात्य-
२ म्बरीष-सम-धृतौ महाराजाधिराज-श्रीधर्म्मादित्यभट्टारक-रा
३ ज्यै तदनुमोदना-लद्धास्पदो **नव्यावकाशिकायां** महाप्रति-
४ हारोपरिक-**नागदेवस्याद्ध्यासन**-काले (ऽ*) नेनापि **वारकमण्डल-**
५ विषयाधिनियुक्तक-व्यापार-कारण्डय-**गोपालस्वामी** (।*)
६ यतो (ऽ*) स्य सम्ववहरतो वसुदावस्वामिना सादरमभिगम्य
७ ज्येष्ठकायस्थ-नयसेन-प्रमुखमधिकरणम्महत्तार-
८ सोमघोष-पुरस्सराश्च विषयान (ा*) महत्तरा विज्ञाप्ता: (।*)
९ इच्छेयम्भवतान्प्रसादाद्यथार्घेण भवद्ध्योरेव क्षेत्रा-खण्डलकं-
१० क्क्रीत्वा मातापित्रोरात्मनश्च पुणाभिवृद्धये गुणवत्काण्व-द्वा-
११ जिसिनेय-लौहित्यसगोत्राय ब्राह्मणे सोमस्वामिने प्रति-
१२ पादितु (।*) तदर्हत्यस्सद्विज्ञाप-वसान्यानमांसम्वितकुम्वि (।—) एतदावा-
१३ भ्यर्थानमधिकृत्यास्त्यतत्प्राक्क्रियमानक-मर्य्यादा **चतुर्द्दीनारिक्कच-**
१४ **कुल्यवापेन क्षेत्राणि विक्रीयन्तानीत्यस्माद्वसु** (देव*) स्वामिनः
१५ खिल (सत्वात्प्रय्यर्थ ?) कुल्यवापस्य (प्रवर्त्त) वापाधिकस्य दीनार-
१६ द्वयमादाय यथार्हञ्च (षड्डार्गण्डयवाप्त्रयुरस्मानि ?)
१७ शात्पलानि श्रीमान्महत्तर-थोड-सम्वद्ध-क्षेत्र-खण्डलका तसनी (?)
१८ पुस्तपाल-जंमभूतेरवधारणयावधृत्य (पूर्त्तेद्धुनिवद) (प्रतीत ?)-
१९ धर्म्मशील-शिवचन्द्र-हस्ताष्टक-नवकं-नलेनापविञ्छय (व*) सुदे-
२० व-ब्राह्मणा (य*) विक्क्रीतमतेनापि क्क्रीत (*)। सीमालिङ्गानि चात्र
२१ पूर्व्वस्यां (सो) ग-ताम्रपट्ट-सीमा। (दक्षिणस्यां*) वृद्धस्थ-पट्टु कि-पर्क्कटी-
वृक्ष-सी-
२२ मा (।*) पश्चिमस्यां गोरथ्य-सकृत्परभास्ताटकस्य-द्रण्डेरस्यापि-
२३ ण्डेतिश्च्य-नौदण्डक-सीमा । उत्तरस्यां गर्गस्वामि-ताम्रपट्ट-सीमा (॥*)
२४ **भवन्ति चात्र धर्म्मा-शास्त्र-श्लोकानि** ॥
षष्टिं वर्ष-सहस्राणि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२५ स्वर्गे मोदति भूमिदः (:*) (।*)
आक्षेप्त (ा*) चानुमन्ता च त्यान्येव
२६ नरके वसेत् ।(।*) १
स्व-दत्ताम्पर-दत्ताम्वा यो हरेत वसु-
२७ न्धरा(म्*) (।*)
श्व-(वि)ष्ठायां(ं*) कृमिर्भूत्वा पितृभि(:*) सह पच्य(ते) (॥*)२.

संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० २०९)

१ सिद्धं नमो भगवते **वासुदेवाय** ॥ स्वस्ति (॥*)**नवोत्तरे**(ऽ*)ब्द-शत-**द्वये गुप्तनृप**-र(ा*)ज्य-भुक्तौ

२ श्रीमति प्रवर्द्धमान-विजय-राज्ये **महाश्वयुज-स**(ं*)**वत्सरे** चैत्र-मास-शुक्ल-

३ पक्ष-त्रयोदश्य(ा*)मस्यां संवत्सर-मास-दिवस-पूर्व्वाया [ं] (।*) चतुर्द्दश-विद्यास्थान विदि-

४ त-परमार्थस्य कपिलस्यव महर्षेः सर्व्व-तत्वज्ञस्य भरद्वाज-सगोत्रस्य नृपि-

५ पि-परिव्राजक-**सुशर्म्मणः** कुलोत्पन्नेन महाराज-श्री**देवाढ्य**-पुत्रप्रनप्त्रा महारा-

६ ज-श्री**प्रभञ्जन**-प्रनप्त्रा महाराज-श्री**दामोदर**-नप्त्रा गोसहस्र-हस्त्यश्व-हिरण्यानेक-

७ भूमि-प्रदस्य गुरुपितृमातृ-पूजा-तत्परस्यात्यन्त-देव-ब्राह्मण-भक्तस्यानेक-समर-

८ शत-विजयिनः **साष्टादशाटवी-राज्याभ्यन्तरं डभाला**-राज्यमन्वयागतं समडि-

९ पालयिप्नोरनेक-गुण-विख्यात-यशसो महाराज-श्री**हस्तिनः** सुतेन

१० वर्णाश्रम-धर्म्म-स्थापना-निरतेन परमभागवतेनात्यन्त-पितृ-भक्तेन स्व-वं-

११ शामोदकरेण महाराज-श्री**संक्षोभेन** माता-पित्रोरात्मनश्च पुण्याभि-

१२ व्रिर्द्धये **छोडुगोमि**-विज्ञाप्त्या तमेव च स्वर्ग्ग-सोपान-पंक्तिमारोपय-

१३ ता भगवत्याः **पिष्टपुर्याः** कारितक-देवकुले वलि-चरु-सत्रोपयो-

१४ गार्थः **खण्ड-स्फुटित-संस्कारार्थञ्च मणिनाग**-पेठे **ओपाणि**ग्राम-

१५ स्यार्द्ध चोर-द्रोहक-वर्ज्जः ताम्र-शासनेनातिसृष्टं (।*) तदस्मत्कुलोत्थैः म-

१६ त्पादपिण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघातः कार्य्यः (।*) एवमाज्ञा-

१७ प्त यो(ऽ*)न्यथा कुर्यात्तमहं देहान्तर-गतो(ऽ*)पि महतावध्यानेन निर्द्देहेयं (॥*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१८ उक्तं च भगवता परमर्षिणा वेदव्यासेन व्यासेन: (।*)
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो
१९ यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर: (।*)
महीम्महिमतां (ं*) श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालन: (।।*) १
वहुभि:
२० वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभि: (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा
२१ फलं (।।*) २
षष्टिं वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद: (।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्ये-
२२ व नरके वसेत् (।।*) ३
भूमि-प्रदानान्ना परं प्रदानं
दानाद्विशिष्टं परिपालनञ्छ (।*)
२३ सर्वे(ऽ*)तिसृष्टा(ं*) परिपाल्य भूमि(ं*)
नृपा नृगाद्यास्त्रिदिवं प्रपन्ना: ।।४
लिखितञ्च
२४ जीवित-नप्त्रा भुजंगदास-पुत्रेश्वरीदासेनेति (।*)स्व-मुखाज्ञा (।*) चैत्र-दि
२० (+*) ८ (।।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर-गुप्त की प्रशस्तियां

नरवर्मन की मन्दसोर प्रशस्ति

(तिथि मालव सम्वत् ४६१)

१ सिद्धम् (।*)

सहस्र-शिरसे तस्मै पुरुषायामितात्मने (।*)

चतुस्समुद्र-पर्य्यङ्कतोय-निद्रालवे नमः (।।*) १

श्रीर्म्मालिव-गणाम्नाते प्रशस्ते **कृत**-संज्ञिते (।*)

२ **एकषष्टयधिके प्राप्ते समा-शत-चतु**(ष्टय) (।।*) २

प्रावृट्काले शुभे प्राप्ते मनस्तुष्टिकरे नृणाम् (।*)

मघे प्रनृत्ते शक्रस्य कृष्णस्यानुमते तदा (।।*) ३

३ निष्पन्न-व्रीहि-यवसा काश-पुष्पैरलंकृता (।*)

भामिरभ्यभिकं भाति मेदिनी सस्य-मालिनी (।।*) ४

दिने आश्वोज-शुक्लस्य पंचम्यामथ सत्कृते (।*)

४ ईदृक्कालवरे रम्ये प्रशासति वसुन्धराम् (।।*) ५

प्राक्पुण्योपचयाभ्यासात्संवर्द्धित-मनोरथे ।*)

जयवर्म्म-नरेन्द्रस्य पौत्रे देवेन्द्र-विक्रमे (।।*) ६

५ क्षितीशे **सिङहवर्म्मण**स्सिङहविक्रान्त-गामिनि (।*)

सत्पुत्रे श्रीर्म्महाराज-**नरवर्म्मणि** पार्त्थिवे (।।*) ७

तत्पालन-गुणोद्देशाद्धर्म्म-प्राप्त्यर्त्थ-विस्तरः (।*)

६ पूर्व्व(ज)न्मान्तराभ्यासाद्बलादाक्षिप्त-मानसः (।।*) ८

स्व-यशः-संभार-विवर्द्धित-कुतोद्यमः ।*)

मृगतृष्णाजल-स्वप्न-विद्युद्दीपशिखा-चलम् (।।*) ९

७ जीवलोकमिमं ज्ञात्वा शरण्यं शरणङ्गतः (।*)

त्रिदशोदार-फलदं स्वर्ग्गस्त्री-चारु-पल्लवम् (।।*) १०

विमानानेक-विटपं तोयदांबु-मधु-स्रवम् (।*)

८ **वासुदेवं** जगद्वासमप्रमेयमजं विभुम् (।।*) ११

मित्र-भृत्यार्त्त-सत्कर्त्ता स्व-कुलस्य(।*)थ चन्द्रमाः (।*)

यस्य वित्तं च प्राणाश्च देव-ब्राह्मण-सागता(:) (।।*) १२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ महाकारुणिकः **सत्यो** धर्म्मार्ज्जित-महाधनः (।*)
सत्पुत्रो वर्ण्णवृद्धेस्तु सत्पौत्रो(ऽ*)थ जयस्य वै (॥*) १३
दुहितुर्व्वलशूराया(:*)सत्पुत्रो जयमित्र(ा*)या(:) (।*)
१० ... ...

विश्ववर्मन का गंगधार लेख

(तिथि मालव सं० ४८०)

१ — — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ मस्य
विष्णोर्व्भुजस्सुरपति-द्विप-हस्त-(स)र्प्प(:*) (।*)
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡

२ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — — (॥*) १
प्रख्यात-वीर्य्य-यशस(ां) (क्षिति)पाधिपानां
वंशोद्भवो (ज*) गति वि(श्रुत-कीर्त्ति-भाजाम्*) (।*)
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡

३ ◡ — ◡ कान्त-
श्श्रीमान्बभूव **नरवर्म्म**-नृपः प्रकाशः ॥ २
यज्ञैस्सुरान्मुनि-गणा(न्निय)मैरुदारै(:)
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)

४ (माने)न भृत्य-जनमप्रतिमेन लोके
यो(ऽ*)तोषयत्सुचरितैश्च जगत्समग्रं ॥ ३
हस्त्यश्व-साधन ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — ◡ ◡

५ ◡ खड्ग-मरीचमत्सु ॥
सङ्ग्राम-मूर्द्धसु मुखं समुदीक्ष्य यस्य
नाशम्प्रयान्त्यरि-गणा भयन (ष्ट-चेष्टाः) (॥*) ४
(तस्यात्मजः*) ◡ ◡ ◡ — ◡

६ ◡ *ा महात्मा
बुद्धया बृहस्पति-समस्सकलेन्दु-वक्त्रः ॥
औपम्य-भूत इव राम-भगीरथाभ्यां
रा — ◡ — ◡ ◡

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७ ᴗ — (भु*) वि **विश्ववर्म्मा** ॥ ५
धैर्य्येण मेरुमभिजाति-गुणेन वैण्य-
मिन्दुं प्रभा-समुदयेन बलेन विष्णुं (।*)
(सं*)-

८ (व) र्त्तकानलमसह्यतमञ्च दीप्त्या
यो विक्क्रमेण च सुराधिपतिं विजिग्ये ॥ ६
व्यावृत्त-मार्ग्ग इव भा-

९ (नुरस*) ह्य-मर्त्ति-
र्व्यभ्रोदयाधिकतरोज्वल-घोर-दीप्तिः ॥
यश्शक्यते न रिपुभिर्ब्भय-विह्वलाक्षै-
रुद्वी-

१० (क्षितुं क्ष*) णमपि प्प्रगृहीत-शस्त्रः ॥ ७
निर्ब्भूषणैरविगतास्र-जलार्द्र-गण्डै-
र्व्विच्छिन्न-मण्डनतयोज्वल- नष्ट-

११ (शोभै*) : ॥
यस्यारि-कामिनि-मुखाम्बुरुहैर्व्वलस्य
पूर्व्वं प्रताप-चकितै× क्रियते प्रणामः ॥ ८
रत्नोद्गम-द्युति-

१२ (विर*) (ञ्जित-कूल-तालै-
रुत्त्रस्त-नक्क्र-मकर-क्षत-(फे) न-मालैः ॥ १
चण्डानिलोद्धत-तरङ्ग-समस्त-हस्तै-

१३ र्य्यस्या (र्ण्णवै*) रपि बलानि नम× क्रियन्ते ॥ ९
भूरुद्धित-द्रुम-विकम्पित-शैल-कील-
वित्रस्त-विद्रुत-मृग-द्विज-शूण्य-गु-

१४ (ल्मा*) (।*)
यस्योन्नत-प्रविष (मी) क्रित-राजमार्ग्गा
स्सैण्य-प्रयाण-समये विनिमज्जतीव ॥ १०
प्रत्त्यस्त-मौलि-

१५ (म*) णि-रश्मि-नख-प्रभान्धै-
रभ्युद्यताञ्जलितया शबलाग्र-गण्डैः ॥
विद्याधरैः प्प्रियतमा-भुज-पाश-ब-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६ (द्वै*)-
(र्य्यं*)स्स्यादराद्दिवि यश(ां)सि नम× क्रियन्ते ॥ ११
अग्रे(ऽ*)पि या वयसि सम्परिवर्त्तमान-
श्शास्त्रानुसार-परि-
१७ (र्द्धित*)-शुद्ध-बुद्धिः ॥
सद्धर्म्म-मार्ग्गमिव राजसु दर्शयिष्य-
नृक्षा-विधिं भरतवज्जगत× करोति ॥ १२
तस्मिन्प्र-
१८ (शास*)ति महीन्नृपति-प्रवीरे
स्वर्ग्गं यथा सुरपतावमित-प्रभावे ॥
नाभूदधर्म्म-निरतो व्यसनान्वितो
१९ (वा*)
(लोके*) कदाचन जनस्सुख-वर्जितो वा ॥ १३
यातेषु **चतु(र्षु) क्रितेपु शतेषु** सौम्यै-
ष्वाशीत-सोत्तरपदेष्विह वत्स-
२० **(रेषु*)** ॥
शुक्ले त्रयोदश-दिने भुवि कार्त्तिकस्य
मासस्य सर्व्वजन-चित्त-सुखावहस्य ॥ १४
नीलोत्पल-प्र-
२१ (सृत-रे*)ण्वरुणाम्बु-कीर्ण्णे
बन्धूक-बाण-कुसुमोज्वल-काननान्ते ॥
निद्रा-व्यपाय-समये मधुसूदनस्य
का-
२२ (ले प्रबु*)द्ध-कुमुदागर-शुद्ध-तारे ॥ १५
वापी-तडाग-सुरसद्म-सभोदुपान-
नानाविधोपवन-सङ्क्रम-दीर्घिक(ा)-
२३ (भिः*) ॥
शिष्टामिवाभरण-जातिभिरङ्गनां स्वां
यो **गर्ग्गरा**-तट-पुरं सक्कलञ्चकार ॥ १६
राज्ञस्त्रितीयमिव चक्षुरुदा-
२४ (र-वृत्ति*)-
र्द्देव-द्विजाति-गुरु-ब(ा)न्धव-साधु-भक्तः ॥
शास्त्रै स्तुते च विनय व्यवहार-हीने
यो(ऽ*)पक्षपात-रहितो निद(धो)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२५ (स्व-चिन्त*)म् ॥ १७
सर्व्वस्य जीवितमनित्यमसारवच्च
दोला-चलामनुविचिन्त्य तथा विभूतिम् ॥
न्यायाग (ते*)-
२६ (न वि*)भवेन पराञ्च भक्ति
विक्ख्यापयन्नुपरि चक्क-गदा-धरस्य ॥ १८
पीन-व्यायत-वृत्त-लम्बि-सुभुज×खड्ग-व्र (णै)-
२७ (रङ्कि*)तः ॥
कर्ण्णान्त-प्रतिसर्प्पमान-नयन श्यामावदातच्छविः ॥
दर्प्पाविष्कितसोर-शत्रु-मथनो- दुष्टाश्व-
२८ (यन्ता*) वली ॥
भक्त्या चासुहृदाञ्च बान्धव-समो धर्म्मार्त्थ-कामोदितः ॥ १९
प्रज्ञा-शौर्य्य-कुलोद्गतो दिशि
२९ (दिशि*) प्रक्ख्यात-वीर्य्यो वशी ।
पुत्रो विष्णुभटे तथा हरिभटे सम्बद्ध-वङ्श-क्रियः ॥
एत-
३० (त्पाप*)-पथावरोधि विपुलश्री-वल्लभैरात्मजैः ॥
विष्णो स्थानमकारयद्भगव-
३१ (तश्श्री*)मान्**मयूराक्षकः** ॥ २०
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्प्रतिमस्य यस्य
दृष्ट्वाक्रितिं प्र-
३२ (मुदितै*)र्व्वदनारविन्दैः ॥
विद्याधराः प्प्रियतमा-सहिताः सु-शोभ-
मार्दाश-विम्ब-
३३ (मिव*) यान्त्यवलोकयन्तः ॥२१
यान्दृष्ट्वा सुर-सुन्दरी-कर-तल-व्याघृष्ट-पृष्ठ-क्षणम् ॥
प्रत्त्या-
३४ (वर्त्त*)न-शङ्किनो रथ-हयानाक्रिष्य चञ्चत्सटान् ॥
पुण्योदर्क-मति-प्रभाव-मुनिभिस्सं-
३५ (स्तू*)यमानो(ऽ*)म्बरे ॥
संरज्याञ्जलि-कूट्टलन्नत-शिरा भीतः प्रयात्यङ्शुमान् ॥
मातृणाञ्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३६ (प्रभु*) दित-घनात्यर्त्थ-निह्लादिनीनाम् ।।
तन्त्रोद्भूत-प्रवल-पवनोद्वर्त्तिताम्भोनिधीनाम् ।।
३७ — — — — ◡ ◡ गतमिदं डाकिनी-संप्रकीर्णम् ।।
वेश्मात्युग्रं नृपति-सचिवो (ऽ—) कारयत्पुण्य-हेतोः ।। २३
पाताले ◡ ◡ —
३८ ◡ — ◡ रतिभिर्गुप्तं भुजङ्गो (प*) मैः ।।
शीत-स्वादु-विशुद्ध भूरि-सलिलं सोपानि-मालोज्वलम् ।।
द — — ◡ ◡
३९ — ◡ — ◡ गहनं क्षीरोदधि-स्पर्द्धिनम् ।।
कूपञ्चैनमकारयद्गुण-निधिः श्रीमान्**मयूराक्षकः** ।।२४
यावच्च — ◡ ◡ ◡
४० ◡ ◡ — सागरा रत्नवन्तो
नाना-गुल्म-द्रुम-वनवती यावदुर्व्वी स (शै) ला ।।
यावच्चेन्दुर्ग्रह-गण-चितं व्योम भा (सीक*)-
४१ (रोति*)
(ता—) वत्कीर्त्तिर्भवतु विपुला श्री**मयूराक्षक**स्येदिति (।।*) २५
सिद्धिरस्तु (।।*)

यशोधर्मन का मन्दसोर शिलालेख

तिथि वि० सं० ५८९

१ सिद्धम् (।।*)
स जयति जगतां पतिः **पिनाकी**
स्मित-रव-गीतिषु यस्य दन्त-कान्तिः ।
द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती
तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ।। १
स्वयम्भूर्भूतानां स्थिति-लय-(समु*)-
२ त्पत्ति-विधिषु
प्रयुक्तो येनाज्ञां वहति भुवनानां विधृतये ।
पितृत्वं चानीतो जगति गरिमाणं गमयता
स **शम्भूर्भूयान्सि** प्रतिदिशतु भद्राणि भव (ताम्*)।। २
फण-मणि-गुरुभार (ाक्रा)-
३ न्ति-दूरावनम्र
स्थगयति रुचमिन्दोर्म्मण्डलं यस्य मूर्ध्नाम् (।*)
स शिरसि विनिवध्नन्नन्ध्रिनीमस्थिमालां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

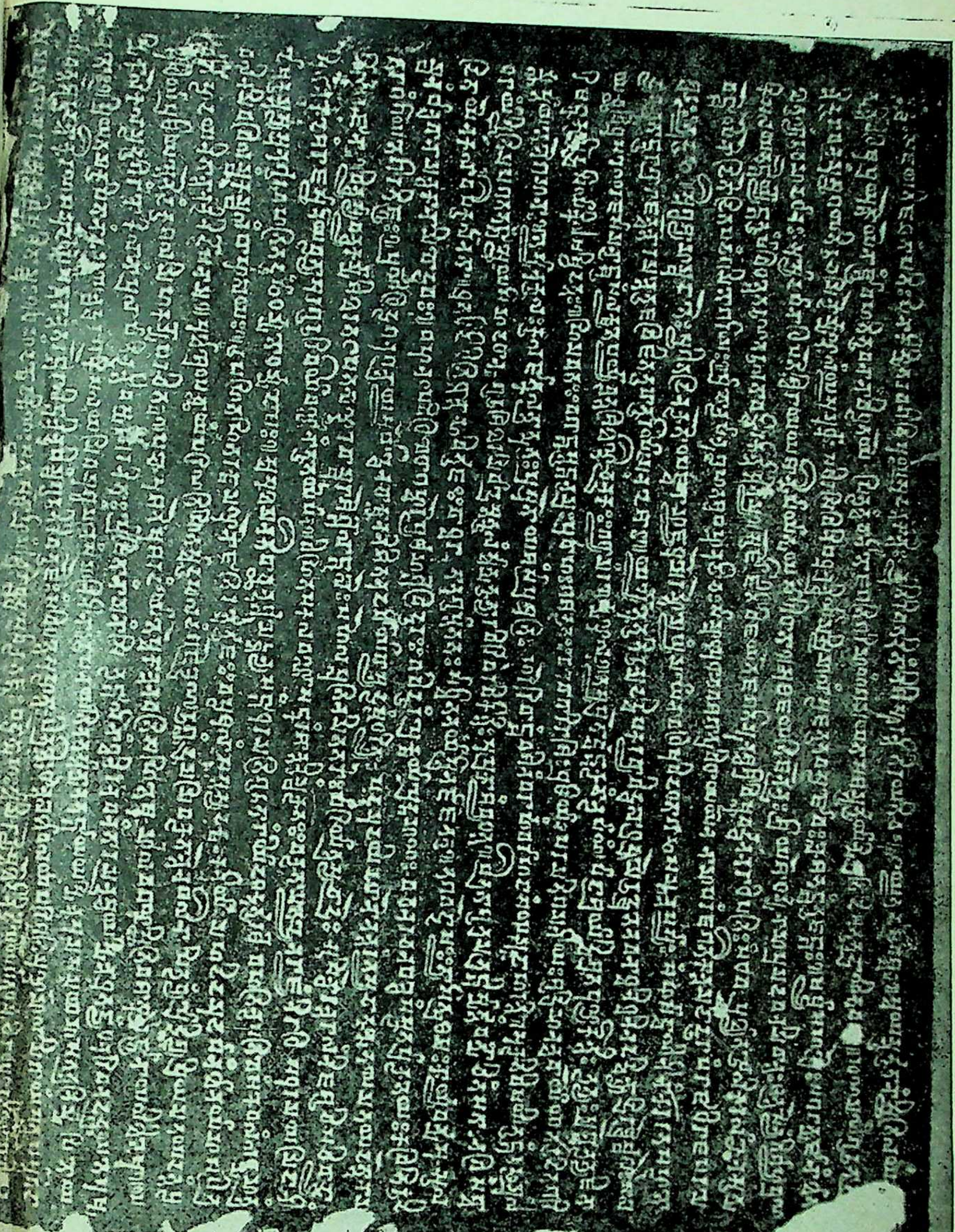

(यशोधर्मन का मंदसोर लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सृजतु भव-सृजो वः क्लेश-भङ्गं भुजङ्गः ॥ ३
षष्ट्या सहस्रैः सगरात्मजानां
खात(:*)
४ ख-तुल्यां रुचमादधानः ।
अस्योदपानाधिपतेश्चिराय
यशान्सि पायात्पयसां विधाता ॥ ४
अथ जयति जनेन्द्रः श्री-**यशोधर्म्म**-नामा
प्रमद-वनमिवान्तः शत्रु-सैन्यं विगाह्य (।*)
व्रण-
५ किसलय-भङ्गैर्यो(ऽ*)ङ्गभूषां विधत्ते
तरुण-तरु-लतावद्वीर-कीर्त्तीर्व्विनाम्य ॥ ५
आजौ जिती विजयते जगतीम्पुनश्च
श्री**विष्णुवर्द्धन**-नराधिपतिः स एव ।
प्रख्यात औलिकर-लाञ्छन आत्म-
६ वङ्शो
येनोदितोदित-पदं गमितो गरीयः ॥ ६
प्राचो नृपान्सुवृहतश्च बहूनु**दीचः**
साम्ना युधा च वशगान्प्रविधाय येन (।*)
नामापरं जगति कान्तमदो दुरापं
राजधिराज-परमे-
७ **श्वर** इत्युदूढम् ॥ ७
स्निग्ध-श्यामाम्बुदाभैः स्थगित-दिनकृतो यज्वनामाज्य-धूम्रै-
रम्भोमेध्यं मघोनावधिषु विदधता गाढ-सम्पन्न-सस्याः ।
संहर्षाद्वाणिनीनां कर-रभस-हृतो-
८ द्यानचूताङ्कुराग्रा
राजन्वन्तो रमन्ते भुज-विजित-भुवा भूरयो येन देशाः ॥ ८
यस्योत्केतुभिरुन्मद-द्विप-कर-व्याविद्ध-लोध्र-द्रुमै-
रुद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनि-नदद्विन्ध्याद्रि-रन्ध्रैर्ब्बलैः ।(*)
बाले-
९ य-च्छवि-धूमरेण रजसा मन्दाङ्शु संलक्ष्यते
पर्य्यावृत्त-शिखण्डि-चन्द्रक इव ध्यामं रवेर्मण्डलम् ॥ ९
तस्य प्रभोर्व्वङ्शकृतां नृपाणां
पादाश्रयाद्विश्रुत-पुण्य-कीर्त्तिः ।
भृत्यः स्व-नैभृत्य-जिता-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१० रि-षट्क
आसीद्वसीयान्किल षष्ठिदत्तः ।। १०
हिमवत इव गाङ्गस्तुङ्ग-नम्रः प्रवाहः
शशभृत इव रेवा-वारि-राशिः प्रथीयान् (।*)
परमभिगमनीयः शुद्धिमानन्ववायो
यत उदित-गरि-
म्णस्तायते नैगमानाम् ।। ११
११ तस्यानुकूलः कुलजात्कलत्रा-
त्सुतः प्रसूतो यशसां प्रसूतिः ।
हरेरिवाङ्‌ंश वशिनं वरार्हं
वराहदासं यमुदाहरन्ति ।। १२
सुकृति-विषयि-तुङ्गं रूढमूलं
१२ धरायां
स्थितिमपगतभङ्गां स्थेयसीमादधानम् (।*)
गुरु-शिखरमिवाद्रेस्तत्कुलं स्वात्म-भूत्या
रविरिव रविकीर्त्तिः सुप्रकाशं व्यधत्त ।। १३
बिभ्रता शुभ्रमभ्रङ्शि स्मार्त्तं वर्त्मोचितं सताम् (।*)
न विसंव्वा-
१३ दिता येन कलावपि कुलीनता ।। १४
धुत-धीदीधिति-ध्वान्तान्हविर्भुज इवाध्वरान् (।*)
भानुगुप्ता ततः साध्वी तनयांस्त्रीनजीजनत् ।। १५
भगवद्दोष इत्यासीत्प्रथमः कार्य्यवर्त्मसु ।
आल-
१४ म्बनं बान्धवानामन्धकानामिवोद्धवः ।। १६
बहु-नय-विधि-वेधा गह्वरे (।*) प्यर्थ-मार्ग्गे
विदुर इव विदूरं प्रेक्षया प्रेक्षमाणः ।
वचन-रचन-बन्धे संस्कृत-प्राकृते यः
कविभिरुदि-
१५ त-रागं गीयते गीरभिज्ञः ।। १७
प्रणिधि-दृगनुगन्त्रा यस्य बौद्धेन चाक्षणा
न निशि तनु दवीयो वास्त्यदृष्टं धरित्र्याम् (।*)
पदमुदयि दधानो (।*) नन्तरं तस्य चाभू
त्स भयमभयदत्तो नाम वि(घ्न)न्प्रजानाम् ।। १८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६ **विन्ध्यस्यावन्ध्य**-कर्म्मा शिखर-तट-पतत्पाण्डु-**रेवाम्बु**राशे-
र्गो-लाङ्गलैः सहेल-प्लुति-नमित-तरोः **पारियात्रस्य** चाद्रेः ।
आ **सिन्धोरन्त**रालं निज-शुचि-सचिवाद्धचा-
१७ सितानेक-देशं
राजस्थानीय-वृत्या सुरगुरुरिव यो वर्ण्णिनां भूतये (ऽ*) पात् ॥ १९
विहित-सकल-वर्ण्णासङ्करं शान्त-डिम्बं
कृत इव कृतमेतद्येन राज्यं निराधि ।
स धुरमयमिदानीं
१८ दोषकुम्भस्य सूनु-
र्गुरु वहति तदूढां धर्म्मतो **धर्म्मदोषः** ॥ २०
स्व-सुखमनभिवाच्छन्दुर्ग्गमे (ऽ*) ध्व्वन्यसङ्गां
धुरमतिगुरुभारां यो दधद्भर्त्तुरर्थे ।
वहति नृपति-वेषं केवलं लक्ष्म-मात्रं
१९ वलिनमिव विलम्बं कम्बलं बाहुलेयः ॥ २१
उपहित-हित-रक्षामण्डनो जाति-रत्नै-
र्भुज इव पृथुलांसस्तस्य **दक्षः** कनीयान् (।*)
महदिदमुदपानं खानयामास बिभ्र-
२० च्छ्रुति-हृदय-नितान्तानन्दि **निर्द्दोष**-नामा ॥ २२
सुखाश्रेय-च्छायं परिणति-हित-स्वादु-फलदं
गजेन्द्रेणारुग्णं द्रुममिव कृतान्तेन वलिना ।
पितृव्यं प्रोद्दिश्य प्रियम**भयदत्तं** पृ-
२१ थु-धिया
प्रथीयस्तेनेदं कुशलमिह कर्म्मोपरचितं ॥ २३
पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्ननवति-सहितेषु ।
मालव-गण-स्थिति-वशात्काल-ज्ञानाय लिखितेषु ॥ २४
य-
२२ स्मिन्काले कल-मृदु-गिरां कोकिलानां प्रलापा
भिन्दन्तीव स्मर-शर-निभाः प्रोषितानां मनांसि ।
भृङ्गालीनां ध्वनिरनुवनं भार-मन्द्रश्च यस्मि-
न्नाधूत-ज्यं धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्प-
केतोः ॥ २५ ।
२३ प्रियतम-कुपितानां कम्पयन्बद्धरागं
किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां (।*)
उपनयति नभस्वान्मान-भङ्गाय यस्मि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्कुसुम-समय-मासे तत्र निर्म्मापितो (ऽ*) यम् ॥ २६
२४ यावत्तुङ्गैरुदन्वान्किरण-समुदयं सङ्ग-कान्तं तरङ्गै-
रालिङ्गन्निन्दु-बिम्बं गुरुभिरिव भुजैः संविधत्ते सुहृत्ताम् (।*)
बिभ्रत्सौधान्त-लेखा-वलय-परिगतिं मुण्डमालामिवायं
सत्कूपस्तावदा-
२५ स्ताममृत-सम-रस-स्वच्छ-विष्यन्दिताम्बुः ॥ २७
धीमां **दक्षो** दक्षिणः सत्यसन्धो
ह्रीमांच्छूरो वृद्ध-सेवी कृतज्ञः ।
बद्धोत्साहः स्वामि-कार्य्येष्वखेदी
निर्द्दोषो (ऽ*) यं पातु धर्म्मं चिराय ॥ २८
उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

यशोवर्मन का नालन्दा लेख

१ संसारस्थिरव (ब) न्धनात्कृतमतिर्मोक्षाय यो देहिनां, कारुण्यात्प्रसभं शरीरमपि
यो दत्वा तुतोषार्थिने (।) सेन्द्रैर्यः स्वशिरःकिरीटमकरीघृष्टांडिघ्र
२ पद्मः सुरैस्तस्मै सर्व्वपदार्थतत्वविदुषे वु (बु) द्धाय नित्यं नमः ॥१॥ सर्व्वेषां
मूर्ध्नि दत्वा पदमवनिभृतामुद्गतो भूरिधामा, निस्त्रिंशांशु-प्रतानप्रदलित-
निखिलारातिघो-
३ रान्धकारः (।) ख्यातो यो लोकपालः सकलवसुमतीपद्मिनीवो (बो) धहेतुः,
श्रीमान्भास्वानिवोच्चैस्तपति दिशि दिशि **श्रीयशोवर्म्मदेवः** ॥२॥ तस्यासौ
परमप्रसादम-
४ हितः श्रीमानुदाराशयः पुत्रो मार्गपतेः प्रतीत-तिकिनोदीचीपतेर्मन्त्रिणः (।).
मालादो भुविनन्दनो यो व (ब) न्धुमत्यास्सुधीर्दीनाशा-परिपूरणै-
५ कचतुरो धीरो विशुद्धान्वयः ॥३॥ यासावूर्जित-त्रैरिभूप्रविगलद्दानाम्वु (म्बु)-
पानोल्लसन्माद्यद्भृङ्गकरीन्द्रकुम्भदलनप्राप्तश्रियाम्भूभुजाम् । **नालन्दा** ह-
६ सतीव सर्व्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरस्फुरच्चैत्यांशुप्रकरैस्सदागमकलाविख्यात -
विद्वज्जना ॥४॥
यस्यामम्वु (म्बु) धरावलेहिशिखरश्रेणी वि-
७ हारावली मालेवोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुवः (।) नानारत्न-
मयूखजालखचितप्रासाददेवालया, सद्विद्याधरसङ्घ-
८ रम्यवसतिर्धत्ते सुमेरोः श्रियम् ॥५॥ अत्रास (ह्य) पराक्रमप्रणयिना जित्वा-
खिलान्विद्विषो, वा (बा) **लादित्यमहानृपेण** सकलम्भुक्त्वा च भूमण्डलम् (।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ प्रासादः सुमहानयम्भगवतः शौद्धोदनेरद्भुतः, कैलासाभिभवेच्छयेव धवलो मन्ये समुत्थापितः ॥६॥ अपि च ॥ न्यक्कुर्व्वन्निन्दुकान्तिन्तुहिनग-

१० रिशिरःश्रेणिशोभान्निरस्यन्, शुभ्रामाकाशगङ्गान्तदनु मलिनयन्मूकयन्वादिसिन्धून्। मन्ये जेतव्यशून्ये भुवन इह वृथा भ्रान्तिरित्याक-

११ लय्य भ्रान्त्वा क्षोणीमशेषाज्जितविपुलयश-स्तम्भ उच्चैस्थितो वा ॥७॥ अत्रादायि निवेद्यमाज्यदधिमद्दीपस्तथा भासुरश्चातुर्जात-करेणुमिश्रमगल-

१२ न्तोयं सुधाशीतलं। साध्वी चाक्षय-नीविका भगवते वु(बु)द्धाय शुद्धात्मने **मालादेन** यथोक्तवंशयशसा तेनाति-भक्त्या स्वयं ॥८॥ आदेशात्स्फीतशील-श्रुतधवलधि-

१३ यो भिक्षुसङ्घस्य भूयो दत्तन्तेनैव सम्यग्व (ग्ब) **हुघृतदधिभिर्व्यञ्जनैर्युक्तमं (म) न्नं**। भिक्षुभ्यस्तच्चतुर्भ्यो (ब) हुसुरभि चतुर्जातकामोदि नित्यं तोयं **स (त्रे)** विभक्तं पुनरपि

१४ विमलं भिक्षुसङ्घाय दत्तम् ॥९॥ तेनैवाद्भुतकर्म्मणा निजमिह क्रीत्वा (र्यं)-सङ्घान्तिकान्मुक्त्वा **चीवरिकां** प्रदाय विधिना सामान्यमेकन्तथा। कालम्प्रेरयितुं सुखे-

१५ न लयनन्दत्तं स्वदेशम्विना तेभ्यो नर्द्दरिकावधेश्च परतः शाक्यात्मजेभ्यः पुनः ॥ १० ॥ दानं यदेतदमलङगुण शालि-भिक्षुपूर्णेन्द्रसेनवचनप्रतिवो (बो)-धितेन। तेन प्रतीत-

१६ यशसा भुवि निर्म्मलाया भ्रात्रा व्यधायि शरदिन्दुनिभाननायाः ॥ ११ ॥ पित्रोर्भ्रातुः कलत्रस्वसृसुतसुहृदान्तस्य धर्म्मैकधाम्नो दत्तं दानं यदेतत्सकल-मतिरसेनापुरा-

१७ रोग्यहेतोः। सर्व्वेषाञ्जन्मभाजां भवभयजलधेः पारसंतारणार्थं श्रीमत्सम्वो-(म्बो)धिकल्पद्रुमविपुलफलप्राप्तये चानुमोद्यम् ॥ १२ ॥ चन्द्रो यावच्च-कास्ति स्फुरदुरूकिरणे लो-

१८ कदीपश्च भास्वान् स्षा यावच्च धात्री सजलधिवलया द्यौश्च दत्तावकाशा। यावच्चैते महान्तो भुवनभरधुरान्धारयन्तो महीध्रास्तावच्चन्द्रावदाता धवलयतु दिशाम्म-

१९ ण्डलं कीर्तिरेषा ॥ १३ ॥ यो दानस्यास्य कश्चित्कृतजगदवधेरन्तरायं विद ध्यात्साक्षाद्वज्रासनस्थो जिन इह भगवानन्तरस्थः सदास्ते। **वा (बा)-लादित्येन** राज्ञा प्रदलितरि-

२० पुणा स्थापितश्चैष शास्ता पञ्चानन्त (र्य)-कर्तुर्गतिमतिविषमान्धर्म्महीनः स यायात् ॥ १४ ॥ इत्येवं शील-चन्द्रप्रथितकरणिकस्वामिदत्तावलङघ्यां सङ्घाज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा श्रुतलव-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२१ विभवावप्यनालोच्य भारं । हृद्यामेतामुदारां त्वरितमकुरुतामप्रपञ्चां
प्रशस्तिं वाञ्छेतां किन्न पंगु शिखरितरुफलावाप्तिमुच्चैः करेण ॥ १५ ॥

यशोधर्मन का मन्दसोर प्रशस्ति

१ वेपन्ते यस्य भीम-स्तनित-भय-समुद्भ्रान्त-दैत्या दिगन्ताः
शृङ्गाघातैः सुमरोर्व्विघटित-दृषदः कन्दरा यः करोति ।
उक्षाणं तं दधानः क्षितिधर-तनया-दत्त-(पञ्चाङ्गुला)ङ्कं
द्राघिष्ठः **शूलपाणेः** क्षपयतु भवतां शत्रु-तेजांसि केतुः ॥ १
२ आविर्भूतावलेपैरविनय-पटुभिल्लङ्घिताचार-(मा)र्ग्गै-
र्म्मोहादैदं-युगीनैरपशुभ-रतिभिः पीड्यमाना नरेन्द्रैः ।
यस्य क्षमा शार्ङ्गपाणेरिव कठिन-धनुर्ज्या-किणा(ङ्क)-प्रकोष्ठ(ं)
बाहुं लोकोपकार-व्रत-सफल-परिस्पन्द-धीरं प्रपन्ना ॥ २
३ निन्द्याचारेषु यो(ऽ*)स्मिन्विनय-मुषि युगे कल्पना-मात्र-वृत्या
राजस्वन्येषु पांसुष्विव कुसुम-बलिर्न्नाविभासे प्रयुक्तः ।
स श्रेयो-धाम्नि सम्राडिति मनु-भरतालर्क्क-(मान्धा) तृ-कल्पे
कल्याणे हेम्नि भास्वान्मणिरिव सुतरां भ्राजते यत्र शब्दः ॥ ३
४ ये भुक्ता **गुप्त**-नाथैर्न्न सकल-वसुधाक्रान्ति-दृष्ट-प्रतापै-
र्न्नाज्ञा **हूणाधिपानां**(ं) क्षितिपति-मुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्टा ।
देशांस्तान्धन्व-शैल-द्रुम-गहन-सरिद्वीरबाहूपगूढा-
न्वीर्य्यावस्कन्न-राज्ञः स्व-गृह-परिसरावज्ञया यो भुनक्ति ॥ ४
५ आ **लौहित्योपकण्ठात्तलवन-गह(नो)पत्यकादा महेन्द्रा-**
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्**तुहिनशिखरिणः पश्चिमादा पयोधेः** ।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण-हृत-म(दैः) पादयोरानमद्भि-
श्चूडा-रत्नांशु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमि-भागाः क्रियन्ते ॥ ५
६ स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति **हिमगिरिर्दुर्ग**-शब्दाभिमान(म्) ।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट-मूर्द्धा
(चू)डा-पुष्पोपहारैर्**म्मिहिरकुल-**नृपेणार्च्चित(ं) पाद-युग्मं ॥ ६
७ (गा—)मेवोन्मातुमूर्द्ध्वं विगणयितुमिव ज्योतिषां चक्रवालं
निर्देष्टुं मार्ग्गमुच्चैर्द्दिव इव(सु)कृतोपार्ज्जितायाः स्व-कीर्त्तेः ।
तेनाकल्पान्त-कालावधिरवनिभुजा श्री**यशोधर्म्मणायं**
स्तम्भः स्तम्भाभिराम-स्थिर-भुज-परिघेणोच्छ्रितिं नायितो(ऽ*)त्र ॥ ७
८ (श्ला)घ्ये जन्मास्य वंशे चरितमघहरं दृश्यते कान्तमस्मि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्धर्म्मस्यायं निकेतश्चलति नियमितं नामुना लोकवृत्तम् (।*)
इत्युत्कर्षं गुणानां लिखितुमिव **यशोधर्म्मण**श्चन्द्र-बिम्बे
रागादुत्क्षिप्त उच्चैर्भुज इव रुचिमान्यः पृथिव्या विभाति ॥ ८
९ इति तुष्टूषया तस्य नृपतेः पुण्यकर्म्मणः ।
वासुलेनोपरचिताः श्लोकाः कक्कस्य सूनुना ॥ ९
उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

हूण राजा तोरमाण का एरण लेख

तिथि शासन काल १

१ सिद्धम्
जयति धरण्युद्धरणे घन-घोणाघात-घूर्णित-महीध्रः (।*)
देवो **वराहमूर्त्ति**स्त्रैलोक्य-महागृह-स्तम्भः (॥*) १
वर्षे प्रथमे पृथिवी(म्)
२ पृथु-कीर्त्तौ पृथु-द्युतौ (।*)
महाराजाधिराज-श्री**तोरमाणे** प्रसाशति । (।*) २
फाल्गुन-दिवसे दशमे इत्येवं राज्य-वर्ष-मास-दिनैः (।*)
एतस्यां
३ पूर्व्वायाम् । स्व-लक्षणैर्युक्त-पूर्व्वायाम् । (।*) ३
स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतुयाजिनो(ऽ*)धीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-वृषभस्येन्द्र-विष्णोः प्रपौत्रस्य
४ पितुर्गुणानुकारिणो वरुणविष्णोः पौत्रस्य पितरमनुजातस्य स्ववंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रस्यात्यन्त-भगवद्भक्तस्य विधातुरिच्छया ।
५ स्वयंवरयेव राजलक्ष्म्याधिगतस्य चतुःसमुद्र-पर्यन्त-प्रथितयशसः अक्षीण-मान-(ध)नस्यानेक-शत्रु-समर-जिष्णोः महार(ा*)ज-**मातृविष्णोः**
६ स्वर्गतस्य भ्रात्रानुजेन तदनुविधायिना तत्प्रसाद-परिगृहीतेन **धन्यविष्णुना** तेनैव (स)हाविभक्त-पुण्यक्रियेण मातापित्रोः
७ पुण्याप्यायनार्थमेष भगवतो **वराहमूर्त्ते**र्ज्जगत्परायणस्य **नारायणस्य** शिला-प्रा(सादः) स्व-विष(ये) (ऽ–)स्मिन्**नैरिकिणे** कारितः । (।*)
८ स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मण-पुरोगाभ्यः सर्व-प्रजा(भ्य इ)ति ।

तोरमाण का कुरा प्रशस्ति

१ (१ँ*) (राजाधि*)राज-महाराज-**तोरमाण-षा(हि)-जऊ**(व्लस्याभिवर्ध-)
(मान- राज्ये)* * (संवत्सरे*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ * * * * *मे मार्गशिर-मास-शुक्ल-द्वितीयायाम् चान्द्र (मग्र?) * ंगग (न *) * * * * *-

३ (चरे च) वर*शुचि-शात-ध्यानाध्ययन-मोक्ष-चित्तानुकूले प्रदिष्ट) * * * * * * * * (न*)-

४ क्षत्रे भगवतो **बुद्धस्य** देवातिदेवस्य सर्वपापपरिक्षीण-सर्वपुण्यसमुद्गत (स्य)

५ तीर्ण-स(ं*)सारार्णव (स्य*) सत्वानां तारयितुः दशबल-बलिन (:*) चतुर्वैशारद्य-चतस्रप्रतिसं (भिदा)-

६ अष्टादशावेणीकाद्भुत-धर्म-समन्वागतस्य सर्वसत्ववत्सल-महाकारुणिकस्य बु-

७ द्धप्रमुख-चातुर्दिशे भिक्षु-संघे देयधर्मो(ऽ*)य(ं*)विहार(:*) प्रतिष्ठापन **नरचीर**-पति-प्रशस्ता-

८ दारित-नामधेय-विशेषवृद्धिः रोट्ट-जयवृद्धि अनेक-विहार-स्वामिनो सत्पुत्रेण (।*) यदत्र पुण्यं तद्भवतु

९ (मा)तापित्रो(:*) आपायक-पोषक (यो:*) चित्रस्य **जंबुद्वीपस्य** दर्शयितारो अग्रे-भावप्रत्यंशतायास्तु तथा विहार-स्वामिनो

१० रोट-सिद्धवृद्धि सर्वेषां भ्रातराणां भगिनीनां पत्नीनां पुत्राणां दुहितॄणां महाराज-**तोरमाण-षाह-जऊव्लः** स-

११ र्वेषां देवीनां राजपुत्राणां राजदुहितानां च सर्व-सत्वानां अनुत्तर-ज्ञानावाप्तये (।*) अयं पुन(:*) विहारस्यो-

१२ पकरण चातुर्दिशे भिक्षुसंघे परिग्रहे आचा(र्णां*) (म)हीश(ासकानां) (।*) (साद्धक-पु)- * * त्रेण* (आचार्य)-

१३ ... ...

हूण नरेश मिहिकुल का ग्वालियर शिला-लेख

तिथि शासन काल १५

१ स्वस्ति

(ज*) (य)ति जलद-वल-ध्वान्तमुत्सारयन्स्वैः
किरण-निवह-जालैर्व्योम विद्योतयद्भिः (।)
उ(दय*)-(गिरि)-तटाग्र(ं*) मण्डयन् यस्तुरंगैः
चकित-गमन-खेद-भ्रान्त-चंचत्सटान्तैः । १
उदय-(गिरि)-

२

◡ — — ग्रस्त-चक्रो(ऽ*)र्त्ति-हर्त्ता
भुवन-भवन-दीपः शर्व्वरी-नाश-हेतुः (।*)
तपित-कनक-वर्णैरंशुभि◡पङ्कजान(ा*)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मभिनव-रमणीयं यो विधत्ते स वो(*ऽ)व्यात् । २
श्री-**तोर**(**माण** इं*)ति यः प्रथितो

३ (भूचक्र*)पः प्रभूत-गुणः (।*)
सत्यप्रदान-शौर्य्याद्येन मही न्यायत(:) शास्ता (।।*) ३
तस्योदित-कुल-कीर्त्तेः पुत्रो(ऽ*)तुल-विक्रमः पतिः पृथ्व्याः (।*)
मिहिरकुलेतिख्यातो(ऽ*)भङ्गो यः **पशुपतिम** * * * (।।*) ४
४ (तस्मिन्रा*)जनि शासति पृथ्वीं पृथु-विमल-लोचने(ऽ*)र्त्तिहरे (।*)
अभिवर्द्धमान-राज्ये **पंचदशाब्दे** नृप-वृषस्य । (।*) ५
शशिरश्मिहास-विकसित-कुमुदोत्पल-गन्ध-शीतलामोदे (।*)
कार्त्तिक-मासे प्राप्त गगन-

५ (पतौ*) (नि*)र्म्मले भाति । (।*) ६
द्विज-गण-मुख्यै रभिसंस्तुते च पुण्याह-नाद-घोषेण (।*)
तिथि-नक्षत्र-मुहूर्त्ते संप्राप्ते सुप्रशस्त-(दिने) । (।*) ७
मातृतुलस्य तु पौत्रः पुत्रश्च तथैव मातृदासस्य (।*)
नाम्ना च **मातृचेटः** पर्व्व-

६ (त-दुर्ग*)(ानु)वास्तव्यः (।।*) ८
नानाधातु-विचित्रे **गोपाह्वय**-नाम्नि भूधरे रम्ये (।*)
कारितवान्शैलमयं **भानोः** प्रासाद-वर-मुख्यम् । (।*) ९
पुण्याभिवृद्धिहेतोर्म्मातापित्रोस्तथात्मनश्चैव (।*)
वसता(ं*) च गिरिवरे(ऽ*)स्मि(न्*) राज्ञः

७ * * * (पा?)देन (।।*) १०
ये कारयन्ति भानोश्चन्द्रांशु-सम-प्रभं गृह-प्रवरं (।*)
तेषां वासः स्वर्गे यावत्कल्प-क्षयो भवति ।। ११
भक्त्या रवेर्विरचितं सद्धर्म्म-ख्यापनं सुकीर्त्तिमयं (।*)
नाम्ना च **केशवे**तिप्रथितेन च ।

८ * * * (दि?)त्येन (।।*) १२
यावच्छर्व्व-जटा-कलाप-गहने विद्योतते चन्द्रमा
दिव्यस्त्री-चरणैर्व्विभूषित-तटो यावच्च मेरुर्नगः (।*)
यावच्चोरसि नीलनीरद-निभे विष्णुर्व्विभर्त्युज्ज्वलां
श्रींस्तावद्गिरि-मूर्ध्नि तिष्ठति

(शिला-प्रा*)साद-मुख्यो रमे (।।*) १३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मौखरि राजा ईशानवर्मन का हरहा शिलालेख

तिथि मालव सम्वत् ६११

१ लोकाविष्कृतिसंक्षयस्थितिकृतां यः कारणं वेधसाम्, ध्वस्तध्वान्तचयाः परास्त-
रजसो ध्यायन्ति यं योगिनः । यस्यार्द्धस्थितयोषितोपि हृदये नास्थायि
चेतोभुवा भूतात्मा त्रिपुरान्तकः स

२ जयति श्रेयः प्रसूतिर्भवः ।। (१) आशोणां फणिनः
फणोपलरुचा सैङ्गीं वसानं त्वचं, शुभ्रां लोचनजन्मना कपिशयङ्भासा
कपालावलीम् (।) तन्वीं ध्वान्तुनुदं मृगाकृतिभृतो विभ्रत्कलां मौलिना
दिश्यादन्ध-

३ कविद्विषः स्फुरदहि स्थेयः पदं वो वपुः ।। (२) सुतशतं लेभे नृपोश्वपतिर्व्वै-
वस्वताद्यद्गुणेदितम् । तत्प्रसूता दुरितवृत्तिरुधो **मुखराः** क्षितीशाः क्षतारयः
।। (३) तेष्वादौ **हरिवर्म्मणो** वनिभुजो भूतिर्भु-

४ वो भूतये (।)
रुद्धाशेषदिगन्तरालयशसा रुग्णारिसंपत्तिषा । सङ्ग्रामं हुतभुक्क्रभाकपिशित
वक्त्रं समीक्ष्यारिभिर्यो भीतेः प्रणातस्ततश्च भुवने ज्वालामुखाख्यां गतः ।। ४ ।।
लोकस्थितीनां स्थितये स्थि-

५ तस्य मनोरिवाचारविवेकमार्गे । जगाहिरे यस्य जगन्ति रम्याः
सत्कीर्त्तयः कीर्त्तयितव्यनाम्नः (५)
तस्मात्पयोधेरिव शीतरश्मि**रादित्यवर्म्मा** नृपतिर्व्बभूव । वर्णाश्रमाचारविधि-
प्रणीतेर्यं प्राप्य

६ साफल्यमियाय धाता ।। (६)
हुतभुजि मखमध्यासङ्गिनि ध्वान्तनीलम्
वियति पवनजन्मभ्रान्तिविक्षेपभूयः ।
मुखरयति समन्तादुत्पतद्धूमजालम्
शिखिकुलमुरुमेघाशङ्कि यस्य

७ प्रसक्तम् ।। (७)
तेना**पीश्वरवर्म्मणः** क्षितिपतेः क्षत्रप्रभावाप्तये (।) जन्माकारि कृतात्मनः
क्रतुगणेष्वाहूतवृत्तद्विषः । यस्योत्खातकलिस्वभावचरितस्याचारमार्ग्गं - नृपा
यत्नेनापि भयाति-

८ तुल्ययशसो नान्येनुगन्तुं क्षमाः ।। (८)
नीत्या शौर्यं विशालं सुहृदमकुठिनेनोमेच्छाङ्कुलेन त्यागं पात्रेण वित्तप्रभवमपि
ह्रया यौवनं संयमेन । वाचं सत्येन चेष्टां श्रुतिपथविधिना प्रप्रये-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ णोत्तमर्द्धिम्
यो बन्धं नैव खेदं व्रजति कलिमयध्वान्तमग्नेपि लोके (९) यस्येज्यास्वनिशं
यथाविधि हुतज्योतिर्ज्वलज्जन्मना. . . .मेनाञ्जनभङ्गमेचकरुचा दिक्चक्रवाले
तते । आयाता नव-
१० वारिभारविनमन्मेघावली प्रावृडि-
त्युन्मादोद्धतचेतसः शिखिगणा वाचालतामाययुः ।। १० ।।
तस्मात्सूर्य्य इवोदयाद्रिशिरसोधातुर्म्मरुत्वानिव क्षीरोदादिव तर्जितेन्दुकिरणः
कान्तप्रभः कौस्तुभः (।)
११ भूतानामुदपद्यत स्थितकरः स्थेष्ठं महिम्नः पदम् राजन्राजकमण्डलाम्बरशशी
श्रीशानवर्म्मा नृपः ।। (११) लोकानामुपकारिणारिकुमुदव्यालुप्तकान्ति-
श्रिया (।) मित्रास्याम्बुरुहाकरद्युतिकृता भूरि-
१२ प्रतापत्विषा ।।
येनाच्छादितसत्पथं कलियुगध्वान्तावमग्नञ्जगत्सूर्येणेव समुद्यता कृतमिदं
भूयः प्रवृतक्रियम् ।। (१२) जित्वान्ध्राधिपतिं सहस्रगणितत्रेधाक्षरद्वारणम्
व्यावल्गन्नियुताति-
१३ संख्यतुरगान्भङ्क्त्वा रणे **शूलिकाम्** (।) कृत्वा चायतिमौचितस्थलभुवो
गौडान्समुद्राश्रया-नध्यासिष्ट नतक्षितीशचरणः सिंहासनं यो जिती ।। १३ ।।
प्रस्थानेषु बलार्णवाभिगमनक्षोभस्फुटद्भूतल-
१४ प्रोद्भूतस्थगितार्क्कमण्डलरुचा दिग्व्यापिना रेणुना । यस्यामूढदिनादिमध्य-
विरतौ लोकेन्धकारीकृते (।) व्यक्तिं नाडिकयैव यान्ति जयिनी यामास्त्रिया-
मास्विव ।। १४ ।। प्रविशती कलिमारुतघट्टिता
१५ क्षितिरलक्ष्यरसातलवारिधौ ।
गुणशतैरवबध्य समन्ततः
स्फुटितनौरिव येन बलाद्धृता ।। १५ ।।
ज्याघातव्रणरूढिकर्क्कशभुजा व्याकृष्टशार्ङ्गच्युता-
न्यस्यावाप्य पतत्रिणो रणमखे प्राणानमुञ्च
१६ न्द्विषः ।
यस्मिन्शासति च क्षितिं क्षितिपतौ जातेव भूयस्त्रयी (।)
तेन ध्वस्तकलिप्रवृत्तितिमिराः **श्रीसूर्य्यवर्म्मा**जनि ।। १६ ।।
यो बालेन्दुकसान्ति कृत्स्नभुवनप्रेयो दधद्यौवनम्, शान्तः शास्त्रविचारणा–
१७. हितमनाः पारङ्कलानाङ्गतः ।
लक्ष्मोकीर्त्तिसरस्वतीप्रभृतयो यं स्पर्धयेवाश्रिता, लोके कामितकामिभावरसिकः
कान्ताजनो भूयसा ।। १७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सद्वृत्तेन बलात्कलेरवनतिस्तावत्प्रवृद्धात्मनो
१८ बाणै स्तावदवस्थितं स्मृतिभुवः कान्ताशरीरक्षतौ (।)
लक्ष्म्या तावदकाण्डभङ्गजभयं त्यक्तम्परापाश्रयम् (।)
यावन्नाविरकारि यस्य जनताकान्तं वपुर्व्वेधसा ॥ १८ ॥
लक्ष्म्यः शत्रुभुवः कुचग्रहभयावेशभ्रम-
१९ ल्लोचना (।)
येनाकृष्य भुजेन विस्फुरदसिज्योतिः कलासङ्गिना ।
कान्ता मन्मथिनेव कामितविदा गाढं निपीड्योरसा
प्रायेणान्यमनुष्यसंश्रयकृतं भावं परित्याजिता ॥ १९ ॥
तेनाननतोन्नतिकृता
२० मृगयागतेन
दृष्ट्वाद्यमन्धकभिदो भवनं विशीर्णम् (।)
स्वेच्छासमुन्नतमकारि ललाम भूमेः
क्षेमेश्वरप्रथितनाम शशाङ्कशुभ्रम् । (२०)
एकादशातिरिक्तेषु षट्सु शातितविद्विषि ।
२१ शतेषु शरदां पत्यौ भुवः **श्रीशानवर्म्मणि** ॥ २१ ॥
यस्मिन्कालेम्बुवाहा नवगवलरुचः प्रान्तलग्नेन्द्रचापा-
स्तन्वन्त्याशावितानं स्फुरदुरुतडितः सान्द्रधीरं क्वणन्तः ।
वाताश्च वान्ति नीपान्नवकुसुमचयानम्रमूर्ध्नो
२२ धुनाना-
स्तस्मिन्मुक्ताम्बुमेघद्युति भवनमदो निर्मितं शूलपाणे (२२)
कुमारशान्तेः पुत्रेण गर्गशकटवासिना ।
नृपानुरागात्पूर्व्वं यमकारि **रविशान्तिना** ॥ २३ ॥
उत्कीर्णा मिहिरवर्म्मणा ॥

वर्धन सम्राट् हर्ष का बांसखेड़ा ताम्रपत्र--लेख

(हर्ष सम्वत् २२--६२८ ई०)

ओं स्वस्ति । महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावाराच्छ्रीवर्धमानकोट्या महाराजश्री-**नरवर्धनस्तस्य** पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराज श्री**राज्यवर्धन**स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराज श्री**मदादित्यवर्धन**स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहासेनगुप्ता देव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्रान्तकीर्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यव-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

–स्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथइव प्रजानामार्तिहरः परमादित्यभक्तः परमभट्टारक-महाराजाधिराज श्री प्रभाकर वर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः स्मितशः प्रतानवि-च्छुरितसकलभुवनमण्डलः परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजाः सत्पथो-पार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसंप्रीणितार्थिहृदयोतिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममल-यशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारक-महाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनः ।

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्वे समं संयताः ।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः ॥१॥

तस्यानुजस्तत्पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः अहिच्छत्राभुक्ता वङ्गदीयवैषयिकपश्चि-मपथकसम्बद्धमर्कटसागरे समुपगतान्महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिक प्रमाता-रराजस्थानीय कुमारामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन्प्रतिवासिजानपदांश्च समाज्ञापयति—

विदितमस्तु यथायमुपरिलिखितग्रामः स्वसीमापर्यन्तः सोद्रङ्गः सर्वराज-कुलाभाव्यप्रत्यासमेतः सर्वपरिहृतपरिहारो विषयादुद्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रा-र्कक्षितिसमकालीनो भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितुः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्धनदेवस्य मातुर्भट्टारिकामहादेवी राज्ञा श्रीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रातृपरम भट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनदेव पादानां च पुण्ययशोभिवृद्धये भरद्वाजस-गोत्रबह्वृचच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवाल चन्द्रभद्रस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्मेणाग्रहार-त्वेन प्रतिपादितो विदित्वाभवद्भिः; समनुमन्तव्यः प्रतिवासिजानपदैरप्याज्ञा-श्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोग करहिरण्यादिप्रत्याया स्तयोरे-वोपनेयाः सेवोपस्थानं च करणीयमित्यपि च ।

अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भि—
रन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलवुद्बुदचञ्चलाया
दानं फलं परयशः परिपालनं च ॥ १ ॥

कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्यं प्राणिभिर्हितम् ।
हर्षेणैतत्समाख्यातं धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

दूतकोऽत्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्तः । महाक्षपटलाधिकार-णधिकृतमहासामन्तमहाराजभानुसमादेशादुत्कीर्णमीश्वरेणेदमिति । संवत् २०२ कार्तिक वदि १ । स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र

(गु० स० ३००)

१ ओं स्वस्ति । चतुरुदधिसलिलवीचीमेखलानिलीनायां सद्वीपा——
२ गरपत्तनवत्या वसुन्धरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रय वर्त्तमाने
३ महाराजाधिराजाश्श्रीशशाङ्क राज्ये शासति गगणतल——
४ विनि (:*) सृतभगीरथावतारिताया हिमवद्गिरेरुपरि
५ पतना (द*) नेक शिलासंहातविभिन्नवहि‿पातालान्तर्ज्जलौघै
६ सुरसरित इव विविधतरुवरकुसुमसञ्छन्नोभयतटा——
७ न्तविनिपतितजलाशयाया: श(ा)लिमासरित: कुला(प) कराठा
८ द्वेजयकोङ्गेदातमहाराजमहासामन्त श्रीमाधवराजस्य प्रियतनयो
९ महाराज (ा) यशोभीतस्तस्यापि प्रियसूनु: स्वगुण(म) रीचिनिकर——
१० प्रबोधितशिलोद्भवकुलकमलो विकोशनीलोत्पल——
११ प्रतिस्पर्द्धि(र्ना) खङ्गधारानिशितनिश्शेषप्रतिहतरिपु
१२ बलो दीनानाथकृपणवनीपकोपभुज्यमानविभव: स्वभु——
१३ जपरिघयुगलोर्जिजतनृपश्री (:*) कमलविमलरुथर——
१४ तनुर्ज्जगन्म (ण्ड*) लमराऽनश्रुतशौर्यधैर्यगुणान्वितो महावृषभपर्य ङ्क
१५ ककुद्योपधानविन्यस्तवाहोर्व्वालिचन्द्रोद्योतितजटाकलापैकदे——
१६ शस्य भगवतस्स्थित्युत्पत्तिप्रलयसृष्टिसङ्हारकारणस्य
१७ नृभुवनगुरो‿पादभक्त: परमब्रह्मण्यो महाराजमहासा——
१८ मन्तश्रीमाधवराज: कुशली कृष्णगिरि विषयसंवद्धच्छवल——
१९ क्खयग्रामे वर्त्तमानभविष्यक्कुमारामात्यो——परिकतदायुक्तकानन्याश्च
२० यथार्ह पूजयति मानयति च (।*)
विदितमस्तु भवतामयं ग्रामो——
२१ स्माभिरर्द्धेण माताप्रित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये सलिलधारापुर——
२२ स्सरेणाचन्द्रार्क्कसमकालीनाक्षयनीये भरद्वाजसगोत्रायाङ्गि——
२३ रसवार्हस्पत्यप्रवराय छरम्पस्वामिने सूर्योपरागे प्रतिपादित(:)
२४ उक्तञ्च स्मृतिशास्त्रे । वहुभिर्व्वसुधास्ता राजभिस्सगरादिभि:
२५ यस्य यस्य यदा भूमितस्य तस्य तदा फलं ।। षष्टि वर्षसहस्रा——
२६ णि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद: (।*) आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके
२७ वसे (त्) ।। स्वदत्ता परदत्तास्वा यो हरेत वसुन्धरा (म् ।) स विष्ठायां
२८ (कृमि)र्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ।। मा भूतफलशङ्का व(:) परदत्ते——

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

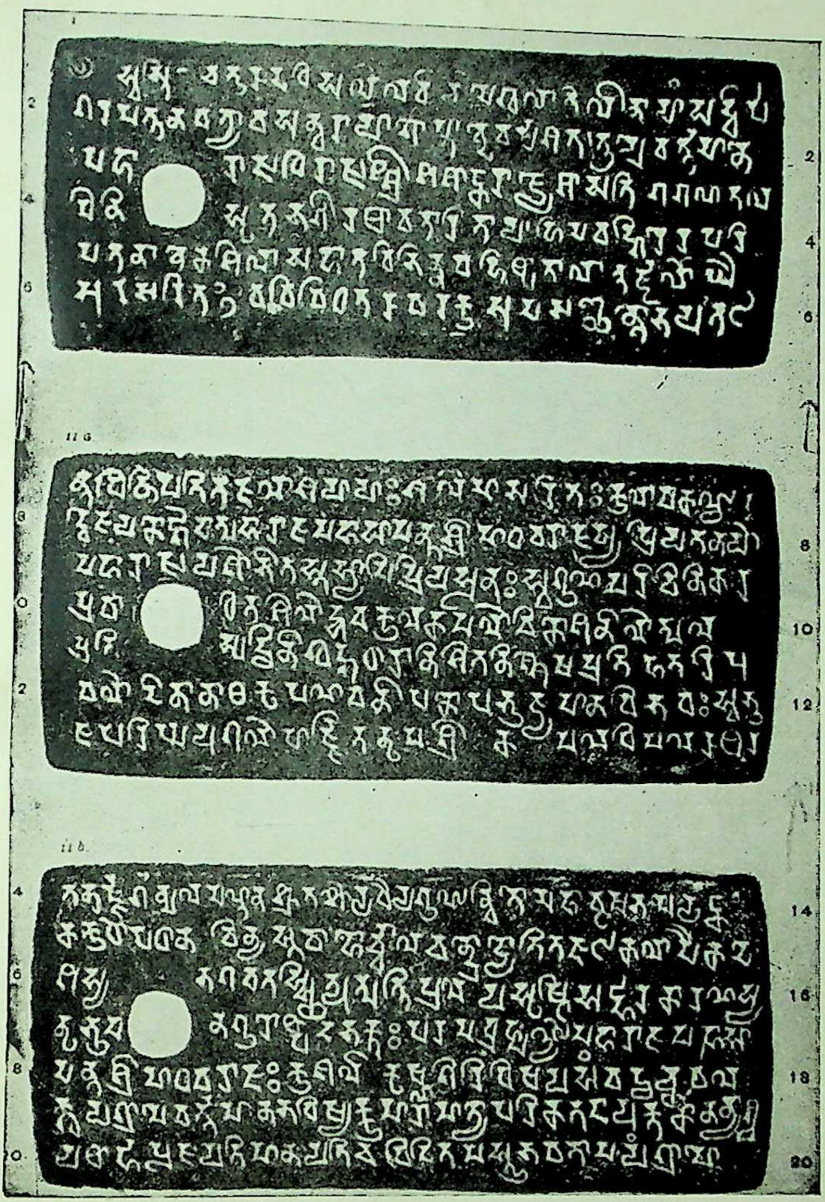

(शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२९ (ति) पार्थिव (ाः) ॥ स्वदाना (त्) फलमानन्त्य

३० .... परद (त्तानुपालने) ॥

३१ :—(प्र) यच्छति ॥ ....

पुलेकेशी द्वितीय का अपहोल लेख

श. का. ५५६ (=६३४ ई.)

जयति भगवा**ज्जिनेन्द्रो** वीतजरामरणजन्मनो यस्य ।
ज्ञानसमुद्रान्तर्गतमाखिलं जगदन्तरीपमिव ॥ १ ॥
तदनु चिरमपरिमेय श्चलुक्यकुलविपुलजलनिधिर्जयति ।
पृथिवीमौलिललाम्नां यः प्रभवः पुरूषरत्नानाम् ॥ २ ॥
शूरेविदुषु च विभजन्दानं मानं च युगपदेकत्र ।
अविहितयाथासंख्यो जयति च सत्याश्रयः सुचिरम् ॥ ३ ॥
पृथिवीवल्लभशब्दो येषामन्वर्थतां चिरं यातः ।
तद्वंशेषु जिगीषुषु तेषु वहुष्वप्यतीतेषु ॥ ४ ॥
नानाहेतिशताभिघातपतितभ्रान्ताश्वपत्तिद्विपे
नृत्यद्भीमकबन्धखड्गकिरणज्वाला सहस्रे रणे ।
लक्ष्मीर्भावितचापलापि च कृता शौर्येण येनात्मसा—
द्राजासी**ज्जयसिंहवल्लभ** इति ख्यातश्चक्यान्वय : ॥ ५ ॥
तदात्मजोऽभू**द्रणरागनामा**
दिव्यानुभावो जगदेकनाथः ।
अमानुषत्वं किल यस्य लोकः
सुप्तस्य जानाति वपुः प्रकर्षात् ॥ ६ ॥
तस्याभवत्तनूजः **पोलेकेशी** यः श्रितेन्दुकान्तिरपि ।
श्रीवल्लभोप्ययासी**द्वातापिपुरी**वधूवरताम् ॥ ७ ॥
यत्त्रिवर्गपदवीमलं क्षितौ
नानुगन्तुमधुनापि राजकम् ।
भूश्व येन हयमेधयाजिना
प्रापितावभृथमज्जनं बभौ ॥ ८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलमौर्यकदम्बकालरात्रि––
स्तनयस्तस्य बभूव **कीर्तिवर्मा** ।
परदारनिवृत्तचित्तवृत्ते––
रपि धीर्यस्य रिपुश्रियानुकृष्टा ॥ ९ ॥

रणपराक्रमलब्धजयश्रिया
सपदि येन विरूग्णमशेषतः ।
नृपतिगन्धगजेन महौजसा
पृथु**कदम्ब**कदम्बकदम्बकम् ॥ १० ॥

तस्मिन्सुरेश्वरविभूतिगताभिलाषे
राजाभवत्तदनुजः किल **मङ्गलेशः** ।
यः पूर्वपश्चिमसमुद्रतटोषिताश्व—
सेनारजः पटविनिर्मितदिग्वितानः ॥ ११ ॥

स्फुरन्मयूखैरसिदीपिकाशतै—
र्व्युदस्य मातङ्गतमिस्रसञ्चयम् ।
अवाप्तवान्यो रणरङ्गमन्दिरे
कटच्छुरि श्रीललनापरिग्रहम् ॥ १२ ॥

पुनरपिच जघृक्षोस्सैन्यमाक्रान्तसालं
रूचिर बहुपताकं **रेतीद्वीपमाशु** ।
सपदि महदुदन्वत्तीयसंक्रान्तबिम्बं
वरूणबलमिवाभूदागतं यस्य वाचा ॥ १३ ॥

तस्याग्रजस्य तनये नहुषानुभावे
लक्ष्म्या किलाभित्यषिते **पुलिकेशि**नाम्नि ।
सासूयमात्मनि भवन्तमतः पितृव्यं
ज्ञात्वापरुद्धचरितव्यवसायबुद्धौ ॥ १४ ॥

स यदु पचितमन्त्रोत्साहशक्तिप्रयोग––
क्षपितबलविशेषो **मङ्गलेशः** समन्तात् ।
स्वतनयगतराज्यारम्भयत्नेन सार्द्धं
निजमतनु च राज्यं जीवितं चोज्झति स्म ॥ १४ ॥

तावत्तच्छत्रभङ्गे जगदखिलमरात्यन्धकारोपरूद्धं
यस्यासह्यप्रतापद्युतिततिभिरिवाक्रान्तमासीत्प्रभातम ।
नृत्यद्विद्युत्पताकैः प्रजविनि मरूति क्षुण्णपर्यन्त भागै—
र्गर्जद्भिर्वारिवाहैरलिकुलमलिनं व्यामे यातं कदा वा ॥ १६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लब्ध्वा कालं भुवमुपगते जेतुमाप्यायिकाख्ये
गोविन्दे च द्विरदनिकरैरूत्तरां भैमरथ्याः ।
यस्यानीकैर्युधि भयरसज्ञत्वमेकः प्रयात
स्तत्रावाप्तं फलमुपकृतस्यापरेणापि सद्यः ॥ १७ ॥

वरदातुङ्गतरङ्गतरङ्गविलसद्ध्वंसावलीमेखलां
वनवासीमवमृद्रतः सुरपुरप्रस्पर्धिनी सम्पदा ।
महता यस्य बलार्णवेन परितः सञ्छदितोर्वीतलं
स्थलदुर्गं जलदुर्गतामिव गतं तत्तत्क्षणे पश्यताम् ॥ १८ ॥

गङ्गालुपेन्द्रा व्यसनानि सप्त
हित्वापुरोपार्जितसम्पदोऽपि ।
यस्यानुभावोपनताः सदास—
न्नासन्नसेवामृतपानशौण्डाः ॥ १९ ॥

कोङ्कणेषु यदादिष्टचण्डदण्डाम्बुवीचिभिः
उदस्तास्तरसा मौर्यपल्वलाम्बुसमृद्धयः ॥ २० ॥

अपर जलधेर्लक्ष्मीं यस्मिन्पुरीं पुरभित्प्रभे
मदगजघटाकारैर्नावां शतैरवमृन्दति ।
जलदपटलानीकाकीर्णन्नवोत्पलमेचकं
जलनिधिरिव व्योम व्योम्नः समोऽभवदम्बुधिः ॥ २१ ॥

प्रतापोपनता यस्य लाटमालवगुर्जराः ।
दण्डोपनतसामन्तचर्याचार्या इवाभवन् ॥ २२ ॥

अपरिमितविभूतिस्फीतसामन्त सेना—
मुकुटमणिमयूखाक्रान्तपादारविन्दः ॥
युधिपतितगजेन्द्रानीक बीभत्सभूतो
भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः ॥ २३ ॥

भुवगुहभिरनीकैः शासती यस्य रेवा—
विविधपुलिनशोभावन्ध्यविन्ध्योपकण्ठः ।
अधिकतरमराजत्स्वेन तेजोमहिम्ना
शिखरिभिरिभवर्ज्यो वर्ष्मणा स्पर्द्धयेव ॥ २४ ॥

विधिवदुपचिताभिः शक्तिभिः शक्रकल्प—
स्तिसृभिरपि गुणौघै स्वैश्च माहाकुलाद्यैः ।
अगमदधिपतित्वं यो महाराष्ट्रकाणां
नवनवतिसहस्रग्रामभाजां त्रयाणाम् ॥ २५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गृहिणां स्वगुणैस्त्रिवर्गतुङ्गा
विहितान्यक्षितिपालमानभङ्गाः ।
अभवन्नुपजातभीतिलिङ्गा
यदनेकेन सकोसलाः **कलिङ्गाः** ॥ २६ ॥
पिष्टं **पिष्टपुरं** येन जातं दुर्गमदुर्गमम् ।
चित्रं यस्य कलेर्वृत्तं जातं दुर्गमदुर्मगम् ॥ २७ ॥
सन्नद्धवारणघटास्थगितान्तरालं
नानायुधक्षतनरक्षतजाङ्गरागम् ।
आसीज्जलं यदवमर्दितमभ्रगर्भं
कौनालमम्बरमिवोर्जितसान्ध्यरागम् ॥ २८ ॥
उद्धूतामलचामरध्वजशतच्छत्रान्धकारैर्बलैः
शौर्योत्साहरसोद्धतारिमथनैर्मौलादिभिःषड्विधैः ।
आक्रान्तात्मबलोन्नतिं बलरजः सञ्छन्न**काञ्चीपुर**—
प्राकारान्तरितप्रतापमकरोद्यः **पल्लवानां** पतिम् ॥ २९ ॥
कावेरी दृतशफरीविलोलनेत्रा
चोलानां सपदि जयोद्यतस्य यस्य ।
प्रश्च्योतन्मदगजसेतुरुद्धनीरा
संस्पर्शं परिहरति स्म रत्नराशेः ॥ ३० ॥
चोलकेरलपाण्ड्यानां योऽभूत्तत्र महद्धपे ।
पल्लवानीकनीहारतुहिनेतरदीधितिः ॥ ३१ ॥
उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तिसहिते यस्मिन्समस्ता दिशो
जित्वा भूमिपतीन्विसृज्य महितानाराध्य देवद्विजान् ।
वातापीं नगरीं प्रविश्य नगरीमेकामिवोर्वीमिमां
चञ्चन्नीरधिनीलनीरपरिखां सत्याश्रये शासति ॥ ३२ ॥
त्रिंशत्सु त्रिसहस्त्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥ ३३ ॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च ।
समासु समतीतासु **शकानाम**पि भूभुजाम् ॥ ३४ ॥
तस्याम्बुधित्रयनिवारितशासनस्य
सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम् ।
शैलं जिनेन्द्रभवनं भवनं महिम्नां
निर्मापितं मतिमता **रविकीर्तिने**दम् ॥ ३५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशस्तेर्वसतेश्चास्या जिनस्य त्रिजगद्गुरोः ।
कर्ता कारयिता चापि **रविकीर्तिः** कृती स्वयम् ॥ ३६ ॥
येनायोजि नवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां **रविकीर्तिः** कविताश्रित—
कालिदासभारविकीर्तिः ॥ ३७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दक्षिण-पश्चिम भारत की प्रशस्तियां

प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र

a वाकाटक-ललामस्य
b (क्र)म-प्राप्त-नृपश्रिय[:*] (।)
c **जनन्या युवराजस्य**
d शासनं रिपु-शास(न) [*] (॥[1])

१ सिद्धम् (॥*) जितं भगवता (।*) स्वस्ति **नान्दिवर्द्धना**दासीद्**गुप्ता**दि-रा(जो) (म)ह(राज)-
२ श्री**घटोत्कच**स्तस्य सत्पुत्रो महाराज-श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य सत्पुत्रो-
३ (ऽ*)नेकाश्वमेध-याजी लिच्छवि-दौहित्रो महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नो
४ महाराजाधिराज-श्री**समुद्रगुप्त**स्तत्पत्पुत्रस्तत्पाद-परिगृहीतः
५ पृथिव्यामप्रतिरथस्सर्व-राजोछेत्ता चतुरुदधि-सलिस्वादित-
६ यशा नेक-गो-हिरण्य-कोटी-सहस्र-प्रद⁀परम-भागवतो महारा-
७ जाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य दुहिता धारण-सगोत्रा **नाग**-कुल-सम्भू-
८ ताया (*) श्री-महादेव्या (*) **कुबेरनागा**यामुत्पन्नोभय-कुलालङ्कार-भूता-त्यन्त-भगवद्भक्ता
९ **वाकाटकानां** महाराज-श्री**रुद्रसेन**स्याग्रमहिषी युवराज-
१० श्री**दिवाकरसेन**-जननी श्री-**प्रभावतिगु**प्ता **सुप्रतिष्ठा**हारे
११ **विलवणक**स्य पूर्व-पार्श्वे **शीर्षग्रामस्य** दक्षिण-पार्श्वे **कदापिञ्जन**स्यापर-पाश्व
१२ **सिदिविवरक**स्योत्तर-पाश्व **उङ्गणग्रामे** ब्राह्मणाद्यान्ग्राम-कुटुम्बिन—कुशल-
१३ मुक्त्वा समाज्ञापयति (।*) विदितमस्तु वो यथैष ग्रामो(ऽ*)स्माभि स्व-पुण्या-प्यायना (र्थं)
१४ कार्त्तिक-शुक्ल-द्वादश्या(*) **भगवत्पाद**-मूले निवेद्य भगवद्भक्ताचार्य्य-चनालस्वामिने (ऽ*)पूर्व्व-
१५ दत्त्या उदक-पूर्व्वमतिसृष्टो यतो भवाद्भिरुचितमर्य्यादया सर्व्वाज्ञा× कर्त्तव्या(:*) पूर्व्व-
१६ राज्जानुमता( )श्चात्र चातुर्विद्याग्रहार-परीहारान्वितरामस्तद्यथा**भट-छत्र-प्रावेश्यः**

---

१ प्रशस्ति के मुहर की पंक्तियां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१७ **अ-चारासन-चर्म्माङ्गार-किलण्व-क्रेणि-खानक** (:) अ-पा(र*)म्पर (:*) अ-(**पशु**)**मेध्यः** अ-पुष्प-क्षीरसन्दोह:

१८ **स-निधिस्सोपनिधिस्स-क्लृप्तोपक्लृप्तः** (।*) नदेव भविष्यद्राजिभिस्संरक्षितव्य (:*) परिवर्द्ध-

१९ यितव्यश्च (।*) यश्चास्मच्छासनमगणयमानस्स्वल्पामप्यत्राबाधां कुर्यात्कारयेत वा

२० तस्य ब्राह्मणरावेदितस्य स-दण्ड-निग्रहं कुर्य्याम (।*) **व्यास-गितश्चात्र** श्लोको **भवति** (।*)

२१ स्व-दत्तास्पर-दत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां (।)
गवा(ं*) शत-सहस्रस्य हन्तुर्हरति दुष्कृतम् (।*)२

२२ **संवत्सरे** च **त्रयोदशमे** लिखितमिद (ं*) शासनम (।*) चक्रदासेनोत्क-ट्टितम् (॥*)

प्रवरसेन द्वितीय कालीन रिथपुर लेख

१ जित (ं*) भगवता ॥ **रामगिरिस्वामिन**पादमूलाद्**गुप्ता**नामादि-

२ राजो महाराज-श्री**घटोत्कच**स्तस्य पुत्रो महाराज-श्री**चन्द्र-**

३ **गुप्त** तस्य पुत्रस्तत्पाद-परिगृहीत-लिच्छवि-दौहित्रो

४ महादेव्यां(ं*) कुमारदेव्यामुत्पन्नो महाराज-श्री**समुद्रगुप्त**स्तस्य पुत्र-

५ स्तत्पादानुद्ध्यातो न्यायागतानेकगो-हिरण्यकोटिसहस्र-प्रदस्सर्व्व-राजो-

६ च्छेता पृथिव्यामप्रतिरथ परमभागवतो महादेव्या (ं*) **दत्तदेव्या**मु-

७ त्पन्नो महाराजाधिराज-श्री**चन्द्रगुप्त**स्तस्य दुहिता **धारण**-सगोत्रा

८ नागकुलोत्पन्नाया(ं*) **कुबेरानाग**देव्यामुत्पन्ना उभय-कुलाल-

९ ङ्कारभुता **वाकाटकाना** (ं*) महाराज-श्री**रुद्रसेन**स्याग्रमहिषी

१० **वाकाटकानाम्**महाराज-श्री-**दामोदरसेन-प्रवरसेन**-जननी भगव-

११ त्पादानुद्ध्याता साग्र-वर्ष-शत(ा*)दीव-पुत्र-पौत्रा श्र(ी*)-महादेवी **प्रभावती-**

१२ **गुप्ता कौशिकमार्ग्ग अश्वत्थनगरे** सब्रह्मन-पुरेग-ग्र(ा*)म-महत्तरा(ं*)श्च

१३ कुशलमुक्त्वा सम(ा*)ज्ञापय(ि*)त (।*) ऐहिकामुत्रिकमस्मिन्नगरे स्वपुण्याप्यायनात्थ

१४ पराशर-सगोत्राणा(ं*) तैत्तिरीय-ब्राह्मणानामप्य(त्र*)पुत्रापुत्राणा (ं)

१५ अभ्यन्तर-पुर-निवेशने(न*) सह कर्षक-निवेशनानि च चत्वार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६ भुक्ताकाभोग-क्षेत्रमुदकपूर्व्व (˙*) शासनेनो सतिबद्धं (।*) उचितांश्चास्त्र
१७ पूर्व्वराजानुमतांञ्चातुर्वेद्य-ग्राम-मर्य्यादा (परिहारा*) न्वितरामस्तद्यथा
१८ अ-करदायी अ-भट-च्छ(ा*)त्र-प्रावेश्य (:*) अ-पुष्प-क्षीर-सन्दोह (:*) अ-
चारा-
१९ सन-चर्म्माङ्गारः (:*) अ-लवण-क्लिन्व-क्रेणि-ख (।*) नक (:) सर्व्व-विस्त्र-
परिहारा-
२० परिहृत (:*) सनिधानं सोपनिधानं स-क्लृप्तोपक्लिप्तमाचन्द्रा-
२१ दित्य-कालीय (:*) पुत्र-पौत्रानुगामी (।*) भुञ्जता (˙*) न केनचिद्व्या-
घात-
२२ —कर्त्तव्य (:) सर्व्व-क्रियाभिस्संरक्षितव्य‿परिवर्द्धयितव्यश्च (।*)
यश्चस्मा-
२३ च्छासनमगणयमान स्वल्पामपि परिबाधा (˙*) कुर्य्यात्कारयेत वा तस्य
२४ ब्राह्मणैरावेदितस्य स-दण्ड-निग्रहं करिष्यामः (।*) अस्मि (˙*)श्च धर्म्मादर-
२५ करणे अतीतानेक-राज-दत्ता-सञ्चि (˙*)तन-परिपालनं पुन्यानुकीर्त्तन-
२६ परिहारार्त्थं न कीर्त्तयाम (:) (।*) सङ्कल्पाधियोग-पराक्रमोपजि-
२७ तान्वर्त्तमानामाज्ञापयामः (।*) **व्यास-गीतश्चात्र श्लोक‿प्रमाणं** (।*)
२८ स्वदत्ता (˙*) परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् (।*)
गवां शत-सहस्रस्य
२९ हन्तु‿पिबति दुष्कृतमिति ॥ १
वाकाटकाना (˙*) महाराज-श्री**प्रवर-**
३० **सेनस्य** राज्य-प्रशासत **सव्वत्सरे एकुनविंशतिमे** कार्त्तिक-मा-
३१ स-शुक्ल-पक्ष-द्वादश्या (˙*) (।*) दुतक देवनन्दस्वामी (।*) लीखिता
३२ प्रभुसिङ्घेन (॥*)

प्रवरसेन द्वितीय का चमक प्रशस्ति

a **वाकाटक**-ललामस्य
b क्रम-प्राप्त-नृप-श्रियः (।)
c राज्ञ‿**प्रवरसेनस्य**
d शासनं रिपु-शासनं (॥)[१]

१ दृष्टं (॥*) स्वस्ति (॥*) **प्रवरपुरा**दग्निष्टोमाप्तोर्य्यामोक्थ्य-षोडश्या-
तिरात्र-
२ वाजपेय-बृहस्पतिसव-साद्यस्क्र-चतुरश्वमेधयाजिन-

---

१ प्रशस्ति की मुहर की पंक्तियां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ वि(ष्णुवृ)द्ध-सगोत्रस्य सम्रा(ट्)-**वाकाटकानां** महाराजश्री-**प्रवरसेनस्य**

४ सूनोः सूनोः अत्यन्त-(स्वा)(मि**महाभैरव**-भक्तस्य अ(ं*)स-भार-सन्निवेशि-

५ त-**शिवलि(ङ्गो)**द्वहन-शिव-सुपरितुष्ट-समुत्पादि(त)-राजव(ं*)शा-

६ नाम्पराक्रमाधिगत-**भागीरथ्यामल**-जल-मूर्द्धाभिषिक्तानान्दशा-

७ श्वमेधावभृथ-स्नातानाम्**भारशिवानां** महाराज-श्री**भवनाग**-दौ-

८ हित्रस्य **गौतमीपुत्र**स्य पुत्रस्य **वाकाटकानां** महाराज श्री**रुद्रसे**-

९ **नस्य** सूनोरत्यन्त-माहेश्वरस्य सत्यार्ज्जव-कारुण्य-शौर्य-विक्रम-न-

१० य-विनय-माहात्म्याधिमत्व-पात्रागत-भक्तीत्व-धर्म्मविजयीत्व-

११ मनोनैर्मल्यादि-(गुणै)स्समुपेतस्य वर्ष-शतमभिवर्द्धमान-कोश-

१२ दण्ड-साधन-सन्तान -पुत्र-पौत्रिणः युधिष्ठिर-वृत्ते**र्व्वाकाटका**-

१३ **नां** महराज-श्री**पृथिवीषेण**स्य सूनोर्भगवत**श्चक्रपाणे**ः प्रसा-

१४ दोपार्ज्जित-श्री-समुदयस्य **वाकाटकानां** महाराज-श्री**रुद्रसेन**-

१५ सूनोर्म्महाराजाधिराज-श्री**देवगुप्त**-सुतायां **प्रभाव**-

१६ **तिगुप्ता**यामुत्पन्नस्य **शम्भोः** प्रसाद-धृति-कार्त्तयुगस्य

१७ **वाकाटकानाम्**परममाहेश्वर-महाराज-श्री**प्रवरसेनस्य** वचना(द्*)

१८ **भोजकट**-राज्ये **मधुनदि**-तटे **चर्म्मा**ङ्क-नाम ग्र(ा*)मः राजमानिक-भूमी-

१९ सहस्रैरष्टाभिः ८००० **शत्रुघ्नराज**-पुत्र-**कोण्डराज**विज्ञाप्तया नाना-गो-

२० त्र-चरणेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सहस्राय दत्तः (॥*)

२१ यतो(ऽ*)स्मत्सन्तका(:*)सर्व्वाध्यक्षाधियोग-नियुक्ता आज्ञा-सञ्च(ा*)-
रि-कुलपुत्राधिकृता

२२ भटाश्छात्राश्च विश्रुत-पूर्व्वयाज्ञयाज्ञापयितव्या विदितमस्तु वो यथे,

२३ हास्माकम्मनो-धर्म्मायुर्ब्बल-विजयैश्वर्य्य-विवृद्धये इहामुत्र-हिता-

२४ र्थमात्मानुग्रहाय वैजैके धर्म्मस्थाने अपूर्व्वदत्या उदकपूर्व्व-

२५ मतिसृष्टः (।*) अथास्योचितां पूर्व्व-राजानुमतां चातुर्व्वेद्य-ग्राम-म-

२६ र्य्यादान्वितरामस्तद्यथा अकरदायी अ-भट-च्छात्र-प्रावेश्य(:*)

२७ अ-पारम्पर-गो-बलिवर्द्द(:*) अ-पुष्प-क्षीर-सत्दोह अ-च(ा*)रा-

२८ सन-चर्म्माङ्गार(:*) अ-लवण-क्लिन्न-क्रेणि-खनक(:*) सर्व्व-वेष्टि-परि-

२९ हार-परिहृतः स-निधिस्सोपनिधिः स-क्लिप्तोपक्लिप्तः

३० आ-चन्द्रादित्य-कालीयः पुत्र-पौत्र(ा*)नुगमकः (।*) भु(ं)जतां न के-

३१ नचि(द्*) व्याघातं कर्त्तव्यस्सर्व्व-क्रियाभिस्स(ं*)रक्षितव्यः परवर्द्धयि-

३२ तवश्च (।*) यश्चायं शासनमगणयमानो स्वल्प(ा*)मपि (ं*)रिबाधा(ं)

३३ (ङ्क)र्य्यात्कारयिता वा तस्य ब्राह्मणैर्व्वेदितस्य स-वण्ड-निग्रहं कुर्य्या-

३४ मः (।*) अस्मि(ं*)श्च धर्म्माधिकरणे अतितानेक-राज-दत्त-सञ्चितत्त-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३५ परिपालनं कृत-पुण्यानुकीर्त्तन-परीहारार्त्थं न कीर्त्तयामः (।।*)
३६ व्यास-गीतौ चात्र श्लोकौ प्रमानिकर्त्तव्यौ (।*)
स्व-दत्ताम्पर-दत्तां
३७ व्वा यो हरेत वसुन्धरां (।*)
गवां शत-सहस्रस्य हन्तु-
३८ र्हरति दुष्कृतं (।।*) २
षष्टिं वर्ष-सहस्रानि स्वर्ग्गे मोदति भू-
३९ मिदः (।*)
आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेदिति (।।*) ३
४० श्शासन-स्थितिश्चेयं ब्राह्मणैरीश्वरैश्चानुपालनीया तद्यथा राज्ञां स-
४१ प्ताङ्गे राज्ये अद्द्रोह-प्रवृन्तानां ब्रह्मघ्न-चौर-पारदारिक-राजा-
४२ पथ्यकारि-प्रभृतिनां सङ्ग(ा)म(ं*) कुर्व्वतां अन्य-ग्रामेष्वन- ।।
४३ पर(ा*)द्धानां आचन्द्रादित्य-कालीयः (।*) अतो(ऽ*)न्यथा कुर्व्वतामनु-
मोदतां वा
४४ राज्ञः भूमिच्छेदं कुर्व्वन्तः अ-स्तेयमिति (।।*) प्रातिग्राहिणश्चात्र
४५ वार-नियुक्ताः (।*) शाट्यायनः गणार्य्यः वात्स्य-देवार्य्यः भारद्वाज-
४६ कुमारशर्म्मार्य्य(:*) पाराशर्य्य-गुहशर्म्मा काश्यप-देव(ा*)र्य्यः महेश्व-
रार्य्य(:*)
४७ मात्रार्य्य(:*) कौण्डिण्य-रुद्रार्य्य(:*) सोमार्य्य(:*) हरिशर्म्मार्य्य(:*)
४८ भारद्वाज-कुमारशम्म(र्ि)र्य्य(:*) कौण्डिण्य-मातृशर्म्मा वरशर्म्म(ा*)
४९ गोण्डशर्म्मा नागशर्म्मा भारद्वा(ज*)-शान्तिशर्म्मा रुद्रशर्म्मा वात्स्यः
५० भोजक(दे)वार्य्य(:*) मवशर्म्मा देवशर्म्मा भारद्वाज-मोक्षशर्म्म(ा)
५१ (ना)गशर्म्मा रेवतिशर्म्मा धर्म्मार्य्य(:*) भारद्वाज-शर्म्मार्य्य(:*)
५२ नन्दनार्य्य(:*) मूलशर्म्मा। ईश्वरशर्म्मा। वरशर्म्मा
५३ वात्स्य-स्कन्दार्य्य(:*)भारद्वाज-बप्पार्य्य(:*)धर्म्मार्य्य आत्रेय-स्कन्दार्य्य(:*)
५४ गौतम-सोमशर्म्मार्य्य(:*) भतृशर्म्मा द्रश(र्म्मा*)र्य्य(:*)
मघार्य्य(:*) मातृ-
५५ शर्म्मार्य्य(:*) ईश्वरशर्म्मार्य्य(:*) गौतमसगोत्र-मातृशर्म्मा-
५६ र्य्य(:–) कौण्डिण्य-देवशर्म्मार्य्य(:*) वरशर्म्मार्य्य(:*) रोहार्य्य(:*)
५७ गौतमसगोत्र-स्वामिदे(वा*र्य्य(:*) रेवतिशर्म्मार्य्य(:*)
५८ ज्येष्ठशर्म्मार्य्य(:*) शाण्डिल्य-कुमारशर्म्मार्य्य(:*) स्वातिशर्म्मा-
५९ र्य्य(:*) श(ा*)ट्यायण-काण्ड(ा*)र्य्य-प्रभृतयः (।।*) सेनापतौ
६० **चित्रवर्म्मणि संवत्सरे**(ऽ*)ष्टादश १०(+*)८ ज्येष्ठ-मास-शुक्ल-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६१ पक्ष-त्रयोदश्या(˙) शासनं लिखितमितिः (॥*)

हरिषेण का अजन्ता गुहा-लेख

१ उदीर्ण-लोकत्रय-दोषवह्नि-
निर्व्वापिणो — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
⏑ — ⏑ — (बुद्धम?) भिप्रणम्य
पूर्व्वां प्रवक्ष्ये क्षितिपानुपूर्व्वी(म्) (॥*)१
२ महाविमर्द्देष्वभिवृद्ध-शक्तिः
क्रुद्धस्सुरैरप्यनिवार्य्य-(शक्तिः ?) (।*)
(अनन्यसाधा?)रण-दान-शक्तिः
द्विज⁀प्रकाशो भुवि **विन्ध्यश(क्तिः)** (॥*)२
३ पुरन्दरोपेन्द्र-सम-प्रभावः
स्वबाहुवीर्य्या(र्जि)त-(सर्व्वलोकः—) (।*)
⏑ — ⏑ — — ⏑ (यशों)शुकानां
बभूव **वाकाटक**-वङ्श-के(तुः*) (॥*)३
४ रणे (स्व)हय्युत्थित-रेणु-जाल-
साच्छादितार्क्क) ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
(प्रनष्टसारानखिला?)नराती-
न्कृत्वाभिवाद-प्रवणा(˙)श्चकार (॥*)४
५ (विनि)(र्जि)तारि(स्सुर)राजकार्य्य-
श्चकार पुण्येषु परं प्रय(त्नम्*) (।*)
⏑ — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
⏑ — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —(॥*)५
(अरि*)-नरेन्द्र-मौलि-विन्यस्त-मणि-किरणलीढ-(क्रमाम्बुजः*) (।*)
६ **प्रवरसेन**स्तस्य पुत्रो(ऽ*)भूद्विकसन्नवेन्दीवरेक्षणः (॥*)६
रविमयूख-द * * * * * * * * * * * * * (।*)
(सर्व्वसेनः) प्रवरसेनस्य जित-सर्व्वसेनस्तुतो(ऽ*)भवत् (॥*)७
७ (तस्य) पुत्रः पार्त्थिवेन्द्रस्य प्रश(शा)स धर्म्मेण मेदिनी(म्*) (।*)
कुन्तलेन्द्र(˙) नि(र्जित्य-श्री?)-**(पृ)थिवी(षेणो)** (नयवस्तिदा?) (॥*)८
प्रवरसे(नस्त)स्य पुत्रो(ऽ*)भू-
त्प्रवरोर्ज्जितोदार-शासन-
⁀प्रवर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८ ... ...
... ... (॥*)९
(तस्यात्मज=कामत ?) — ᴗ — —
ᴗ — ᴗ — — ᴗ ᴗ — ᴗ — —(।*)
ᴗ — ᴗ — — ᴗ (म)वाप्य राज्य-
मष्टाब्दको य‿प्रशशास सम्य(क्* (॥*)१०
९ (त*)स्या(त्मजो) (ऽ*)भून्नरदेव-(कल्पो ?)
(गुणैरतुल्यो ?) भुवि **देवसेनः** (।*)
यस्योपभोगैर्ल्ललितैर्व्वि(चित्रै ?)-
(र्नृ ?)-देवराजस्य ᴗ — ᴗ — भूः (॥*)११
पुण्यानुभावात्क्षितिपस्य (तस्य ?)
१० ᴗ — ᴗ — — ᴗ ᴗ ᴗ — — (।*)
ᴗ — ᴗ — (न्या?)य-गुणाधिवासो
(प्रवृद्ध ?) -कोशो भुवि **हस्तिभोजः** (॥*)१२
प्र — ᴗ — ᴗ‿पृथुपीनवक्षा-
स्सरोरुहाक्ष‿क्षपि-
११ (तारिपक्षः*) (।*)
ᴗ — ᴗ — — ᴗ ᴗ — ᴗ ब(हु)-
र्दिग्गन्धहस्तिप्रतिमो बभूव (॥*)१३
हितो विनीतः प्रणय-(प्रसिक्तो ?)
(म)नोनुकूलो[ऽ*]नुविधानव(र्त्ती) (।*)
(नि)रत्यय
१२ — ᴗ ᴗ — ᴗ — —
ᴗ — ᴗ — — ᴗ ᴗ — ᴗ कश्च (॥*)१४
त(थै)व लोक सुहिताशयत्वा-
त्सुखेन सम्य(क्प)रिपालनेन (।*)
(पितेव*) मातेव सखेव नित्यं
प्रियो(ऽ*)भिगम्यश्च बभूव
१३ (गोप्ता ?) (॥*)१५
ᴗ — ᴗ — — ᴗ ᴗ — ᴗ — —
ᴗ — ᴗ — — ᴗ ᴗ — ᴗ (तुल्यम् ?) (।*)
स्वस्थस्समावेश्य स तत्र राजा
(सस)ञ्ज भोगेषु यथेष्ट-चेष्टः (॥*)१६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथ तस्य सुतो बभू-
१४ (व राजा ?)
◡ ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — ◡ (नीतिः ?) (।*)
हरि-राम-हर-स्मरे (न्दु ?) -कान्ति-
हरिषेणो हरि-विक्रम-प्रतापः (।।*) १७
स **कुन्तलावन्ति-कलिङ्ग-कोसल-**
त्रिकूट-लाटान्ध्र
१५ ◡ — ◡ — ◡ — ◡ —
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ नैधृता-
नपि स्वनिर्देश ◡ — ◡ — ◡ — (।।*) १८
प्रथितो भुवि **हस्तिभोज-सूनु-**
स्सचिवस्तस्य महीपतेर्ब्बभूव (।*)
सकल-क्षिति
१६ — ◡ — ◡ — —
◡ ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (।।*) १९
— — ◡ जेष्ठ स्थिर-धीर-चेता-
स्त्याग-क्षमौदार्य्य-गुणैरुपेत (:*) (।*)
धर्म्मेण धर्म्मप्रवणश्शशास
देशं यश ⁀ पुण्यगुणांशु-
१७ (दीप्तम् ?) (।।*) २०
◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — ◡ — —
प्रति पुण्योपचयं परं चकार (।*)
यत ऊद्धर्वमदस्सहायधर्म्मा
(परितो **लोकगुरौ**) चकार कारा(न् ? (।।*) २१
आयुर्व्वयो-वित्त-सखाणि
१८ ◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ लानि (।*)
उ(द्विश्य*) मातापितरावुदारं
न्यवीविशद्वेश्म यतीन्द्र-(सेव्यम्) (।।*) २२
सजलाम्बुद (वृन्द-संस्थि ?) ताग्रे
भुजगेन्द्राद्ध्युषिते महीधरेन्द्रे (।*)
१९ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — ◡ — —
◡ ◡ — श्रीपतिना शरा निकुञ्जे (।।–) २३
गवाक्ष-निर्य्यूह-सुवीथि-वेदिका-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(सु)रेन्द्र-कन्या-प्रतिमाद्यलङ्कृतम् (।*)
मनोहरस्तम्भविभङ्ग-
२० (मेदुरं*)
⏑ — ⏑ — — ⏑ र-चैत्यमन्दिर(ं) (॥*)२४
म — ⏑ — — तल-सन्निविष्ट-
वि(तान?)- — — ⏑ मनो(भि)रामं (।*)
⏑ — ⏑ — ञ्चाम्बु-महानिधान (ं)
नागेन्द्र-वेश्मादिभिर-
२१ ⏑ — — (॥*)२५
(कल्पार्हं तु ?) सम(मी?)रणा ⏑ — ⏑ — —
— — — ⏑ ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ — — (।*)
ग्रीष्मार्क्कस्य च किरणोपता(प*)-त(प्तं*)
सर्व्वर्त्तु-प्रथित-सुखोपभोगयोग(म् *) (॥*)२६
२२ ⏑ ⏑ — ⏑ (सु)रेन्द्रमन्दिराणा(ं)
रुचिम(न्म)न्दर-कन्द — ⏑ — — (।*)
⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ —
⏑ ⏑ — — ⏑ (मुखं ?) यथेप्सित(ञ्च?) (॥*)२७
असम(व्यति?)रोचने गिरेर्व्वि-
क-
२३ ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ (काननानि ?) (*)
वह — ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ — —
⏑ ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — ⏑ — — (॥*)२८
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ यस्य जनेन नाम
प्रीति-प्रसाद-विकच-प्रणयेन चक्रे (।*)
(एतच्च ?)
२४ — ⏑ ⏑ ⏑ — लयनं सुरेन्द्र-
मौलि-(प्रभोपचित ?) — ⏑ ⏑ — ⏑ हाय (॥*)२९
निवेद्य **सङ्घाय** ⏑ — ⏑ (भोग्यं ?)
सबन्धुवर्ग्गस्स **वराहदेवः** (।*)
नृदेवसौख्यान्यनुभूय
२५ — —
(शरण्य?)-**शास्ता** सुगत(:*) प्रशस्तः (॥*)३०
सान्द्राम्भोद-भुजङ्गभोग ⏑ ⏑ — — — ⏑ — — ⏑ —

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

— — — न्न-मनश्शिलाल-कपिलैय्यविर्त्करैर्भास्व (स्क?) रः (।*)
तावच्छे
२६ ∪ ∪ — ∪ — ∪ ∪ ∪ — — — ∪ — स्सेव्यता-
मन्तर्म्मण्डप (ल९)-रत्न (मे) तदमलं रत्नत्र (योद्भा) वित (ं*) (।।*) ३१
विविध-लयन-सानुस्सेव्यमानो महद्भि-
र्गिरेरय-
२७ ∪ ∪ ∪ — — — ∪ — — ∪ — द्वयः (।*)
जगदपि च समस्तव्यस्त-दोष-प्रहाणा-
(द्वि*) शतु पदमशोकं निर्ज्वरं शान्तमार्य (ं) (।।*) ३२

पल्लव नरेश शिवस्कन्ध वर्मन का ताम्रपत्र+

(वर्ष १०)

१ (सिद्धं* ।।) (कां*) **चीपुरातो** युवमहाराजो १
२ भारदाय-सगोत्तो **पलवानं**
३ **सिवख (ं) दवम्मो धंञाकडे** २
४ वापतं आनपयति (।*)
५ अम्हेहि दानि अम्ह-वेजयिके
६ (धं) मायु-बल-वधनिके य
७ बम्हनानं अगिवेस-सगोत्तस ३
८ पुवकोटुजस अगीवेस-सगोत्तस
९ गोनंदिजस **अंधापतीय** गामो
१० (**विरिप**) **रं** अम्हेहि उदकादि
११ संपदतो (।*) एतस गामस ४
१२ **विरिपरस** सव-बम्हदेय-
१३ प (रिहा) रो वितराम (।*) अ-लोन-(ख) ादकं
१४ अ-रठ-सं (वि) नायिकं अ-परंपरा-बलीव (दं*)
१५ अ-भड-पपेसं अ-कूर-चोलक- ५
१६ विनासि-खट (ा*)-संसासं (।*) एतेहि
१७ अनेहि च सव-बम्ह-
१८ देय-मजादाय
१९ सव-परिहारेहि परिहारितो (।*) ६
२० परिहरथ परिहरापेथ च (।*)

+यह लेख आठ ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२१ जो अम्ह-सासनं अतिछि-
२२ तून पीला बाधा करेज्जा (वा)
२३ (त) कारापेज्जा वा तस अम्हो ७
२४ सारीर(ं) सासनं करेजामो (।*)
२५ **स(ं)वछरं दसमं** १० गिम्हा-
२६ पखो छठो ६ दिवसं पंचमि (।*)
२७ आनती सयत्ति दत्ता ८
२८ पट्टिका (॥*)

शिवस्कन्द्धवर्मन का हीरहड़गल्लि ताम्र-पत्र-लेख

(चौथी शताब्दि)

सिद्धम्
१ **कांचिपुरा** अग्गिट्ठोम वाजपेयस्समेधयाजी धम्ममहा-
२ राजाधिराजो भारद्दायो **पल्लवाण सिवखंदवमो**
३ अम्हं विसये सवत्थ राजकुमार-सेनापति
४ रट्ठक-माडवि (क)-देसाधिकतादीके गामागामभोजके
५ वल्लवे गोवल्लवे अमच्चे अरखाधिकते गुमिके तूथिके
६ नेमिके अन्ने वि च अम्ह-पेस (ण)-प्यूत्तेसंचरंतक
७ भडमनुसाण (कठ सो) (।) परिहारं वितराम एत्थ दाणि
८ (आ) पिट्टी-वत्थवाण चिल्लेरेककोडुकं-भोजम-वम्हणाणां अप्प
९ ण कुल गोत्तस धमायु-बल-यसो-वधनिके विजय-वेजयीके
१० च कातूणं अप्पनिहत-सासनस्स अनेक-हिरोगोकोडी
११ गोहलसतसहस्स-प्पदाभिनो महाराज **बप्पसामीहि**
१२ वाडक चिल्लरेककोडुंके पुव्वदतं (।) गोलसमजस पतीभागो
१३ आतेय-सगोतस अगिसमजस्य पतीभागा
१४ माढरस पतीभागा वे जामातुकस अगिल्लस पती-
१५ भागो हारित-सगोतस कालसमस पत्तीभागा
१६ भारदाय-सगोत्तस कुमारसमस पतिभागा कोसिक-
१७ सगोतस कुमारनंदि-कुमारसम-कोट्टसम-सत्तिस्स च
१८ चतुण्हं भातुकाण चतारि पत्तीभागा कस्सव-सगोत-
१९ स्व-भटिस पतीभागो भारदायस खंदकोंडिस
२० पतीभागा वे खंदढस पतीभागो वप्पस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२१ (प) त्तीभागो दत्तजस पतीभागा वे नंदिजस
२२ पतीभागा वत्स-सगोतस रुदसमस पती-
२३ भागो दामजस पतीभागो सालसमजस पति-
२४ भागो × × × × ×
२५ परिमितस पतीभागो नागनंदिस पतीभागो गोलिस
२६ पतिभागो खंदसमस पतिभागो सामिजस पतिभागो
२७ एतेसि बम्हणाणं अगिसमज-पमुखाणं सातादिनि-रट्ठे
२८ गामे चिल्लरेककोडुके दखिण-सीमं पुव्वदनं (।)
२९ अम्हेहि वि आ-चन्द-तार-कालीक-कातूणं उदकादि संप
३० दतो एतं वम्हणांण चिलेरेककोडुंक-वाडकं (।)
३१ अ-कूर-योल्लक-विनेसी-खट्टा-वासं अ-दूध-दधि-गहणं
३२ अ-रट्ठसंविनयिकं अ-लोण (गु) ल-च्छोमं अ-कर-वेट्ठी-
३३ को (ं) जल्लं अ-पारंपर-वलिवद्द-गहणं अ-तण-कट्ठ-गह-
३४ णं अ-हरितम-साक-पुफ-गहणं एवामादीकेहि अटठा-
३५ रस-जाति-परिहारेहि विसयवासिहि अपि-
३६ ट्टी-वासीहि चिल्लेरेककोडुंक-वासीहि च परिहरितवं
३७ हरिहापेतव्व च त्ति (।) अपि च आपिट्टीयं अगिसमज
३८ पमुखाण वम्हणाणं खलस निवतणं घरस्य निवत-
३९ णं अद्धिका चात्तारि कोकिला वे ति (।) एव नातूणं
४० अथ कोचि वल्लभ-मदेन पिला वाधा करेय्य कारवैज्जा
४१ वातस खु अम्हे निगहं-वारण करेय्याम ति (।) भूयो च
४२ वीरस-सत-सहस्सातिरेक-समकाले अम्हं पल्लव-
४३ कुल-महंते भविस्स भडे अन्ने न चो
४४ वसुधाधिपतये अभत्थेमि जो सक-काले उपरि
४५ लिखित मेजाताये अणुवट्ठावेति तस
४६ वो सम्मो ति (।) यो चसि विग्घे वट्ठेज
५० स च खु पञ्च-महापातक-संजुतो नराधमो
५१ होज ति (।) दत्ता पट्टिका वास-सतसहस्साय
५२ सव वास दिव (।) सचमाणतं (।)
५३ कोलिवाल-भोजकस रहसाधिकत-भट्टिस-
५४ म्मस सहत्थ लिखितेण पट्टिका कड त्ति (।)
५५ स्वस्ति गो-ब्र (।) ह्मण-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्य इति (।।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कदम्ब राजा मयूरशर्मन का चन्द्रवल्ली लेख

१ **कदंबाणं मयूरशम्मण** विनिम्मिअं
२ तटाकं (कुट)-तेकूड-अभिर-पल्लव-पुरि-
३ योतिक-सकस्थ(न)-सयिन्थक-पुण्ड-मोकरि(ण) (।।*)

शान्तिवर्मन का तालगुंड स्तम्भलेख

सिद्धम् (।।)

१ नमश्शिवाय ।।
जयति विश्वदे(व)-स(ं)घात-निचितैकमूर्त्तिस्सनातनः (।*)
स्थानुरिन्दु-रश्मि-विच्छुरित-द्युतिमज्जटाभार-मण्डनः ।।१
तमनु भूसुरा द्विज-प्रवरास्सामर्ग्यजुर्व्वेद-वादिनः (।*)
यत्प्रसादस्त्रायते नित्यं भुवन-त्रयं पाप्मनो भयात् ।।२
अनुपदं सुरेन्द्रतुल्य(व)पु× **काकुस्थवर्म्मा** विशाल-धीः (।*)
भूपति× कदम्ब-सेनानी-वृहदन्वय-(व्यो)म-चन्द्रमाः
२ अथ वभूव द्विज-कुलं प्रांशु विचरद्गुणेन्द्वंशु-मण्डलम् (।*) ३
त्र्यार्षत्र्म-हारितीपुत्रमृषिमुख्य-मानव्य-गोत्रजम् ।। ४
विविध-यज्ञावभृथ-पुण्याम्बु-नियताभिषेकार्द्र-मूर्द्धजम् (।*)
प्रवचनावगाह -निष्णातं विधिवत्समिद्धाग्नि-सोमपम् ।। ५
प्रणवपूर्व्व-षड्विधाद्धेयय-नानर्घमानान्तरालयम् ।।
अकृश-चातुर्म्मास्य-होमेष्टि-पशु-पार्व्वण-श्राद्ध-पौष्टिकम् ((।।*) ६
३ अतिथि-नित्यसंश्रितावसथं सवनत्रयावन्ध्य-नैत्यकम् (।*)
गृह-समीप-देश-संरूढ-विकसत्कदम्बैकपादम् ।। ७
तदुपचारवत्तदास्य तरोस्सानाम्य-साधर्म्म्यमस्य तत् (।*)
प्रववृते सतीर्थ्य-विप्राणां प्राचुर्य्यतस्तद्विशेषणम् ।। ८
एवमागते **कदम्ब**-कुले श्रीमान्बभूव द्विजोत्तमः ।*)
नामतो **मयूरशर्म्मेति** श्रुत-शील-शौचाद्यलंकृतः ((।।) ९
४ यः प्रयाय **पल्लवेन्द्र**-पुरीं गुरुणा समं वीरशर्म्मणा (।*)
अधिजिगांसु‿प्रवचनं न्निखिलं घटिकां विवेशाशु तर्क्कुकः ।। १०
तत्र **पल्लवाश्वसंस्थेन** कलहेन तीव्रेण रोषितः (।*)
कलियुगे(ऽ*)स्मिन्नहो बत क्षत्रात्परिपेलवा विप्रता यतः (।।*) ११
गुरुकुलानि सम्यगाराद्धय शाखामधीत्यापि यत्नतः (?*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्रह्म-सिद्धिर्य्यदि नृपाधीना किमत⌒परं दु×खमित्यत : (।।) १२
५ कुश-समिद्दृषत्स्रुगाज्य-चरु-ग्रहणादि-दक्षेन पाणिना (।*)
उद्ववर्ह दीप्तिमच्छस्त्रं विजिगीषमाणो वसुन्धराम् ।। १३
यो(ऽ–)न्तपालान्**पल्लवेन्द्राणां** सहसा विनिर्ज्जित्य संयुगे (।*)
अद्ध्युवास दुर्ग्गमामटवीं **श्रीपर्व्वत**-द्वार-संश्रिताम् ।। १४
आददे करान्बृहद्**बाण**-प्रमुखाद्वहून्राजमण्डलात् (।*)
एवमेभि⌒**पल्लवेन्द्राणां** भृकुटी-समुत्पत्ति-कारणैः ।। १५
६ स्वप्रतिज्ञा-पारणोत्थान-लघुभि×कृतार्थैश्च चेष्टितैः (।*)
भूषणैरिवाबभौ बलवद्यात्रा-समुत्थापनेन च ।। १६
अभियुयुक्षयागतेषु भृशं **काञ्ची**-नरेन्द्रेष्वरातिषु (।*)
विषम-(दे)श-प्रयाण-संवेश-रजनीष्वस्कन्द-भूमिषु ।। १७
प्राप्य सेना-सागरं तेषां प्राहन्बली श्येनवत्तदा (।*)
आपदन्तान्धारयामास भुज-खड्गमात्र-(व्य)पाश्रयः ।। १८
७ **पल्लवेन्द्रा** यस्य शक्तिमिमां लब्ध्वा प्रतापान्वयावपि (।*)
नास्य हानिश्श्रेयसीत्युक्त्वा यम्मित्रमेवाशु वव्रिरे ।। १९
संश्रितस्तदा महीपालानाराध्य युद्धेषु विक्क्रमैः (।*)
प्राप पट्ट-बन्ध-संपूजां कर-पल्लवै⌒**पल्लवैर्द्ध**ृताम् ।। २०
भङ्गुरोर्म्मि-वल्गितैर्नृत्य**दपरार्णवाम्भ** ×कृतावधिम् (।*)
प्रेहरान्तामनन्य-संचरण-समय-स्थितां भूमिमेव च ।। २१
८ विबुध-संघ-मौलि-संमृष्ट-चरणारविन्द**षडाननः** (।*)
यमभिषिक्तवाननुध्याय सेनापतिं **मातृभि**स्सह ।। २२
तस्य पुत्र×**कङ्गवर्म्मो**ग्र-समरो(द्धु)र-प्रा(ं)शु-चेष्टितः (।*)
प्रणत-सर्व्व-मण्डलोत्क्रिष्ट -सित-चामरो(द्धू)त-शेखरः ।। २३
त(त्सु)त ×**कदम्ब**-भूमिवधू-रुचितैकनाथो **भगीरथः** (।*)
सगर-मुख्य(स्स्व)यं **कदम्बकुल**-प्र(च्छन्न)-ज(न्मा) जनाधिपः (।।*) २४
९ अथ नृप-महितस्य तस्य पुत्रः
प्रथित-यशा **रघु**-पार्थिवः पृथु-श्रीः (।*)
पृथुरिव पृथिवीम्प्रसह्य यो(ऽ*)रीन्
अकृत पराक्रमतस्स्वव(ं)श-भोज्याम् ।। २५
प्रतिभय-समरेष्वराति-शस्त्रो-
ल्लिखित-मुखो(ऽ*)भिमुख-द्विषां प्रहर्त्ता (।*)
श्रुतिपथ-निपुण ×कविः प्रदाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विविध-कला-कुशल॒प्रजा-प्रियश्च ॥ २६

१० भ्रातास्य चारु-वपुरब्द-गभीर-नादो
मोक्ष-त्रिवर्ग-पटुरन्वय-वत्सलश्च (।*)
भागीरथिन्नरपतिर्मृगराज-लीलः
काकुस्थ इत्यवनि-मण्डल-घुष्ट-कीर्त्तिः ॥ २७
ज्यायोभिस्सह विग्रहो(ऽ*)र्थिषु दया सम्यक्प्रजा-पालनम्
दीनाभ्युद्धरणं प्रधान-वसुभिर्मुख्यद्विजाभ्यर्हणम् (।*)

११ यस्यैतत्कुल-भूषणस्य नृपतेः प्रज्ञोत्तरं भूषणम्
तम्भूपा ×खलु मेनिरे सुर-सखं काकुस्थमत्रागतम् ॥ २८
धर्म्माक्क्रान्ता इव मृगगणा वृक्षर(ा*)जिं प्रविश्य
च्छाया-सेवा-मृडित-मनसो निर्वृतिं प्राप्नुवन्ति (।*)
तद्वज्ज्यायो-विहत-गतयो बान्धवास्सानुबन्धाः
प्रापुश्शर्म्माव्यथित-मनसो यस्य भू(मिं) प्रविश्य ॥ २९

१२ नानाविध-द्रविण-सार-समुच्चयेषु
मत्त-द्विपेन्द्र-मद-वासित-गोपुरेषु (।*)
संगीत-वल्गु-निनदेषु गृहेषु यस्य
लक्ष्म्यङ्गना धृतिमती सुचिरं च रेमे ॥ ३०
गुप्तादि-पार्त्थिव-कुलाम्बुरुह-स्थलानि
स्नेहादर-प्रणय-सम्भ्रम-केसराणि (।*)
श्रीमन्त्यनेक-नृपषट्पद-सेवितानि
यो(ऽ*)बोधयद्दुहितृ-दीधितिभिर्नृपार्क्कः ॥ ३१

१३ यन्दैवसम्पन्नमदीनचेष्टं
शक्तित्रयोपेतमथासनस्थम् (।*)
शेषैर्गुणैः पञ्चभिरप्यसाद्ध्या-
स्सामन्त-चूडामणयः प्रणेमु ॥ ३२
सयिह भगवतो **भव**स्यादिदेवस्य सिद्धयालये सिद्ध-गान्धर्व्व-रक्षो-गणैस्सेविते
विविध-नियम-होम-दीक्षा-पवैर्ब्रा(ह्म)णै(:*) स्नातकै स्तूयमाने सदा मन्त्र-
वादैश्शुभैः (।*)

१४ सुकृतिभिरवणीश्वरैरात्म-निश्श्रेयसं प्रेप्सुभि**स्सातकर्ण्या**दिभिश्श्रद्धयाभ्यर्च्चिते
इदमुरुसलिलोपयोगाश्रयं भूपति=कारयामास **काकुस्थवर्म्मा** तडाकम्म(हत्)
(॥*) ३३
तस्यौरसस्य तनय(स्य) विशाल-कीर्त्तेः
(प)ट्ट-त्रयार्प्पण-विरा(जित)-चारुमूर्त्तेः (।*)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीशान्तिवर्म्म-नृपतेर्व्वर-शासनस्थः
कुब्जस्स्वकाव्यमिदमश्म-तले लिलेख ॥ ३४

१५ नमो भगवते **स्थानकुन्दूर**-वासिने महादेवाय (।*)
नन्दतु सर्व्व-समन्तागतो(ऽ*)यमधिवासः (।*)
स्वस्ति प्रजाभ्य इति (॥)

पश्चिमी गंग लेख

माधव का पेनूकोण्डा ताम्रपत्र अभिलेख

प्रथम-पत्र

ओम् स्वस्ति

१ जितम्भगवता गत-घन-गगनाभेन पद्मनाभेन (॥*)
श्रीमज्जाह्नवेय-कुलामल-व्योम-मा

२ सन-भास्करस्य स्व-भुज-जव-जप-जनित-सुजन——
जनपदस्य दारुणारि-गण-विचारण-रणोप-

३ लब्ध-व्रण-भूषणस्य काण्वायन सगोत्रस्त्र श्रीमत्कोङ्कणिवर्म धर्म्म महाधि-
राजस्य पु-

४ त्रस्य पितरन्वागत-गुणस्य नाना-शास्त्रार्त्थ——
सद्भावाधिगम-प्रणीत-(म)ति-विशेषस्य नीतिशास्त्र-

५ स्य वक्तृ-प्रयोक्तृ-कुशलस्य सम्यक्प्रजापालनमात्रधिगतराज्य-प्रयोजनस्य
श्रीमत्मा-

दूसरा पत्र : प्रथम भाग

६ **धव-महाधिराजस्य** तस्य पुत्रस्य अनेक-युद्धोपलब्ध-व्रण-विभूषित-शरीरस्य
नाना——

७ शास्त्रेतिहास-पुराण-तत्वज्ञस्य श्री-पल्लव-कुलेन्द्रेण **सिंहवर्म्म**-महाराजेन
यथार्हम——

८ भिषिक्तस्य **गंग-राजस्य** आय्यवर्म्मण पुत्रेण पितृ-पैतामहा-गुण-संयुक्तेन देव-

९ द्विजाति-गुरु-पूजन तत्परेण धर्म्माभ्यास-कृत-मत्तिना स्व-बाहु-वीर्य्यार्ज्जित-
राज्य-विभवेन

१० गांगेय-वंश-ध्वजेन स्व-वंश-क्रमागत-राज्य-प्रणीतेन पल्लवानां श्री**सकन्दवर्म्म-**
महा——

द्वितीय भाग

११ राजेन यथार्हमभिषिक्तेन गंगानाम्**माधव**-महाधिराजेन श्री-सिंहवर्म्मणो
व्राह्म-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१२ णाय वत्स-सगोत्राय तैत्तिरिय-चरणाय
कुमारशर्म्मणे यम-नियम-तप (:*)-
१३ स्वाद्ध्याय-यजन-याजनाद्धयनाद्धयापन-शापनुग्रह-सामर्थ्याय अ(ा*) दान-प्रतिग्रहा-
१४ म चैत्र-मास्याम् तिथौ पौर्णमास्याम् परुबि-विषये परुवि-महातटाकाधस्तात कर्म्भटुव-क्षे-
१५ त्रे चषष्टि-केदाराः स्प्तविंशत्खण्डुक-वापाः व्रह्मदेय-क्रमेणाद्भिः प्रदत्ताः (।*)

तृतीय पत्र

१६ यो(ऽ*) स्य हर्त्ता स पंचमहापातक-संयुक्तो भवति ।। अपि चात्र मनु-गीताः श्लोकाः (।*)
१७ व्हुमिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः (।*) यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तस्य तदा फलम् (।ſ*)
१८ स्वन्दातुं समुहच्छाक्यान्दु× खभन्यार्त्थ-पालनम् (।*)
दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयो (ऽ*) नुपालनम् (।।*)
२९ स्व-दत्ताम्पर-दत्तां बा यो हरेत वसुन्धराम् (।*)
यष्टिं वर्ष-सहस्त्राणि घोरे तमसि वर्त्तते (।।*)
२० इति सुवर्ण्ण कार्ण्य-पुत्रेण अपापेन लिखितेयन्ता-
म्र-पट्टिका (।*) ।

बलभी नरेश द्रोणसिंह का मोहोत प्रशस्ति

(गु० स० १८३)

१ स्वस्ति(।।*)**वलभीतः परमभट्टारक**-पादानुध्यातो महाराज-**द्रोणसिंह**-×कुशली स्व-विषय सर्व्वानिवास्मत्सन्तकायुक्तक–विनियुक्तक-मह-
२ त्तर-दाङ्गिक-ध्रुवस्थानाधिकरणं चाट-भटादीं(*श्च समाज्ञापयत्यस्तु वो विदितं यथा मया विजयायुद्धर्म्मफल-यशोविषय-व्रिद्ध-
३ ये नो वर्षसहस्राय-सर्व्वकल्याणाभिप्राय-संपत्तये च **हस्तवप्राहरण्यां** श्री-भगवत्या पाण्डुराज्यायाः मातापित्रो पुण्याप्यायन-नि-
४ मित्तमात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये आ-चन्द्रार्कार्ण्णव-क्षितिस्थिति-सरित्पर्व्वत-समकालीनं बलि-चरु-वैश्यदेवाद्यानां क्रियाणां समुत्सर्प्पणार्त्थ (।)
५ **त्रिसंगमक**ग्रामो गन्ध-धूर्प-दीप-तैल्य-माल्योपयोज्यं देवकुलस्य च पतित-विशीर्ण्ण-प्रतिसंस्कारणार्त्थं सत्रोपयोज्येस्सहिरण्या-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६ देयस्सहान्यैश्चादानै (र) चाट-भट-प्रावेश्यं ब्रह्मदेय-स्थित्त्या उदकातिसर्गेण निसृष्टः (।*)
यतो (ऽ*) स्योपचित-न्यायत (:*) भुजेंतः कृशतः प्रदिशत-
७ × कर्षापयतो वा न केनचिस्स्वल्पा बाधा विचारणा वा कार्य्या (।*) यश्चा-
छिद्यमान-मनुमोदोयुरसौ महापातकैस्सोपपातकैश्च
८ संयुक्ता (ऽ*) स्मद्वंशागामि-राजभिरन्यैश्च सामान्यं भूमिदायमवेत्य (।*)
स्मद्दायो (ऽ*) नु-मन्तव्यो (ऽ*) पि **चात्र व्यास-कृताः श्लोका भवन्ति** (।*)
९ षष्टिं वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदित भूमिदः (।*)
आच्छेत्ता चानुमन्ता च। तान्येव नरके वशेत् (॥*) १
स्वदत्तां पर-दत्तां (।*) वा यो हरेत वसुन्धरां (।*)
१० गवां शत-सहस्रस्य हन्तु (:*) प्राप्नोति किल्बिषं (॥*) २
बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजिभि शगरादिभिः (*) (।*)
यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा (।*) फलं (॥*) ३
११ भिरुवक (:*) देवि-कर्म्मान्तिकः (।*) **सं १००** (+*) ८० (+*) ३
श्रावण-शुद्ध १० (+*) (।*) स्वयमाज्ञा (।*) लिखितं षष्ठिदत्त-पुत्रेण
कुम (।*) रिल-क्षत्रिकेन (॥*)

धरसेन का बलभी ताम्रपत्र

(गु० स० २६९)

स्वस्ति। विजयस्कन्धावाराद्भद्रपत्तन वासकात्प्रसभप्रण चतामित्राणां **मैत्रकाणा**मतुलसपत्न मण्डला भोगसंसक्तसंप्रहारशतलब्धप्रतापः प्रतापोपनतदान-मानार्जवोपार्जितानुरागानुरक्त मौलभृत श्रेणि बलावाप्तराज्य-श्री परममाहेश्वरः **श्रीसेनापतिभटार्कः**

तस्य सुतस्तत्पादरजोरुणावनपवित्री कृतशिराः शिरीवनतशत्रुचुडामणिप्रभा-विच्छुरितपादनखपङ्क्तिदीधितिर्दीनानाथकृपणजनोपजीव्यमानविभवः परममा-हेश्वरः श्रीसेनापति **धरसेनः**

तस्यानुजस्तत्पादप्रणामप्रशस्ततरविमलमणिर्मन्वादिप्रंणीतविधिविधानधर्मा—धर्मराज इव विनयव्यवस्थापद्धतिरखिलभुवनमण्डलाभोगैकस्वामिना परमस्वामिना स्वयमुपहितराज्याभिषेको महाविश्राणनावपूतराजश्रीः परसमाहेश्वरो महाराज **श्रीद्रोणसिंहः,**

सिंह इव तस्यानुजः स्वभुजबलपराक्रमेण परगजघटानीकानामेकविजयी शरणैषिणां शरणमवबोद्धा शास्त्रार्थतत्त्वानां कल्पतरूरिव सुहृत्प्रणयिनां यथा-भिलाषितकामफलभोगदः परमभागवतो महाराज **श्रीध्रुवसेनः,**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्यानुजस्तच्चरविन्दप्रणतिविधौताशेषकल्मण: सुविशुद्धस्वचरितोदकप्रक्षलिताशेषकलिकलङ्क: प्रसभनिर्जितारातिपक्षप्रथितमहिमापरमादित्यभक्त: श्रीमहाराजधरभट:,

तस्य सुतस्तत्पादसपर्यावाप्तपुण्योदय: शैशवात्प्रभृति खड्गद्वितीयबाहुरेव समदपरगजघटास्फोटनप्रकाशितसत्वनिकषस्तत्प्रभावप्रणतारातिचूडारत्नप्रभासंस – क्तसव्यपादनखपङ्क्तिदीधिति: सकलस्मृतिप्रणीतमार्गसम्यक्परिपालनप्रजाहृदयरञ्जनादन्वर्थराजशब्दो रूपकान्तिस्थैर्यधैर्यबुद्धिसम्पद्भि: स्मरशशाङ्काद्रिराजोदधित्रिदशगुरुधनेशानतिशयान: शरणागताभयप्रदानपरतया तृणावदपास्तशेषस्वकार्यफल: प्रार्थनाधिकार्थप्रदानन्दितविद्वत्सुहृत्प्रणयिहृदय: पादचारी व सकलभुवनमण्डलाभोगप्रमोद: परममाहेश्वरो महाराज **श्रीगुहसेन:,**

तस्य सुतस्तत्पादनखमयूखसन्तानविसृतजाह्नवी—जलौघप्रक्षालिताशेष - कल्मष: प्रणयिशतसहस्रोपजीव्यमानभोगसम्पद्रपलोभादिवाश्रित: सरभसमाभिगामिकैर्गुणै: सहेजशक्ति शिक्षाविशेषविस्मापिताखिलधनुर्द्धर: प्रथमनरपतिसमतिसृष्टानामनुपालयिता धर्मदायानामपाकर्ता प्रजोपघातकारिणामुपप्लवानांदर्शयिता श्रीसरस्वत्योरेकाधिवासस्य संहतारातिपक्षलक्ष्मीपरिभोगदक्षविक्रमो विक्रमोपसंप्राप्तविमलपार्थिवश्री: परममाहेश्वरो महासामन्तमहाराज**श्रीधरसेन:** कुशली सर्वानेव स्वानायुक्तकद्राङ्गिकमहत्तरचाटभट शौल्किक ध्रुवाधिकरणिकविषयपतिराजस्थानोयोपरिककुमारामात्यहस्त्यश्वारोहादीनन्यांश्च यथासंबध्यमानकान्समाज्ञपयति ।

अस्तु वस्संविदितं यथा मया मातापित्रो: पुण्याप्यायनायात्मनश्चैहिकामुष्मिकयथाभिलषित-फलावाप्तये **वलभ्यामाचार्य**भदन्तस्थिरमतिकारित श्रीबप्पपादीयविहारे भगवता **बुद्धानां पुष्पधूपगन्धदीपतैलादि**क्रियोत्सर्पणार्थ नानादिगभ्यागतार्यभिक्षुसङ्घस्य च **चीवरपिण्डपातग्लानभैषजाद्यर्थ** विहारस्य च खण्डस्फुटितविशीर्णतिसंस्करणार्थं हस्तवप्राहरणयां महेश्वरदासेनकग्रामोधाराखेरस्थल्यां च देवभद्रिपल्लिकाग्राम: **सोद्रङ्गौ सोपरिकरौ सवातभूतप्रत्यायौ सधान्यभागभोगहिरण्यादियौ** सोत्पद्यमान**विष्टिकौ सदशापराधौ** समस्तराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणीयौ भूमिछिद्रन्यायेनाचन्द्रार्कार्णवसरित्क्षितिस्थितिपर्वत समकालीनौ उदकातिसर्गेण देवदायौ निसृष्टौ । यत उँचितया देवविहारस्थित्या भुज्जत: कृषत: कर्षयत: प्रतिदिशतो वा न कैश्चिद्व्याधाते वर्तितव्यौ आशामिभंद्रनृपतिभिरस्मद्वंशजैरन्यैर्वानित्यान्यैश्वर्याण्यस्थिरं मानुष्यं सामान्यं च भूमिदानफलमवगच्छद्भिरयमस्मद्दायोऽनुमन्तव्य: परिपालयितव्यश्चा यश्चैनमाच्छिद्यादाच्छिद्यमानं वानुमोदेत स पञ्चभिर्महापातकैस्मोपपातकै: संयुक्त: स्यादित्युक्तं च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ १ ॥
वहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २ ॥
अनोदकेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिनः ।
कृष्णसर्पा हि जायन्ते धर्मदायापहारकाः ॥ ३ ॥
स्वदतां परदत्ता वा यो हरेत वसुन्धरां ।
गवां शतसहस्रस्य हन्तुः प्राप्नोति किल्विषम् ॥ ४ ॥
यानीह दारिद्रयभयान्नरेन्द्रै—
धनानि धर्मायतनीकृतानि ।
निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानि
को नाम साधुः पुनराददीत ॥ ५ ॥
लक्ष्मीनिकेतं यदपाश्रयेण
प्राप्तोन् कोऽभिमनं नृपार्थ ।
तान्येव पुण्यानि विवर्धयेथा
न हापनीयो ह्यपकारिपक्षः ॥ ६॥

स्वहस्तो मम महाराज**श्रीधरसेनस्य**। दूतकः सामन्तशीलादित्यः । लिखितं सन्धिविग्रहाधिकारणाधिकृतदिविरपतिस्कन्दभटेन । सं० २६९ चैत्र ब० २ ।

वाकाटक नरेश [विदर्भ शासक] द्वितीय विन्ध्यशक्ति का वसिम ताम्रपत्र

सिद्धम् (॥*)

१ **वत्सगुल्माद्धर्म्म**महाराजस्य (ा) ग्निष्टोम (ा) प्तोर्य्याम-वाजपेय-ज्यो (ति)-
२ (स्टो) म-बृहस्पतिसव-साद्यस्क्र-**चतुरश्वमेघ-याजिन**स्सम्राज (:*) वृ-
३ ष्णिवृद्ध-सगोत्रस्य हारिती-पुत्रस्य श्र (ी)-**प्रवरसेन**-पौत्रस्य
४ धर्म्ममहार (ा*) जस्य श्री-**सर्व्वसेन**-पुत्रस्य धर्म्ममह (ा) राजस्य
५ **वाकाटकाना** (म्) श्रि-**विन्ध्यशक्ते**र्व्वचनात् **नान्दीकडस** उत्तर-म (ग्गे)
६ **भाकालवखोप्पकाभासे आकाशपद्देसु** अ (म्ह)-सन्तका साव्वा (द्धक्ख-नि*)-
योग-नि- २
७ युत्ता आणत्ति-भडा सेसाय-साञ्चरन्त-रलपुत्ता भाणितव्वा (।*) आम्हेहि
८ दाणि आपुणो विजय-वेजयिके आयु-बल-वद्धणिके (स्व) स्ति-
९ शान्ति-वाचने इहामुत्तिके धाम्मत्थाणे एत्थङ्गामे आधिव्वणिक-चर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१० णस्स आद्धक । भालन्दायण-सगोत्तेसि (सि)तुज्जेसि कापिञ्जल-
११ सगोत्तेसि । रुद्दज्जेसि । श्राविष्ठायण-सगोत्तेसि । भाट्टिदेवज्जेसि
१२ कोसि(क)-सगोत्तेसि । देसुजेसि । कोसिक-सगोत्तेसि । वेण्हुज्जेसि ।
१३ कोसीक-सगोत्तेसि । विधिज्जेसि । ^त्पलादि-सगोत्तेसि पितु-
१४ जेसि भालन्दायण -सगोतेसि चान्दजेसि कोसिक-सगोत्तेसि जेट्ठजे-
१५ सि । पडेहि दोहि भालन्दायण-सगोत्तेसि बुद्धजेसि कोसिक-सगोत्तेसि
१६ भाद्दिलज्जेसि । कोसिक-सगोत्तेसि । सिवज्जेसि । कोसिक-सगोत्तेसि
१७ हरिण्णजेसित्ति एताणबाम्हाणाण भागा ति(ण्णि) ३ कोसिक-सगोत्ते(सि)
१८ रेवतिजेसि । भागो । चउत्थोत्ति आचन्दादिच्च-कालको अपुव्व-द-
१९ त्तिय दत्तो ।(।*) पुव्व-रायाणुमते यसे चातुव्वेज्ज-ग्गाम-मज्जात(ा)-**परि-
हारे वित-**
२० **राम** (।*) तजथा अरट्ठ-संव्विणेयिक । अ-लवण-(क्ले)ण्ण-खातक । अ-हिरण्ण-धा(ण्ण)-
२१ प्पणाय-प्पदेय । अ-पुप्फ-क्खीर-ग्गहणि । **अ-पारम्पर-गो-बलिवद्दं**
२२ **अ-वार-सिद्धिक** । **अ-चम्मङ्गालक** । अ-भड-प्पावेस । अ-खट्टा-चोल्लक-वेणे-
२३ सिक । अ-करद । अ-वह । **स-निधि** । **सोपनिधि** । **स-कुप्पान्त** ।
२४ स-मञ्च-महाकरण । साव्वजाति-परिहार-परिहितञ्च (।*) जतो उपरि-लि-
२५ खित । शासण-वादम्पमाण करेत्ता रक्खध रक्खापेधय परिहरध
२६ परिहरापेधय (।*) जो बु (आ)बाधं करेज्ज कतव्व (अ)नुव(म?)ण्ण(ति)
२७ तिस्स (ए)तेहि । उपरिलिखितेहि । बाम्हणेहि । परिञ्ञपिते स-(द)ण्ड-
२८ निग्रह करेज्जामेत्ति (।*) **साव्वच्छरं** ३०(+*)७ हेमन्त-पक्खं पढम
२९ (दि)व(स) (।*) स-मुहाण्णत्थि (।*) लीखितमिमं शासनं सेणपतिणा
३० वण्हुण इति ।। सिद्धिदस्तु ।।[1]

---

१ यह प्रशस्ति चार ताम्रपत्रों पर खुदी है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्व-मध्यकालीन अभिलेख

गुर्जर प्रतिहार राजा वाउक की जोधपुर प्रशस्ति

ओ नमो विष्णवे ।
यस्मिन् विशन्ति भूतानि यतस्सर्गस्थिती मते
स वः पायाद धृषिकेशोनिर्ग्गुणस्सगुणश्च यः । १ ।
गुणाः पूर्व्वं पुरुषानां कीर्त्यन्ते तेन पण्डितैः
गुण कीर्त्तिरनश्यन्ती स्वर्ग्ग वास करी यतः । २ ।
अतः श्री **वाउको** धीमां स्व **प्रतिहार** वंशजाम्
प्रशस्तौ लेख या मास श्री यशोविक्क्रमान्वितान् । ३ ।
स्व भ्राता रामभद्रस्य प्रतिहार्यं कृतं यतः ।
श्री प्रत्तिहार वंसोयमतश्चोन्नतिमान्पुयात् । ४ ।
विप्रः श्री हरिचन्द्राख्यः पत्नि भद्रा च क्षत्रिया
ताभ्यान्तु य सुता जाताः प्रतिहारांश्च तान्विदु : । ५ ।
बभूव रोहिल्लद्ध्यंको वेद शास्त्रार्थ्थ पारगः
द्विजः श्री हरिचन्द्राख्य प्रजापति समोगुरुः । ६ ।
तेन श्री हरिचन्द्रेण परिणिता द्विजात्मजा
द्वितिया क्षत्रिया भद्रा महाकुल गुणान्विता । ७ ।
प्रतिहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्यां ये भवन्त्सुताः
राज्ञी भद्रा च यान्त्सुते ते भूताः **मधुपायिनः** । ८ ।
चत्वार श्चात्मजास्तस्यां जाता भूधरणक्षमाः .
श्री मान् भोगभटः कक्को रजिलो दद्द एव च ।। ९ ।
माण्डव्यपुर दुर्ग्गेस्मिन्नेभिर्न्निज भुजार्ज्जिते
प्राकारः कारितस्तुंगो विद्विशां भीति वर्द्धनः । १० ।
अमीशां रज्जिलाजातः श्रीमान् नरभटः सुतः
पेल्लापेल्लीति नामाभूद्द्वितीयां तस्य विक्क्रमैः । ११ ।
तस्मान् नरभटाजातः श्रीमान् **नागभटः** सुतः
राजधानिस्थिर यस्य महन् मेड़ेन्तकं पुरम् । १२
राज्ञ्यां श्री जज्जिका देव्यास्ततो जातौ महागुणम्
द्वौ सुतौ तात भोजाख्यौ सौन्द्रर्यौ रिपु मर्द्दनौ । १३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तातेन तेन लोकस्य विद्युच्चंचल जीवितम्
वुध्वा राज्यं लघोर्भ्रातु श्री भोजस्य समर्प्पितम् । १४
स्वयंञ्च संस्थितः तातः शुद्धं धर्म्मं समाचरन्
माण्डव्यस्याश्रमे पुण्ये नदी निर्ज्झर शोभिते । १५
श्री यशोवर्द्धनस्तस्मात् पुत्रो विख्यात पौरुषः
भूतो निजभुज ख्यातिः समस्तोद्धृत कण्टकः । १६
तस्माच्च चन्डुकः श्रीमान् पुत्रो भूत् पृथुविक्रमः
तेजस्वी त्याग शीलश्च विद्विशां युधि दुर्द्धरः । १७
ततः श्री शिलुको जातः पुत्रो दुर्व्वारविक्रमः
येन सीमाकृता नित्या स्त्रवणि वल्ल देशयोः । १८
भट्टिकं देवराजं यो वेल्ला मण्डल पालकः
निपात्य तत्क्षणं भूमौ प्राप्तवानच्छत्रचिन्हकम् । १९
पुष्करिणी कारिता येन त्रेतो तीर्थ्थे च पत्तनम्
सिद्धेश्वरो महादेवः कारितस्तुंग मंदिरः । २०
ततः श्री शीलुकाज्जातः श्रीमान् **झोटो** वरः सुतः
येन राज्य सुखं भुन्त्वा **भागीरथ्यां** कृता गतिः । २१
वभूव सत्ववान् तस्माद् **भिल्लादित्यस्**तपोमतिः :
यूना राज्यं कृतं येन पुनः पुत्राय दत्तवान् । २२
गंगा द्वारं ततो गत्वा वर्षाण्य ष्टादश स्थितः
अन्ते चानशनं कृत्वा स्वर्ग्ग लोकं समागतः । २३
ततोपि श्री युतः **कक्कः** पुत्रो जातो महामतिः
यशो मुद्गागिरौ लब्धं ये न गौड़ै समं रणे । २४
छंदो व्याकरणं तर्को ज्योतिः शास्त्रं कलान्वितम्
सर्व्व भाषा कवित्वं च विज्ञातं सुविलक्षणम् । २५
भट्टि वंश विशुधायां तदस्मात् कक्क भूपतेः
श्रीमत् पद्मिन्याः महाराज्ञा जातः श्री **भाउक** सुत इति । २६
नन्दावलं प्रहत्वा रिपु बलमतुलं भूवकुप प्रयातं
दृष्ट्वा भग्नां स्वपक्षं द्विज नृप कुलजां सत्प्रतिहार भूपां
धिग् भूतैकेन तस्मिन् प्रकटित यशशो श्रीमता **बाउकेन**
स्फूर्जन् हत्वा मयूरं तदनु नर मृगा घातिता हेतिनैव । २७
कस्यान्यस्यप्रभग्नः स सचिव मनुजं त्यज्यराणसु तंत्रः
केनैकेनातिभीते दशदिशि तु वले स्तम्भ्य चात्मान मेकं
धैर्यान्मुक्तवाश्व पृष्ठं क्षिति गत चरणेनासि हस्तेन शत्रुं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्दित्वाभित्वा श्मशानं कृतमति भयदं वाउकान्येन तस्मिन् । २८
नव मण्डल नव निचये भग्ने हत्वा मयूरमतिगहने
तदनु भृतासि तरंगा श्री मद् **बाउक** नृसिंघेन । २९
सार्द्धार्द्धैः' प्रगलद्भिरक्तं सुषिरैर्व्वा हरुपादान्ग
कैरेन्त्रैश्चोपरि, लम्बि वितैर्विरचितम्
शषव गृहं फेत्कार सत्वा कुलम्
यच्छि, बाउक मण्डलाग्र रचितं प्रागछत्रु संघाकुले
तत्संस्मृत्य न कस्य संप्रति भवेत् त्रासोद्गमश्चेतसि । ३०
ननु समर धरायां बाउके नृत्यमाने
शव तनु सकलान्त्रेश्वेव विन्यस्त पादे
सममिव हि गतास्ते तिष्ठतिष्ठेति गीताद्
भय गत नृ कुरंगाश्चित्रमेत्तदासीत् । ३१
सं ८९४—चैत्र सुदि ५
उत्कीर्णा च हेमकार विश्नु रवि सुनुना कृष्णेश्वरेण ।

गुर्जर प्रतिहार भोज की ग्वालियर प्रशस्ति

१ ओं नमो विष्णवे ।।
शेषाहि-तल्प-धवलाधार-भाग-भासि-वक्षः-स्थल-वोल्लसित-कौस्तुभकान्तिशोणं
श्यामं वपु (:) शशि-विरोचन-विम्व (बिम्ब) चुम्वि (म्बि)
व्योम-प्रकाशम-वतान् नरक-द्विषो वः ।। १ ।।
आत्म-आराम-फलद् उपार्ज्य विजरं देवेन दैत्य-द्विषा
ज्योतिर-व्विजम्-अकृत्रिमे
२ गुरावन्त (f) क्षेत्रे यद्-उपां-पुरा ।
श्रेयः-कन्ड-वपुस् = ततस् = समभवद् = भास्वान् = अतश = चा पिरे
मन्व्-इक्ष्वाकु-ककुस्थ-मूल-पृथवः
क्ष्मापाल—कल्प-द्रुमाः ।। २ ।।
तेषां वंशे सुजन्मा क्रम-निहित-पदे धाम्नि वज्रेषु-घोरं
रामः पौलस्त्य्-हिन्तूरं क्षत-विहति-समित-कर्म्मं चक्रे पलाशैः ।
श्लाध्य—
३ स—तस्यानुजो—सौमधव-मद-मुषो मेघनादस्य संख्ये
सौमित्रिस तीव्र-दण्डः प्रतिहरण-विधेरयः प्रतीहार आसीत् ।। ३ ।।
तद वन्शे प्रतिहार-केतन-भृति त्रैलोक्य-रक्षास्पदे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवो **नागभटः** पुरातन-मुनेर-मूत्तिर=व्व (ब्ब) भूव्आद्भुतं ।
येनासौ सुकृत-प्रमाथि-व (ब लबन म्लेच्छ् आ -
४ धिप्-आक्षौहिणीः
क्षुन्दान स्फुरद-उग्र-हेति-रुचिरे (रै) र्-द्दोर्भिश्-चतुरभिर-व्वभौ ।। ४ ।।
भ्रातुस-तस्य आत्मजो-भूत-कलित-कुल-यशाः ख्यात**काकुस्थ**-नामा
लोके गीतः प्रतीक-पृय-वचनतया कक्कुकः क्षमाभृद-ईशः
श्री मान्-अस्यानुजण्मा कुलिश-धर-धुराम=उद्वहन=देवराजो
यञ्जेच्छिन्-वोरु-पक्ष-क्षपित-ग-
५ ति कुलं भूभृतां सन्नियन्ता ।। ५ ।।
तत् सूनुः प्राप्ये राज्यं निजम् उदयगिरि-स्पर्द्धिभास्वत्-प्रतापः
क्षमा-पालः प्रादुरासीन नत-सकल-जगद-वत्सलो **वत्सराजः**
पद्माक्षीर-आक्षिपन्त्य प्रणयि-जन-परिष्वङ्ग-कान्ता विरेजुः ।। ६ ।।
ख्या ताद् भण्डि)—
६ —कूलान-मद-वोत्कट करि-प्राकार-दुर्ल्लङ्घतो
यः साम्राज्यअधिज्य-कार्म्मुक-सखा संख्ये हठाद्-अग्रहीत
एकः क्षत्रिय-पुङ्गावेषु च यशो-गुर्व्वीन, धुरं प्रोद्वहन्
इ क्ष्वाक (ो): कुलम् उन्नतं सुचरितैश चक्रे स्व-नाम्-आङ्कितं ७ ।।
आद्यः पुमान्-पुनरपि स्फुट-कीर्त्तिर्-अस्माज्-
जाटस्-स स्व किल **नागभट**स्-तदाख्यः ।।
अत्र आ—
७ न्ध्र-सैन्धव-**विदर्भ**-कलिंग-भूपैः
कौमार-धामनि-पतंग-समैर-पाति ।।८।।
त्र (त्र)य्य-आस्पदस्य सुकृतस्य समृद्धिम्-इच्छुर-
यः क्षत्र-धाम-विधि-वद्ध-वलि-प्रवन्धः ।
जित्वा पराश्रय-कृत-स्फुट-नीच-भावं
चक्रायुधं विनय-नम्र-वपुरव्यराजत ।। ९ ।।
दुर्व्वारि-वैरि-वर-वारण-वाजि-वार-
८ याण औधसंघटन-घोर-घन-आन्धकारं ।
निर्ज्जित्य वङ्गपतिम्-आभिरभूद् विवस्वान्
उद्यन्न-इव त्रिजगद्-स्क-विकासको-यः ।। १० ।।
आनर्त्त-मालव-किरात-तुरुष्क-वत्स
मत्स्यादि-राज-गिरि-दुर्ग्ग-हठापहारैः ।
यस्य-आत्म-वैभवम्-अतीन्द्रियम्-आ-कुमारम्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आविर्व्वभूव भुवि विश्वजनीन-वृत्तेः ॥ ११ ॥
तज्-जन्मा राम—

९ नामा प्रवर-हरि-वल-न्यस्त-भूभृत-प्रवन्धैर्
आवघ्नन्-वाहिनीनां-प्रसभम् अधिपतीन्-उद्धत-क्रूर-सत्वान् ।
पाप-आचार-अन्तराय-प्रमथन-रुचिरः सङ्गत कीर्ति-दारैः
त्राता धर्म्मस्य तैस-समुचित चरितैः पूर्व्ववन् निर्व्वभासे ॥ १२ ॥
अनन्य-साधन-आधीन-प्रताप-आक्रान्त-दि

१० रामुखः ।
उपायैस् सम्पदां स्वामी यः स-व्रीडम्-उपास्यत ॥ १३ ॥
अर्थिभि-र्व्विनियुक्तानां सम्पदां जन्म केवलं ।
यस्याभूतकृतिनः प्रीत्यैन्-आत्म-एच्छा-विनियोगतः ॥ १४ ॥
जगद्-वितृष्णुः स विशुद्ध-सत्वः
प्रजापतित्वं विनियोक्तुकामः ।
सुतं रहस्य-व्रत-सुप्रसन्नात् =
सूर्याद्-अवा-

११ -पन-**मिहिराभिधानं** ॥ १५ ॥
उपरोध-ऐक-संरुद्ध-विन्ध्य-वृद्धेरगस्त्यतः
आक्रम्य भूभृतां भोक्ता यः प्रभुर्-भोज इत्य-अमात् ॥ १६ ॥
यशस्वी शान्त-आतमा जगद् अहित-विच्छेद-निपुणः
परिष्वक्तो लक्ष्म्या न च मद कलङ्केन कलितः ।
वभूव प्रेम-आर्द्रो गुणिषु विषय सुनृत-

१२ गिराम्-
असौ रामो वाग्रे स्व-कृति-गणनायाम् इह विधेः ॥ १७ ॥
यस्य आभूत् कुल भूमि-भृत्-प्रमथन-
व्यस्त-आन्य-सैन्य-आम्बुधेर्-
व्यूढां च स्फुटित-आत्रि-लाज-निवहान्-हुत्वा प्रताप-आनले ।
गुप्ता वृद्ध-गुरौ अनन्य गतिभिः शान्तैस्-सुध-ओद्भासिभिर-
द-धर्म्म, आपत्य-यशः प्रभूतिर्-अपरा लक्ष्मीः पुनर्भू—

१३ र्-न्नया ॥ १८ ॥
प्रीतै पीलनया तपोधन-कुलैः स्नेहाद्-गुरूणां गगौर-
भक्त्या भत्य-जनेन नीति-निपुणैर-वृन्दैर्-अरीणां पुनः ।
विश्वेन्-आपि यदीयम्-आयुरमितं कर्तुं स्व-जिव-एषिणा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तन-निघ्ना विदधे विधातरि यथा सम्पत्-परार्द्धयाश्रय ।। १९ ।।
अवितथम्-इदं यावद्-विश्वं श्रुतेर—
१४ -अनुशासनाद्-
भवति फल-भाक कर्त्तान्-तैशः क्षितिन्द्र-शतेष्व्-अपि ।
अधरित-कालेः कीर्त्ते भर्त्तुस-सतां सुकृतैर्-अभूद-
विधुरित-धियां सम्पद-वृद्धिर-यद्-अस्य तद् अद्भुतं ।। २० ।।
यस्य वैरि-वृहद्-वङ्शान्-दहतः कोप-वह्निना ।
प्रतापाद अर्ण्णसां राशिन-पाटुर-व्वैतृष्णाम् आवभौ ।। २१ ।।
कुमारैव विद्यानां
१५ वृन्देन्-आद्भूत-कर्म्मणा ।
यः शशास-आसुरान्-धीरान्-स्त्रैणेन्-आस्त्र ऐक-वृत्तिना ।। २२ ।।
यस्य आक्ष-पटले राज्ञः प्रभुत्वाद्-विश्व-सम्पदः ।
लिलेख मुखम्-आलोक्य प्रातिलेख्य-करो विधिः ।। २३ ।।
उद्दाम-तेजः-प्रसर-प्रसूता शिख-एव कीर्तिर्-द्युमणिं विजित्य ।
जाया जगद्भर्तु—
१६ र्-इयाय यस्य चित्रम् त्व-इदम् यज-जलधीन्-स्ततार ।। २४ ।।
राज्ञा तेन स्व-देवीनां यशः—पुण्य-आभिवृद्धये ।
अन्तः-पुर-पुरं नाम्ना व्यधायि नरक-द्विषः ।। २५ ।।
यावन्-नभः सुर-सरित-प (प्र) सर-वीत्तरीयं
यावत् सु-दुश्चर-तपः प्रभवः प्रभावः ।
सत्पञ्-च यावद्-उपरिस्थ (स्ठ) म्-अवल्य अशेषं
तावत् पु-
१७ —नातु जगतीम्-इयम् आर्य कीर्तिण् ।। २६ ।।
पातुर्-व्विश्वस्य सम्यक-परम-मुनि-मट-श्रेयसस सम्बिधानाद-
अन्तर-वृत्तिर-व्विवेक : स्थितैव पुरतो **भोजदेवस्य** रागः ।
विद्वद्-वृन्द-आज्जितानां फलम्-इव तपसां भट्टधन्नेक सूनुर-
व्वालादित्यः प्रशस्तेः कविर्-इह जगता साकम्-आ-कल्प वृत्तः ।।२७।।

राष्ट्रकूट शासक ध्रुव धारावर्ष का भोर-संग्रहालय-लेख

१ ओं (।) स वोव्याद्वेधसा धाम यं (यन्) णाभिकमलं कृतं (तम्) (।) हरश्च
यस्य का (कां) तेंदुकलमा कमलंकृतं (तम्) (।। १ ।। आसीद्वि (द्वि) ष-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२ ति(त्ति)मिरमुद्यतमण्डलाग्रो द्ध्व (ध्व) स्तिं नयनं (यन्न) भिमुखो रण-
शर्व्वरीपु (।) भूपशु (पश्शु) चिर्विधुरिवास्त(प्त) दिगंतकीर्त्ति-
३ **गोर्विंदराज** इति राजसु राजसिंघ(हः) ॥ २ ॥
दृष्ट्वा चमून (म) भिमुखीं सुभट्टाट (टाट्ट) हासामुना(न्ना) मितं सपदि
येन रणे-
४ षु नित्यं (।) दष्टाधरेण दधता भ्रुकुटिं ललाटे खङ्गं कुलश्ञ्च हृदयञ्च
निजञ्च श (स) त्वं (त्वम्) ॥३ ॥
खङ्गं कराग्रां (ग्रा) न्मुखत-
५ श्च शोभां मानो मनस्तस(स्स)मवेष यस्य(।)महाहवे नाम निशम्य सद्यस्त्रयं
रिपूणां विगलत्यकाण्डे ॥ ४ ॥ त-
६ स्यात्मजो जगति विश्रुतदीर्घकीर्तिरार्त्तार्त्तिहारिहरि-विक्रम(धाम) धारी (।)
भूपस्त्रिविष्टपकृता(नृपा) नुकृति (तिः) कृत-
७ इः **श्रीकक्कराज** इति शोत्रमणिर्वि (र्ब)भूव ॥ ५ ॥
तस्यो(स्य)प्राभिन(प्रभिन्न)-ककट (कण्ट) च्य(च्यु)तदानि (न) दंतिदं-
तप्राहाररुधि-
८ रोलि(ल्लि) खितंश (तांस) पौठ(:) क्ष्माप (:) क्षितौ क्षपितशत्रुरभूत(त्त)
नूजः **सद्राष्ट्रकुटकनकाट्ट** (द्रि) **रिवेंद्रराज** (:) ॥ ६ ॥
९ तस्योपार्जितमहसस्तनयश्चतुरुदधिवलयमालिन्या(:)
भोक्ता भुवः शतक्रतुसदृशः **श्रीद(दं)**-
१० **तिदुर्गराजो**भूत् ॥ ७ ॥ **काञ्चीजशकेरलनराधिपचोर (ल) पाण्ड्यश्री**हर्ष-
वज्रटविभेदविधानदक्ष (क्षम्) (।)
कर्णाटकं प(ब) लमचित्यम-
११ जेयमन्यै(मन्यैं) भृ (र्भृ) त्यै (त्यैः) कियद्भिरपि यः सहसा जिगायः(य)
॥ ८ ॥ आ(अ)भ्रविभं-गगृहीतनिशातशस्त्रं(स्त्र) मश्रांतमप्रतिह-
१२ ताज्ञमपेतयत्नं (त्नम्' (।) यो वल (ल्ल) भं श(स)पदि दण्ड (ब) लेन
जित्वा राजाधिराजप(र) मेश्वरतइमवाप (॥ ९ ॥ आ सेतोर्व्विपुलो-
१३ पलावलिलस (ल्लो) लोर्म्मिमालाजलादाप्रालेयकलंकिता-
मलंशिलाजालुत्तुषाराचलात् (।) आ पूर्वप-
१४ खारिराशिपुलिना(न) प्रांतप्रसिधा (द्धा) वधेर्येनेयं जगति(ती) श्व(स्व)
विक्रमव (ब) लेनैकातपत्रीकृतं (ता) ५१० ॥ तस्मिंदि (स्मिन्दि)-
१५ वं प्रयाते वल्लभराजे क्षतप्रजावा (बा) धः
श्रीकर्क्कराजसुनुर्म्महीपतिः **कृष्णराजोभूत** (। ११ ॥
यस्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६ **स्वभुजपराक्रमनिशे**(श्शे) षोच्छा (त्सा) दितारिदिक्चक्क्रं (।)
कृष्णस्येवाकृष्णं चरितं शृ(श्री) कृष्णराजस्य ॥ १२ ॥
शुभतुंगतुंगतुरगप्र-
१७ वृद्धरेणु(णू) द्धं (र्ध्वं) रुध्य(द्ध) रविकिरधां (णम्)
ग्रीष्मेपि नभो निखिलं प्रावृट्कालायते स्पष्टं (ष्टम्) ॥ १३ ॥ दीनानाथप्रण-
यिषु यथेष्टचेष्टं स-
१८ मीहितमजश्र(स्तम्) तत्क्षणमकालवर्ष(र्षे) वर्षति सर्व्वार्तिनिर्व्वपणं
(णम्) ॥ १४ ॥ राहप्पमात्मभुजजातव(ब) लावलेपमाजौ विजि-
१९ त्य निशिताश्रि(सि) लताप्रर्हा(हा) रैः (।) पालिद्ध(ध्व) जावलिशुभा-
मचिरेण यो हि राजाधिराजपरमेश्श्वरतां तता (न ॥ १५ ॥) क्रोधादुत्खा-
तख-
२० ड्गप्रशृ(सृ) तरूचिचमैः (चै) र्भसमानं समंतादाजादु (वु) द्वृत(त्त)
वैरिप्रकटगजगजघटाटोपसंक्षो-
(भ) दक्षं(क्षम्) (।) शौर्यं त्यक्ता(त्त्वा) वि-
२१ गर्गो भयचकित(व) पु(:) क्वापि दृष्ट्वैव सद्य(द्यो) दर्प्पाध्मातारिचक्र-
क्षयकरमगमद्यस्य दोर्द्दण्डरु(रू) पं(पम्) (॥ १९ ॥ पाता यश्चतु-
२२ रं(बु) राशिरशनालंकारभाजी भुवः स्तैय (वस्त्रय्या) श्चापि कृता(त)
द्विजामरगुरुः (रु) प्राज्याज्यपूजादरो (रः) (।) दाता मान-भृदग्रणीर्ग्गुणव-
२३ तां योसौ शृ (श्रि) यो वल्लभी भोक्तुं स्वर्ग्गफलानि भूरितपसा स्थानं जगा-
मामरं (रम्) (॥ १७ ॥) येन श्वेतातपत्रप्रहतरवि-
२४ करव्राततापात्सलीलं (ज)ग्मे नाशी (सी) रधूळीधवलितशिरसा वल्लभाख्यं
सदाजा (॥) **श्री (गो) विंदराजो** जितजग-
२५ दहितस्त्रैणवैधव्यहेतुः (तु) स्तस्यासी(त्) सूनुरेकः क्षणरणदलितारातिमा
(म)त्तेभकुंभः ॥ १२ ॥ तस्यानुज (:) **श्री ध्रुव-**
२६ **राजनामा** महानुभावोप्रहतप्रताप(:) प्रसाधिताशेषनरेंद्रचक्रं (क्रः) क्रमेण
वा(बा) लार्क्कवपू (पु) र्व्व(र्ब) भूव ॥ १९ ॥ ज्जा(जा)ते यत्र च राष्ट्र-
कूटति-
२७ लके सद्भूपचूडामणौ, गुर्व्वी तुष्टिरथाखिलस्य जगतः सुस्वामिनि प्रत्यहं
(हम्) (।) त्स (स) त्यं श (स) त्यमिति ग्रसा (शा) सति स-
२८ ति क्ष्मामात्स (स) मुद्रांतिकामासीध(वद्ध) र्न्मपरे गुणामृतनिधौ सत्यव्रता-
धिष्टि(ष्ठि)ते ॥ २० ॥ **श्री काञ्चीपतिगांगवे (वें) गिकयुता**
ये माल (वे) शादयः प्राज्यानानयति स्म ता (तान्) क्षितिभृतो यः प्राति-
राज्यानति(प) (।) माणिक्याभरणानि हेमनिचयं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३० यस्य प्रवद्योपरि श्वं (स्वं) येन प्रति तं तथापि न कृतं चेतोन्यथा भ्रात (रम्) ॥ ३१ ॥ सामाद्यैरपि वल्लभो न हि यदा सं (धिं) व्य-

३१ धातं त्तदा (त्तं तदा) चा (भ्रा) तुर्द्दत (त्त) रणो विजित्य तरसा पश्चात (त्त) तो भूपते (तीन्) (।) प्राच्योदीच्यपराच्ययाम्यविल्ल (ल) सत्पलिध्वजै-

३२ र्भूषितं चिह्नैर्यः परमेश्वरत्वमखिलं लेभे महेन्तो (न्द्रो) विभुः ॥ २२ ॥ शशधरकरनिकरनिभं यस्य यशः सुरन-

३३ गाग्रसानुस्थै (:।) परिगीयतेनुरक्तैर्व्विद्याधरसुंदरी (नि) व है (:॥ २३ ॥) हृष्टोन्वहं योर्थिजनाय सर्व्वं सर्व्वस्वमानंदितवं (वं)-

३४ धुवर्ग्ग (:।) प्रादात्पुरुष्टो हरति स्म वेग (गात्) प्राणा (न्) यमस्यावि (पि) नितांतविर्य (वीर्यः) ॥ २४ ॥ तेनेदमनिलविद्युच (च्च) ञ्चलमव-

३५ लोक्य जीवितमसांर (रम्) (।) क्षितिदान-परमपुण्यं प्रवर्त्तिती व्र (ब्र) ह्मदायोयं (यम्) ॥ २५ ॥ स च परमभट्टारकमहा-

३६ राजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीमद (द्) अकालवर्षदेवपादानुध्यात-परमभट्टारक-

३७ महाराजाधिराजपरमेश्वर**श्रीधारावर्षश्रीध्रुवराज**नाम (ा) श्री निरुपमदेव (:) कुशली सर्वानेव य-

३८ था (सं) व (ब) ध्यमानकं (कान्) राष्टपतिविषयपतिग्रामकूटायुक्तका (क) नियुक्तकाधिकारिकमहत्तरादी (न्) समा-

३९ दिशत्यस्तु वः संविदितं यथा श्रीनीरानदीसंगमसमावासितेन मया मातापित्रो-रात्मन श्चैहिका-

४० मुस्मि (ष्मि) कपुराययशोभिवृध (द्ध) ये करहाडवास्तव्यतच्चातुर्व्विद्य - सामान्यगार्ग्गसगोत्रव (ब)—

४१ हुवृच (हृवृच) सव्र (ब) ह्मचारिणो दुग्ग (र्ग) भटपुत्राय सांगोपांगवेदार्थ-तत्वविदुषे वासुदेव-भट्टा

४२ य श्रीमालविषयांततर्ग्गतलघुवि (विं) गनामा ग्रामः तस्य चाद्याट्ट (ट) नाणि, (।) पूर्व्वतः श्रीमालपतन (त्तनं) द-

४३ क्षिणात (ती) लमणगिरि (:) पश्चिमतः वृ (बृ) हद्विंगकग्रामः उत्तरतः नीरा नाम नदी (।) एवमयं चतुराघा-

४४ टनोपलक्षिती ग्राम (:) **सोद्रंग** (:) स (**सो**) **परी (रि) करस** (स्स) दण्ड-**दशापराधस** (स्स) भूतोपा (तवा) तप्रत्यायसो (स्सो) त्पद्यमा-

४५ **नविष्टिक** (:) **सधान्यहिरं (र) न्या) (ण्या)** देयो अ (योऽ) **चारभटप्रवेश्यः** सर्व्वराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणी-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४६ य आचंद्रार्क्कार्णवक्षितिसरित्पर्व्वतसमकालीन (:) पू (पु) त्रपौत्रान्वय-
क्रमोपभोग्य (ग्यः) पूर्व्वप्रत्तदे-
४७ वत्रा (ब्र) ह्मदायरहितोभ्यंतरसिध्या (द्धया) भूमिच्छिद्रन्यायेन **शकनृ-**
पकालातीतसंवत्सरस (श)-
४८ तेषु सप्तसु वर्षद्वयाधिकेषु सिद्धाथ (र्थ) नाग्नि संवत्सरे माघसितरथसप्तम्यांम-
४९ हापर्व्वणि व (ब) लिचरुवैश्वदेवाग्निहोत्रातिथिपञ्चमहायज्ञक्रयोत्सर्पणार्थ
(र्थं) स्नात्वाद्योदकातिसर्गेण
५० प्रतिपादितो (तः) (।) यतोस्यो उचितया व्र (ब्र) ह्मदायस्थित्या भुंजतो
भोजयतः (:) कृषतः प्रतिदिशतो वा न कै-
५१ श्चिदल्पापि परिपंथना कार्या (।) तथा-गामिभद्रनृपतिभिरस्मइंश्यैरं (र)
न्यैर्व्वा स्वा (सा) मान्यं भूमिदानफल-
५२ मवेत्य विद्युलो (ल्लो) लान्यनित्यैश्वर्याणि तृणाग्रलग्नजलविं (बि) दुचञ्च-
लञ्च जीवित-माकलय (य्य) स्वदायनि-
५३ र्विशेषोयमस्मदा (द्दा) योनुमंतव्यः प्रतिपालै (लयि) तव्यश्च (।) यश्चा-
ज्ञावतिमिरपट-लावृतमतिराथि (च्छि) द्या-
५४ दाच्छिद्यमानकं वानुमोदेत स पञ्चभिर्महापातकैशो (श्चो) पपातकैश्च
संयुक्तः (:) स्या (त्) इत्युक्तञ्च भगव-
५५ ता वेदव्यासेन (।) षष्टिं वर्षसहश्रा (स्रा) णि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः (।)
आच्छेता (त्ता) चानुमंता च तान्यै (न्ये) व नर-
५६ रके वसेत् (॥ २६ ॥) विंध्याटवीश्व (ष्व) तोयासु शुष्ककोटरवासिन (:।)
कृष्णाध्यो हि जायंते भूमिदानं ह-
५७ रंति ये (॥ २७ ॥) अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः
(।) लोकत्रयं तेन भवे-
५८ धि (द्ध) दत्तं यः काञ्चनं गाञ्च महि (ही) ञ्च दद्यात् (॥ २८ ॥) व (ब)
हुभिर्व्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभि (:।) यस्य य-
५९ स्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं (लम्) (॥ २९ ॥) यानीह दता (त्ता)
नि पुरा नरे (रं) द्रैर्द्दा-
नानि धर्मार्थयशस्कराणि (।) निर्म्मा-
६० ल्यवांतप्रति (मानि) तानि को नाम साधुः (:) पुनराददीत (॥ ३० ॥)
स्वदत्तं (त्तां) परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष नराधिप (।) (महीं) मही-
६१ मता (तां) श्रेष्ठ दानारसे (च्छ्रे) योनुपां (पा) लनं (नम्) ॥ ३१ ॥
इति कमलदलांवु (म्बु) विं (बिं) दुलोलां श्र्रृ (श्रि) यम-नुचि (चिं) त्य
मनुष्यजीवि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६२ तञ्च (।) अतिविमल (म) नोभिरात्मनीनैर्ण्ण (र्न) हि पुरुषे परकीर्त्तयो विलोला (।। ३२ ।।) श्रीनाग-

६३ (प) ण्णकदूतकं लिखितं श्रीगौडसुतेन श्रीसावं (मं) तेन ।।

प्रथम अमोघवर्ष का संजान ताम्रपत्र-लेख

(श. का. ७९३)

१ ओं (।।*) स वोव्याद्वेधसा धाम यन्नाभिकमलं कृतं ।
हरश्च यस्य कान्तेन्दुकलया कमलंकृतं ।। १ ।।
अनन्तभोगस्थितिरत्रपातु वः प्रतापशीलप्रभवोदयाचलः (।*)

२ शुराष्ट्रकूटोच्छ्रितवंशपूर्व्वजः स वीरनारायण एव यो विभुः । (२*)
तदीय वीर्य्यायितपादवान्वये क्रमेण वार्द्धाविव रत्नसंचयः (।*)
वभूव गोविन्दमहीप्रतिर्भुवः

३ प्रसाधनो पृच्छकराजनः ।। ३ ।। वभार यः कौस्तुभरत्नविस्फुरद्गभस्ति-विस्तीर्ण्णमुरस्थलं ततः (।) प्रभातभानुप्रभवप्रभाततं हिरण्मयं मे टिवाभि तस्तटं ।। ४ ।। मनांसि

४ यत्रासमयानि सन्ततं वचांसि यत्कीर्त्तिविकीर्त्तनान्यपि । शिरांसि यत्पादनतानि वैरिणां यशांसि यत्तेजसि नेशुरन्यतः ।। ५ ।। धनुस्समुत्सारितभूभृता मही प्रसारिता

५ येन पृथुप्रभाविना । महौजसा वैरतमो निराकृतं प्रतापशीलेन स **कक्कराट्** प्रभुः ।। ६ ।। इन्द्रराजस्ततोगृह्त्वात् यश्चालुक्यनृपात्मजां (।*) राक्षसेन विवाहेन रणे स्वे-

६ टकमण्डपे ।। ७ ।। ततोभवद्दन्तिघटाभिमर्द्दनो हिमाचलादास्थिसेतुसीमतः (।*) खलीकृतोदृत्तमहीपमराडलः कुलाग्रणीर्यो भुवि **दन्तिदुर्गराट्** ।। ८ ।। हिरण्य-

७ गर्भं राजन्यैरूज्जयन्यां यदासितं (।*) प्रतिहारीकृतं येन गुर्जरेशादिराजकम् ।। ९ ।। स्वयंवरीभूतरणांगणे ततस्पनिर्व्यपेक्षं शुभतुंगवल्लभः (।*) चकर्ष चालुक्यकुल श्री-

८ यं वलाद्विलोलपालिध्वजमालभारिणां ।। १० ।। अपोध्यसिंधासनचामरोर्जितस्सितातपत्रोप्रतिपक्षराज्यभाक् (।*)
अकालवर्षो हतभूपराजको वभूव राज-

९ रिबिरशेषपुण्यकृत् ।। ११ ।। ततः प्रभूतवर्षोभूद्धाराव स्त-तश्शरैर्द्धारावर्षायितं येन संग्रामभुवि भूभुजा ।। १२ ।।
युद्धेषु यस्य करवालनिकृत्तशत्रुमूर्ध्नाङ्कवीण्णरुचिरास-पवान-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१० मतः । आकण्ठपूर्णजठरः परितृप्तमृत्युरुद्गारयन्निव स काहलधीरनादः ।।१३।।
गङ्गायमुनयोर्म्मध्ये राज्ञो गोडस्य नश्यतः : (।*) लक्ष्मीलीलारविन्दानि
श्वेतच्छत्राणि यो हरेत ।। १४ ।।
११ व्याप्ता विश्वम्भरान्तं शशिकरधवला यस्य कीर्त्ति समन्तात्
प्रेखं च्छंकालिमुक्ताफलशतशफरानेकफेनोर्म्मिरूपैः ।
पाण्वान्यतीरोत्तरणमविरलं कुर्व्वतीव प्रयाता स्व-
१२ र्गं गीर्व्वाणहारद्विरदसुरसरिद्धात्ति राष्ट्रच्छलेन ।। १५ ।।
प्राप्तो राज्यांभिषेकं निरूपमतनयो य स्वसामन्तवर्गा
त्स्वेषां पदेषु प्रकटमनुनयै स्थापयिष्यानश-
१३ षाम् ।१६। पित्रा यूय समाना इति गिरमरणीन्मन्त्रिवर्गं त्रिवर्गोर्युक्तः कृत्येषु
दक्षः क्षितिमवति यदोन्मोक्षयन्वद्धगंग । दुष्टांस्तावत्स्वभृत्यां झटिति विघ-
१४ टिता स्थापितान्येशपाशां युद्धे युद्धा स वध्वा विषमतरमहोक्षानिवोग्रान्समग्रां
(१७)मुक्त्वा सार्द्रान्तिरात्मा विकृतिपरिणतौ वाडवाग्निं समुद्रः क्षोभो नाभू-
द्विपक्षान-
१५ पि पुनखि तां भूभृतो यो वभार ।। १८।। उपशतविकृतिः कृतघ्नगंगो यदुदित-
दण्डपलायनोनुवन्धाध्यपगतपद—शृंखलः खलो यस्सनिगलवन्धगलः
१६ कृतस्स येन श्रीमान्धाता विधातु प्रतिनिधिरपरो **राष्ट्रकूटान्वय**श्रीसारान्साराम-
रम्यप्रविततनगरग्रामरामाभिरामामुर्व्वीमुव्वश्वराणां मकु-
१७ टमकरिकाश्लिष्टपादारविन्दः पारावारोरुवारिस्फुटरवरशनां पातुमुम्यु-
द्यतो यः ।। १९ ।। नवजलधरवीरध्वानगम्भीरभेरीरववधिरितविश्वाशान्तरा-
१८ लो रिपुणां (।*) पटुरवपदढक्काकाहलोत्तालतूर्यत्रिभुवनधवलस्योद्योगकालस्य
कालः ।। २० ।। भूभृन्मूर्द्धि सुनीतपादविशरः पुण्योदयस्तेजसा क्रान्ताशे-
१९ षदिगन्तर प्रतिपदं प्राप्तप्रतापोन्नतिः (।*)
भूयो योप्यनुरन्तामण्डलयुतः (:) पद्माकटानन्दितो मार्त्तण्ड स्वयमुत-
रायणगत स्तेजोनिधिर्दुस्सहः ।। २१ ।। स नाग-
२० भटचन्दगुप्तनृपयोर्यशौर्यं रणेस्वहार्यमपहार्यं धैर्यं विकलानथोन्मोलयत् (।*)
यशोर्ज्जनपरो नृपान्स्वभुवि शालिसस्यानिव (।) पुन पुनरतिष्टि-
२१ पत्स्वपद स्व चान्यापि ।। २२ ।। हिमवत्पर्व्वतनिर्ज्झराम्बु तुरगैः वीतराय
गङ्गजै-
२२ र्द्धनितं मज्जनतूर्यकैर्द्विगुणितं भूयोपि तत्कन्दरे (।*) स्वयमेवोपनतौ च
यस्य महतस्तौ धर्म्मचक्रायुधौ (।) हिमवान्कीर्त्तिसरूपतामुपगतस्त-
२३ त्कीर्त्तिनारायणः ।। २३ ।। तत प्रतिनिवृत्य तत्प्रकृतभृत्यकर्म्मत्ययः प्रतापमिव-
नर्म्मदातर-मनुप्रयात पुनः (।*) **सकोशलकलिंशवेगिडहलौड्रक** (।)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२४ **न्मालवां** विलम्य निजसेवकं स्वयमव्वभुजद्विक्रमः ॥ २४ ॥ प्रत्यावृत्तः
प्रातिराज्यं विधेयं कृत्वा रेवामुत्तरं विन्ध्यपादे (।*) कुर्व्वन्धर्म्मान्कीर्त्तनैः
पुण्य(वृ)न्दैरध्यष्टात्तान्सो-
२५ चितां राजधानी ॥ २५ ॥ मण्डलेशमहाराज-सर्व्वस्व यदभूद्भुवः। महाराज-
सर्व्वस्वामी भावी तस्य सुतोजनि ॥ २६ ॥ यज्जन्मकाले देवज्ञैरादिष्ठ (ष्टं)
विषहो भुवं (।*) भोक्तेति हि-
२६ मवत्सतुपर्यन्ताम्बुधिमेखलां ॥ २७ ॥
योद्धारो**मोघवर्षेण** वद्धा यो व युधि द्विषः (।*)
मुक्ता ये विकृतास्तेषां भस्मतश्शृंखलोद्धृतिः ॥ २८ ॥ तत प्रभूतवर्षस्स-
न्स्वसंपूर्णम-
२७ नोरथः (।*) जगतुंगस्स मेरुर्व्वा भूभृतामुपरि स्थितः ॥ २९ ॥ उद (ति)
ष्ठदवष्टम्भं भंक्तुं द्रविल-
भूभृतां (।*)स जागरणचिन्तास्थमन्त्रणभ्रान्तचेतसां ॥३०॥ प्रस्थानेन हि के-
२८ वलं प्रचलति स्वच्छादिताच्छादिता धात्री विक्रम साधनैस्सकलुषं विद्वेषिणां
द्वेषिणां (।*) लक्ष्मीरप्पुरसो लतेव पवनप्रायासिता यासिता धूलिर्न्नैव दिशो-
२९ शमद्रिपुयशस्सन्तानकं तानकं ॥ ३१ ॥
त्रस्यत्**केरलपाड्यचौलिकनृपस्संपल्लव** पल्लवं प्रम्लानिं गमयन्**कलिंगमगध**–
प्रायासको यासकः (।*) गर्ज्जद्गुर्ज्जरमौशौ—
३० शौर्यविलयो लंकारयन्नुद्योगस्तदनिन्धशासनमतस्सद्विक्रमो विक्रमः ॥ ३२ ॥
निकृति विकृतगंगाश्शृंखलोवद्धनिष्ठा मृतिमयूरनुकूला मण्डलेशा स्वभृ-
३१ त्या (।*) विरजसमहितेनुर्यस्य वाह्यालिभूमिं परिवृति विष्ट्या वेंगिनाथा-
दयोपि ॥३३॥ राजामात्यवराविव स्वहितकार्यालस्यनष्टौ हठाद्दण्डेनैवनि-
३२ यम्य मूकवधिरावानीय हेलापुरे (।*)
लंकातच्छिल तत्प्रभुप्रतिकृती **का (ण्ची) (ञ्ची)** मुपेतौ ततः कीर्त्तिस्तम्भ-
निभौ शिवायतनके येनेह संस्थापितौ ॥ ३८ ॥ या-
३३ स्या कीर्तिस्तृलोक्यान्निजभुवनभरं भर्त्तुमासीत्समर्थं । पुत्रश्चास्माकमेकस्स-
फलमिति कृतं ज्जन्म धर्म्मैरनेकैः (।*) किं कर्त्तुं स्थेयमस्मिन्निति विम-
३४ लयश पुण्यशोपानमार्ग्गं स्वर्गप्रीत्तुंगसौध प्रतिरदनुपमः कीर्त्तिम्त्रे (मे)
वानुयात्तः (तः) ॥ ३४ ॥
वन्धूनां वन्धुण्णामुचितनिजकुले पूर्व्वजानां प्रजानां जाता-
३५ नां वल्लभानां भुवनभरितसत्कीर्त्तिमूर्त्तिस्थतां (।*) त्रातुं कीर्त्ति सलोकां
कलिकलुषमथो हंतुमंतो रिपूणां श्रीमान्सिहासनस्थो बुधनुतचरितो**मोघव-**
३६ र्ष प्रशस्ति ॥ ३६ ॥ त्रातुनम्रान्विजेतुं रणशिरसि परान्प्राथकेभ्य प्र(ा)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दातं निर्व्वोढुं रूढ़िसत्यं रणिपरिवृढी नेहशोन्यः (।*) इत्थं प्रोत्थाय सार्थं पृथुरवपद-

३७ ढक्कादिमन्द्रप्रघोषो यसोन्द्रस्येव नित्यं ध्वनति कलिमलध्वन्सिनो मन्दिराग्रे ।। ३७ ।। दृष्ट्वा तन्नवराज्जमर्ज्जि (त) वृहद्धर्म्मप्रभावं नृपं भय षोडशराज्य-

३८ वत्कृतयुग प्रारम्भ इत्याकुलः (।*) नश्यन्नन्तरनुप्रविश्य विषमो माया-मयोंसौ कलिः सामन्तान्सचिवन्स्ववान्धवजनानक्षोभयत्स्वीकृताम् ।। ३८ ।।

३९ शठमत्रं प्रविधायत्कूटशपथैरोशस्वतंत्रा स्वयं विनिहत्योचितयुक्तकारि-पुरुषान्सर्व्वे स्वयंग्राहिणः (।*) परयीषिदुहिता स्वसेति न पु-

४० नर्भेद पशूनामिव प्रभुरेवं कलिकालमित्यवसितं सद्वृत्तमुधृत्तः ।। ३९ ।। विततमहिमधाम्नि व्योम्नि संहृत्य धाम्नमितवति महतीन्दोम्मेण्ड-

४१ लं ताराकाश्च (।*) उदयमहिमभाजो भ्राजितास्सप्रतापे विरतवति विजि-ह्माश्चोर्जितास्तावदेवः (:) ।। ४० ।। गुरुत्रुधमनुयातस्सार्यपातालमल्ला-

४२ दुदयगिरिमहिम्नोरदृमार्तण्डदेवः । पुनरुदयमुपेत्योघृत्ततेजस्विचक्रं प्रतिहत-मथ कृत्वा लोकमेक पुनाति ।। ४१ ।। राजात्मा मन एव तस्य

४३ सचिवरसामन्तचक्रं पुनस्तनीत्येन्दियवर्ग्ग एष विधिवद्रागादयस्सेवकाः (।*) देहस्थानमधिष्ठित स्वविषयं भोक्तु स्वतन्त्रः क्षमस्त-

४४ स्मन्भोक्तरि सन्निपातविवशे सर्व्वेपिनश्यन्ति ते ।। ४२ ।। दोषानौषधवद्वनाननिलवत्शुष्केन्धेनान्यग्निवत् ध्वान्तं भानुवदात्मपूर्व्वज-

४५ समाम्नायागतान्द्रोहकान (।*) सतापान्विनिहत्य यः कलिमलं धात्र्यादि-सम्प्रान्ततः (।) कीर्त्त्या चन्द्रिक एव चन्द्र धवलच्छत्रश्रिया

४६ भाजितः ।। ४३ ।। यण्डाभिहतीत्तरोरिव फलं मुक्ताफलं मण्डलात् (।) यातं शूकरयूथवद्गहनतस्तन्मन्दिरं हास्तिकं । यत्कोपोग्र-

४७ दवाग्निदग्धतनवः प्राप्ता बिभूतिं पने (।) तत्पादोपनतप्रसादतनवः प्राप्तो विभूतिम्पर ।। ४४ ।। यस्याज्ञां परिचक्रि स्रजमिवाजस्रं शि-

४८ रोभिर्व्वहन्त्यादिग्दन्तिघटावलीमुखपटः कीर्त्तिप्रतानस्सतः (।) यत्रस्थ स्वकरप्रतापमंहिमा कस्यापि दूरस्थितः (।) तेजक्रान्तसमस्तभूभृदि-

४९ न एवासौ न कस्योपरि ।। ४५ ।। यद्द्वारे परमण्डलाधिपतयो दौवारिकैर्व्वा-रिकैरास्थानावसरं प्रतीक्ष्य वहिरप्पध्यासिता यासिता । गाणिक्यं वरत्रमौ-

५० क्तिकचितं तद्धास्तिकं हास्तिकं (।) नादास्याम यदीति यत्र निजक पश्यन्ति नश्यन्ति च ।। ४६ ।। सर्प्पं पातुमसो ददो निजतनुं जीमूतकेतोस्सुतः (।) श्येनायाथ शिवि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५१ कपोतपरिरक्षार्त्थं दधीचोर्त्थिने। तेप्येकैकमतप्पयन्किल महालक्ष्म्यै स्वावामां-
गुलि लोकोपद्रवशान्तये स्म दिशति श्रीवीरनारायणः ॥ ४७ ॥ **हत्वा भ्रातर-**
५२ **मेव राज्यमहरद्देवीं च दीनस्ततो लक्ष कोटिमलेखयन्किलं कलौ दाता स**
गुप्तान्वयः(।*) येनात्याजि तनु स्वराज्य-मसकृद्वाह्यार्त्थकैः का कथा(।)ही-
५३ प्तस्योन्नतिराष्ट्रकूटतिलको दादेति कीर्त्यावपि ॥ ४८ ॥ स्वभुजभुजसनि-
स्त्रिंशोग्रदंष्ट्राग्रदष्टप्रवल(वल) रिपुसमूहेमोघवर्षे भधीशे । (।) न दध-
५४ ति पदमीतिव्याधिदुष्कालकाले (।) हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु ॥ ४९ ॥
॥ ४९ ॥ चतुरप्तसुद्रपर्यान्तिः समुद्रः यत्प्रसाधितं (।*) भग्ना समस्तभूपाल-
मुद्रा ग-
५५ रुऽमुद्रया ॥ ५० ॥ राजन्द्रास्ते वन्दनीस्तु पूर्व्वे येषान्धर्म्मा पालानीयोस्म-
दादैः (।*) ध्वस्ता दुष्टा वर्त्तमानास्सधर्म्मं प्रात्थ्या ये ते भविनः पार्थिवेन्द्राः
॥ ५१ ॥ भुक्त क-
५६ श्चिक्रमेणापरेभ्यो दत्तं चान्यैस्त्यक्तमेवापरैर्य्यत् (।*) कस्थानित्ये तत्र राज्य
महद्भिः कीर्त्या धर्म्मः केवलं पालनीयं ॥ ५२ ॥ तेनेदमनिलविद्युचञ्चल-
मवलो-
५७ क्य जीवितमसारं । (।) क्षितिदानपरमपुरायं प्रवर्त्तितो ब्रह्मदायोयं ॥ ५३ ॥
सच परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीजगतुंगदेवपादानुध्यातपर-
५८ मभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीपृथ्वीवल्लभ-**श्रीमदमोघवर्ष-श्रीवल्लभ**
नरेन्द्रदेवः कुशली सर्व्वानिव यथासम्बन्ध्यमानकान्राष्ट्रपतिविषयपति-
५९ ग्रामकूटयुक्तकनियुक्ताधिकारिकमहत्तरादीं समादिशत्यस्तु (॥) वस्संविदितं
यथा मान्यखेटराजधान्यातस्थितेन मया मातापित्रोरात्मन (कं) श्चैहिकामु-
६० त्रिकपुण्ययशोभिवृद्धये ॥ ७ ॥ करहऽविनिर्गतभरद्वामाग्निवेश्यानां आंगिरस-
पारूहस्पत्यानां भारद्वानाजेसब्रह्मचारिणे साविकूवारक्र-
६१ मइतपौत्राय । गोलसऽगमिपुत्राय । नरसिंघदीक्षितः । पुनरपि तस्मै विषय-
विनिर्गता तस्मै गोत्रे च भट्टपौत्राय । गोविन्दभट्ट-
६२ पुत्राय । रच्छादित्यक्रम इतः । तस्मिं देषे ।
वड्डमुखसब्रह्मचारिणे दावडिगहियसहायसपौत्राय । विष्णुभट्ट पुत्राय ।
तिविक्रम-
६३ षडंगमिः । पुनरपि तस्मिं देषे वच्छगोत्रसब्रह्मचारिणे । हरिभट्टपौत्राय ।
गोवादित्यभट्टपुत्राय । केसवगहियसाहायः ।
६४ चतुकाःनां वह्वृचसखानां । पवं चतुकः ब्राह्मणानां ग्रामो दत्तः संजाणसमीप-
वर्त्तिनः चतुर्विशतिग्राममध्ये । रुरिवल्लिकानामग्रामः तस्य चाघाट-
६५ नानिः पूर्व्वतः कल्लुवी समुद्रगामिनी नदी । दक्षिणतः उप्पलहत्थकं भट्ट-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ग्रामः । पश्चिमतः नन्दग्रामः । उत्तरतः धन्नवल्लिकाग्रामः । अयं ग्रामस्य संज्ञाने

६६ पत्तने शुंकंन शुष्णायामिग्रामं सवृक्षमालाकुलं भोक्तव्यं । स्वमयं चतुरा-
घाटनोपलक्षितः सोद्रगंस्सोपरिकरः सदण्डदपराधः सभूतापात्त प्रत्ययः सोत्प-

६७ द्यमानविष्टिकः सधान्यहिरण्यादेयः अचाटभटप्रवेश्यः सर्व्वराज**कीयानामहस्त-**
प्रक्षेपणीया आचन्द्रार्क्कार्ण्णवक्षितिसरित्पर्व्वतसमकालिनः पुत्रपौत्रान्वयक्रमो-

६८ पभोग्यः पूर्व्वप्रत्यत्रह्मदेवदायरहितोभ्यन्तर- सिद्धपाय भूमिच्छिद्रन्यास्न **शक-**
नृपकालातीतसंवत्सरशतेषु सप्तसु नवतृतयत्यधिकेषु नन्दनसंवत्सरान्तर्गत-
पुष्य-

६९ मास उत्तरायणमहापर्व्वणि वलिचरुवैश्वदेवाग्निहोत्रतिथिशं (सं) तर्प्प-
णार्त्थ अधोदकादिसर्ग्गेण प्रतिपादितः अस्तोस्यो चितया ब्रह्मदायस्थित्या भंजुतो भोज-

७० यतः कृषयतः प्रविशतो वा न कैश्चिल्यापि परिपन्थना कार्य्या तथागामिभद्र-
नृपतिभिरस्मद्वंश्यैरन्यैर्व्वा सामान्यं भूमिदानफलमवेत्य विद्युल्लोला-

७१ न्यनित्यैश्वर्य्याणि त्रिणाग्रलग्नजलविन्दुचंचल च जीवितमाकलस्यस्वदाय-
निर्व्विशेषोयमस्मद्दायानुमन्तव्यः प्रतिपालयितव्यश्च ।। यश्चाज्ञानतिमिरपट-

७२ लावृतमतिराच्छिद्यमानकं चानुमोदेत स पंचभिर्म्महापातकैस्सोपपातकैश्च
संयुक्तस्यादित्युक्त च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन । षष्ठि वर्षसहस्रा-

७३ णि स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिदः (।*) आच्छेत्ता (त्ता) चानुमन्ता च तान्येव
नरके वसेत् (।।) विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः (।*) कृष्णासर्प्पा हि जायन्ते भूमिदान हरन्ति

७४ चेत् ।। ५५ ।। अग्नेरपत्य प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः (।*)
लोकत्रयं तेन भवेद्ध दत्तं यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ।। ५६ ।। वहुभि-
र्व्वसुधा भुक्ता

७५ राजभिस्सगरादिभिः (।*) यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं
।। ४६ ।। स्वदत्ताम्परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष नराधिप (।*) महीं महिमतां श्रेष्ठ
दानाच्छेयोनुपालनं ।। ५८ ।।

७६ इति कमलदलाम्बुविन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च (।*) अति-
विमलमनोभिरात्मनीर्न्न हि पुरुष॒परिकीर्त्तयो विप्याः ।। ४९ ।। लिखितं
चैत धर्म्माधि-

७७ करणसेनभोगिकेन वालभकायस्थवंशजातेन । **श्रीमदमोघवर्षदेवकमलानुजी-**
विना गुणधवलेन वत्सराजसूनुना ।। महत्तको

७८ गोगूण्णक राजास्वमुखादेशेन दूतकमिति ।। मंगल महश्री ।। ९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाल नरेश धर्मपालदेव का ताम्रपत्र-लेख

खालीमपुर (८वीं सदी)

ओं स्वस्ति । सर्व्वज्ञाताम् श्रियम्-इव स्थिरम-आस्थितस्य वज्रासनस्य बहु-मार-कुल-औपलम्भाः । देव्या महा-करुणया परिपालितानि रक्षन्तु वो दश बलानि दिशौ जयन्ति ।। १ ।।

श्रिय इव सुभाशायाः सम्भवो वारिराशिश=शशधर-इवभासो विश्वम्-आह्लादयन्त्याः । प्रकृतिर्-अवनियानाम् सन्ततेर्-उत्तमाया अजनि दयित-विष्णुः सर्व्वविद्य-आवदातः ।। २ ।।

आसीद-आ सागराद=उर्व्वीम् गुर्व्वीभिः कृती मज्यन ।
खंडित-आरातिः श्लायः श्री-व -ततः ।। ३ ।।

मात्स्य-न्यायम्-अपोहितुम् प्रकृतिभिर-लक्ष्म्याः करन्-ग्राहितः
श्री गोपाल इति क्षितीश-शिरसाम् चूडामणिस्-तत्-सुताः ।
यस्य आनुक्रियते सनातन-यशो-राशिर-दिशाम्-आशयेतिम्ना .... यदि पौमास-रजनी ज्योत्स्न-आतिभार-श्रिया ।। ४ ।।

शीतांशोर-इव रोहिणी हुत- भुजः स्वाह् एव तेजो निधेः शर्वाण्-ईव शिवस्य गुह्यक-पतेर्-भद्रेव तस्य विनोद-भूर्-भुर..... लक्ष्मीर्-इव क्षमा पतेः ।। ५ ।।

ताम्याम् **श्री धर्म्मपालः** समजनि सुजनस्तू आवदानः स्वामी भूमि-पतीनाम्-अखिल-वसुमती मंडलं शासद्-एकः । चत्वारस-तीर मज्जत्-करि-गण-चरण न्यस्त मुद्राः समुद्रा यांत्राम् यस्य क्षमन्ते न भुवन परिखा विश्वग्-आशा जिगीषोः ।। ६ ।।

यस्मिन्-उद्दाम-लीला—चलित वल-भरे दिग-जनाय प्रवृत्ते यान्त्या-इश्व-म्भरायाँ चलित-गिरि तिरश्चीनताम् तद्-वशेन ।
भार-आभुग्न्.......ज्जन्मणि विधुर शिरश-चक्र सहायकार्थम् शेष-ओदस्त दोष्णा त्वरिततरम्-अधो-धस्-तम् एव आनुयातम् ।। ७ ।।

यत-प्रस्थाने प्रचलित-वल-आस्फालनाद-उल्लर्लाभ्रर-धूली पू ँ पिहित सकल व्योमभिर भूतधात्रयाः । सम्प्राप्तायाः परम-तनुतां चक्रवालं फणानाम् मग्न् ओन्मीलन्मणि फणिपतेर-लाघवाद-उल्ललास ।। ८ ।।

विरुद्ध-विषय-क्षोभाद्-यस्य-कोप् - आग्निर और्व्वत् । अनिर्वृति प्रजज्वाल चतुर - अम्भोधिवारितः ।। ९ ।।

ये-भूवन-पृथु-राम- राघव-नल-प्राया धरित्रीभुजस - तान-एकत्र दिदृक्षुण-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एव निचितान सर्वान् समम् वेधसा। ध्वस्त आशेष-नरेन्द्र-मान-महिमा **श्री-धर्म्म-पालः** कलौ। लोल श्रीकरिणी-निवन्धन महास्तम्भः समुत्तम्भितः ।। १० ।।

यासाम् नासीर-धूली धवल-दश-दिशाम् द्राग्-अपश्यन्न इयंताम् धत्ते मान-धात्रि-सैन्य-व्यतिकर-चकितो ध्यान तन्द्रीम् महेन्द्रः ।

तासाम् - अप्य-आहवेच्छा-पुलकित वपुषाम् वाहिनीनाम् विधातुं साहाय्यं यस्य वाह्वोर निखिल-रिपुकुल ध्वंसिनोर-न्-आवकाशः ।। १० ।।

भोजैर-मत्स्यैः समद्रैः कुरु-यदु-यवन-आवन्ति-गान्धार-कीरैर-भूपैर-व्यालोल मौली-प्रणति-परिणतः साधु संगीर्थमाणः ।

हृष्यत्-पञ्चाल-वृद्ध-ओधृत-कनकमया-स्वाभिषेकोदकुम्भो दत्तः श्री कन्य-कुब्जस्-स-ललित-चलित-भूलता लक्ष्म येन ।। १२ ।।

गोपैः सीम्नि वनेचरैर-वनभुवि ग्राम-ओपकन्ठै जनैः क्रीडद्भिः प्रतिचल्वरम् शिशु गणैः प्रत्यापण मानपै । लीला वेश्मनि पञ्जरोदर-शुकैर-उद्गीतम्-आत्म-स्तवम् यस्य्-आकर्ण्णयत सत्रपा-विवलित आनम्रं सद-एव - आनम् ।। १३ ।।

स खलु भागीरथी पथ-प्रवर्त्तमान-नानाविधनौवाटक समपादित-सेतुबन्धु-निहित शैलशिखर-श्रेणि-विभ्रमात् निरतिशय घन-घनाघन-घटा श्यामायमान-वासरलक्ष्मी समारव्ध-सन्तत-जलदसमय सन्देहात् उदीचीन्-आनेक-नरपति प्राभृतीकृत्-आप्रमेय-हयवाहिनी-खरखुर-औत्खात-धूली धूसरित दिगन्तरालात् परमेश्वर-सेवा समायात--समस्त जम्वूद्वीप-भूपाल-अनन्त-पादात-भर-नमद-अवनेः पाटलिपुत्र-समावासित-श्रीमज्-जयस्कन्धावारात् परमसौगतो महाराजाधिराज-**श्री गोपालदेव** पादानुध्यातः परमेश्वरः परमभट्टारको महाराजाधिराज श्रीमान् **धर्म्मपालदेवः** कुशली ।।

श्री पुण्ड्रवर्द्धनभुक्त्य-अन्तः पाति व्याघ्रतटी मण्डल-सम्वद्य महन्ताप्रकाश विशये क्रौञ्चश्वभ्र-नाम-ग्रामो अस्य च सीमा पश्चिमेन शंगिनिका। उत्तरेण कादम्बरी देवकुलिका खर्जूर वृक्षश्-च। पूर्व्वोत्तरेण राजपुत्र-देवट-कृत-आलिः। वीजपूरकं-गत्वा प्रविष्टा। पूर्व्वेण विटक-आलिः खातक यआनिका गत्वा प्रविष्टा। जम्वू-यानिकाम् आक्रम्य जम्वू-यानक(म्)

गता। ततो निसृत्य पुण्याराम विल्व-आर्धश्रोतिका(म्)। ततो विनिसृत्य नलचर्म्म (ट-ओ)त्तरानतम् गता नलचर्म्मटात् दक्षिणेन नामुण्डिकापि (हे)-(सदूम्मिः ?) कायाः। खण्डमुण्डमुखम् खण्डमुखा वेदसविल्विका वेदविल्विकातो रोहितवाटिः पिण्डारविटिजोटिका-सीमा उक्त आरजोऽस्य दक्षिणान्तः ग्राम-विल्वस्य च दक्षिणान्तः। देविका-सीमा विटि। धर्म्मायाा-जोटिका। एवम् माढ़ाशाम्मली नाम ग्रामः। अस्य च_औत्तरेण गंगिनिका सीमा ततः पूर्व्वेण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर्धश्रोतिकया आम्रयानकौलधैयानिकण-गतः ततौपि दक्षिणेन कालिकाश्वभ्रः। अतौ-पि निसृत्य श्रीफल भिषुकम् यावत्=पश्चिमेन ततौ-पि विल्वंगोर्धश्रोतिकया गंगिनिकाम् प्रविष्टा। पालितके सीमा दक्षिणेन काणा द्वीपिका। पूर्व्वेण कोण्ठिया स्रोतः उत्तरेण गंगिनिका। पश्चिमेण जेनन्दायिका एतद-ग्राम संपारीण परकर्म्मकृद्वीपः। स्थालीक्कटविषय सम्वद्य आम्रषण्डिका मण्डल्-आन्तःपाति गोपिप्पली ग्रामस्य सीमाः। पूर्व्वेण उद्रग्राम-मण्डल पश्चिम सीमा। दक्षिणेन जोलकः पश्चिमेन वेसानिक-आख्या खाटिका। उत्तरेण ओद्र ग्राम-मण्डल-सीमा कवस्थितो गो-मार्गः। एषु चतुरुषु ग्रामेषु समुपगतान सर्व्वानि-एव-**राज-राजनक-राजपुत्र-राजामात्य-सेनापति विषयपति-भोगपति षष्ठाधिकृत-दण्डशक्ति-दाण्डपाशिक चौरोद्धरणिक दोस्साधसाधनिक-दूत-खोल-गमामगमिक आभित्वरमाण-हस्त्यश्वगोमहिष्यजा-विकाध्यक्ष नौकाध्यक्ष-वलाध्यक्ष-तरिक शौल्कि-गौल्मिक तदायुक्तक-विनियुक्तआदि राजपादोपजीविनो** न्यांश च आकीर्त्तितान् चाटभट जातीयान् यथाकाल आध्यासिनो **जेष्ठ कायस्थ महामहत्तर-महत्तर दाशग्रामि** आदि-विषयव्यवहारिणः स-करणात् प्रतिवासिनः क्षेत्रकरांश्-च ब्राह्मण-मानना पूर्व्वकं यथार्हम् मानयति वोधपति समाज्ञापयति च। मतम्-अस्तु भवताम्। महासामन्ताधिपति-श्री-नारायणवर्म्मणा दूतक-युवराज-श्री त्रिभुवनपाल-मुखेन वयम्-एवम् विज्ञापिताः यथा अस्माभिर्-म्मातापित्रोर्-आत्मनश्-च पुण्य-आभिवृद्धये शुभस्थल्यान् देव कुलण कारितत-तत्र प्रतिष्ठापित भगवन-नन्न नारायण भट्टारकाय ततप्रति-पालक-**लाटद्विज** देवार्च्चक-आदि पादमूल-समेताय पूज-ओपस्थान-आदि-कर्म्मणे चतुरो ग्रामान् अत्रत्य **हट्टिका तल पाटक समेताः** स्वसीमा-पर्यन्ताः सोद्देशाः सदशापचाराः अकिञ्चित्प्रग्राह्याः परिहृत सर्व्वपीड़ा भूमिच्छिद्र न्यायेन चन्द्र-आर्क क्षिति-समकालं तथ-एव प्रतिष्ठापिताः। यतो भवद्भिस्-सर्व्वैर-इव भूमेर-द्दानफल-गौरवाद् अपहरणे च महानरकपति-आदि-भयाद्-दानम्-इदम्-अनुमोदय परिपालनीयाम्। प्रतिवासिभिः क्षेत्रकरैश्-च् आज्ञाश्रवण-विधेयैर्-भूत्वा समुचित-कर-पिण्डक्-आदि सर्व्व प्रत्याय्-ओपनयः कार्य इति॥ वहुभिरव्वसुधा दत्ता राजभिस्—सगर-आदिभिः :। यस्य यस्य यदा भूमिस्-तस्य तस्य तदा फलम्॥ षष्टिम् वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद :। आक्षेप्ता च्-अनुमन्ता च तान्यइव नरके वसेत॥

स्वदत्ताम् पर-दत्ताम् वा यो हरेत वसुन्धराम् स- विष्ठायां कृमिर्=भूत्वा पितृभिस्-सह पच्यते॥ इति कमलदल आम्वुविन्दु-लोलां श्रियम्, अनुचिन्त्य मनुष्य-जीवित-ञ्च। सकलम्-इदम्-उदाहृतञ्च वुध्वा न हि पुरुषैः पर-कीर्त्तयोविलोप्याः॥ तडित-तुल्या लक्ष्मीस्तनुर्-अपि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

च दीपानल-समा भवो दुःख-ऐकान्तः पर-कृतिम्-अकीर्त्तिः क्षपयताम्। यशान्स्य आचन्द्रार्क नियतम्-अवताम् अत्र च नृपाः करिष्यन्ते वुध्वा यदू-अभिरुचि-तम् किम् प्रवचनैः॥ अभिवर्द्धमान-विजराज्ये सम्वत् ३२ मार्ग-दिनानि ॥१२॥

श्री भोगत्स्य पौत्रैण श्रीमत्सुभटा-सूनुना। श्रीमता तातटेन् इदम् उत्कीर्ण्णं गुण-शालिना ॥।

देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र-लेख

१ ओं स्वस्ति। सिद्धार्थस्य परार्थसुस्थित मतेस्सन्मार्गम(भ्य)-स्यत-
स्सिद्धिस्सिद्धिमनुत्तरां भगवतस्तस्य-प्रजासु क्रिया- त् (।*)
३ यस्त्रैधातुकसत्वसिद्धिपदवीरत्युग्रवीर्योदयाज्जित्वा
४ निर्वृतिमाससाद सुगतस्सर्वार्थभूमीश्वरः ॥ १ ॥ सौभाग्यन्दधदतुलं
५ श्रियस्स-पत्न्या
गोपालः पतिरभवद्वसुन्धरायाः (।*)
६ ष्टान्ते सति कृतिनां सुणि यस्मिन् श्रद्धेयाः पृथुसगरादयोदृप्यभूवन् ॥ २ ॥
विजित्य येना जलधेर्व्वसुन्धराम्विमोचिता
मोधपरिग्रहा इति।
७
सवाष्पमुद्वाष्पविलोचनान्पुनर्वनेषु व(ब)न्धून्ददृशुर्म्मतङ्गजाः ॥ ३ ॥
चलत्स्वनन्तेषु व(ब) लेषु यस्य विश्वम्भरा-
८ यानिचितं रजोभिः ॥
पादप्रचारक्षममन्तरिक्षम्विहङ्गमानां सुचिरम्व (म्व) भूव ॥ ४ ॥* शास्त्रार्थ
भाजा चलतोनुशास्य **वर्ण्णान्प्रतिष्ठापय-**
९ ता स्वधर्म्मे (।*)
श्रीधर्मपालेन सुतेन सोभूत्स्वर्गस्थितानामनृणः पितॄणाम् ॥ ४ ॥ अचलैरिव
जङ्गमैर्यदीयैर्विचलद्भिर्द्विरदैः कदर्थ्यमाना।
१० निरुपप्लवमम्व(म्ब)रं प्रपेदे शरणं रेणुनिभेन भूतधात्री ॥ ६ ॥ **केदारे विधि-**
नोपयुक्तपयसां गंगासमेतेम्वु(म्बु) धौ। गोकर्ण्णादिषु चाप्यनुष्ठि ॥-
११ **तवतान्तीर्थेषु धर्म्याः क्रिया** (।*)
भृत्यानां सुखमेव यस्य सकलानुद्धृत्य दुष्टानिमान्लोकान्साधयतो(ऽ*) नुषङ्ग-
जनिता सिद्धिः परत्रा-
१२ प्यभूत् ॥ ७ ॥
तैस्तैर्दिग्विजयावसानसमये संप्रेषितानां परैः। सत्कारैरपनीय खेदमखिलं स्वां
स्वां गतानां भुवम् (।*) कृत्यं भावयतां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३ यदीयमुचितं प्रीत्या नृपाणामभूत् । सोत्कण्ठं हृदयं दिवश्च्युतवतां जाति-
स्मराणामिव ॥ ८ ॥ श्रीपख(ब) तस्य दुहितुः क्षितिपतिना रा

१४ ष्ट्रकूटतिलकस्य
रण्णदेव्या पाणिर्जगृहे गृहमेधिना तेन ॥ ९ ॥ धृततनुरियं लक्ष्मीः साक्षत्क्षि-
तिर्नु शरीरिणी । किमववनिपतेः कीर्तिम्-

१५ र्त्तथवा गृहदेवता (।*)
इति विदधती शुच्याचा (रा) वितर्कवतीः प्रजाः प्रकृतिगुरुभिर्या शुद्धान्त-
ङ्गणैरकरोदधः ॥ १० ॥ श्लाध्या प्र(प) तिव्रतासौ मु-

१६ क्तारत्नं समुद्रशुक्तिरिव ।
श्रीदेवपालदेवम्प्रसन्न वक्त्रं सतमसूत ॥ ११ ॥ निर्म्मलोमनसि वाचि संयतः
कायकर्म्मनि (णि) च यः स्थितः शुचौ (।*)

१७ राज्यमापनिरूपप्लवम्पितुर्वो (र्वो) धिसत्व इव सौगतं पदम् ॥ १२ ॥
भ्राम्यद्भि र्बिजयक्रमेण । करिभिस्तामेव विन्ध्याटवीमुद्दामप्लवमानवा
(बा) ष्पपय-

१८ (सो) दृष्टाः पुनर्व (ब)न्धवः (।)
कम्वो(बो) जेषु च यस्य वाजिपु(व) भिध्वेस्तान्यराजौजसो हेषामिश्रित-
हारि-हेषितत्वाः कान्ताश्चिरप्रीणिताः ॥ १३ ॥ यः पूर्वं व (ब) लि-

१९ ना कृतः कृतयुगे येनागमद्भर्गव-
स्त्रेतायां प्रहृतः प्रियप्रणयिना कर्ण्णेन यो द्वापरे । विच्छिन्नः कलिना शकद्विषि
गते कालेन लोकान्तरम्

२०
येन त्यागपथस्पृ एव हि पुनर्विस्पष्टमुन्मीलितः ॥ ४ ॥ आ गङ्गागम-महितात्स
पत्नशन्यामासेतु (तोः) प्रथितदशास्यकेतुकीर्त्तेः (।) उर्व्वीमा वरुण

२१ निकेतनाच्च सिन्धो-
रा लक्ष्मीकुलभवनाच्च यो वु(बु) भोज ॥ १५ ॥
स खलु भागीरथीपथप्रवर्त्तमाननानाविधनौवाटकसंपादित-सेतुष(ब) न्धनि-
हित(शै)-

२२ लशिखरश्रेणिविभ्रमात् निरतिशयघनघनाघनघट्टा(टा) श्यामायमानवा-
सरलक्ष्मीसमारव्ध(ब्ध) संततजलदसमयसन्देहात् उदीचीनानेक-

२३ नरपतिप्राभृतीकृताप्रमेयहयवाहिनी-
खरखुरोत्खातधूलीधूसरितदिगन्तरालात् परमेश्वरसेवासमायाता-शेषजंवू
(बू) द्वी-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२४ पभूपाल-
पादातभरनमदवनेः श्रीमुद्गिरिसमावासिश्रीमञ्जयस्कन्धावारात् परमसौ-
गत-परमेश्वरपरमभ (ट्टा) रकम-

२५ हाराजाधिराज**श्रीधर्मपालदेवपादा**नुध्यातः
परमसौगतः परमेश्वरः परमभटा (ट्टा) रको महाराजाधिराजः **श्रीमान्दे-
वपालदेवः**-

२० कुशली । श्रीनगरभूक्तौ राजगृहविषयान्तःपाति अजपुरनयप्रतिव (ब)
द्धस्वसम्ब (म्ब) द्धाविच्छिन्नतलोपेत । नन्दिवनाक । मणि-

२७ वाटक । पिलिपिराकानयप्रतिव (ब) नटिका । अचलानयप्रतिव (ब) द्ध
ह (स्ति) ग्राम । गयाविषयान्तः पातिकुमुदसू त्रवीथीप्रतिव (ब) द्ध पालाम-

२८ कग्रामेषु । समुपगताम् (न्) सर्व्वानेव राजराणक । राजपुत्र । राजा-
मात्य । महाकार्त्ताकृतिक । महादण्डनायक । महाप्रतीहार । महा-

२९ सामन्त ।
महादौःसाधसाधनिक । महाकुमारा (मा) त्य (।*) प्रमातृ । शरभङ्ग (।*)
राजस्थानी (योपरिक) विषयपति (।*) दाशापराधिक । चौरोद्धर-

३० णिक । दाण्डि-
क (।*) दाण्डपाशिक (।*) शौल्किक (।*) (गौ) ल्मिक । क्षेत्रपाल
(।*) कोटपाल । खण्डरक्ष (।*) तदायुक्तक । विनियुक्तक । हस्त्यश्वोष्ट्र-
नौव (ब) लव्यापृ-

३१ तक (।*)
किशोरवडवागोमहिष्यधिकृत । दूतप्रै (ष) णिक ।
गमागमिक । अभित्वरमाणक । तरिक । तरपतिक ।
ओद्र (ड्र)-**मालव-खश-कुलिक । कर्णा**

३२ **ट (हू) ण ।**
चाट्भ (ट*) सेवकादीनन्यांश्चाकीर्त्तिमान् स्वपादपद्मो-पजीविनः प्रतिवा-
सिनश्च व्राम्ह (ब्राह्म) णेत्तरान् महत्तमकुटुम्वि (म्बि) पुरोगमेद्रान्ध्र-

३३ क । चण्डाल-
पर्यन्तान् समाज्ञापयति विदितमस्तु भवताम् यथोपरि-लिखितस्वसम्व (म्ब)
द्धाविच्छिन्नतलोपेत नन्दिवनाकग्राम । मणिवाट-

३४ कग्राम ।
नटिकाग्राम । हस्तिग्राम । पालामकग्रामाः स्वसीमातृणयूतिगोचरपर्यन्ताः
सतलाः सोद्देशाः साम्रमधूकाः सजलस्थलः

३५ सोपरिकराः सदशापराधाः सच्चौरोद्धरणाः परिहृतसर्व्व (पीड़ाः) अचाट-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भटप्रवेशा अकिंचित्प्रग्रा(ह्य) राजकुलीय-
३६ समस्तप्रत्यायसमेता भूमिच्छि-
द्रन्यायेनाचन्द्राक्कक्षितिसमकालम् पूर्व्वदत्तभुक्तभुज्यमानदेव-ब्र(ब) ह्मदेय-
वर्जिता: मया
३७ मातापित्रोरात्मन (श्य) पुण्ययशोभिवृद्धये ॥
सुव(र्ण्ण) द्वीपाधिपम (हा) राज**श्रीबा(बा) लपुत्रदेवेन** दूतकमुखेन
व्यम्विज्ञापिता: यथा मया
३८ श्रीनालन्दायाम्बिहार: कारितस्तत्र
भगवतो (बु(ु)द्धभट्टारकस्य** प्रज्ञापारमितादिसकलधर्म्मने त्रीस्थानस्या-
यार्थे तांत्र(त्रि)-
३९ कवो(बो) धिसत्वगणस्याष्टमहापुरुषपुद्गलस्य चातुर्द्दिशायभिक्षुसंङ्घस्य
व(ब) लिचरूसत्रचीवरिपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभे-
४० षज्याद्यर्थं धर्मरत्नस्य लेखनाद्यर्थं विहारस्य च खण्डस्फुटितसमाधानार्थं
शासनीकृत्य प्रतिपादित (।*) यतो भवद्भि: सर्वैरेव
४१ भूमेर्द्दानिपाल(न*) गौरवादपहरणे च महानरकपातादिभयाद्दानमिद-
मभ्यनुमोप पालनीयं प्रतिवासिभिरण्याज्ञाश्र-
४२ वणिविधेयै-
र्भूत्वा यथाकालं समुचितभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्यायोपनय: कार्य इति ॥
सम्वत् ३९ क(का) र्तिक दिने २१
४३ तथाच धर्मानुशन्सनश्लोका:
व(ब)हुभिर्वसुधा दत्ता राजभि:
४४ सगरादिभि: (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ १६ ॥
४५ स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा(यो) ह(रे)त वसुन्धरां ।
स विष्टायां कृमिर्भूत्वा पितृ:भि:
४६ सह पच्यते ॥ १७ ॥
षष्ठिम्वर्षसह (स्रा)णि स्वर्गे मोदति भूमिद:। आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव
४७ **नरके** वसेत् ॥ १८॥
अन्यदत्तां द्विजाति**भ्यो** यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर। महीं महीसृतां श्रेष्ठ दा-
४८ नाच्छ्रेयो नु पालनम् ॥ १९ ॥
अस्मत्कुलक्रममुदारमुदा(ह)रद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयां ।
लक्ष्मपास्तडित्सलिलवुद्बु (बुद्बु)द (चं)-
४९ चलाया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दानां फलं परयशःपरिपालनं च ॥ २० ॥ इति कमलदलाम्वु (म्बु) वि (बि)
न्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च (।*) सकलमि-
५० दमुदाहृतं च वु (बु) (ध्वा) नहि पुरुषैः
परकीर्त्तयः विलोप्याः ॥ २१ ॥ दक्षिणभुज इव राज्ञः परव (ब) लदने सहाय-
निरपेक्षः । (।*)
५१ दूत्यं श्रीव (ब) लवर्म्मा विदधे धर्माधिकारे ऽस्मिन् ॥ २२ ॥
अस्मिन् धर्मारम्भे इत्यं **श्रीदेवपालदेवस्य** । विदधे श्रीव (ब) लवर्म्मा व्याघ्र-
तटीमण्डलाधिपतिः ॥ २३ ॥
५२ आसीदशेनरपालविलोलमौलिमालामणिद्युतिविवो (बो) धितपाद
पद्मः । शैलेन्द्रवंशतिलको **यवभूमिपालः** श्रीवीरवैरिमथना-
५३ नुगताभिधानः ॥ २४ ॥
हर्म्यस्थलेषु कुमुदेषु मृणालिनीषु शङ्खेन्दुकुन्दतुहिनेषु पदन्दधाना । निःशेष-
दिङ्मुखनिरन्तरलव्ध (ब्ध) गीतिः
५४ मूर्त्तेव यस्य भुवनानि जगाम कीर्त्तिः ॥ २४ ॥
भ्रूभङ्गोभवति नृपास्य यस्य कोपान्नि (भि) न्नाः सह हृदयैर्द्विषां श्रियोपि ।
वक्राणमि-
५५ ह हि परोपघातदक्षा जायन्ते जगति भूषङ्गतिप्रकाराः ॥ २४ ॥ तस्या-
भवन्नयपराक्रमशीलशाली राजेन्द्रमौलिशतदुर्ल्लोलताङ्घ्र-
५६ युग्मः ।
सूनुर्युधिष्ठिरपराशरभीमसेनकर्ण्णार्ज्जुनार्ज्जितयशाः समराग्रवीरः ॥ २७ ॥
उद्भूतमम्व (म्ब) रतलाघ (द्यु) धि सञ्चरन्त्या यत्सेनयावनिरजःप-
५७ टलं पदोत्थम् ।
कण्णानिलेन शनकम्वितीराणगण्डस्थलीमदजलैः शमयाम्व (म्ब)-भूव ॥२८॥
अकृष्णपक्षमेवेदम-भूद्भुवनमण्डलं ।
५८ कुलन्दैत्याधिपस्येव यद्यशोभिरनारतम् ॥ २९ ॥ पौलोमीव सुराधिपस्य
विदिता सङ्कल्पयोनेखि (प्रीतिः) शैलसुतेव मनन्मथरि-
५९ पोर्ल्लक्ष्मीर्मुरेखि ।
राज्ञः सोमकुलान्वयस्य महतः श्रीधर्मसेतोः सुता तस्याभूदवनीभुजोऽग्र महिषी
तारेव ताराह्वया ॥ ३० ॥ माया-
६० यामिव कामदेवविजयी शुद्धोदनस्यात्मजः स्कन्दो नन्दितदेववृन्दहृदयः
शम्भोरूमायामिव । तस्यान्तस्यं नरेन्द्रवृन्दविनमत्पादारवि-
६१ न्दासनः
सर्व्वोर्व्वोपतिगर्व्वखर्व्वणचणः **श्री वा (बा) लपुत्रोऽभवत्** ॥३१॥ **नालन्दागुण-**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वृन्दलुञ्ध (ब्ध) मनसा भक्तया च शौंद्वोदनेर्बु(बुं)ध्वा शैलसरित्तरंगतरलां
६२ लक्ष्मीमिमां क्षोभनाम् ।
यस्तेनोन्नतसौधधामधवलः सङ्घार्थमिश्रश्रिया नानासद्गुणभिक्षुसङ्घवसतिस्त-
स्मिंविहारः कृतः ॥ ३२ ॥ भक्त्या
६८ तत्र समस्तशत्रुवनितावैधव्यदीक्षागुरुं कृत्वा शासन माहितादरतया
यम्प्रार्थ्य दूतैरसौ । ग्रामान् पञ्च विपञ्चितोपरियथोद्देशा-
६४ निमानात्मनः
पित्रो(र्लो)कहितोदयाय च ददौ **श्रीदेवपालं** नृपं ॥ ३३ ॥
यावत्सिन्धोः प्रव(ब)न्धः पृथुलहरजटाक्षीभिताङ्गा च गङ्गा गुर्व्वी
६५ धत्ते फणीन्द्रः प्रतिदिनमचले हेलया यावदुर्व्वी ।
यावच्चास्तोदयाद्री रवितुरगखुरोद्धृष्टचूडामणीस्तस्ता-वत्सत्कीर्त्तिरेषा
प्रभव-
६६ तु जगताम्सत्क्रिया रोपयंती ॥ ३८ ॥

नारायणपालदेव का भागलपुर दानपत्र

ओं स्वस्ति ॥

१ मैत्री कारुण्यरत्न प्रमुदितहृदयः
प्रेयसीं सन्दधानः
२ सम्यक् सम्बोधिविद्या-सरिदम-
-लजल-क्षालिताज्ञानपङ्क ।
३ जित्वा यः काम
कारि-प्रभव मभिभवं शाश्वतीं प्राप शान्तिं
४ स श्रीमान् लोकनाथो जय,
ति दशबलोऽन्यश्च **गोपालदेवः** ॥ (१)
लक्ष्मी-जन्मनिकेतनं समकरो वोढु क्षमः क्ष्मा- रं
पक्षच्छेदभमादु
पस्थितवता मेकाश्रयो भूभृतां ।
६ मर्य्यादा-परिपालनैकनिरतः शौर्य्यालयोऽस्मादभूद्दुग्धाम्भोधिविलास
७ हासि-महिमा **श्रीधर्म्मपालो** नृपः ॥ (२)
७ जित्वेन्द्रराज-प्रभृती-नराती-
नुपार्जिता यन महोदय-श्रीः ।
दत्ता पुनः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

८ सा बलिनार्थयित्रे
चक्रायुधायानति-वामनाय ॥ (३)
रामस्येव गृहीत-सत्यतपसस्तस्यानुरुपो गुणैः
सौमित्रे रुदपा-
९ दि तुल्य-महिमा वाक्पालनामानुजः ।
यः श्रीमान्नय-विक्रमैक-वसति भ्रार्तुः स्थितः शासने
शून्याः शत्रु-पताकिनी-
१० भिरकरो देकातपया दिशः ॥ (४)
तस्मादुपेन्द्रचरितै र्ज्जगतीं पुनानः
पुत्रो बभुव विजयी जयपालनामा ।
धर्म्महि
११ षां शमयिता युधि **देवपालये**
यः पूर्व्वजे भुवनराज्य सुखान्यनैषीत् ॥ (५)
यस्मिन् भ्रातु र्न्निदेशाद्बलवति परितः प्रस्थिते
१२ जेतु माशाः
सीदन्नाम्नैव दूरान्निजपुर मजटादुत्कलानामधीशः ।
आसाञ्चक्रे चिराय प्रणयि-परिवृतो विभ्रदु
१३ च्चेन मूर्द्धा
राजा प्रागज्योतिषाणामुपशमित-समित् संकथां यस्य चाज्ञां ॥ (६)
श्रीमान् **विग्रहपालस्तत्**सूनुरजातशत्रुरि–
व जातः ।
१४ शत्रुवनिता-प्रसाधन-विलोपि-विमलासि,-जलधारः ॥ (७)
रिपवो येन गुर्व्वीणां विपदा मास्पदीक्वताः ।
पुरुषायु
१५ ष-दीर्घाणां सुहृदः सम्पदामपि ॥ (८)
लज्जेति तस्य जलधे रिव जहु-कन्या
पत्नी बभूव कृत-हैहय-वंशभूषा ।
यस्याः शुची
१६ नि चरितानी पितुश्च वंशे
पत्युश्च पावन-विधिः परमो बभूव ॥ (९)
दिक्पालैः क्षितिपालनाय दधतं देहे विभक्ताः
श्रियः
१७ **श्रीनारायणपालदेव** मसृजत्तस्यां स पुण्योत्तरं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यः क्षोणीपतिभिः शिरोमणिरुचा श्लिष्टाङ्घ्रि-पीठोपलं
न्यायोपा-
१८ त्तमलञ्चकार चरितैः स्वैरेव धर्म्मासनं ॥ (१०)
चेतः पुराण-लेख्यानि चतुर्व्वर्ग्ग-निधीनि च
आरिप्सन्ते चतस्त्यानि चरितानि महीभृतः ॥ (११)
१९ स्वीक्वत-सुजन-मनोभिः सत्यापित-सातिवाहनः सूक्तैः ।
त्यागेन यो व्यधत्त श्रद्धेया मङ्गराज कथां ॥ (१२)
भयादरातिभिर्यस्य रण-
२० मूर्द्धनि विस्फूरन् ।
असिरिन्दीवर-श्यामो ददृशे पीत-लोहितः ॥ (१३)
यः प्रज्ञया च धनुषा च जगद्विनीय
नित्यं न्यवीविशद-
२१ नाकुलमात्म-धर्म्मे ।
यस्यार्थिनो सविध मेत्म भृशं कृतार्था
नैवार्थितां प्रति पुनर्व्विदधुर्म्मनीषां ॥ (१४)
श्रीपतिरकृष्ण-कर्म्मा विद्या-
२२ धरनायको महाभोगी ।
अनल-सदृशोपि धाम्ना य श्चित्तन्नलसम श्चरितैः ॥ (१५)
व्याप्ते यस्य त्रिजगति शरच्चद्र-गौरे र्यशो
भि-
२३ र्म्मन्ये शोभान्न खलु विभरामास रुद्राट्टहासः ।
सिहस्मीणा मपि शिरसिजेष्वर्प्पिताः केतकीनां ।
पत्रापीड़ाः सुचिर म
२४ भवत् भृङ्ग-शब्दानुमेयाः ॥ (१६)
तपो ममास्तु राज्यं ते द्वाभ्यामुक्तामिदं द्वयोः ।
यस्मिन् विग्रहपालेन सगरेण भगीरथे ॥ (१७)
स खलु भा-
२५ गीरथीपथ-प्रवर्त्तमान-नानाविध-नौवाट-सम्पादित-
सेतुवन्ध निहित-शैलशिखरश्रेणी-विभ्रमात्, निरतिशय-घन-घनाघट-घटा
२६ श्यामायमान-वासरलक्ष्मी-समारब्ध-सन्तत-जलदसमय-सन्देहात्
उदीचीनानेकनरपति-प्राभृत्तीक्वता-प्रमेय-हयवाहिनी-खर-
२७ खुरोत्खात-धूलीधूसरित-दिगन्तरालात्, परमेश्वर-सेवा-समायाता-
शेष-जम्बूद्वीप-भूपालानन्त-पादात-भरनमदवनेः । श्रीमु-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२८ द्गगिरि-समावासित-श्रीमज्जयस्कन्धावारात्, परमसौगतो महाराजाधिराज-
श्रीविग्रहपालदेव पादानुध्यातः परमेश्वरः पर-
२९ मभट्टारको महाराजाधिराजः **श्रीमन्नारायणपालदेवः** कुशली ।
तीरभुक्तौ । कक्षवैषयिक-स्वसम्बद्धाविच्छिन्न-तलो-
३० पेत-मकुतिका-ग्रामे । समुपगताशेष-राजपुरुषान् । राज-
३१ राजनक । राजपुत्र । राजामात्य । महासान्धिविग्रहिक ।
महाक्षपटलिक । म-
३२ हासामन्त । महासेनापति । महाप्रतीहार । महाकार्त्ताक्विक ।
महा
३३ दौः-साधसाधनिक । महादण्डनायक । महाकुमारामात्य ।
राजस्थानीयोपरिक । दाशापराधिक । चौरोद्धरणिक ।
३४ दाण्डिक । दाण्डपाशिक । शौल्किक । गौल्मिक । क्षेत्रप ।
प्रान्तपाल । कोट्टपाल । खण्डरक्ष । तदायुक्तक । विनियुक्तक ।
हस्त्य-
३५ श्वोष्ट्र-नौबल-व्यापृतक । किशोर । वड़वा । गोमहिषाजाविकाध्यक्ष ।
दूतप्रेषणिक । गमागमिक । अभित्व(र)माण । विषयपति
ग्रामपति । तरिक । गौड । मालव । खश । हूण । कुलिक ।
३६ कर्णाट । ला(ट) । चाट । भट । सेवकादीन् । अन्यांश्चकीर्त्तितान् ।
३७ राजपादोपजीविनः प्रतिवासिनी ब्राह्मणोत्तरान् । महत्तमोत्तम पुरोगमेदा-
न्ध(न्ध्र) चण्डाल-पर्य्यन्तान् । यथार्हं मानयति ।
३८ बोधयति । समादिशति च । मतमस्तु भवतां । कलशपोते ।
महाराजाधिराज-श्रीनारायणपालदेवेन स्वयं-कारित-सहस्या-
३९ **यतनस्य** । तत्र प्रतिष्ठापितस्य । भगवतः शिवभट्टारकस्य ।
पाशुपत आचार्य्य परिषद श्च । यथार्हं पूजा-बलि-चरु-सम-नव-क
४० र्म्माद्यर्थं । शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्काराद्यर्थं ।
अन्येषामापि स्वाभिमतानां । स्वपरिकल्पित विभागेन । अनवद्य-भो
४१ गार्थञ्च । यथोपरिलिखित-मकुतिकाग्रामः । स्वसीमा-तृणयूति-
गोचर-पर्य्यन्तः । सतलः । सोद्देशः । साम्रमधूकः । सजल
४२ स्थलः । सगर्त्तोषरः । सोपरिकरः । सदशापचारः । स-
चौरोद्धरणा । परिहृत-सर्व्वपीड़ः । अचाटभट-प्रवेशः ।
अकिञ्चि-
४३ त्-प्रग्राह्यः । समस्त-भाग-भोग-कर-हिरण्यादि-प्रत्याय-समेतः ।
भूमिच्छिद्रन्यायेनाचन्द्रार्क्क-क्षिति-समकालं यावत् माता-पित्रो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४४ रात्मनश्च पुण्ययशोऽभिवृद्धये । भगवन्तं शिवभट्टारक-
मुद्दिश्य शासनीकृत्य प्रदत्तः । ततो भवद्भिः सर्व्वैरेवानु-
४५ मन्तव्यं भाविभिरपि भूपतिभिर्भूमेर्दानफल-गौरवदप-
हरणे च महानरकपात-भयाद्दानमिदमनुमोद्य पालनीयं प्र-
४६ तिवासिभिः क्षेत्रकरैश्चाज्ञा-श्रवण-विधेयीभूय यथाकालं
समुचित-भाग-भोग-कर-हिरण्यादि-सर्व्वप्रतपायोपनयः का-
४७ र्य्य इति । सम्वत् १७ वैशाखदिने ९ (।।) तथा च धर्म्मा
नुशङ्सिनः श्लोकाः ।
बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभि सागरादिभिः ।()
४८ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं ।।
षष्टि वर्षसहस्त्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः ।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव न-
४९ रके वसेत् ।।
स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धरां ।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ।।
सर्व्वानेतान् भाविनः
५० पार्थिवेन्द्रान्
भूयोभूयः प्राथमतेपष रामः ।
सामान्योऽयन्धर्म्म-सेतु र्नृपाणां
काले काले पालनीयः क्रमेण ।
इति क-
५१ मल दलाम्बु-विन्दुलोलां
श्चिय मनुचिन्त्य मनुष्य-जीवितश्च ।
सकलमिदमुद्राह्लतश्च वुद्ध्वा
नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलो
प्याः ।।
५२ वेदान्तैरप्यसुगमतमं वेदिता ब्रह्मत(ता)र्थं
यः सर्व्वासु श्रुतिषु परमः सार्ङ्वमङ्गैरधीती ।
यो यज्ञानां समुदित महाद-
५३ क्षिणानां प्रणेता
भट्टः श्रीमानिह स गुरवो दूतकः पुण्यकीर्त्तिः ।।
श्रीमता मङ्गदासेन शू(शु) भदासस्य श (सु) नुना ।
इदं सा(शा)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५४ शा(स)न मुत्कीर्ण सत्-समतट जन्मना ॥

सेन वंशी नरेश विजयसेन की देवपारा प्रशस्ति

१. ओं (॥*) ओँ नमः शिवाय ॥
वक्षोंशुकाहरणसाध्वसकृष्टमौलिमाल्यच्छटाहतरतालयदीपभासः ।
देव्यास्त्रपामुकुलितं मुखमिन्दुभाभिर्व्वीक्ष्याननानि हसितानि जयन्ति शम्भोः ॥
—(१*)
लक्ष्मी वल्लभ-
२ शैलजादयितयोरहैतलीलागृहं
प्रद्युम्नेश्वरशव्द(ब्द) लाञ्छनमधिष्ठानं नमस्कुर्म्महे ।
यत्रालिङ्गनभङ्गकातरत(या) स्थित्वान्तरे कान्तयो-
र्द्देवीभ्यां कथमप्यभिन्नननुताशिल्पेऽन्तरायः कृतः ॥ (२*)
यत्सिंहासनमीश्वर—
३ गङ्गाशीकरमञ्जरीपरिकरैर्यच्चामरप्रक्रिया ।
श्वेतोत्फुल्लफणाञ्चलः शिवशिरः सन्दानदामोरगश्छत्रं यस्य जयत्यसावचरमो
राजा सुधादीधितिः ॥ ३ ॥
वंशे तस्यामरस्त्रीवि-
४ ततरतकलासाक्षिणो दाक्षिणात्यक्षोणीन्द्रैर्व्वीरसेनप्रभृतिभिरमितः
कीर्त्तिमद्भिर्व्व(र्ब्ब) भूवे ।
यच्चारित्रानुचिन्तापरिचयशुचयः सूक्तिमाध्वीकधाराः
पाराशर्य्येण विश्वश्रवणपरिसरप्रीणनाय प्रणीताः ॥ ४ ॥
५ तस्मिन् सेनान्वाये प्रतिसुभटशतोत्सादनव्र (ब)ह्मावादी
सव्र(ब)ह्मक्षत्रियाणामजनि कुलशिरोदाम **सामन्तसेनः** ।
उद्गीयन्ते यदीयाः स्खलदुदधिजलोल्लोलशीतेषु सेतोः
कच्छान्तेष्वप्सरोभिर्द्दशरथतनयस्पर्द्धया युद्धगाथा ॥ ५ ॥
६ यस्मिन् सङ्गरचत्वरे पटुरटत्तूर्योपहूतद्विष-
द्वर्गे येन कृपाणकालभुजगः खेलायितः पाणिना ।
द्वैधीभूतविपक्षकुञ्जरघटाविश्लष्टकुम्भस्थली-
मुक्तास्थूलवराटिकापरिकरै र्व्वर्पा-
७ संतदद्याप्यभूत् ॥ (६)
गृहाद्गृहमुपागतं व्रजति पत्तनं पत्तना-
द्वनाद्वनमनुद्रुतं भ्रमति पादपं पादपात् ।
गिरेर्गिरिसुन्दरीसरकपृष्ठलग्नं यशः ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दुर्बृत्तानामयमरि-
८ कुलाकीर्ण्णोकर्ण्णाटलक्ष्मी-
लुण्टाकानां कदनमतनोत्तादृगेकाङ्गवीरः ।
यस्मादद्याप्यविहतवसामान्समेदः सुभिक्षां
हृष्यत्पौरस्त्यजति नदिशं दक्षिणां प्रे (त) भर्त्ता ॥ ८ ॥
उद्गन्धीन्याज्यधूमैर्म्मृगशिशुरसिताखिन्न-
९ वैखानसस्वी-
स्तन्यक्षीणि कीरप्रकरपरिचितव्र (ब) ह्यपारायणानि ।
येनासेव्यन्त शेषे वयसि भवभयास्कन्दिभिर्म्मस्करीन्द्रैः
पूर्ण्णोत्सङ्गानि गङ्गापुलिनपरिसरारण्यपुण्याश्रमाणि ॥ ९ ॥
अचरमपरमातमज्ञानभी-
१० ष्मादमुष्मान्निजभुजमदमत्तारातिमाराङ्गवीरः ।
अभवदनवसानोद्भिन्ननिर्णिक्ततत्तद्गुणनिवहमहिम्नां वेश्म **हेमन्तसेनः** (१०)
मूर्द्धन्यर्द्धेन्दुचूडामणिचरणरजः सत्यवाक्कण्ठभित्तौ
११ शास्त्रंरि-केशाः पदभुवि भुजयोः क्रूरमौर्व्वीकिणाङ्कः ।
नेपथ्यं यस्य जक्ष्मे सततमियदिदं रजपुष्पाणि हारा-
स्ता ङ्कंनूपुरस्त्रक्कनकवलयमप्यस्य भृत्याङ्गनानाम् ॥ ११ ॥
यद्दोर्व्वल्लिविलासलव्ध (ब्ध) गतिभिः शल्यैर्व्विदीर्ण्णेरसां
१२ वीराणां रण (ती) र्थवैभववशाद्दिव्यं वपुर्व्विव (ब्वि) भ्रताम् ।
संसक्तामरकामिनीस्तनतटीकाश्मीरपत्राङ्कितं
वक्षः प्रागिव मुग्धसिद्धमिथुनैः सातङ्कमालोकितम् ॥ १२ ॥
प्रत्यर्थिव्ययकेलिकर्म्मणि पुरः स्मेरं मुखं वि (बि) भ्रतोरे-
१३ तस्यैतदसेश्च कौशलमभूद्दाने द्वयोरद्भुतम् ।
शत्रोः कोपिदधेऽवसादमपरः सख्युः प्रसादं व्यधा-
देको हारमुपाजहार सुहृदामन्यः प्रहारं द्विषाम् ॥ १३ ॥
महाराज्ञी यस्य स्वपरनिखिलान्तः पुरवधू-
१४ शिरोरत्नश्रेणीकिरणसरणिस्मेरचरणा ।
निधिः कान्ते (:) साध्वीव्रतविततनित्योज्ज्वलयशा
यशोदेवी नाम त्रिभुवनमनोज्ञाकृतिरभूत् ॥ (१४)
ततस्त्रिजगदीश्वरात्समजनिष्ट देव्यास्ततोप्यरातिव
१५ (ब) लशातनोज्ज्वलकुमारकेलिक्रमः ।
चतुर्ज्जलधिमेखलावलयसीमविश्वम्भरा-
विशिष्टजयसान्वयी **विजयसेन** पृथ्वीपतिः ॥ (१५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गणयतु गणशः को भूपतींस्ताननेन प्रतिदिनरणभाजा ये जिता वा हता वा।
इह जगति विषे-
१६ हे स्वस्य वंशस्य पूर्व्वः पुरुष इति सुधांशौ केवलं राज शब्दः । ६
संख्यातीतकपीन्द्रसैन्यविभुना तस्यारिजेतुस्तुलां
किं रामेण वदाम पाण्डवचमूनाथेन पार्थेनवा ।
हेतोः खड्गलतावतंसितभुजामात्रस्य येनार्ज्जितं
१७ सप्ताम्भोधितटीपिनद्धवसुधाचक्रैकराज्यं फलम् ।। (७)
स्कैकेन गुणेन यैः परणितं तेषां विवेकादृते कश्चिद्धन्त्यपरश्च कृत्स्नं जगत् ।
देवोयं तु गुणः कृतो व (ब) हुतिथैर्द्धीमान् जघान द्विषो वृत्तस्थानपुषच्चक्कार च
१८ रिपूच्छेदेन दिव्याः प्रजाः ।। १८।।
दत्त्वा दिव्यभुवः प्रतिक्षितिभृतामुर्व्वीमुरीकुर्व्वता
वीरासृग्लिपिलाञ्छितोऽसिरमुनां प्रागेव पत्रीकृतः ।
नेत्थं चेत् कथमन्याथा वसुमती भोगे विवादोन्मुखी
तत्राकृष्टकृपाणधारिणि गता भ-
१९ ङ्ग द्विषां सन्ततिः ।१९।
त्वं **नान्यवीर**विजयीति गिरः कवीनां श्रुत्वाऽन्यथामननरूढ़निगूढ़रोषः ।
गौडेन्द्रमद्रवदपाकृत **कामरूपभू**पं **कलिङ्गमपि**यस्तरसा जिगाय ।। २० ।।
शूरंमन्य इवासि **नान्य** किमिह स्वं **राघव** श्लाघसे
२० स्पर्द्धां वर्द्धन मुञ्च वीर विरतोनाद्यापि दर्प्पस्तव ।
इत्यन्योन्यमहर्न्निशप्रयिभिः कोलाहलैः क्ष्माभुजां
यत्कारागृहयामिकैर्न्नियमितो निद्रापनोदक्लमः ।।२१।।
पाश्चात्यचक्रजयकेलिषु यस्य यावद्गङ्गाप्रवाहमनुधावति
२१ नौविताने ।
भर्गस्य मौलिसरिदम्भसि भस्मपङ्कलग्नोज्झितेव तरिरिन्दुकला चकास्ति ।।२२।।
मुक्ताः कर्प्पासवीजैर्म्मरकतशकलं शाकपत्रैरलावू (ब)
-पुष्पै रूप्याणि रत्नं परिणतिभिदुरैः कुक्षिभिर्द्दाडिमानाम् ।
कुष्माण्डीवल्लरीणां वि—
२२ कसितकुसुमैः काञ्चनं नागरीभिः
शिक्ष्यन्ते यत्प्रसादाद्व (द्ब) हुविभवजुषां योषितः श्रोत्रियाणाम् ।। २३ ।।
अश्रान्तविश्राणितयज्ञयूपस्तम्भावलीं ग्रागवलम्व (म्ब) मानः ।
यस्यानुभावाद्भुवि सञ्चचार कालक्रमादेकपदोपि धर्म्मः ।।२४।।
२३ मेरोराहतवरिसङ्कुलतटादाहूय यज्वामरान्
व्यत्यासं पुरवासिनामकृत यः स्वर्गस्यमर्त्त्यस्य च ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तुङ्गैः सुरसद्मभिश्च विततैस्तल्लैश्च शेषीकृतं
चक्रे येन परस्परस्य च समं द्यावापृथिव्योर्व्वपुः ॥२५॥
दिक्शाखामूलकाण्डं गगनतलम-
२४ हाम्भोधिमध्यान्तरीयं
भानोः प्राक्प्रत्यगद्रिस्थितिमिलदुदयास्तस्य मध्याह्नशैलम् ।
आलम्व(म्ब) स्तम्भमेकं त्रिभुवनभवनस्यकशेषंगिरीणां
स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमतीवासवः सौधमुच्चैः ॥ (२६)
प्रासादेन तवामुनैव हरितामध्वा
२५ निरुद्धो मुधा
भानोद्यापि कृतोस्ति दक्षिणदिशः कोणान्तवासी मुनिः ।
अन्यामुच्छपथोयमृच्छतु दिशं विन्ध्योप्यसौ वर्द्धतां
यावच्छक्ति तथापि नास्य पदवी सौधस्य गाहिष्यते ॥ २७ ॥
स्त्रष्टा यदि स्त्रक्ष्यति भूमिचक्रे सुमेरूमृत्पिण्डविवर्त्तनाभिः ।
२६ तदा घटः स्यादुपमानमस्मिन् सुवर्ण्णकुम्भस्य तदर्प्पितस्य ॥ २४ ॥
वि(बि) लेशयविलासिनी मुकुटकोटिरत्नाङ्कुर-
स्फुरत्किरणमञ्जरीच्छुरितवारिपूरं पुरः ।
चखान पुरवैरिणः स जलमग्न-
२७ पौराङ्गना-
स्तनैणमदसौरमोच्चलितचञ्चरीकं सरः ॥ २९ ॥
उच्चित्राणि दिगम्व(म्ब) रस्य वसनान्यर्द्धाङ्गनास्वामिनो
रत्नालंकृतिभिर्व्विशेषितवपुः शोभाः शतं सुभ्रुवः ।
पौराढ्याश्च पुरीः श्मशानवसतेर्भिक्षाभु-
२८ जोस्याक्षयां
लक्ष्मीं स व्यतनोद्दरिद्रभरणे सुक्ष्मो हि सेनान्वयः ॥ ३० ॥
चित्रक्षौमेभचर्म्मा हृदयविनिहितस्थलहारोरगेन्द्रः
श्रीखण्डक्षोदभस्मा करमिलितमहानीलरत्नाक्षमालः ।
वेषस्तेनास्य तेने गरूडमणितागोन-
२९ स कान्तमुक्ता-
नेपथ्यनृस्थिरिच्छासमुचितरचनः कल्पकापालिकस्य ॥ ३१ ॥
वा(बा) होः केलिभिरद्वितीयकनकच्छत्रं धरित्रीतलं
कुर्व्वाणेन न पर्यशेषि किमपि स्वैनैव तेनेहितम् ।
किन्तस्मै दिशतु प्रसन्नवरदोप्पर्द्धेन्दुमौलिः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३० परं
स्वं सायुज्यमसावपश्चिमदशाशेषे पुनर्द्रक्ष्यति ॥ ३२ ॥
प्रस्तोतुमस्य परितश्चरितं क्षमः स्यात् प्राचेतसो यदि पराशरनन्दनो वा ।
तत्कीर्त्तिपूरसुरसिन्धुविगाहनेन वाचः पवित्रयितुमत्र तु नः प्रयत्नः ॥ ३३ ॥
यावद्वास्तोस्पति-
३१ पुरधुनी भूर्भुवः स्वः पुनीते
यावच्चान्द्री कलयति कलोत्तंसतां भूतभर्त्तुः ।
यावच्चेतो गमयति सतां श्वेतिमानं त्रिवेदी
तावत्तासां रचयतु सखी तत्तदेवास्य कीर्त्तिः ॥ ३४ ॥
निर्ण्णिक्तसेनकुलभूपतिमौक्तिकानामग्रन्थिलग्र-
३२ थनपक्ष्मलसूत्रवल्लिः ।
एषा कवेः पदपदार्थविचारशुद्धवु(बु)द्धरु**मापतिधरस्य** कृतिः प्रशस्तिः ॥३५॥
ध(र्म्म) प्रणप्ता मदनदासनप्ता वृ(बृ)हस्पतेः सूनुरिमां प्रशस्तिं (।*)
चखान वारेन्द्रकशिल्पिगोष्ठीचूड़ामणि राणकशूलपाणिः ॥ (३६)

गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र का कमौली लेख

(वि० स० ११८२)

१ ओं स्वस्ति ॥ अकुण्ठोत्कण्ठ-वैकुण्ठ-कण्ठपीठ-लुठत्-करः । संरम्भः सुरत्-आरम्भे स श्रियः श्रेयसे=स्तुवः ॥ (१) आसीद-अशीतद्युति-वंश-जात-
२ क्ष्मापाल-मालासु दिवङ्=गतासु । साक्षाद्=विवंस्वान्=इव भूरि-धाम्ना नाम्ना यशोविग्रहइत्य=उदारः ॥ (२) तत्-सुतो=भून्=महीचन्द्रश्=चन्द्र-धाम-निभन्-निज्-
३ म्। येन=आपारम्=अकूपार-पारे व्यापारितं यशः ॥ (३)तस्य=आभूत-तनयो नय-ऐक-रसिकः क्रान्तः-द्विषन्-मण्डलो विध्वस्त-अवोद्धत-धीत(र)-योध तिमिरः
४ **श्री-चन्द्रदेवो** नृपः । येन-ओदारतर-प्रताप शमित-आशेष-प्रजोपद्रवं श्रीमद् गाधिपुर-आधिराज्यम्=असमन्=दरि-व्विक्रमेण्=आर्जितम् ॥ (३) **तीर्थानिका-**
५ **शि-कुशिकोत्तरकोसलेन्द्रस्थानी-यकानि** परिपालयत्=आभिगम्य । हेम्=आत्म-तुल्यम्=अनिशान=ददता द्विजेभ्यो येन=आङ्किता वसुमती शत-
६ शस-तुलाभिः ॥(ऽ) तस्य आत्मजो **मदनपाल** इति क्षितीन्द्र चूडामणिर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्विजयते निज-गोत्र-चन्द्रः । यस्य =आभिषेक =कलश -ओल्लसितैः पयोभिः प्रक्षा-

७ लितं कलि-रजः-पटलन्-धरिज्याः । (६) यस्य =आसीद् विजय-प्रयाण-समये तुङ्ग-अचल-ओच्छैश-चलन-माद्यत् कुम्भि-पद-क्रम-आसम-भर भ्रश्यन्-मही-

८ मण्डले । चूडारत्न-विभिन्न-तालु-गलित-स्त्यान-आसृग्-उद्भासितः शेषः पेष-वशाद्-इव क्षणम् =असौ क्रोडे निलीन् आननः ।। (८) तस्माद् =अजाय-

९ त निज्-आयत-वा (बा) हुवल्लि-व (ब) न्ध-आ (व) -रुद्ध-नव-राज्यगजो नरेन्द्रः। सान्द्र आमृत-द्रव-मुचां प्रभवो गवां यो **गोविन्दचन्द्र** इति चन्द्र इव् =आ-

१० म्बु (म्बु) राशेः ।। (८) न कथम् =अप्य =अलभन्त रण-क्षमांस् =तिसृषु दिक्षु गजान् अथ वज्रिणः । ककुभि बभ्रमुर =अभ्रमुवल्लभ-प्रतिभटा इव यस्य घ-

११ टा-गजाः ।। (९) सो-यं समस्त-राज-चक्र-संसेवित-चरणः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर परममाहेश्व (र) निजभुजोपार्जि-

१२ तश्री कन्यकुब्जा (ब्जा) धिपत्य-**श्री चन्द्रदेव**-पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेस्व (श्व) र-परममाहेश्वर-**श्री मदनपा-**

१३ **लदेव**-पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परममाहेश्वर-अश्वपनि (ति) गजपतिनरपतिराजत्रयाधिप-

१४ ति-विविधविद्याविचार वाचस्पति-**श्रीमद्-गोविन्दचन्द्रदेवो** विजयी हलदोय-पट्टलायां महसोणमौअ-ग्रवा (म) निवासिनो मि (नि)-

१५ खिल-जनपदान =अपगतान =अपि (च) राज-राज्ञी-युवराज-मन्त्रि-पुरोहित-प्रतीहार-सेनापति-भाण्डागारिक-अक्षपटलिक-भिषग-मे (नै) मित्तिक्-आन्तःपु-

१६ रिक-दूत-करितुर्गपट्टनाकरस्थानगोकुलाधिकारी-पुरुषांश- = च् =आज्ञापयति वो (बो) धयत्य् =आदिशति च यथा विदितम् =अस्तु भवतां यद्व (थ्) =आपरि-

१७ लिखित-ग्रामः स-जल स्थलः स-लोह-लवण्-आकरः स-मत्स्य-आकरः स-परण्ण् आकरः स-गर्त्त-ओषरः स-मधूक-चूत-वन-वाटिका-विटप-तृण-यूति-

१८ गोच (र) पर्यन्तः स्-ओर्द्ध (व्) -आध त् =चतुर-आघाट - विशुद्धः स्व-सीमा-पर्यन्तः संवत् ११८२ माघ-सुदि १५ स (श) नौ श्री मदप्रतीहार-समावासे सोमग्र-

१९ हण-पर्व्वणि गङ्गायां स्नात्वा विधिवन =मन्त्र-देव-मुणि-मनुज-भूत-पितृ-गणांस् =तर्प्पयित्वा तिमिर-पटल-पाटन-पदु- (टु) महसम् =उष्णरोचिष-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२० म्=उपस्थाय=औषधिपति-शकल-शेखरं समभ्यच्चर्य त्रिभुवन-त्रातुर=
व्वासुदेवस्य पूजां विधाय हविषा हविर्भूजं हुत्वा मातापित्रोर्-आ-
२१ त्मनश=च पुण्य-यशो-भिवृद्ध(द्ध) ये कुशलता-पूत-करतलोदक-पूर्व्वम्=
अस्माभिर=व्व(ब्ब)न्धुल-गोत्राय व(ब)न्धुल-आघमर्षण-विश्वामित्र-त्रि
(प्र) वरा-
२२ य दीक्षित-श्री-पुरुषोत्तम-पौत्राय दीक्षित-श्री वील्हा-पुत्राय महापुरोहित
श्री जागुश्शर्म्मणे आ-चन्द्र अर्क्क शासनीकृत्प (त्य) प्रदन्तो(त्तो)
२३ मत्वा यथादीयमान-**भागभोगकर-प्रवणिकर**-कूटक-प्रभृति-समस्त-आदान=
आज्ञाविधि(धे)यीभूय दास्यथ ॥
भवन्ति च्=आत्र पुण्य-श्लो-
२४ काः॥ भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश-च भूमिं प्रयच्छति। उभौ तौ पुण्य कर्म्माणौ
नियतं स्वर्ग-गामिनौ ॥ शङ्खं भद्र-आसनं च्छ(छ)त्रं वर-आश्वा-व-
२५ र-वारणाः। भूमि-दानस्य चिह्नानि फलम्=स्तत्=पुरन्दर ॥ सर्व्वान्=
एतान्=भाविनः पार्थिव्=एन्द्रान्=भूयो भूयो याचते रामभद्रः। साम-
(आ) न्यो=यं धर्म्म-
२६ सेतुर=न्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥ व(ब)हुभिर=व्वसुधा
दत्ता राजभिः सगर-आदिभिः। यस्य यस्य यदा भूमिस्=तस्य तस्य त-
२७ दा फलम्॥ स्व-दत्तां पर-दत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां। स (व्) इष्ठायां कृमिर=
भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ श्री-वास्तव्य-कुलो
२८ द्भूत-कायस्थ-वोल्हण-सूनुना । लिखितस्=ताम्र-पट्टो-यं कीठणेन नृप-
आज्ञ=इति ॥ छ ॥

कन्नौज राजा विजयचन्द्र का कमौली लेख

१ अकुंठोत्कंठ वैकुंठ-कंक (ठ)थी(पी) ठ-लुठत्-करः। संरंभः सुरत-आरंभे स
श्रियः श्रेयसे=स्तु वः॥ (।) (आ) भी (सी) द्=असी(शी) तद्युति-वंश-
जात् (क्ष्म्) आपाल-माला सु दिवं गतासु। साक्षाद्-विवस्वान्=इव
२ (भू)रि धाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्य=उदारः ॥ (२) तत् (सु) तो=
भून्=महीचं(द्र)श=मृद्र-धाम निभं निजं (।)
येन=आपार(म्=अ)क्व (कू) पार-पारे व्या(पा)रितं भ(य)शः (३)
तस्य आभूत=तन यो नय-ऐ(क) रसिकः क्रीनथि
३ षन्-मंडलो वि(ध्व)स्त्-ओद्य(द्ध) त-वीर-ओध तिमिर(-:) **श्री चंद्रदेवो**
नृपः। येन ओदारतर-प्रता (प)-स(श) मित-आशेष-प्रजोपद्रवं श्रीमद्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गाधिपुर-आधिगा(रा)ज्यम् =असमं दोर-विक्रमेण =आर्जितं ।।(४) तीर-थानी का-

४ शि-कुशिक-आ(ओ)त्तरकोशल-(एं) द्रस्था (नी) यकानि परिपालयत = आवि(धि)गम्य (।) हेम =आत्म-तुल्यं अनिशां (शं) ददता द्वि (ए)भ्यो येन =आंकिता वभु(सु)मनी(ती) स(श) तशलु (स् =तु) लाभिः ।।(ऽ)

५ तस्य =आत्मजा (जो) **मदनपाल** इति क्षिती(म्)द्र चूडाम (णि) र् = व्विजयते निज-गोत्र-चंद्रः । यस्य =आ(भि)षेक -कलस-ओल्लसितैः पयोभिः (प्र) क्षालितं(क) लि रजः-पटलं धरित्र्याः ।। (६) यस्(य) =आ-

६ सीद् =विजय-प्रयाण-समये तुंग् =आचल् -वीच्चै (श्-च) लन्-माद्यत् कुंभि-पद-(क) म् आ (स)म-भर-भ्र(श्य) न् महीमंडले । चूडारत्न-विभिन्न-तालु-म(ग)लित-स्त्यान-आसृग्-उद्भासितः शेषः पेष-वशाद्-इव (क्ष)-

७ णम् =असा(सौ) क्रोड (?) निलीन्-आननः ।। (७)। त(म्म) आद = अजायप(त) निज-आयत-वा(वा) हुवल्लि-वं(वं) ध्-आव(र्)द्ध-नव-राज्य गजो नरे(ं)द्रः । सां(द्र)-आमृत-द्रव-मुरां(चां) प्रभवो गवां यो **गोविन्दचंद्र** इति-च(ं)द्र इव् =आंवु (बु)रासः (शेः) ।। (८) ।।

८ (न)कथम् =अप्य =अलभंत तलकुमांस् =तिश्रिपु(षु) दिक्षु गजान् =अ (थ) वज (र्) इणः । (क) कुभि बभ्रभुर =अभ्रमुवल्लभ-प्रतिभटा इव य (स्य) घटा-गजाः ।। (९)। (अ)जनि **विजयचंद्रो नाम** तस्मान् =नर(एं) द्र (:) सुरप-

९ तिर =इव भूभृत्-पक्ष-विच्छेद-दक्षः ।

भुवन-दलन-हेला-हर्म्य-हम्मीर-नारी-नयन-जलद-धा(र्) आ-शांत-भूलोक-ताषः (पः) ।। (१०) यस्मिं (श् =च) लत्य उदधिनेभि-मही =जयाय माद्यत-करींद्र-गुरु-भार-नि-

१० पीथि(डि)त्-एव(।) त्त(प्र) जापति-पदं शरण-आर्थिनी (भू)स =त्व(ं) गत्-तुरंग-निवह्-आ(ओ)त्थ-रजश-छलेन ।। (।।) सो =यं समस्त-राज-ल(च)क्र-संस (ए) धि(वि)न (त)चरणः । स व(च) परमभट्टारक-महाराजाधि

११ राज-परम (`) श्वर परममाह (`) श(व्) र-निजभुज(ओ)पार्जित-**कान्य-कु(ब्जा(ब्जा))** धिपत्य-**श्री चंद्रद(१)**व-पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परमभट्ट (१) श्(व्)र-**श्री(म)दनपाल**-देव-

१२ पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परममाह(`) **श्वर-**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अश्वध (प) तिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति विविधविद्याधि विचार वाचस्पति- **श्री गोविंदचंद्रदेव-**

१३ पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परममाह (ˋ) श्वर अश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति-विविध-विद्याधि (वि) चार वाच-स्पति-**श्रीमदविजयचंद्र-**

१४ **देवा (बो)** विजयी ।। जिआवै-पट्टलायां हरिपुर-ग्राम-ि न (वा) सिना (नो) निषि (खि) ल-जनपदान =उपगतान् =अपि च राज-रा (ज्ञी)-मन्त्रि-पुरोहित-प्रतीहार-सेनापति-(भाण्डा)-

१५ गारी (क) अक्षपटलिक-भिषक (ग्)- नैमित्तिक-आंतःपुरि (क)-दू) (त)-करितुर्गपट्टनाकर-स्थानगोकुलाधिकारी-पुरु (षा) न् =आ (क्ष) पयति वो (बो) धयति (त्य =) आदिशति (च) यथा-

१६ विदिवय =अस्तु भवतां व (य) श् (थ्) ओपरि (लि) खित =ग्रामः स-जल-(स्थल): स-(लोह)-लवल् (ण्) आकरः स गर्त्त ओय (ष) रः । (स)-मत्स्य-आकरः स-आम्वर (म्र)-(मधूक): पि (वि) टप-(वा) टि (का)-सहितः।

१७ तृण-दा (यू) ति-गोचर-प (र्) यन्तः स्-आ (ओ) र्ध्व-आधश =चतुर-आघाट्-विसु (शु) द्धः (स्व-सी) मा-पर्यन्तः । (च) तुरव्वि (˙) शत्यधि (क)-(द्वा) दशास (श) त स (˙) व (त्स) रे स (˙) का =पि सं १२२४ (आ) षाढ़-ना (मा) स (सि) (शुक्ल) ?- पक्षे) दशाम्यां

१८ (ति) थौ रवि-दिने स (च-ए) ह **श्रीमद् (वा) राणस्य (आं)** गंङ्गाया (˙) स्नात्वा द (ˋ) व-श्री-(श्रच) **आदिकेशवसन्निधौ** विधिवत् =मन्त्र-दे (व) मुनि-मनुज-भूत-प् (ि) तृ-गणां (स =त) र्प्पयित्वा तिमिर-पटल-पाटन-पटु-

१९ महसम् =उष्णारा (रो) वि (चि) षम् =उप (स्थ) आय-आषधिपति-शकल-ले (शे) ष (ख) रं समभ्यर्च्य त्रिवु (भु) वन-त्रातुर =(भ) गवतः कृष्णस्य पूजां विधाय प (ˋ) तस्य =एव दीक्षा-ग्रहण-प्रस्तावे (वे) मातापित्रोर = आत्मनश् =च पु-

२० ण्य-यशो-धि (भि) वृद्धयेऽस्म (त्-स) म्मत्या समस्तराजप्रक्रिय (ओ) पेत-रा (यौ) व (रा) ण्याभिषि (क्त)-माघ (हा) राजपुत्र-**श्री-जय (च्च) न्द्रर्** (ˋ) व् (ˋ) न गोकर्ण्ण-(कु) शलता-पूत-करतल-ओदक-पू (र्व्व) म् =आ-

२१ (चंद्र-आर्क) पा (या) वत (त्) वं (बं) धुल-गोत्राय । व (बं) धुल- । (अ) घमर्षण-विसा (श्वा) मि (त्र) त्रिःप्रवराय । दीक्षित-पुण्स-(प्र) पौत्राय । दीक्षि (ते) वील्हा-पौत्राय । मल (हा) पुरा (रो) हित दी (क्षित) श्री-जागू-पुत्राय । वैष्णव

२२ (पू) जाविधि (गु) रवे। महापुरो (हि) त-श्री-प्रहराजस-(श्र) मण् (ˋ)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्रा (ब्रा) ह्मणाषा (य) शासनीक्त (त्य) षृ (प्र) दत्ता (त्तो) मत्वा षु (थ) थादी (य) ग (मा) धि (न)-(भागभो) गकर (-प्र) वणिकर-ज (जा) ल (त) कर-गोकर-तुरुष्क-

२३ (दं) ड-क (कु) मा (म) रगदियाणक-आदि समस् (त्) अ-नियतानि (य) त्-आदायान् आ (ज्ञा) विध (`) यी-(भूय) दस्यथ = (`) ति ॥ स (भ) व (`) ति च्-आत्र धग् (र्मं) आनुशां (शा) सिनः प (ौ) राणिक-श्ल (ओ) काः। (जैसा ऊपर के लेख में उल्लिखित)

२१ .... लिश्वि (खि) तम् = इदं ठकुव श्री-कुसुमपालेन प्रमाणम् = इवि (ति) ॥

परमार राजा भोजदेव का वंसवर अभिलेख

(वि० स० १०७६)

१ ओं जयति व्योमकेशौसौ यः सग्गीय विभर्त्ति तां।
ऐंदवीं शिरसा लेखां ज-
२ गद्वीजांकुदाकृतिं ।१। तन्वंतु वः स्मराण्तेः कल्याणमनिशं जटा ॥ क-
३ ल्पांत समयोद्दाम तडितद्वलयपिंगलाः ।२। परमभट्टारक
महारा—
४ जाधिराज परमेश्वर श्री सीयक देव पादानुध्यात परमभट्टारक
५ महाराजाधिराज परमेश्वर **श्री वाक्पति राजदेव** पादानुध्यात
परम भ-
६ ट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **सिंधुराजदेव** पादानुध्यात
७ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर **श्रीभोजदेवः** कुशली।
८ स्थली मंडले घाघ्रदोरभोगांतः पातिवट पद्रके शमुपग-
तान्समास्तराजपु-
९ रुषान्ब्राह्मणोत्तरान्प्रतिनिवासि जनपदादींश्च समादिशत्य सु
वः संविदितं ।
१० यथाऽस्माभिः **कोंकणविजयपर्व्वणि** श्नात्वा चराचर गुरुं भगवन्तं
भवानिपति
११ समभ्यर्च्च्य संसारस्यासारतां दृष्ट्वा। वाताभ्रविभ्रममिदं
वसुधाधिपत्यमापातया
१२ त्रमधुरो विषयोपभोगः। प्राणास्तृणाग्रजलविंदुसमा नराणां
धर्मः सखा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३ परमहो परलोक याने ।३। भ्रमत्संसार चक्राग्रधारा धारामिमांश्रिय
प्राप्य ये न
१४ ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फलं ।४। इति जगतो विनश्वरं स्वंरुपमाकलय्योपरि
१५ स्वहस्तो श्रीभोजदेवस्य ।
१६ लिखितग्रामात भूमिवर्तन शतैकं निः १०० स्वसीमातृण
गोचर यूति पर्यंतं हिरण्यां
१७ दायसमेतं सभागभोग सोपरिकर सर्व्वादाय समेतं ब्राह्मण भाइलाय
वामन
१८ सुलाय वशिष्ठ सगोत्राय वाजिमाध्यंदिन शाखायैक प्रवराय
च्छिंच्छास्थान विनिर्गतपूर्व्व-
१९ जाय मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययसोभिवृद्धये अदृष्ट
फलमंगीकृत्य चन्द्राक्कार्ण्ण
२० वक्षिति समकालं यावत्परया भक्त्या शाशनेनोदक पूर्व्वं
प्रतिपादितमिति मत्वा त-
२१ न्निवासि जनपदैर्यथा दीयमान भागभोगकर हिरण्यादि क-
माज्ञा श्रवणविधेयै
२२ भूर्त्वा सर्व्वमस्मै समुपनेतव्यमिति ।। सामान्य
चैतत्पुण्यफलं वुध्वाऽस्मद्वंशजैरन्यै
२३ रपि भावि भोक्तृभिरस्मत्प्रदत्त धर्म्मादायोयमनुमंतव्य ।
पालनीयश्च ।। उक्तं च व–
२४ हुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिः, सगरादिभिः यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य
तदा फलं
२५ यानीह दत्तानि पुरानरेन्द्रैर्द्दा नानि धर्म्मार्थ दशस्कराणि ।
निर्म्माल्य वांति प्रतिमानि
२६ तानि को नाम साधुः पुनराददीत । ६ । अस्मत्कुलक्रममुदार
मुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमि
२७ दमभ्यनुमोदनीयं । लक्ष्म्यास्तडित्सलिल वुद्बुद चंचलाया
दानं फलं पर यशः परिपाल
२८ नं च । ७ । सर्व्वानितान्भाविनः पार्थिववेन्द्रान्भूयो भूयो याचते
रामचन्द्रः
२९ सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः । ८ ।
३० इति कमल दलांवुविंदुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य जीवितं च ।
सकलमिदमुदा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३१ हृतं च बुध्वा नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्या इति ।
सम्वत् १०७६ माघ शुदि ५ ।

३२ स्वयमाज्ञा । मंगलं महाश्री । **स्वहस्तोयं श्रीभोजदेवस्य**

परमार अभिलेख

(जयसिंह की उदयपुर प्रशस्ति)

(वि० स० १११२)

१ ओं (।।) जयति व्योमकेशोसौ यस्सर्गाय विभर्त्तितां । ऐन्दवीं सि(शि) रसा लेखां जगद्बीजां

२ कुराकृति ।। तन्वन्तु (न्तु) वः स्मरारातेः कल्याणमनिशं जटाः । कल्पान्त समयोद्दाम तडिद्व-

३ लयपिङ्गलाः ।। परम भट्टारकमहाराजाधिराज परमेश्वर **श्री वाक्पति**

४ **राजदेव** पादानुध्यात परम भट्टारकमहराजाधिराज परमेश्वर श्री **सिन्धुदेव** पादानुध्यात

५ परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **भोजदेव** पादानुध्यात परमभट्टारक

६ महाराजाधिराज परमेश्वर **श्री जयसिंहदेवः** कुशली ।। पूर्ण्णा पथक मंडले म(क्तु) त्याग्राम

७ द्विचत्वारिंश दन्तः पाति भीम ग्रामे समुपगतान्समस्त राज पुरुषान्वा(व्रा)ह्म -णोत्तरान्द्र

८ ति निवासि पट्टकिल जनपदारीश्च समादिशत्यस्तु वः संविदितं ।। यथा श्रीमद्धा (द्धा) रा व

९ स्थितैरस्माभिः स्नात्वा चराचरगुरूं भगवन्तं भवानीपतिं समभ्य-र्च्चर्य संसारस्थासारतांदृष्ट्वा ।

१० वाताभ्र विभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमपात मात्र मधुरो विषयोपभोगः । प्राणांस्तृणा-

११ ग्र जलविन्दु समानाराणां धर्म्मः सखा परमहो परलोकयाने ।। भ्रमत्संसार चक्राग्रधा-

१२ रा धारामिमां श्रियं । प्राप्य येन ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फलं ।। इति जगतो विनश्वरं

१३ स्वरूपमावलम्प्यो परिलिखित ग्रामोयं स्व सीमा तृणगोचर यूतिपर्यन्तः सहिरण्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४ भागभोगः सोपरिकरः सर्व्वादाय समेतस्च (श्च) श्री अमरेस्व (श्व) रे पट्टशाला ब्राह्मणेभ्यः

१५ स्व हस्तोयं श्री जयसिङ्घ देवस्य ॥

द्वितीय-भाग

१६ भोजनादिनिमित्तं मातापित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धयेऽदृष्ट फलं अंगी-

१७ कृत्य चन्द्रार्काण्णर्वक्षिति समकालं यावत्परया भक्तया शाश(स)ने नोदक-पूर्व्वं प्रतिपादित इति

१८ मत्वा तन्निवासि पट्टकिल जनपदैपथादीपमान **भागभोगकर हिरण्यादिकं**

१९ **देवब्राह्मणभुक्ति वर्ज्जमाज्ञा** श्रवणविधेयैर्भूत्वा सर्व्वमेभ्यः समुपनेतव्यं ।

२० सामान्य चैतत्पुण्यफलं बृद्धाऽस्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभि-
-रस्मत्प्रदत्तधर्म-

२१ दायोय मनुमन्तव्यः पालनीयश्च उक्तं च । वहुभिर्व्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः

२२ यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदाफलं ॥ पानीय (ह) दन्तानि पुरानरैन्द्रै-र्द्दत्ता(ना)

२३ नि धर्म्मार्थ यशस्कराणि । निर्म्माल्य वान्ति प्रतिमानी तानि कोनाम साधुः पुनराददीता ॥

२४ अस्मत्कुलक्रममुदार मुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिद मम्यनुमोदनीयं ।
लक्ष्म्यास्तडित्स—

२५ लिल बुद्बुद चंचलाया द्दानंफलं पर यशः परि पालनं च । सर्व्वानेतान्भाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयो भूयो

२६ याचते रामभद्रः । सामान्योयं धर्म्म सेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भि ॥ इति कमलदलाम्बु विन्दुलोलां
श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य जी-

२८ वितं च । सकलमिदमुदाहृतं च वृद्धा नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्या इति ॥

२९ संम्वत् १११२ आषाढ़ वदि १३ (।) स्वयमाज्ञा ।
मङ्गलंमहाश्रीः । **स्वहस्तोयं**

३० **श्री जय सिङ्घदेवस्य**(॥)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चंदेलवंशी राजा धंग का खजुराहो लेख

१ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।
दधानानेकां यः किरि पुरुष सिंहोभयजुषं
तदाकारोच्छेद्यां तनुमसुर मुख्यानजवरात् ।
जघान त्रीनुग्रान्जगति कपिलादीनवतुवः
सेवेकुण्ठः कण्ठध्वनि चकित निःशेष भुवनः ।।—(१)
पायासु र्व्वलिवञ्चनव्यतिकरे देवस्यविक्रान्तयः
सद्यो विस्मित देवदानवनुतास्तिस्त्रस्त्रिलेलोकीं
२ हरेः ।
यासु ब्रह्मवितीर्ण्णभर्धसलिलंपादार विन्दच्युतं
धत्तेद्यापि जगत्त्रैयक जनकः पुण्यसमूर्द्धा हरः ।।
देवः पातुस वः पयः कणभृति व्योम्नीव ताराचित (२)
दैत्यासिव्रणत्नांच्छने दिविसदः संत्यज्य सर्वानपि ।
तस्मिन्नउजन शैल भित्ति विपुले वक्ष(:) स्थले यस्य ताः
येतुर्मन्दरसङ्ग संभ्रम वलल्लक्ष्मीं कटाक्षच्छटाः ।। (३)
गंभीरो—
३ म्वुधयः शशांक रुचिमान्भास्व
त्पतापो ज्ज्वलो
धीरो धात्रिमहान्मही धरवराः कल्पद्रुमास्त्यागवान् ।
आकल्पादविकल्प निर्म्मल गुण ग्रामाभिरामः प्रभुः
सत्यं व्रूतयदि क्वचित्पुनरभूत्तुल्योयशो वर्मणः ।। (५)
प्रधानादव्यक्तादभवदविकारादिह महान-
हंक्यरस्तस्मादजनि जनि**तोपग्रह**गणः ।
ततस्तन्मात्राणि प्रसव
४ मलभन्त क्रमवशादथैतेभ्यो भूतान्यनुभुवनेमम्यः प्रववृते ।। (५)
इहाद्यो विधानां कत्रिरखिल कल्प व्युपरतौ-
परसाक्षीदेवस्त्रिभुवन विनिर्माण निपुणः ।
स विश्वेषामीश(:) स्मितकमल कि **उजलक** वसति-
र्महिम्नास्वेनैव प्रथममथ वेधाः प्रभुरभूत् ।। (६)
लस्माद्विश्वसृजः पुराण पुरुषादाम्नाय धाम्नः कवे र्ये भूवन्मु-
५ नयः पवित्र चरिताः पूर्व्वे मरीच्यादयः ।
तत्रात्रिः सुषुवे निरन्तर तपस्तीव्र प्रभावं सुतं-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चन्द्रात्रेयमकृत्रिमोज्वलतर ज्ञानप्रदीपंमुनिं ।। (७)
अस्तिस्वस्ति विधायिनः स जगतां निःशेष विद्याविद-
स्तस्यात्मोपनता खिल श्रुति निधे र्व्वन्शः प्रशंसास्पदं ।
यत्राभून्नपराक्रमेण लघुता नो चाटुकारोद्धति
नाल्पाप्यंतरसा-
६ रतानच फल प्राप्तिः(:) क्षयायात्मनः ।। (८)
त्रस्तत्राण प्र(व)गुण मनसां सर्व्वं संपत्पदाना
मुद्युक्तानां कृतकृतयुगाचार पुण्यस्थितीनां
तत्रत्यानाममलयशसां भू भुजां का प्रशंसा-
येषां शक्तिः सकल धरणी ध्वंसने पालने वा ।। (९)
तत्रक्षत्र सुवर्ण सारनिकषग्रावायश्चन्दन
क्रीडा लंकृत दिक्पु-
७ रन्ध्रि वदनः श्रीनन्नुको भून्नृपः ।
यस्यापूर्व्वपराक्रम क्रमनमन्निःशेष विद्वेषिणः
संभ्रान्ताशिरसा वहन्नृपतयः शेषामिवाज्ञां भयात् ।।
यस्यानंदित वंदि रचितस्तोत्रक्रिया प्रक्रमा-(१०)
त्सक्रान्तम्वहुवैरि वर्ग जयिनः कंदर्पकल्पाकृतेः ।
नामक्षाम तनूभृतां मृगदृशां सद्यो विधत्ते पदं स्वान्तेषु-
८ द्विषतां चराशिषु वलौद्वेल्कव्यमव्याहतां ।। (११)
तस्मादभूदाजिपराजितारेः श्रीवाक्यपतिर्वाक्पतितुल्यवाचः
यस्यामला भ्राम्पतिभुानुनाभिः सहैव लोकत्रितयेपिकीर्ति । (१२)
यस्यामलोत्पन्ननिषण्ण किरात योषि
दुद्गीत तद्गुण कलध्वनिरम्यसानुः ।
क्रीडा गिरिः शिखर निर्झर वारि पात झात्का-
९ र ताण्डवितकेकिगणः सविन्ध्यः ।। (१३)
तस्माद्विस्मय धाम्नः क्षीराब्धेः चन्द्रकौस्तुभौ यद्वत् ।
द्वावात्म जाव भूतां जयशक्ति र्विजयशक्तिश्च ।। (१४)
तयेर्द्वियोरम्यमित प्रतापदावाग्नि दग्धाहितकाननामि ।
कर्माणि रोमांच जुषः समेताः समूर्द्धकम्पंक्षितिपास्तुवन्ति ।। (१५)
तत्रानुजन्मातनयं राहिल्नाख्यमजीजनत् । निद्राद-
१० दरिद्रतां यान्ति यम्विचिन्त्य निशिद्विषः ।। (१६)
भीम भ्राम्य दसि (त्लु) चिस्त्रबदस्टक्संम्मुदिताज्याक्रिये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ज्यानिर्घोषवषटपदे क्रमचरत्संरव्धयोधार्त्विजि ।
अश्रान्तः समराध्वरे प्रतिहत क्रोधानलोद्दीपिते
वैरोदर्चिषियः पशूनिवकृती मन्त्रैर्जुहावद्विषः ॥ (१७)
श्रीहर्ष भूप मथ भूमि भृताम्वरिष्ठः
सोसूत कल्पतरुकल्प मन-
११ ल्पसत्वः ।
अद्यापियस्य सुविकासियशः प्रसून
गन्धाधिवास सुरभीणि दिगन्तराणि ॥ (१८)
यत्र श्रीश्चसरस्वती च सहिते नीति क्रमो विक्रम-
स्तेजा सत्त्वगुणोज्ज्वलं परिणता क्षान्तिश्चनैसर्गिको
सन्तोषोवि जिगीषुता च विनयो मानश्चपुण्यात्मन-
स्तस्यानन्त गुणस्य विस्मय निधेः किन्नाम वस्तुस्तुमः ॥ (१९)
भीरुर्द्धर्मापराधेमधुरिपु-
१२ चरणाराधने यः सतृष्णः
पापालपेनभिज्ञो निजगुणगणनाप्रक्रमेष्वप्रगल्भः ।
शून्यः पेशुन्य वादेः नृतवचन समुच्चारणे जातिमूकः
सर्व्वत्रैवं प्रभाव प्रथित गुणतया नाम (कस्तू) यतेसौ ॥ (२०)
सोनुरूपां सुरुपाङ्गः कञ्चुकाख्यामकुण्ठधीः ।
सवर्णाम्विधिनोवाह चाहमानकुलोद्भवां ॥ (२१)
यस्यापतिव्रत तुलामधिरोढु मीशा-
१३ नारुन्धती गुरुतरामभि मानिनीति ।
पत्युः समीहित विधान परापिसाध्वी-
कार्श्यन्तथा परमगादति लज्जितेव ॥ (२२)
गौडक्रीडा लतासिस्तुलित खसवलः **कोशलः** कोशःलाना
नश्यत्कस्मीर वीरः शिथिलित मिथिलः कालवन्मालवानः ।
सीदत्सावद्यचेदिः कुरूतरुषु मरुत्संज्वरो **गुर्जराणां**
तस्मात्तस्या स ज जे नृपकुल-
१४ तिलकः श्री **यशो वर्मराजः** ॥ (२३)
स दाता राधेयः स च शुचि वचाः पांडुतनयः
स शूरः पार्थोपि प्रथित महिमानः किमपिते ।
व्यतीता किं ब्रूमो यदिपुनरिहस्युः स्वचरिते
ह्रियानम्रीकुर्युंर्वदनमवलोक्यैनमधुना ॥ (२४)
त्रस्त त्रावरित तत्रभूमृति नृणां क्लेशाय शस्त्रग्रहः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कामं दातरि सिद्धकेलि सुमनस्तल्पाय कल्पद्रुमाः ।
वित्तेशः पर-
१५ मर्थ वृद्धिविधुर स्वान्तो विलासी स चे-
दास्ये तस्य सतीन्दुरुत्पलवन प्रीत्यैदृशामुत्सके ।। (२५)
यस्योद्योगे वलानां प्रसरति रजसि व्याप्त भेदोन्तराले
स्वः सिन्धुर्व्वद्धरोधाः पिहितरुचिरभूद्भानुरादर्शरम्यः ।
सम्यग्देवेन्द्रदन्ती मुदमधितवियत्साभ्रमालोच्यहन्साः
सोत्कण्ठास्तस्थुरासीन्नयन दश शती कूणिता वृत्तशत्रोः ।। (२६)
अन्योन्या-
१६ वद्धकोप द्विपकलह मिलद्दन्त दण्डाभिघात-
प्रोद्यज्ज्वालाकलाप प्रसृतहुत भुजि ज्याघन ध्वानभीमे ।
पीतासृक्षीवरक्षः प्रमदकलकल लह्लादरौद्रप्रहासे
-धीरं भीतेव लक्ष्मीः समर शिरसि यं संभ्रमादालिलिङ्ग ।। (२७)
क्रुध्यद्दुर्द्धर धन्वि मार्ग्गण गण प्रारब्धरक्षाक्रियं ।
उत्तुङ्गाञ्जनशैल सन्निभ चलन्मत्ताद्विपेन्द्रस्थित-
विख्यात क्षितिपालमौ
१७ लि रचना विन्यस्तपादाम्बुजं
संख्ये संख्यवलं व्यजेष्टगतभीर्यश्चेदिराजं हठात् ।। (२८)
लक्ष्मच्छायाकलुषवपुषः कान्तिमद्द्रमिन्दो
रन्या यत्त स्फुरित विधुरात्सुन्दरं चार विन्दत् ।
यस्या.................... (चार्हवृत्ते)
संभ्रान्ताभिः कथमपि मुखं वीक्ष्य वैरि प्रियाभिः ।। २९ ।।
गङ्गा निर्झर घर्घर ध्वनिभय भ्राम्यत्तुरङ्गव्रजाः
सद्यः सुप्त विवुद्ध केस-
१८ रि रव त्रस्यत्करीन्द्राकुलाः ।
यत्सैन्य प्रतिकल्पपादपमुमालूनप्रसूनोच्चयाः
प्रालेयाचलमेखलाः कथमपि क्रान्ताः शनैर्दिग्जये ।। (३०)
उच्चप्राकार भित्ति स्थितसमद (शिखि क्रूर १) .... (विना)द
......श्लथ(रथ)तुरग प्राप्तवेगान्तरायः ।
यस्मिन्मध्यन्दिनेस्पात्तराणि सुदिनं नीलकण्ठाधिवासं
जग्राह क्रीडया यस्तिलकमिव भुवः -
१९ किञ्च कालंजराद्रिं ।। (३१)
आशस्त्रग्रहणादखण्डिल महाधीर व्रत प्रक्रियै- ....

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रा वाल्याद विलुप्त सत्यसमयैरापाणि पीडा विधेः ।
अश्रान्तार्थिवीतीर्ण्णं पूर्ण्णं विभवैत(थेप्सिता) कांक्षिभि-
र्दूरोत्कर्ष कथा क्रतोच्च पुलकैयः साधुभि(:)स्तूयते ।। (३२)
निन्दामु ै मि पुरुषान्तर सङ्क्रमेन शान्तिन्नजातु सतत भ्रमणक्रमेण
यस्यातिपौरुष निरस्त मनुष्य भावे लोके समु-
२० द्रगत कीर्त्तिरनिन्दितैवा । (३३)
एकैवोवाह लोकेस्मिन्पुत्रजन्मोन्नतंशिरः ।
कञ्छुका येन धीरेण देवकीव मधु द्विषा ।। (३४)
शौर्यो दार्य नयादिनिर्मल गुण ग्रामाभिरामं यशो
यस्याशेष विशुद्ध नाथतिलकङ्गायन्तिसिद्धस्त्रियः ।
तस्यस्तोत्रममित्र मर्द्दनरवेः स्पष्टप्रकाशीकृतः-
त्रैलोक्यस्यसहस्रसंख्य महसो दीप प्रदानोपमं ।। (३५)
क्रोधोद्धृत्तान्तक भ्रू कुटिल-
२१ पटुरत्न (१ ण) च्चण्डको दण्ड यष्टि-
ज्या घात स्फार घोर ध्वनि चकित मनः संभ्रमभ्रान्त दृक्षु ।
स्पष्टं नष्टेषु दूरं क्वचिदपि रिपुषु क्षत्रतेजोम्बुराशे
——(र्यस्यौज न व्य)रंसीद्भ्रुवन) विजयिनश्चण्डदो दिण्डकण्डू ।। (३६)
यो लक्ष वर्म नृपते शरदिन्दु कान्त,
माख्यातु मिच्छति यशः प्रसर वचोभि ।
दीपः प्रभा परिचयेन विमुग्ध बुद्धि
र्मध्यन्दिने दिवसनाथ मुदीक्षतेसौ ।। (३७)
२२ यन्नाक्राम दवक्र मानस वलि व्याज प्रयोगापत-
त्पृथ्वीलंघन लब्ध लाघवमवच्छेदि पदं वामनः ।
लोकालोक शिरः शत प्रतिहत ज्योतिर्विवस्वान्नप-
त्तस्य क्रामति तन्निशाकर महा श्री स्पर्द्धिशुभ्रं यशः ।। (३८)
धीरो दिग्विजयेषु केलिसरसी न्तीव्र प्रतापं दध-
न्निःशेष द्विषद व्यथो भयतटी विन्यस्त सेनाभरः ।
मज्जन्मत्त करीन्द्र पंकिल जलां श्रीलक्षवर्मा—
भिध-
२३ श्चक्रे शक्रसमः कलिन्दतनयो जह्नोः सुतां च क्रमात् ।। (३९)
आस्थानेषु महीभुजां मुनिजनस्थाने सतां संगमे
ग्रामे पामर मण्डलीषु वणिजां बीथी पथे चत्वरे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अध्वन्यध्वगसं कथासु निलये रण्यौ कसौं विस्मया-
न्नित्यं तद्गुण कीर्तनैक मुखराः सर्व्वत्र सर्वेञ्जनाः ।। (४०)
अस्यानने शरदखण्डशशि प्रसन्ने
कोपंव्यनक्ति हृदयस्थमरिप्रिया
२४ णां ।
सिंदूर भूषण विवर्जित मास्य पद्म-
मुत्सृष्टहार वलयं कुचमण्डलं च ।। (४१)
तेनैतच्चारुचामी कर कलस लसद्योमधामव्यधायि
भ्राजिष्णु-प्रांशु वंश ध्वजपट पटलां ोलितां भोज वृ ।
ैत्यारातेस्तुषार क्षितिधर शिखरस्पर्द्धि वर्द्धिष्णुरागा
दृष्टे यात्रासु यत्र तृदिव वस(त) तयो विस्मयन्ते समेताः ।। (४२)
कैलाशाद्भ्रोटनाथः सुहृदिति ततः की-
२५ रराजः प्रपेदे-
साहिस्तस्माद वाप द्विपतुरगवलेनानु हेरम्ब पालः ।
तत्सूनोर्देवपालात्तमथ हयथतेः प्राप्य निन्ये प्रतिष्ठा-
वैकुण्ठ कुण्ठितारिः क्षितिधर तिलकः **श्रीयशोवर्मराजः** ।। (४३)
श्रीधङ्गः स्वभुज प्रसाधित मही निर्व्याज राज्यस्थिति-
स्तस्मादास महोदधेरि व विधुः सुनूर्जनानन्दकृत ।
युद्धे नश्यदरातिवर्ग सुभट प्रस्तूयमानस्तुतिर्नि-
२६ त्यं नम्रमहीपमौलि गलित स्त्रक्पूजितांघ्रिद्वयः ।। (४४)
आकालउजरमा च मालव नदी तीरस्थिते भास्वतः
कालिन्दीसरितस्तादित इतोप्पा चेदिदेशावधेः ।
आतस्मादपि विस्मयैकनिलयाद्गोपाभिधानादिगरे-
यैः शास्ति क्षितिमायतोर्जितभुज व्यापार लीलार्जितां ।। (४५)
यस्त्यागविक्रम विवेककलाविलास
प्रज्ञा प्रताप विभव प्रभवश्चरित्रात् ।
२७ चक्रेकृती-
सुमनसां मनसामकस्मा-
दस्मादकाल कलिकाल विरामशंकी ।। (४६)
शब्दानु शाशनविदा पितृमान्व्यधत्त देद्देन माधव कविः
स इमां प्रशस्ति ।
यस्यामलं कवियशः कृतिनः कथासु रोमाञ्च कञ्चुक
जुषः परिकीर्त्तयन्ति ।। (४७)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत भाषाविदुषा जयगुण पुत्रेण कौतुकाल्लिखिता ।
रचिराक्षरा प्रशस्तिः करणिंक जद्धेन गौडेन ॥ (४८)
पाताद्भू । २८
मिपतिः पृथ्वीं त्रयीधर्म प्रवर्धतां ।
नन्दन्तु गोद्विजन्मानः प्रजा प्राप्नोतु निर्वृतिम् ॥ (४९)
सम्वत्सर दशशतेषु एकादशाधिकेषु सम्वत् १०११
उत्कीर्णा चेयं रूपकार.....................................
..... । श्री विनायक पालदेवे पालयति
वसुधां वसुधानधि गता निर्दग्ध वैरिभिः ।
नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ नमः सवित्रै ॥

चेदि राजा कर्णदेव का बनारस ताम्र-पत्र लेख

(चेदि सम्वत् ७९३)

१ (॥) ओं नमः सि(शि) वाय ॥
निर्गुणं व्यापकं नित्यं सि(शि) वं परमकारण(णं) ।
भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तस्मै सद्ब्र(द्ब्र)ह्मणे नमः ॥–(१)
यद्वेधस्थितमव्य(यं) प-

२ रमपि जो(ज्यो)तिस्चि(श्चि)दंसु(श) प्रभं ।
सूर्याख्यस्य च (भा)स्वर प्रभृतयो यस्य स्फुरंत्यूर्म्मयः (।)
सर्व्वज्ञान(म) यो व(ब)भूव भगवांस्तस्मान्मनुर्म्मानसो
यस्मात्सृष्टिरभूदि (यं) (गु)

३ णवती स्त्रीपुन्निमित्ता ततः । (२)
देवः श्रीकार्त्तवीर्यः क्षितिपतिरभवड्भूषण (णं) भूतधामा
हेलोत्क्षिप्ताद्रिवि(बि)भ्यत्तुहिनगिरिसुतास्ले(श्ले)षसन्तोषितेस (श) म् (।)
दोर्द्दण्डा—

४ काण्डसेतुप्रतिगमितमहापुररेवाप्रवाह-
व्याधौतयज्ञपूजागुरुजनितरुषं रावणं यो ववम्व ॥–(३)
यस्य भ्रूभ(ङ्ग)भीता ददति नृपतयः क्लि(ष्ट)
मावे प्रतिपं

५ आ कै(कै) लास(सा)त्सहेलं हरवृषभसमुत्खातसृ (श्रृं) गाग्रभित्तेः ।
आ चः प्राचः समुद्रात्सुरसरिदतुलस्थमुक्तावलीका-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दाम्भोधेर्द्दक्षिणाच्च (स्फु)
रदतुलमणेः सेतुसीमन्तभाजः ।–(४)
६ तद्वन्सप्रभवा नरेन्द्रपतयः ख्याता(:) क्षितौ हैहया-
स्तेषामनृ(न्व)पभूषण(णं) रिपुमनोविन्यस्ततापानलः ।
धर्म्मंध्यानध-
७ नानू (नु) संधितमुखः सस्वत्सं(तां) सौज्ञ(ख्य) कृ-
त्प्रेयास(न्म)र्व्वगुणाङ्कित प्रभुतया **श्रीमान् भूकोक्कथ्लः** । (५)
सम्यम्मा (क्शा) स्त्रविचारणा प्रतिदिन(नं) धर्म्माय योगाय च इष्टा-
८ पूर्त्तपरोपकारकृतये यस्यार्थसक्तो(क्ता) मतिः ॥
आनृन्या(ण्या) धिगमाय दाननिरतिः सद्वस(श) पुष्टेस्तथा
ज्ञानाभ्यासवसान्ममुज्ञपदवीमंते च यः प्राप्तवान् । (६)
भोज व-
९ (ल्लभ)राजे श्रीहर्ष(र्षे) चित्रकूटभु(भू) पाले ।
स(श) ङ्करगणे च रा(ज) नि यस्यासीदभयदः पाणिः । (७)
सचिमिवेन्द्र (:) कमलामुपेन्द्रो नगेन्द्रकन्यामिव चन्द्रमौलिः ।
चन्द्रेल्लवसाप्रभवा
१० सुसिला नट्टाख्यदेवी स तु पर्ज्जनैषित् ॥ (८)
उद्दामदर्प्पद्विषतो जयन्तं (कं) दर्प्पमापि (पी) नप्पनस्तनीनाम् ।
अजीजनत्स स्थितये जनस्य तस्यां महास(श)क्तिध (रं) कु-
मारम् । (९)
११ नाम्ना प्रसिद्धो भुध (व) नत्रयेपि प्रसिद्धपूर्व्वो (र्व्वो) धवलः सराजा ।
वोढु धुरं यो गुरुहारहा योऽन्यानृपेन्द्रान्क(हा)र चकार ॥ (१०)
एकैक(कं) ददता भुजङ्गमनि-
१२ सं(शं) स्व (स्वं) जीवित (तं) रज्ञता
भक्ष्यार्थ (र्थं) गरुडाय नागपतिना न्यक्कार उन्मीलितः ।
चारित्राय ददो(दौ) जलं सुरपतिर्ग्गच्छन्न (ह) ल्यामृतौ
वन्द्यासा(या) भुवनत्रयेप्ययमभू (पौ)
चित्त(ल्य) वृत्तेः पदं ॥ (११)
१३ किम्वापरेण
होहिन्ति एत्थ व(वं) से पुरिसा एहइयागारवमहग्घा ।
इअ हाविऊण जेणं पालीण परिग (ग्ग)हो गहिओ ॥ (१२)
तत्सु (त्सु) नुः ख्यात-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४ कर्म्मा दिगिभकरनिभाजानुबा (बा) हुर्महात्मा
भूमेम (र्भ) र्त्ताव (ब) भूव क्षतरिपुनृपतिर्व्वा (र्व्वा) लहर्षः सु (ज) न्मा।
यं सहत्तानुरागानुकृतकृतय (यु) गाचारमासृ (श्री) त्य जात-
स्त्य-

१५ क्तान्योन्योपमर्द्दं स्थिरवसतिरपास्तारिवर्गात्रि (स्त्रि) वर्ग्गः । (१३)
धन्योय दास (श) रथिरेव रिपुर्द्दसा (शा) स्यो यस्याभवक्तिमपरं समरो-
त्सवाय ।
भ्रूभङ्ग (भ) ग्नसकलद्विषतो

१६ धिगस्मानात्मानमाहवरसादिति यः सुसोच ॥ (१४)
सत्यव्रतैकनिरतस्य युधिष्ठिरस्य तस्यानुय (जः) प्रथितवा (बा) हुव (ब)
-लोव (ब) भूव ।
दुर्योधनारिव (ब) लवि (वी) खधैकध-
न्वी पार्थोपरः कलियुगे युवराजदेवः ॥ (१५)

१७ भु (भू) भारक्षमदृम्स (क्श्रु) तिप्र (ण) यिनीमालम्व (म्ब) मानस्तन (नुं)
कुर्व्वाणः समरेपि नाग (क) पथगानागच्छतो विद्धि (ष) : ॥
विख्या-

१८ तां भुवि भूरिमार्ग्गगमनामुच्चैर्द्दधद्वाहिनीं
यः साक्षत्परमेवस्व (श्व) र (:) समभवत्सम्यक्सि (क्शि) वाराधनात् ॥
(१६)
तस्माद्भूल्लक्ष्मणराजदेवः पुण्यौ (ण्यै) र्ज्जनाना (नां)
जनितव्यवस्थः ।

१९ आ (अ) वाप्य यं धर्म्ममिव क्षितीसं (शं) चिराय लेभे जनता सुखानि ॥ (१७)
यः सत्यस्य निधिः स्यि (श्रि) यां च सरणि साम्ना च धाम्ना (च) यो
यो दाता च दयालु-
रेव च पदं कीर्त्तेस्च (श्च) यः ।

२० तस्यासीतपरमेव दूषणकण (:) कारुन्य (ण्य) पुण्यात्मनः
पायापायाविवेचनं न यदभूत्सर्व्वस्वदानेष्वपि ॥ (१८)
श्रीस (श) ङ्करगणदेव-

२१ स्ततोभवत्सकलभुवनतलतिलकः ।
सा (शा) सति वसुधां यस्मिन्पलायित (तं) क्वापि कलिनापि ॥ (१९)
असौ निस्तृंसता यत्र वक्रत्वं पलितागमे (।)
रथ चक्रषु चारि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२२ त्वं वायो (यौ) स्वच्छन्दचारिता(।।) (२०)
तस्यानुयो (जो) भु (भू) द्युवराजदेवः पतिः क्षितेः क्ष (य) कुलप्रसु (सू) तिः।
यस्यासिधाराजलधौतमु (म) र्त्तेस्चि (श्चि) रं स्थिरासि (सी) च (च्च)
पलामि लक्ष्म ।। (२१)
अर्थि
२३ सा (शा) वधिस्त्यागः सेसु सूरजयावीधः ।
यस (श) सा (सां) धर्म्मरासे (शे) स्व (श्च) नावधिर्यस्य भूपतेः। (२२)
स्त्रीसास्वतोयायत यातकीर्त्तुः काकल्लदेवो वस्वधिकनाथः ।
ज (य) न्मण्ड-
२४ लाग्रो रिपुमण्डलानि पुरो दधातीति यथार्थस (श) व्द (ब्द) :।। (२३)
नम्न कामुकवत् कृत नियमित तूणीरवत्पृष्ठतः ।
काष्ठासु क्षणमाय (ह) स्यविहितः (भ्रा) न्तरादादण्डवत् ।
२५ वकृत्वा सा (व्र) परिच्छदेन रहित सम्यक्क (रे) स्थापित
सत्रणामखेल कुल नरपति (थिथेभ) येनासिवत् ।। (२४)
काक्कलनृपादवास्तसकल (क्का) णी (व) पद
ज्ञी-
२६ रक्षालितहारगो (गौ) रगुणभूर्गांगवदेवाभ त् ।
यस्याजायत केवलं रणमुखे कौम्ये (क्षे) यकोग्रेसरः ।
स्तत्रेव प्रतिविवि (थ) पुनरभूदालाव (रं) स (न्मुखं) (२५)
२७ अगुनेज्लोजलोलेति क्षातं यदिह दुर्ज्जसः ।
लक्ष्मया तदधुना धौ (तं) दिव्यमादाय तद्वपुः ।। (२६)
ख्यातः सत्यतया स धर्म्मतनयः त्यागेन वि (वै) रोच
निः
२८ सोमेनेन्द्रसुर न चैतदसवत्स (त्यं) गता (चे) तसि ।
एकस्मिंत्रितयं कलो समनिक **गांगेयदेवे** नृपे
(हृ) स्ता रिस्विता (मि) व तेर-
२९ वितथं पूर्व्वे येथोक्ता नृपाः ।। (२७)
तस्यातमजः **कर्ण्ण** इवावतीर्ण्णः पृथिव्या (व्यां) प्रथे (थि) तपृ (प्र) भावः ।
यस्याभिसे (षे) कस्य (श्र) वण (द्धि) ष-
ड्भिर्नष्ट प्रहृष्टं द्विजमियवर्ग्गं ।। (२८)
३० यत्कीर्त्तिलतया दूरं प्रसरन्त्या दिने दिने ।।
व (ब्र) ह्माण्डमण्डपाभोगः स्वल्पतामुपनीयते ।। (२९)
स्वयं समु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३१ त्सृजन्नर्थानर्थिसार्थेष्वचिन्तितान् ।
कोपे(प्ये)ष भूषणं(णं) भूमेर्जङ्गमः कल्म(ल्प) पादपः ।। (३०)
स(श) क्रित्रमै (यै) कने (नि) लयस्य गुणाकरस्य धम्मात्मनः
स्तुतिपदं किमिहास्ति कि (किं) चित् ।
३२ आसा(शा)स्यते परमिदं क्वतिभिः सदे(दै) व राजन्वती वसुमती भवते (तैं) वभूभात् । (३१)
तवे (दे) वं गुणगणालंकृत-
३३ स(श)रीरः (स्वासा)ग समावासित श्रीमद्विजयकय त्परमभट्टारकमहाराजाधिराज परमेस्व(श्व) र **श्रीवाम (दे) वपदा**नुध्यान (त) परमभट्टा
३४ रक महाराजाधिराजपरमेस्वर (श्व)र परममाहेस्व (श्व)र तृ (त्रि) कलिग्या (गा) धिपति श्री-
मत्कर्णदेव(:) कुस (श) ली महादेवीं महाराजपु(त्रं) महामं-
३५ त्रि(णो) महामात्य महासन्धिविग्रहिक महाधर्म्माधिकरणिक महाक्षपटलिक महाकरणिक स(म) हाप्रतीहारो महासामन्तो ।
३६ महाप्रमातारो महास्व (श्व) साधनिको महा (भा) ण्डागारिको महाध्यक्ष एतानन्यांस्च (श्च)
कीर्त्तिताकीर्त्तिताश्च यथार्ह मानयति वो(बो) धयति समाज्ञापयति विदित
३७ म(स्तु) भवता (तां) यथा (हपाथा) कासि (भूम्य) न्त(र्गं) त(सु) सिग्रामः साव्र(म्र) मधूकः
सगर्त्तस्थलजजोषरः सर्व्वाकरण (नि) निभृतिसमुत्प
३८ त्तिसमेतस्च(श्च) तुराध(घा)ट सीमापर्यन्तः । वेसालग्रामविनिर्गताय कोसिकगोत्रय ।
ओदलदेवरायविस्वामित्र त्रि-
३९ प्रवराय वाजस ेय सा (शा) खाय । महाप्रनत्ते वा (म) ननत्ते नारायण-पुत्राय पण्डित श्रीवि-
-स्व(श्व)रुपाय । इहैव पितुः श्री
४० **मद्गाङ्गेयदेवस्य** संवत्सरे स्त्राद्धे फाल्गुन व(ब) हुलपज्ञद्वितीयायां स(श) नैस्च (श्च)
रवासरे वेण्यांस्नात्वा भगवंतं देवं देवं त्रिलोचन-
४१ मस(श) नस (सं) भार प्रकिल्पतपंचोपच(चा)र(प्र) पंचेन परया भक्त्या समभ्यर्च्च्यास-
मस्य (श्च) द्ध (द्ध) या स्या (श्चा) द्धं विधायोभयभोगेन सासत्वेन यचप्रदत्तः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः **श्रीमत्क-**
४२ **र्ण्णदेवपादा**(:) सुसीग्रामनिवासिनः समस्तजनपदान्सादिस (शं)ति विदित-
मस्तु
भवता (तां) यथा ग्रामोयं स्माभिः सा(शा) सनत्वेन प्रदत्त इति मत्वा
४३ **भागभोगकरहिरण्यदण्डादायकासोत्पन्ति** प्रभृतिसमस्तराजप्रत्यादाय (या)
अस्योपनव्या इति तदपचिकीर्षया मध्ये वातेनापि न
४४ गन्तव्यमिति ॥ अभ्यर्थना ॥
सर्व्वानेताभा (न्भा) विनो राजपुत्राभू (न्भू) यो भूयो याचते रामभद्रः ।
सामान्योय (यं) धर्म्मसेतुनृ (र्नृ) पाणा (णां) काले का
ले पालनीयो भवद्भिः । (३२)
४५ व(ब)हुभिव (र्व) सुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् (॥) (३३)
अस्मिन्वन्मे (द्वि) (ग्नो ?)
४६ पि यस्चा (श्चा) न्यो नृपतिभवेत् ।
तस्यापि हस्तलग्नोहं सा(शा)सनं न व्यतिक्रमेत् ॥ (३४)
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्म्मार्थयस(श) स्कराणि ।
४७ नृमाल्यवान्तप्रतिमानि तानि को न(ना) म साधुः पुनराददीत ॥ (३५)
अस्व(श्व) मेव (ध) सहस्त्रेण राजसु (सू) यसहतेन च (।)
गवां का(को) टिप्रदानेन भूमिहृ-
४८ र्त्त न सु(शु) ध्यति । (३६)
सुवर्ण्णमेक(कं) गामे(कां) भूमेरप्येकमङ्गल(लं) ॥
हरन्न (रक) माप्नोति यावदाहुतसप्लवं । (३७)
संवत् ७९३ फाल्गुन वदि ९ सोमे ॥

यशःकर्णदेव का जबलपुर ताम्र-पत्र लेख

(१२वीं सदी)

१ (॥) ओं नमो व्र (ब्र) ह्मणे ॥
जयति जलजनाभःस्तस्य नाभीसरोजं जयति जयति तस्माज्जातवानब्ज सूतिः॥
अथ जयति स तस्यापत्यमत्रिस्तदक्षणस्तदनु जयति जन्म प्राप्तवा-
नब्धिवन्धुः ॥ (१)
२ अथ वो(बो)धनसादिराजपुत्रं गृहजामातरमब्जवान्धवस्य ।
तनयं जनयांव (ब) भूव राजा गगनाभोगतडागराजहंसः ॥ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुत्रं पुरूरवसमौरसमाप सू-

३ नुर्देवस्य सप्तजलरासि (शि) रसायनस्य।
आसीदनन्यसमभाग्यशतोपभोग्या यस्योर्व्वसी (शी) च सकुलयमिहोर्व्वरा च।।३
आ (त्रा) न्वये किल शताधिकसप्तिमेधयूपोपरुद्धयमुनो-
क्तविविक्तकीर्त्ति ।।

४ सप्ताब्धि (ब्धि) रत्नरम् (श) नाभरणाभिरामविस्व (श्वं) भ (रा) सु (शु)
भरतो व (ब) भूव ।। (४)
हेलागृहीतपुनरुक्तसमस्तम (श) गोये जयत्यधिकमस्य स कार्त्तवीर्यः ।।

५ अत्रैव हैहयनृपान्वभपूर्व्वपुंसि राजेति नाम स (श) शलक्ष्मणि चक्षमे यः ।। (५)
स हिमाचल इव **कलचुरिवंस** (श) मसूत क्षमाभृतां भर्त्ता।
मुक्तामाणिभिरिवामलवृत्तैः पूतं महीपतिभिः ।। (६)

६ तत्रान्वये नयवतां प्रवरो नरेन्द्रः पौरन्दरीमिव पुरीं त्रिपुरीं पुनानः ।।
आसीन्मदान्धनृपगन्धगजाधि (राज) निर्माणकेसरियुवा **युवराजदेवः** ।। (७)
सिंहासने नृप-

७ तिसिंहमपुष्य सूनुमारुरुपन्नवनिभर्त्तुरमात्यमुख्याः ।।
कोकल्लमर्णाविचतुष्टयवीचिसंघसंघघट्टरुद्धचतुरङ्गचमूप्रचारं ।। (८)
इन्दुप्रभां निंदति हारगुच्छं जुगुप्सते

८ चंदनामक्षिपन्ती (।)
यत्र प्रभौ दूरतरं प्रभाते वियोगिनीव प्रतिभाति कीर्त्तिः ।। (९)
मरकतमणिपट्ट प्रौढवक्षाः स्मिताक्षो नगरपरिधदैर्वीं (र्ध्यं) लंघय (न्दो)
द्वयेन ।
(शिर) सि

९ कुलिस (श) पातो वैरिणां वीरलक्ष्मीपतिरभवदपत्यं यस्य **गाङ्गेयदेवः** ।। (१०)
सवीरसिंहासनमौलिर (त्नं) स विक्रमादित्य इति प्रसिद्ध।
य (स्माद) कस्मादप (वर्ग ९) –

१० मिच्छन्नकु (च्छ) ल (:) (कु स्वजि ?) तां व (ब) भार (११)
प्राप्ते प्रयागवटमूलनिवेस (श) व (ब) न्धौ सार्द्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र मुक्ति।
पुत्रोऽस्य खङ्गदलि (तारि) करीन्द्रकुम्भमुक्ता फलैः
स्म ककुभोर्च्चति **कर्ण्णदेवः** ।। (१२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

११ कनकसि (शि) खर वेल्लद्वैजयन्तीसमीरग्लपितग (ग) नखेलत्खेचरीचक्र
खे (द): ॥
किमपरमिह कास्यां (श्यां) य (स्य) दुग्धाब्धि (ब्धि) वीचीवलयव (ब) ?)
-हल (कीर्त्ते) :) कीर्त्तनं कर्ण्णमेरुः ॥ (१३)

१२ अग्र्यं धाम (श्रे) यसो वेदविद्यावल्लीकंदः स्वः स्त्रवन्त्याः किरीटं ।
ब्र (ब्र) ह्मस्तंभो येन कर्ण्णावतीति प्रत्य (ष्ठापि) क्ष्मातलब्र (ब्र) ह्मलो (कः) ॥ १४

१३ **अजनि कलचुरीणां स्वामिना तेन हूणान्वयजलनिधिलक्ष्मयाँ श्रीमदावल्ल-देव्यां ।**
शशभृदुदयस (श) ङ्काक्षुब्ध (ब्ध) दुग्धाब्धि (ब्धि) वेलासहचरितयस (श): श्रीः
श्रीयस (श) कर्ण्ण देवः ॥ (१५)

१४ (चंद्रार्कदीप) वतिपर्व्वतराजपूर्णकुम्भावभासिनि महा (ब्धि) चतुष्कमध्ये ।
चक्रे पुरोहितपुर (स्कृ) तिपूत (कर्म्मा) धर्म्मात्मनोऽस्य हि पितैव महा-भिषेकं ॥ (१६)

१५ न खलु स (मदगो) ष्ठीपक्षपातस्य पात्रं । न खलु कलुषचर्याकज्जलो (द्भाव-कञ्च ?)
कलयति कलिनामन्युद्नमं यस्त्रिजा (या) मातमसि जयसि जम्बूद्वीपरत्न-प्रदीपः

१६ चिन्तामणि (कृष्णा) सु (शु) क्तिभु (ग्म) क्रोडे स्याद्यदि कामधेनुदुग्धं ।
दृस्ये (श्ये) त दृशोस्तस्य दातुःसादृस्यं (श्यं) (ध) वलारुणेक्षणस्य ॥ (१८)
यः ककुप्कुञ्जरालानस्तंभसब्र (ब्र) ब्रह्मचारिणः ।

१७ (आसा (शा) न्ते) षु जयस्तम्भानुदस्तंभयदुच्चकैः ॥ (१९)
यो ब्र (ब्र) ह्मणां पाणिषु पंचषाणि दाता निधत्ते पयसः पृषन्ति ।
तैरैव तृष्णामवधूय ते च रत्नाकरेपि प्रथमन्त्यव (ज्ञां) (२०)

१८ महीभर्त्ता **महादानैस्तैस्तुलापुरुषादिभिः** (।)
-गरिम्णा (मे) रुरत्यर्थं कृतार्थयति योर्थिनः । (२१)
स्वर्गराजगजदन्तरुचीनि क्षीरनीरनिधिसं (शं) खसु (शु) चीनि ।
सा (शा) र्ङ्गि—

१९ (वेष ?) फणिकंचुकभांसि स्फीततां दधति यस्य यसां (शां) सि ॥ (२२)
अन्ध्राधीस (श) मरन्ध्रदोर्व्विलसितं स्वच्छन्दमुच्छिन्दता ।
येनाभ्यर्च्चात भूरिभिः स भगवान्भीमेस्व (ख) रो (भूष) णैः ॥

२० यस्या (व) र्ण्ण (यदात्त ?) नृत्यलहरीद्रुवल्लिगोदावरी
(वीर्यण्यू ?) न्मदहंसनादमधुरैः स्त्रोतः स्वरैः सप्तभिः ॥ (२३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुर्व्वन्महीं व्रा(ब्रा) ह्मणासा-

दरिक्षयनिव (ब)र्हणः (।)

२१ शा(सा) र्द्धं परसु(शु) रामेण यः स्पर्द्धामधिरोहति ।। (२४)

चाहमान नरेश विग्रहराज का अभिलेख

(विक्रम सम्वत् १०३०)

१ .... (थ) ।।

सर्वविघ्नशम (नं सुरार्च्चितं) पूर्व्वमेव शिव (भो) स्तनूद्भवम् ।

भुक्तिमुक्तिपरमार्थसिद्धिदं तं नमामि वर (दं) .. ◡ ◡ ।। (१)

२ ..... (का) कुलितमानसैः ।

स्तूयमानस्तु सद्देवैः पातु वस्त्रिपुरांतकः ।। (२)

पादन्यासावनुन्ना नमति वसुमतो शेषभोगावलग्ना

(वा (बा)) हूत्क्षेपैः स((मं ?)—— ◡ ◡ ◡ ◡ ◡ ◡

—— —— कर्कचन्द्रैः ।

३ भिन्नावस्थं समस्तं भवति हि भुवनं यस्य नृत्ते प्रवृत्ते

स श्रीहर्षाभिधानो जयति पशुपतिर्द्दत्तविश्वानुकंपः ।। (३)

सव्ये शूलं त्रिशिखमपरे दोष्णि (भि) ज्ञाक (पालं)

भूषा— — — — ◡ ◡ ◡

४ (भु) जगः कंठिका नीलकंठे ।

नेदृग्वेषस्त्रिनयन मया क्वापि दृष्टो विचित्र

इत्थं गौर्या प्रहसितहरः सस्मितः पातु युष्मान् ।। (४)

वेगाड्वुतार्यमादिग्रहगगनतलं व्यश्नुवाना जलौघै-

र्न्यक्कुर्व्वाणा स(मु)(द्रान्)

५ क्षय (व) लितजलानूर्म्मिमालासहस्त्रैः । – –

देत्रादभ्यर्थितं वः शशधरधवला स्वङ्र्धुनी चंद्रमौले–

र्मौलौ लीलां वहन्ती स्फूटविकटजटाव(ब)न्धने चीरिकायाः ।। (५)

चंचच्चंद्रार्क्कतारं भुवनगगनदीर्घ्वी(प) सिं (धु)-

६ -(प्र) पंचं

विश्वं देवासुराहिप्रथमुनिवरैयक्षमर्त्यैः सनाथम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यस्येच्छाशक्तिभावादसदपि सकलं जायते लीयते च
सोव्याहो हर्षदेवो भुवनविरचनासूत्र धारोप्रमेयः ।। (६)
नूनं वाणाग्निदग्धत्रिपुरसुररिपु
(र्जा) तहर्षः सहर्षै-
७ रिंद्राद्यैर्द्देववृंदैः क्वतनुतिनतिभिः पूज्यमानोनोत्र शैले ।
योभून्नाम्नापि हर्षो गिरिशिखरभुवोर्भारतानुग्रहाय
सो स्ताद्वो लिंगरूपो द्विगुणितभवनश्चद्रमौलिः शिवाय ।। (७)
निर्यन्नेत्रा (ण्ड)-
८ (भा) ण्डानणुदहनरुचि प्लोषसंभ्रान्तसत्वं (त्त्वं)
प्रान्तज्वालावलीढद्रुमव (ब) हलमहाधूमधूम्नायिताशम् ।
संरंभारंभभीमस्वनमसशमरोच्छेदि यस्याशशंके
दृष्टा देवैः (स्व) रुपं किमिय (म) समये संहृतिर्व्वो (र्ब्बो) भुवे (द्य) ।। (८)
९ देवः पुरधगध्यास्ते यमभ्रंकषमुच्चकैः ।
हर्षख्यातिः स हर्षाख्यो गिरिरेष पुनातु वः ।। (९)
शूरस्येदं श्लोकं ।
गांग नो निर्ज्झ (रांभ) प्रवहति न शुभा नंदनोद्यानलक्ष्मीः
सद्रत्नस्वर्ण्णश्रृंगामलविविधरुचो नैव – –
१० (स्त ?) यात्र ।
अन्यां धत्ते तथापि श्रियमतिशयिनीमेष शैलोद्वितीयां
साक्षाच्छंभुर्यदास्ते तदपि हि परमं कारणं रम्यतायाः ।। (१०)
अष्टमूर्त्तिर्यमध्यास्ते सिङ्घाष्टकविभुः स्वयम् ।
महिमा भूधरस्यास्य परमः कोपि — ᴗ ᴗ ।। (११)
११ (एत) त्स्वर्णाण्डकांतिप्रवरतममहामण्डपाभोगभद्रं
प्रांतप्रासादमालाविरचितविकटापाण्डुपुत्राभिरामम् ।
मेरोः श्रृंगोपमानं सुधटितवृषसत्तोरणद्वारभ्यं
नानासङ्गोगयुक्तं जयति **भगवतो हर्षदेवस्य** (ह) –
(र्म्म्यम)– (१२)
१२ आद्यः श्रीगुवकाख्याप्रथितनरपतिश्चाहमानान्वयोभूत्
श्रीमन्नागा (द्य?) लोकप्रवरनृपसभालब्ध (ब्ध) वीरप्रतिष्ठः ।
अस्य श्रीहर्षदेवे वरभवनमयी भौतली कीर्तिमूर्ति–
ल्लोकेद्यापि स्थिरैषा प्रतपति परमैः—
ᴗ – – ᴗ – (गै?) ।। (१३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३ पुत्रः श्रीचन्द्रराजोभवदमलयशास्तस्य तीव्रप्रतापः
सूनुस्तस्याथ भूपः प्रथम इव पुनर्गूवकाख्यः प्रतापो ।
तस्माच्छीचंदनोभूत्क्षितिपतिभयदस्तोमरेशं सदर्प्पै-
हत्वा रुद्रेनभूपं समर (भुवि)
(ब) लाद्ये (न लब्धा) जयश्रीः ।। (१४)
१४ ततः परमतेजस्वी सदा समरजित्वरः ।
श्रीमान्वाक्यपतिराजाख्यो महाराजोभवत्सुतः ।। (१५)
येनादैन्यं स्वसैन्यं कथमपि दधता वाजिवल्गा मुमुक्षु
प्रागैव त्रासितेभः सरसि क(रि) रटड्डिडिमैर्डि
(जे) ।
१५ वन्धक्ष्माभर्त्तुराज्ञां समदमभि (व) हन्नागतोनंतपार्श्वं-
क्ष्मापालस्तंत्रपालो दिशि दिशि गमितो ह्रोविषण्णः प्रसण्ण(न्न): ।। (१६)
शूरस्येदं ।
लोकैर्यो हि महीतले ननु हिरश्चंद्रोपमो गोयते
त्यागैश्व(र्य) जयेषु की (र्त्ति)-
(र) मला धर्म्मश्च यस्योज्व(ज्ज्व) लः ।
१६ येनादायि हराय मंदिरकते भक्त्या प्रभूतं वसु
श्रीमद्वाक्पतिराजसूनुरसमः श्रीसिंहराजोभवत् ।। (१७)
हैममारोपितं येन शिवस्य भवनो परि ।
१७ – – । तोमरनायकं सलवणं सैन्याधि पत्योड्घतं
युद्धे येन नरेश्वराः प्रतिदिशं निर्न्ना (र्ण्णा) शिता जिष्णुना ।
कारावेश्मनि भूरयश्च विधृतास्तावद्दि यावद्नृहे
तन्मुत्तयार्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्त्ती स्वयम् ।। (१९)
श्रीमा–
१८ (न्वि) **ग्रहराजो**भूत्तत्सुतो वासवोपमः ।
वंशंलक्ष्मीज्जयश्रीश्च येनैते विधुरोद्घृते ।। (२०)
श्रीसिंहराजरहिता किल चिंतयंती भीतेव संप्रति विभुर्ननु को ममेति ।
येनात्मवा(बा) हुयुगले चिरसन्निवासं संधीरितेति ददता निज-
(रा) ज्यलक्ष्मीः ।। (२१)
१९ येन दुष्टदमनेन सर्व्वतः साधिताखिलमही स्वावा (बा) हुभिः ।
लीलयैव वशवर्त्तिनी कृता किंकरीव निजपादयोस्तले ।। (२२)
यस्य चारु चरितं सतां सदा शृण्वतां जगति कीर्त्तितं जैनः ।
हृष्टिजातधनरोमकं-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२० जायते तनुरलं मुहुर्म्मुहुः ॥ (२३)
मुक्ताहारैः सुतारैः प्रतरलतुरगैश्चरुवस्त्रैश्च शस्त्रैः
कर्प्पूरैः पूगपूरैर्म्मलयतरुवरैर्हेमभारैरपारैः ।
उद्यद्दानैः समानैश्चलकुलगिरिभिर्द्दन्तिवारैः सदारै-
न्निर्व्याजैः प्रातिर- – – –

२१ भिरिति भृतैः प्राभृतैर्यः सिषेवे ॥ (२४)
छत्रधारावरग्रामो द्वितीयः शंकराणकः (।)
तेनेमौ हर्षना(थाय) (भ) क्त्या दत्तौ सशासनौ ॥ (२५)
श्रीमद्दुर्ल्लभराजेन योनुजेन विभूषितः (।)
लक्ष्मणेनेव काकुत्स्थो विष्णुनेव हलायुधः ॥ (२६)

२२ (महा) राजावली चामौ शंभुभक्तिगुणोदया ।
श्रीहर्षः कुलदेवोस्यास्तस्माद्दिव्यः कुलक्रमः ॥ (२७)
अनंतगोचरे श्रीमान् पण्डित औत्तरेस्व (श्व) रः ।
पंचार्थलाकुलाम्नाये विश्वरूपोभवद्गुरूः ॥ (२८)
दीक्षाज़ालमलध्वन्मविस्फुरज्ञा-
(ननि) र्म्मलः ।

२३ प्रशस्तारव्योभवच्छिष्यस्तस्य पाशुपतः क्वती ॥ (२९)
भा(व) रक्तो (भ) वत्तस्य शिष्यो द्विनामतोल्लटः ।
वार्गटिकान्वयोद्भूतसद्विप्रकुलसंभवः ॥ (३०)
हर्षस्यासन्नतो ग्रामः प्रसिद्धो राणपल्लिका ।
संसारिककुलम्नायस्ततो यस्य विनि(र्गमः ॥) (३१)

२४ अल्लटच्छद्यना नंदी शिवासन्नस्थितिक्रमः ।
श्रीहर्षाराधने नूनं स्वयं मर्त्यमवातरम् ॥ (३२)
आजन्म व्र(ब्र)ह्मचारी दिगमलवसनः संयातात्मा तपस्वी
श्रीहर्षाराधनैकव्यसनशुभमतिस्त्यक्तसंसारमोहः ।
आसीद्यो लब्ध(ब्ध) जन्मा भवतर (णधि) यां—
–(षी) ? सुव(ब)न्धु-

२५ स्तेनेदं धम्मिवित्तैः सुघटितविकटं कारितं **हर्षहर्म्म्यम्** ॥ (३३)
अस्मिश्चंद्रांकशैले गगनपथलिहोत्तुंगश्रृंगेप्रमेयं
हर्म्म्यं श्रीहर्षनामप्रथितपशुपतेः सद्विमानो(प) मानम् ।
ष्टवा सङ्गोगयुक्तं (व)व हुसुरभवनं कारितं यन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२६ — — —

नासाध्यं किंचिदस्ति स्फूटमिति तपसो निःस्पृहाणां यतीनाम् ।। (३४)
आसीन्नैष्ठिकरूपो यो दीप्तपाशुपतव्रतः ।
ती (व्र) वेगतपोजातपुण्यापुण्यमलक्षयः ।। (३५)
सदा शिवसमाकारस्तस्येश्वरसमद्युते : ।
भावद्योतोभवच्छिष्यः संदीपितगु

२७ (सक) मः ।। (३६)

गुरोराज्ञामयं प्राप्य प्रतिष्ठासोः शिवालयम् ।
यथाप्रारव्ध (ब्ध) कार्याणामंगीकृतभरोभवत् ।। (३७)
पुरस्तात्पर्व्वतस्याधस्यितयं येन कारितम् ।
सत्कूपो वाटिका दिव्या गोप्रपा घटितोपलैः ।। (३८)
सदैव वहमानेन कूपेन स्वादुवारिणा ।
वाटिकासेच-

२८ — — — — — — प्रपाभरणन्तथा ।। (३९)

सत्पुष्पैरर्च्चनं शम्भोः पयःपानं गवामपि ।
कार्यद्वयमिदं सारं दर्शितं पुण्यकांक्षिणाम् ।। (४०)
दिगंव (ब) रं जटा भस्म तल्पं च विपुलं मही ।
भिक्षा वृत्तिः करः पात्रं यस्यैतानि परिग्रहः ।। (४१)
शिवभवनपु-

२९ — — ‿ (पा ?) रं यदासीत्तदखिलमुपलोधैः पूरयित्वा गभीरम् ।
समतलसुखगम्यं प्रागणं कांतं ममृणतरशिलाभिः कारितं वं (ब) धयित्वा ।। (४२)
विश्वकर्म्मेव सर्व्वज्ञो वास्तुविद्या (म)-
— ‿ — (।।) – (४३)

(ये) न निर्म्मितमिदं मनोहरं शंकरस्य भवनं समंडपम्
(स) र्व्वदेवमयचारुतोरणं स्वर्गखंडमिव वेधसा स्वयम् ।। (४४)
गंगाधरवरभवने करणिकथीरुकसुतेन भक्तेन ।
अक्रियतेयं सुगमा प्रशस्तिरिह धीरनागेन ।। (४५)
यावच्छंभो ‿ —

३१ — ‿ ‿ नसुरनदीचन्द्रलेखापतित्वं
यावल्लक्ष्मीर्मुरारेरुसि विलसति द्योततै कौस्तुभं च ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गायत्री याव (दा) स्ते सततमुपनता प्रेयसी व्र (ब्र)ह्मणोन्ते
कैलासाकारमेतत्प्रतपतु भवनं हर्षदेवस्य तावत् ।। (४६)
अ — — — —

३२ (ह) तः शंभु कथै कालस्य गोचरः ।
हर्म्मानिम्र्माणकालस्तु यथादृष्टो निव (ब)ध्यते ।। (४७)
सम्वत् १०१(३) आषाढ़ शुदि १३ शंभोः प्रासादसिद्धिः ।।
जातेव्दा (ब्दा) नां सहस्त्रे त्रिगुगनवयुते सिंहराशौ गतेर्क्के
शुक्ला यासीत्तृ (ती)–

३३ (या) शुभकरसहिता सोमवारेण तस्याम् ।
आदिष्टः शंभुनासौ (ध्रुव) ममलपदं दितनुना शुद्धसत्वं (त्त्वं)
लव्धा (ब्धा) वैदेहभावं शिवभवनभभिप्रस्थितो ह्मल्लटोद्य ।। (४८)
स्वस्ति । सम्वत् १०३० आषाढ़शुदि १५ निरुद्धं यदालव्ध (ब्ध) शासना (नां)–

३४ त्रेव लिख्यते । **महाराजाधिराजश्री सिंहराजः** स्वभोगे तूनकूपकद्वादशके
सिंहगोष्ठं ।।
तथा पट्टव (ब) द्धकविषये त्तैकलककेशानकूपौ । सरः कोट्टविषये कण्ह-
पल्लिकामेवं ग्रामांश्च -तुर श्चद्रांकशिखरोपरि— — — (भ)

३५ गवते श्रीहर्षदेवाय पुण्येहनि **श्रीमत्तुष्करतीर्थे** स्नात्वानाच्चर्नविलेपनोपहार-
धूपदीपपर्व्वयात्रोत्सवार्थमा शशांकतपनार्ण्णवस्थितेर्याविच्छासनत्वेन प्रददौ ।
तथैतद्भ्राता श्रीवत्सराजः स्वभोगावप्तजय (पु) पुरविष)-

३६ ये कर्द्दमखातग्राममदाच्छासनेन । तथा **श्रीविग्रहराजेन** शासनदत्तग्रामद्वयमु-
परिलिखितमास्ते । तथा श्रीसिंहराजात्मजौ श्रीचंन्द्रराजश्रीगोविंद राजौ
स्वभोगावाप्तपट्टव (व) द्धमविषये ।
दर्भकज्ञविष (ये) — — —

३७ (षा) संख्येन स्वहस्तांकितशासनौ (गृ ?) — (द)के पाटकद्वयं पल्लिका-
ग्रामौभक्त्या वितेरतुः ।
श्रीसिंहराजीयदुः साध्यश्रीधंधुकः खट्टकूपविषये स्वभुज्यमानमयूरप (द्र)
ग्रामंस्वाम्यनुमतः प्रदत्तवान् ।......

३८ हिलात्मजः श्रीजयनराजः स्वभुज्यमानकोलिकूपग्रामं भक्त्या हर्षदेवाय
शासनेन दत्तवान् ।। (।।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा समस्तश्रीमन्मह (दे) श्या शाकंभर्यां लवणकूटकं प्रति विंशोपकमेकं दत्तं । तथोत्तराप-

थीयहेडाविकानां (स) — — — —

३९ (प्प) घोटकं प्रति द्रम्म एको दत्तः । (।।) पुण्यात्मभिर्दत्तानि देवभुज्यामानेक्षेत्राणि यथा ।

म (द्रा) पुरिकायां पि (प्प) लवालिकाक्षेत्रं निम्व (म्ब) डिका (ग्रा) मे दर्भटिकाक्षेत्रं मरुपल्लिकायां (झा) टक्षे (क्षं) (ह) र्षे) लाटक्षेत्रं-- — — —

४० — — (क) लावणपद्रे सेम्यकक्षेत्रं तथात्रैव हिहलिकानं (दि) सोमके वृहद्धलमिति ।।

सर्व्वानेतान्भाविनो भूमिपालान्भूयो भूयो याचते रामभद्रः ।
सामान्योयं धर्म सेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भि ((।।)) (४९)

चाहमान वंशो राजा विग्रहराज (बीसलदेवोपनामकस्य) का दिल्ली–स्तम्भ लेख

(सम्वत १२२०)

ओं ।। संवत् १२२० वैशाख शुति १५ ।।

शाकम्भरी भूपति श्री मदावेल्ल देवात्मज श्री**मद्वीसल देवस्य** ।।

।। ओं अम्भो नाम रिपुप्रियानयनयोः प्रत्यर्थिदन्तान्तरे
प्रत्यक्षाणि तृणानि, वैभवमिलत्काष्ठं यशस्तावकम् ।
मार्गो लोकविरुद्ध एव विजनः शुन्यं मनो विद्वषाम्
श्रीमद्विग्रहराजदेव ! भवतः प्राप्ते प्रयाणोत्सवे ।। १ ।।

लीला मन्दिर सोद रेषु भवतु स्वान्तेषु वाम भ्रुवाम्
शत्रूणां तु न विग्रहक्षितिपते न्याय्योऽत्र वासस्त व।
शङ्का वा पुरुषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारां निधे-
निर्म्मंथ्यापहृतश्रियः किमु भवान् क्रोडे न निद्रापतिः ।। २ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ओं ।। अविन्ध्यादाहिमाद्रे र्व्विरचित विजयस्तीर्थयात्रा प्रसङ्गा—
दुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः ।
आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छ विच्छेदनाभि-
र्हेवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते **वीसलक्षोणिपालः** ।। ३ ।।
ब्रुत्ते (? ब्रूते) संप्रति**चाहमान तिलकः** शाकम्भरी भूपतिः
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तान जानात्मनः ।
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः
शेषस्वीकरणाय माऽस्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः ।। ४ ।।

सम्वत् श्रीवि (१ वैं) क्रमादित्ये १२२० वैशाख शुति १५ गुणै ।। लिखित-मिदं राजा ऽऽ देशात् ज्योतिषिक श्री तिलकराजप्रत्यक्षं गौडान्वयस्थमाहवपुत्र श्री पतिना । अत्र समये महामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक्षण पालः ।।

कवि गंगधर का गोविन्दपुर–अभिलेख

(शक सम्वत् १०५९)

१ ओं (।।) ओं नमः सरस्वत्यै ।।
एकचोन्नतगात्रगौरवभरात् प्राप्ते तथा नम्रता
मन्यत्र श्रियमुद्वहत्यतिलघुं तङ्गे गुजङ्गेश्वरे ।
वक्षः सम्मुखसम्भृतस्तनतटीसङ्गोपसर्प्पत्सुखं
निद्रा (णो) ‿ —
२ द (यां) दयातु दयितामाश्लिष्य विश्वम्भरः ।। (१)
देवोजोयात्रिलोकीमणिरयमरुणो यन्निवासेन पुण्यः
शकद्वीपपस्म दुग्धाम्व (म्बु) निधिवलयितो तत्र विप्रे मगाख्या ।
वङ्गस्तत्र द्विजानां भ्रमिलिखिततनोर्भ्रा (र्व्भा) स्वतः स्वाङ्ग— — —
३ शाम्वो यानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति ।। (२)
तेषां स प्रथमः समस्तनिगमज्ञानात्मविद्यापदं
वु (बु) द्धया व्यापृत एव नित्ययजनव्यापारपारीणया ।
भारद्वाजमुर्निर्व (र्ब) भूव भुवनोद्धाराभिपातौ तपः
— —
४ यस्य मुखे **मगद्विजमहावंशावतन्सोपमः** ।। (३)
गोत्रश्च तस्य शतशाखमभूदभूतपूर्वैस्तपोभिरथ सुप्रसरैर्यशोभिः ।
यत्रापरे प (र) मतत्वविदोनवद्यविद्यावदातमतयः पतयो द्विजानां ।। (४)
कालेना ‿ ‿ — — —

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५ विलुप्लविलसद्विद्याधने धन्विनां
वीराणां धुरि चक्रपाणिरभवद्दामोदरस्यात्मजः ।
यो वाल्मीकिरिवावतारितगिराधारः स विश्वस्थि (ते) –
र्व्वङ्गस्य ◡ ◡ — चतुर्मुख इव ख्यातो गुणिग्रामणीः ॥ (५)
अतिस्थिरा पृथुः . . . —

६ त्कीर्त्तिर्ग्गरि (मास्प) दं ।
दिक्चक्रं यदि नारूढा तद्भ्रमत्यन्यथा कथं ॥ (६)
जातौ वासवकेशवाविव सुतौ तस्मात्प्रसन्नामरौ
मारीचादिव कस्य (श्य) पादुपचितां धर्त्तुं कुले सत्क्रियां ।
ज्यायांस्तत्र मनोरथो दशरथस्तस्यानुजन्मा (ययो)–
७ विद्या(चा) रशुचित्वशीलविलसत्कीर्त्या पवित्रं जगत् ॥ (७)
मुख्यत्वेन सतां यशोभिरखिलोहीतैः स्वकर्ण्णश्रुतैः
सन्मित्रोपगमेन तैरतिभृतैर्भोगैरयलोप (गैः) ।
भ्रात्रोरत्न यत्रोर्नरेन्द्रनिहितैः सप्रेमभिः प्रस्य(श्र) यै-
८ श्यामनि द्विषदाननानि विदधे शुभ्रोप्यदभ्रो गुणाः ॥ (८)
तौ भ्रातरावतितरां सहजोदितेन प्रेम्णा परस्परमनोहरणाभिरामौ ।
सौहार्दहृद्यचरितेषु यचोरधीरः कालोपि नस्खलितमाप कलिः कदाचिद् ॥ (९)
९ आनीतौ निजराज्यमुज्ज्वलयितुं यत्नात् प्रतीतात्मना
सम्वासाय नरेश्वरेण शिविरी श्रीवर्ण्णमानेन तौ ।
तस्याज्ञामवलम्वा (म्बा) तत्कुलमिदं ताम्यामपि प्रापितं
काञ्चित् कोटिमनुत्तरां गुणभुवः कीर्त्तेर्विभूतेरपि ॥ (१०)
आ

१० सि(न्धोर्ग्ग) णनीयगौरवगुणेनैकेन (से) व्येनयो-
स्तस्मिन्मानपतेर्म्महीयसि गृहे प्रापि प्रतीहारता ।
अन्येनापि पुनम्मह(ल्ल) कधुरा व्यस्तेति विस्तारिणा-
वेतौ सत्त्वनयैर्व्व(र्ब) भूवतुरिह प्रक्षैकविज्ञानिकौ ॥ (११)
गत्वा श्री-

११ पुरुषोत्तमं (भग) वयोहृद्यः प्रतिष्ठापदं
पारावारतटे पटीयसि लसच्चन्द्रग्रहातेहसि ।
सर्वस्वम्विततार तर्प्पितपितृस्तोमः करोल्लासितै-
स्तोयैर्यः पिहितस्य पर्वणि विधोः साहाय्यमाप क्षणं ॥ (१२)
सात(त्य)-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१२ न्नित्यकृत्या (हु) तिभिर पचित्तौ चन्द्रमौलेस्त्रिकालं
न्यस्ताभिर्यस्य शैवागममहितमङ्गामन्त्रपूतान्तरस्य ।
एत: स्वेतोज्जगार त्रिजगति विदितादाश्रया(न्ध) त्वदोषा-
दिद्धं धूमच्छलेनोज्जवलरुचिरचिरात्रिहुतं हो-
मवह्निः ॥ (१३)

१३ श्वेतार्द्धे तं श्रयति (पितृभो) त्यात्मनो (निस्पू (ष्पू) भार्धं)
धत्तेनन्तप्रमि(तिरमि) तां शक्तिमुन्मुक्ततर्क्कम् ।
यस्यैश्वर्यं प्रथयति विभोः कतुरित्यद्भुतश्री-
र्भ्रान्ति लोकस्थितिषु भजते भूयसीन्धर्म्मकीर्त्तिः ॥ (१४)
यस्य श्रीमग-

१४ धेश्वरो (नयवशा) न्नीतिप्रयोर्गा(ख) ल-
प्राग्भा(रा) नुभवैरचुम्बि(म्ब) तमतिर्व्यासाभिधानं व्यधात् ।
राजास्थानसरः सरोरुहमिति स्वैरं पुरः क्ष्माभृतां ।
गीतो नूतनकालिदास इति यः कालेषु वैतालिकैः (१५)
यः सन्मन्त्रिषु चा —

१५ तुरीपरि (च) यैर्व्वाचस्पतिः प्रस्तुत-
प्रज्ञासर्गविरिञ्चिरुच्चरि(तै) रौचित्यचिन्तामणिः ।
सद्भवप्रभवो गभीरिमगृहं र(त्न) त्रयीतात्त्विको
भाषासु प्रतिभाप्रभुः कविकलासन्दर्भगर्भेश्वरः ॥ (१६)
स्मोरापारपरोका-

१६ रपरमः प्रेमोपचारोत्तर-
व्याहारैर्ज्जनतानुराग(र) चनाचातुर्य चर्यगुरुः ।
धौरेयः सुधियां सुधानिधिकलामौलेः सदाराधन-
ध्याने जन्म निजं निनाय सुजनः स्वान्तेन शान्तेन यः ॥ (१७)
पत्नी तस्य मनोरथस्थ कृ-

१७ तिनश्चारियामु(द्रा) पदं
(धौ) डीदेशनरेशशुद्धसचिवश्रीदेवशर्मात्मजा
मू(र्त्तं) स(त्य) मरुन्धत्तीव जग(तां) वन्द्या सतीनां धुरि
श्रीमत्शङ्कर (आ?) वि(रं) कुर (मि) तुं सत्पुण्यवीजा (न्य) भूत् ॥ (१८)
(ना) पत्यं चिरमापतुर्यदुचितं तेनैव तौ दं-
पती

१८ सम्यत्तावपि नूनमन्वभवतां सन्तापमन्तस्ततः ।
मामाराधयतन्मुधेयमरतिर्भावी सुतस्तेन वां
गत्वेति स्वयमादिदेश गिरिशः स्वप्ने समीपं ययोः ॥ (१९)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुप्रीतयोर्भ (र्भ) गवतो मम नामधेयमाधेयमस्य पुन-
रित्यनुशासनेन ।

१९ स्वाराधितस्मरहरस्वरमानुरूपो रूपानुमेयसुनयस्तनयोजनिष्ट ॥ (२०)
गङ्गाधराख्य स ततो जितात्मा यः शैशवाद्विश्वजनीनवृत्तः ।
विवर्द्धमानः परलोकभीत्या सदात्मनीनं नयमातता
न ॥ (२१)

२० अभवदनुजो महीधर इति पुत्रौ श्रीमनोरथादुदितौ ।
आशीर्वराभिनन्दौ हरिहरपुरुषौत्तमौ दशरथात्तु ॥ (२२)
सत्कल्पप्रवणाः श्रुतिप्रणयि (नः) **शिक्षाभि**रुद्भासिताः
सज्**ज्योतिर्ग**तयो **निरुक्त**विशदाश्**छन्दोवि**-
धौ साधवः ।

२१ (ख्या) ता **व्याकरण**क्रमेण विदुषाम (त्युच्च) धीशील (ना) –
द्वेदाङ्गप्रतिमाः षडेव भुवने ते वि(बि) भ्राति भ्रातरः ॥ (२३)
तदन्तरे माननरेन्द्रचन्द्रामाः स रुद्रमानोजनि येन भूभुजा ।
स्वमेदिनीमण्डलमादिकोलवद्बलादमित्रा
म्बु (म्बु) निधेः समुद्धृतं ॥ (२४)

२२ पाणि (द्दनिचणः प्रभौघ) लह (री) वक्तञ्च यस्य स्वयं
मार्यादास्थितिमान्स एव जगतां जीवातवश्चेत्कृताः ।
तत्किं कल्पलताद्यहीन्द्रकमठौ सा चित्रभानुद्वमी
पद्येन्द्रं निधयोम्भसामिति विधेर्द्धिक् प्रक्रि
यागौरवं ॥ (२५)

२३ सूक्ष्मं दिक्करिदन्तकोटिमटितुं क्रा (न्तौ)? गि (री) णां ल (घु)
व्याप्तुं व्योम पृथुस्थिताविह दिशि प्रोतं वशि भ्रान्तिषु ।
क्षीराब्धी (न्दु) सुधादिषुः प्रभवति व्र (ब्र) ह्माण्डगर्भा (र्भा) द्व (हि)
न्निर्यात्यस्ति यथेत्थ (मी) श्वरगुणैरित्युद्भुतं यद्यशः ॥ (२६)

२४ युद्धे व (ब) द्धोत्सवरिपुभटश्रेणि (सिद्धः) सदा यो
व (ब) न्धुः शुद्धो विपदि विसरत्कार्यानिसमीमा ।
श्रेयान् सभ्यः सदसि विशदे विश्वविश्वासपात्रं
पातुं मित्रं हृदयमितरत्तस्य गङ्गाधरो ऽभूत् ॥ (२७)
आचाराभ–

२५ रणः सुभाषितचणः सन्नीतिरत्नापणः
प्रागल्भीरमणः प्रशान्तकरणः कारुण्यपारायणः ।
यः सौजन्यनिधिः स्थितावनुपधिः सख्यस्य मुख्यो विधि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वीरत्वेनवधिर्व्विधूतवितथव्याधिर्द्धियां सेवधिः ॥ (२८)

२६ गौडराजसुहृदो जयपाणेराधिकारिकपदोपपदस्य ।
आत्मजामुदवहत्सुभगायाः पेशलां स किल पासलदेवीम् ॥ (२९)
आक्रान्तो न वृषः कदापि गतये यस्मिन्न होनाङ्गना
रौद्री नाद्रियते स्थितिर्न्न गणितास्ता
गोत्रभित्सङ्कथाः ।

२७ अन्योन्यास्यविलासवञ्चितदृशोरेकं वपुर्व्वि (र्ब्बि) भ्रतो-
स्तत्प्रायः शिवयोरपीदमनयोर्दाम्पत्यमत्यादृतम् ॥ (३०)
सन्तोषर्ज्जवधैर्यसंयमदमानुक्रोशशान्तिक्षमा-
मैत्रीसत्यसमाधिमग्नमन-
२८ सो नारायणैकात्मनः ।
दम्भद्रोहविमोहलोभममतामात्सर्यमायामद-
द्वेषेर्ष्यादिनिसूदनस्य चरिते यस्मात्न साक्षी जनः ॥ (३१)
तेनात्र दुः शकमसीम सहस्त्रकृत्वः कृत्यं स्वभर्तुरुचितोन्नतये समाप्य ।

२९ आवा (बा) ल्य) यौवन (मसु) प्रतिरोधि व (ब) न्धुलोकस्य चेतसि चमत्-
कृति राचितैव) । (३२)
(य) स्याद्वैतशते स्वयंविरचिते किञ्चित्कवित्वश्रमः
स व्र (ब्र) ह्मोपनिषत्कथास्वधिगमः शुद्धो विरुद्धोथवा ।
भाव्यः शू (सू) रिभिरेव चित्रकवि-
तायास स्तुतो दुस्करे

३० भारत्याः कुरुतेपरा न्निजगुणप्रस्तावनां केन सः ॥ (३३)
धा (त्वा ?) वर्त्तवशाद्विसृत्वरतरुप्रासादसद्यादिक-
व्यक्ताकारकदम्ब (म्ब) मम्ब (म्ब) रमनु स्वेनोद्भवत्यभ्रि (भ्रि) यं ।
स्थित्वा तत्क्षणतो विपन्नमपुनर्भ्भा (र्भा) वा-
द्यथेदं तथा

३१ मत्वैव त्रिजगन्ति येन जनितः सत्कर्म्मधर्म्मादरः ॥ (३४)
पुण्योत्पत्तिनिमित्तमय निजयोः पित्रोः पवित्रात्मना
कीर्त्त्या तेन तयोश्चिरं रचयता शुभ्रातपत्रं जगत् ।
कासारोयमकारि पारदर-
३२ सच्छांयाभृतामम्भसां
यस्मिन्नूर्मिमिषाद्यशस्तदमलं मूर्त्तन्नरीनृत्यते ॥ (३५)
स्वकीर्त्त्या सरसस्तत्र प्रतिष्ठासमयोत्सवे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुभ्राम्व (म्ब) रपरीधानं जगत्तेनात्र कारितं ॥ (३६)
आकाशः पवनः कृशानुरुदकं धात्रीति लोकत्र-
यी-
३३ मूर्त्या व्र (ब्र) ह्म विवर्त्तमानमयते यावद्विचित्राङ्गतिम् ।
नेत्रश्रोयमनः प्रसादसदने तावत् सतामादरा-
दुन्निद्रां मुदमान्तरेषु कुरुतां कीर्त्तिप्रशस्ती इमे ॥ (३७)
क्व शक्तिव्युत्पत्तिव्यतिकरविरोधेन सुलभाः
कवी-
३४ नां पन्थानस्तदिह ननु केषामनुगमः ।
स्वपूर्त्ते त्वेतस्मिन् सुजनजनितोनुग्रहगुणः
प्रशस्तौ प्राशस्त्यं वितरति स गङ्गाधरगिराम् ॥ (३८)
नन्देन्द्रियाश्र्वेन्दुसमे शकाव्दे (ब्दे) रुद्रात्मजश्चोद्धरणस्य नप्ता ।
इमां शि-
३५ लाशिल्पिवरः प्रशस्तिं स शूलपाणिः स्वयमुच्चखान ॥ (३९)
शाक १०५९ (॥)

मालव नरेश का नागपुर अभिलेख

(विक्रम सम्वत ११६१)

१ ओं (॥×) ओं नमो भारत्वै ॥
प्रसादौदार्यमाधुर्य समाधि समतादयः ।
युवयोर्ये गुणाः सन्ति वाग्देव्यौ तेपि सन्तु नः ॥ (१)
एक एव भुवन त्रयेगि स श्री पतिर्भवतु वो विभूतये ।
यस्य मध्यमपदश्रितोप्यमी भास्करप्रभृतयश्च का सति ॥ (२)
जातिं कृत्तञ्च वि (भ्राणा) गु-
२ णालंकार चारवः ।
सरसाश्च प्रसीदन्तु सूक्तयः सूरयश्च नः ॥ (३)
दुर्हरारिपुरभङ्ग भाषणो भूरिभूति मविशे (षभूषणः ।
(रा) जराज कृतसत्क्रियः क्रि याइह्निवंशसदृशः शिवः शिवं ॥ (४)
जाता महार्ण्णवोत्पन्ने व्र (ब्र) ह्माण्डशुक्ति संपुटे ।
महेश (स्यार्च्चि)—
३ ता भुक्ता जयन्त्यम्भो जयोनयः ॥ (५)
वैराग्यं च सरागतां च नृशिरोमालां च माल्यानि च
व्यघ्ननेकपचर्म्मणी च व ने चा हींश्च हारादि च ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यङ्भ्रति च विलेपनं च भजते भीमं च भव्यं यत-
द्विश्या द्रुपमुमारमारमणयो भुक्तिं च मुक्तिं च वः – (६)
वैश्वरूप्यं सम(भ्य)-
४ स्य मीनाद्याकृति कैतवात् ।
स्वभिन्नर्निर्म्मताशेष विश्वो विष्णुः पुनातु वः ।। (७)
अस्ति ग्रस्तम गिरीन्द्र गर्व्व गरिमा नीलाश्मसानूल्लस-
त्कान्ति व्रात विडम्वि (म्बि) ताम्ब (म्ब) र तलः श्रीमान्नगेन्द्रोर्व्वु (र्ब्बु) दः ।
यस्य व्योमतलो दिङ्गि शिखर प्राग्भर पद्याकर-
प्रङ्खत्वपद्मराग च क्रमि-
५ तरत्र (ब्र) ह्माण्डखण्डायते ।। (८)
देवैरा वृतमभ्रण्डलमिदं भर्त्यैश्च भूमण्डलं
कृत्वा धर्म्म तुला यमानवपुषो यस्यान्तयोर्न्यस्य च ।
जाने या वदवैतुमिच्छति विधिः किं शुङ्ग भित्ये तयो-
रूंर्द्ध तावदगादमर्त्त्य शिखररिस्तम्भान्नमोमण्डलं ।। (९)
लेभे विभिद्य जलधिप-
६ धिभूमि चक्रमाकाश चक्रमपि येन दिगन्त नेमि ।
संसार वर्त्मनि महाविषमे निषन्न (ण्ण) भग्नोन्नतैकतटविश्वरपाक्ष लक्ष्मीः ।।
(१०)

तस्मिन्वेदविदां वरः स भगवानाकाशगङ्गापयः-
पूरप्लावितकान्त कोमलतटे तिष्ठद्वसिष्ठो मुनिः
यस्त्रेतानलधूम वर्त्तियमु-
७ नां प्रीत्यै पितुर्व्र (ब्रं) ह्मणो
शङ्गासङ्गम सिद्धये समनयद्व (द्ब) ह्माण्डखण्डं प्रति ।। (११)
विद्यामहासरिदुपान्त विवर्त्ति घोर संसार सैकत विषक्त मसक्त मेते ।
यस्य त्रिलोकरथमुत्पथसंप्रवृत्त मुत्ता रचन्ति शतशोष्यु देश धुर्याः (१२)
आयातस्य कदाचन क्षितिपतेराच्छिन्दतः कौशिक-
स्यति-
८ थ्योचित वस्तुजात जननादानन्दिनीं नन्दिनीं ।
निर्ज्जेता कुपितेन तेन हविषा संर्हषिबाद्ध (द्ध) र्हिषो
वीरः श्रीपरमार इत्यनुपमः सत्याभिधानो भवतः ।। (१३)
राज्य वर्द्धन विशालधर्म्म भृत्सभृत्सत्यकेतु पृथु कीर्त्तिपार्थिवः ।
वर्डघतेयम हिमांशुचन्द्रमः संतति प्रति कृतिर्य दन्वय । (१४)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

९ वराजरामराजितो न लोद्भवः सभारतः
ग्रहेन्द्र चन्द्र योरिव व्यजायतायमन्वयमः ॥×॥ (१५)
वंशेस्मि न्वैरिसिंहः क्षितिपतिरभवद्भूरि भूति प्रभाव-
प्रागल्भ्यौदार्यशौर्य प्रचयपरिचय प्राज्यसौराज्य सिङ्घः ।
नम्रक्ष्मापालयाल स्थल दलित ललुत कान्तकोटीर-
१० कोटि-
त्रुट्यन्माणिक्य चक्रस्थ पुटित मणि मत्पाद पीठीप कण्ठः ॥ (१६)
सर्व्वाशा विजय प्रयाण समये यस्येन्द्र नीलप्रभै-
मर्मापूरात वारणैः शुशुभिरे नष्टा वकाशा दिश—
सर्पोन्मत्तकरीन्द्र चक्र चरण प्राग्भारदीर्णस्थिरा
रन्ध्रोद्भूतविषन्न (ण्ण) शेष सविष
११ श्वासापरुद्धा इव ॥ (१७)
पाताले वड वामुखानलमिषात्पृथ्वीतले च स्फुर-
त्सोवर्ण्णा चल कैतवाद्वयति च व्र (ब्र) ह्माण्ड खण्डच्छलात् ।
(च) ञ्चत्काञ्च न चक्रवाल वलय व्याजच्च दिङ्मण्डले
यस्याद्यापि समुल्लसत्य विचलौभूतः प्रतापानलः ॥ (१८)
स्वर्ल्लोकेषु च विद्विषत्क्षितिषु च व्यालेन्द्र रोहेषु च
१२ स्वराजं च रिपुव्रजं च मुरजिन्नागाधिराजं च यः ।
ऐश्वर्येण च विक्रमणे च धराभार क्षमत्वेन च
न्यक्कुर्व्वंश्च पराभवंश्च समतिक्रामंश्च पृथ्वीभयात् ॥ *(१९)
तस्माद्वैरिनृपावरीधनव धुवैधव्य दुःखोद्भव-
द्वा (वा) ष्पाम्भा ⌣ कणशान्तकोपदहनः श्री**सीयकोभून्नृ**पः ।
१३ आविर्भावितनूतन स्थितिरभं व्र (ब्र) ह्माण्डखण्ड च्छला-
द्यस्याद्यपि विलोक्यते विय (द) धोधूमः प्रतापा नलः ॥ (२०)
अनुगगनमुदस्थुः स्थूलमुक्तोत्त्यया ये पदसिदलित कुप्यत्कु-
म्भिकम्भस्थले यः ।
सततमपि पतन्तस्तेद्य यवन्न पृथ्वीं पृथुलतरलताराव्या-
१४ जभाजो भजन्ते ॥ (२१)
अत्याश्चर्यमदृष्टमश्रु तमिदं कस्मै सभान्वक्ष्महे
को न्वेतत्प्रतिपद्यते चतदपि प्रस्तूयते कौतुकात् ।
उद्धृत्यापि वसुंधराम् सदृशीं लव्धृा (ब्ध्वा) पि लक्ष्मी च यः ।
कुर्व्वंन्कार्यमनेकशः सुमन सा मागान्न वैकुण्ठतां ॥ (२२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्पनाद्वै—
१५ रिव थिनीव(ब) हुविधप्रारव्ध(ब्ध) (यू)द्धध्वर-
प्रध्वंसैकपिनाकपाणिरजनि **श्रीभुञ्चराजो नृपः** ।
प्रायः प्रावृत वान्दिपाल विषया यस्य प्रतापानलो
लोकोलोकमहामहोध्रवलयव्याजान्महीमण्डलं ॥ (२३)
यस्मिन्मर्प्पति लीलयापि ललितैः सैन्यैः समुज्जृः—
१६ म्मितं
वाहव्यूहविसारिधूलिपरलव्यालुप्त दिग्मण्डलैः ।
अत्यद्री (न्द्र) करीन्द्र (सञ्च) यपद प्रेङ्खोलनोच्छृङ्खल-
प्रेङ्खच्छृङ्खलनादनिर्भरभृतव्र(ब्र)ह्माण्ड भाण्डोदरैः ॥ (२४)
यन्निस्तृं(स्त्रिं) शनिरस्तमस्तकतया लव्ध्वा (ब्ध्वा) न्यथा दुर्ल्लभं
देवत्वं स्वकव(ब) न्धुभु (द्ध) तमधो दृष्ट्वा भटै-
१७ र्व्वोष्टतं ।
संहर्षात्पततोविमानशिखरादाश्लिष्य कण्ठे हठा-
द्वीरा(न्भङ्ग) रणगिणो रुरुधिरे संभूय सिद्धाङ्गनाः ॥ (२५)
तस्यासीदथ पार्थिवः पृथुयशाः श्रीसिन्धुराजोनुजः ।
स्फूर्ज्जद्वाङव्यावकस्फुट(म) हः (सौन्द) र्यशौर्यानिलः ।
यः संग्रामयु-
१८ गान्तवल्गितभुजा दुर्ब्बतदूरोल्लास-
त्कल्लोलायितमण्डलाग्रद (ऽ) त्तेनामज्जयद्भूभृतः ॥ (२६)
व्रजति जयिनि यत्रामित्र जातेन जज्ञे तरल तुरगवेगोद्धूतभूरेणुराजिः ।
विकल्करटिभारभूष्टपृष्ठ रन्ध्रावुदित इव समन्तादन्त कालाग्निधूमः ॥ (२७)
गाम्भीर्यं द्रल-
१९ चार्न्यावस्य चं व(ब) लंकल्पान्त वातस्य च
स्थेमानं कमठे शितुथ (गुरु) तां (व्र(ब्र) ह्माण्ड) भाण्डस्य च ।
तेजः कालहुताशनस्य च महीयस्त्वं छुचक्रस्य च
स्वीकृत्येव विनिर्म्मितं यमविदुं प्रत्याजि पृथ्वी भुजः ॥ (२८)
तत्सूनर्मुवनैक भूषणमभूद्भूपालचूडामणि-
२० च्छायाडम्ब(म्ब) रत्तुम्वि (म्बि) तांहिकमलः **श्रीभोजदेवो नृपः** ।
यस्याद्या(षि) स(भाश्र) यन्ति चरणौ शक्रासना (ध्वा) सिनः
स्पर्द्धाव(ब) न्धविनम्र निर्ज्जर नटत्कोटीरकोटित्विषः ॥ (२९)
रटत्पटपाटवव्रकटम्भर्ज्झरस्फूर्ज्जितस्फूरडडमरु-
डम्ब (म्ब)रोडडमरिडण्डि भोडडामरा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२१ स्फुटत्करटकुञ्चरप्रपद संपततसंभ्रमभ्रमद्भ्रुवन
(म)भ्रमज्जग (ति) यञ्चमू (रुच्च) कैः ।। (३०)
क्कुण्ठः कमलासनाय चतुरास्याय स्वयंभू पुनः
पञ्चास्याय हराय शम्भुरपि वड्वक्त्राय पुत्राय च ।
सनानीरपि दन्द शूकपतये जस्रं सहस्रानना -
याद्यापि स्पृहय-
२२ त्यमर्त्त्यसमिती य (त्कीर्त्ति) मुत्कीर्त्तयन् ।। (३१)
तस्मिन्वासवव (व) न्धुतामुपगते राज्ये च कुल्याकुले
मग्नस्वामिनि तस्य व (ब) न्धुरुदयादित्यो भवद्भूपतिः ।
येनोद्धृत्व महार्ण्णवोपमभिलत्कर्णाटकर्ण्णप्र (भु) -
सुर्व्वोपालकर्दथितां भुवमिमां श्रीमद्वराहापितं ।। (३२)
२३ य-
स्मादुग्रतरप्रताप (पवनो) पारुढदुर्द्दर्शता-
सादृश्योत्थरविभ्रमाद भिमुखैः प्रपिञ्च यैः पञ्चता ।
मन्ये सोयमित प्रतीति विततामर्ष प्रकर्षेण ते
भि (त्वा) भास्करमण्डलं रिपुभटाः प्रापुः परां निर्वृतिं ।। (३३)
एकस्यां समितौ विलोक्य विजयं य-
२४ स्यापरस्यां स्तुव-
(न्स्वी?)—(वक्त ?) तां समर्थयति दृगिजह्वसहस्रद्वये ।
किंत्वानन्दनिमीलितेक्षणतया श्रौतैः सुखै र्व्वञ्चित-
श्चक्षुः कर्ण्णभकर्ण्णमप्यहिपतिः स्वीयं वपुर्निन्दति ।। (३४)
पुत्रस्तस्य जगत्रयैकतरणेः सम्यक्प्रजापालन-
व्यापारप्र-
२५ वणः प्रजापतिरिव श्रीलक्ष्मदेवोभवत् ।।
नीत्या येन मनुस्तथानुविदधे नासौ न वैवस्वतः
सर्व्वत्रापि सदाप्यवर्द्धत यथा कीर्त्तिर्न्नवैव स्वतः ।। (३५)
संभूय ध्रियतां गुरुर्व्व (व्र्वं) लभराद्धः कूर्म्मराजादयः
सद्यो नश्यत (वा द्रु) तं नमत वा प्रत्य
२६ र्थिपृथ्वीभुजः ।
चक्षुर्म्मक्षु पिधियतामनिमिषाः पांसु पुरा पुरय-
त्येवं व्याहरति प्रयाण पटहो यस्य स्वनच्छाद्मना ।। (३६)
यस्मिन्मर्प्प (ति) वा (बा) न्धवोपि विधुरैः पूर्व्वैः परित्यज्यते
कल्याणस्य कथापि कातरतया नापेक्ष्यते दक्षिणैः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशावल्लि रस-

२७ त्फलेति विकलैर्न्निश्चीयते पश्चिमै-
र्म्मर्त्तुं केवलमुत्तमैर्न्नृपतिभिर्द्वेधाप्ययोध्यास्यते ॥ (३७)
प्रयाति यस्मिन्नप्रथमं दिशं हरेर्जिहीर्षयानन्य समान दन्तिनां ।
यथाविगद्यौऽपतेः पुरंदर (स्तथा) शशङ्के सहसा पुरंदरः ॥ (३८)
उत्साहोन्नति सन्निमित्तजनि-

२८ ताजस्रप्रयाण क्रमे-
णाक्रम्य त्रिपुरीं रणै करसिकान्वि(ध्वं) स्व विद्वेषिणः ।
येनावास्यत विन्ध्यनिर्झरमरुत्संचारारुल्लस-
ल्लोलोद्यानलतावितानवसतौ रेवोपकण्ठ(स्थ) ले ॥ (३९)
जातानि जन्य श्रम मार्ज्जनानि वीजानियत्कुञ्जरमज्जनानि ।
तटा चलो-

२९ च्चाटनतत्पराभा रेवा प्रवाहोर्म्भि परं पराया : ॥ (४०)
ये व्यालोलकशल निर्झरकराः कुम्भाय माम्नोनम -
त्कूटान्ताः कटकान्तभागविगलद्दानायमानाम्भसः
प्रायस्तेपि विरोधिसिन्धुरधिया यद्वाहिनी वारणै-
रुन्मील न्मदमेदु रेर्व्वि (र्व्वि) भिदिरे विन्ध्यस्य

३० पदाचलाः ॥ (४१)
स्फार (त्वक्सा) खारस्थगितगुरुतटीकूट कुट्टाकटङ्ग-
प्रायप्रेङ्खत्खुराग्रत्परित(ह) रिचमू चक्र च (ङ्क्र)म्यमाणाः ।
येनालङ्घ्यन्त सेनाकरिकर टतटो दामदानाम्वु (म्बु) गन्ध-
व्या विद्धगण्यवन्यद्विपकुलपटलश्यामला विन्ध्यापादाः ॥ (४२)
ये दिक्सिन्धुख(व)–

३१ न्ध्वः क्षयमरुल्लोलाद्रिस (त्ता) भृतः
क्रीडा क्रोडकुटुम्व(म्ब) का(न्ति) जलमुव सव्र(ब्र)ह्मचर्याजुषः ।
यत्सेना नृपरान्धसिन्धुरमरुन्मैत्रीविहस्तीकृतै-
स्तैरप्यङ्ग कलिङ्ग कुञ्जर कुलैर्युद्धा(य) व(ब्) न्नोञ्जलिः
देवासौ पुरुषोत्तमः स भगवानाशिश्रिये यः श्रिया

३२ येनेदं व(व) लिवैरिव(ब) न्धविधिना विश्वं समाश्वसितं ।
येनाधारि वसुन्धरेति दधतः सानन्दमन्दाक्षतां
यस्य प्राच्यपयोनिधौ वु(बु)धजनैर्व्याजस्तुतिः प्रस्तुताः (४४)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ये कल्पानलधूमण्डलनिभाः कादम्त्रि (म्बि) नीविद्विषः
संवर्त्तोल्लासितान्धकारसुहृद स्त्रुट्य-
३३
द्विपद्वा (द्वा) न्धवाः।
(व)— — ⌣ ⌣ (आहव) श्रमनुदे पा(थो) वणहोद्यतै-
र्यत्सामन्तमतङ्ग ज़ैरधरितास्तेप्यम्वु(म्बु) धेरुर्म्मयः ॥ (४५)
कुम्भसंभव सोदर्ये यत्रा पाचीभुपा(च्छे) ति।
चोलाधैर्न्नी(च) कै (र्भूत्वा) विन्ध्यवा (बा) न्धवतादधे ॥ (४६)
ली(ला)म्भः प्लवने यदीयपृतनासामन्त-
३४
सीमान्तिनी-
श्रीणि (श्रे) णि (वशी) र्यमाणर (श) नामुक्ताः पतन्ति स्श्रयाः
ताभिः संप्रति पप्रथेनु पृथवीं यत्ताम्रपर्ण्णीपयः
पश्याद्यपि तदेव पाण्ड्रानृपते(र्ज्जी)वातवे(जा) य(ते) ॥ (४७)
स्वाभिन्नेष स सेतुटलभवतो रामस्य या मारुति-
प्रायोपाहृत-
३५ शैलशृङ्गरचितो वर्द्धि(ष्णविन्ध्या) यते।
इत्या(दृ)त्य कुतूहलेन कथितः तज्ञै (ज्ज्ञै) खज्ञाय यः
सेनाहस्तिक सेतुनैव विदधे द्वीपान्तरोपक्रमं ॥ (४८)
अथावभज्योभयथा यमाशां यस्या (नधे) सर्प्पति सैन्यसङ्घे।
अभूत्स्वकीयां ककुभं व्यपायाद्गो-
३६
पायितुं पाशभृदप्यपाशः ॥ (४९)
मैनाकपुमुखा वसन्ति कुहचित्कालाग्नि रास्ते क्वचि-
त्सन्ति क्वापि तिमिंगिलप्रभृतयः कुत्रापि शेते हरिः।
एत द्वेत्ति न कोपि यत्र जलधौ(त) स्याप्य (शेषं) पय (:)
(पीत्वा) यत्करिभिः कृतैकचुलुकैस्तैस्तै-
३७
रगस्त्यायितं ॥ (५०)
यै संभूय तिमिङ्गिलप्रभृतिभिः संसर्प्पिणस्त(न्व) ते
पोताधानसव(ब)न्धुतां शिखरिणो मैनाकमुख्या अपि।
भ्राम्यन्मन्दरडम्व(ब) राणि दधिरे तैरप्यशेषम्वु(म्बु) धौ
यत्सेनागजराज(पीव) रकरा ––⌣नो च्छृङ्खलै ॥ (५१)
अथातितिक्षो रिव राज-
३८
राजमन्यं तदाशां प्रति यस्य यातुः।
द्विधापि भीत्युज्झितवित्तपाशैर्भूपैः प्रतीपौर्व्विभयैर्व्व(र्ब्ब)भूवो ॥ (५२)
आरामाः समर मरावपि तथा पुन्नारापूगादिम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुल्मान्तर्व्वनदवत्ता पितजम श्री मद्यशः पादपाः ।
यस्यासन्भुजदण्डच (ण्डि) मलसल्लोलासिलक्षीकृत-
क्षीणीपालक-
३९ पालमण्डलगलत्कीलाल कुल्याकुलाः ।। (५३)
खेलोत्खाततुरुष्कदत्तविलसद्वाह्।वलोवेल्लन
ल्काम्यत्कुङ्कु भकेसराधिक भृदौ वंक्षूप कण्ठस्थले ।
येनावास्य सरस्वती सविधतासधिक्य वाक्पाटव
श्चाटूनुत्कट (प) त्रिपञ्चरगतः वीराधिपोध्यात्यत ।। (५४)
तेन व्यापुरमण्डले सुकृति-
४० ना यस्मै ग्रहेन्द्र ग्रहे
यद्ग्रामद्वयमग्रियेण विधिना विश्राणितं श्रद्धया ।
तद्भूता **नरवर्म्मनदेवनृपतिः** पश्चात्परीवर्त्य त-
द्ग्राम मोखलपाटका ख्य भदिशद्देशत्रयस्ये च्छया ।। (५५)
तेन स्वयंकृतनिक प्रशस्ति स्तुति चित्रितः ।
श्रीभल्लक्ष्मीधरेणैतद्दैवाणरमकार्यत ।। (५६)
सं० ११६१ ।।
ओं
४१ हंहो वु (बु) धाः साधु समुत्सहध्वं कुशाग्रकल्पां च
धियं विधध्वं ।
मध्यस्थभावं च समाश्रयध्वं सुख चनः सूक्तिसुधामुपाध्वं ।। (५७)
वन्दनीयावुभौ सूक्ति श्रोतारौ तौ विपश्चितौ ।
यावुश्रु मुञ्चतः सान्द्रमानन्दालस्यनिर्भ्भ (र्भ) रौ ।। (५८)

चोलवंशी अभिलेख-ऊत्तरमेरु

(अ) प्रथम पाठ

१ स्वस्ति श्री (।।) (मदि) र (ै)-कोण् (ड को=प्प) रकेसरिवर्मक्कुयाण्डु
पंणिरड्आवदु (।।) **उत्तरमेरुक्कट्** (र) वे (द्) इमङ्गलत्तु सभ (ऐ) यो (म्)
इव्वाण्डु मुदल ए (ङ) गल्=ऊर श्रीमुकप्पडि आञ्ञै-
२ यि (ण) आल तत्तनू (र-म्) उवे (न्द) वेलाण इरुन्डु व (आ) रियम्=
(आ) ग आट्ट=ओरुक्कालुम् (सम् (व) त्सर- व (आ) रियमुन्-डोट्ट-
वारियमुम् (ऐरि) वा (रिय) मुम् इडुवदड्कु व्यवस (थै) शेय-
३ द परिश=आवदु (।।) कुडुम्भु मुप (पद्=आप्) मुप्पदु कुडम्बिलुम् अव्वव-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुड् (म्) बिला(रे)य कूडिका=णि (ल) त्तुक्कु मेल इरै-निलम् उडैयाण तण मणैयिले अ-

४ गम् एडुट्टुकोंडु इरुप (पाणैय) अड ( ) ब ब (दुपि)रा(य) त्तुक्कु उल मुप्पदु पिरायट्टुक्कु मेल्पट्टार वेदत्तिलुम् शास्त्रत्तिलुम् का(र)य्यत्तिलुम् निपुअर=एराणप्पट्ट=इ-

५ रुप्पारै अ(र) त्थ=शौशमुम् आत् (म)- श(ौ) शमुम् उडैयर=आप् मूव्—(आ) ट्टिण इ-प्पुरम् वारियञ=ञेय-(दि)ल्(आ) त्त (आ)र (व) आरिपञ=ञेय्द=ओलिन्द (प) एरुमक्कलुक्कु-

६ अणिय बन्दुक्कल अल्लात्तार (ै) =क्कुडव् ओलैक्कु=प्पेर तीट्टि=चेरि-वलियेय तिरट (टि) प (ण) णिरंदु शेरियिलुम् शेरियाल ओरु-पे (र-आडु आम) एदुम्=उरु (व=अ) रियात्ताण=ओरु -

७ बाल(णै)=क्कोडु कुडव-ओलै (व) आङ्गवि(त्)तु=प्पणिरुवारुम् सम् (वत्स) र—वारियम्=आविद-आगवुम् अ (दि) ण मिणवेय तोट्ट-वारियत्तक्कु मेड़पडि कु (ड) व-ओ-

८ लै वाङ्गि=प्पणिरुवरुम् तोट्ट-वारियन्=(आ)-वद=आ(ग) वुम् (।।) निणड़ (अ) ड़- (कुड) व-ओलैय (उ) म् एरि-वारिम (म्=आ)-

९ वद=आगवु=मुप(प) दु कुडव=(ओ) लै प- (ड़ि) च्चु व(आ) रियम् शेयगिण (ड़) मुणड़(त) इड़त्तु व(आ)- रियमुम् मुण्णूड्ड़-अ(डुवदु)न् (आलु) म् नि रम् (वा) (व) आरियम् ओलि(द्) अणन (त) र (म्) इडु (म् वा) र (इ) यङ्गल (इ-व्य) वस्थै (य्-ओ) (ल) प्पडियेय कुडु-म्बुक्कु=क्कुडव-ओलै इट्टु=क्कुडव्-ओलै प(ड़िच) चुक् (को)न्ड (ए) य वा(रि) यम् (इ) डुवद्=आगवुम् (।।) वारियञ=जेयदार (क) कु बन्धुक्कलुम् श् (ए) रिगलिल् अ(न्योन्य) म्म् (ए)

१० म् म् कुडव-ओलैयि (ल्) पेर एलुदि इ (ड) प्पडादार=(आ) गवुम्(।।) पञजवार-वारि (य) त्तुक्कुम पोण-वारि-यत्तुक्कुम् मुप्पदु कुडु (म्) ब (इ) लुम् मुप (पदु) कुड (व=औ) लै इट्टु शेरिमाल् ओ(रु) त्तरै= क्कुडव्-औले पड़ि(त्) तु पणिरुवारिलुम् (अ) ड़ुवर (प) ञ्ज (वार)-वारियम्=आवद-आगवुम् (।।) अड़ुवर प (ओण)-वारियम्=आवद-आगवु (म्) (।।) समवत्सर-वारि(य)म् अल्लात्त।

११ वारिय(ङ)गल (ओ) रुक्काल शेय्दा(रै पि)राणै अ-(व)—वारियत्तुक्कु कुडव-औ-औ (लै) इड=प्पेड़ादद-आगवुम् (।।) (इ)-प्परिशेत्र=इव्व-आंडु मुदल च(न्द्र) आ (दित्त) वत ए (ण) डुम् (कु) डव-औले (वारि) यमेय इड्वद्=आग देवेन्द्रण **च(क्र) वर्त्ति (श्री) वीरनारायणं श्री परान्त-**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कदेवर्=आगि(य) परकेसरिव (र) मर श्रीमुगम् अ(रु) लिच्चेच्दु व (रक्क) आट्टि-

१२ श्री आन्यैमिणाल् तत्तनूर-मू(वे)न्द (वे)लान्=उडाण=इरूक्क नम् ग्रामत्त् (उ दु) ष्टर केट्टु शिष्टर वर्द्धि (त्ति) डुवार=आय (व्यव) स्थै शेत्र (डो) म् (**उत्त्**) **तरमे** (रु)-च (तुर्व) एदिमङ्गलत (तु) सभ (ऐ) योम् (॥)

(ब) द्वितीय पाठ

१ स्वस्ति श्री (॥) मदिरै-कोंड को परकेसरि-वन्म(र) क्कु भांडु पदिणा लावदु नाल पदिण- आडु (॥) कालिपूर- कौट्टत्तु तण-कूड़्डु **उत्तरमे**रु चतु (र)-वेदिमङ्गालत्तु सभैयौम् इव्व-आंडु मुदल (ए) ङ्गालुक्कु पेरु (म्) आण-अडिगल एमबेरुमाण श्री-वीरनारायन् श्री परान्तक-देवन् (श्री)—परकेस-रिवन्मरुडैय श्रीमुखम् वरक्काट्टा श्रीमुखप्पडि आ-

२ ज्ञौयिणाल शौल-नाट्टु= प्पुड़ङ्गारम्बै-नाट्टु श्रीवङ्गनगर=क्करञ्जै-कोंडयक्रमवित्त-भट्टन=आगिय शौमाशि-पेरुमान् इरुन्दु वारियम्=आग आट (ट=ओ)-रुक्क (आ) लुम् समवत्सर वारियमु(म्) तोट्ट-वारिय-मुम् एरि-वारियमुम इड़ुववदंड़क्कु—व्यवस्थै शेद परिश=आ-(व) दु ॥ कुडुम्बु मुप्पदा=मुप्पदु कुडुम्बिलुम अव्वव कुडुम्बिला-

३ रे कूडि=क्का=निलत्तुक्कु मेल इड़ै-निलम्=उडैमाण ताण मणैयिले अशम्म=इड़ुत्तु-क्कोंड=इरुप्पाणै एलुवदु पिरायत्तिण कील मुप्पत्तैन्दु पिरायत-तिण मेड़पट्टार मन्त्रब्राह्मंम वल्लान् औदुवियत्त-अड़िय्वाणै क्कुडव-औलै इडुवद=आगवुम् (॥) अरै-क्का=निलमे उडैयन्=आमिलु(म्) ओरु-वेदम् वल्लन्=आय नालु भास्यत्तिलुम ओरु-भा-

४ ष्यम् वक्काणित्त-अड़िय्वाँण अवणैप्र्ङ=गुडव-औले एलुडि=प्पुग इडुवद=आगवुम् (॥) आवर्गलिलुम का(र)-य्यत्तिल नियुमर=आय आशारम्=उडियराणारैपेय कोलवद=आगवुम् (॥) अ (र) त्थ-शौशमु (म्) आन्म-शौचमुम् उडैयर=आय मूव-अट्टिण=इ-प्पुड़म् वारिय (ञ) =जेयदिला-त्तारै कोलवद=आगवुम् (॥) एप्पेर्प्पट्ट वारियङ्गलुम् शे(य) दु कनकु-क्काट्टादे इरून्दारैयुम् इवर्गलुक्कु=च्चिचड्ड़-अवै=प्पेड़-अ वै म-

५ क्कलैयुम् इवर्गलुक्कु अत्तै मामण मक्कलैयुम् इव(र) गलुक्कु=त्तामौडु उडप्पिड़न्दाणैयुम् इवर्गल तम (प) पणौड=उडप्पिड़न्दाणैयु(म्) तण्णौद-उडप्पिड़न्दा-णैयुम् इवरमत्युक्कु=प्पिल्लै कुडुत्त माम-णैयुम् इवर्गल ब्राह्मणिभौड=उडप्पिड़न्दा-णैमुय् तण्णैड=उडप्पिड़न्दालै वेट्टाणैयु(म्) उडप्पिड़न् (दा) ल मक्कलैयुम् तण मगलै वेट्ट मरुगणैयुम् तण तमप्पणैयुम्-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६ तण मगणैयुम् आग इ=च्चुट्ट......
बन्धुक्कलैयुम् कुडव-औलै एलुदि=प्पु (ग) इड प्(पे)-ड़ात्तार=आगवुम् (।।) अगम्यागम- णत्तिलुम् महापादगङ्गल (इल) मुराब=अडैन (ड) नालु महापादगत्तिलुम्म=एलुत्तुप्पट्टारैयुम् इवर (गलु) क्कुम् मुन् शुट्टप्पट्ट इत्तिणै बन्धुक्कलैयुम कुडव-औलै एलुद (इ)=प्पुग (इ) ड=प्पेड़ादा (र=आ) गवुम (।।) स (म्सर) ग्ग-(प) ति-(त) रै प्रायश्चित्तञ=जेय्युम्-अल-(वु) म्

७ कुडव-औलै इडादद=आगवुम्....
दियुम् साहसियर=आय=इरुप्पारैयुम् कुड (व-औ) लै एलुदि=प्पुगव=इड=प्पेड़ाडार आगवुम् (।।) परद्रव्यम् अपहरित्ताणैयुम् कुडव-ओलै एलुदि=प्पुग्व=इड=प्पेणादार=आगवुम् (।।) ए (प्पे) र्प्पट्ट कैय्यूट्टु (ड़) गोंडाण क्क(त) प्रायश्चित्तञ=जेच्छु शुद्धर=आणारैपु(म्) अव्वर प्रानान्तिकम

८ वारियत्तुक्कु=क्कुडव-औले=एलुदि पुग (व=इड)=प्पेड़ादद=आग-वुम्... पादगम् शेयदु प्रायच्चित्(त) ञ=जेयदु शुद्धर=(आ) णारैयुम ग्राम-कण डगर=आय प्रायश्चि(त्ताञ)=जेदु शु(द) धर=आणारैयु (म्) अगम्यागमणम (शेदु) प्राप (श्चि) त्तञ - जेदु शुद्धर=आणारैयुम आग इ-च्चुट्टप्पट्ट अण (ऐ) य्वरैयुम् प्राणा-(न्ति) कम् वार (इ) यात्तुक्कु=क्कुडव-ओलै एलुद) (इ)=प्पुगष्=इड=प्पेड़ादद=आग-

९ वुम् (।।) आग इ-च्चुदृप्पट्ट इत्तणैय्वरैयुम् नीक्कि इ-म्मुप्पदु कुडुम् (बिलु)म् कुडव-ओलैक्कु=प्पेरतीट्टि इ-प्पणिरंडु शेरियिलुम्=आग इ-क्कुडुम्बुम वेव्वेड़ेय वाय-ओलै पूट्टि मुप्पदु कुडुम्बुम् वेव्वेड़ कट्टि-=क्कुजम् पुग (इड्) वद=आगवुम् (।।) कुडव-ओलै पड़िक्कुम (बो) दु महासभै=त्तिरुवडियार सबालवृद्धम् निरम् (ब)=क्कूट्टि=क्कोंडु अन्ड़=उल्लूरिलू इरुन्ड नम्बिमार ओरुवरैयुम् ओलिया-

१० मे महासभैयिले उल्म-मंडगत्तिलेय इरुत्तिक्कोंडु अ-न्नम्बिमार नडुवेय अ-क्कुडत्तै नम् (ब) इ-मा (रि) ल वृद्धर=आय इरुप्पार=ओरु-(न) म्बि मेल नौक्कि (स) ल्ला-ज्जण-मुङ=गणुम्-आड़ड़ाल=एडुत्तु-क्कोंडु निड़क्क पगलेय=अन्तरम्=अड़ियादाण=ओरुपालणै=क्कोडु ओरु=कुडुम्बु वाङ(गिय) मड़्ड़=ओरु-कुडत्तुवकेय पुगव्=इट्टिक्कुलैत्तु अ-क्कुडत्तिल=और-औलै वाङ्गि मद्ध्यस्थण कैमिले ।

११ (कु) डुप्पद=आगवुम् (।।) अ-क्कुड(त) तव्=ओ (लै) मध्यस्थण वाङगुम्बौदु अञ्चु विरलम् अगल वैत्तु उल्लङ्गैमिले एड्डु-क्कोल्व(आ) ण=

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशवुम् (॥) अव्वेड़ड़् वा(ड़) गिणव्=औलैव (आ) (शिप्पाण=
आगवुम् (॥) वाशित्त अव्व-औले अङ्गा-उल (म) न्डुगत्त=इरुन्द नम्बिमार
एल्लारुम् वाशिप्पार आगवुम्, वाशित्त अ-प्पेर तीट्टुवद=आगवुम् (॥)
इ-प्परिशे मुप्पदु कुडुम्बिलु (म्) औरो-पेर क(ओ) ल्बद=आगवुम (॥)
इ-क्कोड(मु) प्पड् पेरिलुन=तौट्ट-वारियमु(म्)एरिवारियमुम् शेफारैयुम्
(वि)-ज्या-वृद्ध (रै) युम्

१२ वयो-(वृ)द्धर्गलैयुम सम्वत्सर-वारिय-राग कोल्वद=आगवुम् (॥) मिक्कु
निणड़ारुट=पण्णिरुवरै=त्तौट्ट-वारियड़=गोल्व (द=आ) गवुम्
(॥) निणड़ अड़ुवरैयुम् ऐरि-वारियम्=आग=क्कोल्बद=आगुवम् (॥)
इव्व-इरंडु (त) इड़त्तु वारियमु (म्) करै काट्टि कोल्वद= (आ) गवु
(म्) (॥) इ-वारियम् शेम्गि (ण) ड़ मूणडु(त) इड़ैत्तु वारिय=
प्पेरुमक्कलुम मुण्णू (ड़्ड़ु-अ) ड़् (ब) दु न् (आ)-लुम् निर(म्) ब=च्चेय्दु
ओलिवद=(आ) गवुम् (॥) वारियञ=जेय्यानिणड़ारै आपरादड़

१३ गंडपौड़ु अवणैय=ओल (इ) त्तुवद=आगवुम् (॥) इवर्शल औलि (न्द)
अणन्तरम् इड़ुम् वारियङ्गलुम् प(रिणरन) ड़ु शेरियिलुम धन्मक्रत्यङ=
गडैक-कानुम् वारियरे मध्यस्थरै=क्कोंडु कुड़ (इ) कूट्टि (इ)=क्कुड़ु-
प्पार=आग(वु) म् (॥) इ-व्यवस्थैय=ओलैप्पडियेय .... (क)
कु=क्कुडव=औलैय पड़ित्तु-क (क) ओ (न्डे वारि)-यम इड़ुवद=
आगवुम् (॥) पञ्चवार-व (आरिय) त्-(तुक) कुम् पौण-वा(रि) यत्तु-

१४ क्कु-मुप्पदु=क्कुडुम्बिलुम् कुडव-औलैक्कु पेर तीट्टि मुप्पटु वा (प-औ) लै-
कट्टुम् पुग (इट)टु मुप (प)-ड़ु कुडव-औल(ऐ) पड़ितु मुप्पदिलुम (पण्णि)
रंड़ु पेर (प) ड़ित्तु-क्कोलवद=(आ) गवुम (॥) पड़ित्तु पण्णिरन्डिलुम
अ(ड़ु) वर (प)ओण-वारियम् अड़ुवर पंजवार-वारियमुम् आवनव्=आ
(गवुम्) (॥) पिडै आंडुम् इ-वारिय (ङ) गल कुडव-औले पड़िक्कुम्बोदु
इ-व्वारियङ्गतुक्कु मुणणम् शे-

१५ य्द कुडुम्ब=अण्ड़क्के निण्ड़ कुडुम्बिले करै पड़ित्तु-क्क (ओ) ल (ब) द=
आगवुम् कलुदै एड़िणारैयुम् कूडलेगै शेयदाणैयुम् कुडव-ओलै (ए) लुदि=
प्पुग इड=प्पेड़ादद=आगवु(म्) (॥) मध्यस्थरूम अर्थशौशम् =उडैयाणो
कंक्क=एलुदुवाण=आगवुम् कक्क=एलुदिणाण कंक्कु=प्पेरङ्गरि=
प्पेरु-प्पेरु-मक्कलौड़ु कूड=क्कण (क) कु-(क) कात्ति सुद्धन् आच्चिदिण-
पिण्ण=अण्ड़ि मड़्ड़ु=क्कण-

१६ क्कु=प्पुग पेड़ाण्ण=आगवुम् (॥) ताण एलुदिण क (णक्कु)=त्ताणे
काट्टुवाण=आगवुम् (॥) मड़्ड़ु=क्कणक् (क) र पुक्कु ओ (ड़ु) क्क=

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

=प्पेड़ादा (र) आगवुम (॥) इ-प्परिशे इव्व-आंडु मुदल् चन्द्रादित्यवत्
एण (ड़) उम् कुडव-औलै-वा-रियमे इडुवद=आग देव् (ए) न-द्रण चक्रव
(र) त्ति (प) ण्डितवत्सलन् कुञ्ज-रमल्लण भूरभूलामणि कल्पकचरितै
श्री-परके (स) रि (प) न्म-(र् कल) श्रीमु (ख) म्=अरुलिच्चेदु वरक
(क) आट्ट श्री -आ (ञ)ऐया-

१७ ल्शोल-नाट्टु=प्पुड़ङ्गरम्बै-नाट्टु श्रीवङ्ग-नगर्=वकरञ्जै-क (ओ)
(ओ) ण्डुय-(क्र) मवित्त- भट्टण=आगिय शौमासिपेरुमाण=उडण
(इ) रुन्डुइ-प्परिशु शेम्विक्क न(म्) ग्राम-त्तुक्कु अ(म्यु) दयम्=आग
दुष्टर केट्टु=विशिष्टर व(र) द्धिप्पद=आग य्यवस्थ(ऐ) शेयदौम्
उत्तरमेरु-चतुर्वेदिमङ्गलत्तु सभैऔम् (॥) इ-प्परिशु कुड़ियुल इरुन्दु प(र)
रुमक्कल पणिक्क व्यवसथै एलुदिणे(ण्) मध्यस्थन्

१८ काडडिप्पैत्(त)ण शिववक्कुड़ि इराजमल्ल- मङ्गलप्रियेमेण (॥)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिक्कों पर उत्कीर्ण-लेख

(अ) भारतीय-यूनानी तथा शक सिक्कों के मुद्रा-लेख

१ **दिमित्त**

बैसिलियस डेमेट्रिया (यूनानी लिपि)

२ **मिलिन्द**

महरजस त्रतरस मेनद्रस (खरोष्ठी लिपि)

३ **स्ट्रेटो तथा अगाथाक्लिया की मुद्रा**

(एक ओर)

वैसिलिसेस थिओट्रोपो, अगाथाक्लिया (यूनानी अक्षर)

दूसरी ओर

महरजस ध्रमिकस स्त्रतस (खरोष्ठी)

४ **हरमेयस तथा कुजुल**

एक ओर (यूनानी लिपि)

बैसिलियस स्टेरोस एरमेआ

दूसरी ओर खरोष्ठी (प्राकृत)

कुजुल कसस कूषन यवुगसध्रमिथिदस

५ **पार्थियन शासक मोअ**

एक और (यूनानी लिपि)

बैसिलियस बैसिलियान मेगालो मओय

दूसरी ओर खरोष्ठी (प्राकृत)

रजदि रजस महतस मोअस

६ **अयस का मुद्रा-लेख**

एक ओर (यूनानी लिपि)

बैसिलियस बैसिलियान मेगालाय अजोय

दूसरी ओर (खरोष्ठी में)

महरजस रजरजस महतस अयस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(मुद्रा एवं मुहर-लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वीमकदफिस का स्वर्ण मुद्रा-लेख

एक ओर (यूनानी लिपि)

वेसिलियस ओयो कदफिसेस

दूसरी ओर (खरोष्ठी)

महरजस रजदिरजस सर्व लोग इश्वरस
महिश्वरस त्रिभ कथ्फिशस त्रतरस

कनिष्क का मुद्रा-लेख

(यूनानी लिपि)

शाओ नानो शाओ कनिष्को कुशानो

हुविष्क का मुद्रा-लेख

शाओ नानो शाओ ओइष्कि कोशानो

क्षत्रप रुद्रदामन का रजत मुद्रा-लेख

(ब्राह्मी-प्राकृत)

राञो क्षत्रपस जयदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामस

जीवदामन का मुद्रा-लेख

राञो महाक्षत्रपस दामजदस पुत्रस राज्ञो
महाक्षत्रपस जीवदामस

रुद्रसिंह तृतीय का मुद्रा-लेख

राञ महाक्षत्रपस स्वामि सत्यसहपुत्रस
राञ महाक्षत्रपस स्वामि रुद्रसहस

(ब) गुप्तवंशी मुद्रा-लेख

(गुप्तलिपि तथा छंदबद्ध संस्कृत)

समुद्रगुप्त का स्वर्ण मुद्रालेख

समरशत वितत विजयी जितरिपु रजितोदिवं जयति
राजाधिराजः पृथिवीभवित्वा दिवं जयत्याहृत वाजिमेधः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय चन्द्रगुप्त का स्वर्ण मुद्रा-लेख

नरेन्द्र चन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्य जय्यो भुवि सिंह विक्रमः
परम भागवतो महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तः

द्वितीय चन्द्रगुप्त का रजत मुद्रा-लेख

परमभागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमादित्य
श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त
विक्रमांकस्य

प्रथम कुमारगुप्त का स्वर्ण मुद्रा-लेख

क्षितिपतिरजितो विजयी कुमार गुप्तो दिवं जयति
गुप्त कुलामलचन्द्रो महेन्द्र कर्माजितो जयति
गामवजित्य सुचरितैः कुमारगुप्तोदिवं जयति
भर्त्ता खड्गत्राता कुमार गुप्तो जयत्यनिशं

प्रथम कुमारगुप्त का रजत मुद्रा-लेख

परम भागवत राजाधिराज श्री कुमारगुप्त महेन्द्रादित्यः
विजिता वनिरवनिपति श्रीः कुमार-गुप्तोदिवं जयति

स्कन्दगुप्त का स्वर्ण मुद्रा-लेख

जयति महीतलम् सुधन्वी

स्कन्दगुप्त का रजत मुद्रा-लेख

परमभागवत महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्त क्रमादित्य
विजितावनिरवनिपतिर्जयति दिवं स्कन्दगुप्तोयम् ।

(स) पूर्व मध्ययुग के मुद्रा-लेख

(नागरी अक्षरों में—तीन पंक्तियाँ)

श्री मदादिबराह (प्रतिहार राजा भोज)
श्री मद् गांगेयदेव (कलचूरी शासक गांगेयदेव)
श्री मद् गोविन्द चन्द्रदेव (गहड़वाल राजा गोविन्द चन्द्र)
श्री अजय पाल देव (चौहान राजा अजयपाल)
श्री मद् कीर्त वर्म देव (चंदेल राजा कीर्तिवर्मन)
श्री मुहमदविनसाम (सुल्तान मुहम्मद गौरी)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुहरों पर उत्कीर्ण-लेख

(अ) **वसाढ़ की मुहरें** (कुशान लिपि, प्राकृत तथा संस्कृत)

(१) फरदास्य संद्धियसः पुत्रस्य

(२) सहजतिए निगमस्य

(३) कुलिक निगमस्य

(४) श्री विन्ध्य वेधन महाराजस्य महेश्वर महासेनापति कृष्ठ राज्यस्य वृषध्वजस्य गोतमीपुत्रस्य

(५) आमात्य ईश्वरचन्द्रस्य

(ब) **वैशाली की मुहरें** (गुप्त लिपि, संस्कृत)

(१) युवराज पादीय कुमारामात्याधिकरणस्य

(२) श्री परमभट्टारक पादीय कुमारात्याधिकरणस्य

(३) श्री युवराज भट्टारक पादीय वलधिकरणस्य

(४) तिराभुक्तौ विनय स्थिति सस्थायकाधिकरणस्य

(५) तिरा कुमारामात्यधिकरणस्य

(६) महाप्रतिहार तरवर विनयसुरस्य

(७) श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगमस्य

(८) रणभाण्डागारधिकरणस्य ।

(९) महादण्डनायक अग्नि गुप्तस्य ।

(१०) वैशाल्यामर प्रकृति कुटुम्विनाम् ।

(स) **नालंदा की मुहरें**

(१) श्री नालंदा महाविहारौ अर्यभिक्षुसंघस्य

(२) **मौखरि अवन्ति वर्मन का नालंदा मुद्रा-लेख**

चक्षुस्समुद्राक्रान्त कीर्त्तिः प्रतापानुरागोप
(नतान्य राजा) वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत
चक्रश्चक्रधर इव प्रजानामर्तिहरः श्री महाराज
हरिवर्मा तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातोजय
स्वामिनी भट्टारिका देव्यामुत्पन्नः श्री महाराज
आदित्यवर्मा तत्यपुत्रस्तत पादानुध्यातो हर्षगुप्ता
भट्टारिका देव्यामुत्पन्नः श्री महाराजेश्वर वर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातोपगुप्ता भट्टारिका
देव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री ईशानवर्मा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्ययातो
लक्ष्मीवती भट्टारिका महादेव्यामुत्पन्नो
महाराजाधिराज श्री सर्ववर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यात इन्द्रभट्टारिका
महादेव्यामुत्पन्नः परम माहेश्वरो
महाराजाधिराज श्री अवन्ति वर्मा मौखरिः ।

(३) भास्कर वर्मन का नालंदा मुद्रा-लेख

श्री गणपति वर्मा श्री यज्ञना वत्याम श्री
महेन्द्र वर्मा श्री सव्रतायाम् श्री नारायण वर्मा श्रीदे
ववत्याम् श्री महाभूति वर्मा श्री विज्ञान वत्याम्
श्री चन्द्रमुख वर्मा श्री भो—
गवेत्याम् श्री स्थितवर्मा तेनश्री नयन
श्री सुस्थित वर्मा श्री सोभायाम् श्यामा लक्ष्याम् श्री
सुप्रतिष्ठितः वर्मा श्री भास्कर वर्मेति ।

शशाङ्क का रोहतास मुद्रा-लेख

श्री महासामन्त शशांकदेवस्य ।

(द) कुर्कीहर कांस्य प्रतिमा-लेख (पालवंश)

१ स्वस्ति श्री राज्यपालदेव राज्ये सम्वच्छरे
३२ श्री मदापणक महाविहारे गोपालहिनो
भार्या वाटुकायाः देवधर्म कृतम्
शोपाल हारो स्थपतिपातितम् । वसुधा

२ स्वस्ति श्रीम-विग्रहपालदेव विजयराज्ये
सम्मत ३२ देव धर्मोयम महायान जैन
प्रेमोपासक दुलपसुतः तीकुकस्य ।

३ स्वस्ति श्रीमन महिपाल देव राज्य सम्वत् ३१
सुवर्ण्णकार के सवस्स=स्य देवधर्म ।

(य) मिट्टी की वस्तुओं पर उत्कीर्ण लेख

(i) टिकरे का अभिलेख

सिद्धम् । स्वस्ति श्रीमान महाराज विग्रहपाल
देवस्य विजय राज्ये सम्वत्सरे ८ देवधर्मोयम्
शान्तिरक्षितस्य

(ii) कुम्हरार पात्र का लेख

आरोग्य विहारे भिक्षुसंघस्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बृहत्तर भारत के अभिलेख

चम्पा नरेश इन्द्रवर्मा प्रथम का भद्रेश्वर का अभिलेख

(शकाब्द ७२१ = ७९९ ई०)

ओम् । यास्सद्धर्क्षर्षिस्सुरवरनिचयैश्चारणैश्चोत्तमौजो (।)
यं यस्माद्याति युम्तस्स जयति जगताञ्जायते जन्मजुष्टः ।
तार्क्ष्ये क्किंन्द्विन्द्रदैत्यैर्द्दिवि भुवि विभवैर्म्भाविभोगस्य भोक्ता (।)
यक्षर्क्षक्षुद्ररक्षः क्षणमपि समभूत्तस्य भक्त्या स्मरेद्यम् ॥
तस्य भगवतोऽसुरासुररिपुपवित्रचरणयुगल सरोरुहमकरन्दस्य क्षीरार्ण्णव-तरङ्ग
गगनसिन्धुफेनशशिकरशुक्लतरभस्मावदातधवलतरशरीरप्रदेशस्या शेषभुवनो-पंजी व्यमानविप्रतीततर पङ्कजमृणालनालपादविम्वस्य सुरासुरपतिशिखरमङ्ग-लपदद्वयरेणुगङ्गाप्रवाहस्यापि सुरसिद्धविद्याधरगणमुकुटकिरीटवरकनककण-निकरसन्ध्यायमान चरणनखमणिदर्प्पणस्य पादयुगलारविन्दस्य शरण-मधिकृत्य स भगवान् श्रीमानिन्द्रवर्म्मा प्रतिदिवसमेवमखिलदिगन्तरालधर्म्म-स्थितितरमत्तमप्रतीतः क्षितितले पुण्यमकरोत् ॥
श्रीमान् राजेन्द्रवर्म्मा वरजनमहितो यक्षरत्नप्रमुख्यः
ख्यातस्तेषां प्रभावैर्म्मानुरिव जगतो रक्षणे क्षेमयुक्तः ।
व्रह्मक्षत्रप्रधानो जगति दिवि यथा यज्ञभागैर्म्महेन्द्रो
राज्ये वशंप्रतीततस्सरुचिरिव शशी निर्म्मलाकाशदेशे ॥
स जयति विक्रमतया भुजद्वयेनोद्वहन्निव धरणीं सकलचम्पाधिराज्यवसुमती-तलपति-तशतमख इव धनञ्जय इवाप्रतिहतपराक्रमोऽपि हरिखि विजिता-शेषरिपुवृन्दद्धस्सुरासुरगुचरणद्वयारविन्दजनितसुस्फीतदेशातिशयविक्रमस्त भुवि देवराजसदृशः
पूर्व्वजन्मानवरतमखकुशलतपः फलतया धनद इव धनतमागतिशयेन राजलक्ष्म्यालिङ्गितमृदुतरशरीरप्रदेशः प्रमुदितमनसा तस्य नगरीप्रतीतत-रवसुधात-रतमानुक्रमरक्षणस्वशक्तिप्रभावोर्ज्जितयिन पद्रववणश्रिमव्यवस्थि-तिस्सुरनगरीव राजधान्यासीत् ॥
स श्रीमान् नृपतिस्सदा विजयते भूमौ रिपोस्सर्व्वतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चन्द्रेन्द्राग्नियमस्य विग्रहमधाद्यक्षाधिपस्यौजसा ।
ब्रह्मांशप्रभवः प्रभत विभवो भाग्यप्रभावान्वितः
शक्तया विष्णुरिव प्रमथ्य च रिपून्धर्मस्थिति पालयेत् ।।
श्रीभद्राधिपतिश्वरस्त्रिभुवने ख्यातस्स्वतेजोग्नि भिर्
गन्धर्व्वोरगरक्षसैश्च मुनिभिर्द्देवर्षिविद्याधरैः ।
पातालप्रभवश्च वीर्य्यतपसा सात्वेन वा योगिनो
युक्तस्तैर्म्मनसा प्रभावविभवैः संस्तूयते सर्व्वदा ।।
नगर्य्याः पश्चिमोद्भुतस्यिभिर्लोकैः सर्मर्च्चितः ।
दूरतस्तेजसो भक्त्या सोऽयं भाति महीतले ।।
भद्रं स्वस्थं शुभं यस्माज्जगतां पाति तेजसा ।
भद्रस्याधिपतिस्तस्मात्स भद्राधिपतीश्वरः ।।
अथ चिरकालेन कोशकोष्ठागारदासदासीरजतसुवर्ण्णरत्नादिपारिभोगभुक्तस्स भुवनत्रयार्च्चितपादपंकजरेणुरेव स्वेन तेजसा सकलजगद्धितकारणस्समभवत् ।।
ततश्च कलियुगदोषातिशयभावेन नावागतैर्ज्जववलसंघैर्निर्द्दह्यतेपि
नवाम्बराद्रियमिते शककाले स एव शून्योऽभवत् ।।
बहुवर्षसहस्त्राणि स बभूव महीतले ।
स्वं स्थानं दहनं गन्तुं ह्यकरोत् स्वस्थ मायमा ।।
अथ तस्य तदपि राजेन्द्रवर्म्मणा पुनस्स्थापितमेव सकलकोशकोष्ठागाररजतसुवर्ण्णमकुटरत्नहारादिपरिभोगसान्तः पुरविलासिनीदासदासीगोमहिष-क्षेत्रादिद्रव्यं तस्मै तेन दत्तञ्चितप्रसादेन ।।
तस्यापि पार्थिवं लिङ्गं स्थापितं श्रीन्द्रवर्म्मणा ।
इन्द्रभद्रेश्वरोनाम्ना ततश्चाभूत् स एव वा ।।
तस्यैव स्थापितन्तेन द्वयं कोशञ्चरस्थिरं ।
समुखञ्चरकोशं हि शाके शशियमाद्रिगे ।।
स एव राजा परिपालयन्महीं
यदा प्रजास्ताः मुदितास्स्वविक्रमैः ।
स्वधर्म्मयत्नात् प्रथितो महीतले
सदा रिपूनाञ्जयति स्म तेजसा ।।
स धर्म्मकुलसम्पन्नस्त्यागी शूरसमन्वितः ।।
शक्त्या पराञ्च निर्जित्य महीं पायात्समन्ततः ।।
तस्मै भगवते सकललोकहितकारणाय श्रीन्द्रभद्रेश्वरायेदमिति स भगवान् श्रीमानिन्द्रवर्म्मा जञ्जं कोष्ठागारे शिवयज्ञक्षेत्रद्वयं शिखिशिखागिरि प्रदेशं भक्त्या शुद्धेन मनसैव दत्तवानिति ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन्द्रभद्रेश्वरस्यैव सर्व्वद्रव्यं महीतले ।
ये रक्षन्ति रमन्त्येते स्वर्गे सुरगणैस्सदा ॥
ये हरन्ति पतन्त्ययते नरके वा कुलैस्सह ।
यावत् सूर्य्योऽस्ति चन्द्रश्च तावन्तरकदुःखिताः ॥
लुब्धेन मनसा द्रव्यं यो हरेत् परमेश्वरात् ।
नरकात् न पुनर्गच्छेन् न चिरन्तु स जीवति ॥

जावा के राजा शैलेन्द्र का कलसन् अभिलेख

नमो भगवत्यै आर्य्यतारायै ॥
या तारयत्यमितदुःखभवाब्धिमग्नं लोकं विलोक्य विधिवत् त्रिविधैरुपायैः ।
सा वः सुरेन्द्रनरलोकविभूतिसारं तारा दिशत्वभिमतं जगदेकतारा ॥
आवर्ज्य महाराजं पणं पणकरणं .... ।
शैलेन्द्रराजगुरुभिस्ताराभवनं हि कारितं श्रीमत् ॥
गुर्वाज्ञया कृतज्ञैस्तारादेवी कृतापि तद्भवनम् ।
विनयमहायानविदां भवनं चाप्यार्यभिक्षूणाम् ॥
पङ्कुरतवानतीरिषनामभिरादेशशस्तितभी राज्ञः
ताराभवनं कारितमिदमपि चाप्यार्य्यभिक्षूणां ॥
राज्ये प्रवर्द्धमाने राज्ञः **शैलेन्द्रवंशतिलकस्य** (।)
शैलेन्द्रराजगुरुभिस्ताराभवनं कृतं कृतिभिः
शकनृपकालातीतै र्वर्षशतैः सप्तभिर्म्महाराजः ।
अकरोद्गुरुपूजार्थं ताराभवनं पणकरणः ॥
ग्रामः कालसनामा दत्तः संघाय साक्षिणः कृत्वा ।
पङ्डारतवानतीरिषदेशाध्यक्षान्महापुरुषान् ॥
भूदक्षिणेयमतुला दत्ता संघाय राजसिंहेन ।
शैलेन्द्रवर्मभूपै रनुपरिपाल्यार्यसन्तत्या ॥
सुन्नपंकुरादिभिः सत्तावानकादिभिः ।
सुन्नप्तीरिषादिभिः पत्तिभिश्च साधुभिः ॥
अपिच ॥
सर्वानिवागामिनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते राजसिंह ।
सामान्योयन्धर्म्मसेतुर्नराणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥
अनेन पुण्येन विहारजेन प्रतीत्य जातार्थविभागविज्ञाः ॥
भवन्तु सर्वे विभयोपपन्ना जना जिनानामनुशासनस्थाः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करिलयानपणं करणं श्रीमानभियाचते भाविनृपान् ।
भूयो भूयो विधिवद्विहारपरिचालनार्थमिति ॥

कम्बोज के राजा भववर्म्मन का अभिलेख

(लगभग ६०० ई०)

जितमिन्दुवतसेन मूर्ध्ना गङ्गा बभार-यः ।
उमाभ्रुभङ्गजिह्ममोर्मि मालामालु (?) मिवाममाम् ॥ १ ॥
राजा श्री **भववर्मेति** पतिरासीन्महीभृताम् ।
अप्रधृष्यमहासत्त्वस्तुङ्गो मेरूरिवापरः ॥ २ ॥
सोमान्वये प्रसूतस्य सोमस्येव पत्रोनिधौ ।
केनापि यस्य तेजस्तु जाज्वलीति सदाहवे ॥ ३ ॥
अन्तः समुत्था दुर्ग्राह्मा मूर्त्य भावादतीन्द्रियाः ।
यदा षडरयो येन जिता बाह्मेषु का कथा ॥ ४ ॥
नित्यदानपयः सिक्तकरानेव मतङ्गजान् ।
आत्मानुकारादिव यः समराय समग्रहीत् ॥ ५ ॥
शरात्कालभियातस्य परानावृततेजसः ।
द्विषामसह्मो यस्यैव प्रतापो न खेरपि ॥ ६ ॥
यस्य सेनारजो धुतमुज्झितालंकृतिष्वमि ।
रिपुस्त्रीगण्डदेशेषु चूर्णभावमुपागतम् ॥ ७ ॥
रिपोरिव मनः शुष्कं नगरीपरिखाजलम् ।
यस्य योधैमरावीतमासद्रै रतिना (?) सह ॥ ८ ॥
परितायामपि पुरि ज्वलता यस्य तेजसा ।
पुन क्त इवारोपः प्राकारे जातदेवसः ॥ ९ ॥
जित्वा पर्वत भूपालांस्तनोति सकुला भुवः ।
बन्दिभिः सगुणानीशै (?) र्यशोभिखि यो दिशः ॥ १० ॥
येनेयद्वैरवंश्यानां मर्यादालङ्घनं कृतम् ।
यदेषामवधिर्भूमेरतिक्रान्ता पराक्रमैः ॥ ११ ॥
शक्त्यापि पूर्वं विजिता भूमिरम्बुधिमेखला ।
प्रभुत्वे क्षमया येन सैव पश्चादजीयत ॥ १२ ॥
यस्याकृष्टाः प्रभावेण परे युध्यजिता अपि ।
राजश्रियमुपमादाय नमन्ति चरणाम्बुजे ॥ १३ ॥
परेणाक्रान्तपूर्वेयमखिलेति विचिन्तया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अजित्वाम्भोधिपर्यन्तामवनिं यो न शाम्यति ॥ १४ ॥
अवाप्य षोडश कलाः शशाङ्को याति पूर्णताम् ।
असंख्या अपि यो लब्ध्वा न पर्यस्तः कदाचन : ॥ १५ ॥
नास्ति सर्वगुणः कश्चिदिति वाक्यं महाधियाम् ।
येनासीद्विकृतमिदं (?) स्वेनापि वचसा विना ॥ १६ ॥
तस्य राजाधिराजस्य नवेन्दुरिव यः सुतः ।
गुणकान्त्यादिभिर्योगादुन्नेत्रयति यः प्रजाः ॥ १७ ॥
रांग दधाति भूपानां ⏑ — रतभरीचयः ।
यस्य .... ॥ १८ ॥
शैवं पदं गते राज्ञि दृष्ट्वा यमुदितं प्रजाः ।
मुञ्चन्ति युगपद्बाष्पं लोकानन्दसमुद्भवम् ॥ १९ ॥
.... ।
.... ॥ २० ॥
नवे वयसि वृत्तस्य यस्य राज्यभरोद्यतम् ।
चियायते कुमारस्य सैनान्यं मरुतामिव ॥ २१ ॥
उपधाशुद्धिमान्भृत्यस्तयोरवनिपालयोः ।
.... ॥ २२ ॥
.... ।
.... ॥ २३ ॥
हेमौ करङ्ककलशावित्यादिश्रियमुत्तमाम् ।
यो लब्ध वान्प्रसादेन स्वामिनोरुभयोरपि ॥ २४ ॥
न किंचित्स्वाभ्यसंभुक्तामाप्तं येन कदाचन ।
भोजनं वसनं— — — यानाद्याभरणानि वा ॥ २५ ॥
प्राणै रसारलघुभिः पितृपिण्डविवर्धितः ।
स्वामिनोऽर्थे गुरुस्थेयं क्रेतुमैहत यो ययस् (?) ॥ २६ ॥
लक्ष्म्या गाढोपगूढोऽपि पूर्वाभ्यासबलेन यः ।
मुनिनां चरितं धत्ते क्षमाशमपरायणः ॥ २७ ॥
सुप्रकाशितशौर्यस्य सङ्ग्रामत्यागयोरपि ।
भीरुत्वां यस्य विख्यातमकीर्तेर्वृजिनादपि ॥ १२८ ॥
प्रीणयन्नद्य ⏑ ⏑ — रुचं कुर्वन्द्विग्रामपि ।
पक्षद्वयं यो मित्रत्वमनयद्गुणसंपदा ॥ २९ ॥
कलिना बलिना धर्मो भग्नैकचरणोऽपि यम् ।
महास्तम्भमिवालम्ब्य चतुष्पादिव सुस्थितः ॥ ३० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशाश्वतीत्यनादृत्य तनुश्रियमिवात्मनः ।
यशः पुण्यमयीमेव यः स्थिरां वह्‌मन्यत ।। ३१ ।।
इदमुग्रपूराधीशः सुभक्त्या लिङ्गमैश्वरम् ।
पतिष्ठापितावनत्र श्रीभद्रेश्वरसंज्ञकम् ।। ३२ ।।
दासगोक्षेत्रयहेमादिदेयद्रव्यमशेषतः ।
प्रमाणमिह ते सन्तु यतयो देवयाजकाः ।। ३३ ।।
बान्धवा यजमानस्य पुत्राः संवन्धिनोऽपि च ।
देवस्वं नोपभुञ्जीरन्न प्रमाणि (?) भवन्ति च ।। ३४ ।।
यद्दत्तमस्मै देवाय यजमानेन भक्तितः ।
ये नरा हर्तुमिच्छन्ति ते यान्तु नरकं चिरम् ।। ३५ ।।

बोर्नियो

भूल वर्मा का कुटी भूप अभिलेख

१ श्री मतः श्री नरेन्द्रस्य
२ कूण्डुगम्य महात्मनः (।*)
३ पुत्रो (ऽ*) श्ववर्म्मो विख्यातः
४ वंश-कर्त्ता यथांशुमांन् (।।*)
५ तस्य पुत्रा महात्मानः
६ त्रय स्त्रथ इवाग्नयः (।*)
७ तेषाम्त्रयाणम्प्रवरः
८ तपो-बल-दमान्वितः (।।*)
९ श्री भूलवर्म्मा राजेन्द्रो
१० यष्ट्रा वहु सुवर्णकम् (।*)
११ तस्य यज्ञस्य यूपो (ऽ*) यम्
१२ द्विजेन्द्रैस्समम्प्रकल्पितः (।।*)
१३ श्री मतो नृप मुख्यस्य
१४ राज्ञ (:*) श्री भूलवर्म्मणः (।*)
१५ दानं पुण्यतमे क्षेत्रे
१६ यद्दतम्वप्रकेश्वरे (।।*)
१७ द्विजातिभ्यो (ऽ*) ग्निकल्पेभ्यः
१८ विंशतिगो स हस्त्रिकम् (।*)
१९ तस्य पुण्यस्य यूपो (ऽ*) यम्
२० कृत्तो विप्र रिहागतै ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेपाल–अभिलेख

महादेव का चांगुनरायण का स्तम्भ लेख

(शक् सम्वत् ३८६=४६४ ई०)

१ संवत् ३०० (+*) ८० (+*) ६ ज्येष्ठ-मासे शुक्लपक्षे प्रतिपदि १ (।*)
२ (रो*)हिणी-नक्षत्र-युक्ते चन्द्रमसि मुहूर्त्ते प्रशस्ते (ऽ*) भिजिति (॥)
३ (श्री*) वत्साङ्कित-दीप्त-चारु-विपु(ल*) प्रोद्वृत्त-व (क्ष:) स्थल:
४ —वज्ञ ⌣ न-पद्मवाहु (रुचिर:) स्म (त्तॅृ*)-प्रवृद्धोत्सव: (।)
५ (त्लै)– लोभ्य-भ्रमयन्त्नव ⌣ ⌣ ⌣ — व्यासङ्ग-नित्यो (ऽ) व्यय:
६ (दो*) लाद्रौ निवसञ्जयत्यनि (मि) षैरभ्यर्च्यमानो हरि: (॥) १
७ — — त्सा ⌣ ⌣ — ⌣ — य प्रताप-विभ (वैर्या) याम-संक्षेपकृत्
८ (राजभू*) द्वृषदेव इत्य (नुपम:) (स) त्य-प्रतिज्ञोदय: (।)
९ (संवृद्ध)- सवितेव दीप्त-किर (णै *) सम्यग्धृ (तै:) स्वै: सुतै:
१० (विद्व) द्भिर्ब्बहु-गर्व्वितरच (पलै:) (ख्यातै*) र्विनीतात्मभि: (॥) २
११ (त) स्याभूतनय: समृद्ध-(विष) य: सङ्ख्येष्वजेयो (ऽ) रिभि:
१२ (राजा) शङ्करदेव इत्यय ⌣ — — तिप्रद: सत्यधी: (।)
१३ (प्रज्ञा)-विक्रम-मान-मन-वि (भवै) र्ल्लब्धा यश: पुष्कलम्
१४ — — — ⌣ ररक्ष गामभि (मतैर्भॄ) त्यै (र्मृगे) न्द्रोपम: (॥) ३
१५ (तस्या)प्युत्तम-धर्म-कर्मय (शस:*) (पुत्रोऽर्थ) विद्धार्मिक:
१६ (क)र्म्मा (त्मा) विनयेप्सुरुत्त (मग्गुण:) (श्री-ध)र्म्मदेवो नृप: (।)
१७ (ध)र्म्मेणैव कुलक्रमागत ⌣ — — — ⌣ राज्यं महत्

... ...

... ...

... ...

२७ देवी राज्यवती तु तस्य नृपतेर्भार्य्याभिधाना सती
२८ श्रीरेवानुगता भविष्यति तदा लोकान्तरासङ्गिनी (।)
२९ यस्याञ्जात इहानवद्य-चरित: श्री-**मानदेवो** नृप:
३० कान्त्या शारद-चन्द्रमा इव जगत्प्रह्लादयन्सर्व्वदा (॥) ७
३१ प्रत्यागत्य स-गद्गदाक्षरमिदन्दीर्घं विनिश्वस्य च
३२ प्रेम्णा पुत्रमुवाच साश्रु-वदना यात: पिता ते दिवं (।)
३३ हा पुत्रास्तमिते तवाद्य पितरि प्राणैर्वृथा किम्मम
३४ राज्यम्पुत्रक कारयाहमनुयाम्यद्यैव भर्त्तुर्गतिम् (॥) ८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३५ किम्मे भोग-विधान-विस्तर-कृतैराशामयैर्ब्बन्धनैः
३६ माया-स्वप्न-निभे समागम-विधौ भर्या विना जीवितुम् (।)
३७ यामीत्येवमवास्थिता खलु तदा दीनात्मना सूनुना
३८ पादौ भक्तिवशान्निपीडय शिरसा विज्ञापिता यत्नतः (।।) ९
३९ किम्भोगैर्मम किं हि जीवित-सुखैस्त्वद्वि प्रयोगे सति
४० प्राणान्पूर्व्वमहञ्जहामि परतस्त्वं यास्यसीतो दिवम् (।)
४१ इत्येवम्मुखपङ्कजान्तर-गतैर्न्नेलाम्बु-मिश्रैर्द्दृढंग्
४२ वाक्याशैर्व्विहगीव पाशवशगा बद्धा ततस्तस्थुषो (।।) १०
४३ सत्पुत्रेण सहौर्द्ध्वदेहिक विधिं भर्त्तुः प्रकृत्यात्मनः

... ...

... ...

... ...

५१ अस्त्रापास्त्र-विधान-कौशल-गुणैः प्रक्षात-सत्वोरु (भिः)
५२ श्रीमच्चारुभुजः प्रमृष्ट-कनक-श्लक्षणावादांतच्छविः (।)
५३ पीनांसो विकचासितोत्पल-दल-प्रस्पर्द्धमानेक्षणः
५४ साक्षात्काम इवाङ्गवान्नरपतिः कान्ता-विलासोत्सवः (।।) १३
५५ भूपैश्चा भिरुच्छ्रितैर्व्वसुमती पित्ना ममालङ्कृता
५६ क्षात्नेणाजिमखाश्रयेण विधिना दीक्षाश्रितो(ऽ) हं स्थितः (।)
५७ यात्नाम्प्रत्यरि-सङ्क्षयाय तरसा गच्छामि पूर्व्वान्दिशम्
५८ ये चाक्षा-वश-वर्त्तिनो मम नृपाः संस्थापयिष्यामि तान् (।।) १४
५९ इत्येवञ्जननीमपेतकल्लुषां राजा प्रणम्योचिवान्
६० नाम्बानृण्यमहन्तपोभिरमलैः शक्लोमि यातुम्पितुः (।)
६१ किन्त्वाप्तेन यथावदस्त्र-विधिना तत्पाद-संसेवमा
६२ यास्यामीति ततो (ऽ) म्बयातिमुदया दत्ताभ्यनुज्ञो नृपः (।।) १५
६३ प्रायात्पूर्व्वपथेन यत्न चशठा ये **पूर्व्वदेशा** क्रयाः
६४ सामन्ताः प्रणिताप-वन्धुर-शिरः प्रभ्रष्ट मौलिस्त्रजयः (।)
६५ ताःनाज्ञा-वश वर्त्तिनो नरपतिः संस्थाप्य तस्मात्पुनः
६६ निर्भीः सिंह इवाकुलोत्कट-सटः **पश्चाद्भुवञ्जगिमवान्** (।।) १६
६७ सामन्तस्य च तत्न दृष्ट-चरित श्रुत्वा शिरः कम्पयन्
६८ बाहुं हस्तिकरोपमं स शनकैः स्पृष्ट्वाब्रवीर्द्धर्व्वितम् (।)
६९ आहूतो यदि नैति विक्रमवशादेश्यत्यसौ मे वशं
७० किं बाम्यैर्ब्बहुभिर्व्विधातृ-गदितैः संज्ञेपतः कथ्यते (।।) १७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

...   .
...   .
...   .

मध्य एशिया का अभिलेख (खोटान)

१ संवत्सरे १० मसे ३ धिवज्ञ १० (+*)४ (+*) ४(।) इज़ क्षुनमि खोतान महरयरय- तिरय हिनझदेव-विजि

२ दसिंहस्य(।) त-कलि अस्ति मनुश(=शे) नग रग(=गे) स्वर्नर्से नम(।) तथ मद्र(=द्रे) दि (।) अस्ति मयि उटः (।) तनुवगः सो उटः अ-

३ व्हिन्ञनु हरदि धहि-अधि दद्रिजु वशो (।) त इदनि सो उठो विक्रिनामि मूल्य(=ल्ये) न मष(=षे) सहस्य-अष्टि ४ (+*)

४ ४(+*) १००० सुलिग़ वगि ति-वधगस्य सग़ ज़ि (।) तस्य उटस्य किद (=दे) वगितिवधग़ (=ग) निरवशिषो मुल्यो मस(=से) धितु स्व-

५ र्नर्सस्य ग्रहिदु शुधि उवग़ दु(।) अजि उवदयि सो उटः वग़ि ति-वधगस्य तनुवग़ संव्रितः यथग म ग रनीयः (।)

६ सर्वकिच्च करनीयः (।) यो पचेम-कलि तस्य उटस्य किद (=दे) चुदियदि-विदियदि विवदु उथवियदि त(=तेन) न तथ

७ धडु धिनदि यथ रजधर्मु स्यादि (।) मय धलवगु बहुधित (=वे) लिखिदु स्वर्नर्सस्य अजिषनयि परदु स्प श न

८ र स

९ **ननिवधग़** (=गे) सक्षि **शशिवक** (=के) सक्षि **स्पनियक** (=के) सक्षि (।।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुक्रमणिका

अ

अगथुक्लेयस (मुद्रालेख) २६१
अगस्त २६७
अजमेर ३०
अर्जुनदेव २२९
अर्थशास्त्र २०, ८५, २३८, २४४
अनाथपींडक ४३
अनाम २६३
अमसद (लेख) ३९
अमरावती ४३
    लेख ५२
    वेदिका ५४
अमस (म० ले०) ४१
अयोध्या ३९, १४८
    प्रशस्ति ३, २३
अरिकमेड २००
अलबेरूनी १३५, २२२-२२८
    २३१, जाति, ९१
अल्हणदेवी १३३
अलिकसुन्दर ७
अशोक २, १७, १७७, २४४-५, २४६
    लेख ३, ४, २०, ३९, ५९, ७३, ७७, ८९, १२१, १२२, १३७-८ १३९, १४१, १४४, १७२, १७६, १७९, १८४, १९६, २४७, २५१, २५५
    पदवी ७६
    विदेशी २८
    तिथि २०८
    स्तूप निर्माण ३, ३१
    समकालीन ७२, २०९
    धर्मयात्रा ८५, १५६
    राज्यसीमा ७०
    कलिङ्ग विजय ७
    आक्रमण १४
    मनोरंजन ११६
    धर्मविवाद ३६
    धर्माज्ञा २४, ५३, ५४, १४७
    स्तम्भलेख ३, २२, ४०, ६२

आ

आकरावन्ती ४
आजिवीक १३८
आर्जुनायन ७५
आदिकेशव (मू०) १७८
आदित्यसेन २६, ४२, १५७, २११, २३४, (मू०) ८५
आन्ध्रप्रदेश ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आर्यभट्ट १८६-७
आर्यावर्त १३

इ

इन्द्रपाल ९०
इन्द्रप्रस्थ ६
इन्द्रायुध ७०
इलामाइट (लिपि) २४२
इलौरा ४५ गुहा १४३
इब्न खुर्दजवा ९१
ईश्वर वर्मा २६४
ईशान वर्मा ३४, ३९, ६७, ६९ (मू०) ८३, १६२

उ

उजेनी (मू०) १२
उज्जयिनी २, ३, १४, ६०
उत्तरकोशल ६
उत्तरमेरूर (लेख) २६, २७
उदयगिरि (लेख) ४, २३
उदयगिरि (उड़ीसा) १२४
उर्जयत (मू०) ४४

ऋ

ऋषभदत्त ४, २९, ३०, ५४, ५५, १३९, २५१

ए

एरण १२७
मुद्रालेख २५९
एसिरिया २४२

अं

अन्त महामात्र १७
अंतियोक (आदि) मू० १०
अंतिलिकित ३

क

कच्छ ४
कदफिस ४७, ६७, ७२
कनिष्क ४, ३४, ३९, ४१, ४३, ४८, ५४, ६४, ६७, ७१, १२२, १२९, १८१, २११, २१४, २२०, २२५
लेख २९, १९६, २१३
राज्यविस्तार ९
कन्नौज ६९, ७०, ७७
युद्ध २३, ६५
कमौली ५४, ६०, १२८, १४२, १५७
करणिक २५७
कल्हण ९१
कलिङ्ग ३, ४, (मू) १७२ १९६
युद्ध २, १२२
कहौम १२५
काकनाड (सांची) ४
काठियावाड़ ३८, ७४
कांचीपुर ६, (मू०) १३०
कामरूप (मू०) १७२
कालिन्दी (मू०) ७६
कालिदास २०, ११८, १६०
कार्ले ४, ७
काशी (वाराणसी) ४, ६, १४८
तीर्थ १५७
शिक्षाकेन्द्र १६४
कुर्कीहार १२३
कुषिन्द (लेख) ६७
कुमारगुप्त प्रथम १६, ३४, ३७, ३९,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४८, ४९, ५६, ६६, ६९, ७४,
१२३, १२७, १६०, १६१,
१८२, १९७, १९८, २०१,
२०९, २१७, २२६, २३०
लेख ५, २५, ४६ १३४,
२२१, २२२
कुमारगुप्त द्वितीय ६६, २२८, २३१
(मू०) ८२
कुमार देवी ३७
कुमारदेवी (गोविन्दचन्द्र की पत्नी)
६१, १२३, १३९, १६५
कुशिक (कन्नौज) ६
कुशीनगर (कसिया) ३१
कोकण विजय (मू०) १७९
कोणदेवी २६, (मू०) ८५ १९१
कोनो २१५
कोलंच ९५
कोसल १०
कौटिल्य १७, २०, ६४, ७३
कौशाम्बी २, १५, ४०, ६०, ६८,
७३, १९६, २१३, २२०
मुहरें २००, २०१
सिक्के २४
महामात्र (मू०) २०
कंकाली (टीला) १२४

ख

खजुराहो १२५, १२८
लेख १३१
खरपल्लाना २९, ४१, ६०, ७१, १२२
खारवेल (मू०) २६, २८ ६४, ६८
११७, १२४, १९१, २१५

लेख ३
जीवन वृतांत २३
मगध आक्रमण १४
राज्यविस्तार ९
खालीमपुर १२४

ग

गंगधर (मंत्री) ११३
गंगासागर ६
ग्वालियर (गुहा) ४४
गांगेयदेव, ४९, १५६ (मू०) १९२
गिरनार ३८
गुदफरस १८१, २१३
गुण्डालेख ३०
गुफाएं (बौद्ध) ४४
गोतमिपुत्र शातकर्णी ३, ६८, ७१,
७२, ८६, ८९, १३८, २०८,
२१०, २१३, २१८, २५७
(मू०) ३१, ३२
गोपराज २१०
गोपाल ७७
गोरधगिरि (मू०) २७
गोविन्द गुप्त ५१
गोवर्धन (नासिक) ३, ४ (मू०) ३४
गोविन्द चन्द्रदेव ४२, ४६, ५४, ६९,
११५, १२३, १३९,
१४७, १५०, १५२,
१९३
लेख (पाली) ९२
गौडवहो १९

च

चक्रपालित ६, (मू०) ६४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चक्रायुध ७०, (मू०) १४४
चन्द्रगुप्त प्रथम ३७, ७६, २३३
चन्द्रगुप्त द्वितीय ४, ३४, ३५, ३९, ४४, ४५, ४८, ५१, ५७, ६०, ६८, ७४, ११६, १२७, १२९, १३८, १६०, १६२, २०९, २१७, २२०
दिग्विजय १५, २३
राज्यविस्तार १०, ११, ७१
चन्द्रगुप्त मौर्य ६४, (मू०) ४५
चन्द्रदेव ७७, १५७
चन्द्रवर्मन २६९
चम्पा ३३, लेख २६३
चांगुनारायण २१४
चामुण्डराय ११७, १४२, १९२
चार्ल्समेलेट २६१

ज

जयचन्द्र ५७, १५०, १५७
जयस्कन्धावार ३
जयसिंह ११३
जीवितगुप्त ३५, ६३
जीनसेन २२५
जूनार (गुहा) ८
जूनागढ़ ८, लेख १५, ३४
जेतवन ४३
जेम्सटाड २६१
जेम्स प्रिन्सेप २६१
जोगलथम्बी ६८

त

तक्षशिला २, ३, ४, १४, २४, ३२, (मू०) १२, ४१, ७३, ११६
शिक्षाकेन्द्र १६४
ताम्रलिप्ति २६५
त्रिपुरी ३
तीर्थ (प्रभास) ५५
तुरमय ७
तुषास्क (मू०) ४५
त्रैलोक्य मल्लदेव १५२
तैलप (राजा) १२५
तोरमाण ४२, ६६, ६९, २१०
तोसली २, ७२
महापाल (मू०) ११
तंवपंणी (लंका) ४

द

दशपुर ४, ३०, (मू०) ६१, १६१
दशरथ १३८
दक्षिण कोसल ३
दामसेन २११
दामोदर शर्मन १७१
दिद्दा २७
दिमित १४
दिल्लीमेरण २
देवपाल ६, २५, २७, ४६, ५०, ५६, ६१, ६५, ९३, १२३, १५०, १५१, १६६, २६६, २६७
द्रोणसिंह ६

ध

धनभूति १२२
धनिक नगर लेख १७४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धर्मपाल ६, ५०, ७२, ११९, १२४, १३८, २१०
युद्ध २३, ६९, ७०
राज्यविस्तार ११
लेख २५, २०९
तीर्थयात्रा १५७-८
धर्मपाल (भिक्षु) २६५
धर्ममहामात्र ७३ (मू०) ५, १९
धीमान १७४
ध्रुव १५, २३, ६९
राज्यविस्तार ११
ध्रुवदेवी ५१
ध्रुवसेन १९२, २२४
धौली ५९

न

नन्दसा (यूप) २४
नर्वदा (मू०) ७६
नहपान ४, २९, ३४, ४९, ५४, ६८, ७५, १४१, १८०, २१०, २१३, २२०
राज्यविस्तार ८, ७१
लेख ६०, २०६
तिथि २०९
नायनिका ८, (म०) २९, १७९
नारायणपाल ९४, १२८, १३०, १३१, १३३, १४२
नालूर लेख २६, २७
नालंदा ६१
मुहरें ४९
विहार ५६
लेख ताम्रपत्र २५, ३६, १९०
नासिक लेख ४, २३, २४, ३०
निगम (निबंध) २५९
नेमिचन्द्र २१४, २२५, २२७

प

पटिक ४
पर्णदत्त (मू०) ६४
परमर्दि ४९, ९९, १७२
परिसा (मू०) ६
पहाड़पुर लेख ३४, १२५
पाटलिपुल ३, १४, १५, २३, ७४, ९५, २००
पाणिनि २३८, २४३. २४४, २४९, २७१
पार्श्वनाथ १२५
पिपरावा ३१, ४२
पुलकेशी प्रथम ६
पुलकेशी द्वितीय ६, १३, १५, २३, ६५, १६३, २०१, २२०
पुलमावि ८, ८९, (मू०) ३२-४
पुष्कर ३०
पुष्यमित्र ३, २३, (मू०) २५, ३९, ५२, ६८, १२६, १५७, १८०
पूर्णवर्मन २६६
पेशावर ४
पृथिवीषेण ४९, २११
प्रत्यन्त नृपति ७०
प्रभाकर वर्धन ९०
प्रभावती गुप्ता ६६, १४०
प्रभास ४, ८, (मू० पभास) ४३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रयाग ४, ६, १४, १४८
प्रवरसेन ६६, २७१
प्रादेशिक (मू०) ४
पंचगौड़ ९२

फ

फाहियान २६५
फिरोजशाह २६१
फ्लीट २३१

ब

बजौर २४
बनजारा १६
बन्धुवर्मा (मू०) ६१
बनर्जी (राखालदास) २५२
बराबर (गुहा) ४४, लेख ५५
बलभी १६६
बल्लालसेन १४७, १५०, १५४, १९४
राज्यविस्तार ११
लेख ९३
बसाढ़ मुद्रा ६७
बहसतिमित्र (मू०) २७
बाकपाल ११९
बाडक १४२
बाण २३, १२६
बालादित्य (मू०) १०५
बालपुत्रदेव २५, २७, ४६, ६१, १५१, (मू०) १६३, १६६, २६६
बिलासदेवी १५४
बिष्णुगुप्त २११, २३४, २५२
बिष्णुवर्धन १२९
बीरपुरुषदत्त ४०, ४३, १५३
बीरसेन ७१, (मू०) ५२
बुधगुप्त ४०, ४२, १३८, १७३
राज्यविस्तार ११
नाविक २६५
बुद्धघोष १७७
बुलर २४७, २४९, २५०
बेसनगर २, (लेख) ३, २९, ३६
बोधगया ५२, १५६, १९५
ब्रह्मगिरि ५९
ब्रह्मगुप्त १८७
ब्रह्मदत्त १६५
ब्राह्मी २२

भ

भगवान लाल १८४
भदावनीय संघ २५
भद्रवर्मन (चम्पा नरेश) ३३
भरुकच्छ ४, १५
भरौंच १४
भवनाग १२९
भागभद्र २७, २०८
भास्करवर्मन ९०
भिलसा ४५
भीटा ४९
भानुगुप्त २०, ४०, ५८, २१०
भोज (प्रतिहार) ९३, १४० १४२
लेख ११८
भोज (परमार) १२८
विजय १५
भ्रकुण्ठसिंह ९०

म

मखलीपुत्त घोषाल १२६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मग ७
मगध वंशी राजा ४
मध्यदेश (विनिर्गत) ९५
मनकुंवार (लेख) ३४
मथनदेव २०२
मथुरा (लेख) ४, ३४
महाकान्तार १४
महाविहार (नालंदा) ६१
महासंघिक २५
महीधर (शिल्पी) २५२
महीपाल १२३, २१०
महेन्द्र पर्वत १४, ३५
महेन्द्रपाल ६७, १९२
महोदय (कन्नौज) ६, २३
माधवगुप्त (मू०) ८५
मानसेरा ५९, २४६
मालवसंघ ७५
मास्की लेख २०
मिथिला (केन्द्र) १६४
मिनेद्रस (मू०) २५
मिलिन्द २४, २९, ३२, ४३, १८१, १८४, २४५
मिलिन्दपन्हो २४
मिहिरकुल ४९, ६६, ६९, १३०, २०९, २१०
मुहरें ५१, ६०
मुंगेर ६, २६८
मुद्राराक्षस २५५
  लेख ७५
मेगस्थनीज १३, १७, १९०, २३७
मेरठ स्तम्भ लेख ४०, २६१
मेहरौली ३५, ४०, ५७, ६९
मैक्समूलर १७८
मोग ४८
मोगल्लाना ४२
मोहेनजोदड़ो २४२
मंदसोर (लेख) ३४, ३५, ६०, ६५

य

यशः कर्णदेव १५१
यशोधर्मन १६, ३४, ३५, ६९, १६२, २१६-७, २७१-२
यज्ञश्री शातकर्णी ८, (मू०) ३४, ६८
याज्ञवाल्क्य स्मृति ५५
यूनानी मुद्रालेख ४७
येरगुडी ३८, ५९, २४९, २५९
यौधेय (संघ) ७५
  लेख ४७

र

रवीकीर्ति १६३, २२४
  कालिदास का अनुकरण १६३
राजगृह (मू०) २७
राजमार्ग २००
राजेन्द्र चोल २६७-८
राजतरंगिणी २५९
रामतीर्थ ३०, ५५, (मू०) ४२
रामपाल ११५
राजूक (मू०)४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रुद्रदामन ३०, ४८, ५९, ६४, ६५, ६८, ७५, ८५, ९०, १४१, १५९, १८०, १८२, १९०, १९६, २१३, २१९-२०
जीवन वृतांत २३
राज्यविस्तार ७, ८, १५
कार्य २५, ७७
विजय ६८
गिरनार लेख ४, ३९, ६०
रुद्रसिंह ३०, ६७
रूपनाथ ४०
रुम्मनदेई २, २०, ६०, लेख ३
रंजुवल ३२, ४३

ल

लकुलीश १३२
लजुका १६४ (मू०) १७
ललितविस्तर २३८
लक्ष्मणसेन १४७, १५०, १५४
संस्थापक (सम्वत्) २३५
लेख ९५
लक्ष्मीधर (मंत्री) ११५
लिछवि आदि (प्रजातंत्र) ३१
लुम्बिनी २, ५४, १५६
लौरिया ४०
लौहित्य ३५, ६५
लंका ४

व

वत्सराज २३
विस्तार ११
आक्रमण १५
वत्सभट्टि १६०, १६१
कालिदास का अनुकरण १६१-२
वराहमिहिर १२६, १८५, २२६
वाकपति द्वितीय ९५
वातापीपुरी ६, (मू) ११५, १२८
वाराणसी २४, १२८, (मू०) १३८, १७८, तीर्थ १२०
वासुदेव २९, ३४, ६७
विक्रमशीला ५६, १५०
विक्रमादित्य १५, २१८-९
विक्रान्तवर्मा (चम्पा नरेश) २६९
विक्रमांकदेव चरित १९
विग्रहपाल तृतीय ९१, १५०
विग्रहराज १५१
विटपाल १७४
विदिसा ६०
विजयसेन ११, १३१
विजयतुंग वर्मन १५१
विल्किन्स २६१
वीमकदफिस १३, २००
वीमरान ४३
वेणी (प्रयाग) १२०
वैदिक शाखा १६९-७०
वैन्यगुप्त १२५, २०९
लेख १४५
वैशाली ३१, ५१, ५८
मुहरें ५०, ७४, ७८, १९८, २००-१

श

शकद्वीप ९२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ातकर्णी १४, (मू०) ३३, ४३, ५०, ५४, ७०
शांतिनाथ १२५
शिवसोम (चम्पा शासक) २७२
शिशुपालगढ़ ३
शंकराचार्य १८७
शोर्पारग ४, ३०, (मू०) ४२
श्री विजय २६४

स

सत्यदाम ६५, १८०
समाया (मू०) १२
समुद्रगुप्त ४, २०, २३, ३६, ३७, ३९, ४०, ५४, ६०, ६३, ६४, ६९, ८६, ११६, १५३, १६०, १७२, २००, २१७
लेख १८२, २६५
आक्रमण १०
दिग्विजय १४
यज्ञ १४०
सत्र ११३
सरयूपारी ९२
सर्ववर्मन (मौखरि) ५०, ६७
सहगौरा (ताम्रपत्र) ४५
सांची (लेख) २, १४, २३, ६०
सातवाहन (राज्य) ८
सातकर्णी (मू०) ४५
सार्थवाह १६, १९७
सामन्तसेन ११
सायण ११
सारनाथ १३, ५४, ५९, १९६
सारीपुत्र ४२
सीरिया २४३
सुदर्शन (झील) १९० (मू०) ६६
सुधाकर द्विवेदी १८७
सुमेरिया २४२
सुराष्ट्र ४, १५ (मू०) ४६
सेमिटिक (लिपि) २४२-३
सैहंल (मू०) ४८
सोडास ३९, ४३, २४५
लेख ३९
सोढ़देव (लेख) ९६
सोपारा १५, १७९
सोमलदेवी २८
संक्षोभ ४६, १५३
लेख ९०
स्कन्दगुप्त ३४, ३७, ३९, ६६, ६९, ७७, १६०, १९८, २०९, २२२
लेख ४०, ४६, ७४, १३४, २६१
राज्यविस्तार ११
श्रीहर्ष १८७

ह

हरप्पा १३६, २३६
हरमेयस ७२
हरिषेण २०, ४०, (मू०) ४९, ६९, ७१, १६०, २५८
हरहा ३४, २६०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरिस्वामिनी १२५
हर्षवर्धन ३५, ६५, ६७, ६९
८७, ९० (मू०) ११७
२०६, २०९,
हस्ताक्षर २५९
सम्वत् २११, २३४
लेख २३, ४६, १२९,
१८२
धर्म १३८
मुहरें ५०
समकालीनता ७३
हर्ष चरित १९
हस्तिन ४६
हस्तिपाद ९५
हाटक २०२
हीराचन्द्र गो० ओझा १८४
हुविष्क ३३, ३९, ४१, १८१
लेख २४
होलियोडोरस २, ३, (मू०) २४
२७, २९, ४०,
१२७, १४१
ह्वेनसांग २३, ११४, १६६,
२३७

State Museum Library Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०
अन्ल	अन्य	२	पुलभावी	पुलमावि	१३, १२३,
उज्जयिनी	उज्जयिनी	२			३३, ३४ (मू० ले०)
आठव	आठवें	३	पींडिक	पीडक	१३
स्तम्भ	स्तूप	३	वही	नही	१८
प्रतिभा	प्रतिमा	४	लिखेने	लिखने	१८
बाराणसी	वाराणसी	४	प्रातीय	प्रान्तीय	१९
ताम्रमत्र	ताम्रपत्र	४, ५, ६	मल्य	मूल्य	२०
श्रेणिया	श्रेणियाँ	५	एशिया	एशिया	२०, ३४
चोड़ापेड़ा	चोड़ापाडा	७	९० फीं	९० वीं	२१
प्रोग	प्रयोग	७	रूपकता	रूपता	२१
अंकियोग	अंतियोक	७	हाथा	हाथी	२३
पैत्तिक	पैत्रिक	७	मिविन्दपञ्हो	मिलिन्दपन्हो	२४
प्रमुत्व	प्रभुत्व	८	सभामण्डय	सभामण्डप	२६
पुलमबी	पुलमावि	८, ८९, ३२	भारणीय	भारतीय	२९
		(मू० ले०)	रुद्रदायन	रुद्रदामन	३०, १८२
अतिरिक्त	×	८	द्रसिंह	रुद्रसिंह	३०
प्रभत्व	प्रभुत्व	९	भीतली	भीतरी	३१
खारबेल	खारवेल	९, १०,	पुरुषमेघ	पुरुषमेध	३३
		१४, २३	यूम	यूप	३३
ग	अंग	१०	अभिलेखों का	अभिलेखों के	३४
×	पौत्र	११	अश्वमेघ	अश्वमेध	३६
तामपत्र	ताम्रपत्र	११	ये थोड़	ये थोड़े	३क
उत्ती	उत्तरी	१२	तषागतो	तथागतो	४१
लंक	लंका	१२	अवदच्य	अवदत्	४१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०
महाश्वमण:	महाश्रमण:	४१	तिहास	इतिहास	६८
गुत	गुप्त	४२	मिहिरगुल	मिहिरकुल	६९, १३०,
ढ़कन	ढ़क्कन	४२, ४३			२०९,
इलोरा	इलौरा	४४	कुषिन्द	कुणिन्द	७५
सिको	सिक्कों	४९	धर्ममहापात्र	धर्ममहामात्र	८१
क्षत्रय	क्षत्रप	४९	इंदोर	इंदौर	८६
गांगेदेव	गांगेयदेव	४९	नास	नाम	८९
आभार	आधार	४०	चदेव	चन्द्रदेव	९३
मुहरें की	मुहरों की	४९	आद	आदर	९७
न्हि	जिन्हें	४९	इ० कला०	हि० क्वा०	१०१
मुहर	मुहरें	४९	चि	चित	१०न
कुदाई	खुदाई	४९	वज्रदान	वज्रयान	११४
देवता को	देवता की	४९	×	के	१२३
प्रविना रे	प्रतिमा से	४९	घोरुण्डी	घोसुण्डी	१२६
नोचे	नीचे	४९	अभिलख	अभिलेख	१२८
णूप्त	गुप्त	४९	वष	वर्ष	१३६
प्राष्त	प्राप्त	४९	पा-क	पाठक	१३७
	मुद्रा-लेखों में	४९	अदेश	आदेश	१३७
रखी	रक्खी	५०	×	राजाने	१३९
वैसाली	वैशाली	५०	×	का उल्लेख	१४०
की सारी	का सारा	५०	उल्लख	उल्लेख	१४२
राज आज्ञा	राजाज्ञा	५३	धम	धर्म	१५१
कशिष्क	कनिष्क	५४	आंडुलेख	आडौलेख	१५९
भमि	भूमि	५५	श्लेष का	श्लेष की	१६३
वेदेशिक	वैदेशिक	५६	प्रसग वंश	प्रसंग वस	१६७
करान	कराने	५७	आमागाद्दी	आमागाछी	१९०
	पर	५७	प्रलवावी	पुलमावि	१९१
परन्परा	परम्परा	६२	×	की	१९१
विश	विशद्	६४	बक	बैंक	१९९
	लेखों से	६७	पल्लच	पल्लव	२०१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०
कहापना	कहापन	२०६
याना	यानी	२०६
द्रसिंह	रुद्रसिंह	२१३
×	मानते हैं	२१५
नाम कृत	कृत नाम	२१८
विद्वामों	विद्वानों	२१९
फ्रीट	फ्लीट	२२०
उायगिरि	उदयगिरि	२२०
परिवतन	परिवर्तन	२२६
तिहास	इतिहास	२३६
वर्गन दिया था	वर्णन किया था	२३७
लोगों का	लोगों को	२३९
रपसन	रैप्सन	२४०
समह	समूह	२४२
जुवल	रंजुवल	२४५
मानसरा	मानसेरा	२४६
जम	जन्म	२४६
विकलित	विकसित	२४७
रत	भारत	२४८
स	सन्	२५४
९ ो	९ वीं	२५४
न	ने	२५६
कलान्तर	कालान्तर	२५६
लिख	लिखने	२५६
गौतमीपुत्र	गौतमिपुत्र	३, ८, ६३, ६४, ६८, ७१, ७२, ८६, ८९, १३८, १७९, २०६, २०८, २१०, २१३, २१८, २५७, ३१ (मू.ले.)

अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०
अध्याय १०	अध्याय १२	२६२
मध्यएसिया	मध्यएशिया	२६२
×	था	२३४
बलि	बालि	२६८
यशोवर्भन	यशोवर्मन्	२७१
गौड़	गौडं	२० (मूल लेख)
सम्भनदेई	रुम्मनदेई	२२ (मू. ले.)
नालिक	नासिक	२९ (मू. ले.
शातपर्णी	शातकर्णी	३१ (मू. ले.)
गुणोघर	गुणौंधर	७८ (मू. ले.)
षारीदपुर	फरीदपुर	९० (मू. ले.)
उत्तर-गुप्त की	उत्तर-गुप्त युग की	९५ (मू. ले.)
मिहिकुल	मिहिरकुल	१०८ (मू. ले.)
पुलेकेशी	पुलकेशी	११५ (मू. ले.)
अपहोल	अयहोल	११५ (मू. ले.)
विजयसेन को	विजयसेन की	१७० (मू. ले.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ए० बी० कीथ की

संस्कृत साहित्य का इतिहास

अनुवादक—डा० मंगलदेव शास्त्री, एम.ए., डी.फिल्

श्रीयुत कीथ की यह पुस्तक अंग्रेजी में कितनी लोकप्रिय है, यह इसी से विदित है कि इसके आजतक पाँच संस्करण निकल चुके हैं। और भारतवर्ष के प्रायः हर विश्वविद्यालय में यह पुस्तक पाठ्यक्रम में नियत है। उत्तर भारत के प्रायः हर विश्वविद्यालय का माध्यम हिन्दी हो गया है इसलिए विद्यार्थियों को अंग्रेजी पुस्तक का उपयोग करने में अत्यन्त कठिनाई होती है। इसी कठिनाई को देखते हुए हमने अंग्रेजी संस्करण के प्रकाशक आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लंडन से आज्ञा लेकर इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। पुस्तक बहुत सुन्दर टाइपों में बढ़िया कागज के ऊपर छपी है। पक्की कपड़े की जिल्द सहित। मूल्य २०)

विन्टरनिट्ज

प्राचीन भारतीय साहित्य

भाग प्रथम : खण्ड प्रथम—वैदिक

प्रस्तुत पुस्तक M. Winternitz के Indischen Litteratur का ही राष्ट्रभाषा में अविकल अनुवाद है। Winternitz यही की प्रसिद्ध पुस्तक पिछले कई वर्षों से विश्व भर के विद्यालयों में, एक पूरी शती के इतिहास-संबन्धी अनुसंधानों को एकत्र करनेवाली स्वतः पूर्ण एकमात्र अनुपम निधि के रूप में सर्वमान्य चली आती है।

भारत के विशाल वाङ्मय का परिचयाभास 'प्रागैतिहासिक' वेद-वेदांग परक प्रस्तुत निबंध से आरंभ होता है, जिसके अनन्तर महाकाव्य-पुराण के अर्ध-स्पष्ट "ऐतिहासिक पृष्ठ" इस ग्रंथ के दूसरे खण्ड का विषय है, और दूसरे भाग में बौद्ध जैन वाङ्मय, तथा तीसरे भाग में लौकिक संस्कृत साहित्य के इतिहास का विवेचन है। अन्य सभी भाग तैयारी में हैं।

डिमाई साइज—पक्की कपड़े की जिल्द —मूल्य १०)

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: पटना :: वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

OUR VALUABLE ENGLISH PUBLICATIONS

	Price INDIAN Rs.	FOREIGN Sh.
Altekar, A. S.—State and Government in Ancient India Third edition revised and enlarged	15-00	30
Altekar A. S. Position of Women in Hindu Civilisation with 11 plates, Second revised edition 1956	15-00	30
Apte V. S. Student's Sanskrit to English Dictionary 1959	20-00	40
Apte V. S. Student's English to Sanskrit Dictionrry 1960	12-00	24
Ballantyne and Pramda Dass Mitra—Sahitya Darpana or Mirror of Composition. Complete English translation 1956	15-00	30
Chowdhry, N. N.—Philosophy of Poetry (Kavya-Tattva-Samiksha) Sanskrit Text with English synonyms. 1959	20-00	40
Indra—Status of Women in Ancient India and a Foreword by Sri Vijayalakshmi Pandit Second edition	10-00	20
Jha, Subhadra—Songs of Vidsapati—text edited from the Unique Nepal Mss. with English translation	10-00	20
Kale, M. R.—Higher Sanskrit Grammar	12-50	25
Kane, P. V.—History of Sanskrit Poetics New revised and enlarged edition brought upto date 1961	15-00	30
Macdonell, A.A.—India's Past or a suevey of her literatures, religions, languages and antiquities with 36 plates.	10-00	20
Macdonell, and Keith—Vedic Index of Names and Subjects and Foreword by The Hon'ble Dr. Sampurnanand in 2 Vols.	60-00	120
Majumdar, R. C.—Ancient India—New edition Revised and enlarged with plates 1960	20-00	40
Majumdar, R. C. and Altekar, A. S. Vakataka Gupta Age C 200-500 A. D.	15-00	30
Mookerjee, R. K.—Local Government in Ancient India with Foreword by The Marquess of Crewe. 3rd edition 1958	15-00	30
" —**Hersha** 1959 (From Rules of India Series)	6-00	12
" —**Ancient India Education** illustrated 3rd edition (1960)	35-00	70
" —**Chandra Gupta Maurya** and His Times illustrated (1960)	15-00	30
" —**Asoka** revised upto-date 1961	18-00	36

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

	Rs.	Sh.
Pandey, Rajabali—Indian Palaeography second edition revised with plates	20-00	40
Paradkar, M. D.—Similes in Manusmriti	6-00	12
Pischel Comparative Grammar of the Prakrit Languages translated from the original German edition into English for the first time by Dr. Subhadra Jha. Only few copies.	50-00	100
Radha Krishna, S. Dr. and others Belvalkar Felicitation Volum	30-00	60
Raja C. K. Dr.—Some Fundamental Problems in Indian Philosophy 1960	20-00	40
Sastri Jagdish Lall—Bhoja Prabandha—with Sanskrit, Comm., Hindi and English translations, prose ordar and vocabulary 1955	3-75	8
Sastri-Mangal Deva—Rigveda Pratishakhya English trans.	20-00	40
Sastri-Nilakanth—Age of the Nandas and Maurya 1952 with 19 plates	20-00	40
Schubring, W.—LehreDer Jainas or-Doctrine of the Jaines from the old resources translated into English for the first time under the supervision of the original auther	30-00	60
Seal, B.N.—Positive Sciences of the Ancient Hindus. The authoritative and long out of print Book 1958	15-00	30
Sharma, R. S.—Sudras in Ancient India the survey of the position of the lower orders down to circa A. D. 1958	15-00	30
Sarma, R. S.—Aspects of Political ideas and Institution in Ancient India 1959	12-00	24
Sircar D. C.—Studies in the Geography of Ancient and Medieval India 1960	15-00	30
Stein A. Sir—Rajatarangini or the History of Kashmir by Kalhana trnslated into English with very important notes in 2 big Vols.	100-00	200
Tripathi, R. S.—History of Kanauj to the Moslem Conquest with a Foreword by Dr. L. D. Barnett. 1959	20-00	40
,, **History of Ancient India**—an authoritative upto-date and compendious account of the history, institutions and culture of India	25-00	50
Upadhyaya B.—Select Inscription of India with notes, translation in Hindi	20-00	40
Valiuddin Mir.—Quranic Sufism 1959	10-00	20
Varma, V. P.—Studies in Hindu Political Thought and its metapahysical foundations Second edition revised and enlarged 1960	15-00	30

MOTILAL BANARSIDASS
Post Box 1586, **DELHI-6**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.